ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमहाभारतम्

कर्णपर्व

प्रथमोऽध्यायः

कर्णवधका संक्षिप्त वृत्तान्त सुनकर जनमेजयका वैशम्पायनजीसे उसे विस्तारपूर्वक कहनेका अनुरोध

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

'अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, (उनके नित्य सखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीला प्रकट करनेवाली) भगवती सरस्वती और (उन लीलाओंका संकलन करनेवाले) महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके जय (महाभारत) का पाठ करना चाहिये॥

वैशम्पायन उवाच

ततो द्रोणे हते राजन् दुर्योधनमुखा नृपाः।
भृशमुद्विग्नमनसो द्रोणपुत्रमुपागमन्॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! द्रोणाचार्यके मारे जानेपर दुर्योधन आदि राजाओंका मन अत्यन्त उद्विग्न हो गया था। वे सब-के-सब द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके पास आये॥ १॥

ते द्रोणमनुशोचन्तः कश्मलाभिहतौजसः।
पर्युपासन्त शोकार्तास्ततः शारद्वतीसुतम्॥ २॥

मोहवश उनका बल और उत्साह नष्ट-सा हो गया था। वे द्रोणाचार्यके लिये बारंबार चिन्ता करते हुए शोकसे व्याकुल हो कृपीकुमार अश्वत्थामाके पास उसके चारों ओर बैठ गये॥ २॥

ते मुहूर्तं समाश्वस्य हेतुभिः शास्त्रसम्मितैः।
रात्र्यागमे महीपालाः स्वानि वेश्मानि भेजिरे॥ ३॥

वे शास्त्रानुकूल युक्तियोंद्वारा दो घड़ीतक अश्वत्थामाको सान्त्वना देते रहे। फिर रात हो जानेपर समस्त भूपाल अपने-अपने शिविरमें चले गये॥ ३॥

ते वेश्मस्वपि कौरव्य पृथ्वीशा नाप्नुवन् सुखम्।
चिन्तयन्तः क्षयं तीव्रं दुःखशोकसमन्विताः॥ ४॥

कुरुनन्दन! शिविरोंमें भी वे भूपगण सुख न पा सके। संग्राममें जो घोर विनाश हुआ था, उसका चिन्तन करते हुए दुःख और शोकमें डूब गये॥ ४॥

विशेषतः सूतपुत्रो राजा चैव सुयोधनः।
दुःशासनश्च शकुनिः सौबलश्च महाबलः॥ ५॥
उषितास्ते निशां तां तु दुर्योधननिवेशने।
चिन्तयन्तः परिक्लेशान् पाण्डवानां महात्मनाम्॥ ६॥

विशेषतः सूतपुत्र कर्ण, राजा दुर्योधन, दुःशासन तथा महाबली सुबलपुत्र शकुनि—ये चारों उस रातको दुर्योधनके ही शिविरमें रहे और महात्मा पाण्डवोंको जो बड़े-बड़े क्लेश दिये गये थे, उनका चिन्तन करते रहे॥ ५-६॥

यत् तद् द्यूते परिक्लिष्टा कृष्णा चानायिता सभाम्।
तत् स्मरन्तोऽनुशोचन्तो भृशमुद्विग्नचेतसः॥ ७॥

द्यूत-क्रीडाके समय जो द्रुपदकुमारी कृष्णाको सभामें लाया गया और उसे सर्वथा क्लेश पहुँचाया गया, उसका बारंबार स्मरण करके वे शोकमग्न हो जाते और मन-ही-मन अत्यन्त उद्विग्न हो उठते थे॥ ७॥

तथा तु संचिन्तयतां तान् क्लेशान् द्यूतकारितान्।
दुःखेन क्षणदा राजन् जगामाब्दशतोपमा॥ ८॥

राजन्! इस प्रकार पाण्डवोंको जूएके द्वारा प्राप्त कराये गये उन क्लेशोंका चिन्तन करते-करते उनकी वह रात सौ वर्षोंके समान बड़े कष्टसे व्यतीत हुई॥ ८॥

ततः प्रभाते विमले स्थिता दिष्टस्य शासने।
चक्रुरावश्यकं सर्वे विधिदृष्टेन कर्मणा॥ ९॥

तदनन्तर निर्मल प्रभातकाल आनेपर दैवके अधीन हुए समस्त कौरवोंने शास्त्रोक्त विधिके अनुसार शौच, स्नान, संध्या-वन्दन आदि आवश्यक कार्य पूर्ण किया॥ ९॥

ते कृत्वावश्यकार्याणि समाश्वस्य च भारत।
योगमाज्ञापयामासुर्युद्धाय च विनिर्ययुः॥ १०॥
कर्णं सेनापतिं कृत्वा कृतकौतुकमङ्गलाः।
पूजयित्वा द्विजश्रेष्ठान् दधिपात्रघृताक्षतैः॥ ११॥
गोभिरश्वैश्च निष्कैश्च वासोभिश्च महाधनैः।
वन्द्यमाना जयाशीर्भिः सूतमागधवन्दिभिः॥ १२॥

भरतनन्दन ! प्रतिदिनके आवश्यक कार्य सम्पन्न करके आश्वस्त हो उन्होंने सैनिकोंको कवच आदि धारण करके तैयार हो जानेकी आज्ञा दी तथा कौतुक एवं माङ्गलिक कृत्य पूर्ण करके कर्णको सेनापति बनाकर वे सब-के-सब दही, पात्र, घृत, अक्षत, गौ, अश्व, कण्ठभूषण तथा बहुमूल्य वस्त्रोंद्वारा श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका आदर-सत्कार करके सूत, मागध और वन्दीजनोंद्वारा विजयसूचक आशीर्वादोंसे अभिवन्दित हो युद्धके लिये निकले ॥१०–१२॥

तथैव पाण्डवा राजन् कृतपूर्वाह्णिकक्रियाः ।
शिबिरान्निर्ययुस्तूर्णं युद्धाय कृतनिश्चयाः ॥ १३ ॥

राजन् ! इसी प्रकार पाण्डव भी पूर्वाह्णमें किये जानेवाले नित्य कर्मोंका अनुष्ठान करके तुरंत ही शिबिरसे बाहर निकले । उन्होंने युद्धके लिये दृढ़ निश्चय कर लिया था ॥ १३ ॥

ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
कुरूणां पाण्डवानां च परस्परजयैषिणाम् ॥ १४ ॥

तदनन्तर एक दूसरेको जीतनेकी इच्छावाले कौरवों और पाण्डवोंमें भयंकर रोमाञ्चकारी युद्ध आरम्भ हो गया ॥ १४ ॥

तयोर्द्वौ दिवसौ युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः ।
कर्णे सेनापतौ राजन् बभूवाद्भुतदर्शनम् ॥ १५ ॥

राजन् ! कर्णके सेनापति हो जानेपर उन कौरव-पाण्डव सेनाओंमें दो दिनोंतक अद्भुत युद्ध हुआ ॥ १५ ॥

ततः शत्रुक्षयं कृत्वा सुमहान्तं रणे वृषः ।
पश्यतां धार्तराष्ट्राणां फाल्गुनेन निपातितः ॥ १६ ॥

उस युद्धमें शत्रुओंका महान् संहार करके कर्ण धृतराष्ट्र-पुत्रोंके देखते-देखते अर्जुनके हाथसे मारा गया ॥ १६ ॥

ततस्तु संजयः सर्वं गत्वा नागपुरं द्रुतम् ।
आचष्ट धृतराष्ट्राय यद् वृत्तं कुरुजाङ्गले ॥ १७ ॥

तदनन्तर संजयने तुरंत हस्तिनापुरमें जाकर कुरुक्षेत्रमें जो घटना घटित हुई थी, वह सब धृतराष्ट्रसे कह सुनायी ॥

जनमेजय उवाच

आपगेयं हतं श्रुत्वा द्रोणं चापि महारथम् ।
आजगाम परामार्तिं वृद्धो राजाम्बिकासुतः ॥ १८ ॥

जनमेजय बोले—ब्रह्मन् ! गङ्गानन्दन भीष्म तथा महारथी द्रोणको मारा गया सुनकर ही बूढ़े राजा अम्बिका-नन्दन धृतराष्ट्रको बड़ी भारी वेदना हुई थी ॥ १८ ॥

स श्रुत्वा निहतं कर्णं दुर्योधनहितैषिणम् ।
कथं द्विजवर प्राणानधारयत दुःखितः ॥ १९ ॥

द्विजश्रेष्ठ ! फिर दुर्योधनके हितैषी कर्णके मारे जानेका समाचार सुनकर अत्यन्त दुखी हो उन्होंने अपने प्राण कैसे धारण किये ? ॥ १९ ॥

यस्मिञ्जयाशां पुत्राणां सममन्यत पार्थिवः ।
तस्मिन् हते स कौरव्यः कथं प्राणानधारयत् ॥ २० ॥

कुरुवंशी राजाने जिसके ऊपर अपने पुत्रोंकी विजयकी आशा बाँध रक्खी थी, उसके मारे जानेपर उन्होंने कैसे प्राण धारण किये ? ॥ २० ॥

दुर्मरं तदहं मन्ये नृणां कृच्छ्रेऽपि वर्तताम् ।
यत्र कर्णं हतं श्रुत्वा नात्यजज्जीवितं नृपः ॥ २१ ॥

मैं समझता हूँ कि बड़े भारी संकटमें पड़ जानेपर भी मनुष्योंके लिये अपने प्राणोंका परित्याग करना अत्यन्त कठिन है, तभी तो कर्णवधका वृत्तान्त सुनकर भी राजा धृतराष्ट्रने इस जीवनका त्याग नहीं किया ॥ २१ ॥

तथा शान्तनवं वृद्धं ब्रह्मन् बाह्लीकमेव च ।
द्रोणं च सोमदत्तं च भूरिश्रवसमेव च ॥ २२ ॥
तथैव चान्यान् सुहृदः पुत्रान् पौत्रांश्च पातितान् ।
श्रुत्वा यन्नाजहात् प्राणांस्तन्मन्ये दुष्करं द्विज ॥ २३ ॥

ब्रह्मन् ! उन्होंने वृद्ध शान्तनुनन्दन भीष्म, बाह्लीक, द्रोण, सोमदत्त तथा भूरिश्रवाको और अन्यान्य सुहृदों, पुत्रों एवं पौत्रोंको भी शत्रुओंद्वारा मारा गया सुनकर भी जो अपने प्राण नहीं छोड़े, उससे मुझे यही मालूम होता है कि मनुष्यके लिये स्वेच्छापूर्वक मरना बहुत कठिन है ॥

एतन्मे सर्वमाचक्ष्व विस्तरेण महामुने ।
न हि तृप्यामि पूर्वेषां शृण्वानश्चरितं महत् ॥ २४ ॥

महामुने ! यह सारा वृत्तान्त आप मुझसे विस्तारपूर्वक कहें । मैं अपने पूर्वजोंका महान् चरित्र सुनकर तृप्त नहीं हो रहा हूँ ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि जनमेजयवाक्यं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें जनमेजयवाक्यनामक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

धृतराष्ट्र और संजयका संवाद

वैशम्पायन उवाच

हते कर्णे महाराज निशि गावल्गणिस्तदा ।
दीनो ययौ नागपुरमश्वैर्वातसमैर्जवे ॥ १ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—महाराज ! कर्णके मारे जानेपर गवल्गणपुत्र संजय अत्यन्त दुखी हो वायुके समान वेगशाली घोड़ोंद्वारा उसी रातमें हस्तिनापुर जा पहुँचे ॥

स हास्तिनपुरं गत्वा भृशमुद्विग्नचेतनः ।
जगाम धृतराष्ट्रस्य क्षयं प्रक्षीणबान्धवम् ॥ २ ॥

उस समय उनका चित्त अत्यन्त उद्विग्न हो रहा था । हस्तिनापुरमें पहुँचकर वे धृतराष्ट्रके उस महलमें गये, जहाँ रहनेवाले बन्धु-बान्धव प्रायः नष्ट हो चुके थे ॥

स तमुद्वीक्ष्य राजानं कश्मलाभिहतौजसम् ।
ववन्दे प्राञ्जलिर्भूत्वा मूर्ध्ना पादौ नृपस्य ह ॥ ३ ॥

मोहवश जिनके बल और उत्साह नष्ट हो गये थे, उन राजा धृतराष्ट्रका दर्शन करके संजयने उनके चरणोंमें मस्तक झुकाकर हाथ जोड़ प्रणाम किया ॥ ३ ॥

सम्पूज्य च यथान्यायं धृतराष्ट्रं महीपतिम् ।
हा कष्टमिति चोक्त्वा स ततो वचनमाददे ॥ ४ ॥

राजा धृतराष्ट्रका यथायोग्य सम्मान करके संजयने 'हाय ! बड़े कष्टकी बात है' ऐसा कहकर फिर इस प्रकार वार्तालाप आरम्भ किया—॥ ४ ॥

संजयोऽहं क्षितिपते कच्चिदास्ते सुखं भवान् ।
स्वदोषैरापदं प्राप्य कच्चिन्नाद्य विमुह्यति ॥ ५ ॥

'पृथ्वीनाथ ! मैं संजय हूँ । आप सुखसे तो हैं न ? अपने ही अपराधोंसे विपत्तिमें पड़कर आज आप मोहित तो नहीं हो रहे हैं ? ॥ ५ ॥

हितान्युक्तानि विदुरद्रोणगाङ्गेयकेशवैः ।
अगृहीतान्यनुस्मृत्य कच्चिन्न कुरुषे व्यथाम् ॥ ६ ॥

'विदुर, द्रोणाचार्य, भीष्म और श्रीकृष्णके कहे हुए हितकारक वचन आपने स्वीकार नहीं किये थे । अब उन वचनोंको बारंबार याद करके क्या आपको व्यथा नहीं होती है ? ॥ ६ ॥

रामनारदकण्वाद्यैर्हितमुक्तं सभातले ।
न गृहीतमनुस्मृत्य कच्चिन्न कुरुषे व्यथाम् ॥ ७ ॥

'सभामें परशुराम, नारद और महर्षि कण्व आदिकी कही हुई हितकर बातें आपने नहीं मानी थीं । अब उन्हें स्मरण करके क्या आपके मनमें कष्ट नहीं हो रहा है ? ॥७॥

सुहृदस्त्वद्धिते युक्तान् भीष्मद्रोणमुखान् परैः ।
निहतान् युधि संस्मृत्य कच्चिन्न कुरुषे व्यथाम् ॥ ८ ॥

'आपके हितमें लगे हुए भीष्म, द्रोण आदि जो सुहृद् युद्धमें शत्रुओंके हाथसे मारे गये हैं, उन्हें याद करके क्या आप व्यथाका अनुभव नहीं करते हैं ?' ॥ ८ ॥

तमेवंवादिनं राजा सूतपुत्रं कृताञ्जलिम् ।
सुदीर्घमथ निःश्वस्य दुःखार्त इदमब्रवीत् ॥ ९ ॥

हाथ जोड़कर ऐसी बातें कहनेवाले सूतपुत्र संजयसे दुःखातुर राजा धृतराष्ट्रने लंबी साँस खींचकर इस प्रकार कहा ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

आपगेये हते शूरे दिव्यास्त्रवति संजय ।
द्रोणे च परमेष्वासे भृशं मे व्यथितं मनः ॥ १० ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! दिव्यास्त्रोंके ज्ञाता शूरवीर गङ्गानन्दन भीष्म तथा महाधनुर्धर द्रोणाचार्यके मारे जानेसे मेरे मनमें बड़ी भारी व्यथा हो रही है ॥ १० ॥

यो रथानां सहस्राणि दंशितानां दशैव तु ।
अहन्यहनि तेजस्वी निजघ्ने वसुसम्भवः ॥ ११ ॥
तं हतं यज्ञसेनस्य पुत्रेणेह शिखण्डिना ।
पाण्डवेयाभिगुप्तेन श्रुत्वा मे व्यथितं मनः ॥ १२ ॥

जो तेजस्वी भीष्म साक्षात् वसुके अवतार थे और युद्धमें प्रतिदिन दस हजार कवचधारी रथियोंका संहार करते थे । उन्हींको यहाँ पाण्डुपुत्र अर्जुनसे सुरक्षित द्रुपदकुमार शिखण्डीने मार डाला है, यह सुनकर मेरे मनमें बड़ी व्यथा हो रही है ॥ ११-१२ ॥

भार्गवः प्रददौ यस्मै परमास्त्रं महात्मने ।
साक्षाद् रामेण यो बाल्ये धनुर्वेद उपाकृतः ॥ १३ ॥
यस्य प्रसादात् कौन्तेया राजपुत्रा महारथाः ।
महारथत्वं सम्प्राप्तास्तथान्ये वसुधाधिपाः ॥ १४ ॥
तं द्रोणं निहतं श्रुत्वा धृष्टद्युम्नेन संयुगे ।
सत्यसंधं महेष्वासं भृशं मे व्यथितं मनः ॥ १५ ॥

जिन महात्माको भृगुनन्दन परशुरामने उत्तम अस्त्र प्रदान किया था, जिन्हें बाल्यावस्थामें धनुर्वेदकी शिक्षा देनेके लिये साक्षात् परशुरामजीने अपना शिष्य बनाया था, जिनकी कृपासे कुन्तीके पुत्र राजकुमार पाण्डव महारथी हो गये तथा अन्यान्य नरेशोंने भी महारथी कहलानेकी योग्यता प्राप्त की थी, उन्हीं सत्य-प्रतिज्ञ महाधनुर्धर द्रोणाचार्यको युद्धस्थलमें धृष्टद्युम्नके हाथसे मारा गया सुनकर मेरे मनमें बड़ी पीड़ा हो रही है ॥ १३–१५ ॥

ययोर्लोके पुमानस्त्रे न समोऽस्ति चतुर्विधे ।
तौ द्रोणभीष्मौ श्रुत्वा तु हतौ मे व्यथितं मनः ॥ १६ ॥

संसारमें चार[१] प्रकारके अस्त्रोंकी विद्यामें जिनकी

---

१. अस्त्रोंके चार भेद इस प्रकार हैं—मुक्त, अमुक्त, यन्त्र-मुक्त तथा मुक्तामुक्त । जो धनुष या हाथसे शत्रुपर फेंके जाते हैं, वे मुक्त कहलाते हैं, जैसे बाण आदि । जिन्हें हाथमें लिये हुए ही प्रहार किया जाता है, उन अस्त्रोंको अमुक्त कहते हैं, जैसे तलवार आदि । जो यन्त्रसे फेंके जाते हैं, वे यन्त्रमुक्त कहलाते हैं, जैसे गोला आदि । तथा जिस अस्त्रको छोड़कर पुनः उसका उपसंहार किया जाता है, अर्थात् जो शत्रुपर चोट करके पुनः प्रयोग करनेवालेके हाथमें आ जाते हैं, वे मुक्तामुक्त कहलाते हैं, जैसे श्रीकृष्णका सुदर्शन चक्र और इन्द्रका वज्र आदि ।

समानता करनेवाला दूसरा कोई पुरुष नहीं है, उन्हीं द्रोणाचार्य और भीष्मको मारा गया सुनकर मेरे मनमें बड़ा दुःख हो रहा है ॥ १६ ॥

त्रैलोक्ये यस्य चास्त्रेषु न पुमान् विद्यते समः।
तं द्रोणं निहतं श्रुत्वा किमकुर्वत मामकाः ॥ १७ ॥

तीनों लोकोंमें दूसरा कोई पुरुष जिनके समान अस्त्रवेत्ता नहीं है, उन द्रोणाचार्यको मारा गया सुनकर मेरे पुत्रोंने क्या किया ? ॥ १७ ॥

संशप्तकानां च बले पाण्डवेन महात्मना।
धनंजयेन विक्रम्य गमिते यमसादनम् ॥ १८ ॥
नारायणास्त्रे च हते द्रोणपुत्रस्य धीमतः।
विप्रद्रुतेष्वनीकेषु किमकुर्वत मामकाः ॥ १९ ॥

महात्मा पाण्डुपुत्र अर्जुनने पराक्रम करके संशप्तकोंकी सारी सेनाको यमलोक पहुँचा दिया और बुद्धिमान् द्रोणकुमार अश्वत्थामाका नारायणास्त्र भी जब शान्त हो गया, उस समय अपनी सेनाओंमें भगदड़ मच जानेपर मेरे पुत्रोंने क्या किया ? ॥ १८-१९ ॥

विप्रद्रुतानहं मन्ये निमग्नाञ्शोकसागरे।
प्लवमानान् हते द्रोणे सन्ननौकानिवार्णवे ॥ २० ॥

मैं तो समझता हूँ, द्रोणाचार्यके मारे जानेपर मेरे सारे सैनिक भाग चले होंगे, शोकके समुद्रमें डूब गये होंगे, उनकी दशा समुद्रमें नाव मारी जानेपर वहाँ हाथोंसे तैरनेवाले मनुष्यों-के समान संकटपूर्ण हो गयी होगी ॥ २० ॥

दुर्योधनस्य कर्णस्य भोजस्य कृतवर्मणः।
मद्रराजस्य शल्यस्य द्रौणेश्चैव कृपस्य च ॥ २१ ॥
मत्पुत्रस्य च शेषस्य तथान्येषां च संजय।
विप्रद्रुतेष्वनीकेषु मुखवर्णोऽभवत् कथम् ॥ २२ ॥

संजय ! जब सारी सेनाएँ भाग गयीं, तब दुर्योधन, कर्ण, भोजवंशी कृतवर्मा, मद्रराज शल्य, द्रोणकुमार अश्वत्थामा, कृपाचार्य, मरनेसे बचे हुए मेरे पुत्र तथा अन्य लोगोंके मुखकी कान्ति कैसी हो गयी थी ? ॥ २१-२२ ॥

एतत् सर्वं यथावृत्तं तथा गावल्गणे मम।
आचक्ष्व पाण्डवेयानां मामकानां च विक्रमम् ॥ २३ ॥

गवल्गणकुमार ! मेरे तथा पाण्डुके पुत्रोंके पराक्रमसे सम्बन्ध रखनेवाला यह सारा वृत्तान्त यथार्थरूपसे मुझे कह सुनाओ ॥ २३ ॥

संजय उवाच

तवापराधाद् यद् वृत्तं कौरवेयेषु मारिष।
तच्छ्रुत्वा मा व्यथां कार्षीर्दिष्टे न व्यथते बुधः॥ २४ ॥

संजयने कहा—माननीय नरेश ! आपके अपराधसे कौरवोंपर जो कुछ बीता है, उसे सुनकर दुःख न मानियेगा; क्योंकि दैववश जो दुःख प्राप्त होता है, उससे विद्वान् पुरुष व्यथित नहीं होते हैं ॥ २४ ॥

यस्मादभावी भावी वा भवेदर्थो नरं प्रति।
अप्राप्तौ तस्य वा प्राप्तौ न कश्चिद् व्यथते बुधः॥ २५ ॥

प्रारब्धवश मनुष्यको अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति हो भी जाती है और नहीं भी होती है। अतः उसकी प्राप्ति हो या न हो, किसी भी दशामें कोई ज्ञानी पुरुष (हर्ष या) कष्टका अनुभव नहीं करता है ॥ २५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

न व्यथाभ्यधिका काचिद् विद्यते मम संजय।
दिष्टमेतत् पुरा मन्ये कथयस्व यथेच्छकम् ॥ २६ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! मुझे इससे अधिक कोई व्यथा नहीं होगी, मैं पहलेसे ही ऐसा मानता हूँ कि यह अवश्यंभावी दैवका विधान है; अतः तुम इच्छानुसार सारा वृत्तान्त कहो ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि धृतराष्ट्रसंजयसंवादे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें धृतराष्ट्र-संजयसंवादविषयक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

दुर्योधनके द्वारा सेनाको आश्वासन देना तथा सेनापति कर्णके युद्ध और वधका संक्षिप्त वृत्तान्त

संजय उवाच

हते द्रोणे महेष्वासे तव पुत्रा महारथाः।
बभूवुरस्वस्थमुखा विषण्णा गतचेतसः ॥ १ ॥

संजयने कहा—महाराज ! महाधनुर्धर द्रोणाचार्यके मारे जानेपर आपके महारथी पुत्र विषादग्रस्त और अचेत-से हो गये। उनके मुखपर अस्वस्थताका चिह्न स्पष्ट दिखायी देने लगा ॥ १ ॥

अवाङ्मुखाः शस्त्रभृतः सर्व एव विशाम्पते।
अप्रेक्षमाणाः शोकार्ता नाभ्यभाषन् परस्परम् ॥ २ ॥

प्रजानाथ ! सभी शस्त्रधारी सैनिक मुँह नीचे किये शोकसे व्याकुल हो गये। वे एक दूसरेकी ओर न तो देखते थे और न बात ही करते थे ॥ २ ॥

तान् दृष्ट्वा व्यथिताकारान् सैन्यानि तव भारत।
ऊर्ध्वमेव निरैक्षन्त दुःखत्रस्तान्यनेकशः ॥ ३ ॥

भरतनन्दन ! उन सबको विषादमें डूबा हुआ देख

आपकी अनेक सेनाएँ भी दुःखसे संत्रस्त हो ऊपरकी ओर ही दृष्टिपात करने लगीं ॥ ३ ॥

शस्त्राण्येषां तु राजेन्द्र शोणिताक्तानि सर्वशः ।
प्राभ्रश्यन्त कराग्रेभ्यो दृष्ट्वा द्रोणं हतं युधि ॥ ४ ॥

राजेन्द्र ! युद्धमें द्रोणाचार्यको मारा गया देख खूनसे रँगे हुए इन सैनिकोंके शस्त्र हाथोंसे छूटकर गिर पड़े ॥ ४ ॥

तानि बद्धान्यरिष्टानि लम्बमानानि भारत ।
अदृश्यन्त महाराज नक्षत्राणि यथा दिवि ॥ ५ ॥

भरतवंशी महाराज ! कमर आदिमें बँधकर लटकते हुए वे अस्त्र-शस्त्र आकाशसे टूटते हुए नक्षत्रोंके समान दिखायी दे रहे थे ॥ ५ ॥

तथा तु स्तिमितं दृष्ट्वा गतसत्त्वमवस्थितम् ।
बलं तव महाराज राजा दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ ६ ॥

नरेश्वर ! इस प्रकार आपकी सेनाको प्राणहीन-सी निश्चल खड़ी देख राजा दुर्योधनने कहा—॥ ६ ॥

भवतां बाहुवीर्यं हि समाश्रित्य मया युधि ।
पाण्डवेयाः समाहूता युद्धं चेदं प्रवर्तितम् ॥ ७ ॥

'वीरो ! आपलोगोंके बाहुबलका भरोसा करके मैंने युद्धके लिये पाण्डवोंको ललकारा है और यह युद्ध आरम्भ किया है ॥ ७ ॥

तदिदं निहते द्रोणे विषण्णमिव लक्ष्यते ।
युध्यमानाश्च समरे योधा वध्यन्ति सर्वशः ॥ ८ ॥
जयो वापि वधो वापि युध्यमानस्य संयुगे ।
भवेत् किमत्र चित्रं वै युध्यध्वं सर्वतोमुखाः ॥ ९ ॥

'परंतु द्रोणाचार्यके मारे जानेपर यह सारी सेना विषादमें डूबी हुई-सी दिखायी देती है। समरभूमिमें युद्ध करनेवाले प्रायः सभी योद्धा शत्रुओंके हाथसे मारे जाते हैं। रणभूमिमें जूझनेवाले वीरको कभी विजय भी प्राप्त होती है और कभी उसका वध भी हो जाता है। इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है ? अतः आपलोग सब ओर मुँह करके उत्साहपूर्वक युद्ध करें ॥ ८—९ ॥

पश्यध्वं च महात्मानं कर्णं वैकर्तनं युधि ।
प्रचरन्तं महेष्वासं दिव्यैरस्त्रैर्महाबलम् ॥ १० ॥

'देखिये, महामना, महाधनुर्धर और महाबली वैकर्तन कर्ण अपने दिव्यास्त्रोंके साथ किस प्रकार युद्धमें विचर रहा है ? ॥ १० ॥

यस्य वै युधि संत्रासात् कुन्तीपुत्रो धनंजयः ।
निवर्तते सदा मन्दः सिंहात् क्षुद्रमृगो यथा ॥ ११ ॥

'जिसके भयसे वह कुन्तीका मूर्ख पुत्र अर्जुन सदा उसी प्रकार मुँह मोड़ लेता है, जैसे सिंहके सामनेसे क्षुद्र मृग भाग जाता है ॥ ११ ॥

येन नागायुतप्राणो भीमसेनो महाबलः ।
मानुषेणैव युद्धेन तामवस्थां प्रवेशितः ॥ १२ ॥

'जिसने दस हजार हाथियोंके समान बलवाले महाबली भीमसेनको मानव-युद्धके द्वारा ही वैसी दुरवस्थामें डाल दिया था ॥ १२ ॥

येन दिव्यास्त्रविच्छूरो मायावी स घटोत्कचः ।
अमोघया रणे शक्त्या निहतो भैरवं नदन् ॥ १३ ॥

'जिसने रणभूमिमें भयंकर गर्जना करनेवाले दिव्यास्त्रवेत्ता, शूरवीर मायावी घटोत्कचको अपनी अमोघ शक्तिसे मार डाला था ॥ १३ ॥

तस्य दुर्वारवीर्यस्य सत्यसंधस्य धीमतः ।
बाह्वोर्द्रविणमक्षय्यमद्य द्रक्ष्यथ संयुगे ॥ १४ ॥

'जिसके पराक्रमको रोकना अत्यन्त कठिन है, उस सत्यप्रतिज्ञ बुद्धिमान् कर्णके अक्षय बाहुबलको आज आप लोग समराङ्गणमें देखेंगे ॥ १४ ॥

द्रोणपुत्रस्य विक्रान्तं राधेयस्यैव चोभयोः ।
पश्यन्तु पाण्डुपुत्रास्ते विष्णुवासवयोरिव ॥ १५ ॥

'आज पाण्डव भगवान् विष्णु और इन्द्रके समान शक्तिशाली द्रोणपुत्र तथा राधापुत्र दोनोंके पराक्रमको देखें ॥

सर्व एव भवन्तश्च शक्ताः प्रत्येकशोऽपि वा ।
पाण्डुपुत्रान् रणे हन्तुं ससैन्यान् किमु संहताः ॥ १६ ॥
वीर्यवन्तः कृतास्त्राश्च द्रक्ष्यथाद्य परस्परम् ।

'आप सभी योद्धाओंमेंसे प्रत्येक वीर रणभूमिमें सेनासहित पाण्डवोंको मार डालनेकी शक्ति रखता है। फिर जब आपलोग संगठित होकर युद्ध करें तो क्या नहीं कर सकते हैं ? आप पराक्रमी और अस्त्रविद्याके विद्वान् हैं; अतः आज एक दूसरेको अपना-अपना पुरुषार्थ दिखावें' ॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वा ततः कर्णं चक्रे सेनापतिं तदा ।
तव पुत्रो महावीर्यो भ्रातृभिः सहितोऽनघ ॥ १७ ॥

संजय कहते हैं—निष्पाप नरेश ! ऐसा कहकर आपके महापराक्रमी पुत्र दुर्योधनने अपने भाइयोंके साथ मिलकर कर्णको सेनापति बनाया ॥ १७ ॥

सैनापत्यमथावाप्य कर्णो राजन् महारथः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः प्रायुध्यत रणोत्कटः ॥ १८ ॥

राजन् ! सेनापतिका पद पाकर महारथी कर्ण उच्चस्वरसे सिंहनाद करके रणोन्मत्त होकर युद्ध करने लगा ॥

स सृंजयानां सर्वेषां पञ्चालानां च मारिष ।
केकयानां विदेहानां चकार कदनं महत् ॥ १९ ॥

मान्यवर ! उसने समस्त सृंजयों, पाञ्चालों, केकयों और विदेहोंका महान् संहार किया ॥ १९ ॥

तस्येषुधाराः शतशः प्रादुरासञ्छरासनात् ।

अग्रे पुङ्खे च संसक्ता यथा भ्रमरपङ्क्तयः ॥ २० ॥

उसके धनुषसे सैकड़ों बाणधाराएँ, जो अग्रभाग और पुच्छभागमें परस्पर सटी हुई थीं, भ्रमरपंक्तियोंके समान प्रकट होने लगीं ॥ २० ॥

स पीडयित्वा पञ्चालान् पाण्डवांश्च तरस्विनः ।
हत्वा सहस्रशो योधानर्जुनेन निपातितः ॥ २१ ॥

वह पाञ्चालों और वेगशाली पाण्डवोंको पीड़ित करके सहस्रों योद्धाओंको मारकर अन्तमें अर्जुनके हाथसे मारा गया ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संजयवाक्यं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संजयवाक्यनामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका शोक और समस्त स्त्रियोंकी व्याकुलता

वैशम्पायन उवाच

एतच्छ्रुत्वा महाराज धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
शोकस्यान्तमपश्यन् वै हतं मेने सुयोधनम् ॥ १ ॥
विह्वलः पतितो भूमौ नष्टचेता इव द्विपः ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज ! यह सुनकर अम्बिकानन्दन धृतराष्ट्रने यह मान लिया कि अब दुर्योधन भी मारा ही गया । उन्हें अपने शोकका कहीं अन्त नहीं दिखायी देता था । वे अचेत हुए हाथीके समान व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १½ ॥

तस्मिन् निपतिते भूमौ विह्वले राजसत्तमे ॥ २ ॥
आर्तनादो महानासीत् स्त्रीणां भरतसत्तम ।

भरतश्रेष्ठ जनमेजय ! राजाओंमें सर्वश्रेष्ठ धृतराष्ट्रके व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर जानेसे महलमें स्त्रियोंका महान् आर्तनाद गूँज उठा ॥ २½ ॥

स शब्दः पृथिवीं कृत्स्नां पूरयामास सर्वशः ॥ ३ ॥
शोकार्णवे महाघोरे निमग्ना भरतस्त्रियः ।
रुरुदुर्दुःखशोकार्ता भृशमुद्विग्नचेतसः ॥ ४ ॥

रोदनका वह शब्द वहाँके समूचे भूमण्डलमें व्याप्त हो गया । भरतकुलकी स्त्रियाँ अत्यन्त घोर शोक-समुद्रमें डूब गयीं, उनका चित्त अत्यन्त उद्विग्न हो गया और वे दुःख-शोकसे कातर हो फूट-फूटकर रोने लगीं ॥ ३-४ ॥

राजानं च समासाद्य गान्धारी भरतर्षभ ।
निःसंज्ञा पतिता भूमौ सर्वाण्यन्तःपुराणि च ॥ ५ ॥

भरतभूषण ! गान्धारी देवी राजा धृतराष्ट्रके समीप आकर बेहोश हो भूमिपर गिर गयीं । अन्तःपुरकी सारी स्त्रियोंकी यही दशा हुई ॥ ५ ॥

ततस्ताः संजयो राजन् समाश्वासयदातुराः ।
मुह्यमानाः सुबहुशो मुञ्चन्त्यो वारि नेत्रजम् ॥ ६ ॥

राजन् ! तब संजयने नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहाती हुई राजमहलकी उन बहुसंख्यक महिलाओंको, जो आतुर एवं मूर्छित हो रही थीं, धीरे-धीरे धीरज बँधाया ॥ ६ ॥

समाश्वस्ताः स्त्रियस्तास्तु वेपमाना मुहुर्मुहुः ।
कदल्य इव वातेन धूयमानाः समन्ततः ॥ ७ ॥

आश्वासन पाकर भी वे स्त्रियाँ चारों ओरसे वायुद्वारा हिलाये जाते हुए केलेके वृक्षोंकी भाँति बारंबार काँप रही थीं ॥

राजानं विदुरश्चापि प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम् ।
आश्वासयामास तदा सिञ्चंस्तोयेन कौरवम् ॥ ८ ॥

तत्पश्चात् विदुरने भी ऐश्वर्यशाली कुरुवंशी प्रज्ञाचक्षु राजा धृतराष्ट्रके ऊपर जल छिड़ककर उन्हें होशमें लानेकी चेष्टा की ॥ ८ ॥

स लब्ध्वा शनकैः संज्ञां ताश्च दृष्ट्वा स्त्रियो नृपः ।
उन्मत्त इव राजेन्द्र स्थितस्तूर्ष्णीं विशाम्पते ॥ ९ ॥

राजेन्द्र ! प्रजानाथ ! धीरे-धीरे होशमें आनेपर धृतराष्ट्र अपने घरकी स्त्रियोंको वहाँ उपस्थित जान पागलके समान चुपचाप बैठे रह गये ॥ ९ ॥

ततो ध्यात्वा चिरं कालं निःश्वस्य च पुनः पुनः ।
स्वान् पुत्रान् गर्हयामास बहु मेने च पाण्डवान् ॥ १० ॥

तदनन्तर दीर्घकालतक चिन्ता करनेके पश्चात् वे बारंबार लंबी साँस खींचते हुए अपने पुत्रोंकी निन्दा और पाण्डवोंकी अधिक प्रशंसा करने लगे ॥ १० ॥

गर्हयंश्चात्मनो बुद्धिं शकुनेः सौबलस्य च ।
ध्यात्वा तु सुचिरं कालं वेपमानो मुहुर्मुहुः ॥ ११ ॥

उन्होंने अपनी और सुबलपुत्र शकुनिकी बुद्धिको भी कोसा । फिर बहुत देरतक चिन्तामग्न रहनेके पश्चात् वे बारंबार काँपने लगे ॥ ११ ॥

संस्तभ्य च मनो भूयो राजा धैर्यसमन्वितः ।
पुनर्गावल्गणिं सूतं पर्यपृच्छत संजयम् ॥ १२ ॥

फिर मनको किसी तरह स्थिर करके राजाने धैर्य धारण किया और गवल्गणके पुत्र सारथि संजयसे इस प्रकार पूछा— ॥

यत् त्वया कथितं वाक्यं श्रुतं संजय तन्मया ।
कच्चिद् दुर्योधनः सूत न गतो वै यमक्षयम् ॥ १३ ॥
जये निराशः पुत्रो मे सततं जयकामुकः ।
ब्रूहि संजय तत्त्वेन पुनरुक्तां कथामिमाम् ॥ १४ ॥

'संजय ! तुमने जो बात कही है, वह तो मैंने सुन ली, किंतु एक बात बताओ। निरन्तर विजयकी इच्छा रखनेवाला मेरा पुत्र दुर्योधन अपनी विजयसे निराश हो कहीं यमराजके लोकमें तो नहीं चला गया ? संजय ! तुम इस कही हुई बातको भी फिर यथार्थरूपसे कह सुनाओ' ॥ १३-१४ ॥

एवमुक्तोऽब्रवीत् सूतो राजानं जनमेजय ।
हतो वैकर्तनो राजन् सह पुत्रैर्महारथः ॥ १५ ॥
भ्रातृभिश्च महेष्वासैः सूतपुत्रैस्तनुत्यजैः ।

जनमेजय ! उनके ऐसा कहनेपर सारथि संजय राजासे इस प्रकार बोला—'राजन् ! महारथी वैकर्तन कर्ण अपने पुत्रों तथा शरीरका मोह छोड़कर युद्ध करनेवाले महाधनुर्धर सूतजातीय भाइयोंके साथ मार डाला गया ॥ १५½ ॥

दुःशासनश्च निहतः पाण्डवेन यशस्विना ।
पीतं च रुधिरं कोपाद् भीमसेनेन संयुगे ॥ १६ ॥

'साथ ही यशस्वी पाण्डुपुत्र भीमसेनने रणभूमिमें दुःशासनको मार दिया और क्रोधपूर्वक उसका खून भी पी लिया' ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि धृतराष्ट्रशोको नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें धृतराष्ट्रका शोकनामक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

संजयका धृतराष्ट्रको कौरवपक्षके मारे गये प्रमुख वीरोंका परिचय देना

वैशम्पायन उवाच

इति श्रुत्वा महाराज धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
अब्रवीत् संजयं सूतं शोकसंविग्नमानसः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज ! उपर्युक्त समाचार सुनकर अम्बिकानन्दन धृतराष्ट्रका हृदय शोकसे व्याकुल हो गया । वे अपने सारथि संजयसे इस प्रकार बोले—॥ १ ॥

दुष्प्रणीतेन मे तात पुत्रस्यादीर्घजीविनः ।
हतं वैकर्तनं श्रुत्वा शोको मर्माणि कृन्तति ॥ २ ॥

'तात ! अपने अल्पायु पुत्रके अन्यायसे वैकर्तन कर्णके मारे जानेका समाचार सुनकर जो शोक उमड़ आया है, वह मेरे मर्मस्थानोंको छेदे डालता है ॥ २ ॥

तस्य मे संशयं छिन्धि दुःखपारं तितीर्षतः ।
कुरूणां सृञ्जयानां च के च जीवन्ति के मृताः॥ ३ ॥

'मैं इस अपार दुःखसे पार पाना चाहता हूँ । तुम मेरे इस संदेहका निवारण करो कि कौरवों तथा सृंजयोंमेंसे कौन-कौन जीवित हैं और कौन-कौन मर गये हैं ?' ॥ ३ ॥

संजय उवाच

हतः शान्तनवो राजन् दुराधर्षः प्रतापवान् ।
हत्वा पाण्डवयोधानामर्बुदं दशभिर्दिनैः ॥ ४ ॥

संजयने कहा—राजन् ! दुर्जय एवं प्रतापी वीर शान्तनुनन्दन भीष्म दस दिनोंमें पाण्डवदलके दस करोड़ योद्धाओंका संहार करके मारे गये हैं ॥ ४ ॥

तथा द्रोणो महेष्वासः पञ्चालानां रथव्रजान् ।
निहत्य युधि दुर्धर्षः पश्चाद् रुक्मरथो हतः ॥ ५ ॥

इसी प्रकार सुवर्णमय रथवाले दुर्धर्ष वीर महाधनुर्धर द्रोणाचार्य भी पाञ्चालरथियोंके समुदायोंका संहार करके मारे गये हैं ॥ ५ ॥

हतशेषस्य भीष्मेण द्रोणेन च महात्मना ।
अर्धं निहत्य सैन्यस्य कर्णो वैकर्तनो हतः ॥ ६ ॥

भीष्म और महात्मा द्रोणके मारनेसे जो पाण्डवसेना बच गयी थी, उसके आधे भागका विनाश करके वैकर्तन कर्ण मारा गया है ॥ ६ ॥

विविंशतिर्महाराज राजपुत्रो महाबलः ।
आनर्तयोधाञ्शतशो निहत्य निहतो रणे ॥ ७ ॥

महाराज ! महाबली राजकुमार विविंशति रणभूमिमें सैकड़ों आनर्तदेशीय योद्धाओंको मारकर मरा है ॥ ७ ॥

तथा पुत्रो विकर्णस्ते क्षत्रव्रतमनुस्मरन् ।
क्षीणवाहायुधः शूरः स्थितोऽभिमुखतः परान्॥ ८ ॥
घोररूपान् परिक्लेशान् दुर्योधनकृतान् बहून् ।
प्रतिज्ञां स्मरता चैव भीमसेनेन पातितः ॥ ९ ॥

इसी प्रकार आपका शूरवीर पुत्र विकर्ण क्षत्रियोचित व्रतका स्मरण करके वाहनों और आयुधोंके नष्ट हो जानेपर भी शत्रुओंके सामने डटा हुआ था, परंतु दुर्योधनके दिये हुए बहुत-से भयंकर क्लेशों और अपनी प्रतिज्ञाको याद करके भीमसेनने उसे मार गिराया ॥ ८-९ ॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ राजपुत्रौ महारथौ ।
कृत्वा त्वसुकरं कर्म गतौ वैवस्वतक्षयम् ॥ १० ॥

अवन्तीदेशके महारथी राजकुमार विन्द और अनुविन्द भी दुष्कर कर्म करके यमलोकको चले गये ॥ १० ॥

सिंधुराष्ट्रमुखानीह दश राष्ट्राणि यानि ह ।
वशे तिष्ठन्ति वीरस्य यः स्थितस्तव शासने ॥ ११ ॥
अक्षौहिणीर्दशैकां च विनिर्जित्य शितैः शरैः ।
अर्जुनेन हतो राजन् महावीर्यो जयद्रथः ॥ १२ ॥

राजन् ! जिस वीरके शासनमें सिन्धु सौवीर आदि दस राष्ट्र थे, जो सदा आपकी आज्ञाके अधीन रहा करता था,

उस महापराक्रमी जयद्रथको अर्जुनने आपकी ग्यारह अक्षौहिणी सेनाओंको हराकर तीखे बाणोंसे मार डाला ॥११-१२॥

तथा दुर्योधनसुतस्तरस्वी युद्धदुर्मदः ।
वर्तमानः पितुः शास्त्रे सौभद्रेण निपातितः ॥ १३ ॥

दुर्योधनके रणदुर्मद वेगशाली पुत्र लक्ष्मणको, जो सदा पिताकी आज्ञाके अधीन रहता था, सुभद्राकुमारने मार गिराया ॥

तथा दौःशासनिः शूरो बाहुशाली रणोत्कटः ।
द्रौपदेयेन सङ्गम्य गमितो यमसादनम् ॥ १४ ॥

अपने बाहुबलसे सुशोभित होनेवाला रणोन्मत्त शूर दुःशासनकुमार द्रौपदीके पुत्रसे टक्कर लेकर यमलोकमें जा पहुँचा ॥ १४ ॥

किरातानामधिपतिः सागरानूपवासिनाम् ।
देवराजस्य धर्मात्मा प्रियो बहुमतः सखा ॥ १५ ॥
भगदत्तो महीपालः क्षत्रधर्मरतः सदा ।
धनंजयेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ १६ ॥

जो सागर-तटवर्ती किरातोंके स्वामी तथा देवराज इन्द्रके अत्यन्त आदरणीय प्रिय सखा थे, सदा क्षत्रिय-धर्ममें तत्पर रहनेवाले वे धर्मात्मा राजा भगदत्त भी अर्जुनके साथ पराक्रम दिखाकर यमराजके लोकमें चले गये ॥ १५-१६ ॥

तथा कौरवदायादो न्यस्तशस्त्रो महायशाः ।
हतो भूरिश्रवा राजञ्शूरः सात्यकिना युधि ॥ १७ ॥

राजन् ! कौरववंशी महायशस्वी शूरवीर भूरिश्रवा, जो अपने अस्त्र-शस्त्रोंका परित्याग कर चुके थे, युद्धस्थलमें सात्यकिके हाथसे मारे गये ॥ १७ ॥

श्रुतायुरपि चाम्बष्ठः क्षत्रियाणां धुरंधरः ।
चरन्नभीतवत् संख्ये निहतः सव्यसाचिना॥ १८ ॥

अम्बष्ठदेशके राजा क्षत्रिय-धुरंधर श्रुतायु भी, जो समराङ्गणमें निर्भय-से विचरते थे, सव्यसाची अर्जुनके हाथसे मारे गये ॥ १८ ॥

तव पुत्रः सदामर्षी कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ।
दुःशासनो महाराज भीमसेनेन पातितः ॥ १९ ॥

महाराज ! जो अस्त्र-विद्याका विद्वान् तथा युद्धमें उन्मत्त होकर लड़नेवाला था, सदा अमर्षमें भरे रहनेवाले आपके उस पुत्र दुःशासनको भीमसेनने मार गिराया ॥ १९ ॥

यस्य राजन् गजानीकं बहुसाहस्रमद्भुतम् ।
सुदक्षिणः स संग्रामे निहतः सव्यसाचिना ॥ २० ॥

राजन् ! जिसके अधिकारमें कई हजार हाथियोंकी अद्भुत सेना थी, वह सुदक्षिण भी संग्राममें सव्यसाची अर्जुनके बाणोंका निशाना बन गया ॥ २० ॥

कोसलानामधिपतिर्हत्वा बहुमतान् परान् ।
सौभद्रेण हि विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ २१ ॥

कोशलनरेश शत्रुपक्षके अत्यन्त सम्मानित वीरोंका वध करके सुभद्राकुमार अभिमन्युके साथ पराक्रम दिखाते हुए यमलोकके पथिक बन गये ॥ २१ ॥

बहुशो योधयित्वा तु भीमसेनं महारथम् ।
मद्रराजात्मजः शूरः परेषां भयवर्धनः ।
असिचर्मधरः श्रीमान् सौभद्रेण निपातितः ॥ २२ ॥

जो महारथी भीमसेनके साथ भी कई बार युद्ध कर चुका था, ढाल और तलवार लेकर शत्रुओंका भय बढ़ानेवाला वह मद्रराजका शूरवीर तेजस्वी पुत्र सुभद्राकुमार अभिमन्युके द्वारा मार डाला गया ॥ २२ ॥

समः कर्णस्य समरे यः स कर्णस्य पश्यतः ।
वृषसेनो महातेजाः शीघ्रास्त्रो दृढविक्रमः ॥ २३ ॥
अभिमन्योर्वधं श्रुत्वा प्रतिज्ञामपि चात्मनः ।
धनंजयेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ २४ ॥

जो समरभूमिमें कर्णके समान ही पराक्रमी था, शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलानेवाला, सुदृढ़ बल-विक्रमसे सम्पन्न और महान् तेजस्वी था, वह कर्णपुत्र वृषसेन अभिमन्युका वध सुनकर की हुई अपनी प्रतिज्ञाको याद रखनेवाले अर्जुनके साथ भिड़कर कर्णके देखते-देखते उनके द्वारा यमलोक पहुँचा दिया गया ॥ २३-२४ ॥

नित्यं प्रसक्तवैरो यः पाण्डवैः पृथिवीपतिः ।
विश्राव्य वैरं पार्थेन श्रुतायुः स निपातितः ॥ २५ ॥

जो पाण्डवोंके साथ सदा वैर बाँधे रखता था, उस राजा श्रुतायुको कुन्तीकुमार अर्जुनने उसकी शत्रुताका स्मरण कराकर मार डाला ॥ २५ ॥

शल्यपुत्रस्तु विक्रान्तः सहदेवेन मारिष ।
हतो रुक्मरथो राजन् भ्राता मातुलजो युधि ॥ २६ ॥

माननीय नरेश ! शल्यका पराक्रमी पुत्र रुक्मरथ, जो सहदेवका ममेरा भाई था, युद्धमें सहदेवके ही हाथसे मारा गया ॥ २६ ॥

राजा भगीरथो वृद्धो बृहत्क्षत्रश्च केकयः ।
पराक्रमन्तौ विक्रान्तौ निहतौ वीर्यवत्तरौ ॥ २७ ॥

बूढ़े राजा भगीरथ और केकयनरेश बृहत्क्षत्र ये दोनों अत्यन्त बलवान् और पराक्रमी वीर थे, जो युद्धमें पराक्रम दिखाते हुए मारे गये ॥ २७ ॥

भगदत्तसुतो राजन् कृतप्रज्ञो महाबलः ।
श्येनवच्चरता संख्ये नकुलेन निपातितः ॥ २८ ॥

राजन् ! भगदत्तके विद्वान् और महाबली पुत्रको युद्धमें बाजकी तरह झपटनेवाले नकुलने मार गिराया ॥ २८ ॥

पितामहस्तव तथा बाह्लीकः सह बाह्लिकैः ।
निहतो भीमसेनेन महाबलपराक्रमः ॥ २९ ॥

आपके पितामह बाह्लीक भी महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न थे। वे भीमसेनके हाथसे बाह्लीक योद्धाओंसहित मारे गये ॥

जयत्सेनस्तथा राजञ्जारासंधिर्महाबलः ।
मागधो निहतः संख्ये सौभद्रेण महात्मना ॥ ३० ॥

राजन् ! जरासंधके महाबलवान् पुत्र मगधवासी जयत्सेनको महामना सुभद्राकुमारने युद्धमें मार डाला ॥ ३० ॥

पुत्रस्ते दुर्मुखो राजन् दुःसहश्च महारथः ।
गदया भीमसेनेन निहतौ शूरमानिनौ ॥ ३१ ॥

नरेश्वर! आपके पुत्र दुर्मुख और महारथी दुःसह ये दोनों अपनेको शूरवीर माननेवाले योद्धा थे, जो भीमसेनकी गदासे मारे गये ॥ ३१ ॥

दुर्मर्षणो दुर्विषहो दुर्जयश्च महारथः ।
कृत्वा त्वसुकरं कर्म गता वैवस्वतक्षयम् ॥ ३२ ॥

इसी प्रकार दुर्मर्षण, दुर्विषह और महारथी दुर्जय दुष्कर कर्म करके यमराजके लोकमें जा पहुँचे हैं ॥ ३२ ॥

उभौ कलिङ्गवृषकौ भ्रातरौ युद्धदुर्मदौ ।
कृत्वा चासुकरं कर्म गतौ वैवस्वतक्षयम् ॥ ३३ ॥

युद्धदुर्मद कलिङ्ग और वृषक ये दोनों भाई भी दुष्कर पराक्रम प्रकट करके यमलोकके अतिथि हो चुके हैं ॥ ३३ ॥

सचिवो वृषवर्मा ते शूरः परमवीर्यवान् ।
भीमसेनेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ ३४ ॥

आपके मन्त्री परम पराक्रमी शूरवीर वृषवर्मा भीमसेनके द्वारा बलपूर्वक यमलोक पहुँचा दिये गये ॥ ३४ ॥

तथैव पौरवो राजा नागायुतबलो महान् ।
समरे पाण्डुपुत्रेण निहतः सव्यसाचिना ॥ ३५ ॥

इसी प्रकार दस हजार हाथियोंके समान बलशाली महान् राजा पौरवको समराङ्गणमें पाण्डुकुमार सव्यसाची अर्जुनने मार डाला ॥ ३५ ॥

वसातयो महाराज द्विसाहस्राः प्रहारिणः ।
शूरसेनाश्च विक्रान्ताः सर्वे युधि निपातिताः ॥ ३६ ॥

महाराज ! प्रहारकुशल दो हजार वसातिलोग और पराक्रमी शूरसेन—ये सबके सब युद्धमें मार डाले गये हैं ॥३६॥

अभीषाहाः कवचिनः प्रहरन्तो रणोत्कटाः ।
शिबयश्च रथोदाराः कालिङ्गसहिता हताः ॥ ३७ ॥

रणमें उन्मत्त होकर प्रहार करनेवाले कवचधारी अभीषाह और उदार रथी शिवि—ये सब कलिङ्गराजसहित मारे गये हैं ॥ ३७ ॥

गोकुले नित्यसंवृद्धा युद्धे परमकोपनाः ।
तेऽपावृत्तकवीराश्च निहताः सव्यसाचिना ॥ ३८ ॥

जो सदा गोकुलमें पले हैं, युद्धमें अत्यन्त कुपित होकर लड़ते हैं और जिन्होंने कभी युद्धमें पीठ दिखाना नहीं सीखा है, वे गोपाल भी अर्जुनके हाथसे मारे जा चुके हैं ॥

श्रेणयो बहुसाहस्राः संशप्तकगणाश्च ये ।
ते सर्वे पार्थमासाद्य गता वैवस्वतक्षयम् ॥ ३९ ॥

संशप्तकगणोंकी कई हजार श्रेणियाँ थीं । वे सभी अर्जुनका सामना करके यमराजके लोकमें चले गये ॥ ३९ ॥

स्यालौ तव महाराज राजानौ वृषकाचलौ ।
त्वदर्थमतिविक्रान्तौ निहतौ सव्यसाचिना ॥ ४० ॥

महाराज ! आपके दोनों साले राजा वृषक और अचल, जो आपके लिये अत्यन्त पराक्रम प्रकट करते थे, अर्जुनके द्वारा मार डाले गये ॥ ४० ॥

उग्रकर्मा महेष्वासो नामतः कर्मतस्तथा ।
शाल्वराजो महाबाहुर्भीमसेनेन पातितः ॥ ४१ ॥

जो महान् धनुर्धर तथा नाम और कर्मसे भी उग्रकर्मा थे, उन महाबाहु शाल्वराजको भीमसेनने मार गिराया ॥४१॥

ओघवांश्च महाराज बृहन्तः सहितौ रणे ।
पराक्रमन्तौ मित्रार्थे गतौ वैवस्वतक्षयम् ॥ ४२ ॥

महाराज ! मित्रके लिये रणभूमिमें पराक्रम प्रकट करनेवाले ओघवान् और बृहन्त—ये दोनों एक साथ यमलोकको प्रस्थान कर चुके हैं ॥ ४२ ॥

तथैव रथिनां श्रेष्ठः क्षेमधूर्तिर्विशाम्पते ।
निहतो गदया राजन् भीमसेनेन संयुगे ॥ ४३ ॥

प्रजानाथ ! नरेश्वर ! इसी प्रकार रथियोंमें श्रेष्ठ क्षेमधूर्तिको भी युद्धस्थलमें भीमसेनने अपनी गदासे मार डाला ॥४३॥

तथा राजन् महेष्वासो जलसंधो महाबलः ।
सुमहत् कदनं कृत्वा हतः सात्यकिना रणे ॥ ४४ ॥

राजन् ! महाधनुर्धर महाबली जलसंध रणभूमिमें शत्रुसेनाका महान् संहार करके अन्तमें सात्यकिके हाथसे मारे गये ॥ ४४ ॥

अलम्बुषो राक्षसेन्द्रः खरबन्धुरयानवान् ।
घटोत्कचेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ ४५ ॥

घटोत्कचने पराक्रम करके गर्दभयुक्त सुन्दर रथवाले राक्षसराज अलम्बुषको यमलोक पहुँचा दिया है ॥ ४५ ॥

राधेयः सूतपुत्रश्च भ्रातरश्च महारथाः ।
केकयाः सर्वशश्चापि निहताः सव्यसाचिना ॥ ४६ ॥

सूतपुत्र राधानन्दन कर्ण, उसके महारथी भाई तथा समस्त केकय भी सव्यसाची अर्जुनके हाथसे मारे गये ॥ ४६ ॥

मालवा मद्रकाश्चैव द्राविडाश्चोग्रकर्मिणः ।
यौधेयाश्च ललित्थाश्च क्षुद्रकाश्चाप्युशीनराः ॥ ४७ ॥
मावेल्लकास्तुण्डिकेराः सावित्रीपुत्रकाश्च ये ।
प्राच्योदीच्याः प्रतीच्याश्च दाक्षिणात्याश्च मारिष ॥ ४८ ॥
पत्तीनां निहताः संघा हयानां प्रयुतानि च ।
रथव्रजाश्च निहता हताश्च वरवारणाः ॥ ४९ ॥

मालव, मद्रक, भयंकर कर्म करनेवाले द्राविड, यौधेय, ललित्थ, क्षुद्रक, उशीनर, मावेल्लक, तुण्डिकेर, सावित्रीपुत्र, प्राच्य, प्रतीच्य, उदीच्य और दाक्षिणात्य, पैदल-समूह, दस लाख घोड़े, रथोंके समूह और बड़े-बड़े गजराज अर्जुनके हाथसे मारे गये हैं ॥ ४७–४९ ॥

सध्वजाः सायुधाः शूराः सवर्माम्बरभूषणाः ।
कालेन महता यत्ताः कुशलैर्ये च वर्धिताः ॥ ५० ॥
ते हताः समरे राजन् पार्थेनाक्लिष्टकर्मणा ।

राजन् ! पालननिपुण पुरुषोंने जिनका दीर्घकालसे पालन-पोषण किया था, जो युद्धमें सदा सावधान रहनेवाले शूरवीर थे, वे सभी अनायास ही महान् कर्म करनेवाले अर्जुनके हाथसे ध्वज, आयुध, कवच, वस्त्र और आभूषणोंसहित समराङ्गणमें मारे गये ॥ ५०½ ॥

अन्ये तथामितबलाः परस्परवधैषिणः ॥ ५१ ॥
एते चान्ये च बहवो राजानः सगणा रणे ।
हताः सहस्रशो राजन् यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ५२ ॥

महाराज ! एक दूसरेके वधकी इच्छा रखनेवाले असीम बलशाली अन्यान्य योद्धा भी मौतके घाट उतर चुके हैं। राजन् ! ये तथा और भी बहुत-से नरेश रणभूमिमें अपने दलबलके साथ सहस्रोंकी संख्यामें मारे गये हैं। आप मुझसे जो कुछ पूछ रहे थे, वह सब मैंने बता दिया ॥ ५१-५२ ॥

एवमेष क्षयो वृत्तः कर्णार्जुनसमागमे ।
महेन्द्रेण यथा वृत्रो यथा रामेण रावणः ॥ ५३ ॥
यथा कृष्णेन नरको मुरुश्च नरकारिणा ।
कार्तवीर्यश्च रामेण भार्गवेण यथा हतः ॥ ५४ ॥
सज्ञातिबान्धवः शूरः समरे युद्धदुर्मदः ।
रणे कृत्वा महद् युद्धं घोरं त्रैलोक्यमोहनम् ॥ ५५ ॥
यथा स्कन्देन महिषो यथा रुद्रेण चान्धकः ।
तथार्जुनेन स हतो द्वैरथे युद्धदुर्मदः ॥ ५६ ॥
सामात्यबान्धवो राजन् कर्णः प्रहरतां वरः ।

राजन् ! इस प्रकार कर्ण और अर्जुनके संग्राममें यह भारी संहार हुआ है। जैसे देवराज इन्द्रने वृत्रासुरको, श्रीरामचन्द्र-जीने रावणको, नरकशत्रु श्रीकृष्णने नरक और मुरुको तथा भृगुवंशी परशुरामने तीनों लोकोंको मोहित करनेवाला अत्यन्त घोर युद्ध करके समराङ्गणमें रणदुर्मद शूरवीर कृतवीर्यकुमार अर्जुनको उसके भाई-बन्धुओंसहित मार डाला था, जैसे स्कन्दने महिषासुरका और रुद्रने अन्धकासुरका संहार किया था, उसी प्रकार अर्जुनने योद्धाओंमें श्रेष्ठ युद्धदुर्मद कर्णको द्वैरथयुद्धमें उसके मन्त्री और बन्धुओंसहित मार डाला ॥ ५३–५६½ ॥

जयाशा धार्तराष्ट्राणां वैरस्य च मुखं यतः ॥ ५७ ॥
तीर्णस्तत् पाण्डवो राजन् यत् पुरा नावबुध्यसे ।
उच्यमानो महाराज बन्धुभिर्हितकाङ्क्षिभिः ॥ ५८ ॥
तदिदं समनुप्राप्तं व्यसनं सुमहात्ययम् ।

जिससे आपके पुत्रोंने विजयकी आशा लगा रक्खी थी, जो वैरका मुख बना हुआ था, उससे पाण्डुपुत्र अर्जुन पार हो गये। महाराज ! पहले आपने हितैषी बन्धुओंके कहनेपर भी जिसकी ओर ध्यान नहीं दिया, वही यह महान् विनाशकारी संकट प्राप्त हुआ है ॥ ५७-५८½ ॥

पुत्राणां राज्यकामानां त्वया राजन् हितैषिणा ॥ ५९ ॥
अहितान्येव चीर्णानि तेषां तत् फलमागतम् ॥ ६० ॥

राजन् ! आपने राज्यकी कामना रखनेवाले अपने पुत्रोंके हितकी इच्छा रखते हुए सदा उन पाण्डवोंके अहित ही किये हैं; आपके उन्हीं कर्मोंका यह फल प्राप्त हुआ है ॥५९-६०॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संजयवाक्ये पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संजय-वाक्यविषयक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

कौरवोंद्वारा मारे गये प्रधान-प्रधान पाण्डव-पक्षके वीरोंका परिचय

धृतराष्ट्र उवाच

आख्याता मामकास्तात निहता युधि पाण्डवैः ।
हतांश्च पाण्डवेयानां मामकैर्ब्रूहि संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—तात संजय ! तुमने युद्धमें पाण्डवोंद्वारा मारे गये मेरे पक्षके वीरोंके नाम बताये हैं। अब मेरे योद्धाओंद्वारा मारे गये पाण्डव-योद्धाओंका परिचय दो ॥ १ ॥

संजय उवाच

कुन्तयो युधि विक्रान्ता महासत्त्वा महाबलाः ।
सानुबन्धाः सहामात्या गाङ्गेयेन निपातिताः ॥ २ ॥

संजयने कहा—राजन् ! अत्यन्त धीर, महान् बलवान् और पराक्रमी जो कुन्तिभोजदेशके योद्धा थे, उन्हें गङ्गा-नन्दन भीष्मने मन्त्रियों तथा सगे-सम्बन्धियोंसहित मार गिराया ॥ २ ॥

नारायणा बलभद्राः शूराश्च शतशोऽपरे ।
अनुरक्ताश्च वीरेण भीष्मेण युधि पातिताः ॥ ३ ॥

पाण्डवोंमें अनुराग रखनेवाले जो नारायण और बलभद्र नामवाले सैकड़ों शूरवीर थे, उन्हें भी वीरवर भीष्मने युद्धमें धराशायी कर दिया ॥ ३ ॥

समः किरीटिना संख्ये वीर्येण च बलेन च ।
सत्यजित् सत्यसंधेन द्रोणेन निहतो युधि ॥ ४ ॥

सत्यजित् संग्राममें किरीटधारी अर्जुनके समान बल और पराक्रमसे सम्पन्न था, जिसे युद्धस्थलमें सत्यप्रतिज्ञ द्रोणाचार्यने मार डाला ॥ ४ ॥

पञ्चालानां महेष्वासाः सर्वे युद्धविशारदाः ।
द्रोणेन सह संगम्य गता वैवस्वतक्षयम् ॥ ५ ॥

युद्धकी कलामें कुशल सम्पूर्ण पाञ्चाल महाधनुर्धर द्रोणाचार्यसे टक्कर लेकर यमलोकमें जा पहुँचे हैं ॥ ५ ॥

तथा विराटद्रुपदौ वृद्धौ सहसुतौ नृपौ ।
पराक्रमन्तौ मित्रार्थे द्रोणेन निहतौ रणे ॥ ६ ॥

मित्रके लिये पराक्रम करनेवाले बूढ़े राजा विराट और द्रुपद अपने पुत्रोंसहित द्रोणाचार्यके द्वारा रणभूमिमें मारे गये हैं ॥ ६ ॥

यो बाल एव समरे सम्मितः सव्यसाचिना ।
केशवेन च दुर्धर्षो बलदेवेन वा विभो ॥ ७ ॥
परेषां कदनं कृत्वा महारथविशारदः ।
परिवार्य महामात्रैः षड्भिः परमकैः रथैः ॥ ८ ॥
अशक्नुवद्भिर्बीभत्सुमभिमन्युर्निपातितः ।

जो बाल्यावस्थामें ही दुर्धर्ष वीर था और सव्यसाची अर्जुन, भगवान् श्रीकृष्ण अथवा बलदेवजीके समान समझा जाता था तथा जो महान् रथयुद्धमें विशेष कुशल था, वह अभिमन्यु शत्रुओंका संहार करके छः बड़े-बड़े महारथियोंद्वारा, जिनका अर्जुनपर वश नहीं चलता था, चारों ओरसे घेरकर मार डाला गया ॥ ७-८½ ॥

कृतं तं विरथं वीरं क्षत्रधर्मे व्यवस्थितम् ॥ ९ ॥
दौःशासनिर्महाराज सौभद्रं हतवान् रणे ।

महाराज ! क्षत्रिय-धर्ममें तत्पर रहनेवाला वीर सुभद्राकुमार अभिमन्यु रथहीन कर दिया गया था, उस अवस्थामें दुःशासनके पुत्रने उसे रणभूमिमें मारा था ॥ ९½ ॥

सपत्नानां निहन्ता च महत्या सेनया वृतः ॥ १० ॥
अम्बष्ठस्य सुतः श्रीमान् मित्रहेतोः पराक्रमन् ।
आसाद्य लक्ष्मणं वीरं दुर्योधनसुतं रणे ॥ ११ ॥
सुमहत् कदनं कृत्वा गतो वैवस्वतक्षयम् ।

शत्रुहन्ता श्रीमान् अम्बष्ठपुत्र अपनी विशाल सेनासे घिरकर मित्रोंके लिये पराक्रम दिखा रहा था । वह शत्रुसेनाका महान् संहार करके रणभूमिमें दुर्योधनके वीर पुत्र लक्ष्मणसे टक्कर ले यमलोकमें जा पहुँचा ॥ १०-११½ ॥

बृहन्तः सुमहेष्वासः कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ॥ १२ ॥
दुःशासनेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ।

अस्त्र-विद्याके विशेषज्ञ रणदुर्मद महाधनुर्धर बृहन्तको दुःशासनने बलपूर्वक यमलोक पहुँचाया था ॥ १२½ ॥

मणिमान् दण्डधारश्च राजानौ युद्धदुर्मदौ ॥ १३ ॥
पराक्रमन्तौ मित्रार्थे द्रोणेन युधि पातितौ ।

युद्धमें उन्मत्त होकर जूझनेवाले राजा मणिमान् और दण्डधार मित्रोंके लिये पराक्रम दिखाते थे । उन दोनोंको द्रोणाचार्यने युद्धमें मार गिराया है ॥ १३½ ॥

अंशुमान् भोजराजस्तु सहसैन्यो महारथः ॥ १४ ॥
भारद्वाजेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ।

सेनासहित भोजराज महारथी अंशुमान्को भरद्वाजनन्दन द्रोणने पराक्रम करके यमलोक पहुँचाया है ॥ १४½ ॥

सामुद्रश्चित्रसेनश्च सह पुत्रेण भारत ॥ १५ ॥
समुद्रसेनेन बलाद् गमितो यमसादनम् ।

भारत ! समुद्रतटवर्ती राज्यके अधिपति चित्रसेन अपने पुत्रके साथ युद्धमें आकर समुद्रसेनके द्वारा बलपूर्वक यमलोक भेज दिया गया ॥ १५½ ॥

अनूपवासी नीलश्च व्याघ्रदत्तश्च वीर्यवान् ॥ १६ ॥
अश्वत्थाम्ना विकर्णेन गमितो यमसादनम् ।

समुद्र-तटवासी नील और पराक्रमी व्याघ्रदत्त इन दोनोंको क्रमशः अश्वत्थामा और विकर्णने यमलोक पहुँचा दिया ॥

चित्रायुधश्चित्रयोधी कृत्वा च कदनं महत् ॥ १७ ॥
चित्रमार्गेण विक्रम्य विकर्णेन हतो मृधे ।

विचित्र युद्ध करनेवाले चित्रायुध समरमें विचित्र रीतिसे पराक्रम करते हुए कौरव-सेनाका महान् संहार करके अन्तमें विकर्णके हाथसे मारे गये ॥ १७½ ॥

वृकोदरसमो युद्धे वृतः कैकेययोधिभिः ॥ १८ ॥
कैकेयेन च विक्रम्य भ्रात्रा भ्राता निपातितः ।

केकयदेशीय योद्धाओंसे घिरे हुए भीमके समान पराक्रमी केकयराजकुमारको उन्हींके भाई दूसरे केकयराजकुमारने बलपूर्वक मार गिराया ॥ १८½ ॥

जनमेजयो गदायोधी पर्वतीयः प्रतापवान् ॥ १९ ॥
दुर्मुखेन महाराज तव पुत्रेण पातितः ।

महाराज ! प्रतापी पर्वतीय राजा जनमेजय गदायुद्धमें कुशल थे । उन्हें आपके पुत्र दुर्मुखने धराशायी कर दिया ॥

रोचमानौ नरव्याघ्रौ रोचमानौ ग्रहाविव ॥ २० ॥
द्रोणेन युगपद् राजन् दिवं सम्प्रापितौ शरैः ।

राजन् ! दो चमकते हुए ग्रहोंके समान नरश्रेष्ठ रोचमान, जो एक ही नामके दो भाई थे, द्रोणाचार्यके द्वारा बाणोंसे एक साथ ही स्वर्गलोक पहुँचा दिये गये ॥ २०½ ॥

नृपाश्च प्रतियुध्यन्तः पराक्रान्ता विशाम्पते ॥ २१ ॥
कृत्वा नसुकरं कर्म गता वैवस्वतक्षयम् ।

प्रजानाथ ! और भी बहुत-से पराक्रमी नरेश आपकी

सेनाका सामना करते हुए दुष्कर पराक्रम करके यमलोकमें जा पहुँचे हैं ॥ २१½ ॥

पुरुजित् कुन्तिभोजश्च मातुलौ सव्यसाचिनः॥ २२ ॥
संग्रामनिर्जिताँल्लोकान् गमितौ द्रोणसायकैः ।

पुरुजित् और कुन्तिभोज दोनों सव्यसाची अर्जुनके मामा थे। द्रोणाचार्यके सायकोंने उन्हें भी उन लोकोंमें पहुँचा दिया, जो संग्राममें मारे जानेवाले वीरोंको प्राप्त होते हैं ॥ २२½ ॥

अभिभूः काशिराजश्च काशिकैर्बहुभिर्वृतः ॥ २३ ॥
वसुदानस्य पुत्रेण न्यासितो देहमाहवे ।

काशिराज अभिभू बहुतेरे काशीनिवासी योद्धाओंसे घिरे हुए थे। वसुदानके पुत्रने युद्धस्थलमें उनसे उनके शरीरका परित्याग करवा दिया ॥ २३½ ॥

अमितौजा युधामन्युरुत्तमौजाश्च वीर्यवान् ॥ २४ ॥
निहत्य शतशः शूरानस्मदीयैर्निपातिताः ।

अमितौजा, युधामन्यु तथा पराक्रमी उत्तमौजा ये सैकड़ों शूरवीरोंका संहार करके हमारे सैनिकोंद्वारा मारे गये ॥२४½॥

मित्रवर्मा च पाञ्चाल्यः क्षत्रधर्मा च भारत ॥ २५ ॥
द्रोणेन परमेष्वासौ गमितौ यमसादनम् ।

भारत ! पाञ्चालयोद्धा मित्रवर्मा और क्षत्रधर्मा महाधनुर्धर थे। उन्हें भी द्रोणाचार्यने यमलोक पहुँचा दिया ॥ २५½ ॥

शिखण्डितनयो युद्धे क्षत्रदेवो युधां पतिः ॥ २६ ॥
लक्ष्मणेन हतो राजंस्तव पौत्रेण भारत ।

भरतवंशी नरेश ! आपके पौत्र लक्ष्मणने युद्धमें योद्धाओं-के स्वामी क्षत्रदेवको, जो शिखण्डीका पुत्र था, मार डाला ॥

सुचित्रश्चित्रवर्मा च पितापुत्रौ महारथौ ॥ २७ ॥
प्रचरन्तौ महावीरौ द्रोणेन निहतौ रणे ।

सुचित्र और चित्रवर्मा ये दो महावीर महारथी परस्पर पिता-पुत्र थे। रणभूमिमें विचरते हुए इन दोनोंको द्रोणाचार्यने मार डाला।

वार्द्धक्षेमिर्महाराज समुद्र इव पर्वणि ॥ २८ ॥
आयुधक्षयमासाद्य प्रशान्तिं परमां गतः ।

महाराज ! जैसे पूर्णिमाके दिन समुद्र उमड़ पड़ता है, उसी प्रकार वृद्धक्षेमका पुत्र भी युद्धमें उद्धत हो उठा था, परंतु उसके सारे अस्त्र-शस्त्र नष्ट हो गये थे, इसलिये वह प्राण-शून्य हो सदाके लिये परम शान्त हो गया ॥ २८½ ॥

सेनाबिन्दुसुतः श्रेष्ठः शात्रवान् प्रहरन् युधि ॥ २९ ॥
बाह्लिकेन महाराज कौरवेन्द्रेण पातितः ।

राजाधिराज ! सेनाबिन्दुका श्रेष्ठ पुत्र रणभूमिमें शत्रुओंपर प्रहार कर रहा था। उस समय कौरवेन्द्र बाह्लीकने उसे मार गिराया॥

धृष्टकेतुर्महाराज चेदीनां प्रवरो रथः ॥ ३० ॥
कृत्वा नसुकरं कर्म गतो वैवस्वतक्षयम् ।

महाराज ! चेदिदेशका श्रेष्ठ रथी धृष्टकेतु भी युद्धमें दुष्कर कर्म करके यमलोकका पथिक हो गया ॥ ३०½ ॥

तथा सत्यधृतिर्वीरः कृत्वा कदनमाहवे॥ ३१ ॥
पाण्डवार्थे पराक्रान्तो गमितो यमसादनम् ।

पाण्डवोंके लिये पराक्रम प्रकट करनेवाले वीर सत्य-धृतिने भी रणभूमिमें शत्रुओंका संहार करके यमलोककी राह ली॥

सेनाबिन्दुः कुरुश्रेष्ठ कृत्वा कदनमाहवे ॥ ३२ ॥
पुत्रस्तु शिशुपालस्य सुकेतुः पृथिवीपतिः ।
निहत्य शात्रवान् संख्ये द्रोणेन निहतो युधि ॥ ३३ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! सेनाबिन्दु भी युद्धमें शत्रुओंका संहार करके कालके गालमें चला गया। शिशुपालका पुत्र राजा सुकेतु भी युद्धमें शत्रुसैनिकोंका वध करके स्वयं भी द्रोणाचार्य-के हाथसे मारा गया ॥ ३२-३३ ॥

तथा सत्यधृतिर्वीरो मदिराश्वश्च वीर्यवान् ।
सूर्यदत्तश्च विक्रान्तो निहतो द्रोणसायकैः ॥ ३४ ॥

इसी प्रकार वीर सत्यधृति, पराक्रमी मदिराश्व और बल-विक्रमशाली सूर्यदत्त भी द्रोणाचार्यके बाणोंसे मारे गये हैं ॥

श्रेणिमांश्च महाराज युध्यमानः पराक्रमी ।
कृत्वा नसुकरं कर्म गतो वैवस्वतक्षयम् ॥ ३५ ॥

महाराज ! पराक्रमपूर्वक युद्ध करनेवाले श्रेणिमान्ने युद्धमें दुष्कर कर्म करके यमलोकके मार्गका आश्रय लिया है ॥

तथैव युधि विक्रान्तो मागधः परमास्त्रवित् ।
भीष्मेण निहतो राजञ्शेतेऽद्य परवीरहा ॥ ३६ ॥

राजन् ! इसी प्रकार शत्रुवीरोंका संहार करनेवाला और उत्तम अस्त्रोंका ज्ञाता पराक्रमी मागध वीर भी भीष्मजीके हाथसे मारा जाकर आज रणभूमिमें सो रहा है ॥ ३६ ॥

विराटपुत्रः शङ्खस्तु उत्तरश्च महारथः ।
कुर्वन्तौ सुमहत् कर्म गतौ वैवस्वतक्षयम् ॥ ३७ ॥

राजा विराटके पुत्र शङ्ख और महारथी उत्तर ये दोनों युद्धमें महान् कर्म करके यमलोकमें जा पहुँचे हैं ॥ ३७ ॥

वसुदानश्च कदनं कुर्वाणोऽतीव संयुगे ।
भारद्वाजेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ ३८ ॥

वसुदान भी युद्धस्थलमें बड़ा भारी संहार मचा रहा था। परंतु भरद्वाजनन्दन द्रोणने पराक्रम करके उसे यमलोक पहुँचा दिया ॥ ३८ ॥

(पाण्ड्यराजश्च विक्रान्तो बलवान् बाहुशालिना ।
अश्वत्थाम्ना हतस्तत्र गमितो वै यमक्षयम् ॥)

अपने बाहुबलसे सुशोभित होनेवाले अश्वत्थामाने बलवान् एवं पराक्रमी पाण्ड्यराजको मारकर यमलोक पहुँचा दिया ॥

एते चान्ये च बहवः पाण्डवानां महारथाः ।

हता द्रोणेन विक्रम्य यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ३९ ॥

ये तथा और भी बहुतसे पाण्डव महारथी, जिनके बारेमें आप मुझसे पूछ रहे थे, द्रोणाचार्यके द्वारा बलपूर्वक मार डाले गये ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संजयवाक्ये षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संजय-वाक्यविषयक छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ४० श्लोक हैं)

सप्तमोऽध्यायः

कौरवपक्षके जीवित योद्धाओंका वर्णन और धृतराष्ट्रकी मूर्छा

धृतराष्ट्र उवाच

मामकस्यास्य सैन्यस्य हतोत्सेकस्य संजय।
अवशेषं न पश्यामि ककुदे मृदिते सति ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—संजय ! प्रधान पुरुष भीष्म, द्रोण और कर्ण आदिके मारे जानेसे मेरी सेनाका घमंड चूर-चूर हो गया है। मैं देखता हूँ, अब यह बच नहीं सकेगी ॥ १ ॥

तौ हि वीरौ महेष्वासौ मदर्थे कुरुसत्तमौ।
भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा नार्थो वै जीवितेऽसति॥ २ ॥

वे दोनों कुरुश्रेष्ठ महाधनुर्धर वीर भीष्म और द्रोणाचार्य मेरे लिये मारे गये; यह सुन लेनेपर इस अधम जीवनको रखनेका अब कोई प्रयोजन नहीं है ॥ २ ॥

न च मृष्यामि राधेयं हतमाहवशोभनम्।
यस्य बाह्वोर्बलं तुल्यं कुञ्जराणां शतं शतम् ॥ ३ ॥

जिसकी दोनों भुजाओंमें समानरूपसे दस-दस हजार हाथियोंका बल था, युद्धमें शोभा पानेवाले उस राधापुत्र कर्णके मारे जानेका समाचार सुनकर मैं इस शोकको सहन नहीं कर पाता हूँ ॥ ३ ॥

हतप्रवरसैन्यं मे यथा शंससि संजय।
अहतानपि मे शंस येऽत्र जीवन्ति केचन ॥ ४ ॥

संजय ! जैसा कि तुम कह रहे हो कि मेरी सेनाके प्रमुख वीर मारे जा चुके हैं, उसी प्रकार यह भी बताओ कि कौन-कौन वीर नहीं मारे गये हैं। इस सेनामें जो कोई भी श्रेष्ठ वीर जीवित हैं, उनका परिचय दो ॥ ४ ॥

एतेषु हि मृतेष्वद्य ये त्वया परिकीर्तिताः।
येऽपि जीवन्ति ते सर्वे मृता इति मतिर्मम ॥ ५ ॥

आज तुमने जिन लोगोंके नाम लिये हैं, उनकी मृत्यु हो जानेपर तो जो भी अब जीवित हैं वे सभी मरे हुएके ही समान हैं, ऐसा मेरा विश्वास है ॥ ५ ॥

संजय उवाच

यस्मिन् महास्त्राणि समर्पितानि
चित्राणि शुभ्राणि चतुर्विधानि।
दिव्यानि राजन् विहितानि चैव
द्रोणेन वीरे द्विजसत्तमेन ॥ ६ ॥
महारथः कृतिमान् क्षिप्रहस्तो
दृढायुधो दृढमुष्टिर्दृढेषुः।
स वीर्यवान् द्रोणपुत्रस्तरस्वी
व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥ ७ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! द्विजश्रेष्ठ द्रोणाचार्यने जिस वीरको चित्र (अद्भुत), शुभ्र (प्रकाशमान), दिव्य तथा धनुर्वेदोक्त चार प्रकारके महान् अस्त्र समर्पित किये थे, जो सफल प्रयत्न करनेवाला महारथी वीर है, जिसके हाथ बड़ी शीघ्रतासे चलते हैं, जिसका धनुष, जिसकी मुट्ठी और जिसके बाण सभी सुदृढ़ हैं, वह वेगशाली तथा पराक्रमी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा आपके लिये युद्धकी इच्छा रखकर समरभूमिमें डटा हुआ है ॥ ६-७ ॥

आनर्तवासी हृदिकात्मजोऽसौ
महारथः सात्वतानां वरिष्ठः।
स्वयं भोजः कृतवर्मा कृतास्त्रो
व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥ ८ ॥

सात्वतकुलका श्रेष्ठ महारथी, आनर्तनिवासी, भोजवंशी अस्त्रवेत्ता, हृदिकपुत्र कृतवर्मा भी आपके लिये युद्ध करनेको दृढ़ निश्चयके साथ डटा हुआ है ॥ ८ ॥

आर्तायनिः समरे दुष्प्रकम्प्यः
सेनाग्रणीः प्रथमस्तावकानाम्।
यः स्वस्रीयान् पाण्डवेयान् विसृज्य
सत्यां वाचं स्वां चिकीर्षुस्तरस्वी॥ ९ ॥
तेजोवधं सूतपुत्रस्य संख्ये
प्रतिश्रुत्याजातशत्रोः पुरस्तात्।
दुराधर्षः शक्रसमानवीर्यः
शल्यः स्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥१०॥

जिन्हें युद्धमें विचलित करना अत्यन्त कठिन है, जो आपके सैनिकोंके प्रथम सेनापति एवं वेगशाली वीर हैं, जो अपनी बात सच्ची कर दिखानेके लिये अपने सगे भानजे पाण्डवोंको छोड़कर तथा अज्ञातशत्रु युधिष्ठिरके सामने युद्धस्थलमें सूतपुत्र कर्णके तेज और उत्साहको नष्ट करनेकी प्रतिज्ञा करके आपके पक्षमें चले आये थे, वे बलवान् दुर्धर्ष तथा इन्द्रके समान पराक्रमी ऋतायनपुत्र शल्य आपके लिये युद्ध करनेको तैयार हैं ॥

आजानेयैः सैन्धवैः पर्वतीयै-
र्नदीजकाम्बोजवनायुजैश्च ।
गान्धारराजः स्वबलेन युक्तो
व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥ ११ ॥

अच्छी नस्लके सिंधी, पहाड़ी, दरियाई, काबुली और बनायु देशके बहुसंख्यक घोड़ों तथा अपनी सेनाके साथ गान्धारराज शकुनि आपके लिये युद्ध करनेको डटा हुआ है॥

शारद्वतो गौतमश्चापि राजन्
महाबाहुर्बहुचित्रास्त्रयोधी ।
धनुश्चित्रं सुमहद् भारसाहं
व्यवस्थितो योद्धुकामः प्रगृह्य ॥ १२ ॥

राजन् ! अनेक प्रकारके विचित्र अस्त्रोंद्वारा युद्ध करनेवाले, गौतमवंशीय शरद्वान्के पुत्र महाबाहु कृपाचार्य भी महान् भार सहन करनेमें समर्थ विचित्र धनुष हाथमें लेकर आपके लिये युद्ध करनेको तैयार हैं ॥ १२ ॥

महारथः केकयराजपुत्रः
सदश्वयुक्तं च पताकिनं च ।
रथं समारुह्य कुरुप्रवीर
व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥ १३ ॥

कुरुकुलके श्रेष्ठ वीर ! महारथी केकयराजकुमार भी सुन्दर घोड़ोंसे जुते हुए, ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित रथपर आरूढ़ हो आपके लिये युद्ध करनेकी इच्छासे डटा हुआ है ॥

तथा सुतस्ते ज्वलनार्कवर्णं
रथं समास्थाय कुरुप्रवीरः ।
व्यवस्थितः पुरुमित्रो नरेन्द्र
व्यभ्रे सूर्यो भ्राजमानो यथा खे ॥ १४ ॥

नरेन्द्र ! कुरुकुलका प्रमुख वीर आपका पुत्र पुरुमित्र अग्नि और सूर्यके समान कान्तिमान् रथपर आरूढ़ हो बिना बादलोंके आकाशमें सूर्यके समान प्रकाशित होता हुआ युद्धके लिये खड़ा है ॥ १४ ॥

दुर्योधनो नागकुलस्य मध्ये
व्यवस्थितः सिंह इवावभासे ।
रथेन जाम्बूनदभूषणेन
व्यवस्थितः समरे योत्स्यमानः ॥ १५ ॥

हाथियोंकी सेनाके बीच जो अपने सुवर्णभूषित रथके द्वारा उपस्थित हो सिंहके समान सुशोभित होता है, वह राजा दुर्योधन भी समराङ्गणमें जूझनेके लिये खड़ा है ॥ १५ ॥

स राजमध्ये पुरुषप्रवीरो
रराज जाम्बूनदचित्रवर्मा ।
पद्मप्रभो वह्निरिवाल्पधूमो
मेघान्तरे सूर्य इव प्रकाशः ॥ १६ ॥

पुरुषोंमें प्रधान वीर और कमलके समान कान्तिमान् दुर्योधन सोनेका बना हुआ विचित्र कवच धारण करके राजाओंके समुदायमें अल्प धूमवाली अग्नि एवं बादलोंके बीचमें सूर्यके समान प्रकाशित हो रहा है ॥ १६ ॥

तथा सुषेणोऽप्यसिचर्मपाणि-
स्तवात्मजः सत्यसेनश्च वीरः ।
व्यवस्थितौ चित्रसेनेन सार्धं
हृष्टात्मानौ समरे योद्धुकामौ ॥ १७ ॥

हाथमें ढाल-तलवार लिये हुए आपके वीर पुत्र सुषेण और सत्यसेन मनमें हर्ष और उत्साह लिये समरमें जूझनेकी इच्छा रखकर चित्रसेनके साथ खड़े हैं ॥ १७ ॥

ह्रीनिषेवो भारत राजपुत्र
उग्रायुधः क्षणभोजी सुदर्शः ।
जारासंधिः प्रथमश्चादृढश्च
चित्रायुधः श्रुतवर्मा जयश्च ॥ १८ ॥
शलश्च सत्यव्रतदुःशलौ च
व्यवस्थिताः सहसैन्या नराग्र्याः ।

भारत ! लज्जाशील भयंकर आयुधोंवाला शीघ्रभोजी और देखनेमें सुन्दर जरासंधका प्रथम पुत्र राजकुमार अदृढ़, चित्रायुध, श्रुतवर्मा, जय, शल, सत्यव्रत और दुःशल—ये सभी श्रेष्ठ पुरुष युद्धके लिये अपनी सेनाओंके साथ खड़े हैं ॥

कैतव्यानामधिपः शूरमानी
रणे रणे शत्रुहा राजपुत्रः ॥ १९ ॥
रथी हयी नागपत्तिप्रयायी
व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ।

प्रत्येक युद्धमें शत्रुओंका संहार करनेवाला और अपनेको शूरवीर माननेवाला एक राजकुमार, जो जुआरिओंका सरदार है तथा रथ, घोड़े, हाथी और पैदलोंकी चतुरङ्गिणी सेना साथ लेकर चलता है, आपके लिये युद्ध करनेको तैयार खड़ा है॥

वीरः श्रुतायुश्च धृतायुधश्च
चित्राङ्गदश्चित्रसेनश्च वीरः ॥ २० ॥
व्यवस्थिता योद्धुकामा नराग्र्याः
प्रहारिणो मानिनः सत्यसंधाः ।

वीर श्रुतायु, धृतायुध, चित्राङ्गद और वीर चित्रसेन—ये सभी प्रहारकुशल स्वाभिमानी और सत्यप्रतिज्ञ नरश्रेष्ठ आपके लिये युद्ध करनेको तैयार खड़े हैं ॥ २०½ ॥

कर्णात्मजः सत्यसंधो महात्मा
व्यवस्थितः समरे योद्धुकामः ॥ २१ ॥
अथापरौ कर्णसुतौ वरास्त्रौ
व्यवस्थितौ लघुहस्तौ नरेन्द्र ।
बलं महद् दुर्भिदमल्पधैर्यैः
समाश्रितौ योत्स्यमानौ त्वदर्थे ॥ २२ ॥

नरेन्द्र ! कर्णका महामना एवं सत्यप्रतिज्ञ पुत्र समराङ्गणमें युद्धकी इच्छासे डटा हुआ है। इसके सिवा कर्णके दो पुत्र और हैं, जो उत्तम अस्त्रोंके ज्ञाता और शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले हैं, वे भी आपकी ओरसे युद्धके लिये तैयार खड़े हैं। इन दोनोंने ऐसी विशाल सेनाको अपने साथ ले रक्खा है, जिसका अल्प धैर्यवाले वीरोंके लिये भेदन करना कठिन है ॥

एतैश्च मुख्यैरपरैश्च राजन्
योधप्रवीरैरमितप्रभावैः ।
व्यवस्थितो नागकुलस्य मध्ये
यथा महेन्द्रः कुरुराजो जयाय ॥ २३ ॥

राजन् ! इनसे तथा अन्य अनन्त प्रभावशाली श्रेष्ठ एवं प्रधान योद्धाओंसे घिरा हुआ कुरुराज दुर्योधन हाथियोंके समूहमें देवराज इन्द्रके समान विजयके लिये खड़ा है ॥२३॥

धृतराष्ट्र उवाच

आख्याता जीवमाना येऽपरे सैन्या यथायथम् ।
इतीदमवगच्छामि व्यक्तमर्थाभिपत्तितः ॥ २४ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—संजय ! अपने पक्षके जो जीवित योद्धा हैं, एवं उनसे भिन्न जो मारे जा चुके हैं, उनका तुमने यथार्थरूपसे वर्णन कर दिया। इससे जो परिणाम होनेवाला है, उसे अर्थापत्ति प्रमाणके द्वारा मैं स्पष्टरूपसे समझ रहा हूँ (मेरे पक्षकी हार सुनिश्चित है) ॥ २४ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवं ब्रुवन्नेव तदा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
हतप्रवीरं विध्वस्तं किंचिच्छेषं स्वकं बलम् ॥ २५ ॥
श्रुत्वा व्यामोहमागच्छच्छोकव्याकुलितेन्द्रियः ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! यह कहते हुए ही अम्बिकानन्दन धृतराष्ट्र उस समय यह सुनकर कि अपनी सेनाके प्रमुख वीर मारे गये, अधिकांश सेना नष्ट हो गयी और बहुत थोड़ी शेष रह गयी है, मूर्छित हो गये। उनकी इन्द्रियाँ शोकसे व्याकुल हो उठीं ॥ २५½ ॥

मुह्यमानोऽब्रवीच्चापि मुहूर्तं तिष्ठ संजय ॥ २६ ॥
व्याकुलं मे मनस्तात श्रुत्वा सुमहदप्रियम् ।
मनो मुह्यति चाङ्गानि न च शक्नोमि धारितुम् ॥ २७ ॥

वे अचेत होते-होते बोले—'संजय ! दो घड़ी ठहर जाओ। तात ! यह महान् अप्रिय संवाद सुनकर मेरा मन व्याकुल हो गया है, चेतना लुप्त-सी हो रही है और मैं अपने अङ्गोंको धारण करनेमें असमर्थ हो रहा हूँ' ॥ २६-२७ ॥

इत्येवमुक्त्वा वचनं धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
भ्रान्तचित्तस्ततः सोऽथ बभूव जगतीपतिः ॥ २८ ॥

ऐसा कहकर अम्बिकानन्दन राजा धृतराष्ट्र भ्रान्तचित्त (मूर्छित) हो गये ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संजयवाक्यं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संजय-वाक्यविषयक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका विलाप

जनमेजय उवाच

श्रुत्वा कर्णं हतं युद्धे पुत्रांश्चैव निपातितान् ।
नरेन्द्रः किंचिदाश्वस्तो द्विजश्रेष्ठ किमब्रवीत् ॥ १ ॥

जनमेजय बोले—द्विजश्रेष्ठ ! युद्धमें कर्ण मारा गया और पुत्र भी धराशायी हो गये, यह सुनकर अचेत हुए राजा धृतराष्ट्रको जब पुनः कुछ चेत हुआ, तब उन्होंने क्या कहा ? ॥ १ ॥

प्राप्तवान् परमं दुःखं पुत्रव्यसनजं महत् ।
तस्मिन् यदुक्तवान् काले तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥२॥

धृतराष्ट्रको अपने पुत्रोंके मारे जानेके कारण बड़ा भारी दुःख प्राप्त हुआ था, उस समय उन्होंने जो कुछ कहा, उसे मैं पूछ रहा हूँ; आप मुझे बताइये ॥ २ ॥

वैशम्पायन उवाच

श्रुत्वा कर्णस्य निधनमश्रद्धेयमिवाद्भुतम् ।
भूतसम्मोहनं भीमं मेरोः संसर्पणं यथा ॥ ३ ॥
चित्तमोहमिवायुक्तं भार्गवस्य महामतेः ।
पराजयमिवेन्द्रस्य द्विषद्भ्यो भीमकर्मणः ॥ ४ ॥
दिवः प्रपतनं भानोरुर्व्यामिव महाद्युतेः ।
संशोषणमिवाचिन्त्यं समुद्रस्याक्षयाम्भसः ॥ ५ ॥
महीवियद्दिगम्बूनां सर्वनाशमिवाद्भुतम् ।
कर्मणोरिव वैफल्यमुभयोः पुण्यपापयोः ॥ ६ ॥
संचिन्त्य निपुणं बुद्ध्या धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।
नेदमस्तीति संचिन्त्य कर्णस्य समरे वधम् ॥ ७ ॥
प्राणिनामेवमन्येषां स्यादपीति विनाशनम् ।
शोकाग्निना दह्यमानो धम्यमान इवाशये ॥ ८ ॥
विस्रस्ताङ्गः श्वसन् दीनो हाहेत्युक्त्वा सुदुःखितः ।
विललाप महाराज धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ॥ ९ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! कर्णका मारा जाना अद्भुत और अविश्वसनीय-सा लग रहा था। वह भयंकर कर्म उसी प्रकार समस्त प्राणियोंको मोहमें डालनेवाला था, जैसे मेरु पर्वतका अपने स्थानसे हटकर अन्यत्र चला जाना।

परम बुद्धिमान् भृगुनन्दन परशुरामजीके चित्तमें मोह उत्पन्न होना जैसे सम्भव नहीं है, जैसे भयंकर कर्म करनेवाले देवराज इन्द्रका अपने शत्रुओंसे पराजित होना असम्भव है, जैसे महातेजस्वी सूर्यके आकाशसे पृथ्वीपर गिरने और अक्षय जलवाले समुद्रके सूख जानेकी बात मनमें सोची तक नहीं जा सकती; पृथ्वी, आकाश, दिशा और जलका सर्वनाश होना एवं पाप तथा पुण्य—दोनों प्रकारके कर्मोंका निष्फल हो जाना जैसे आश्चर्यजनक घटना है; उसी प्रकार समरमें कर्ण-वधरूपी असम्भव कर्मको भी सम्भव हुआ सुनकर और उसपर बुद्धि-द्वारा अच्छी तरह विचार करके राजा धृतराष्ट्र यह सोचने लगे कि 'अब यह कौरवदल बच नहीं सकता । कर्णकी ही भाँति अन्य प्राणियोंका भी विनाश हो सकता है ।' यह सब सोचते ही उनके हृदयमें शोककी आग प्रज्वलित हो उठी और वे उससे तपने एवं दग्ध-से होने लगे। उनके सारे अङ्ग शिथिल हो गये । महाराज ! वे अम्बिकानन्दन धृतराष्ट्र दीन-भावसे लंबी साँस खींचने और अत्यन्त दुखी हो 'हाय ! हाय !' कहकर विलाप करने लगे ॥ ३—९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

संजयाधिरथिर्वीरः सिंहद्विरदविक्रमः ।
वृषभप्रतिमस्कन्धो वृषभाक्षगतिश्चरन् ॥ १० ॥
वृषभो वृषभस्येव यो युद्धे न निवर्तते ।
शत्रोरपि महेन्द्रस्य वज्रसंहननो युवा ॥ ११ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! अधिरथका वीर पुत्र कर्ण सिंह और हाथीके समान पराक्रमी था। उसके कंधे साँड़के कंधोंके समान हृष्ट-पुष्ट थे। उसकी आँखें और चाल-ढाल भी साँड़के ही सदृश थीं। वह स्वयं भी दानकी वर्षा करनेके कारण वृषभ-स्वरूप था। रणभूमिमें विचरता हुआ कर्ण इन्द्र-जैसे शत्रुसे पाला पड़नेपर भी साँड़के समान कभी युद्धसे पीछे नहीं हटता था। उसकी युवा-अवस्था थी। उसका शरीर इतना सुदृढ़ था, मानो वज्रसे गढ़ा गया हो ॥ १०-११ ॥

यस्य ज्यातलशब्देन शरवृष्टिरवेण च ।
रथाश्वनरमातङ्गा नावतिष्ठन्ति संयुगे ॥ १२ ॥

जिसकी प्रत्यञ्चाकी टंकार तथा बाणवर्षाके भयंकर शब्दसे भयभीत हो रथी, घुड़सवार, गजारोही और पैदल सैनिक युद्धमें सामने नहीं ठहर पाते थे ॥ १२ ॥

यमाश्रित्य महाबाहुं द्विषां जयकाङ्क्षया ।
दुर्योधनोऽकरोद् वैरं पाण्डुपुत्रैर्महारथैः ॥ १३ ॥

जिस महाबाहुका भरोसा करके शत्रुओंपर विजय पानेकी इच्छा रखते हुए दुर्योधनने महारथी पाण्डवोंके साथ वैर बाँध रक्खा था ॥ १३ ॥

स कथं रथिनां श्रेष्ठः कर्णः पार्थेन संयुगे ।
निहतः पुरुषव्याघ्रः प्रसह्यासह्यविक्रमः ॥ १४ ॥

जिसका पराक्रम शत्रुओंके लिये असह्य था, वह रथियोंमें श्रेष्ठ पुरुषसिंह कर्ण युद्धस्थलमें कुन्तीपुत्र अर्जुनके द्वारा बलपूर्वक कैसे मारा गया ? ॥ १४ ॥

यो नामन्यत वै नित्यमच्युतं च धनंजयम् ।
न वृष्णीन् सहितानन्यान् स्वबाहुबलदर्पितः ॥ १५ ॥

जो अपने बाहुबलके घमंडमें भरकर श्रीकृष्णको, अर्जुनको तथा एक साथ आये हुए अन्यान्य वृष्णिवंशियोंको भी कभी कुछ नहीं समझता था ॥ १५ ॥

शार्ङ्गगाण्डीवधन्वानौ सहितावपराजितौ ।
अहं दिव्याद् रथादेकः पातयिष्यामि संयुगे ॥ १६ ॥
इति यः सततं मन्दमवोचल्लोभमोहितम् ।
दुर्योधनमवाचीनं राज्यकामुकमातुरम् ॥ १७ ॥

जो राज्यकी इच्छा रखनेवाले तथा चिन्तासे आतुर हो मुँह लटकाये बैठे हुए मेरे लोभमोहित मूर्ख पुत्र दुर्योधनसे सदा यही कहा करता था कि 'मैं अकेला ही युद्धस्थलमें शार्ङ्ग और गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले दोनों अपराजित वीर श्रीकृष्ण और अर्जुनको उनके दिव्यरथसे एक साथ ही मार गिराऊँगा' ॥ १६-१७ ॥

योऽजयत् सर्वकाम्बोजानावन्त्यान् केकयैः सह ।
गान्धारान् मद्रकान् मत्स्यांस्त्रिगर्तांस्तङ्गणाञ्शकान् ॥ १८ ॥
पञ्चालांश्च विदेहांश्च कुलिन्दान् काशिकोसलान् ।
सुह्मानङ्गांश्च वङ्गांश्च निषादान् पुण्ड्रचीरकान् ॥ १९ ॥
वत्सान् कलिङ्गांस्तरलानश्मकानृषिकानपि ।
(शबरान् परहूणांश्च प्रहूणान् सरलानपि ।
म्लेच्छराष्ट्राधिपांश्चैव दुर्गानाटविकांस्तथा ॥)
जित्वैतान् समरे वीरश्चक्रे बलिभृतः पुरा ॥ २० ॥

जिस वीरने पहले समस्त काम्बोज, आवन्त्य, केकय, गान्धार, मद्र, मत्स्य, त्रिगर्त, तङ्गण, शक, पाञ्चाल, विदेह, कुलिन्द, काशी, कोसल, सुह्म, अङ्ग, वङ्ग, निषाद, पुण्ड्र, चीरक, वत्स, कलिङ्ग, तरल, अश्मक तथा ऋषिक—इन सभी देशों तथा शबर, परहूण, प्रहूण और सरल जातिके लोगों, म्लेच्छ-राज्यके अधिपतियों तथा दुर्ग एवं वनोंमें रहनेवाले योद्धाओं-को समरभूमिमें जीतकर कर देनेवाला बना दिया था ॥ १८—२० ॥

शरव्रातैः सुनिशितैः सुतीक्ष्णैः कङ्कपत्रिभिः ।
(करमाहारयामास जित्वा सर्वान्नरींस्तथा ।)
दुर्योधनस्य वृद्ध्यर्थं राधेयो रथिनां वरः ॥ २१ ॥
दिव्यास्त्रविन्महातेजाः कर्णो वैकर्तनो वृषः ।
सेनागोपश्च स कथं शत्रुभिः परमास्त्रवित् ॥ २२ ॥
घातितः पाण्डवैः शूरैः समरे वीर्यशालिभिः ।

रथियोंमें श्रेष्ठ जिस राधापुत्रने दुर्योधनकी वृद्धिके लिये कङ्कपत्र-युक्त, तीखी धारवाले पैने बाण-समूहोंद्वारा समस्त

शत्रुओंको परास्त करके उनसे कर वसूल किया था, जो दिव्यास्त्रोंका ज्ञाता, उत्तम अस्त्रोंका जानकार और हमारी सेनाओंका रक्षक था, वह महातेजस्वी धर्मात्मा वैकर्तन कर्ण अपने शूरवीर एवं बलशाली शत्रु पाण्डवोंद्वारा कैसे मारा गया ? ॥ २१–२२½ ॥

वृषो महेन्द्रो देवेषु वृषः कर्णो नरेष्वपि ॥ २३ ॥
तृतीयमन्यं लोकेषु वृषं नैवानुशुश्रुम ।

देवताओंमें देवराज इन्द्रको वृष कहा गया है (क्योंकि वे जलकी वर्षा करते हैं), इसी प्रकार मनुष्योंमें भी कर्णको वृष कहा जाता था (क्योंकि वह याचकोंके लिये धनकी वर्षा करता था); इन दोके सिवा किसी तीसरे पुरुषको तीनों लोकोंमें वृष नाम दिया गया हो, यह मैंने नहीं सुना ॥२३½॥

उच्चैःश्रवा वरोऽश्वानां राज्ञां वैश्रवणो वरः ॥ २४ ॥
वरो महेन्द्रो देवानां कर्णः प्रहरतां वरः ।

जैसे घोड़ोंमें उच्चैःश्रवा, राजाओंमें कुबेर और देवताओंमें महेन्द्र श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार कर्ण योद्धाओंमें ऊँचा स्थान रखता था ॥ २४½ ॥

योऽजितः पार्थिवैः शूरैः समर्थैर्वीर्यशालिभिः ॥ २५ ॥
दुर्योधनस्य वृद्ध्यर्थं कृत्स्नामुर्वीमथाजयत् ।
यं लब्ध्वा मागधो राजा सान्त्वमानोऽथ सौहृदैः॥२६॥
अरौत्सीत् पार्थिवं क्षत्रमृते यादवकौरवान् ।
तं श्रुत्वा निहतं कर्णं द्वैरथे सव्यसाचिना ॥ २७ ॥
शोकार्णवे निमग्नोऽहं भिन्ना नौरिव सागरे ।

जो पराक्रमशाली, समर्थ एवं शूरवीर नरेशोंद्वारा भी कभी जीता न जा सका, जिसने दुर्योधनकी वृद्धिके लिये समस्त भूमण्डलपर विजय पायी थी, जिसे अपना सहायक पाकर मगधनरेश जरासंधने भी सौहार्दवश शान्त हो यादवों और कौरवोंको छोड़कर भूतलके अन्य नरेशोंको ही अपने कारागारमें कैद किया था; उसी कर्णको सव्यसाची अर्जुनने द्वैरथयुद्धमें मार डाला, यह सुनकर मैं शोकके समुद्रमें डूब गया हूँ, मानो मेरी नाव बीच समुद्रमें जाकर टूट गयी हो।२५-२७½।

तं वृषं निहतं श्रुत्वा द्वैरथे रथिनां वरम् ॥ २८ ॥
शोकार्णवे निमग्नोऽहमप्लवः सागरे यथा ।

रथियोंमें श्रेष्ठ उस धर्मात्मा कर्णको द्वैरथयुद्धमें मारा गया सुनकर मैं समुद्रमें नौकारहित पुरुषकी भाँति शोक-सागरमें निमग्न हो गया हूँ ॥ २८½ ॥

ईदृशैर्यद्यहं दुःखैर्न विनश्यामि संजय ॥ २९ ॥
वज्राद् दृढतरं मन्ये हृदयं मम दुर्भिदम् ।

संजय ! यदि ऐसे दुःखोंसे भी मेरी मृत्यु नहीं हो रही है तो मैं ऐसा समझता हूँ कि मेरा यह हृदय वज्रसे भी अधिक सुदृढ़ और दुर्भेद्य है ॥ २९½ ॥

ज्ञातिसम्बन्धिमित्राणामिमं श्रुत्वा पराभवम् ॥ ३० ॥
को मदन्यः पुमाँल्लोके न जह्यात् सूत जीवितम् ।

सूत ! कुटुम्बीजनों, सगे-सम्बन्धियों और मित्रोंके पराभवका यह समाचार सुनकर संसारमें मेरे सिवा दूसरा कौन पुरुष होगा, जो अपने जीवनका परित्याग न कर दे ॥३०½॥

विषमग्निं प्रपातं च पर्वताग्रादहं वृणे ।
न हि शक्ष्यामि दुःखानि सोढुं कष्टानि संजय ॥३१॥

संजय ! मैं विष खाकर, अग्निमें प्रविष्ट होकर तथा पर्वतके शिखरसे नीचे गिरकर भी मृत्युका वरण कर लूँगा । परंतु अब ये कष्टदायक दुःख नहीं सह सकूँगा ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्येऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें धृतराष्ट्रवाक्यविषयक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १½ श्लोक मिलाकर कुल ३२½ श्लोक हैं)

नवमोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका संजयसे विलाप करते हुए कर्णवधका विस्तारपूर्वक वृत्तान्त पूछना

संजय उवाच

श्रिया कुलेन यशसा तपसा च श्रुतेन च ।
त्वामद्य सन्तो मन्यन्ते ययातिमिव नाहुषम् ॥ १ ॥

संजयने कहा—महाराज ! साधु पुरुष इस समय आपको धन-सम्पत्ति, कुल-मर्यादा, सुयश, तपस्या और शास्त्रज्ञानमें नहुषनन्दन ययातिके समान मानते हैं ॥ १ ॥

श्रुते महर्षिप्रतिमः कृतकृत्योऽसि पार्थिव ।
पर्यवस्थापयात्मानं मा विषादे मनः कृथाः ॥ २ ॥

राजन् ! वेद-शास्त्रोंके ज्ञानमें आप महर्षियोंके तुल्य हैं । आपने अपने जीवनके सम्पूर्ण कर्तव्योंका पालन कर लिया है; अतः अपने मनको स्थिर कीजिये, उसे विषादमें न डुबाइये ॥ २ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

दैवमेव परं मन्ये धिक् पौरुषमनर्थकम् ।
यत्र शालप्रतीकाशः कर्णोऽहन्यत संयुगे ॥ ३ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—मैं तो दैवको ही प्रधान मानता हूँ । पुरुषार्थ व्यर्थ है, उसे धिक्कार है, जिसका आश्रय लेकर शालवृक्षके समान ऊँचे शरीरवाला कर्ण भी युद्धमें मारा गया ॥ ३ ॥

हत्वा युधिष्ठिरानीकं पञ्चालानां रथव्रजान् ।

प्रताप्य शरवर्षेण दिशः सर्वा महारथः ॥ ४ ॥
मोहयित्वा रणे पार्थान् वज्रहस्त इवासुरान् ।
स कथं निहतः शेते वायुरुग्ण इव द्रुमः ॥ ५ ॥

युधिष्ठिरकी सेना तथा पाञ्चाल रथियोंके समुदायका संहार करके जिस महारथी वीरने अपने बाणोंकी वर्षासे सम्पूर्ण दिशाओंको संतप्त कर दिया और वज्रधारी इन्द्र जैसे असुरोंको अचेत कर देते हैं, उसी प्रकार जिसने रणभूमिमें कुन्ती-कुमारोंको मोहमें डाल दिया था, वही किस तरह मारा जाकर आँधीके उखाड़े हुए वृक्षके समान धरतीपर पड़ा है ? ॥ ४-५ ॥

शोकस्यान्तं न पश्यामि पारं जलनिधेरिव ।
चिन्ता मे वर्धतेऽतीव मुमूर्षा चापि जायते ॥ ६ ॥

जैसे समुद्रका पार नहीं दिखायी देता, उसी प्रकार मैं इस शोकका अन्त नहीं देख पाता हूँ । मेरी चिन्ता अधिकाधिक बढ़ती जाती है और मरनेकी इच्छा प्रबल हो उठी है ॥

कर्णस्य निधनं श्रुत्वा विजयं फाल्गुनस्य च ।
अश्रद्धेयमहं मन्ये वधं कर्णस्य संजय ॥ ७ ॥

संजय ! मैं कर्णकी मृत्यु और अर्जुनकी विजयका समाचार सुनकर भी कर्णके वधको विश्वासके योग्य नहीं मानता ॥ ७ ॥

वज्रसारमयं नूनं हृदयं दुर्भिदं मम ।
यच्छ्रुत्वा पुरुषव्याघ्रं हतं कर्णं न दीर्यते ॥ ८ ॥

निश्चय ही मेरा हृदय वज्रके सारतत्त्वका बना हुआ है, अतः दुर्भेद्य है; तभी तो पुरुष-सिंह कर्णको मारा गया सुनकर भी यह विदीर्ण नहीं हो रहा है ॥ ८ ॥

आयुर्नूनं सुदीर्घं मे विहितं दैवतैः पुरा ।
यत्र कर्णं हतं श्रुत्वा जीवामीह सुदुःखितः ॥ ९ ॥

अवश्य ही पूर्वकालमें देवताओंने मेरी आयु बहुत बड़ी बना दी थी, जिसके अधीन होनेके कारण मैं कर्ण-वधका समाचार सुनकर अत्यन्त दुखी होनेपर भी यहाँ जी रहा हूँ ॥ ९ ॥

धिग्जीवितमिदं चैव सुहृद्धीनश्च संजय ।
अद्य चाहं दशामेतां गतः संजय गर्हिताम् ॥ १० ॥

संजय ! मेरे इस जीवनको धिक्कार है । आज मैं सुहृदोंसे हीन होकर इस घृणित दशाको पहुँच गया हूँ ॥ १० ॥

कृपणं वर्तयिष्यामि शोच्यः सर्वस्य मन्दधीः ।
अहमेव पुरा भूत्वा सर्वलोकस्य सत्कृतः ॥ ११ ॥
परिभूतः कथं सूत परैः शक्ष्यामि जीवितुम् ।

अब मैं मन्दबुद्धि मानव सबके लिये शोचनीय होकर दीन-दुखी मनुष्योंके समान जीवन बिताऊँगा । सूत ! मैं ही पहले सब लोगोंके सम्मानका पात्र था; किंतु अब शत्रुओंसे अपमानित होकर कैसे जीवित रह सकूँगा ? ॥ ११½ ॥

दुःखात् सुदुःखव्यसनं प्राप्तवानस्मि संजय ॥ १२ ॥
भीष्मद्रोणवधेनैव कर्णस्य च महात्मनः ।

संजय ! भीष्म, द्रोण और महामना कर्णके वधसे मुझपर लगातार एक-से-एक बढ़कर अत्यन्त दुःख तथा सङ्कट आता गया है ॥ १२½ ॥

नावशेषं प्रपश्यामि सूतपुत्रे हते युधि ॥ १३ ॥
स हि पारो महानासीत् पुत्राणां मम संजय ।

युद्धमें सूतपुत्र कर्णके मारे जानेपर मैं अपने पक्षके किसी भी वीरको ऐसा नहीं देखता, जो जीवित रह सके । संजय ! कर्ण ही मेरे पुत्रोंको पार उतारनेवाला महान् अवलम्ब था ॥

युद्धे हि निहतः शूरो विसृजन् सायकान् बहून् ॥ १४ ॥
को हि मे जीवितेनार्थस्तमृते पुरुषर्षभम् ।

शत्रुओंपर असंख्य बाणोंकी वर्षा करनेवाला वह शूरवीर युद्धमें मार डाला गया । उस पुरुषशिरोमणिके बिना मेरे इस जीवनसे क्या प्रयोजन है ? ॥ १४½ ॥

रथादाधिरथिर्नूनं न्यपतत् सायकार्दितः ॥ १५ ॥
पर्वतस्येव शिखरं वज्रपाताद् विदारितम् ।

जैसे वज्रके आघातसे विदीर्ण किया हुआ पर्वतशिखर धराशायी हो जाता है, उसी प्रकार बाणोंसे पीड़ित हुआ अधिरथपुत्र कर्ण निश्चय ही रथसे नीचे गिर पड़ा होगा ॥

स शेते पृथिवीं नूनं शोभयन् रुधिरोक्षितः ॥ १६ ॥
मातङ्ग इव मत्तेन द्विपेन्द्रेण निपातितः ।

जैसे मतवाले गजराजद्वारा गिराया हुआ हाथी पड़ा हो, उसी प्रकार कर्ण खूनसे लथपथ होकर अवश्य इस पृथ्वीकी शोभा बढ़ाता हुआ सो रहा है ॥ १६½ ॥

यो बलं धार्तराष्ट्राणां पाण्डवानां यतो भयम् ॥ १७ ॥
सोऽर्जुनेन हतः कर्णः प्रतिमानं धनुष्मताम् ।

जो मेरे पुत्रोंका बल था, पाण्डवोंको जिससे सदा भय बना रहता था तथा जो धनुर्धर वीरोंके लिये आदर्श था, वह कर्ण अर्जुनके हाथसे मारा गया ॥ १७½ ॥

स हि वीरो महेष्वासो मित्राणामभयंकरः ॥ १८ ॥
शेते विनिहतो वीरो देवेन्द्रेण इवाचलः ।

जैसे देवराज इन्द्रके द्वारा वज्रसे मारा गया पर्वत पृथ्वीपर पड़ा हो, उसी प्रकार मित्रोंको अभय-दान देनेवाला वह महाधनुर्धर वीर कर्ण अर्जुनके हाथसे मारा जाकर रणभूमिमें सो रहा है ॥ १८½ ॥

पङ्गोरिवाध्वगमनं दरिद्रस्येव कामितम् ॥ १९ ॥
दुर्योधनस्य चाकूतं तृषितस्येव विप्रुषः ।

जैसे पङ्गु मनुष्यके लिये रास्ता चलना कठिन है, दरिद्रका मनोरथ पूर्ण होना असम्भव है तथा जलकी कुछ ही बूँदें जैसे प्यासेकी प्यास बुझानेमें असमर्थ हैं, उसी प्रकार दुर्योधनका अभिप्राय असम्भव अथवा सफलतासे कोसों दूर है ॥ १९½ ॥

अन्यथा चिन्तितं कार्यमन्यथा तत् तु जायते ॥ २० ॥

अहो नु बलवद् दैवं कालश्च दुरतिक्रमः ।

किसी कार्यको अन्य प्रकारसे सोचा जाता है, किंतु वह दैववश और ही प्रकारका हो जाता है। अहो! निश्चय ही दैव प्रबल और काल दुर्लङ्घ्य है ॥ २०½ ॥

पलायमानः कृपणो दीनात्मा दीनपौरुषः ॥ २१ ॥
कच्चिद् विनिहतः सूत पुत्रो दुःशासनो मम ।
कच्चिन्न दीनाचरितं कृतवांस्तात संयुगे ॥ २२ ॥
कच्चिन्न निहतः शूरो यथान्ये क्षत्रियर्षभाः ।

सूत! क्या मेरा पुत्र दुःशासन दीनचित्त और पुरुषार्थ-शून्य होकर कायरके समान भागता हुआ मारा गया। तात! उसने युद्धस्थलमें कोई दीनतापूर्ण बर्ताव तो नहीं किया था। जैसे अन्य क्षत्रियशिरोमणि मारे गये हैं, क्या उसी प्रकार शूरवीर दुःशासन नहीं मारा गया है? ॥ २१-२२½ ॥

युधिष्ठिरस्य वचनं मा युध्यस्वेति सर्वदा ॥ २३ ॥
दुर्योधनो नाभ्यगृह्णान्मूढः पथ्यमिवौषधम् ।

युधिष्ठिर सदा यही कहते रहे कि 'युद्ध न करो।' परंतु मूर्ख दुर्योधनने हितकारक औषधके समान उनके उस वचनको ग्रहण नहीं किया ॥ २३½ ॥

शरतल्पे शयानेन भीष्मेण सुमहात्मना ॥ २४ ॥
पानीयं याचितः पार्थः सोऽविध्यन्मेदिनीतलम् ।
जलस्य धारां जनितां दृष्ट्वा पाण्डुसुतेन च ॥ २५ ॥
अब्रवीत् स महाबाहुस्तात संशाम्य पाण्डवैः ।
प्रशमाद्धि भवेच्छान्तिर्मदन्तं युद्धमस्तु वः ॥ २६ ॥
भ्रातृभावेन पृथिवीं भुङ्क्ष्व पाण्डुसुतैः सह ।

बाण-शय्यापर सोये हुए महात्मा भीष्मने अर्जुनसे पानी माँगा और उन्होंने इसके लिये पृथ्वीको छेद दिया। इस प्रकार पाण्डुपुत्र अर्जुनके द्वारा प्रकट की हुई उस जल-धाराको देखकर महाबाहु भीष्मने दुर्योधनसे कहा—'तात! पाण्डवोंके साथ संधि कर लो। संधिसे वैरकी शान्ति हो जायगी, तुमलोगोंका यह युद्ध मेरे जीवनके साथ ही समाप्त हो जाय। तुम पाण्डवोंके साथ भ्रातृभाव बनाये रखकर पृथ्वीका उपभोग करो' ॥ २४-२६½ ॥

अकुर्वन् वचनं तस्य नूनं शोचति पुत्रकः ॥ २७ ॥
तदिदं समनुप्राप्तं वचनं दीर्घदर्शिनः ।

उनकी उस बातको न माननेके कारण अवश्य ही मेरा पुत्र शोक कर रहा है। दूरदर्शी भीष्मजीकी वह बात आज सफल होकर सामने आयी है ॥ २७½ ॥

अहं तु निहतामात्यो हतपुत्रश्च संजय ॥ २८ ॥
द्यूततः कृच्छ्रमापन्नो लूनपक्ष इव द्विजः ।

संजय! मेरे मन्त्री और पुत्र मारे गये। मैं तो पंख कटे हुए पक्षीके समान जूएके कारण भारी संकटमें पड़ गया हूँ ॥ २८½ ॥

यथा हि शकुनिं गृह्य छित्त्वा पक्षौ च संजय ॥ २९ ॥
विसर्जयन्ति संहृष्टाः क्रीडमानाः कुमारकाः ।
लूनपक्षतया तस्य गमनं नोपपद्यते ॥ ३० ॥
तथाहमपि सम्प्राप्तो लूनपक्ष इव द्विजः ।

सूत! जैसे खेलते हुए बालक किसी पक्षीको पकड़कर उसकी दोनों पाँखें काट लेते और प्रसन्नतापूर्वक उसे छोड़ देते हैं। फिर पंख कट जानेके कारण उसका उड़कर कहीं जाना सम्भव नहीं हो पाता। उसी कटे हुए पंखवाले पक्षीके समान मैं भी भारी दुर्दशामें पड़ गया हूँ ॥ २९-३०½ ॥

क्षीणः सर्वार्थहीनश्च निर्ज्ञातिर्बन्धुवर्जितः ।
कां दिशं प्रतिपत्स्यामि दीनः शत्रुवशं गतः ॥ ३१ ॥

मैं शरीरसे दुर्बल, सारी धन-सम्पत्तिसे वञ्चित तथा कुटुम्बीजनों और बन्धु-बान्धवोंसे रहित हो शत्रुके वशमें पड़कर दीनभावसे किस दिशाको जाऊँगा? ॥ ३१ ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्येवं धृतराष्ट्रोऽथ विलप्य बहु दुःखितः ।
प्रोवाच संजयं भूयः शोकव्याकुलमानसः ॥ ३२ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—इस प्रकार विलाप करके अत्यन्त दुखी और शोकसे व्याकुलचित्त हो धृतराष्ट्रने पुनः संजयसे इस प्रकार कहा ॥ ३२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

योऽजयत् सर्वकाम्बोजानम्बष्ठान् केकयैः सह ।
गान्धारांश्च विदेहांश्च जित्वा कार्यार्थमाहवे ॥ ३३ ॥
दुर्योधनस्य वृद्ध्यर्थं योऽजयत् पृथिवीं प्रभुः ।
स जितः पाण्डवैः शूरैः समरे बाहुशालिभिः ॥ ३४ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय! जिसने हमारे कार्यके लिये युद्धस्थलमें सम्पूर्ण काम्बोज-निवासियों, अम्बष्ठों, केकयों, गान्धारों और विदेहोंपर विजय पायी। इन सबको जीतकर जिसने दुर्योधनकी वृद्धिके लिये समस्त भूमण्डलको जीत लिया था। वही सामर्थ्यशाली कर्ण अपने बाहुबलसे सुशोभित होनेवाले शूरवीर पाण्डवोंद्वारा समराङ्गणमें परास्त हो गया ॥

तस्मिन् हते महेष्वासे कर्णे युधि किरीटिना ।
के वीराः पर्यतिष्ठन्त तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ३५ ॥

संजय! युद्धस्थलमें किरीटधारी अर्जुनके द्वारा उस महा-धनुर्धर कर्णके मारे जानेपर कौन-कौन-से वीर ठहर सके; यह मुझे बताओ ॥ ३५ ॥

कच्चिन्नैकः परित्यक्तः पाण्डवैर्निहतो रणे ।
उक्तं त्वया पुरा तात यथा वीरो निपातितः ॥ ३६ ॥

तात! कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि कर्णको अकेला छोड़ दिया गया हो और समस्त पाण्डवोंने मिलकर उसे मार डाला हो; क्योंकि तुम पहले बता चुके हो कि वीर कर्ण मारा गया ॥ ३६ ॥

भीष्ममप्रतियुद्ध्यन्तं शिखण्डी सायकोत्तमैः।
पातयामास समरे सर्वशस्त्रभृतां वरम् ॥ ३७ ॥

समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ भीष्म जब युद्ध नहीं कर रहे थे, उस दशामें शिखण्डीने अपने उत्तम बाणोंद्वारा उन्हें समराङ्गणमें मार गिराया ॥ ३७ ॥

तथा द्रौपदिना द्रोणो न्यस्तसर्वायुधो युधि।
युक्तयोगो महेष्वासः शरैर्बहुभिराचितः ॥ ३८ ॥
निहतः खड्गमुद्यम्य धृष्टद्युम्नेन संजय।
अन्तरेण हतावेतौ छलेन च विशेषतः ॥ ३९ ॥

इसी प्रकार जब महाधनुर्धर द्रोणाचार्य युद्धस्थलमें अपने सारे अस्त्र-शस्त्रोंको नीचे डालकर ब्रह्मका ध्यान लगाये हुए बैठे थे, उस अवस्थामें द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्नने उन्हें बहुसंख्यक बाणोंसे ढक दिया और तलवार उठाकर उनका सिर काट लिया। संजय! इस प्रकार ये दोनों वीर छिद्र मिल जानेसे विशेषतः छलपूर्वक मारे गये ॥ ३८-३९ ॥

अश्रौषमहमेतद् वै भीष्मद्रोणौ निपातितौ।
भीष्मद्रोणौ हि समरे न हन्याद् वज्रभृत् स्वयम्॥४०॥
न्यायेन युध्यमानौ हि तद् वै सत्यं ब्रवीमि ते।

मैंने यह समाचार भी सुना था कि भीष्म और द्रोणाचार्य मार गिराये गये, परंतु मैं तुमसे यह सच्ची बात कहता हूँ कि ये भीष्म और द्रोण यदि समरभूमिमें न्यायपूर्वक युद्ध करते होते तो इन्हें साक्षात् वज्रधारी इन्द्र भी नहीं मार सकते थे ॥ ४०½ ॥

कर्णं त्वस्यन्तमस्त्राणि दिव्यानि च बहूनि च ॥ ४१ ॥
कथमिन्द्रोपमं वीरं मृत्युर्युद्धे समस्पृशत्।

मैं पूछता हूँ कि युद्धमें बहुत-से दिव्यास्त्रोंकी वर्षा करते हुए इन्द्रके समान पराक्रमी वीर कर्णको मृत्यु कैसे छू सकी ?॥

यस्य विद्युत्प्रभां शक्तिं दिव्यां कनकभूषणाम् ॥ ४२ ॥
प्रायच्छद् द्विषतां हन्त्रीं कुण्डलाभ्यां पुरंदरः।
यस्य सर्पमुखो दिव्यः शरः काञ्चनभूषणः ॥ ४३ ॥
अशेत निशितः पत्री समरेष्वरिसूदनः।
भीष्मद्रोणमुखान् वीरान् योऽवमन्ये महारथान्।४४।
जामदग्न्यान्महाघोरं ब्राह्ममस्त्रमशिक्षत।
यश्च द्रोणमुखान् दृष्ट्वा विमुखानर्दिताञ्शरैः ॥ ४५ ॥
सौभद्रस्य महाबाहुर्व्यधमत् कार्मुकं शितैः।
यश्च नागायुतप्राणं वज्ररंहसमच्युतम् ॥ ४६ ॥
विरथं सहसा कृत्वा भीमसेनमथाहसत्।
सहदेवं च निर्जित्य शरैः संनतपर्वभिः ॥ ४७ ॥
कृपया विरथं कृत्वा नाहनद् धर्मचिन्तया।
यश्च मायासहस्राणि विकुर्वाणं जयैषिणम् ॥ ४८ ॥
घटोत्कचं राक्षसेन्द्रं शक्रशक्त्या निजघ्निवान्।
एतांश्च दिवसान् यस्य युद्धे भीतो धनंजयः ॥ ४९ ॥
नागमद् द्वैरथं वीरः स कथं निहतो रणे।

जिसे देवराज इन्द्रने दो कुण्डलोंके बदलेमें विद्युत्के समान प्रकाशित होनेवाली तथा शत्रुओंका नाश करनेमें समर्थ सुवर्णभूषित दिव्य शक्ति प्रदान की थी, जिसके तूणीरमें सर्पके समान मुखवाला दिव्य, सुवर्णभूषित, कङ्कपत्रयुक्त एवं युद्धमें शत्रुसंहारक तीखा बाण सदा शयन करता था, जो भीष्म-द्रोण आदि महारथी वीरोंकी भी अवहेलना करता था, जिसने जमदग्निनन्दन परशुरामजीसे अत्यन्त घोर ब्रह्मास्त्रकी शिक्षा पायी थी और जिस महाबाहु वीरने सुभद्राकुमारके बाणोंसे पीड़ित हुए द्रोणाचार्य आदिको युद्धसे विमुख हुआ देख अपने तीखे बाणोंसे उसका धनुष काट डाला था, जिसने दस हजार हाथियोंके समान बलशाली, वज्रके समान तीव्र वेगवाले, अपराजित वीर भीमसेनको सहसा रथहीन करके उनकी हँसी उड़ायी थी, जिसने सहदेवको जीतकर झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा उन्हें रथहीन करके भी धर्मके विचारसे दयावश उनके प्राण नहीं लिये; जिसने सहस्रों मायाओंकी सृष्टि करनेवाले विजयाभिलाषी राक्षसराज घटोत्कचको इन्द्रकी दी हुई शक्तिसे मार डाला तथा इतने दिनोंतक अर्जुन जिससे भयभीत होकर उसके साथ द्वैरथ-युद्धमें सम्मिलित नहीं हो सके, वही वीर कर्ण रणभूमिमें मारा कैसे गया ?॥४२–४९½॥

संशप्तकानां योधा ये आह्वयन्त सदान्यतः ॥ ५० ॥
एतान् हत्वा हनिष्यामि पश्चाद् वैकर्तनं रणे।
इति व्यपदिशन् पार्थो वर्जयन् सूतजं रणे ॥ ५१ ॥
स कथं निहतो वीरः पार्थेन परवीरहा।

'संशप्तकोंमेंसे जो योद्धा सदा मुझे दूसरी ओर युद्धके लिये बुलाया करते हैं, इन्हें पहले मारकर पीछे वैकर्तन कर्णका रणभूमिमें वध करूँगा।' ऐसा बहाना बनाकर अर्जुन जिस सूतपुत्रको युद्धस्थलमें छोड़ दिया करते थे, उसी शत्रुवीरोंके संहारक वीरवर कर्णको अर्जुनने किस प्रकार मारा ?॥५०-५१½॥

रथभङ्गो न चेत् तस्य धनुर्वा न व्यशीर्यत ॥ ५२ ॥
न चेदस्त्राणि निर्णेशुः स कथं निहतः परैः।

यदि उसका रथ नहीं टूट गया था, धनुषके टुकड़े-टुकड़े नहीं हो गये थे और अस्त्र नहीं नष्ट हुए थे, तब शत्रुओंने उसे किस प्रकार मार दिया ? ॥ ५२½ ॥

को हि शक्तो रणे कर्णं विधुन्वानं महद् धनुः॥ ५३ ॥
विमुञ्चन्तं शरान् घोरान् दिव्यान्यस्त्राणि चाहवे।
जेतुं पुरुषशार्दूलं शार्दूलमिव वेगिनम् ॥ ५४ ॥

सिंहके समान वेगशाली पुरुषसिंह कर्ण जब अपना विशाल धनुष कँपाता हुआ युद्धस्थलमें दिव्यास्त्र तथा भयंकर बाण छोड़ रहा हो, उस समय उसे कौन जीत सकता था ? ॥ ५३-५४ ॥

ध्रुवं तस्य धनुश्छिन्नं रथो वापि महीं गतः।
अस्त्राणि वा प्रणष्टानि यथा शंससि मे हतम्॥ ५५ ॥

निश्चय ही उसका धनुष कट गया होगा या रथ धरतीमें धँस गया होगा अथवा उसके अस्त्र नष्ट हो गये होंगे, तभी जैसा कि तुम मुझे बता रहे हो, वह मारा गया होगा ॥ ५५ ॥

न ह्यन्यदपि पश्यामि कारणं तस्य नाशने।
न हन्मि फाल्गुनं यावत् तावत् पादौ न धावये॥५६॥
इति यस्य महाघोरं व्रतमासीन्महात्मनः।

उसके नष्ट होनेमें और कोई कारण मुझे नहीं दिखायी देता है, जिस महामना वीरका यह भयंकर व्रत था कि 'मैं जबतक अर्जुनको मार नहीं लूँगा, तबतक दूसरोंसे अपने पैर नहीं धुलाऊँगा' ॥ ५६½ ॥

यस्य भीतो रणे निद्रां धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ५७ ॥
त्रयोदश समा नित्यं नाभजत् पुरुषर्षभः।
यस्य वीर्यवतो वीर्यमुपाश्रित्य महात्मनः ॥ ५८ ॥
मम पुत्रः सभां भार्यां पाण्डूनां नीतवान् बलात्।
तत्रापि च सभामध्ये पाण्डवानां च पश्यताम्॥ ५९ ॥
दासभार्येति पाञ्चालीमब्रवीत् कुरुसंनिधौ।
न सन्ति पतयः कृष्णे सर्वे षण्ढतिलैः समाः ॥ ६० ॥
उपतिष्ठस्व भर्तारमन्यं वा वरवर्णिनि।
इत्येवं यः पुरा वाचो रूक्षाश्चाश्रावयद् रुषा॥ ६१ ॥
सभायां सूतजः कृष्णां स कथं निहतः परैः।

रणभूमिमें जिसके भयसे डरे हुए पुरुषशिरोमणि धर्मराज युधिष्ठिरने तेरह वर्षोंतक कभी अच्छी तरह नींद नहीं ली, जिस महामनस्वी बलवान् सूतपुत्रके बलका भरोसा करके मेरा पुत्र दुर्योधन पाण्डवोंकी पत्नीको बलपूर्वक सभामें घसीट लाया और वहाँ भी भरी सभामें उसने पाण्डवोंके देखते-देखते समस्त कुरुवंशियोंके समीप पाञ्चालराजकुमारीको दास-पत्नी बतलाया, साथ ही जिसने उसे सम्बोधित करके कहा—'कृष्णे! तेरे पति अब नहींके बराबर हैं। ये सभी थोथे तिलोंके समान नपुंसक हो गये हैं। सुन्दरि! अब तू दूसरे किसी पतिका आश्रय ले' पूर्वकालमें जिस सूतपुत्रने सभामें रोषपूर्वक द्रौपदीको ये कठोर बातें सुनायी थीं, वह स्वयं शत्रुओंद्वारा कैसे मारा गया ? ॥ ५७–६१½ ॥

यदि भीष्मो रणश्लाघी द्रोणो वा युधि दुर्मदः ॥६२॥
न हनिष्यति कौन्तेयान् पक्षपातात् सुयोधन।
सर्वानेव हनिष्यामि व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥ ६३ ॥

जिसने मेरे पुत्रसे कहा था कि 'दुर्योधन! यदि युद्धकी श्लाघा रखनेवाले भीष्म अथवा रणदुर्मद द्रोणाचार्य पक्षपात करनेके कारण कुन्तीपुत्रोंको नहीं मारेंगे तो मैं उन सबको मार डालूँगा। तुम्हारी मानसिक चिन्ता दूर हो जानी चाहिये॥

किं करिष्यति गाण्डीवमक्षय्यौ च महेषुधी।
स्निग्धचन्दनदिग्धस्य मच्छरस्याभिधावतः ॥ ६४ ॥
स नूनमृषभस्कन्धो ह्यर्जुनेन कथं हतः।

'गाण्डीव धनुष अथवा दोनों अक्षय तरकस मेरे उस बाणका क्या कर लेंगे, जो चिकने चन्दनसे चर्चित हो शत्रुओं-पर बड़े वेगसे धावा करता है' ऐसी बातें कहनेवाला कर्ण, जिसके कंधे बैलोंके समान हृष्ट-पुष्ट थे, निश्चय ही अर्जुनके हाथसे कैसे मारा गया ? ॥ ६४½ ॥

यश्च गाण्डीवमुक्तानां स्पर्शमुग्रमचिन्तयन् ॥ ६५ ॥
अपतिर्ह्यसि कृष्णेति ब्रुवन् पार्थानवैक्षत।
यस्य नासीद् भयं पार्थैः सपुत्रैः सजनार्दनैः ॥ ६६ ॥
स्वबाहुबलमाश्रित्य मुहूर्तमपि संजय।
तस्य नाहं वधं मन्ये देवैरपि सवासवैः ॥ ६७ ॥
प्रतीपमभिधावद्भिः किं पुनस्तात पाण्डवैः।

संजय! जिसने गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाणोंके आघातकी तनिक भी परवा न करके 'कृष्णे! अब तू पतिहीना हो गयी' ऐसा कहते हुए कुन्तीपुत्रोंकी ओर देखा था, जिसे अपने बाहुबलके भरोसे कभी दो घड़ीके लिये भी पुत्रोंसहित पाण्डवों और भगवान् श्रीकृष्णसे भी भय नहीं हुआ। तात! यदि शत्रुपक्षकी ओरसे इन्द्र-सहित सम्पूर्ण देवता भी धावा करें तो उनके द्वारा भी कर्णके वध होनेका विश्वास मुझे नहीं हो सकता था, फिर पाण्डवोंकी तो बात ही क्या है ? ॥ ६५–६७½ ॥

न हि ज्यां संस्पृशानस्य तलत्रे वापि गृह्णतः॥ ६८ ॥
पुमानाधिरथेः स्थातुं कश्चित् प्रमुखतोऽर्हति।
अपि स्यान्मेदिनी हीना सोमसूर्यप्रभांशुभिः ॥ ६९ ॥
न वधः पुरुषेन्द्रस्य संयुगेष्वपलायिनः।

जब अधिरथपुत्र कर्ण अपने धनुषकी प्रत्यञ्चाका स्पर्श कर रहा हो अथवा दस्ताने पहन चुका हो, उस समय कोई पुरुष उसके सामने नहीं ठहर सकता था। सम्भव है यह पृथ्वी चन्द्रमा और सूर्यकी प्रकाशमयी किरणोंसे वञ्चित हो जाय, परंतु युद्धमें पीठ न दिखानेवाले पुरुषशिरोमणि कर्णके वधकी कदापि सम्भावना नहीं थी ॥ ६८–६९½ ॥

येन मन्दः सहायेन भ्रात्रा दुःशासनेन च ॥ ७० ॥
वासुदेवस्य दुर्बुद्धिः प्रत्याख्यानमरोचत।
स नूनं वृषभस्कन्धं कर्णं दृष्ट्वा निपातितम् ॥ ७१ ॥
दुःशासनं च निहतं मन्ये शोचति पुत्रकः।

जिस कर्ण और भाई दुःशासनको अपना सहायक पाकर मूर्ख एवं दुर्बुद्धि दुर्योधनने श्रीकृष्णके प्रस्तावको ठुकरा देना ही उचित समझा था, मैं समझता हूँ, आज बैलोंके समान पुष्ट कंधेवाले कर्णको गिरा हुआ तथा दुःशासनको भी मारा गया देख मेरा वह पुत्र निश्चय ही शोकमें मग्न हो गया होगा ॥ ७०-७१½ ॥

हतं वैकर्तनं श्रुत्वा द्वैरथे सव्यसाचिना ॥ ७२ ॥
जयतः पाण्डवान् दृष्ट्वा किंस्विद् दुर्योधनोऽब्रवीत् ।

द्वैरथयुद्धमें सव्यसाची अर्जुनके हाथसे कर्णको मारा गया सुनकर और पाण्डवोंकी विजय होती देखकर दुर्योधनने क्या कहा था ? ॥ ७२½ ॥

दुर्मर्षणं हतं दृष्ट्वा वृषसेनं च संयुगे ॥ ७३ ॥
प्रभग्नं च बलं दृष्ट्वा वध्यमानं महारथैः ।
पराङ्मुखांश्च राज्ञस्तु पलायनपरायणान् ॥ ७४ ॥
विद्रुतान् रथिनो दृष्ट्वा मन्ये शोचति पुत्रकः ।

दुर्मर्षण और वृषसेन भी युद्धमें मारे गये, महारथी पाण्डवोंकी मार खाकर सेनामें भगदड़ मच गयी, सहायक नरेश युद्धसे विमुख हो पलायन करने लगे और रथियोंने पीठ दिखा दी। यह सब देखकर मेरा बेटा शोक कर रहा होगा; ऐसा मुझे मालूम हो रहा है ॥ ७३-७४½ ॥

अनेयश्चाभिमानी च दुर्बुद्धिरजितेन्द्रियः ॥ ७५ ॥
हतोत्साहं बलं दृष्ट्वा किंस्विद् दुर्योधनोऽब्रवीत् ।

जो किसीकी सीख नहीं मानता है, जिसे अपनी विद्वत्ता और बुद्धिमत्ताका अभिमान है, उस दुर्बुद्धि, अजितेन्द्रिय दुर्योधनने अपनी सेनाको हतोत्साह देखकर क्या कहा ? ॥ ७५½ ॥

स्वयं वैरं महत् कृत्वा वार्यमाणः सुहृद्गणैः ॥ ७६ ॥
प्रधने हतभूयिष्ठैः किंस्विद् दुर्योधनोऽब्रवीत् ।

हितैषी सुहृदोंके मना करनेपर भी पाण्डवोंके साथ स्वयं बड़ा भारी वैर ठानकर दुर्योधनने, जब संग्राममें उसके अधिकांश सैनिक मार डाले गये, तब क्या कहा ? ॥ ७६½ ॥

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा भीमसेनेन संयुगे ॥ ७७ ॥
रुधिरे पीयमाने च किंस्विद् दुर्योधनोऽब्रवीत् ।

युद्धस्थलमें अपने भाई दुःशासनको भीमसेनके द्वारा मारा गया देख जब कि उसका रक्त पीया जा रहा था, दुर्योधनने क्या कहा ? ॥ ७७½ ॥

सह गान्धारराजेन सभायां यदभाषत ॥ ७८ ॥
कर्णोऽर्जुनं रणे हन्ता हते तस्मिन् किमब्रवीत् ।

गान्धारराज शकुनिके साथ सभामें दुर्योधनने जो यह कहा था कि 'कर्ण अर्जुनको मार डालेगा', उसके विपरीत जब कर्ण स्वयं मारा गया तब उसने क्या कहा ? ॥ ७८½ ॥

द्यूतं कृत्वा पुरा हृष्टो वञ्चयित्वा च पाण्डवान् ॥७९॥
शकुनिः सौबलस्तात हते कर्णे किमब्रवीत् ।

तात ! पहले द्यूतक्रीड़ाका आयोजन करके पाण्डवोंको ठग लेनेके बाद जिसे बड़ा हर्ष हुआ था, वह सुबलपुत्र शकुनि कर्णके मारे जानेपर क्या बोला ? ॥ ७९½ ॥

कृतवर्मा महेष्वासः सात्वतानां महारथः ॥ ८० ॥
हतं वैकर्तनं दृष्ट्वा हार्दिक्यः किमभाषत ।

वैकर्तन कर्णको मारा गया देख सात्वतवंशके महाधनुर्धर महारथी हृदिकपुत्र कृतवर्माने क्या कहा ? ॥ ८०½ ॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या यस्य शिक्षामुपासते॥ ८१ ॥
धनुर्वेदं चिकीर्षन्तो द्रोणपुत्रस्य धीमतः ।
युवा रूपेण सम्पन्नो दर्शनीयो महायशाः ॥ ८२ ॥
अश्वत्थामा हते कर्णे किमभाषत संजय ।

संजय ! धनुर्वेद प्राप्त करनेकी इच्छावाले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जिस बुद्धिमान् द्रोणपुत्रके पास आकर शिक्षा ग्रहण करते हैं, जो सुन्दर रूपसे सम्पन्न, युवक, दर्शनीय तथा महायशस्वी है, उस अश्वत्थामाने कर्णके मारे जानेपर क्या कहा ? ॥ ८१-८२½ ॥

आचार्यो यो धनुर्वेदे गौतमो रथसत्तमः ॥ ८३ ॥
कृपः शारद्वतस्तात हते कर्णे किमब्रवीत् ।

तात ! धनुर्वेदके आचार्य एवं रथियोंमें श्रेष्ठ, गौतमवंशी, शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्यने कर्णके मारे जानेपर क्या कहा ? ॥

मद्रराजो महेष्वासः शल्यः समितिशोभनः ॥ ८४ ॥
दृष्ट्वा विनिहतं कर्णं सारथ्ये रथिनां वरः ।
किमभाषत वीरोऽसौ मद्राणामधिपो बली ॥ ८५ ॥

युद्धमें शोभा पानेवाले, रथियोंमें श्रेष्ठ, मद्रदेशके अधिपति, बलवान् वीर, महाधनुर्धर मद्रराज शल्यने अपने सारथित्वमें कर्णको मारा गया देखकर क्या कहा ? ॥

दृष्ट्वा विनिहतं सर्वे योधा वा रणदुर्जयाः ।
ये च केचन राजानः पृथिव्यां योद्धुमागताः ।
वैकर्तनं हतं दृष्ट्वा कान्यभाषन्त संजय ॥ ८६ ॥

संजय ! भूमण्डलके जो कोई भी नरेश युद्धके लिये आये थे, वे समस्त रणदुर्जय योद्धा वैकर्तन कर्णको मारा गया देखकर क्या बातें कर रहे थे ? ॥ ८६ ॥

द्रोणे तु निहते वीरे रथव्याघ्रे नरर्षभे ।
के वा मुखमनीकानामासन् संजय भागशः ॥ ८७ ॥

संजय ! रथियोंमें सिंह नरश्रेष्ठ वीरवर द्रोणाचार्यके मारे जानेपर कौन-कौनसे वीर सेनाओंके मुख (अग्रभाग) की रक्षा करते रहे ? ॥ ८७ ॥

मद्रराजः कथं शल्यो नियुक्तो रथिनां वरः ।
वैकर्तनस्य सारथ्ये तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ८८ ॥

संजय ! रथियोंमें श्रेष्ठ मद्रराज शल्यको कर्णके सारथिके कार्यमें कैसे नियुक्त किया गया ? यह मुझे बताओ ॥

केऽरक्षन् दक्षिणं चक्रं सूतपुत्रस्य युध्यतः ।
वामं चक्रं ररक्षुर्वा के वा वीरस्य पृष्ठतः ॥ ८९ ॥

युद्ध करते समय भी वीर सूतपुत्रके दाहिने पहियेकी रक्षा कौन-कौन कर रहे थे ? अथवा उसके बायें पहिये या पृष्ठभागकी रक्षामें कौन-कौन वीर नियुक्त थे ? ॥ ८९ ॥

के कर्णं न जहुः शूराः के क्षुद्राः प्राद्रवंस्ततः ।
कथं च वः समेतानां हतः कर्णो महारथः ॥ ९० ॥

किन शूरवीरोंने कर्णका साथ नहीं छोड़ा ? और कौन-कौन-से नीच सैनिक वहाँसे भाग गये ? तुम सब लोग जब एक साथ होकर लड़ रहे थे, तब महारथी कर्ण कैसे मारा गया ? ॥ ९० ॥

पाण्डवाश्च स्वयं शूराः प्रत्युदीयुर्महारथाः ।
सृजन्तः शरवर्षाणि वारिधारा इवाम्बुदाः ॥ ९१ ॥
स च सर्पमुखो दिव्यो महेषुप्रवरस्तदा ।
व्यर्थः कथं समभवत् तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ९२ ॥

संजय ! जिस समय शूरवीर महारथी पाण्डव पानीकी धारा बरसानेवाले बादलोंके समान स्वयं ही बाणोंकी वृष्टि करते हुए आगे बढ़ने लगे, उस समय महान् बाणोंमें सर्वश्रेष्ठ दिव्य सर्पमुख बाण व्यर्थ कैसे हो गया ? यह मुझे बताओ ॥ ९१-९२ ॥

मामकस्यास्य सैन्यस्य हतोत्सेधस्य संजय ।
अवशेषं न पश्यामि ककुदे मृदिते सति ॥ ९३ ॥

संजय ! मेरी इस सेनाका उत्कर्ष अथवा उत्साह नष्ट हो गया है । इसके प्रमुख वीर कर्णके मारे जानेपर अब यह बच सकेगी, ऐसा मुझे नहीं दिखायी देता है ॥ ९३ ॥

तौ हि वीरौ महेष्वासौ मदर्थे त्यक्तजीवितौ ।
भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा को न्वर्थो जीवितेन मे ॥ ९४ ॥

मेरे लिये प्राणोंका मोह छोड़ देनेवाले महाधनुर्धर वीर भीष्म और द्रोणाचार्य मारे गये, यह सुनकर मेरे जीवित रहनेका क्या प्रयोजन है ? ॥ ९४ ॥

पुनः पुनर्न मृष्यामि हतं कर्णं च पाण्डवैः ।
यस्य बाह्वोर्बलं तुल्यं कुञ्जराणां शतं शतैः ॥ ९५ ॥

जिसकी भुजाओंमें दस हजार हाथियोंका बल था, वह कर्ण पाण्डवोंद्वारा मारा गया, यह बारंबार सुनकर मुझसे सहा नहीं जाता ॥ ९५ ॥

द्रोणे हते च यद् वृत्तं कौरवाणां परैः सह ।
संग्रामे नरवीराणां तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ९६ ॥

संजय ! द्रोणाचार्यके मारे जानेपर संग्राममें नरवीर कौरवोंका शत्रुओंके साथ जैसा बर्ताव हुआ, वह मुझे बताओ ॥ ९६ ॥

यथा कर्णश्च कौन्तेयैः सह युद्धमयोजयत् ।
यथा च द्विषतां हन्ता रणे शान्तस्तदुच्यताम् ॥ ९७ ॥

शत्रुहन्ता कर्णने कुन्ती-पुत्रोंके साथ जिस प्रकार युद्धका आयोजन किया और जिस प्रकार वह रणभूमिमें शान्त हो गया, वह सारा वृत्तान्त मुझे बताओ ॥ ९७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि धृतराष्ट्रप्रश्ने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें धृतराष्ट्रका प्रश्नविषयक नवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

कर्णको सेनापति बनानेके लिये अश्वत्थामाका प्रस्ताव और सेनापतिके पदपर उसका अभिषेक

संजय उवाच

हते द्रोणे महेष्वासे तस्मिन्नहनि भारत ।
कृते च मोघसंकल्पे द्रोणपुत्रे महारथे ॥ १ ॥
द्रवमाणे महाराज कौरवाणां बलार्णवे ।
व्यूह्य पार्थः स्वकं सैन्यमतिष्ठद् भ्रातृभिर्वृतः ॥ २ ॥

संजयने कहा—भरतनन्दन महाराज ! उस दिन जब महाधनुर्धर द्रोणाचार्य मारे गये, महारथी द्रोणपुत्रका संकल्प व्यर्थ हो गया और समुद्रके समान विशाल कौरव-सेना भागने लगी, उस समय कुन्तीकुमार अर्जुन अपनी सेनाका व्यूह बनाकर अपने भाइयोंके साथ रणभूमिमें डटे रहे ॥ १-२ ॥

तमवस्थितमाज्ञाय पुत्रस्ते भरतर्षभ ।
विद्रुतं स्वबलं दृष्ट्वा पौरुषेण न्यवारयत् ॥ ३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उन्हें युद्धके लिये डटा हुआ जान आपके पुत्रने अपनी सेनाको भागती देख उसे पराक्रमपूर्वक रोका ॥ ३ ॥

स्वमनीकमवस्थाप्य बाहुवीर्यमुपाश्रितः ।
युद्ध्वा च सुचिरं कालं पाण्डवैः सह भारत ॥ ४ ॥
लब्धलक्ष्यैः परैर्हृष्टैर्व्यायच्छद्भिश्चिरं तदा ।
संध्याकालं समासाद्य प्रत्याहारमकारयत् ॥ ५ ॥

भारत ! इस प्रकार अपनी सेनाको स्थापित करके, जिन्हें अपना लक्ष्य प्राप्त हो गया था और इसीलिये जो बड़े हर्षके साथ परिश्रमपूर्वक युद्ध कर रहे थे, उन विपक्षी पाण्डवोंके साथ दुर्योधनने अपने ही बाहुबलके भरोसे दीर्घकालतक युद्ध करके संध्याकाल आनेपर सैनिकोंको शिविरमें लौटनेकी आज्ञा दे दी ॥ ४-५ ॥

कृत्वावहारं सैन्यानां प्रविश्य शिबिरं स्वकम् ।
कुरवः सुहितं मन्त्रं मन्त्रयाञ्चक्रिरे मिथः ॥ ६ ॥

सेनाको लौटाकर अपने शिबिरमें प्रवेश करनेके पश्चात् समस्त कौरव परस्पर अपने हितके लिये गुप्त मन्त्रणा करने लगे ॥ ६ ॥

पर्यङ्केषु परार्ध्येषु स्पर्ध्यास्तरणवत्सु च ।
वरासनेषूपविष्टाः सुखशय्यास्विवामराः ॥ ७ ॥

उस समय वे सब लोग बहुमूल्य बिछौनोंसे युक्त मूल्यवान्

पलंगों तथा श्रेष्ठ सिंहासनोंपर बैठे हुए थे, मानो देवता सुखद शय्याओंपर विराज रहे हों ॥ ७ ॥

ततो दुर्योधनो राजा साम्ना परमवल्गुना।
तानाभाष्य महेष्वासान् प्राप्तकालमभाषत ॥ ८ ॥
मतं मतिमतां श्रेष्ठाः सर्वे प्रब्रूत मा चिरम्।
एवं गते तु किं कार्यं किं च कार्यतरं नृपाः ॥ ९ ॥

उस समय राजा दुर्योधनने सान्त्वनापूर्ण परम मधुर वाणीद्वारा उन महाधनुर्धर नरेशोंको सम्बोधित करके यह समयोचित बात कही—'बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ नरेश्वरो ! तुम सब लोग शीघ्र बोलो, विलम्ब न करो, इस अवस्थामें हमलोगोंको क्या करना चाहिये और सबसे अधिक आवश्यक कर्तव्य क्या है ?' ॥ ८-९ ॥

संजय उवाच

एवमुक्ते नरेन्द्रेण नरसिंहा युयुत्सवः।
चक्रुर्नानाविधाश्चेष्टाः सिंहासनगतास्तदा ॥ १० ॥

संजय कहते हैं—राजा दुर्योधनके ऐसा कहनेपर वे सिंहासनपर बैठे हुए पुरुषसिंह नरेश युद्धकी इच्छासे नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करने लगे ॥ १० ॥

तेषां निशाम्येङ्गितानि युद्धे प्राणाञ्जुहूषताम्।
समुद्वीक्ष्य मुखं राज्ञो बालार्कसमवर्चसम् ॥ ११ ॥
आचार्यपुत्रो मेधावी वाक्यज्ञो वाक्यमाददे।

युद्धमें प्राणोंकी आहुति देनेकी इच्छा रखनेवाले उन नरेशोंकी चेष्टाएँ देखकर राजा दुर्योधनके प्रातःकालीन सूर्यके समान तेजस्वी मुखकी ओर दृष्टिपात करके वाक्यविशारद, मेधावी आचार्यपुत्र अश्वत्थामाने यह बात कही—॥ ११½ ॥

रागो योगस्तथा दाक्ष्यं नयश्चेत्यर्थसाधकाः ॥ १२ ॥
उपायाः पण्डितैः प्रोक्तास्ते तु दैवमुपाश्रिताः।

'विद्वानोंने अभीष्ट अर्थकी सिद्धि करानेवाले चार उपाय बताये हैं—राग (राजाके प्रति सैनिकोंकी भक्ति), योग (साधन-सम्पत्ति), दक्षता (उत्साह, बल एवं कौशल) तथा नीति; परंतु वे सभी दैवके अधीन हैं ॥

लोकप्रवीरा येऽस्माकं देवकल्पा महारथाः ॥ १३ ॥
नीतिमन्तस्तथा युक्ता दक्षा रक्ताश्च ते हताः।
न त्वेव कार्यं नैराश्यमस्माभिर्विजयं प्रति ॥ १४ ॥

'हमारे पक्षमें जो देवताओंके समान पराक्रमी, विश्वविख्यात महारथी वीर, नीतिमान्, साधनसम्पन्न, दक्ष और स्वामीके प्रति अनुरक्त थे, वे सब-के-सब मारे गये, तथापि हमें अपनी विजयके प्रति निराश नहीं होना चाहिये ॥ १३-१४ ॥

सुनीतैरिह सर्वार्थैर्दैवमप्यनुलोम्यते।
ते वयं प्रवरं नृणां सर्वैर्गुणगणैर्युतम् ॥ १५ ॥
कर्णमेवाभिषेक्ष्यामः सैनापत्येन भारत।
कर्णं सेनापतिं कृत्वा प्रमथिष्यामहे रिपून् ॥ १६ ॥

'यदि सारे कार्य उत्तम नीतिके अनुसार किये जायँ तो उनके द्वारा दैवको भी अनुकूल किया जा सकता है; अतः भारत ! हमलोग सर्वगुणसम्पन्न नरश्रेष्ठ कर्णका ही सेनापतिके पदपर अभिषेक करेंगे और इन्हें सेनापति बनाकर हमलोग शत्रुओंको मथ डालेंगे ॥ १५-१६ ॥

एष ह्यतिबलः शूरः कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः।
वैवस्वत इवासह्यः शक्तो जेतुं रणे रिपून् ॥ १७ ॥

'ये अत्यन्त बलवान्, शूरवीर, अस्त्रोंके ज्ञाता, रणदुर्मद और सूर्यपुत्र यमराजके समान शत्रुओंके लिये असह्य हैं। इसलिये ये रणभूमिमें हमारे विपक्षियोंपर विजय पा सकते हैं' ॥

एतदाचार्यतनयाच्छ्रुत्वा राजंस्तवात्मजः।
आशां बहुमतीं चक्रे कर्णं प्रति स वै तदा ॥ १८ ॥

राजन् ! उस समय आचार्यपुत्र अश्वत्थामाके मुखसे यह बात सुनकर आपके पुत्र दुर्योधनने कर्णके प्रति विशेष आशा बाँध ली ॥ १८ ॥

हते भीष्मे च द्रोणे च कर्णो जेष्यति पाण्डवान्।
तामाशां हृदये कृत्वा समाश्वस्य च भारत ॥ १९ ॥
ततो दुर्योधनः प्रीतः प्रियं श्रुत्वास्य तद् वचः।
प्रीतिसत्कारसंयुक्तं तथ्यमात्महितं शुभम् ॥ २० ॥
स्वं मनः समवस्थाप्य बाहुवीर्यमुपाश्रितः।
दुर्योधनो महाराज राधेयमिदमब्रवीत् ॥ २१ ॥

भरतनन्दन ! भीष्म और द्रोणाचार्यके मारे जानेपर कर्ण पाण्डवोंको जीत लेगा, इस आशाको हृदयमें रखकर दुर्योधनको बड़ी सान्त्वना मिली। महाराज ! वह अश्वत्थामाके उस प्रिय वचनको सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ। तत्पश्चात् अपने बाहुबलका आश्रय ले मनको सुस्थिर करके दुर्योधनने राधापुत्र कर्णसे बड़े प्रेम और सत्कारके साथ अपने लिये हितकर यथार्थ और मङ्गलकारक वचन इस प्रकार कहा—॥

कर्ण जानामि ते वीर्यं सौहृदं परमं मयि।
तथापि त्वां महाबाहो प्रवक्ष्यामि हितं वचः ॥ २२ ॥

'कर्ण ! मैं तुम्हारे पराक्रमको जानता हूँ और यह भी अनुभव करता हूँ कि मेरे प्रति तुम्हारा स्नेह बहुत अधिक है। महाबाहो ! तथापि मैं तुमसे अपने हितकी बात कहना चाहता हूँ ॥ २२ ॥

श्रुत्वा यथेष्टं च कुरु वीर यत् तव रोचते।
भवान् प्राज्ञतमो नित्यं मम चैव परा गतिः ॥ २३ ॥

'वीर ! मेरी यह बात सुनकर तुम अपनी इच्छाके अनुसार जो तुम्हें अच्छा लगे, वह करो। तुम बहुत बड़े बुद्धिमान् तो हो ही, सदाके लिये मेरे सबसे बड़े सहारे भी हो ॥ २३ ॥

भीष्मद्रोणावतिरथौ हतौ सेनापती मम ।
सेनापतिर्भवानस्तु ताभ्यां द्रविणवत्तरः ॥ २४ ॥

'मेरे दो सेनापति पितामह भीष्म और आचार्य द्रोण, जो अतिरथी वीर थे, युद्धमें मारे गये । अब तुम मेरे सेनानायक बनो; क्योंकि तुम उन दोनोंसे भी अधिक शक्तिशाली हो ॥ २४ ॥

वृद्धौ च तौ महेष्वासौ सापेक्षौ च धनंजये ।
मानितौ च मया वीरौ राधेय वचनात् तव ॥ २५ ॥

'वे दोनों महाधनुर्धर होते हुए भी बूढ़े थे और अर्जुनके प्रति उनके मनमें पक्षपात था । राधानन्दन ! मैंने तुम्हारे कहनेसे ही उन दोनों वीरोंको सेनापति बनाकर सम्मानित किया था ॥ २५ ॥

पितामहत्वं सम्प्रेक्ष्य पाण्डुपुत्रा महारणे ।
रक्षितास्तात भीष्मेण दिवसानि दशैव तु ॥ २६ ॥

'तात ! भीष्मने पितामहके नातेकी ओर दृष्टिपात करके उस महासमरमें दस दिनोंतक पाण्डवोंकी रक्षा की है ॥२६॥

न्यस्तशस्त्रे च भवति हतो भीष्मः पितामहः ।
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य फाल्गुनेन महाहवे ॥ २७ ॥

'उन दिनों तुमने हथियार रख दिया था; इसलिये महासमरमें अर्जुनने शिखण्डीको आगे करके पितामह भीष्मको मार डाला था ॥ २७ ॥

हते तस्मिन् महेष्वासे शरतल्पगते तथा ।
त्वयोक्ते पुरुषव्याघ्र द्रोणो ह्यासीत् पुरःसरः ॥ २८ ॥

'पुरुषसिंह ! उन महाधनुर्धर भीष्मके घायल होकर बाण-शय्यापर सो जानेके बाद तुम्हारे कहनेसे ही द्रोणाचार्य हमारी सेनाके अगुआ बनाये गये थे ॥ २८ ॥

तेनापि रक्षिताः पार्थाः शिष्यत्वादिति मे मतिः ।
स चापि निहतो वृद्धो धृष्टद्युम्नेन सत्वरम् ॥ २९ ॥

'मेरा विश्वास है कि उन्होंने भी अपना शिष्य समझकर कुन्तीके पुत्रोंकी रक्षा की है । वे बूढ़े आचार्य भी शीघ्र ही धृष्टद्युम्नके हाथसे मारे गये ॥ २९ ॥

निहताभ्यां प्रधानाभ्यां ताभ्याममितविक्रम ।
त्वत्समं समरे योधं नान्यं पश्यामि चिन्तयन्॥ ३० ॥

'अमितपराक्रमी वीर ! उन प्रधान सेनापतियोंके मारे जानेके पश्चात् मैं बहुत सोचनेपर भी समराङ्गणमें तुम्हारे समान दूसरे किसी योद्धाको नहीं देखता ॥ ३० ॥

भवानेव तु नः शक्तो विजयाय न संशयः ।
पूर्वं मध्ये च पश्चाच्च तथैव विहितं हितम् ॥ ३१ ॥

'हमलोगोंमेंसे तुम्हीं शत्रुओंपर विजय पानेमें समर्थ हो, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है । तुमने पहले, बीचमें और पीछे भी हमारा हित ही किया है ॥ ३१ ॥

स भवान् धुर्यवत् संख्ये धुरमुद्वोढुमर्हति ।
अभिषेचय सैनान्ये स्वयमात्मानमात्मना ॥ ३२ ॥

'तुम धुरन्धर पुरुषकी भाँति युद्धस्थलमें सेना-संचालनका भार वहन करनेके योग्य हो; इसलिये स्वयं ही अपने आपको सेनापतिके पदपर अभिषिक्त कराओ ॥ ३२ ॥

देवतानां यथा स्कन्दः सेनानीः प्रभुरव्ययः ।
तथा भवानिमां सेनां धार्तराष्ट्रीं बिभर्तु वै ॥ ३३ ॥

'जैसे अविनाशी भगवान् स्कन्द देवताओंकी सेनाका संचालन करते हैं, उसी प्रकार तुम भी धृतराष्ट्रपुत्रोंकी सेनाको अपनी अध्यक्षतामें ले लो ॥ ३३ ॥

जहि शत्रुगणान् सर्वान् महेन्द्रो दानवानिव ।
अवस्थितं रणे दृष्ट्वा पाण्डवास्त्वां महारथाः ॥ ३४ ॥
द्रविष्यन्ति च पञ्चाला विष्णुं दृष्ट्वेव दानवाः ।
तस्मात् त्वं पुरुषव्याघ्र प्रकर्षैतां महाचमूम्॥ ३५ ॥

'जैसे देवराज इन्द्रने दानवोंका संहार किया था, उसी प्रकार तुम भी समस्त शत्रुओंका वध करो । जैसे दानव भगवान् विष्णुको देखते ही भाग जाते हैं, उसी प्रकार पाण्डव तथा पाञ्चाल महारथी तुम्हें रणभूमिमें सेनापतिके रूपमें उपस्थित देखकर भाग खड़े होंगे; अतः पुरुषसिंह ! तुम इस विशाल सेनाका संचालन करो ॥ ३४–३५ ॥

भवत्यवस्थिते यत्ते पाण्डवा मन्दचेतसः ।
द्रविष्यन्ति सहामात्याः पञ्चालाः सृंजयाश्च ह ॥३६॥

'तुम्हारे सावधानीके साथ खड़े होते ही मूर्ख पाण्डव, पाञ्चाल और सृंजय अपने मन्त्रियोंसहित भाग जायँगे॥३६॥

यथा ह्यभ्युदितः सूर्यः प्रतपन् स्वेन तेजसा ।
व्यपोहति तमस्तीव्रं तथा शत्रून् प्रतापय ॥ ३७ ॥

'जैसे उदित हुआ सूर्य अपने तेजसे तपकर घोर अन्धकारको नष्ट कर देता है, उसी प्रकार तुम भी शत्रुओंको संतप्त एवं नष्ट करो' ॥ ३७ ॥

संजय उवाच

आशा बलवती राजन् पुत्रस्य तव याभवत् ।
हते भीष्मे च द्रोणे च कर्णो जेष्यति पाण्डवान् ।३८।
तामाशां हृदये कृत्वा कर्णमेवं तदाब्रवीत् ।
सूतपुत्र न ते पार्थः स्थित्वाग्रे संयुयुत्सति ॥ ३९ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! आपके पुत्रके मनमें जो यह प्रबल आशा हो गयी थी कि भीष्म और द्रोणके मारे जानेपर कर्ण पाण्डवोंको जीत लेगा, वही आशा मनमें लेकर उस समय उसने कर्णसे इस प्रकार कहा—'सूतपुत्र ! अर्जुन तुम्हारे सामने खड़े होकर कभी युद्ध करना नहीं चाहते हैं' ॥ ३८-३९ ॥

कर्ण उवाच

उक्तमेतन्मया पूर्वं गान्धारे तव संनिधौ ।
जेष्यामि पाण्डवान् सर्वान् सपुत्रान् सजनार्दनान्॥४०

कर्णने कहा—गान्धारीनन्दन ! मैंने तुम्हारे समीप

पहले ही यह बात कह दी है कि मैं पाण्डवोंको, उनके पुत्रों और श्रीकृष्णके साथ ही परास्त कर दूँगा ॥ ४० ॥

सेनापतिर्भविष्यामि तवाहं नात्र संशयः।
स्थिरो भव महाराज जितान् विद्धि च पाण्डवान्॥४१॥

महाराज ! तुम धैर्य धारण करो । मैं तुम्हारा सेनापति बनूँगा; इसमें कोई संदेह नहीं है । अब पाण्डवोंको पराजित हुआ ही समझो ॥ ४१ ॥

संजय उवाच

एवमुक्तो महाराज ततो दुर्योधनो नृपः।
उत्तस्थौ राजभिः सार्धं देवैरिव शतक्रतुः ॥ ४२ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! कर्णके ऐसा कहनेपर राजा दुर्योधन अन्य सामन्त नरेशोंके साथ उसी प्रकार उठकर खड़ा हो गया, जैसे देवताओंके साथ इन्द्र खड़े होते हैं ॥ ४२ ॥

सैनापत्येन सत्कर्तुं कर्णं स्कन्दमिवामराः।
ततोऽभिषिषिचुः कर्णं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ४३ ॥
दुर्योधनमुखा राजन् राजानो विजयैषिणः।

जैसे देवताओंने स्कन्दको सेनापति बनाकर उनका सत्कार किया था, उसी प्रकार समस्त कौरव कर्णको सेनापति बनाकर उसका सत्कार करनेके लिये उद्यत हुए । राजन् ! विजयाभिलाषी दुर्योधन आदि राजाओंने शास्त्रोक्त विधिके द्वारा कर्णका अभिषेक किया ॥ ४३½ ॥



शातकुम्भमयैः कुम्भैर्माहेयैश्चाभिमन्त्रितैः ॥ ४४ ॥
तोयपूर्णैर्विषाणैश्च द्विपखड्गमहर्षभैः।
मणिमुक्तायुतैश्चान्यैः पुण्यगन्धैस्तथौषधैः ॥ ४५ ॥
औदुम्बरे सुखासीनमासने क्षौमसंवृत।
शास्त्रदृष्टेन विधिना सम्भारैश्च सुसम्भृतैः ॥ ४६ ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्तथा शूद्राश्च सम्मताः।
तुष्टुवुस्तं महात्मानमभिषिक्तं वरासने ॥ ४७ ॥

अभिषेकके लिये सोने तथा मिट्टीके घड़ोंमें अभिमन्त्रित जल रक्खे गये थे । हाथीके दाँत तथा गैंडे और बैलके सींगोंके बने हुए पात्रोंमें भी पृथक्-पृथक् जल रक्खा गया था । उन पात्रोंमें मणि और मोती भी थे । अन्यान्य पवित्र गन्धशाली पदार्थ और औषध भी डाले गये थे । कर्ण गूलरकाठकी बनी हुई चौकीपर, जिसके ऊपर रेशमी कपड़ा बिछा हुआ था, सुखपूर्वक बैठा था । उस अवस्थामें शास्त्रीय विधिके अनुसार पूर्वोक्त सुसज्जित सामग्रियोंद्वारा ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों तथा सम्मानित शूद्रोंने उसका अभिषेक किया और अभिषेक हो जानेपर श्रेष्ठ आसनपर बैठे हुए महामना कर्णकी उन सब लोगोंने स्तुति की ॥ ४४–४७ ॥

ततोऽभिषिक्ते राजेन्द्र निष्कैर्गोभिर्धनेन च।
वाचयामास विप्राग्र्यान् राधेयः परवीरहा ॥ ४८ ॥

राजेन्द्र ! इस प्रकार अभिषेक-कार्य सम्पन्न हो जानेपर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले राधापुत्र कर्णने स्वर्णमुद्राएँ गौएँ तथा धन देकर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराया ॥

(स व्यरोचत राधेयः सूतमागधवन्दिभिः।
स्तूयमानो यथा भानुरुदये ब्रह्मवादिभिः ॥

उस समय सूत, मागध और वन्दीजनोंद्वारा की हुई अपनी स्तुति सुनता हुआ राधापुत्र कर्ण वेदवादी ब्राह्मणों-द्वारा अभिमन्त्रित उदयकालीन सूर्यके समान सुशोभित हो रहा था ॥

ततः पुण्याहघोषेण वादित्रनिनदेन च।
जयशब्देन शूराणां तुमुलः सर्वतोऽभवत् ॥
जयेत्यूचुर्नृपाः सर्वे राधेयं तत्र संगताः ॥)

तत्पश्चात् पुण्याहवाचनके शब्दसे, वाद्योंकी गंभीर ध्वनिसे तथा शूरवीरोंके जय-जयकारसे मिली-जुली हुई भयंकर आवाज वहाँ सब ओर गूँज उठी । उस स्थानपर एकत्र हुए सभी राजाओंने 'राधापुत्र कर्णकी जय' के नारे लगाये ॥

जय पार्थान् सगोविन्दान् सानुगांस्तान् महामृधे।
इति तं वन्दिनः प्राहुर्द्विजाश्च पुरुषर्षभम् ॥ ४९ ॥
जहि पार्थान् सपाञ्चालान् राधेय विजयाय नः।
उद्यन्निव सदा भानुस्तमांस्युग्रैर्गभस्तिभिः ॥ ५० ॥

वन्दीजनों तथा ब्राह्मणोंने उस समय पुरुषशिरोमणि कर्णको आशीर्वाद देते हुए कहा—'राधापुत्र ! तुम कुन्तीके पुत्रोंको, उनके सेवकों तथा श्रीकृष्णके साथ महासमरमें जीत लो और हमारी विजयके लिये कुन्तीकुमारोंको पाञ्चालों-सहित मार डालो । ठीक उसी तरह, जैसे सूर्य अपनी उग्र किरणोंद्वारा सदा उदय होते ही अन्धकारका विनाश कर देता है ॥ ४९-५० ॥

न ह्यलं त्वद्विसृष्टानां शराणां वै सकेशवाः।
उलूकाः सूर्यरश्मीनां ज्वलतामिव दर्शने ॥ ५१ ॥

'जैसे उल्लू सूर्यकी प्रज्वलित किरणोंकी ओर देखनेमें असमर्थ होते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे छोड़े हुए बाणोंकी ओर श्रीकृष्णसहित समस्त पाण्डव नहीं देख सकते ॥ ५१ ॥

न हि पार्थाः सपाञ्चालाः स्थातुं शक्तास्तवाग्रतः ।
आत्तशस्त्रस्य समरे महेन्द्रस्येव दानवाः ॥ ५२ ॥

'जैसे हाथमें वज्र लिये हुए इन्द्रके सामने दानव नहीं खड़े हो सकते, उसी प्रकार समराङ्गणमें तुम्हारे सामने पाञ्चाल और पाण्डव नहीं ठहर सकते हैं' ॥ ५२ ॥

अभिषिक्तस्तु राधेयः प्रभया सोऽमितप्रभः ।
अत्यरिच्यत रूपेण दिवाकर इवापरः ॥ ५३ ॥

राजन् ! इस प्रकार अभिषेकसम्पन्न हो जानेपर अमिततेजस्वी राधापुत्र कर्ण अपनी प्रभा तथा रूपसे दूसरे सूर्यके समान अधिक प्रकाशित होने लगा ॥ ५३ ॥

सैनापत्ये तु राधेयमभिषिच्य सुतस्तव ।
अमन्यत तदाऽऽत्मानं कृतार्थं कालचोदितः ॥ ५४ ॥

कालसे प्रेरित हुआ आपका पुत्र दुर्योधन राधाकुमार कर्णको सेनापतिके पदपर अभिषिक्त करके अपने आपको कृतकृत्य मानने लगा ॥ ५४ ॥

कर्णोऽपि राजन् सम्प्राप्य सैनापत्यमरिंदमः ।
योगमाज्ञापयामास सूर्यस्योदयनं प्रति ॥ ५५ ॥

राजन् ! शत्रुदमन कर्णने भी सेनापतिका पद प्राप्त करके सूर्योदयके समय सेनाको युद्धके लिये तैयार होनेकी आज्ञा दे दी ॥

तव पुत्रैर्वृतः कर्णः शुशुभे तत्र भारत ।
देवैरिव यथा स्कन्दः संग्रामे तारकामये ॥ ५६ ॥

भारत ! वहाँ आपके पुत्रोंसे घिरा हुआ कर्ण तारकामय संग्राममें देवताओंसे घिरे हुए स्कन्दके समान सुशोभित हो रहा था ॥ ५६ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णाभिषेके दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्णका अभिषेकविषयक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २½ श्लोक मिलाकर कुल ५८½ श्लोक हैं)

एकादशोऽध्यायः

कर्णके सेनापतित्वमें कौरव-सेनाका युद्धके लिये प्रस्थान और मकरव्यूहका निर्माण तथा पाण्डवसेनाके अर्धचन्द्राकार व्यूहकी रचना और युद्धका आरम्भ

धृतराष्ट्र उवाच

सैनापत्यं तु सम्प्राप्य कर्णो वैकर्तनस्तदा ।
तथोक्तश्च स्वयं राज्ञा स्निग्धं भ्रातृसमं वचः ॥ १ ॥
योगमाज्ञाप्य सेनानामादित्येऽभ्युदिते तदा ।
अकरोत् किं महाप्राज्ञस्तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ २ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! सेनापतिका पद पाकर जब परम बुद्धिमान् वैकर्तन कर्ण युद्धके लिये तैयार हुआ और जब स्वयं राजा दुर्योधनने उससे भाईके समान स्नेहपूर्ण वचन कहा, उस समय सूर्योदयकालमें सेनाको युद्धके लिये तैयार होनेकी आज्ञा देकर उसने क्या किया ? यह मुझे बताओ ॥ १-२ ॥

संजय उवाच

कर्णस्य मतमाज्ञाय पुत्रास्ते भरतर्षभ ।
योगमाज्ञापयामासुर्नन्दितूर्यपुरःसरम् ॥ ३ ॥

संजयने कहा—भरतश्रेष्ठ ! कर्णका मत जानकर आपके पुत्रोंने आनन्दमय वाद्योंके साथ सेनाको तैयार होनेका आदेश दिया ॥ ३ ॥

महत्यपररात्रे च तव सैन्यस्य मारिष ।
योगो योगेति सहसा प्रादुरासीन्महास्वनः ॥ ४ ॥

माननीय नरेश ! अत्यन्त प्रातःकालसे ही आपकी सेनामें सहसा 'तैयार हो जाओ, तैयार हो जाओ' का शब्द गूँज उठा॥

कल्प्यतां नागमुख्यानां रथानां च वरूथिनाम् ।
संनह्यतां नराणां च वाजिनां च विशाम्पते ॥ ५ ॥
क्रोशतां चैव योधानां त्वरितानां परस्परम् ।
बभूव तुमुलः शब्दो दिवस्पृक् सुमहांस्ततः ॥ ६ ॥

प्रजानाथ ! सजाये जाते हुए बड़े-बड़े गजराजों, आवरणयुक्त रथों, कवच धारण करते हुए मनुष्यों, कसे जाते हुए घोड़ों तथा उतावलीपूर्वक एक दूसरेको पुकारते हुए योद्धाओंका महान् तुमुल-नाद आकाशमें बहुत ऊँचेतक गूँज रहा था॥

ततः श्वेतपताकेन बलाकावर्णवाजिना ।
हेमपृष्ठेन धनुषा नागकक्ष्येण केतुना ॥ ७ ॥
तूणीरशतपूर्णेन सगदेन वरूथिना ।
शतघ्नीकिंकिणीशक्तिशूलतोमरधारिणा ॥ ८ ॥
कार्मुकैरुपपन्नेन विमलादित्यवर्चसा ।
रथेनाभिपताकेन सूतपुत्रोऽभ्यदृश्यत ॥ ९ ॥

तदनन्तर सूतपुत्र कर्ण निर्मल सूर्यके समान तेजस्वी और सब ओरसे पताकाओंद्वारा सुशोभित रथके द्वारा रणयात्राके लिये उद्यत दिखायी दिया। उस रथमें श्वेत पताका फहरा रही थी। बगुलोंके समान सफेद रंगके घोड़े जुते हुए थे। उसपर एक ऐसा धनुष रक्खा हुआ था, जिसके पृष्ठभागपर सोना मढ़ा गया था। उस रथकी पताकापर हाथीके रस्सेका चिह्न बना हुआ था। उसमें गदाके साथ ही सैकड़ों तरकस रक्खे गये थे। रथकी रक्षाके लिये ऊपरसे आवरण लगाया गया था। उसमें शतघ्नी, किंकिणी, शक्ति, शूल और तोमर सञ्चित करके रक्खे गये थे तथा वह रथ अनेक धनुषोंसे सम्पन्न था ॥७–९॥

ध्मापयन् वारिजं राजन् हेमजालविभूषितम् ।
विधुन्वानो महच्चापं कार्तस्वरविभूषितम् ॥ १० ॥

राजन् ! कर्ण सोनेकी जालियोंसे विभूषित शङ्खको बजाता हुआ अपने सुवर्णसज्जित विशाल धनुषकी टङ्कार कर रहा था॥

दृष्ट्वा कर्णं महेष्वासं रथस्थं रथिनां वरम्।
भानुमन्तमिवोद्यन्तं तमो घ्नन्तं दुरासदम् ॥ ११ ॥
न भीष्मव्यसनं केचिन्नापि द्रोणस्य मारिष।
नान्येषां पुरुषव्याघ्र मेनिरे तत्र कौरवाः ॥ १२ ॥

पुरुषसिंह ! माननीय नरेश ! रथियोंमें श्रेष्ठ महाधनुर्धर दुर्जय वीर कर्ण रथपर बैठकर उदयकालीन सूर्यके समान तम (दुःख या अन्धकार) का निवारण कर रहा था। उसे देखकर कोई भी कौरव भीष्म, द्रोण तथा दूसरे महारथियोंके मारे जानेके दुःखको कुछ नहीं समझते थे ॥ ११-१२ ॥

ततस्तु त्वरयन् योधाञ्शङ्खशब्देन मारिष।
कर्णो निष्कर्षयामास कौरवाणां महद् बलम् ॥ १३ ॥

मान्यवर ! तदनन्तर शङ्खध्वनिके द्वारा योद्धाओंको जल्दी करनेका आदेश देते हुए कर्णने कौरवोंकी विशाल वाहिनीको शिविरोंसे बाहर निकाला ॥ १३ ॥

व्यूहं व्यूह्य महेष्वासो मकरं शत्रुतापनः।
प्रत्युद्ययौ तथा कर्णः पाण्डवान् विजिगीषया ॥ १४ ॥

तत्पश्चात् शत्रुओंको संताप देनेवाला महाधनुर्धर कर्ण पाण्डवोंको जीत लेनेकी इच्छासे अपनी सेनाका मकर-व्यूह बनाकर आगे बढ़ा ॥ १४ ॥

मकरस्य तु तुण्डे वै कर्णो राजन् व्यवस्थितः।
नेत्राभ्यां शकुनिः शूर उलूकश्च महारथः ॥ १५ ॥

राजन् ! उस मकरव्यूहके मुखभागमें स्वयं कर्ण खड़ा हुआ, नेत्रोंके स्थानमें शूरवीर शकुनि तथा महारथी उलूक खड़े किये गये ॥ १५ ॥

द्रोणपुत्रस्तु शिरसि ग्रीवायां सर्वसोदराः।
मध्ये दुर्योधनो राजा बलेन महता वृतः ॥ १६ ॥

शीर्षस्थानमें द्रोणकुमार अश्वत्थामा और ग्रीवाभागमें दुर्योधनके समस्त भाई स्थित हुए। मध्यस्थान (कटिप्रदेश) में विशाल सेनासे घिरा हुआ राजा दुर्योधन खड़ा हुआ ॥

वामपादे तु राजेन्द्र कृतवर्मा व्यवस्थितः।
नारायणबलैर्युक्तो गोपालैर्युद्धदुर्मदैः ॥ १७ ॥

राजेन्द्र ! उस मकरव्यूहके बायें पैरकी जगह नारायणी सेनाके रणदुर्मद गोपालोंके साथ कृतवर्मा खड़ा किया गया था॥

पादे तु दक्षिणे राजन् गौतमः सत्यविक्रमः।
त्रिगर्तैः सुमहेष्वासैर्दाक्षिणात्यैश्च संवृतः ॥ १८ ॥

राजन् ! व्यूहके दाहिने पैरके स्थानमें महाधनुर्धर त्रिगर्तों और दाक्षिणात्योंसे घिरे हुए सत्यपराक्रमी कृपाचार्य खड़े थे ॥

अनुपादे तु यो वामस्तत्र शल्यो व्यवस्थितः।
महत्या सेनया सार्धं मद्रदेशसमुत्थया ॥ १९ ॥

बायें पैरके पिछले भागमें मद्रदेशकी विशाल सेनाके साथ स्वयं राजा शल्य उपस्थित थे ॥ १९ ॥

दक्षिणे तु महाराज सुषेणः सत्यसंगरः।
वृतो रथसहस्रेण दन्तिनां च त्रिभिः शतैः ॥ २० ॥

महाराज ! दाहिने पैरके पिछले भागमें एक सहस्र रथियों और तीन सौ हाथियोंसे घिरे हुए सत्यप्रतिज्ञ सुषेण खड़े किये गये ॥ २० ॥

पुच्छे ह्यास्तां महावीर्यौ भ्रातरौ पार्थिवौ तदा।
चित्रश्च चित्रसेनश्च महत्या सेनया वृतौ ॥ २१ ॥

व्यूहके पुच्छभागमें महापराक्रमी दोनों भाई राजा चित्र और चित्रसेन अपनी विशाल सेनाके साथ उपस्थित हुए ॥

तथा प्रयाते राजेन्द्र कर्णे नरवरोत्तमे।
धनंजयमभिप्रेक्ष्य धर्मराजोऽब्रवीदिदम् ॥ २२ ॥

राजेन्द्र ! मनुष्योंमें श्रेष्ठ कर्णके इस प्रकार यात्रा करनेपर धर्मराज युधिष्ठिरने अर्जुनकी ओर देखकर इस प्रकार कहा—॥

पश्य पार्थ यथा सेना धार्तराष्ट्रीह संयुगे।
कर्णेन विहिता वीर गुप्ता वीरैर्महारथैः ॥ २३ ॥

'वीर पार्थ ! देखो, इस समय युद्धस्थलमें धृतराष्ट्रपुत्रोंकी सेना कैसी स्थितिमें है ? कर्णने वीर महारथियोंद्वारा इसे किस प्रकार सुरक्षित कर दिया है ? ॥ २३ ॥

हतवीरतमा ह्येषा धार्तराष्ट्री महाचमूः।
फल्गुशेषा महाबाहो तृणैस्तुल्या मता मम ॥ २४ ॥

'महाबाहो ! कौरवोंकी इस विशाल सेनाके प्रमुख वीर तो मारे जा चुके हैं। अब इसके तुच्छ सैनिक ही शेष रह गये हैं। इस समय तो यह मुझे तिनकोंके समान जान पड़ती है॥

एको ह्यत्र महेष्वासः सूतपुत्रो विराजते।
सदेवासुरगन्धर्वैः सकिन्नरमहोरगैः ॥ २५ ॥
चराचरैस्त्रिभिर्लोकैर्योऽजय्यो रथिनां वरः।
तं हत्वाद्य महाबाहो विजयस्तव फाल्गुन ॥ २६ ॥
उद्धृतश्च भवेच्छल्यो मम द्वादशवार्षिकः।
एवं ज्ञात्वा महाबाहो व्यूहं व्यूह यथेच्छसि ॥ २७ ॥

'इस सेनामें एकमात्र महाधनुर्धर सूतपुत्र कर्ण विराजमान है, जो रथियोंमें श्रेष्ठ है तथा जिसे देवता, असुर, गन्धर्व, किन्नर, बड़े-बड़े नाग एवं चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोकोंके लोग मिलकर भी नहीं जीत सकते। महाबाहु फाल्गुन ! आज उसी कर्णको मारकर तुम्हारी विजय होगी और मेरे हृदयमें बारह वर्षोंसे जो सेल कसक रहा है, वह निकल जायगा। महाबाहो ! ऐसा जानकर तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसे व्यूहकी रचना करो' ॥ २५–२७ ॥

भ्रातुरेतद् वचः श्रुत्वा पाण्डवः श्वेतवाहनः।
अर्धचन्द्रेण व्यूहेन प्रत्यव्यूहत तां चमूम् ॥ २८ ॥

भाईकी यह बात सुनकर श्वेतवाहन पाण्डुपुत्र अर्जुनने इस कौरव-सेनाके मुकाबलेमें अपनी सेनाके अर्द्धचन्द्राकार व्यूहकी रचना की ॥ २८ ॥

वामपार्श्वे तु तस्याथ भीमसेनो व्यवस्थितः।

दक्षिणे च महेष्वासो धृष्टद्युम्नो व्यवस्थितः ॥ २९ ॥
मध्ये व्यूहस्य राजा तु पाण्डवश्च धनंजयः ।
नकुलः सहदेवश्च धर्मराजस्य पृष्ठतः ॥ ३० ॥

उस व्यूहके वाम पार्श्वमें भीमसेन और दाहिने पार्श्वमें महाधनुर्धर धृष्टद्युम्न खड़े हुए। उसके मध्यभागमें राजा युधिष्ठिर और पाण्डुपुत्र धनंजय खड़े थे । धर्मराजके पृष्ठभागमें नकुल और सहदेव थे ॥ २९-३० ॥

चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ ।
नार्जुनं जहतुर्युद्धे पाल्यमानौ किरीटिना ॥ ३१ ॥

पाञ्चाल महारथी युधामन्यु और उत्तमौजा अर्जुनके चक्र-रक्षक थे । किरीटधारी अर्जुनसे सुरक्षित होकर उन दोनोंने युद्धमें कभी उनका साथ नहीं छोड़ा ॥ ३१ ॥

शेषा नृपतयो वीराः स्थिता व्यूहस्य दंशिताः ।
यथाभागं यथोत्साहं यथायत्नं च भारत ॥ ३२ ॥

भारत ! शेष वीर नरेश कवच धारण करके व्यूहके विभिन्न भागोंमें अपने उत्साह और प्रयत्नके अनुसार खड़े हुए थे ॥

एवमेतन्महाव्यूहं व्यूह्य भारत पाण्डवाः ।
तावकाश्च महेष्वासा युद्धायैव मनो दधुः ॥ ३३ ॥

भरतनन्दन ! इस प्रकार इस महाव्यूहकी रचना करके पाण्डवों तथा आपके महाधनुर्धरोंने युद्धमें ही मन लगाया ॥

दृष्ट्वा व्यूढां तव चमूं सूतपुत्रेण संयुगे ।
निहतान् पाण्डवान् मेने धार्तराष्ट्रः सबान्धवः ॥ ३४ ॥

युद्धस्थलमें सूतपुत्र कर्णके द्वारा व्यूह-रचनापूर्वक खड़ी की गयी आपकी सेनाको देखकर भाइयोंसहित दुर्योधनने यह मान लिया कि 'अब तो पाण्डव मारे गये' ॥ ३४ ॥

तथैव पाण्डवीं सेनां व्यूढां दृष्ट्वा युधिष्ठिरः ।
धार्तराष्ट्रान् हतान् मेने सकर्णान् वै जनाधिपः॥ ३५ ॥

उसी प्रकार पाण्डवसेनाका व्यूह देखकर राजा युधिष्ठिरने भी कर्णसहित आपके सभी पुत्रोंको मारा गया ही समझ लिया ॥

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकदुन्दुभिः ।
डिण्डिमाश्चाप्यहन्यन्त झर्झराश्च समन्ततः ॥ ३६ ॥
सेनयोरुभयो राजन् प्रावाद्यन्त महास्वनाः ।
सिंहनादश्च संजज्ञे शूराणां जयगृद्धिनाम् ॥ ३७ ॥

राजन् ! तदनन्तर दोनों सेनाओंमें चारों ओर महान् शब्द करनेवाले शङ्ख, भेरी, पणव, आनक, दुन्दुभि और झाँझ आदि बाजे बज उठे । नगाड़े पीटे जाने लगे । साथ ही विजयकी अभिलाषा रखनेवाले शूरवीरोंका सिंहनाद भी होने लगा ॥ ३६-३७ ॥

हयह्रेषितशब्दाश्च वारणानां च बृंहताम् ।
रथनेमिस्वनाश्चोग्राः सम्बभूवुर्जनाधिप ॥ ३८ ॥

जनेश्वर ! घोड़ोंके हींसने, हाथियोंके चिग्घाड़ने तथा रथके पहियोंके घरघरानेके भयंकर शब्द प्रकट होने लगे ॥

न द्रोणव्यसनं कश्चिज्जानीते तत्र भारत ।
दृष्ट्वा कर्णं महेष्वासं मुखे व्यूहस्य दंशितम् ॥ ३९ ॥

भारत ! व्यूहके मुख्य द्वारपर कवच धारण किये महा-धनुर्धर कर्णको खड़ा देख कोई भी सैनिक द्रोणाचार्यके मारे जानेके दुःखका अनुभव न कर सका ॥ ३९ ॥

उभे सैन्ये महाराज प्रहृष्टनरसंकुले ।
योद्धुकामे स्थिते राजन् हन्तुमन्योन्यमोजसा ॥ ४० ॥

महाराज ! वे दोनों सेनाएँ हर्षोत्फुल्ल मनुष्योंसे भरी थीं । राजन् ! वे बलपूर्वक परस्पर चोट करने और जूझनेकी इच्छासे मैदानमें आकर खड़ी हो गयीं ॥४०॥

तत्र यत्तौ सुसंरब्धौ दृष्ट्वान्योन्यं व्यवस्थितौ ।
अनीकमध्ये राजेन्द्र चेरतुः कर्णपाण्डवौ ॥ ४१ ॥

राजेन्द्र ! वहाँ रोषमें भरकर सावधानीके साथ खड़े हुए कर्ण और पाण्डव अपनी-अपनी सेनामें विचरने लगे ॥ ४१ ॥

नृत्यमाने च ते सेने समेयातां परस्परम् ।
तयोः पक्षप्रपक्षेभ्यो निर्जग्मुस्ते युयुत्सवः ॥ ४२ ॥

वे दोनों सेनाएँ परस्पर नृत्य करती हुई-सी भिड़ गयीं । युद्धकी अभिलाषा रखनेवाले वीर उन दोनों व्यूहोंके पक्ष और प्रपक्षसे निकलने लगे ॥ ४२ ॥

ततः प्रववृते युद्धं नरवारणवाजिनाम् ।
रथानां च महाराज अन्योन्यमभिनिघ्नताम् ॥ ४३ ॥

महाराज ! तदनन्तर एक दूसरेपर आघात करनेवाले मनुष्य, हाथी, घोड़ों और रथोंका वह महान् युद्ध आरम्भ हो गया ॥ ४३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि व्यूहनिर्माणे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें व्यूहनिर्माणविषयक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

दोनों सेनाओंका घोर युद्ध और भीमसेनके द्वारा क्षेमधूर्तिका वध

संजय उवाच

ते सेनेऽन्योन्यमासाद्य प्रहृष्टाश्वनरद्विपे ।
बृहत्यौ सम्प्रजह्राते देवासुरसमप्रभे ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! उन दोनों सेनाओंके हाथी, घोड़े और मनुष्य बहुत प्रसन्न थे । देवताओं तथा असुरोंके समान प्रकाशित होनेवाली वे दोनों विशाल सेनाएँ परस्पर भिड़कर अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करने लगीं ॥ १ ॥

ततो नररथाश्वेभाः पत्तयश्चोग्रविक्रमाः ।
सम्प्रहारान् भृशं चक्रुर्देहपाप्मासुनाशनान् ॥ २ ॥

तत्पश्चात् भयंकर पराक्रमी रथी, हाथीसवार, घुड़सवार और पैदल सैनिक शरीर, प्राण और पापोंका विनाश करनेवाले घोर प्रहार बड़े जोर-जोरसे करने लगे ॥ २ ॥

पूर्णचन्द्रार्कपद्मानां कान्तिभिर्गन्धतः समैः ।
उत्तमाङ्गैर्नृसिंहानां नृसिंहास्तस्तरुर्महीम् ॥ ३ ॥

मनुष्योंमें सिंहके समान पराक्रमी वीरोंने विपक्षी पुरुषसिंहोंके मस्तकोंको काट-काटकर उनके द्वारा धरतीको पाटने लगे । उनके वे मस्तक पूर्ण चन्द्रमा और सूर्यके समान कान्तिमान् तथा कमलोंके समान सुगन्धित थे ॥ ३ ॥

अर्धचन्द्रैस्तथा भल्लैः क्षुरप्रैरसिपट्टिशैः ।
परश्वधैश्चाप्यकृन्तन्नुत्तमाङ्गानि युध्यताम् ॥ ४ ॥

अर्द्धचन्द्र, भल्ल, क्षुरप्र, खड्ग, पट्टिश और फरसोंद्वारा वे योद्धाओंके मस्तक काटने लगे ॥ ४ ॥

व्यायतायतबाहूनां व्यायतायतबाहुभिः ।
बाहवः पातिता रेजुर्धरण्यां सायुधाङ्गदाः ॥ ५ ॥

हृष्ट-पुष्ट और लंबी भुजाओंवाले वीरोंने, हृष्ट-पुष्ट और लंबी बाँहोंवाले योद्धाओंकी बाँहें पृथ्वीपर काट गिरायीं । वे भुजाएँ आयुधों और अङ्गदोंसहित शोभा पा रही थीं ॥५॥

तैः स्फुरद्भिर्मही भाति रक्ताङ्गुलितलैस्तथा ।
गरुडप्रहितैरुग्रैः पञ्चास्यैरुरगैरिव॥ ६ ॥

जिनके तलवे और अङ्गुलियाँ लाल रंगकी थीं, उन तड़पती हुई भुजाओंसे रणभूमिकी वैसी ही शोभा हो रही थी, मानो वहाँ गरुड़के गिराये हुए भयंकर पञ्चमुख सर्प छटपटा रहे हों ॥ ६ ॥

द्विरदस्यन्दनाश्वेभ्यः पेतुर्वीरा द्विषद्धताः ।
विमानेभ्यो यथा क्षीणे पुण्ये स्वर्गसदस्तथा ॥ ७ ॥

शत्रुओंद्वारा मारे गये वीर हाथी, रथ और घोड़ोंसे उसी प्रकार गिर रहे थे, जैसे स्वर्गवासी जीव पुण्य क्षीण होनेपर वहाँके विमानोंसे नीचे गिर पड़ते हैं ॥ ७ ॥

गदाभिरन्ये गुर्वीभिः परिघैर्मुसलैरपि।
पोथिताः शतशः पेतुर्वीरा वीरतरै रणे ॥ ८ ॥

अन्य सैकड़ों वीर बड़े-बड़े वीरोंद्वारा भारी गदाओं, परिघों और मुसलोंसे कुचले जाकर रणभूमिमें गिर रहे थे ॥ ८ ॥

रथा रथैर्विमथिता मत्ता मत्तैर्द्विपा द्विपैः ।
सादिनः सादिभिश्चैव तस्मिन् परमसंकुले ॥ ९ ॥

उस भारी घमासान युद्धमें रथोंने रथोंको मथ डाला, मतवाले हाथियोंने मदमत्त गजराजोंको धराशायी कर दिया और घुड़सवारोंने घुड़सवारोंको कुचल डाला ॥ ९ ॥

रथैर्नरा रथा नागैरश्वारोहाश्च पत्तिभिः ।
अश्वारोहैः पदाताश्च निहता युधि शेरते ॥ १० ॥

रथियोंद्वारा मारे गये पैदल मनुष्य, हाथियोंद्वारा कुचले गये रथ और रथी, पैदलोंद्वारा मारे गये घुड़सवार और घुड़सवारोंद्वारा कालके गालमें भेजे गये पैदल सिपाही उस युद्धभूमिमें सो रहे थे ॥ १० ॥

रथाश्वपत्तयो नागै रथाश्वेभाश्च पत्तिभिः ।
रथपत्तिद्विपाश्चाश्वै रथैश्चापि नरद्विपाः ॥ ११ ॥

गजों और गजारोहियोंने रथियों, घुड़सवारों और पैदलोंको मार गिराया, पैदलोंने रथियों, घुड़सवारों और हाथीसवारोंको धराशायी कर दिया, घुड़सवारोंने रथियों, पैदलों और गजारोहियोंको मार डाला तथा रथियोंने भी पैदल मनुष्यों और गजारोहियोंको मार गिराया ॥ ११ ॥

रथाश्वेभनराणां तु नराश्वेभरथैः कृतम् ।
पाणिपादैश्च शस्त्रैश्च रथैश्च कदनं महत् ॥ १२ ॥

पैदल, घुड़सवार, हाथीसवार तथा रथियोंने रथियों, घुड़सवारों, हाथीसवारों और पैदलोंका हाथों, पैरों, अस्त्र-शस्त्रों एवं रथोंद्वारा महान् संहार कर डाला ॥ १२ ॥

तथा तस्मिन् बले शूरैर्वध्यमाने हतेऽपि च ।
अस्मानभ्याययुः पार्था वृकोदरपुरोगमाः ॥ १३ ॥

इस प्रकार जब शूरवीरोंद्वारा वह सेना मारी जाने लगी और मारी गयी, तब कुन्तीके पुत्रोंने भीमसेनको आगे रखकर हमलोगोंपर आक्रमण किया ॥ १३ ॥

धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ।
सात्यकिश्चेकितानश्च द्राविडैः सैनिकैः सह ॥ १४ ॥
वृता व्यूहेन महता पाण्ड्याश्चोलाः सकेरलाः ।

धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, द्रौपदीके पुत्र, प्रभद्रक, सात्यकि, चेकितान,द्राविड सैनिकोंसहित महान् व्यूहसे घिरे हुए पाण्ड्य, चोल तथा केरल योद्धाओंने धावा किया ॥ १४½ ॥

व्यूढोरस्का दीर्घभुजाः प्रांशवः पृथुलोचनाः ॥ १५ ॥
आपीडिनो रक्तदन्ता मत्तमातङ्गविक्रमाः ।

इन सबकी छाती चौड़ी और भुजाएँ तथा आँखें बड़ी थीं । वे सब-के-सब ऊँचे कदके थे । उन्होंने भाँति-भाँतिके शिरोभूषण एवं हार धारण किये थे । उनके दाँत लाल थे और वे मतवाले हाथीके समान पराक्रमी थे ॥ १५½ ॥

नानाविरागवसना गन्धचूर्णावचूर्णिताः॥ १६ ॥
बद्धासयः पाशहस्ता वारणप्रतिवारणाः ।

उन्होंने अनेक प्रकारके रंगीन वस्त्र पहन रक्खे थे और अपने अङ्गोंमें सुगन्धित चूर्ण लगा रक्खा था । उनकी कमरमें तलवार बँधी थी, वे हाथमें पाश लिये हुए थे और हाथियोंको भी रोक देनेकी शक्ति रखते थे ॥ १६½ ॥

समानमृत्यवो राजन् नात्यजन्त परस्परम् ॥ १७ ॥
कलापिनश्चापहस्ता दीर्घकेशाः प्रियंवदाः ।
पत्तयः सादिनश्चान्ये घोररूपपराक्रमाः ॥ १८ ॥

राजन्! वे सभी सैनिक समानरूपसे मृत्युको वरण करनेकी प्रतिज्ञा करके एक दूसरेका साथ नहीं छोड़ते थे। वे मस्तकपर मोरपंख धारण किये हुए थे। उनके हाथोंमें धनुष शोभा पाता था। उनके केश बहुत बड़े थे और वे प्रिय वचन बोलते थे। अन्यान्य पैदल और घुड़सवार भी बड़े भयंकर पराक्रमी थे॥ १७-१८॥

अथापरे पुनः शूराश्चेदिपञ्चालकेकयाः।
कारूषाः कोसलाः काञ्च्या मागधाश्चापि दुद्रुवुः॥ १९॥

तदनन्तर पुनः दूसरे शूरवीर चेदि, पाञ्चाल, केकय, कारूष, कोसल, काञ्चीनिवासी और मागध सैनिक भी हमी लोगोंपर चढ़ आये॥ १९॥

तेषां रथाश्वनागाश्च प्रवराश्चोग्रपत्तयः।
नानावाद्यधरैर्हृष्टा नृत्यन्ति च हसन्ति च॥ २०॥

उनके रथ, घोड़े और हाथी उत्तम कोटिके थे। पैदल सैनिक भी बड़े भयंकर थे। वे नाना प्रकारके बाजे बजानेवालोंके साथ हर्षमें भरकर नाचते-कूदते और हँसते थे॥

तस्य सैन्यस्य महतो महामात्रवरैर्वृतः।
मध्ये वृकोदरोऽभ्यायात् त्वदीयान् नागधूर्गतः॥ २१॥

उस विशाल सेनाके मध्यभागमें हाथीकी पीठपर बड़े-बड़े महावतोंसे घिरकर बैठे हुए भीमसेन आपके सैनिकोंकी ओर बढ़े आ रहे थे॥ २१॥

स नागप्रवरोऽत्युग्रो विधिवत् कल्पितो बभौ।
उदयाद्र्यग्र्यभवनं यथाभ्युदितभास्करम्॥ २२॥

उस अत्यन्त भयंकर गजराजको विधिपूर्वक सजाया गया था, वह सूर्योदयसे युक्त उदयाचलके उच्चतम शिखरके समान सुशोभित होता था॥ २२॥

तस्यायसं वर्म वरं वररत्नविभूषितम्।
ताराव्याप्तस्य नभसः शारदस्य समत्विषम्॥ २३॥

उसका लोहेका बना हुआ उत्तम कवच श्रेष्ठ रत्नोंसे विभूषित होकर ताराओंसे भरे हुए शरत्कालीन आकाशके समान प्रकाशित हो रहा था॥ २३॥

स तोमरव्यग्रकरश्चारुमौलिः स्वलंकृतः।
शरन्मध्यंदिनार्काभस्तेजसा व्यदहद् रिपून्॥ २४॥

उस समय सुन्दर मुकुट और आभूषणोंसे विभूषित हो हाथमें तोमर लेकर शरत्कालके मध्याह्न सूर्यके समान प्रकाशित होनेवाले भीमसेन अपने तेजसे शत्रुओंको दग्ध करने लगे॥

तं दृष्ट्वा द्विरदं दूरात् क्षेमधूर्तिर्द्विपस्थितः।
आह्वयन्नभिदुद्राव प्रमनाः प्रमनस्तरम्॥ २५॥

उनके उस हाथीको दूरसे ही देखकर हाथीपर ही बैठे हुए महामना क्षेमधूर्तिने महामनस्वी भीमसेनको ललकारते हुए उनपर धावा किया॥ २५॥

तयोः समभवद् युद्धं द्विपयोरुग्ररूपयोः।
यदृच्छया द्रुमवतोर्महापर्वतयोरिव॥ २६॥

जैसे वृक्षोंसे भरे हुए दो महान् पर्वत दैवेच्छासे परस्पर टकरा रहे हों, उसी प्रकार उन भयानक रूपधारी दोनों गजराजोंमें भारी युद्ध छिड़ गया॥ २६॥

संसक्तनागौ तौ वीरौ तोमरैरितरेतरम्।
बलवत् सूर्यरश्म्याभैर्भित्त्वान्योन्यं विनेदतुः॥ २७॥

जिनके हाथी एक दूसरेसे उलझे हुए थे, वे दोनों वीर क्षेमधूर्ति और भीमसेन सूर्यकी किरणोंके समान चमकीले तोमरोंद्वारा एक दूसरेको बलपूर्वक विदीर्ण करते हुए जोर-जोरसे गर्जने लगे॥ २७॥

व्यपसृत्य तु नागाभ्यां मण्डलानि विचेरतुः।
प्रगृह्य चोभौ धनुषी जघ्नतुर्वै परस्परम्॥ २८॥

फिर हाथियोंद्वारा ही पीछे हटकर वे दोनों मण्डलाकार विचरने और धनुष लेकर एक दूसरेपर बाणोंका प्रहार करने लगे॥ २८॥

क्ष्वेडितास्फोटितरवैर्बाणशब्दैस्तु सर्वतः।
तौ जनं हर्षयन्तौ च सिंहनादं प्रचक्रतुः॥ २९॥

वे गर्जने, ताल ठोंकने और बाणोंके शब्दसे चारों ओरके योद्धाओंको हर्ष प्रदान करते हुए सिंहनाद कर रहे थे॥

समुद्यतकराभ्यां तौ द्विपाभ्यां कृतिनावुभौ।
वातोद्धूतपताकाभ्यां युयुधाते महाबलौ॥ ३०॥

वे दोनों महाबली और विद्वान् योद्धा उन सूँड़ उठाये हुए दोनों हाथियोंद्वारा युद्ध कर रहे थे। उस समय उन हाथियोंके ऊपर लगी हुई पताकाएँ हवाके वेगसे फहरा रही थीं॥

तावन्योन्यस्य धनुषी छित्त्वान्योन्यं विनेदतुः।
शक्तितोमरवर्षेण प्रावृण्मेघाविवाम्बुभिः॥ ३१॥

जैसे वर्षाकालके दो मेघ पानी बरसा रहे हों, उसी प्रकार शक्ति और तोमरोंकी वर्षासे एक दूसरेके धनुषको काटकर वे दोनों ही परस्पर गर्जन-तर्जन करने लगे॥ ३१॥

क्षेमधूर्तिस्तदा भीमं तोमरेण स्तनान्तरे।
निर्बिभेदातिवेगेन षड्भिश्चाप्यपरैर्नदन्॥ ३२॥

उस समय क्षेमधूर्तिने भीमसेनकी छातीमें बड़े वेगसे एक तोमर धँसा दिया। फिर गर्जना करते हुए उसने उन्हें छः तोमर और मारे॥ ३२॥

स भीमसेनः शुशुभे तोमरै रङ्गमाश्रितैः।
क्रोधदीप्तवपुर्मेघैः सप्तसप्तिरिवांशुमान्॥ ३३॥

अपने शरीरमें धँसे हुए उन तोमरोंद्वारा क्रोधसे उद्दीप्त शरीरवाले भीमसेन मेघोंद्वारा सात घोड़ोंवाले सूर्यके समान सुशोभित हो रहे थे॥ ३३॥

ततो भास्करवर्णाभमञ्जोगतिमयस्मयम्।
ससर्ज तोमरं भीमः प्रत्यमित्राय यत्नवान्॥ ३४॥

तब भीमसेनने सूर्यके समान प्रकाशमान तथा सीधी

गतिसे जानेवाले एक लोहमय तोमरको अपने शत्रुपर प्रयत्नपूर्वक छोड़ा ॥ ३४ ॥

ततः कुलूताधिपतिश्चापमानम्य सायकैः ।
दशभिस्तोमरं भित्त्वा षष्ट्या विव्याध पाण्डवम् ॥३५॥

यह देख कुलूतदेशके राजा क्षेमधूर्तिने अपने धनुषको नवाकर दस सायकोंसे उस तोमरको काट डाला और साठ बाण मारकर भीमसेनको भी घायल कर दिया ॥ ३५ ॥

अथ कार्मुकमादाय भीमो जलदनिःस्वनम् ।
रिपोरभ्यर्दयन्नागमुन्नदन् पाण्डवः शरैः ॥ ३६ ॥

तत्पश्चात् गर्जते हुए पाण्डुपुत्र भीमसेनने मेघ-गर्जनाके समान गम्भीर घोष करनेवाले धनुषको लेकर अपने बाणोंद्वारा शत्रुके हाथीको पीड़ित कर दिया ॥३६॥

स शरौघार्दितो नागो भीमसेनेन संयुगे ।
गृह्यमाणोऽपि नातिष्ठद् वातोद्धूत इवाम्बुदः ॥ ३७ ॥

युद्धस्थलमें भीमसेनके बाणसमूहोंसे पीड़ित हुआ वह गजराज हवाके उड़ाये हुए बादलोंके समान रोकनेपर भी वहाँ रुक न सका ॥ ३७ ॥

तमभ्यधावद् द्विरदं भीमो भीमस्य नागराट् ।
महावातेरितं मेघं वातोद्धूत इवाम्बुदः ॥ ३८ ॥

जैसे आँधीके उड़ाये हुए मेघके पीछे वायुप्रेरित दूसरा मेघ जा रहा हो, उसी प्रकार भीमसेनका भयंकर गजराज क्षेमधूर्तिके उस हाथीका पीछा करने लगा ॥ ३८ ॥

संनिवार्यात्मनो नागं क्षेमधूर्तिः प्रतापवान् ।
विव्याधाभिद्रुतं बाणैर्भीमसेनस्य कुञ्जरम् ॥ ३९ ॥

उस समय प्रतापी क्षेमधूर्तिने अपने हाथीको किसी प्रकार रोककर सामने आते हुए भीमसेनके हाथीको बाणोंसे बींध डाला ॥ ३९ ॥

ततः साधुविसृष्टेन क्षुरेणानतपर्वणा ।
छित्त्वा शरासनं शत्रोर्नागमामित्रमार्दयत् ॥ ४० ॥

इसके बाद अच्छी तरह छोड़े हुए झुकी हुई गाँठवाले क्षुर नामक बाणसे भीमसेनने शत्रुके धनुषको काटकर उसके हाथीको पुनः अच्छी तरह पीड़ित किया ॥४०॥

ततः क्रुद्धो रणे भीमं क्षेमधूर्तिः पराभिनत् ।
जघान चास्य द्विरदं नाराचैः सर्वमर्मसु ॥ ४१ ॥

तब क्षेमधूर्तिने कुपित हो रणभूमिमें भीमसेनको गहरी चोट पहुँचायी और अनेक नाराचोंद्वारा उनके हाथीके सम्पूर्ण मर्मस्थानोंमें आघात किया ॥ ४१ ॥

स पपात महानागो भीमसेनस्य भारत ।
पुरा नागस्य पतनादवप्लुत्य स्थितो महीम् ॥ ४२ ॥

भारत ! इससे भीमसेनका महान् गजराज पृथ्वीपर गिर पड़ा । उसके गिरनेसे पहले ही भीमसेन कूदकर भूमिपर खड़े हो गये ॥ ४२ ॥

तस्य भीमोऽपि द्विरदं गदया समपोथयत् ।
तस्मात् प्रमथितान्नागात् क्षेमधूर्तिमवप्लुतम् ॥ ४३ ॥
उद्यतायुधमायान्तं गदयाहन् वृकोदरः ।
स पपात हतः सासिर्व्यसुस्तमभितो द्विपम् ॥ ४४ ॥

तदनन्तर भीमने भी अपनी गदासे क्षेमधूर्तिके हाथीको मार डाला । फिर जब उस मरे हुए हाथीसे कूदकर क्षेमधूर्ति तलवार उठाये सामने आने लगा, उस समय भीमसेनने उस-



पर भी गदासे प्रहार किया । गदाकी चोट खाकर उसके प्राणपखेरू उड़ गये और वह तलवार लिये हुए अपने हाथीके पास ही गिर पड़ा ॥ ४३-४४ ॥

वज्रप्रभग्नमचलं सिंहो वज्रहतो यथा ।
तं हतं नृपतिं दृष्ट्वा कुलूतानां यशस्करम् ।
प्राद्रवद् व्यथिता सेना त्वदीया भरतर्षभ ॥ ४५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! जैसे वज्रके आघातसे टूट-फूटकर गिरे हुए पर्वतके समीप वज्रका मारा हुआ सिंह गिरा हो, उसी प्रकार उस हाथीके समीप क्षेमधूर्ति धराशायी हो रहे थे । कुलूतोंका यश बढ़ानेवाले राजा क्षेमधूर्तिको मारा गया देख आपकी सेना व्यथित होकर भागने लगी ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि क्षेमधूर्तिवधे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें क्षेमधूर्तिका वधविषयक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

दोनों सेनाओंका परस्पर घोर युद्ध तथा सात्यकिके द्वारा विन्द और अनुविन्दका वध

संजय उवाच

ततः कर्णो महेष्वासः पाण्डवानामनीकिनीम्।
जघान समरे शूरः शरैः संनतपर्वभिः॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! तत्पश्चात् महाधनुर्धर शूरवीर कर्णने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा समराङ्गणमें पाण्डव-सेनाका संहार आरम्भ किया॥ १॥

तथैव पाण्डवा राजंस्तव पुत्रस्य वाहिनीम्।
कर्णस्य प्रमुखे क्रुद्धा निजघ्नुस्ते महारथाः॥ २॥

राजन्! इसी प्रकार क्रोधमें भरे हुए महारथी पाण्डव भी कर्णके सामने ही आपके बेटेकी सेनाका विनाश करने लगे॥

कर्णोऽपि राजन् समरे व्यहनत् पाण्डवीं चमूम्।
नाराचैरर्करश्म्याभैः कर्मारपरिमार्जितैः॥ ३॥

महाराज! कर्णके नाराच कारीगरोंद्वारा धोकर साफ किये गये थे, इसलिये सूर्यकी किरणोंके समान चमक रहे थे। उनके द्वारा वह भी रणभूमिमें पाण्डव-सेनाका वध करने लगा॥ ३॥

तत्र भारत कर्णेन नाराचैस्ताडिता गजाः।
नेदुः सेदुश्च मम्लुश्च बभ्रमुश्च दिशो दश॥ ४॥

भरतनन्दन! वहाँ कर्णके चलाये हुए नाराचोंकी मार खाकर झुंड-के-झुंड हाथी चिग्घाड़ने, पीड़ासे कराहने, मलिन होने और दसों दिशाओंमें चक्कर काटने लगे॥ ४॥

वध्यमाने बले तस्मिन् सूतपुत्रेण मारिष।
नकुलोऽभ्यद्रवत् तूर्णं सूतपुत्रं महारणे॥ ५॥

माननीय नरेश! सूतपुत्रके द्वारा उस महासमरमें जब अपनी सेना मारी जाने लगी, तब नकुलने तुरंत ही कर्णपर धावा किया॥ ५॥

भीमसेनस्तथा द्रौणिं कुर्वाणं कर्म दुष्करम्।
विन्दानुविन्दौ कैकेयौ सात्यकिः समवारयत्॥ ६॥

भीमसेनने दुष्कर कर्म करते हुए अश्वत्थामाको तथा सात्यकिने केकयदेशीय विन्द और अनुविन्दको रोका॥

श्रुतकर्माणमायान्तं चित्रसेनो महीपतिः।
प्रतिविन्ध्यस्तथा चित्रं चित्रकेतनकार्मुकम्॥ ७॥

सामने आते हुए श्रुतकर्माको राजा चित्रसेनने रोका तथा प्रतिविन्ध्यने विचित्र ध्वज और धनुषवाले चित्रका सामना किया॥ ७॥

दुर्योधनस्तु राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम्।
संशप्तकगणान् क्रुद्धो ह्यभ्यधावद् धनंजयः॥ ८॥

दुर्योधनने धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरपर और क्रोधमें भरे हुए अर्जुनने संशप्तकगणोंपर धावा किया॥ ८॥

धृष्टद्युम्नः कृपेणाथ तस्मिन् वीरवरक्षये।
शिखण्डी कृतवर्माणं समासादयदच्युतम्॥ ९॥

बड़े-बड़े वीरोंका संहार करनेवाले उस संग्राममें धृष्टद्युम्न कृपाचार्यके साथ युद्ध करने लगे और शिखण्डी कभी पीछे न हटनेवाले कृतवर्मासे भिड़ गया॥ ९॥

श्रुतकीर्तिस्तथा शल्यं माद्रीपुत्रः सुतं तव।
दुःशासनं महाराज सहदेवः प्रतापवान्॥ १०॥

महाराज! श्रुतकीर्तिने शल्यपर और प्रतापी माद्रीकुमार सहदेवने आपके पुत्र दुःशासनपर आक्रमण किया॥१०॥

कैकेयौ सात्यकिं युद्धे शरवर्षेण भास्वता।
सात्यकिः केकयौ चापि च्छादयामास भारत॥ ११॥

भरतनन्दन! केकयराजकुमार विन्द और अनुविन्दने युद्धमें चमकीले बाणोंकी वर्षा करके सात्यकिको और सात्यकिने दोनों केकयराजकुमारोंको आच्छादित कर दिया॥ ११॥

तावेनं भ्रातरौ वीरौ जघ्नतुर्हृदये भृशम्।
विषाणाभ्यां यथा नागौ प्रतिनागं महावने॥ १२॥

जैसे विशाल वनमें दो हाथी अपने विरोधी हाथीपर दोनों दाँतोंसे प्रहार करते हों, उसी प्रकार वे दोनों वीर भ्राता विन्द और अनुविन्द सात्यकिकी छातीमें गहरी चोट पहुँचाने लगे॥ १२॥

शरसम्भिन्नवर्माणौ तावुभौ भ्रातरौ रणे।
सात्यकिं सत्यकर्माणं राजन् विव्यधतुः शरैः॥ १३॥

राजन्! उन दोनोंके कवच बाणोंसे छिन्न-भिन्न हो गये थे, तो भी उन दोनों भाइयोंने रणभूमिमें सत्यकर्मा सात्यकिको बाणोंसे घायल कर दिया॥ १३॥

तौ सात्यकिर्महाराज प्रहसन् सर्वतोदिशः।
छादयञ्छरवर्षेण वारयामास भारत॥ १४॥

महाराज! भरतनन्दन! सात्यकिने हँसते-हँसते सम्पूर्ण दिशाओंको अपने बाणोंकी वर्षासे आच्छादित करके उन दोनों भाइयोंको रोक दिया॥ १४॥

वार्यमाणौ ततस्तौ हि शैनेयशरवृष्टिभिः।
शैनेयस्य रथं तूर्णं छादयामासतुः शरैः॥ १५॥

सात्यकिकी बाणवर्षासे रोके जाते हुए उन दोनों राजकुमारोंने तुरंत ही उनके रथको बाणोंसे आच्छादित कर दिया॥ १५॥

तयोस्तु धनुषी चित्रे छित्त्वा शौरिर्महायशाः।
अथ तौ सायकैस्तीक्ष्णैर्वारयामास संयुगे॥ १६॥

तब महायशस्वी सात्यकिने अपने तीखे बाणोंसे उन दोनोंके विचित्र धनुषोंको काटकर उन्हें युद्धस्थलमें आगे बढ़नेसे रोक दिया॥ १६॥

अथान्ये धनुषी चित्रे प्रगृह्य च महाशरान्।

सात्यकिं छादयन्तौ तौ चेरतुर्लघु सुष्ठु च ॥ १७ ॥

फिर वे दोनों भाई दूसरे विचित्र धनुष और उत्तम बाण लेकर सात्यकिको आच्छादित करते हुए सुन्दर एवं शीघ्र गतिसे सब ओर विचरने लगे ॥ १७ ॥

ताभ्यां मुक्ता महाबाणाः कङ्कबर्हिणवाससः ।
द्योतयन्तो दिशः सर्वाः सम्पेतुः स्वर्णभूषणाः ॥ १८ ॥

उन दोनोंके छोड़े हुए स्वर्णभूषित महान् बाण, जो कङ्क और मोरके पंखोंसे सुशोभित थे, सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करते हुए गिरने लगे ॥ १८ ॥

बाणान्धकारमभवत् तयो राजन् महामृधे ।
अन्योन्यस्य धनुश्चैव चिच्छिदुस्ते महारथाः ॥ १९ ॥

राजन् ! उस महासमरमें उन दोनोंके बाणोंसे अन्धकार छा गया । फिर उन तीनों महारथियोंने एक दूसरेके धनुष काट डाले ॥ १९ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज सात्वतो युद्धदुर्मदः ।
धनुरन्यत् समादाय सज्यं कृत्वा च संयुगे ॥ २० ॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन अनुविन्दशिरोऽहरत् ।

महाराज ! फिर तो रणदुर्मद सात्यकि कुपित हो उठे । उन्होंने युद्धस्थलमें दूसरा धनुष लेकर उसकी प्रत्यञ्चा चढ़ायी और एक अत्यन्त तीखे क्षुरप्रके द्वारा अनुविन्दका सिर काट लिया ॥ २०½ ॥



अपतत् तच्छिरो राजन् कुण्डलोपचितं महत् ॥ २१ ॥
शम्बरस्य शिरो यद्वन्निहतस्य महारणे ।
शोचयन् केकयान् सर्वाञ्जगामाशु वसुन्धराम् ॥ २२ ॥

राजन् ! उस महासमरमें मारे गये अनुविन्दका कुण्डलमण्डित महान् मस्तक शम्बरासुरके सिरके समान कटकर गिरा और समस्त केकयोंको शोकमें डालता हुआ शीघ्र पृथ्वीपर जा पड़ा ॥ २१–२२ ॥

तं दृष्ट्वा निहतं शूरं भ्राता तस्य महारथः ।
सज्यमन्यद् धनुः कृत्वा शैनेयं पर्यवारयत् ॥ २३ ॥

शूरवीर अनुविन्दको मारा गया देख उसके महारथी भाई विन्दने अपने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर सात्यकिको चारों ओरसे रोका ॥ २३ ॥

स षष्ट्या सात्यकिं विद्ध्वा स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।
ननाद बलवन्नादं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ २४ ॥

उसने शिलापर तेज किये गये सुवर्णपंखयुक्त साठ बाणोंद्वारा सात्यकिको घायल करके बड़े जोरकी गर्जना की और कहा—'खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ २४ ॥

सात्यकिं च ततस्तूर्णं केकयानां महारथः ।
शरैरनेकसाहस्रैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ २५ ॥

तदनन्तर केकय-महारथी विन्दने तुरंत ही सात्यकिकी दोनों भुजाओं और छातीमें कई हजार बाण मारे ॥ २५ ॥

स शरैः क्षतसर्वाङ्गः सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
रराज समरे राजन् सपुष्प इव किंशुकः ॥ २६ ॥

राजन् ! उन बाणोंसे समराङ्गणमें सत्यपराक्रमी सात्यकिके सारे अङ्ग क्षत-विक्षत हो लहू-लुहान हो गये और वे खिले हुए पलाशके समान सुशोभित होने लगे ॥ २६ ॥

सात्यकिः समरे विद्धः कैकेयेन महात्मना ।
कैकेयं पञ्चविंशत्या विव्याध प्रहसन्निव ॥ २७ ॥

महामना कैकेय (विन्द) के द्वारा समराङ्गणमें घायल हुए सात्यकिने हँसते हुए-से पचीस बाण मारकर कैकेयको भी घायल कर दिया ॥ २७ ॥

तावन्योन्यस्य समरे संछिद्य धनुषी शुभे ।
हत्वा च सारथी तूर्णं हयांश्च रथिनां वरौ ॥ २८ ॥

उन दोनों महारथियोंने युद्धस्थलमें एक दूसरेके सुन्दर धनुष काटकर तुरंत ही सारथि और घोड़े भी मार डाले ॥ २८ ॥

विरथावसियुद्धाय समाजग्मतुराहवे ।
शतचन्द्रचिते गृह्य चर्मणी सुभुजौ तथा ॥ २९ ॥

फिर वे सुन्दर भुजाओंवाले दोनों वीर रथहीन होकर सौ चन्द्राकार चिह्नोंसे युक्त ढाल और तलवार लिये खड्ग-युद्धके लिये उद्यत हो युद्धस्थलमें एक दूसरेके सामने आये ॥ २९ ॥

व्यरोचेतां महारङ्गे निस्त्रिंशवरधारिणौ ।
यथा देवासुरे युद्धे जम्भशक्रौ महाबलौ ॥ ३० ॥

जैसे देवासुर-संग्राममें महाबली इन्द्र और जम्भासुर

शोभा पाते थे, उसी प्रकार युद्धके उस महान् रङ्गस्थलमें उत्तम खड्ग धारण किये हुए वे दोनों योद्धा सुशोभित हो रहे थे ॥ ३० ॥

मण्डलानि ततस्तौ तु विचरन्तौ महारणे।
अन्योन्यमभितस्तूर्णं समाजग्मतुराहवे ॥ ३१ ॥

उस महासमरमें मण्डलाकार विचरते और पैंतरे दिखाते हुए वे दोनों वीर तुरंत ही एक दूसरेके समीप आ गये ॥ ३१ ॥

अन्योन्यस्य वधे चैव चक्रतुर्यत्नमुत्तमम् ।
कैकेयस्य द्विधा चर्म ततश्चिच्छेद सात्वतः ॥ ३२ ॥
सात्यकेस्तु तथैवासौ चर्म चिच्छेद पार्थिवः।

फिर वे एक दूसरेके वधके लिये भारी यत्न करने लगे। तदनन्तर सात्यकिने विन्दकी ढालके दो टुकड़े कर दिये। इसी प्रकार राजकुमार विन्दने भी सात्यकिकी ढाल टूक-टूक कर दी॥ ३२½ ॥

चर्म च्छित्त्वा तु कैकेयस्तारागणशतैर्वृतम् ॥ ३३ ॥
चचार मण्डलान्येव गतप्रत्यागतानि च।

सैकड़ों तारक-चिह्नोंसे भरी हुई सात्यकिकी ढाल काटकर विन्द गत और प्रत्यागत आदि पैंतरे बदलने लगा ॥ ३३½ ॥

तं चरन्तं महारङ्गे निस्त्रिंशवरधारिणम् ॥ ३४ ॥
अपहस्तेन चिच्छेद शैनेयस्त्वरयान्वितः ।

युद्धके उस महान् रङ्गस्थलमें श्रेष्ठ खड्ग धारण करके विचरते हुए विन्दको सात्यकिने तिरछे हाथसे शीघ्रतापूर्वक काट डाला ॥ ३४½ ॥

सवर्मा केकयो राजन् द्विधा छिन्नो महारणे ॥ ३५ ॥
निपपात महेष्वासो वज्राहत इवाचलः।

राजन्! इस प्रकार महायुद्धमें दो टुकड़ोंमें कटा हुआ कवचसहित महाधनुर्धर केकयराज वज्रके मारे हुए पर्वतके समान गिर पड़ा ॥ ३५½ ॥

तं निहत्य रणे शूरः शैनेयो रथसत्तमः ॥ ३६ ॥
युधामन्युरथं तूर्णमारुरोह परंतपः ।

रथियोंमें श्रेष्ठ शत्रुदमन रणशूर सात्यकि विन्दका वध करके तुरंत ही युधामन्युके रथपर चढ़ गये ॥ ३६½ ॥

ततोऽन्यं रथमास्थाय विधिवत्कल्पितं पुनः ।
केकयानां महत् सैन्यं व्यधमत् सात्यकिः शरैः ॥३७॥

तत्पश्चात् विधिपूर्वक सजाकर लाये हुए दूसरे रथपर आरूढ़ हो सात्यकि अपने बाणोंद्वारा केकयोंकी विशाल सेनाका संहार करने लगे ॥ ३७ ॥

सा वध्यमाना समरे केकयानां महाचमूः ।
तमुत्सृज्य रणे शत्रुं प्रदुद्राव दिशो दश ॥ ३८ ॥

समरभूमिमें मारी जाती हुई केकयोंकी वह विशाल सेना रणमें शत्रुको त्यागकर दसों दिशाओंमें भाग गयी ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि विन्दानुविन्दवधे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें विन्द और अनुविन्दका वधविषयक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

द्रौपदीपुत्र श्रुतकर्मा और प्रतिविन्ध्यद्वारा क्रमशः चित्रसेन एवं चित्रका वध, कौरवसेनाका पलायन तथा अश्वत्थामाका भीमसेनपर आक्रमण

संजय उवाच

श्रुतकर्मा ततो राजंश्चित्रसेनं महीपतिम्।
आजघ्ने समरे क्रुद्धः पञ्चाशद्भिः शिलीमुखैः॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर श्रुतकर्माने समराङ्गणमें कुपित हो राजा चित्रसेनको पचास बाण मारे॥

अभिसारस्तु तं राजन् नवभिर्नतपर्वभिः ।
श्रुतकर्माणमाहत्य सूतं विव्याध पञ्चभिः ॥ २ ॥

नरेश्वर! अभिसारके राजा चित्रसेनने झुकी हुई गाँठवाले नौ बाणोंसे श्रुतकर्माको घायल करके पाँचसे उसके सारथिको भी बींध डाला ॥ २ ॥

श्रुतकर्मा ततः क्रुद्धश्चित्रसेनं चमूमुखे ।
नाराचेन सुतीक्ष्णेन मर्मदेशे समार्पयत् ॥ ३ ॥

तब क्रोधमें भरे हुए श्रुतकर्माने सेनाके मुहानेपर तीखे नाराचसे चित्रसेनके मर्मस्थलपर आघात किया॥ ३ ॥

सोऽतिविद्धो महाराज नाराचेन महात्मना।
मूर्छामभिययौ वीरः कश्मलं चाविवेश ह ॥ ४ ॥

महामना श्रुतकर्माके नाराचसे अत्यन्त घायल होनेपर वीर चित्रसेनको मूर्छा आ गयी। वे अचेत हो गये॥ ४॥

एतस्मिन्नन्तरे चैनं श्रुतकीर्तिर्महायशाः।
नवत्या जगतीपालं छादयामास पत्रिभिः॥ ५ ॥

इसी बीचमें महायशस्वी श्रुतकीर्तिने नब्बे बाणोंसे भूपाल चित्रसेनको आच्छादित कर दिया ॥ ५ ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां चित्रसेनो महारथः ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन तं च विव्याध सप्तभिः॥ ६ ॥

तदनन्तर होशमें आकर महारथी चित्रसेनने एक भल्लसे श्रुतकर्माका धनुष काट डाला और उसे भी सात बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ६ ॥

सोऽन्यत् कार्मुकमादाय वेगघ्नं रुक्मभूषितम् ।
चित्ररूपधरं चक्रे चित्रसेनं शरोर्मिभिः ॥ ७ ॥

तब श्रुतकर्माने शत्रुओंके वेगको नष्ट करनेवाला दूसरा

सुवर्णभूषित धनुष लेकर चित्रसेनको अपने बाणोंकी लहरोंसे विचित्र रूपधारी बना दिया ॥ ७ ॥

स शरैश्चित्रितो राजा चित्रमाल्यधरो युवा ।
अशोभत महारङ्गे श्वाविच्छललतो यथा ॥ ८ ॥

विचित्र माला धारण करनेवाले नवयुवक राजा चित्रसेन उन बाणोंसे चित्रित हो युद्धके महान् रङ्गस्थलमें काँटोंसे भरे हुए साहीके समान सुशोभित होने लगे ॥ ८ ॥

श्रुतकर्माणमथ वै नाराचेन स्तनान्तरे ।
बिभेद तरसा शूरस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ९ ॥

तब उस शूरवीर नरेशने श्रुतकर्माकी छातीमें बड़े वेगसे नाराचका प्रहार किया और कहा—'खड़ा रह, खड़ा रह' ॥

श्रुतकर्मापि समरे नाराचेन समर्पितः ।
सुस्राव रुधिरं तत्र गैरिकार्द्र इवाचलः ॥ १० ॥

उस समय नाराचसे घायल हुआ श्रुतकर्मा समराङ्गणमें उसी प्रकार रक्त बहाने लगा, जैसे गेरूसे भीगा हुआ पर्वत लाल रंगकी जलधारा बहाता है ॥ १० ॥

ततः स रुधिराक्ताङ्गो रुधिरेण कृतच्छविः ।
रराज समरे वीरः सपुष्प इव किंशुकः ॥ ११ ॥

तत्पश्चात् खूनसे लथपथ अंगोंवाला वीर श्रुतकर्मा समराङ्गणमें उस रुधिरसे अभिनव शोभा धारण करके खिले हुए पलाशवृक्षके समान सुशोभित हुआ ॥ ११ ॥

श्रुतकर्मा ततो राजञ्शत्रुणा समभिद्रुतः ।
शत्रुसंवारणं क्रुद्धो द्विधा चिच्छेद कार्मुकम् ॥ १२ ॥

राजन् ! शत्रुके द्वारा इस प्रकार आक्रान्त होनेपर श्रुतकर्मा कुपित हो उठा और उसने राजा चित्रसेनके शत्रु-निवारक धनुषके दो टुकड़े कर डाले ॥ १२ ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं नाराचानां शतैस्त्रिभिः ।
छादयन् समरे राजन् विव्याध च सुपत्रिभिः ॥ १३ ॥

महाराज ! धनुष कट जानेपर चित्रसेनको आच्छादित करते हुए श्रुतकर्माने सुन्दर पंखवाले तीन सौ नाराचोंद्वारा उसे घायल कर दिया ॥ १३ ॥

ततोऽपरेण भल्लेन तीक्ष्णेन निशितेन च ।
जहार सशिरस्त्राणं शिरस्तस्य महात्मनः ॥ १४ ॥

तदनन्तर एक पैनी धारवाले तीखे भल्लसे उसने महामना चित्रसेनके शिरस्त्राणसहित मस्तकको काट लिया ॥ १४ ॥

तच्छिरो न्यपतद् भूमौ चित्रसेनस्य दीप्तिमत् ।
यदृच्छया यथा चन्द्रश्च्युतः स्वर्गान्महीतलम् ॥ १५ ॥

चित्रसेनका वह दीप्तिशाली मस्तक पृथ्वीपर गिर पड़ा, मानो चन्द्रमा दैवेच्छावश स्वर्गसे भूतलपर आ गिरा हो ॥१५॥

राजानं निहतं दृष्ट्वा तेऽभिसारं तु मारिष ।
अभ्यद्रवन्त वेगेन चित्रसेनस्य सैनिकाः ॥ १६ ॥

माननीय नरेश ! अभिसार देशके अधिपति राजा चित्रसेनको मारा गया देख उनके सैनिक बड़े वेगसे भाग चले ॥

ततः क्रुद्धो महेष्वासस्तत्सैन्यं प्राद्रवच्छरैः ।
अन्तकाले यथा क्रुद्धः सर्वभूतानि प्रेतराट् ॥ १७ ॥

तत्पश्चात् क्रोधमें भरे हुए महाधनुर्धर श्रुतकर्माने अपने बाणोंद्वारा उस सेनापर आक्रमण किया, मानो प्रलयकालमें कुपित हुए यमराज समस्त प्राणियोंपर धावा बोल रहे हों॥१७॥

ते वध्यमानाः समरे तव पौत्रेण धन्विना ।
व्यद्रवन्त दिशस्तूर्णं दावदग्धा इव द्विपाः ॥ १८ ॥

युद्धमें आपके धनुर्धर पौत्र श्रुतकर्माद्वारा मारे जाते हुए वे सैनिक दावानलसे झुलसे हुए हाथियोंके समान तुरंत ही सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग गये ॥ १८ ॥

तांस्तु विद्रवतो दृष्ट्वा निरुत्साहान् द्विषज्जये ।
द्रावयन्निषुभिस्तीक्ष्णैः श्रुतकर्मा व्यरोचत ॥ १९ ॥

शत्रुओंपर विजय पानेका उत्साह छोड़कर भागते हुए उन सैनिकोंको देखकर अपने तीखे बाणोंसे उन्हें खदेड़ते हुए श्रुतकर्माकी अपूर्व शोभा हो रही थी ॥ १९ ॥

प्रतिविन्ध्यस्ततश्चित्रं भित्त्वा पञ्चभिराशुगैः ।
सारथिं च त्रिभिर्विद्ध्वा ध्वजमेकेषुणापि च ॥ २० ॥

दूसरी ओर प्रतिविन्ध्यने पाँच बाणोंद्वारा चित्रको क्षत-विक्षत करके तीन बाणोंसे सारथिको घायल कर दिया और एक बाणसे उसके ध्वजको भी बींध डाला ॥ २० ॥

तं चित्रो नवभिर्भल्लैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ।
स्वर्णपुङ्खैः प्रसन्नाग्रैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ॥ २१ ॥

तब चित्रने कङ्क और मयूरकी पाँखोंसे युक्त स्वच्छ धार और सुनहरे पंखवाले नौ भल्लोंसे प्रतिविन्ध्यकी दोनों भुजाओं और छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ २१ ॥

प्रतिविन्ध्यो धनुश्छित्त्वा तस्य भारत सायकैः ।
पञ्चभिर्निशितैर्बाणैरथैनं स हि जघ्निवान् ॥ २२ ॥

भारत ! प्रतिविन्ध्यने अपने बाणोंद्वारा उसके धनुषको काटकर पाँच तीखे बाणोंसे चित्रको भी घायल कर दिया॥२२॥

ततः शक्तिं महाराज स्वर्णघण्टां दुरासदाम् ।
प्राहिणोत् तव पौत्राय घोरामग्निशिखामिव ॥ २३ ॥

महाराज ! तदनन्तर चित्रने आपके पौत्रपर घोर अग्नि-शिखाके समान सुवर्णमय घंटोंसे सुशोभित एक दुर्धर्ष शक्ति चलायी ॥ २३ ॥

तामापतन्तीं सहसा महोल्काप्रतिमां तदा ।
द्विधा चिच्छेद समरे प्रतिविन्ध्यो हसन्निव ॥ २४ ॥

समराङ्गणमें बड़ी भारी उल्काके समान सहसा आती हुई उस शक्तिको प्रतिविन्ध्यने हँसते हुए-से दो टुकड़ोंमें काट डाला ॥ २४ ॥

सा पपात द्विधा छिन्ना प्रतिविन्ध्यशरैः शितैः ।
युगान्ते सर्वभूतानि त्रासयन्ती यथाशनिः ॥ २५ ॥

प्रतिविन्ध्यके तीखे बाणोंसे दो टूक होकर वह शक्ति प्रलयकालमें सम्पूर्ण प्राणियोंको भयभीत करनेवाली अशनिके समान गिर पड़ी ॥ २५ ॥

शक्तिं तां प्रहतां दृष्ट्वा चित्रो गृह्य महागदाम्।
प्रतिविन्ध्याय चिक्षेप रुक्मजालविभूषिताम् ॥ २६॥

उस शक्तिको नष्ट हुई देख चित्रने सोनेकी जालियोंसे विभूषित एक विशाल गदा हाथमें ले ली और उसे प्रतिविन्ध्यपर छोड़ दिया ॥ २६ ॥

सा जघान हयांस्तस्य सारथिं च महारणे ।
रथं प्रमृद्य वेगेन धरणीमन्वपद्यत ॥ २७ ॥

उस गदाने महासमरमें प्रतिविन्ध्यके घोड़ों और सारथिको मार डाला और रथको भी चूर-चूर करती हुई वह बड़े वेगसे पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ २७ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु रथादाप्लुत्य भारत ।
शक्तिं चिक्षेप चित्राय स्वर्णदण्डामलंकृताम् ॥ २८ ॥

भारत ! इसी बीचमें रथसे कूदकर प्रतिविन्ध्यने चित्रपर एक सुवर्णमय दण्डवाली सुसज्जित शक्ति चलायी ॥ २८ ॥

तामापतन्तीं जग्राह चित्रो राजन् महामनाः ।
ततस्तामेव चिक्षेप प्रतिविन्ध्याय पार्थिवः ॥ २९ ॥

राजन् ! महामना राजा चित्रने अपनी ओर आती हुई उस शक्तिको हाथसे पकड़ लिया और फिर उसीको प्रतिविन्ध्यपर दे मारा ॥ २९ ॥

समासाद्य रणे शूरं प्रतिविन्ध्यं महाप्रभा ।
निर्भिद्य दक्षिणं बाहुं निपपात महीतले ।
पतिताभासयच्चैव तं देशमशनिर्यथा ॥ ३० ॥

वह अत्यन्त कान्तिमती शक्ति रणभूमिमें शूरवीर प्रतिविन्ध्यको जा लगी और उसकी दाहिनी भुजाको विदीर्ण करती हुई पृथ्वीपर गिर पड़ी। वह जहाँ गिरी, उस स्थानको बिजलीके समान प्रकाशित करने लगी ॥ ३० ॥

प्रतिविन्ध्यस्ततो राजंस्तोमरं हेमभूषितम् ।
प्रेषयामास संक्रुद्धश्चित्रस्य वधकाङ्क्षया ॥ ३१ ॥

राजन् ! तब अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए प्रतिविन्ध्यने चित्रके वधकी इच्छासे उसके ऊपर एक सुवर्णभूषित तोमरका प्रहार किया ॥ ३१ ॥

स तस्य गात्रावरणं भित्त्वा हृदयमेव च ।
जगाम धरणीं तूर्णं महोरग इवाशयम् ॥ ३२ ॥

वह तोमर उसके कवच और वक्षःस्थलको विदीर्ण करता हुआ तुरंत धरतीमें समा गया, जैसे कोई बड़ा सर्प बिलमें घुस गया हो ॥ ३२ ॥

स पपात तदा राजा तोमरेण समाहतः ।
प्रसार्य विपुलौ बाहू पीनौ परिघसंनिभौ ॥ ३३ ॥

तोमरसे अत्यन्त आहत हो राजा चित्र अपनी परिघके



समान मोटी और विशाल भुजाओंको फैलाकर तत्काल पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३३ ॥

चित्रं सम्प्रेक्ष्य निहतं तावका रणशोभिनः ।
अभ्यद्रवन्त वेगेन प्रतिविन्ध्यं समन्ततः ॥ ३४ ॥

चित्रको मारा गया देख संग्राममें शोभा पानेवाले आपके योद्धा प्रतिविन्ध्यपर चारों ओरसे वेगपूर्वक टूट पड़े ॥ ३४ ॥

सृजन्तो विविधान् बाणाञ्शतघ्नीश्च सकिङ्किणीः ।
तमवच्छादयामासुः सूर्यमभ्रगणा इव ॥ ३५ ॥

जैसे बादल सूर्यको ढक लेते हैं, उसी प्रकार उन योद्धाओंने नाना प्रकारके बाणों और छोटी-छोटी घंटियोंसहित शतघ्नियोंका प्रहार करके उसे आच्छादित कर दिया ॥ ३५ ॥

तान् विधम्य महाबाहुः शरजालेन संयुगे ।
व्यद्रावयत् तव चमूं वज्रहस्त इवासुरीम् ॥ ३६ ॥

जैसे वज्रधारी इन्द्र असुरोंकी सेनाको खदेड़ते हैं, उसी प्रकार युद्धस्थलमें महाबाहु प्रतिविन्ध्यने अपने बाणसमूहोंसे उन अस्त्र-शस्त्रोंको नष्ट करके आपकी सेनाको मार भगाया ॥

ते वध्यमानाः समरे तावकाः पाण्डवैर्नृप ।
विप्राकीर्यन्त सहसा वातनुन्ना घना इव ॥ ३७ ॥

नरेश्वर ! समरभूमिमें पाण्डवोंकी मार खाकर आपके सैनिक हवाके उड़ाये हुए बादलोंके समान सहसा छिन्न-भिन्न होकर बिखर गये ॥ ३७ ॥

विप्रद्रुते बले तस्मिन् वध्यमाने समन्ततः ।
द्रौणिरेकोऽभ्ययात् तूर्णं भीमसेनं महाबलम् ॥ ३८ ॥

उनके द्वारा मारी जाती हुई आपकी वह सेना जब चारों ओर भागने लगी, तब अकेले अश्वत्थामाने तुरंत ही महाबली भीमसेनपर आक्रमण कर दिया ॥ ३८ ॥

ततः समागमो घोरो बभूव सहसा तयोः ।
यथा देवासुरे युद्धे वृत्रवासवयोरिव ॥ ३९ ॥

फिर तो देवासुर-संग्राममें वृत्रासुर और इन्द्रके समान उन दोनों वीरोंमें सहसा घोर युद्ध छिड़ गया ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि चित्रवधे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें चित्रसेन और चित्रका वधविषयक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः

अश्वत्थामा और भीमसेनका अद्भुत युद्ध तथा दोनोंका मूर्छित हो जाना

संजय उवाच

भीमसेनं ततो द्रौणी राजन् विव्याध पत्रिणा ।
परया त्वरया युक्तो दर्शयन्नस्त्रलाघवम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं--राजन् ! तदनन्तर द्रोणकुमार अश्वत्थामाने बड़ी उतावलीके साथ अस्त्र चलानेमें अपनी फुर्ती दिखाते हुए एक बाणसे भीमसेनको बींध डाला ॥ १ ॥

अथैनं पुनराजघ्ने नवत्या निशितैः शरैः ।
सर्वमर्माणि सम्प्रेक्ष्य मर्मज्ञो लघुहस्तवत् ॥ २ ॥

फिर शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले कुशल योद्धाके समान मर्मज्ञ अश्वत्थामाने भीमसेनके सारे मर्मस्थानोंको लक्ष्य करके पुनः उनपर नब्बे तीखे बाणोंका प्रहार किया ॥ २ ॥

भीमसेनः समाकीर्णो द्रौणिना निशितैः शरैः ।
रराज समरे राजन् रश्मिवानिव भास्करः ॥ ३ ॥

राजन् ! अश्वत्थामाके तीखे बाणोंसे समराङ्गणमें आच्छादित हुए भीमसेन किरणोंवाले सूर्यके समान सुशोभित होने लगे ॥ ३ ॥

ततः शरसहस्रेण सुप्रयुक्तेन पाण्डवः ।
द्रोणपुत्रमवच्छाद्य सिंहनादममुञ्चत ॥ ४ ॥

तदनन्तर पाण्डुपुत्र भीमने अच्छी तरह चलाये हुए एक हजार बाणोंसे द्रोणपुत्रको आच्छादित करके घोर सिंहनाद किया ॥ ४ ॥

शरैः शरांस्ततो द्रौणिः संवार्य युधि पाण्डवम् ।
ललाटेऽभ्याहनद् राजन् नाराचेन स्मयन्निव ॥ ५ ॥

राजन् ! अश्वत्थामाने अपने बाणोंसे भीमसेनके बाणोंका निवारण करके युद्धस्थलमें उन पाण्डुपुत्रके ललाटमें मुसकराते हुए-से एक नाराचका प्रहार किया ॥ ५ ॥

ललाटस्थं ततो बाणं धारयामास पाण्डवः ।
यथा शृङ्गं वने दृप्तः खड्गो धारयते नृप ॥ ६ ॥

नरेश्वर ! जैसे वनमें बलोन्मत्त गेंड़ा सींग धारण करता है, उसी प्रकार पाण्डुपुत्र भीमने अपने ललाटमें धँसे हुए उस बाणको धारण कर रक्खा था ॥ ६ ॥

ततो द्रौणिं रणे भीमो यतमानं पराक्रमी ।
त्रिभिर्विव्याध नाराचैर्ललाटे विस्मयन्निव ॥ ७ ॥

तत्पश्चात् पराक्रमी भीमसेनने रणभूमिमें विजयके लिये प्रयत्नशील अश्वत्थामाके ललाटमें भी मुसकराते हुए-से तीन नाराचोंका प्रहार किया ॥ ७ ॥

ललाटस्थैस्ततो बाणैर्ब्राह्मणोऽसौ व्यशोभत ।
प्रावृषीव यथा सिक्तस्त्रिशृङ्गः पर्वतोत्तमः ॥ ८ ॥

ललाटमें धँसे हुए उन तीनों बाणोंद्वारा वह ब्राह्मण वर्षा-कालमें भीगे हुए तीन शिखरोंवाले उत्तम पर्वतके समान अद्भुत शोभा पाने लगा ॥ ८ ॥

ततः शरशतैर्द्रौणिरर्दयामास पाण्डवम् ।
न चैनं कम्पयामास मातरिश्वेव पर्वतम् ॥ ९ ॥

तब अश्वत्थामाने सैकड़ों बाणोंसे पाण्डुपुत्र भीमसेनको पीड़ित किया; परंतु जैसे हवा पर्वतको नहीं हिला सकती, उसी प्रकार वह उन्हें कम्पित न कर सका ॥ ९ ॥

तथैव पाण्डवो युद्धे द्रौणिं शरशतैः शितैः ।
नाकम्पयत संहृष्टो वार्योघ इव पर्वतम् ॥ १० ॥

इसी प्रकार हर्ष और उत्साहमें भरे हुए पाण्डुपुत्र भीमसेन भी युद्धमें सैकड़ों तीखे बाणोंका प्रहार करके द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको विचलित न कर सके । ठीक उसी तरह, जैसे जलका महान् प्रवाह किसी पर्वतको हिला-डुला नहीं सकता ॥

तावन्योन्यं शरैर्घोरैश्छादयानौ महारथौ ।
रथवर्यगतौ वीरौ शुशुभाते बलोत्कटौ ॥ ११ ॥

वे दोनों बलोन्मत्त महारथी वीर श्रेष्ठ रथोंपर बैठकर एक दूसरेको भयंकर बाणोंद्वारा आच्छादित करते हुए बड़ी शोभा पा रहे थे ॥ ११ ॥

आदित्याविव संदीप्तौ लोकक्षयकरावुभौ ।
स्वरश्मिभिरिवान्योन्यं तापयन्तौ शरोत्तमैः ॥ १२ ॥

जैसे सम्पूर्ण लोकोंका विनाश करनेके लिये उगे हुए दो तेजस्वी सूर्य अपनी किरणोंद्वारा परस्पर ताप दे रहे हों, उसी प्रकार वे दोनों वीर अपने उत्तम बाणोंद्वारा एक दूसरेको संतप्त कर रहे थे ॥ १२ ॥

ततः प्रतिकृते यत्नं कुर्वाणौ तौ महारणे ।
कृतप्रतिकृते यत्तौ शरसङ्घैरभीतवत् ॥ १३ ॥

उस महासमरमें बदला लेनेका यत्न करते हुए वे दोनों योद्धा निर्भय-से होकर अपने बाण-समूहोंद्वारा परस्पर अस्त्रोंके घात-प्रतिघातके लिये प्रयत्नशील थे ॥ १३ ॥

व्याघ्राविव च संग्रामे चेरतुस्तौ नरोत्तमौ ।
शरदंष्ट्रौ दुराधर्षौ चापवक्त्रौ भयंकरौ ॥ १४ ॥

वे दोनों नरश्रेष्ठ संग्रामभूमिमें दो व्याघ्रोंके समान विचर

रहे थे, धनुष ही उन व्याघ्रोंके मुख और बाण ही उनकी दाढ़ें थीं। वे दोनों ही दुर्धर्ष एवं भयंकर प्रतीत होते थे ॥१४॥

अभूतां तावदृश्यौ च शरजालैः समन्ततः।
मेघजालैरिव च्छन्नौ गगने चन्द्रभास्करौ ॥ १५ ॥

आकाशमें मेघोंकी घटासे आच्छादित हुए चन्द्रमा और सूर्यके समान वे दोनों वीर सब ओरसे बाण-समूहोंद्वारा ढककर अदृश्य हो गये थे ॥ १५ ॥

चकाशेते मुहूर्तेन ततस्तावप्यरिंदमौ।
विमुक्तावभ्रजालेन अङ्गारकबुधाविव ॥ १६ ॥

फिर दो ही घड़ीमें मेघोंके आवरणसे मुक्त हुए मंगल और बुध नामक ग्रहोंके समान वे दोनों शत्रुदमन वीर एक दूसरेके बाणोंको नष्ट करके प्रकाशित होने लगे ॥ १६ ॥

अथ तत्रैव संग्रामे वर्तमाने सुदारुणे।
अपसव्यं ततश्चक्रे द्रौणिस्तत्र वृकोदरम् ॥ १७ ॥

इस प्रकार चलनेवाले उस भयंकर संग्राममें वहीं द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने भीमसेनको अपने दाहिने भागमें कर दिया ॥

किरञ्छरशतैरुग्रैर्धाराभिरिव पर्वतम्।
न तु तन्ममृषे भीमः शत्रोर्विजयलक्षणम् ॥ १८ ॥

फिर जैसे मेघ जलकी धाराओंसे पर्वतको ढक-सा देता है, उसी प्रकार भयंकर एवं सैकड़ों बाणोंद्वारा वह भीमसेनको आच्छादित करने लगा; परंतु भीमसेन शत्रुके इस विजय-सूचक लक्षणको सहन न कर सके ॥ १८ ॥

प्रतिचक्रे ततो राजन् पाण्डवोऽप्यपसव्यतः।
मण्डलानां विभागेषु गतप्रत्यागतेषु च ॥ १९ ॥

राजन्! पाण्डुपुत्र भीमने भी गत-प्रत्यागत आदि मण्डल-भागों (विभिन्न पैंतरों) में अश्वत्थामाको दाहिने करके बदला चुका लिया ॥ १९ ॥

बभूव तुमुलं युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः।
चरित्वा विविधान् मार्गान् मण्डलस्थानमेव च ॥ २० ॥

उन दोनों पुरुषसिंहोंमें मण्डलाकार घूमकर भाँति-भाँतिके पैंतरे दिखाते हुए भयंकर युद्ध होने लगा ॥ २० ॥

शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः।
अन्योन्यस्य वधे चैव चक्रतुर्यत्नमुत्तमम् ॥ २१ ॥

वे कानतक खींचकर छोड़े हुए बाणोंसे परस्पर चोट पहुँचाने और एक दूसरेके वधके लिये भारी यत्न करने लगे ॥

ईषतुर्विरथं चैव कर्तुमन्योन्यमाहवे।
ततो द्रौणिर्महास्त्राणि प्रादुश्चक्रे महारथः ॥ २२ ॥
तान्यस्त्रैरेव समरे प्रतिजघ्नेऽथ पाण्डवः।

दोनों ही युद्धस्थलमें एक दूसरेको रथहीन कर देनेकी इच्छा करने लगे। तदनन्तर महारथी अश्वत्थामाने बड़े-बड़े अस्त्र प्रकट किये; परंतु पाण्डुपुत्र भीमसेनने समराङ्गणमें अपने अस्त्रोंद्वारा ही उन सबको नष्ट कर दिया ॥ २२½ ॥

ततो घोरं महाराज अस्त्रयुद्धमवर्तत ॥ २३ ॥
ग्रहयुद्धं यथा घोरं प्रजासंहरणे ह्यभूत्।

महाराज! फिर तो जैसे प्रजाके संहारकालमें ग्रहोंका घोर युद्ध होने लगता है, उसी प्रकार उन दोनोंमें भयंकर अस्त्र-युद्ध छिड़ गया ॥ २३½ ॥

ते बाणाः समसज्जन्त मुक्तास्ताभ्यां तु भारत ॥ २४ ॥
द्योतयन्तो दिशः सर्वास्तच्च सैन्यं समन्ततः।

भारत! उन दोनोंके छोड़े हुए वे बाण सम्पूर्ण दिशाओं-को प्रकाशित करते हुए आपकी सेनाके चारों ओर गिरने लगे ॥

बाणसङ्घैर्वृतं घोरमाकाशं समपद्यत ॥ २५ ॥
उल्कापातावृतं युद्धं प्रजानां संक्षये नृप।

नरेश्वर! उस समय बाण-समूहोंसे व्याप्त हुआ आकाश बड़ा भयंकर प्रतीत होने लगा; ठीक उसी तरह, जैसे प्रजाके संहारकालमें होनेवाला युद्ध उल्कापातसे व्याप्त होनेके कारण अत्यन्त भयानक दिखायी देता है ॥ २५½ ॥

बाणाभिघातात् संजज्ञे तत्र भारत पावकः ॥ २६ ॥
सविस्फुलिङ्गो दीप्तार्चिर्योऽदहद् वाहिनीद्वयम्।

भरतनन्दन! वहाँ बाणोंके परस्पर टकरानेसे चिनगारियों तथा प्रज्वलित लपटोंके साथ आग प्रकट हो गयी, जो दोनों सेनाओंको दग्ध किये देती थी ॥ २६½ ॥

तत्र सिद्धा महाराज सम्पतन्तोऽब्रुवन् वचः ॥ २७ ॥
युद्धानामति सर्वेषां युद्धमेतदिति प्रभो।
सर्वयुद्धानि चैतस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ २८ ॥

प्रभो! महाराज! उस समय वहाँ उड़कर आते हुए सिद्ध परस्पर इस प्रकार कहने लगे—'यह युद्ध तो सभी युद्धोंसे बढ़कर हो रहा है, अन्य सब युद्ध तो इसकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं थे ॥ २७-२८ ॥

नेदृशं च पुनर्युद्धं भविष्यति कदाचन।
अहो ज्ञानेन सम्पन्नावुभौ ब्राह्मणक्षत्रियौ ॥ २९ ॥

'ऐसा युद्ध फिर कभी नहीं होगा। ये ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों ही अद्भुत ज्ञानसे सम्पन्न हैं ॥ २९ ॥

अहो शौर्येण सम्पन्नावुभौ चोग्रपराक्रमौ।
अहो भीमबलो भीम एतस्य च कृतास्त्रता ॥ ३० ॥

'भयंकर पराक्रम दिखानेवाले ये दोनों योद्धा अद्भुत शौर्यशाली हैं। अहो! भीमसेनका बल भयंकर है। इनका अस्त्र-ज्ञान अद्भुत है! ॥ ३० ॥

अहो वीर्यस्य सारत्वमहो सौष्ठवमेतयोः।
स्थितावेतौ हि समरे कालान्तकयमोपमौ ॥ ३१ ॥

'अहो! इनके वीर्यकी सारता विलक्षण है। इन दोनोंका युद्धसौन्दर्य आश्चर्यजनक है। ये दोनों समराङ्गणमें कालान्तक एवं यमके समान जान पड़ते हैं ॥ ३१ ॥

रुद्रौ द्वाविव सम्भूतौ यथा द्वाविव भास्करौ।

यमौ वा पुरुषव्याघ्रौ घोररूपावुभौ रणे ॥ ३२ ॥

'ये भयंकर रूपधारी दोनों पुरुषसिंह रणभूमिमें दो रुद्र, दो सूर्य अथवा दो यमराजके समान प्रकट हुए हैं' ॥ ३२ ॥

इति वाचः स्म श्रूयन्ते सिद्धानां वै मुहुर्मुहुः ।
सिंहनादश्च संजज्ञे समेतानां दिवौकसाम् ॥ ३३ ॥

इस प्रकार सिद्धोंकी बातें वहाँ बारंबार सुनायी देती थीं । आकाशमें एकत्र हुए देवताओंका सिंहनाद भी प्रकट हो रहा था ॥ ३३ ॥

अद्भुतं चाप्यचिन्त्यं च दृष्ट्वा कर्म तयो रणे ।
सिद्धचारणसंघानां विस्मयः समपद्यत ॥ ३४ ॥

रणभूमिमें उन दोनोंके अद्भुत एवं अचिन्त्य कर्मको देखकर सिद्धों और चारणोंके समूहोंको बड़ा विस्मय हो रहा था ॥ ३४ ॥

प्रशंसन्ति तदा देवाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
साधु द्रौणे महाबाहो साधु भीमेति चाब्रुवन् ॥ ३५ ॥

उस समय देवता, सिद्ध और महर्षिगण उन दोनोंकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे—'महाबाहु द्रोणकुमार ! तुम्हें साधुवाद ! भीमसेन ! तुम्हारे लिये भी साधुवाद !' ॥ ३५ ॥

तौ शूरौ समरे राजन् परस्परकृतागसौ ।
परस्परमुदीक्षेतां क्रोधादुद्वृत्य चक्षुषी ॥ ३६ ॥

राजन् ! परस्पर अपराध करनेवाले वे दोनों शूरवीर समराङ्गणमें क्रोधसे आँखें फाड़-फाड़कर एक दूसरेकी ओर देख रहे थे ॥ ३६ ॥

क्रोधरक्तेक्षणौ तौ तु क्रोधात् प्रस्फुरिताधरौ ।
क्रोधात् संदष्टदशनौ तथैव दशनच्छदौ ॥ ३७ ॥

क्रोधसे उन दोनोंकी आँखें लाल हो गयी थीं । क्रोधसे उनके ओठ फड़क रहे थे और क्रोधसे ही वे ओठ चबाते एवं दाँत पीसते थे ॥ ३७ ॥

अन्योन्यं छादयन्तौ स्म शरवृष्ट्या महारथौ ।
शराम्बुधारौ समरे शस्त्रविद्युत्प्रकाशिनौ ॥ ३८ ॥

वे दोनों महारथी धनुषरूपी विद्युत्से प्रकाशित होनेवाले मेघके समान हो बाणरूपी जल धारण करते थे और समराङ्गणमें बाण-वर्षा करके एक दूसरेको ढके देते थे ॥ ३८ ॥

तावन्योन्यं ध्वजं विद्ध्वा सारथिं च महारणे ।
अन्योन्यस्य हयान् विद्ध्वा बिभिदाते परस्परम् ॥ ३९ ॥

वे उस महासमरमें परस्परके ध्वज, सारथि और घोड़ोंको बींधकर एक दूसरेको क्षत-विक्षत कर रहे थे ॥ ३९ ॥

ततः क्रुद्धौ महाराज बाणौ गृह्य महाहवे ।
उभौ चिक्षिपतुस्तूर्णमन्योन्यस्य वधैषिणौ ॥ ४० ॥

महाराज ! तदनन्तर उस महासमरमें कुपित हो उन दोनोंने एक दूसरेके वधकी इच्छासे तुरंत दो बाण लेकर चलाये ॥ ४० ॥

तौ सायकौ महाराज द्योतमानौ चमूमुखे ।
आजघ्नतुः समासाद्य वज्रवेगौ दुरासदौ ॥ ४१ ॥

राजेन्द्र ! वे दोनों बाण सेनाके मुहानेपर चमक उठे । उन दोनोंका वेग वज्रके समान था । उन दुर्जय बाणोंने दोनोंके पास पहुँचकर उन्हें घायल कर दिया ॥ ४१ ॥

तौ परस्परवेगाच्च शराभ्यां च भृशाहतौ ।
निपेततुर्महावीर्यौ रथोपस्थे तयोस्तदा ॥ ४२ ॥

परस्परके वेगसे छूटे हुए उन बाणोंद्वारा अत्यन्त घायल हो वे महापराक्रमी वीर अपने-अपने रथकी बैठकमें तत्काल गिर पड़े ॥ ४२ ॥

ततस्तु सारथिर्ज्ञात्वा द्रोणपुत्रमचेतनम् ।
अपोवाह रणाद् राजन् सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ ४३ ॥

राजन् ! तत्पश्चात् सारथि द्रोणपुत्रको अचेत जानकर सारी सेनाके देखते-देखते उसे रणक्षेत्रसे बाहर हटा ले गया ॥ ४३ ॥

तथैव पाण्डवं राजन् विह्वलन्तं मुहुर्मुहुः ।
अपोवाह रथेनाजौ सारथिः शत्रुतापनम् ॥ ४४ ॥

महाराज ! इसी प्रकार बारंबार विह्वल होते हुए शत्रुतापन पाण्डुपुत्र भीमसेनको भी रथद्वारा उनका सारथि विशोक युद्धस्थलसे अन्यत्र हटा ले गया ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अश्वत्थामभीमसेनयोर्युद्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें अश्वत्थामा और भीमसेनका युद्धविषयक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः

अर्जुनका संशप्तकों तथा अश्वत्थामाके साथ अद्भुत युद्ध

धृतराष्ट्र उवाच

यथा संशप्तकैः सार्धमर्जुनस्याभवद् रणः ।
अन्येषां च महीपानां पाण्डवैस्तद् ब्रवीहि मे ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—संजय ! संशप्तकोंके साथ अर्जुनका तथा अन्य पाण्डवोंके साथ दूसरे-दूसरे राजाओंका जिस प्रकार युद्ध हुआ, वह मुझे बताओ ॥ १ ॥

अश्वत्थाम्नस्तु यद् युद्धमर्जुनस्य च संजय ।
अन्येषां च महीपानां पाण्डवैस्तद् ब्रवीहि मे ॥ २ ॥

सूत ! अश्वत्थामा और अर्जुनका जो युद्ध हुआ था तथा अन्य पाण्डवोंके साथ अन्यान्य नरेशोंका जैसा संग्राम हुआ था, उसका मुझसे वर्णन करो ॥ २ ॥

संजय उवाच

शृणु राजन् यथा वृत्तं संग्रामं ब्रुवतो मम ।
वीराणां शत्रुभिः सार्धं देहपाप्मासुनाशनम् ॥ ३ ॥

संजयने कहा—राजन्! कौरव-वीरोंका शत्रुओंके साथ देह, पाप और प्राणोंका नाश करनेवाला संग्राम जिस प्रकार हुआ था, वह बता रहा हूँ। आप मुझसे सारी बातें सुनिये ॥ ३ ॥

पार्थः संशप्तकबलं प्रविश्यार्णवसंनिभम्।
व्यक्षोभयदमित्रघ्नो महावात इवार्णवम् ॥ ४ ॥

शत्रुनाशक अर्जुनने समुद्रके समान अपार संशप्तक-सेनामें प्रवेश करके उसे उसी प्रकार क्षुब्ध कर डाला, जैसे प्रचण्ड वायु सागरमें ज्वार उठा देती है ॥ ४ ॥

शिरांस्युन्मथ्य वीराणां शितैर्भल्लैर्धनंजयः।
पूर्णचन्द्राभवक्त्राणि स्वक्षिभ्रूदशनानि च ॥ ५ ॥
संतस्तार क्षितिं क्षिप्रं विनालैर्नलिनैरिव।

धनंजयने अपने तीखे भल्लोंसे वीरोंके सुन्दर नेत्र, भौंह और दाँतोंसे सुशोभित, पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले मस्तकोंको काट-काटकर तुरंत ही वहाँकी धरतीको पाट दिया, मानो वहाँ बिना नालके कमल बिछा दिये हों ॥ ५½ ॥

सुवृत्तानायतान् पुष्टांश्चन्दनागुरुभूषितान् ॥ ६ ॥
सायुधान् सतलत्रांश्च पञ्चास्योरगसंनिभान्।
बाहून् क्षुरैरमित्राणां चिच्छेद समरेऽर्जुनः ॥ ७ ॥

अर्जुनने समरभूमिमें अपने क्षुरोंद्वारा शत्रुओंकी उन भुजाओंको भी काट डाला, जो पाँच मुखवाले सर्पोंके समान दिखायी देती थीं, जो गोल, लंबी, पुष्ट तथा अगुरु एवं चन्दनसे चर्चित थीं और जिनमें आयुध एवं दस्ताने भी मौजूद थे ॥ ६-७ ॥

धुर्यान् धुर्यगतान् सूतान् ध्वजांश्चापानि सायकान्।
पाणीन् सरत्नानसकृद् भल्लैश्चिच्छेद पाण्डवः ॥ ८ ॥

पाण्डुपुत्र धनंजयने शत्रुओंके रथोंमें जुते हुए भारवाही घोड़ों, सारथियों, ध्वजों, धनुषों, बाणों और रत्नभूषणभूषित हाथोंको बारंबार काट डाला ॥ ८ ॥

रथान् द्विपान् हयांश्चैव सारोहानर्जुनो युधि।
शरैरनेकसाहस्रैर्निन्ये राजन् यमक्षयम् ॥ ९ ॥

राजन्! अर्जुनने युद्धस्थलमें कई हजार बाण मारकर रथों, हाथियों, घोड़ों और उन सबके सवारोंको भी यमलोक पहुँचा दिया ॥ ९ ॥

तं प्रवीराः सुसंरब्धा नर्दमाना इवर्षभाः।
वासितार्थमिव क्रुद्धमभिद्रुत्य मदोत्कटाः ॥ १० ॥
निघ्नन्तमभिजघ्नुस्ते शरैः शृङ्गैरिवर्षभाः।

उस समय संशप्तक वीर अत्यन्त रोषमें भरकर मैथुनकी इच्छावाली गायके लिये लड़नेवाले मदमत्त साँड़ोंके समान गर्जन एवं हुङ्कार करते हुए कुपित अर्जुनकी ओर टूट पड़े और जैसे साँड़ एक दूसरेको सींगोंसे मारते हैं, उसी प्रकार वे अपने ऊपर प्रहार करते हुए अर्जुनको बाणोंद्वारा चोट पहुँचाने लगे ॥

तस्य तेषां च तद् युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ॥ ११ ॥
त्रैलोक्यविजये यद्वद् दैत्यानां सह वज्रिणा।

अर्जुन और संशप्तकोंका वह घोर युद्ध त्रैलोक्य-विजयके लिये वज्रधारी इन्द्रके साथ घटित हुए दैत्योंके संग्रामके समान रोंगटे खड़े कर देनेवाला था ॥ ११½ ॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्विषतां सर्वतोऽर्जुनः ॥ १२ ॥
इषुभिर्बहुभिस्तूर्णं विद्ध्वा प्राणाञ्जहार सः।

अर्जुनने सब ओरसे शत्रुओंके अस्त्रोंका अपने अस्त्रोंद्वारा निवारण कर उन्हें तुरंत ही अनेक बाणोंसे घायल करके उन सबके प्राण हर लिये ॥ १२½ ॥

छिन्नत्रिवेणुचक्राक्षान् हतयोधाश्वसारथीन् ॥ १३ ॥
विध्वस्तायुधतूणीरान् समुन्मथितकेतनान्।
संछिन्नयोक्त्ररश्मीकान् विवरूथान् विकूबरान् ॥ १४ ॥
विस्रस्तबन्धुरयुगान् विस्रस्ताक्षप्रमण्डलान्।
रथान् विशकलीकुर्वन् महाभ्राणीव मारुतः ॥ १५ ॥
विस्मापयन् प्रेक्षणीयं द्विषतां भयवर्धनम्।
महारथसहस्रस्य समं कर्माकरोज्जयः ॥ १६ ॥

अर्जुनने संशप्तकोंके रथके त्रिवेणु, चक्र और धुरोंको छिन्न-भिन्न कर दिया। योद्धाओं, अश्वों तथा सारथियोंको मार डाला। आयुधों और तरकसोंका विध्वंस कर डाला। ध्वजाओंके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। जोत और लगाम काट डाले। रक्षाके लिये लगाये गये चर्ममय आवरण और कूबर नष्ट कर दिये। रथतल्प और जूए तोड़ दिये तथा रथकी बैठक और धुरोंको जोड़नेवाले काष्ठके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। जैसे हवा महान् मेघोंको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार विजयशील अर्जुनने रथोंके खण्ड-खण्ड करके सबको आश्चर्यमें डालते हुए अकेले ही सहस्रों महारथियोंके समान दर्शनीय पराक्रम किया, जो शत्रुओंका भय बढ़ानेवाला था ॥ १३—१६ ॥

सिद्धदेवर्षिसंघाश्च चारणाश्चापि तुष्टुवुः।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवर्षाणि चापतन् ॥ १७ ॥
केशवार्जुनयोर्मूर्ध्नि प्राह वाचाशरीरिणी।

सिद्धों तथा देवर्षियोंके समुदायों एवं चारणोंने भी अर्जुनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं, आकाशसे श्रीकृष्ण और अर्जुनके मस्तकपर फूलोंकी वर्षा होने लगी तथा इस प्रकार आकाशवाणी हुई—॥ १७½ ॥

चन्द्राग्न्यनिलसूर्याणां कान्तिदीप्तिबलद्युतीः ॥ १८ ॥
यौ सदा बिभ्रतुर्वीराविमौ तौ केशवार्जुनौ।
ब्रह्मेशानाविवाजय्यौ वीरावेकरथे स्थितौ ॥ १९ ॥
सर्वभूतवरौ वीरौ नरनारायणाविमौ।

'जो सदा चन्द्रमाकी कान्ति, अग्निकी दीप्ति, वायुका बल और सूर्यका तेज धारण करते हैं, वे ही ये दोनों वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं। एक ही रथपर बैठे हुए ये दोनों वीर ब्रह्मा तथा भगवान् शङ्करके समान सर्वथा अजेय हैं। ये ही सम्पूर्ण भूतोंमें सर्वश्रेष्ठ वीर नर और नारायण हैं' ॥ १८-१९½ ॥

इत्येतन्महदाश्चर्यं दृष्ट्वा श्रुत्वा च भारत ॥ २० ॥

अश्वत्थामा सुसंयत्तः कृष्णावभ्यद्रवद् रणे ।

भरतनन्दन! यह महान् आश्चर्यकी बात देख और सुनकर अश्वत्थामाने सावधान हो रणभूमिमें श्रीकृष्ण और अर्जुनपर धावा किया ॥ २०½ ॥

अथ पाण्डवमस्यन्तममित्रघ्नकराञ्छरान् ॥ २१ ॥
सेषुणा पाणिनाऽऽहूय प्रहसन् द्रौणिरब्रवीत् ।

तदनन्तर शत्रुनाशक बाणोंका प्रहार करते हुए पाण्डुपुत्र अर्जुनको बाणयुक्त हाथसे बुलाकर अश्वत्थामाने हँसते हुए कहा—॥ २१½ ॥

यदि मां मन्यसे वीर प्राप्तमर्हमिहातिथिम् ॥ २२ ॥
ततः सर्वात्मना त्वद्य युद्धातिथ्यं प्रयच्छ मे ।

'वीर ! यदि तुम मुझे यहाँ आया हुआ पूजनीय अतिथि मानो तो सब प्रकारसे आज युद्धके द्वारा मेरा आतिथ्य-सत्कार करो' ॥ २२½ ॥

एवमाचार्यपुत्रेण समाहूतो युयुत्सया ॥ २३ ॥
बहु मेनेऽर्जुनोऽऽत्मानमिति चाह जनार्दनम् ।

आचार्यपुत्रके द्वारा इस प्रकार युद्धकी इच्छासे बुलाये जानेपर अर्जुनने अपना अहोभाग्य माना और भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा—॥ २३½ ॥

संशप्तकाश्च मे वध्या द्रौणिराह्वयते च माम् ॥ २४ ॥
यदत्रानन्तरं प्राप्तं शंस मे तद्धि माधव ।
आतिथ्यकर्माभ्युत्थाय दीयतां यदि मन्यसे ॥ २५ ॥

'माधव ! एक ओर तो मुझे संशप्तकोंका वध करना है, दूसरी ओर द्रोणकुमार अश्वत्थामा युद्धके लिये मेरा आह्वान कर रहा है। अतः यहाँ मेरे लिये जो पहले कर्तव्य प्राप्त हो, उसे मुझे बताइये। यदि आप ठीक समझें तो पहले उठकर अश्वत्थामाको ही आतिथ्य ग्रहण करनेका अवसर दिया जाय' ॥ २४-२५ ॥

एवमुक्तोऽवहत् पार्थं कृष्णो द्रोणात्मजान्तिके ।
जैत्रेण विधिनाऽऽहूतं वायुरिन्द्रमिवाध्वरे ॥ २६ ॥

अर्जुनके ऐसा कहनेपर श्रीकृष्णने उन्हें विजयशील रथके द्वारा द्रोणकुमारके निकट पहुँचा दिया। ठीक वैसे ही, जैसे वैदिक विधिसे आवाहित इन्द्र देवताको वायुदेव यज्ञमें पहुँचा देते हैं ॥

तमामन्त्र्यैकमनसं केशवो द्रौणिमब्रवीत् ।
अश्वत्थामन् स्थिरो भूत्वा प्रहराशु सहस्व च ॥ २७ ॥

तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्णने एकाग्रचित्त द्रोणकुमारको सम्बोधित करके कहा—'अश्वत्थामन् ! स्थिर होकर शीघ्रता-पूर्वक प्रहार करो और अपने ऊपर किये गये प्रहारको सहन करो॥

निर्वेष्टुं भर्तृपिण्डं हि कालोऽयमुपजीविनाम् ।
सूक्ष्मो विवादो विप्राणां स्थूलौ क्षात्रौ जयाजयौ ।२८।

'क्योंकि स्वामीके आश्रित रहकर जीवननिर्वाह करने-वाले पुरुषोंके लिये अपने रक्षकके अन्नको सफल करनेका यही अवसर आया है, ब्राह्मणोंका विवाद सूक्ष्म (बुद्धिके द्वारा साध्य) होता है; परंतु क्षत्रियोंकी जय-पराजय स्थूल अस्त्रोंद्वारा सम्पन्न होती हैं ॥ २८ ॥

यामभ्यर्थयसे मोहाद् दिव्यां पार्थस्य सत्क्रियाम् ।
तामाप्तुमिच्छन् युध्यस्व स्थिरो भूत्वाद्य पाण्डवम् ॥

'तुम मोहवश अर्जुनसे जिस दिव्य सत्कारकी प्रार्थना कर रहे हो, उसे पानेकी इच्छासे आज तुम स्थिर होकर पाण्डुपुत्र धनंजयके साथ युद्ध करो' ॥ २९ ॥

इत्युक्तो वासुदेवेन तथेत्युक्त्वा द्विजोत्तमः ।
विव्याध केशवं षष्ट्या नाराचैरर्जुनं त्रिभिः ॥ ३० ॥

भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर द्विजश्रेष्ठ अश्वत्थामाने 'बहुत अच्छा' कहकर केशवको साठ और अर्जुनको तीन बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ३० ॥

तस्यार्जुनः सुसंक्रुद्धस्त्रिभिर्बाणैः शरासनम् ।
चिच्छेद चान्यदादत्त द्रौणिर्घोरतरं धनुः ॥ ३१ ॥

तब अर्जुनने अत्यन्त कुपित होकर तीन बाणोंसे अश्वत्थामा-का धनुष काट दिया; परंतु द्रोणकुमारने उससे भी भयंकर दूसरा धनुष हाथमें ले लिया ॥ ३१ ॥

सज्यं कृत्वा निमेषाच्च विव्याधार्जुनकेशवौ ।
त्रिभिः शतैर्वासुदेवं सहस्रेण च पाण्डवम् ॥ ३२ ॥

उसने पलक मारते-मारते उस धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर अर्जुन और श्रीकृष्णको बींध डाला। श्रीकृष्णको तीन सौ और अर्जुनको एक हजार बाण मारे ॥ ३२ ॥

ततः शरसहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
ससृजे द्रौणिरायस्तः संस्तभ्य च रणेऽर्जुनम् ॥ ३३ ॥

तदनन्तर द्रोणकुमार अश्वत्थामाने प्रयत्नपूर्वक अर्जुनको युद्धस्थलमें स्तम्भित करके उनके ऊपर हजारों, लाखों और अरबों बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ३३ ॥

इषुधेर्धनुषश्चैव ज्यायाश्चैवाथ मारिष ।
बाह्वोः कराभ्यामुरसो वदनघ्राणनेत्रतः ॥ ३४ ॥
कर्णाभ्यां शिरसोऽङ्गेभ्यो लोमवर्मभ्य एव च ।
रथध्वजेभ्यश्च शरा निष्पेतुर्ब्रह्मवादिनः ॥ ३५ ॥

मान्यवर ! उस समय वेदवादी अश्वत्थामाके तरकस, धनुष, प्रत्यञ्चा, बाँह, हाथ, छाती, मुख, नाक, आँख, कान, सिर, भिन्न-भिन्न अङ्ग, रोम, कवच, रथ और ध्वजोंसे भी बाण निकल रहे थे ॥ ३४-३५ ॥

शरजालेन महता विद्ध्वा माधवपाण्डवौ ।
ननाद मुदितो द्रौणिर्महामेघौघनिःस्वनम् ॥ ३६ ॥

इस प्रकार बाणोंके महान् समुदायसे श्रीकृष्ण और अर्जुन-को घायल करके आनन्दित हुआ द्रोणकुमार महान् मेघोंके गम्भीर घोषके समान गर्जना करने लगा ॥ ३६ ॥

(तैः पतद्भिर्महाराज द्रौणिमुक्तैः समन्ततः ।
संछादितौ रथस्थौ तावुभौ कृष्णधनंजयौ ॥

महाराज ! अश्वत्थामाके धनुषसे छूटकर सब ओर गिरने-

वाले उन बाणोंद्वारा रथपर बैठे हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों ढक गये॥

ततः शरशतैस्तीक्ष्णैर्भारद्वाजः प्रतापवान्।
निश्चेष्टौ तावुभौ चक्रे रणे माधवपाण्डवौ॥

तत्पश्चात् प्रतापी भरद्वाजकुलनन्दन अश्वत्थामाने सैकड़ों तीखे बाणोंसे रणभूमिमें श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंको निश्चेष्ट कर दिया॥

हाहाकृतमभूत् सर्वं स्थावरं जङ्गमं तथा।
चराचरस्य गोप्तारौ दृष्ट्वा संछादितौ शरैः॥

चराचरकी रक्षा करनेवाले उन दोनों महापुरुषोंको बाणोंद्वारा आच्छादित देख समस्त स्थावर-जङ्गम जगत्में हाहाकार मच गया॥

सिद्धचारणसंघाश्च सम्पेतुर्वै समन्ततः।
अपि स्वस्ति भवेदद्य लोकानामिति चाब्रुवन्॥

सिद्ध और चारणोंके समुदाय सब ओरसे वहाँ आ पहुँचे और बोले—'आज तीनों लोकोंका मङ्गल हो'॥

न मया तादृशो राजन् दृष्टपूर्वः पराक्रमः।
संजज्ञे यादृशो द्रौणेः कृष्णौ छादयतो रणे॥

राजन्! मैंने इससे पहले अश्वत्थामाका वैसा पराक्रम नहीं देखा था, जैसा कि रणभूमिमें श्रीकृष्ण और अर्जुनको आच्छादित करते समय प्रकट हुआ था॥

द्रौणेस्तु धनुषः शब्दं रथानां त्रासनं रणे।
अश्रौषं बहुशो राजन् सिंहस्य नदतो यथा॥

नरेश्वर! रणभूमिमें द्रोणकुमारके धनुषकी टङ्कार बड़े-बड़े रथियोंको भयभीत करनेवाली थी। दहाड़ते हुए सिंहके समान उसके शब्दको मैंने बहुत बार सुना था॥

ज्या चास्य चरतो युद्धे सव्यं दक्षिणमस्यतः।
विद्युदम्भोधरस्येव भ्राजमाना व्यदृश्यत॥

युद्धमें विचरते हुए अश्वत्थामाके धनुषकी प्रत्यञ्चा बायें-दायें बाण छोड़ते समय बादलमें बिजलीके समान चमकती दिखायी देती थी॥

स तदा क्षिप्रकारी च दृढहस्तश्च पाण्डवः।
प्रमोहं परमं गत्वा प्रेक्षन्नास्ते धनंजयः॥

शीघ्रता करने और दृढ़तापूर्वक हाथ चलानेवाले पाण्डुपुत्र धनंजय उस समय भारी मोहमें पड़कर केवल देखते रह गये थे॥

विक्रमं च हृतं मेने आत्मनस्तेन संयुगे।
तदास्य समरे राजन् वपुरासीत् सुदुर्दृशम्॥
द्रौणेस्तत् कुर्वतः कर्म यादृग्रूपं पिनाकिनः।

उन्हें युद्धमें ऐसा मालूम होता था कि अश्वत्थामाने मेरा पराक्रम हर लिया है। राजन्! उस समय समराङ्गणमें वैसा पराक्रम करते हुए द्रोणकुमार अश्वत्थामाका शरीर ऐसा डरावना हो गया था कि उसकी ओर देखना कठिन हो रहा था। पिनाकपाणि भगवान् रुद्रका जैसा रूप दिखायी देता है, वैसा ही उसका भी था॥

वर्धमाने ततस्तत्र द्रोणपुत्रे विशाम्पते॥
हीयमाने च कौन्तेये कृष्णं रोषः समाविशत्।

प्रजानाथ! जब वहाँ द्रोणपुत्र बढ़ने लगा और कुन्ती-कुमारका पराक्रम घटने लगा, तब श्रीकृष्णको बड़ा रोष हुआ॥

स रोषान्निःश्वसन् राजन् निर्दहन्निव चक्षुषा॥
द्रौणिं ददर्श संग्रामे फाल्गुनं च मुहुर्मुहुः।
ततः क्रुद्धोऽब्रवीत् कृष्णः पार्थं सप्रणयं वचः॥

राजन्! वे क्रोधपूर्वक लंबी साँस खींचते हुए संग्राम-भूमिमें अश्वत्थामाकी ओर इस प्रकार देखने लगे, मानो उसे अपनी दृष्टिद्वारा दग्ध कर देंगे। अर्जुनकी ओर भी वे बारंबार दृष्टिपात करने लगे। फिर कुपित हुए श्रीकृष्णने अर्जुनसे प्रेमपूर्वक कहा॥

श्रीभगवानुवाच

अत्यद्भुतमहं पार्थ त्वयि पश्यामि संयुगे।
यत् त्वां विशेषयत्याजौ द्रोणपुत्रोऽद्य भारत॥
कच्चित्ते गाण्डिवं हस्ते मुष्टिर्वा न व्यशीर्यत।
कच्चिद् वीर्यं यथापूर्वं भुजयोर्वा बलं तव॥
उदीर्यमाणं हि रणे पश्यामि द्रौणिमाहवे।

श्रीभगवान् बोले—पार्थ! भरतनन्दन! मैं इस युद्धमें तुम्हारे अंदर यह अत्यन्त अद्भुत परिवर्तन देख रहा हूँ कि आज द्रोणकुमार रणभूमिमें तुमसे आगे बढ़ा जा रहा है। क्या तुम्हारे हाथमें गाण्डीव धनुष है? या तुम्हारी मुट्ठी ढीली पड़ गयी? क्या तुम्हारी दोनों भुजाओंमें पहलेके समान ही बल और पराक्रम है? क्योंकि इस समय संग्राममें द्रोणपुत्रको मैं तुमसे बढ़ा-चढ़ा देख रहा हूँ॥

गुरुपुत्र इति ह्येनं मानयन् भरतर्षभ॥
उपेक्षां मा कृथाः पार्थ नायं कालो ह्युपेक्षितुम्॥)

भरतश्रेष्ठ! यह मेरे गुरुका पुत्र है, ऐसा समझकर इसे सम्मान देते हुए तुम इसकी उपेक्षा न करो। पार्थ! यह उपेक्षाका अवसर नहीं है॥

तस्य तं निनदं श्रुत्वा पाण्डवोऽच्युतमब्रवीत्।
पश्य माधव दौरात्म्यं गुरुपुत्रस्य मां प्रति॥ ३७॥

(भगवान् श्रीकृष्णका यह कथन तथा) अश्वत्थामाके उस सिंहनादको सुनकर पाण्डुपुत्र अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा—'माधव! देखिये तो सही गुरुपुत्र अश्वत्थामा मेरे प्रति कैसी दुष्टता कर रहा है!॥ ३७॥

वधं प्राप्तौ मन्यते नौ प्रवेश्य शरवेश्मनि।
एषोऽस्मि हन्मि संकल्पं शिक्षया च बलेन च॥ ३८॥

'यह अपने बाणोंके घेरेमें डालकर हम दोनोंको मारा गया समझता है। मैं अभी अपनी शिक्षा और बलसे इसके इस मनोरथको नष्ट किये देता हूँ'॥ ३८॥

अश्वत्थाम्नः शरानस्तान् छित्त्वैकैकं त्रिधा त्रिधा।

व्यधमद् भरतश्रेष्ठो नीहारमिव मारुतः ॥ ३९ ॥

ऐसा कहकर भरतश्रेष्ठ अर्जुनने अश्वत्थामाके चलाये हुए उन बाणोंमेंसे प्रत्येकके तीन-तीन टुकड़े करके उन सबको उसी प्रकार नष्ट कर दिया, जैसे हवा कुहरेको उड़ा देती है ॥३९॥

ततः संशप्तकान् भूयः साश्वसूतरथद्विपान् ।
ध्वजपत्तिगणानुग्रैर्बाणैर्विव्याध पाण्डवः ॥ ४० ॥

तदनन्तर पाण्डुकुमार अर्जुनने पुनः घोड़े, सारथि, रथ, हाथी, पैदलसमूह और ध्वजोंसहित संशप्तक-सैनिकोंको अपने भयंकर बाणोंद्वारा बींध डाला ॥ ४० ॥

ये ये ददृशिरे तत्र यद्यद्रूपास्तदा जनाः ।
ते ते तत्र शरैर्व्याप्तं मेनिरेऽऽत्मानमात्मना ॥ ४१ ॥

उस समय वहाँ जो-जो मनुष्य जिस-जिस रूपमें दिखायी देते थे, वे-वे स्वयं ही अपने आपको बाणोंसे व्याप्त मानने लगे॥

ते गाण्डीवप्रमुक्तास्तु नानारूपाः पतत्रिणः ।
क्रोशे साग्रे स्थितान् घ्नन्ति द्विपांश्च पुरुषान् रणे ।४२।

गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए नाना प्रकारके बाण रणभूमिमें एक कोससे अधिक दूरीपर खड़े हुए हाथियों और मनुष्योंको भी मार डालते थे ॥ ४२ ॥

भल्लैश्छिन्नाः कराः पेतुः करिणां मदवर्षिणाम् ।
यथा वने परशुभिर्निकृत्ताः सुमहाद्रुमाः ॥ ४३ ॥

जैसे जंगलमें कुल्हाड़ोंसे काटनेपर बड़े-बड़े वृक्ष धराशायी हो जाते हैं, उसी प्रकार वहाँ मदकी वर्षा करनेवाले गजराजोंके शुण्डदण्ड भल्लोंसे कट-कटकर धरतीपर गिरने लगे ॥ ४३ ॥

पश्चात्तु शैलवत् पेतुस्ते गजाः सह सादिभिः ।
वज्रिवज्रप्रमथिता यथैवाद्रिचयास्तथा ॥ ४४ ॥

सूँड़ कटनेके पश्चात् वे पर्वतोंके समान हाथी अपने सवारोंसहित उसी प्रकार गिर जाते थे, जैसे वज्रधारी इन्द्रके वज्रसे विदीर्ण होकर गिरे हुए पहाड़ोंके ढेर लगे हों ॥ ४४ ॥

गन्धर्वनगराकारान् रथांश्चैव सुकल्पितान् ।
विनीतैर्जवनैर्युक्तानास्थितान् युद्धदुर्मदैः ॥ ४५ ॥
शरैर्विशकलीकुर्वन्नमित्रानभ्यवीवृषत् ।
स्वलंकृतानश्वसादीन् पत्तींश्चाहन् धनंजयः ॥ ४६ ॥

धनंजय अपने बाणोंद्वारा सुशिक्षित घोड़ोंसे जुते हुए, रण-दुर्मद रथियोंकी सवारीमें आये हुए एवं गन्धर्वनगरके समान आकारवाले सुसज्जित रथोंके टुकड़े-टुकड़े करते हुए शत्रुओंपर बाण बरसाते और सजे-सजाये घुड़सवारों एवं पैदलोंको भी मार गिराते थे ॥ ४५-४६ ॥

धनंजययुगान्तार्कः संशप्तकमहार्णवम् ।
व्यशोषयत दुःशोषं तीक्ष्णैः शरगभस्तिभिः ॥ ४७ ॥

अर्जुनरूपी प्रलयकालिक सूर्यने जिसका शोषण करना कठिन था, ऐसे संशप्तक-सैन्यरूपी महासागरको अपनी बाण-मयी प्रचण्ड किरणोंसे सोख लिया ॥ ४७ ॥

पुनर्द्रौणिं महाशैलं नाराचैर्वज्रसंनिभैः ।
निर्बिभेद महावेगैस्त्वरन् वज्रीव पर्वतम् ॥ ४८ ॥

जैसे वज्रधारी इन्द्रने पर्वतोंको विदीर्ण किया था, उसी प्रकार अर्जुनने महान् वेगशाली वज्रतुल्य नाराचोंद्वारा अश्वत्थामारूपी महान् शैलको पुनः वेधना आरम्भ किया॥४८॥

तमाचार्यसुतः क्रुद्धः साश्वयन्तारमाशुगैः ।
युयुत्सुरागमद् योद्धुं पार्थस्तानच्छिनच्छरान् ॥४९॥

तब क्रोधमें भरा हुआ आचार्यपुत्र सारथि श्रीकृष्णसहित अर्जुन-के साथ युद्ध करनेकी इच्छासे बाणोंद्वारा उनके सामने उपस्थित हुआ; परंतु कुन्तीकुमार अर्जुनने उसके सभी बाण काट गिराये॥

ततः परमसंक्रुद्धः पाण्डवेऽस्त्राण्यवासृजत् ।
अश्वत्थामाभिरूपाय गृहानतिथये यथा ॥ ५० ॥

तदनन्तर अत्यन्त कुपित हुआ अश्वत्थामा पाण्डुपुत्र अर्जुनको उसी प्रकार अपने अस्त्र अर्पित करने लगा, जैसे कोई गृहस्थ योग्य अतिथिको अपना सारा घर सौंप देता है ॥

अथ संशप्तकांस्त्यक्त्वा पाण्डवो द्रौणिमभ्ययात् ।
अपाङ्क्तेयानिव त्यक्त्वा दाता पाङ्क्तेयमर्थिनम्॥५१॥

तब पाण्डुपुत्र अर्जुन संशप्तकोंको छोड़कर द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके सामने आये। ठीक उसी तरह, जैसे दाता पंक्ति-में बैठनेके अयोग्य ब्राह्मणोंको छोड़कर याचना करनेवाले पंक्तिपावन ब्राह्मणकी ओर जाता है ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अश्वत्थामार्जुनसंवादे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें अश्वत्थामा और अर्जुनका संवादविषयक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १५½ श्लोक मिलाकर कुल ६६½ श्लोक हैं)

सप्तदशोऽध्यायः

अर्जुनके द्वारा अश्वत्थामाकी पराजय

संजय उवाच

ततः समभवद् युद्धं शुक्राङ्गिरसवर्चसोः ।
नक्षत्रमभितो व्योम्नि शुक्राङ्गिरसयोरिव ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर आकाशमें नक्षत्र-मण्डलके निकट परस्पर युद्ध करनेवाले शुक्राचार्य और बृहस्पति-के समान वहाँ रणभूमिमें श्रीकृष्णके निकट शुक्र और बृहस्पति-के तुल्य तेजस्वी अश्वत्थामा और अर्जुनका युद्ध होने लगा ॥

संतापयन्तावन्योन्यं दीप्तैः शरगभस्तिभिः ।
लोकत्रासकरावास्तां विमार्गस्थौ ग्रहाविव ॥ २ ॥

जैसे वक्र या अतिचार गतिसे चलनेवाले दो ग्रह सम्पूर्ण जगत्के लिये त्रास उत्पन्न करनेवाले हो जाते हैं, उसी प्रकार वे दोनों वीर अपनी बाणमयी प्रज्वलित किरणोंद्वारा एक दूसरेको संताप देने लगे ॥ २ ॥

ततोऽविध्यद् भ्रुवोर्मध्ये नाराचेनार्जुनो भृशम् ।

स तेन विबभौ द्रौणिरूर्ध्वरश्मिर्यथा रविः ॥ ३ ॥

तत्पश्चात् अर्जुनने एक नाराचसे अश्वत्थामाकी दोनों भौहोंके मध्यभागमें गहरा आघात पहुँचाया। ललाटमें धँसे हुए उस बाणसे अश्वत्थामा ऊपरकी ओर उठी हुई किरणोंवाले सूर्यके समान सुशोभित होने लगा ॥ ३ ॥

अथ कृष्णौ शरशतैरश्वत्थाम्नार्दितौ भृशम्।
स्वरश्मिजालविकचौ युगान्तार्काविवासतुः ॥ ४ ॥

इसके बाद अश्वत्थामाने भी श्रीकृष्ण और अर्जुनको अपने सैकड़ों बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी। उस समय वे दोनों अपनी किरणोंका प्रसार करनेवाले प्रलयकालके दो सूर्योंके समान प्रतीत होते थे ॥ ४ ॥

ततोऽर्जुनः सर्वतोधारमस्त्र-
मवासृजद् वासुदेवेऽभिभूते।
द्रौणायनिं चाभ्यहनत् पृषत्कै-
र्वज्राग्निवैवस्वतदण्डकल्पैः ॥ ५ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके घायल होनेपर अर्जुनने एक ऐसे अस्त्रका प्रयोग किया, जिसकी धार सब ओर थी। उन्होंने वज्र, अग्नि और यमदण्डके समान अमोघ, दाहक और प्राणहारी बाणोंद्वारा द्रोणकुमार अश्वत्थामाको घायल कर दिया ॥ ५ ॥

स केशवं चार्जुनं चातितेजा
विव्याध मर्मस्वतिरौद्रकर्मा।
बाणैः सुयुक्तैरतितीव्रवेगै-
र्यैराहतो मृत्युरपि व्यथेत ॥ ६ ॥

फिर अत्यन्त भयंकर कर्म करनेवाले महातेजस्वी अश्वत्थामाने भी अच्छी तरह छोड़े हुए अत्यन्त तीव्र वेगवाले बाणोंद्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुनके मर्मस्थानोंमें आघात किया। वे बाण ऐसे थे जिनकी चोट खाकर मौतको भी व्यथा हो सकती थी॥

द्रौणेरिषूनर्जुनः संनिवार्य
व्यायच्छतस्तद्द्विगुणैः सुपुङ्खैः।
तं साश्वसूतध्वजमेकवीर-
मावृत्य संशप्तकसैन्यमार्च्छत् ॥ ७ ॥

अर्जुनने परिश्रमपूर्वक बाण चलानेवाले द्रोणकुमारके उन बाणोंका सुन्दर पंखवाले उनसे दुगुने बाणोंद्वारा निवारण करके घोड़े, सारथि और ध्वजसहित उस एक वीरको आच्छादित कर दिया। फिर वे संशप्तकसेनाकी ओर चल दिये ॥ ७ ॥

धनूंषि बाणानिषुधीर्धनुर्ज्याः
पाणीन् भुजान् पाणिगतं च शस्त्रम्।
छत्राणि केतूंस्तुरगान् रथेषां
वस्त्राणि माल्यान्यथ भूषणानि ॥ ८ ॥
चर्माणि वर्माणि मनोरमाणि
प्रियाणि सर्वाणि शिरांसि चैव।
चिच्छेद पार्थो द्विषतां सुयुक्तै-
र्बाणैः स्थितानामपराङ्मुखानाम् ॥ ९ ॥

कुन्तीकुमार अर्जुनने उत्तम रीतिसे छोड़े गये बाणोंद्वारा युद्धमें पीठ न दिखाकर सामने खड़े हुए शत्रुओंके धनुष, बाण, तरकस, प्रत्यञ्चा, हाथ, भुजा, हाथमें रक्खे हुए शस्त्र, छत्र, ध्वज, अश्व, रथ, ईषादण्ड, वस्त्र, माला, आभूषण, ढाल, सुन्दर कवच, समस्त प्रिय वस्तु तथा मस्तक—इन सबको काट डाला ॥ ८-९ ॥

सुकल्पिताः स्यन्दनवाजिनागाः
समास्थिताः कृतयत्नैर्नृवीरैः।
पार्थेरितैर्बाणशतैर्निरस्ता-
स्तैरेव सार्धं नृवरैर्निपेतुः ॥ १० ॥

सुन्दर सजे-सजाये रथ, घोड़े और हाथी खड़े थे और उनपर प्रयत्नपूर्वक युद्ध करनेवाले नरवीर बैठे थे; परंतु अर्जुनके चलाये हुए सैकड़ों बाणोंसे घायल हो वे सारे वाहन उन नरवीरोंके साथ ही धराशायी हो गये ॥ १० ॥

पद्मार्कपूर्णेन्दुनिभाननानि
किरीटमाल्याभरणोज्ज्वलानि।
भल्लार्धचन्द्रक्षुरकर्तितानि
प्रपेतुरुर्व्यां नृशिरांस्यजस्रम् ॥ ११ ॥

जिनके मुखकमल, सूर्य और पूर्ण चन्द्रमाके समान सुन्दर, तेजस्वी एवं मनोरम थे तथा मुकुट, माला एवं आभूषणोंसे प्रकाशित हो रहे थे, ऐसे असंख्य नरमुण्ड भल्ल, अर्द्धचन्द्र तथा क्षुरनामक बाणोंसे कट-कटकर लगातार पृथ्वीपर गिर रहे थे ॥ ११ ॥

अथ द्विपैर्देवपतिद्विपाभै-
र्देवारिदर्पापहमत्युदग्रम्।
कलिङ्गवङ्गाङ्गनिषादवीरा
जिघांसवः पाण्डवमभ्यधावन् ॥ १२ ॥

तत्पश्चात् कलिङ्ग, अङ्ग, वङ्ग और निषाद देशोंके वीर देवराज इन्द्रके ऐरावत हाथीके समान विशाल गजराजोंपर सवार हो, देवद्रोहियोंका दर्प दलन करनेवाले प्रचण्ड वीर पाण्डुकुमार अर्जुनपर उन्हें मार डालनेकी इच्छासे चढ़ आये ॥ १२ ॥

तेषां द्विपानां निचकर्त पार्थो
वर्माणि चर्माणि करान् नियन्तॄन्।
ध्वजान् पताकांश्च ततः प्रपेतु-
र्वज्राहतानीव गिरेः शिरांसि ॥ १३ ॥

कुन्तीकुमार अर्जुनने उनके हाथियोंके कवच, चर्म, सूँड, महावत, ध्वजा और पताका—सबको काट डाला। इससे वे वज्रके मारे हुए पर्वतीय शिखरोंके समान पृथ्वीपर गिर पड़े ॥

तेषु प्रभग्नेषु गुरोस्तनूजं
बाणैः किरीटी नवसूर्यवर्णैः।
प्रच्छादयामास महाभ्रजालै-
र्वायुः समुद्यन्तमिवांशुमन्तम् ॥ १४ ॥

उनके नष्ट हो जानेपर किरीटधारी अर्जुनने प्रभातकालके

सूर्यकी कान्तिके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा गुरुपुत्र अश्वत्थामाको ढक दिया, मानो वायुने उगते हुए किरणोंवाले सूर्यको मेघोंकी बड़ी भारी घटाओंसे आच्छादित कर दिया हो ॥ १४ ॥

ततोऽर्जुनेषूनिषुभिर्निरस्य
द्रौणिः शितैरर्जुनवासुदेवौ ।
प्रच्छादयित्वा दिवि चन्द्रसूर्यौ
ननाद सोऽम्भोद इवातपान्ते ॥ १५ ॥

तब द्रोणकुमार अश्वत्थामाने अपने तीखे बाणोंद्वारा अर्जुनके बाणोंका निवारण करके श्रीकृष्ण और अर्जुनको ढक दिया और आकाशमें चन्द्रमा तथा सूर्यको आच्छादित करके गर्जनेवाले वर्षाकालके मेघकी भाँति वह गम्भीर गर्जना करने लगा ॥

तमर्जुनस्तांश्च पुनस्त्वदीया-
नभ्यर्दितस्तैरभिसृत्य शस्त्रैः ।
बाणान्धकारं सहसैव कृत्वा
विव्याध सर्वानिषुभिः सुपुङ्खैः ॥ १६ ॥

उसके बाणोंसे पीडित हुए अर्जुनने आगे बढ़कर सहसा शस्त्रोंद्वारा शत्रुके बाणजनित अन्धकारको नष्ट करके उत्तम पंखवाले अपने बाणोंद्वारा अश्वत्थामा तथा आपके अन्य समस्त सैनिकोंको पुनः घायल कर दिया ॥ १६ ॥

नाप्याददत् संदधन्नैव मुञ्चन्
बाणान् रथेऽदृश्यत सव्यसाची ।
रथांश्च नागांस्तुरगान् पदातीन्
संस्यूतदेहान् ददृशुर्हतांश्च ॥ १७ ॥

रथपर बैठे हुए सव्यसाची अर्जुन कब तरकससे बाण लेते, कब उन्हें धनुषपर रखते और कब छोड़ते हैं, यह नहीं दिखायी देता था। सब लोग यही देखते थे कि रथियों, हाथियों, घोड़ों और पैदल सैनिकोंके शरीर उनके बाणोंसे गुँथे हुए हैं और वे प्राणशून्य हो गये हैं ॥ १७ ॥

संधाय नाराचवरान् दशाशु
द्रौणिस्त्वरन्नेकमिवोत्ससर्ज ।
तेषां च पञ्चार्जुनमभ्यविध्यन्
पञ्चाच्युतं निर्बिभिदुः सुपुङ्खाः ॥ १८ ॥

तब अश्वत्थामाने बड़ी उतावलीके साथ अपने धनुषपर दस उत्तम नाराच रक्खे और उन सबको एकके ही समान एक साथ छोड़ दिया। उनमेंसे पाँच सुन्दर पंखवाले नाराचोंने अर्जुनको बींध डाला और पाँचने श्रीकृष्णको क्षत-विक्षत कर दिया ॥

तैराहतौ सर्वमनुष्यमुख्या-
वसृक् स्रवन्तौ धनदेन्द्रकल्पौ ।
समाप्तविद्येन तथाभिभूतौ
हतौ रणे ताविति मेनिरेऽन्ये ॥ १९ ॥

उन बाणोंसे आहत होकर सम्पूर्ण मनुष्योंमें श्रेष्ठ, कुबेर और इन्द्रके समान पराक्रमी वे दोनों वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन अपने अङ्गोंसे रक्त बहाने लगे। जिसकी विद्या पूरी हो चुकी थी, उस अश्वत्थामाके द्वारा इस प्रकार पराभवको प्राप्त हुए उन दोनोंको अन्य सब लोगोंने यही समझा कि 'वे रणभूमिमें मारे गये' ॥ १९ ॥

अथार्जुनं प्राह दशार्हनाथः
प्रमाद्यसे किं जहि योधमेतम् ।
कुर्याद्धि दोषं समुपेक्षितोऽयं
कष्टो भवेद् व्याधिरिवाक्रियावान् ॥ २० ॥

तब दशार्हवंशके स्वामी श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'पार्थ ! तुम क्यों प्रमाद कर रहे हो ? इस योद्धाको मार डालो। इसकी उपेक्षा की जायगी तो यह और भी नये-नये अपराध करेगा और जिसकी चिकित्सा न की गयी हो, उस रोगके समान अधिक कष्टदायक हो जायगा' ॥ २० ॥

तथेति चोक्त्वाच्युतमप्रमादी
द्रौणिं प्रयत्नादिषुभिस्ततक्ष ।
भुजौ वरौ चन्दनसारदिग्धौ
वक्षः शिरोऽथाप्रतिमौ तथोरू ॥ २१ ॥

'बहुत अच्छा, ऐसा ही करूँगा' श्रीकृष्णसे ऐसा कहकर सतत सावधान रहनेवाले अर्जुन अपने बाणोंद्वारा प्रयत्नपूर्वक अश्वत्थामाको—उसके चन्दनसारचर्चित श्रेष्ठ भुजाओं, वक्षःस्थल, सिर और अनुपम जाँघोंको क्षत-विक्षत करने लगे ॥

गाण्डीवमुक्तैः कुपितोऽविकर्णै-
र्द्रौणिं शरैः संयति निर्बिभेद ।
छित्त्वा तु रश्मींस्तुरगानविध्यत्
ते तं रणादूहुरतीव दूरम् ॥ २२ ॥

क्रोधमें भरे हुए अर्जुनने गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए भेड़के कान-जैसे अग्रभागवाले बाणोंद्वारा युद्धस्थलमें द्रोणपुत्रको विदीर्ण कर डाला। घोड़ोंकी बागडोर काटकर उन्हें अत्यन्त घायल कर दिया। इससे वे घोड़े अश्वत्थामाको रणभूमिसे बहुत दूर भगा ले गये ॥ २२ ॥

स तैर्हृतो वातजवैस्तुरङ्गै-
र्द्रौणिर्दृढं पार्थशराभिभूतः ।
इयेष नावृत्य पुनस्तु योद्धुं
पार्थेन सार्धं मतिमान् विमृश्य ।
जानञ्जयं नियतं वृष्णिवीरे
धनंजये चाङ्गिरसां वरिष्ठः ॥ २३ ॥

अश्वत्थामा अर्जुनके बाणोंसे बहुत पीड़ित हो गया था। जब वायुके समान वेगशाली घोड़े उसे रणभूमिसे बहुत दूर हटा ले गये, तब उस बुद्धिमान् वीरने मन-ही-मन विचार करके पुनः लौटकर अर्जुनके साथ युद्ध करनेकी इच्छा त्याग दी। अङ्गिरा गोत्रवाले ब्राह्मणोंमें सर्वश्रेष्ठ अश्वत्थामा यह जान गया था कि वृष्णिवीर श्रीकृष्ण और अर्जुनकी विजय निश्चित है ॥

नियम्य स हयान् द्रौणिः समाश्वास्य च मारिष ।
रथाश्वनरसम्बाधं कर्णस्य प्राविशद् बलम् ॥ २४ ॥

मान्यवर ! अपने घोड़ोंको रोककर थोड़ी देर उनको

स्वस्थ कर लेनेके बाद द्रोणकुमार अश्वत्थामा रथ, घोड़े और पैदल मनुष्योंसे भरी हुई कर्णकी सेनामें प्रविष्ट हो गया ॥

प्रतीपकारिणि रणादश्वत्थाम्नि हृते हयैः ।
मन्त्रौषधिक्रियायोगैर्व्याधौ देहादिवाहृते ॥ २५ ॥
संशप्तकानभिमुखौ प्रयातौ केशवार्जुनौ ।
वातोद्धूतपताकेन स्यन्दनेनौघनादिना ॥ २६ ॥

जैसे मन्त्र, औषध, चिकित्सा और योगके द्वारा शरीरसे रोग दूर हो जाता है, उसी प्रकार जब प्रतिकूल कार्य करनेवाला अश्वत्थामा चारों घोड़ोंद्वारा रणभूमिसे दूर हटा दिया गया, तब वायुसे फहराती हुई पताकाओंसे युक्त और जलप्रवाहके समान गम्भीर घोष करनेवाले रथके द्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुन फिर संशप्तकोंकी ओर चल दिये ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अश्वत्थामपराजये सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें अश्वत्थामाकी पराजयविषयक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

अर्जुनके द्वारा हाथियोंसहित दण्डधार और दण्ड आदिका वध तथा उनकी सेनाका पलायन

संजय उवाच

अथोत्तरेण पाण्डूनां सेनायां ध्वनिरुत्थितः ।
रथनागाश्वपत्तीनां दण्डधारेण वध्यताम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर पाण्डव-सेनाके उत्तर भागमें दण्डधारके द्वारा मारे जाते हुए रथी, हाथी, घोड़े और पैदलोंका आर्तनाद गूँज उठा ॥ १ ॥

निवर्तयित्वा तु रथं केशवोऽर्जुनमब्रवीत् ।
वाहयन्नेव तुरगान् गरुडानिलरंहसः ॥ २ ॥

उस समय भगवान् श्रीकृष्णने अपना रथ लौटाकर गरुड़ और वायुके समान वेगवाले घोड़ोंको हाँकते हुए ही अर्जुनसे कहा—॥ २ ॥

मागधोऽप्यतिविक्रान्तो द्विरदेन प्रमाथिना ।
भगदत्तादनवरः शिक्षया च बलेन च ॥ ३ ॥

'पार्थ! यह मगधनिवासी दण्डधार भी बड़ा पराक्रमी है। इसके पास शत्रुओंको मथ डालनेवाला गजराज है। इसे युद्धकी उत्तम शिक्षा मिली है तथा यह बलवान् भी है, इन सब विशेषताओंके कारण यह पराक्रममें भगदत्तसे तनिक भी कम नहीं है ॥ ३ ॥

एनं हत्वा निहन्तासि पुनः संशप्तकानिति ।
वाक्यान्ते प्रापयत् पार्थं दण्डधारान्तिकं प्रति ॥ ४ ॥

'अतः पहले इसका वध करके तुम पुनः संशप्तकोंका संहार करना।' इतना कहते-कहते श्रीकृष्णने अर्जुनको दण्डधारके निकट पहुँचा दिया ॥ ४ ॥

स मागधानां प्रवरोऽङ्कुशग्रहे
ग्रहेऽप्रसह्यो विकचो यथा ग्रहः ।
सपत्नसेनां प्रममाथ दारुणो
महीं समग्रां विकचो यथा ग्रहः ॥ ५ ॥

मागध वीरोंमें सर्वश्रेष्ठ दण्डधार अङ्कुश धारण करके हाथीद्वारा युद्ध करनेमें अपना सानी नहीं रखते थे। जैसे ग्रहोंमें केतुग्रहका वेग असह्य होता है, उसी प्रकार उनका आक्रमण भी शत्रुओंके लिये असहनीय था। जैसे धूमकेतु नामक उत्पातग्रह सम्पूर्ण भूमण्डलके लिये अनिष्टकारक होता है, उसी प्रकार उस भयंकर वीरने वहाँ शत्रुओंकी सम्पूर्ण सेनाको मथ डाला ॥ ५ ॥

सुकल्पितं दानवनागसंनिभं
महाभ्रनिर्ह्रादममित्रमर्दनम् ।
रथाश्वमातङ्गगणान् सहस्रशः
समास्थितो हन्ति शरैर्नरानपि ॥ ६ ॥

उनका हाथी खूब सजाया गया था, वह गजासुरके समान बलशाली, महामेघके समान गर्जना करनेवाला तथा शत्रुओंको रौंद डालनेवाला था। उसपर आरूढ़ होकर दण्डधार अपने बाणोंसे सहस्रों रथों, घोड़ों, मतवाले हाथियों और पैदल मनुष्योंका भी संहार करने लगे ॥ ६ ॥

रथानधिष्ठाय सवाजिसारथीन्
नरांश्च पादैर्द्विरदो व्यपोथयत् ।
द्विपांश्च पद्भ्यां ममृदे करेण
द्विपोत्तमो हन्ति च कालचक्रवत् ॥ ७ ॥

उनका वह हाथी रथोंपर पैर रखकर सारथि और घोड़ोंसहित उन्हें चूर-चूर कर डालता था। पैदल मनुष्योंको भी पैरोंसे ही कुचल डालता था। हाथियोंको भी दोनों पैरों तथा सूँड़से मसल देता था। इस प्रकार वह गजराज कालचक्रके समान शत्रु-सेनाका संहार करने लगा ॥ ७ ॥

नरांस्तु कार्ष्णायसवर्मभूषणान्
निपात्य साश्वानपि पत्तिभिः सह ।
व्यपोथयद् दन्तिवरेण शुष्मिणा
स शब्दवत् स्थूलनलं यथा तथा ॥ ८ ॥

वे अपने बलवान् एवं श्रेष्ठ गजराजके द्वारा लोहेके कवच तथा उत्तम आभूषण धारण करनेवाले घुड़सवारोंको घोड़ों और पैदलोंसहित पृथ्वीपर गिराकर कुचलवा देते थे। उस समय जैसे मोटे नरकुलोंके कुचले जाते समय 'चर-चर' की आवाज होती है, उसी प्रकार उन सैनिकोंके कुचले जानेपर भी होती थी ॥ ८ ॥

अथार्जुनो ज्यातलनेमिनिःस्वने
मृदङ्गभेरीबहुशङ्खनादिते ।

रथाश्वमातङ्गसहस्रसंकुले
रथोत्तमेनाभ्यपतद् द्विपोत्तमम् ॥ ९ ॥

तदनन्तर जहाँ धनुषकी टंकार और पहियोंकी घर्घराहटका शब्द गूँज रहा था, मृदङ्ग, भेरी और बहुसंख्यक शङ्खोंकी ध्वनि हो रही थी तथा जहाँ रथ, घोड़े और हाथी सहस्रोंकी संख्यामें भरे हुए थे, उस समराङ्गणमें पूर्वोक्त गजराजके समीप अर्जुन अपने उत्तम रथके द्वारा जा पहुँचे ॥ ९ ॥

ततोऽर्जुनं द्वादशभिः शरोत्तमै-
र्जनार्दनं षोडशभिः समार्पयत् ।
स दण्डधारस्तुरगांस्त्रिभिस्त्रिभि-
स्ततो ननाद प्रजहास चासकृत् ॥ १० ॥

तब दण्डधारने अर्जुनको बारह और भगवान् श्रीकृष्णको सोलह उत्तम बाण मारे। फिर तीन-तीन बाणोंसे उनके घोड़ोंको घायल करके वे बारंबार गर्जने और अट्टहास करने लगे ॥

ततोऽस्य पार्थः सगुणेषुकार्मुकं
चकर्त भल्लैर्ध्वजमप्यलंकृतम् ।
पुनर्नियन्तॄन् सह पादगोप्तृ-
स्ततः स चुक्रोध गिरिव्रजेश्वरः ॥ ११ ॥

तत्पश्चात् अर्जुनने अपने भल्लोंद्वारा प्रत्यञ्चा और बाणों-सहित दण्डधारके धनुष तथा सजे-सजाये ध्वजको भी काट गिराया। फिर हाथीके महावतों तथा पादरक्षकोंको भी मार डाला। इससे गिरिव्रजके स्वामी दण्डधार अत्यन्त कुपित हो उठे ॥ ११ ॥

ततोऽर्जुनं भिन्नकटेन दन्तिना
घनाघनेनानिलतुल्यवर्चसा ।
अतीव चुक्षोभयिषुर्जनार्दनं
धनंजयं चाभिजघान तोमरैः ॥ १२ ॥

उन्होंने गण्डस्थलसे मदकी धारा बहानेवाले, वायुके समान वेगशाली, मदोन्मत्त गजराजके द्वारा अर्जुन और श्रीकृष्णको अत्यन्त घबराहटमें डालनेकी इच्छासे उसे उन दोनोंकी ओर बढ़ाया और तोमरोंसे उन दोनोंपर प्रहार किया ॥

अथास्य बाहू द्विपहस्तसंनिभौ
शिरश्च पूर्णेन्दुनिभाननं त्रिभिः ।
क्षुरैः प्रचिच्छेद सहैव पाण्डव-
स्ततो द्विपं बाणशतैः समार्पयत् ॥ १३ ॥

तब अर्जुनने हाथीकी सूँड़के समान मोटी दण्डधारकी दोनों भुजाओं तथा पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले उनके मस्तकको भी तीन छुरोंसे एक साथ ही काट डाला। फिर उन्होंने उनके हाथीको सौ बाण मारे ॥ १३ ॥

स पार्थबाणैस्तपनीयभूषणैः
समाचितः काञ्चनवर्मभृद् द्विपः ।
तथा चकाशे निशि पर्वतो यथा
दावाग्निना प्रज्वलितौषधिद्रुमः ॥ १४ ॥

उसके सारे शरीरमें अर्जुनके सुवर्णभूषित बाण चुभ गये थे। इससे सुवर्णमय कवच धारण करनेवाला वह हाथी उसी प्रकार शोभा पाने लगा, जैसे रात्रिमें दावानलसे जलती हुई ओषधियों और वृक्षोंसे युक्त पर्वत प्रकाशित होता है ॥

स वेदनार्तोऽम्बुदनिस्वनो नदं-
श्चरन् भ्रमन् प्रस्खलितान्तरोऽद्रवत् ।
पपात रुग्णः सनियन्तृकस्तथा
यथा गिरिर्वज्रविदारितस्तथा ॥ १५ ॥

वह हाथी वेदनासे पीड़ित हो मेघके समान गर्जना करता, सब ओर विचरता, घूमता और बीच-बीचमें लड़खड़ाता हुआ भागने लगा। अधिक घायल हो जानेके कारण वह महावतोंके साथ ही पृथ्वीपर गिर पड़ा; मानो वज्र-द्वारा विदीर्ण किया हुआ पर्वत धराशायी हो गया हो ॥ १५ ॥

हिमावदातेन सुवर्णमालिना
हिमाद्रिकूटप्रतिमेन दन्तिना ।
हते रणे भ्रातरि दण्ड आव्रज-
ज्जिघांसुरिन्द्रावरजं धनंजयम् ॥ १६ ॥

रणभूमिमें अपने भाई दण्डधारके मारे जानेपर दण्ड श्रीकृष्ण और अर्जुनका वध करनेकी इच्छासे बर्फके समान सफेद, सुवर्णमालाधारी तथा हिमालयके शिखरके समान विशालकाय गजराजके द्वारा वहाँ आ पहुँचा ॥ १६ ॥

स तोमरैरर्ककरप्रभैस्त्रिभि-
र्जनार्दनं पञ्चभिरर्जुनं शितैः ।
समर्पयित्वा विननाद नर्दयं-
स्ततोऽस्य बाहू निचकर्त पाण्डवः ॥ १७ ॥

उसने सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशित होनेवाले तीन तीखे तोमरोंसे श्रीकृष्णको और पाँचसे अर्जुनको घायल करके बड़े जोरसे गर्जना की। इतनेहीमें पाण्डुपुत्र अर्जुनने उसकी दोनों बाँहें काट डालीं ॥ १७ ॥

क्षुरप्रकृत्तौ सुभृशं सतोमरौ
शुभाङ्गदौ चन्दनरूषितौ भुजौ ।
गजात् पतन्तौ युगपद् विरेजतु-
र्यथाद्रिशृङ्गाद् रुचिरौ महोरगौ ॥ १८ ॥

क्षुरसे कटी हुई, सुन्दर बाजूबन्दसे विभूषित, चन्दन-चर्चित तथा तोमरसहित वे विशाल भुजाएँ हाथीसे एक साथ गिरते समय पर्वतके शिखरसे गिरनेवाले दो सुन्दर एवं बड़े-बड़े सर्पोंके समान विभूषित हुईं ॥ १८ ॥

तथार्धचन्द्रेण हृतं किरीटिना
पपात दण्डस्य शिरः क्षितिं द्विपात् ।
तच्छोणितार्द्रं निपतद् विरेजे
दिवाकरोऽस्तादिव पश्चिमां दिशम् ॥ १९ ॥

तत्पश्चात् किरीटधारी अर्जुनके चलाये हुए अर्धचन्द्रसे कटकर दण्डका मस्तक हाथीसे पृथ्वीपर गिर पड़ा। उस समय खूनसे लथपथ हो गिरता हुआ वह मस्तक अस्ताचलसे पश्चिम दिशाकी ओर डूबते हुए सूर्यके समान शोभायमान हुआ ॥

अथ द्विपं श्वेतवराभ्रसंनिभं
दिवाकरांशुप्रतिमैः शरोत्तमैः ।
बिभेद पार्थः स पपात नादयन्
हिमाद्रिकूटं कुलिशाहतं यथा ॥ २० ॥

इसके बाद अर्जुनने श्वेत महामेघके समान सफेद रंगवाले उस हाथीको सूर्यकी किरणोंके सदृश तेजस्वी उत्तम बाणोंद्वारा विदीर्ण कर डाला । फिर तो वह वज्रके मारे हुए हिमालयके शिखरके समान धमाकेकी आवाजके साथ धराशायी हो गया ॥

ततोऽपरे तत्प्रतिमा गजोत्तमा
जिगीषवः संयति सव्यसाचिना ।
तथा कृतास्ते च यथैव तौ द्विपौ
ततः प्रभग्नं सुमहद्रिपोर्बलम् ॥ २१ ॥

तदनन्तर उसीके समान जो दूसरे-दूसरे गजराज विजयकी इच्छासे युद्धके लिये आगे बढ़े, उन सबकी सव्यसाची अर्जुनने वैसी ही दशा कर डाली, जैसी कि पूर्वोक्त दोनों हाथियोंकी कर दी थी । इससे शत्रुकी उस विशाल सेनामें भगदड़ मच गयी ॥ २१ ॥

गजा रथाश्वाः पुरुषाश्च संघशः
परस्परघ्नाः परिपेतुराहवे ।
परस्परं प्रस्खलिताः समाहता
भृशं निपेतुर्बहुभाषिणो हताः ॥ २२ ॥

झुंड-के-झुंड हाथी, रथ, घोड़े और पैदल मनुष्य परस्पर आघात-प्रत्याघात करते हुए युद्धस्थलमें चारों ओरसे टूट पड़े थे । वे आपसमें एक दूसरेकी चोटसे अत्यन्त घायल हो लड़खड़ाते और बहुत बकझक करते हुए मरकर गिर जाते थे ॥

अथार्जुनं स्वे परिवार्य सैनिकाः
पुरन्दरं देवगणा इवाब्रुवन् ।
अभैष्म यस्मान्मरणादिव प्रजाः
स वीर दिष्ट्या निहतस्त्वया रिपुः ॥ २३ ॥

इसके बाद इन्द्रको घेरकर खड़े हुए देवताओंके समान अपनी ही सेनाके लोग अर्जुनको घेरकर इस प्रकार बोले—'वीर ! जैसे प्रजा मौतसे डरती है, उसी प्रकार हमलोग जिससे भयभीत हो रहे थे, उस शत्रुको आपने मार डाला; यह बड़े सौभाग्यकी बात है ! ॥ २३ ॥

न चेदरक्षिष्य इमं जनं भयाद्
द्विषद्भिरेवं बलिभिः प्रपीडितम् ।
तथाभविष्यद् विपतां प्रमोदनं
यथा हतेष्वेष्विह नोऽरिसूदन ॥ २४ ॥

'शत्रुसूदन ! यदि आप बलवान् शत्रुओंसे इस प्रकार पीड़ित हुए इन स्वजनोंकी भयसे रक्षा नहीं करते तो इन शत्रुओंको वैसी ही प्रसन्नता होती, जैसी इस समय इनके मारे जानेपर यहाँ हमलोगोंको हो रही है' ॥ २४ ॥

इतीव भूयश्च सुहृद्भिरीरिता
निशम्य वाचः सुमनास्ततोऽर्जुनः ।
यथानुरूपं प्रतिपूज्य तं जनं
जगाम संशप्तकसंघहा पुनः ॥ २५ ॥

इस प्रकार अपने सुहृदोंकी कही हुई ये बातें बारंबार सुनकर अर्जुनको मन-ही-मन बड़ी प्रसन्नता हुई । वे उन लोगोंका यथायोग्य आदर-सत्कार करके पुनः संशप्तकगणका वध करनेके लिये वहाँसे चल दिये ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि दण्डवधेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें दण्डधार और दण्डका वधविषयक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

अर्जुनके द्वारा संशप्तक-सेनाका संहार, श्रीकृष्णका अर्जुनको युद्धस्थलका दृश्य दिखाते हुए उनके पराक्रमकी प्रशंसा करना तथा पाण्ड्यनरेशका कौरवसेनाके साथ युद्धारम्भ

संजय उवाच

प्रत्यागत्य पुनर्जिष्णुर्जघ्ने संशप्तकान् बहून् ।
वक्रातिवक्रगमनादङ्गारक इव ग्रहः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! जैसे मङ्गल नामक ग्रह वक्र और अतिचार गतिसे चलकर लोकके लिये अनिष्टकारी होता है, उसी प्रकार विजयशील अर्जुनने दण्डधारकी सेनासे पुनः लौटकर बहुत-से संशप्तकोंका संहार आरम्भ कर दिया ॥१॥

पार्थबाणहता राजन् नराश्वरथकुञ्जराः ।
विचेलुर्बभ्रमुर्नेशुः पेतुर्मम्लुश्च भारत ॥ २ ॥

भरतवंशी नरेश ! अर्जुनके बाणोंसे आहत हो हाथी, घोड़े, रथ और पैदल मनुष्य विचलित, भ्रान्त, पतित, मलिन तथा नष्ट होने लगे ॥ २॥

धुर्यान् धुर्यगतान् सूतान् ध्वजांश्चापासिसायकान् ।
पाणीन् पाणिगतं शस्त्रं बाहूनपि शिरांसि च ॥ ३ ॥
भल्लैः क्षुरैरर्धचन्द्रैर्वत्सदन्तैश्च पाण्डवः ।
चिच्छेदामित्रवीराणां समरे प्रतियुध्यताम् ॥ ४ ॥

पाण्डुनन्दन अर्जुनने भल्ल, क्षुर, अर्धचन्द्र और वत्सदन्त नामक अस्त्रोंद्वारा समराङ्गणमें सामना करनेवाले विपक्षी वीरोंके रथोंमें जुते हुए धुरंधर अश्वों, सारथियों, ध्वजों, धनुषों, सायकों, तलवारों, हाथों, हाथमें रक्खे हुए शस्त्रों, भुजाओं तथा मस्तकोंको भी काट डाला ॥ ३-४ ॥

वासितार्थे युयुत्सन्तो वृषभा वृषभं यथा ।
निपतन्त्यर्जुनं शूराः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५ ॥

जैसे मैथुनकी वासनावाली गायके लिये युद्धकी इच्छासे

बहुतेरे साँड किसी एक साँडपर टूट पड़ते हों, उसी प्रकार सैकड़ों और हजारों शूरवीर अर्जुनपर धावा बोलने लगे ॥ ५॥

तेषां तस्य च तद् युद्धमभवल्लोमहर्षणम्।
त्रैलोक्यविजये यादृग् दैत्यानां सह वज्रिणा ॥ ६ ॥

उन योद्धाओं तथा अर्जुनका वह युद्ध वैसा ही रोमाञ्चकारी था, जैसा कि त्रैलोक्य-विजयके समय वज्रधारी इन्द्रके साथ दैत्योंका हुआ था ॥ ६ ॥

तमविध्यत् त्रिभिर्बाणैर्दन्दशूकैरिवाहिभिः ।
उग्रायुधसुतस्तस्य शिरः कायादपाहरत् ॥ ७ ॥

उस समय उग्रायुधके पुत्रने अत्यन्त डँस लेनेके स्वभाववाले सर्पोंके समान तीन बाणोंद्वारा अर्जुनको बींध डाला। तब अर्जुनने उसके सिरको धड़से उतार लिया ॥ ७ ॥

तेऽर्जुनं सर्वतः क्रुद्धा नानाशस्त्रैरवीवृषन्।
मरुद्भिः प्रेरिता मेघा हिमवन्तमिवोष्णगे ॥ ८ ॥

वे संशप्तक योद्धा कुपित हो अर्जुनपर सब ओरसे नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे, मानो वर्षाकालमें पवनप्रेरित मेघ हिमालयपर जलकी वृष्टि कर रहे हों ॥ ८ ॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्विषतां सर्वतोऽर्जुनः।
सम्यगस्तैः शरैः सर्वानहितानहनद् बहून् ॥ ९ ॥

अर्जुनने अपने अस्त्रोंद्वारा शत्रुओंके अस्त्रोंका सब ओरसे निवारण करके अच्छी तरह चलाये हुए बाणोंद्वारा समस्त विपक्षियोंमेंसे बहुतोंको मार डाला ॥ ९ ॥

छिन्नत्रिवेणुसंघातान् हताश्वान् पार्ष्णिसारथीन्।
विध्रस्तहस्ततूणीरान् विचक्ररथकेतनान् ॥ १० ॥
संछिन्नरश्मियोक्त्राक्षान् व्यनुकर्षयुगान् रथान् ।
विध्वस्तसर्वसंनाहान् बाणैश्चक्रेऽर्जुनस्तदा ॥ ११ ॥

अर्जुनने उस समय अपने बाणोंद्वारा शत्रुओंके रथोंकी बड़ी बुरी दशा कर डाली। उनके त्रिवेणुसमूह काट डाले, घोड़ों और पार्श्वरक्षकोंको मार डाला । उन योद्धाओंके हाथोंसे खिसककर तूणीर गिर गये तथा उनके रथोंके पहिये और ध्वज भी नष्ट हो गये। घोड़ोंकी बागडोर, जोत और रथके धुरे भी काट डाले गये। उनके अनुकर्ष और जूए भी चौपट हो गये थे॥

ते रथास्तत्र विध्वस्ताः परार्ध्या भान्त्यनेकशः।
धनिनामिव वेश्मानि हतान्यग्न्यनिलाम्बुभिः ॥ १२ ॥

वे बहुमूल्य और बहुसंख्यक रथ, जो वहाँ टूट-फूटकर गिरे पड़े थे, आग, हवा और पानीसे नष्ट हुए धनवानोंके घरोंके समान जान पड़ते थे ॥ १२ ॥

द्विपाः सम्भिन्नवर्माणो वज्राशनिसमैः शरैः ।
पेतुर्गिर्यग्रवेश्मानि वज्रवाताग्निभिर्यथा ॥ १३ ॥

वज्र और बिजलीके समान तेजस्वी बाणोंसे कवच विदीर्ण हो जानेके कारण हाथी वज्र, वायु तथा आगसे नष्ट हुए पर्वत-शिखरोंपर बने हुए गृहोंके समान गिर पड़ते थे ॥ १३ ॥

सारोहास्तुरगाः पेतुर्बहवोऽर्जुनताडिताः।
निर्जिह्वान्त्राः क्षितौ क्षीणा रुधिरार्द्राः सुदुर्दशाः॥ १४ ॥

अर्जुनके मारे हुए बहुसंख्यक घोड़े और घुड़सवार पृथ्वीपर क्षत-विक्षत होकर पड़े थे। उनकी जीभ तथा आँतें बाहर निकल आयी थीं। वे खूनसे लथपथ हो रहे थे। उनकी ओर देखना अत्यन्त कठिन हो गया था ॥ १४ ॥

नराश्वनागा नाराचैः संस्यूताः सव्यसाचिना।
बभ्रमुश्चस्खलुः पेतुर्नेदुर्मम्लुश्च मारिष ॥ १५ ॥

मान्यवर! सव्यसाची अर्जुनके नाराचोंसे गुथे हुए हाथी, घोड़े और मनुष्य चक्कर काटते, लड़खड़ाते, गिरते, चिल्लाते और मन मारकर रह जाते थे ॥ १५ ॥

अनेकैश्च शिलाधौतैर्वज्राशनिविषोपमैः ।
शरैर्निजघ्निवान् पार्थो महेन्द्र इव दानवान् ॥ १६ ॥

जैसे देवराज इन्द्र दानवोंका संहार करते हैं, उसी प्रकार कुन्तीकुमार अर्जुनने शिलापर तेज किये हुए वज्र, अशनि तथा विषके तुल्य अनेक भयंकर बाणोंद्वारा उन संशप्तक वीरोंका वध कर डाला ॥ १६ ॥

महार्हवर्माभरणा नानारूपाम्बरायुधाः।
सरथाः सध्वजा वीरा हताः पार्थेन शेरते ॥ १७ ॥

अर्जुनद्वारा मारे गये संशप्तक वीर बहुमूल्य कवच, आभूषण, भाँति-भाँतिके वस्त्र, आयुध, रथ और ध्वजोंसहित रणभूमिमें सो रहे थे ॥ १७ ॥

विजिताः पुण्यकर्माणो विशिष्टाभिजनश्रुताः।
गताः शरीरैर्वसुधामूर्जितैः कर्मभिर्दिवम् ॥ १८ ॥

वे पुण्यात्मा, उत्तम कुलमें उत्पन्न तथा विशिष्ट शास्त्रज्ञानसे सम्पन्न वीर पराजित होकर अपने शरीरोंसे तो पृथ्वीपर गिरे, परंतु प्रबल उत्तम कर्मोंके द्वारा स्वर्गलोकमें जा पहुँचे ॥

अथार्जुनं रथवरं त्वदीयाः समभिद्रवन्।
नानाजनपदाध्यक्षाः सगणा जातमन्यवः ॥ १९ ॥

तदनन्तर आपके सैनिक रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनपर टूट पड़े। वे विभिन्न जनपदोंके अधिपति थे और अपने दलबलके साथ कुपित होकर चढ़ आये थे ॥ १९ ॥

उह्यमाना रथाश्वेभैः पत्तयश्च जिघांसवः।
समभ्यधावन्नस्यन्तो विविधं क्षिप्रमायुधम् ॥ २० ॥

रथों, घोड़ों और हाथियोंके सवार तथा पैदल सैनिक उन्हें मार डालनेकी इच्छासे नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करते हुए शीघ्रतापूर्वक धावा बोलने लगे ॥ २० ॥

तदायुधमहावर्षं मुक्तं योधमहाम्बुदैः।
व्यधमन्निशितैर्बाणैः क्षिप्रमर्जुनमारुतः ॥ २१ ॥

परंतु अर्जुनरूपी वायुने संशप्तक सैनिकरूपी महामेघोंद्वारा की हुई अस्त्र-शस्त्रोंकी उस महावृष्टिको तीखे बाणोंद्वारा छिन्न-भिन्न कर डाला ॥ २१ ॥

साश्वपत्तिद्विपरथं महाशस्त्रौघसम्प्लवम्।
सहसा संतितीर्षन्तं पार्थं शस्त्रास्त्रसेतुना ॥ २२ ॥

अथाब्रवीद् वासुदेवः पार्थ किं क्रीडसेऽनघ ।
संशप्तकान् प्रमथ्यैनांस्ततः कर्णवधे त्वर ॥ २३ ॥

अर्जुन हाथी, घोड़े, रथ और पैदल-समूहोंसे युक्त तथा महान् अस्त्र-शस्त्रोंके प्रवाहसे परिपूर्ण उस सैन्य-समुद्रको अपने अस्त्र-शस्त्ररूपी पुलके द्वारा सहसा पार कर जाना चाहते थे। उस समय भगवान् श्रीकृष्णने उनसे कहा—'निष्पाप पार्थ ! यह क्या खिलवाड़ कर रहे हो ? इन संशप्तकोंका संहार करके कर्णके वधका शीघ्रतापूर्वक प्रयत्न करो' ॥ २२-२३ ॥

तथेत्युक्त्वार्जुनः कृष्णं शिष्टान् संशप्तकांस्तदा।
आक्षिप्य शस्त्रेण बलाद् दैत्यानिन्द्र इवावधीत्॥ २४ ॥

तब श्रीकृष्णसे 'बहुत अच्छा' कहकर अर्जुन दैत्योंका वध करनेवाले इन्द्रके समान उस समय शेष संशप्तक-सेनाको अस्त्र-शस्त्रोंसे छिन्न-भिन्न करके उसका बलपूर्वक विनाश करने लगे॥

आददत् संदधन्नेषून् दृष्टः कैश्चिद् रणेऽर्जुनः ।
विमुञ्चन् वा शराञ्शीघ्रं दृश्यन्ते वै नरा हताः॥ २५ ॥

उस समय रणभूमिमें किसीने यह नहीं देखा कि अर्जुन कब बाण लेते, कब उनका संधान करते अथवा कब उन्हें छोड़ते हैं ? केवल उनके द्वारा शीघ्रतापूर्वक मारे गये मनुष्य ही दृष्टिगोचर होते थे॥

आश्चर्यमिति गोविन्दो ब्रुवन्नश्वानचोदयत् ।
हंसांशुगौरास्ते सेनां हंसाः सर इवाविशन् ॥ २६ ॥

'आश्चर्य है' ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्णने घोड़ोंको आगे बढ़ाया । हंस तथा चन्द्र-किरणोंके समान श्वेत वर्णवाले वे घोड़े शत्रुसेनामें उसी प्रकार घुस गये, जैसे हंस तालाबमें प्रवेश करते हैं ॥ २६ ॥

ततः संग्रामभूमिं च वर्तमाने जनक्षये ।
अवेक्षमाणो गोविन्दः सव्यसाचिनमब्रवीत् ॥ २७ ॥

जब इस प्रकार जनसंहार होने लगा, उस समय रणभूमिकी ओर देखते हुए भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे इस प्रकार बोले—॥

एष पार्थ महारौद्रो वर्तते भरतक्षयः ।
पृथिव्यां पार्थिवानां वै दुर्योधनकृते महान् ॥ २८ ॥

'पार्थ ! दुर्योधनके कारण यह भूमण्डलके भूपालों तथा भरतवंशियोंकी सेनाका महाभयंकर एवं महान् संहार हो रहा है॥

पश्य भारत चापानि रुक्मपृष्ठानि धन्विनाम् ।
महतां चापविद्धानि कलापानिषुधींस्तथा ॥ २९ ॥

'भरतनन्दन ! देखो, बड़े-बड़े धनुर्धरोंके ये सुवर्णजटित पृष्ठभागवाले धनुष, आभूषण और तरकस पड़े हुए हैं ॥२९॥

जातरूपमयैः पुङ्खैः शरांश्च नतपर्वणः ।
तैलधौतांश्च नाराचान् विमुक्तानिव पन्नगान् ॥ ३० ॥

'सुनहरी पाँखोंसे युक्त झुकी हुई गाँठवाले ये बाण तथा तेलमें धोकर साफ किये हुए नाराच धनुषसे छूटकर सर्पोंके समान पड़े हुए हैं, इनपर दृष्टिपात करो ॥ ३० ॥

आकीर्णांस्तोमरांश्चापि विचित्रान् हेमभूषितान् ।
चर्माणि चापविद्धानि रुक्मपृष्ठानि भारत ॥ ३१ ॥

'भारत ! देखो, ये सुवर्णभूषित विचित्र तोमर चारों ओर बिखरे पड़े हैं और ये फेंकी हुई ढालें हैं, जिनके पृष्ठभागपर सोना जड़ा हुआ था ॥ ३१ ॥

सुवर्णविकृतान् प्रासाञ्शक्तीः कनकभूषिताः ।
जाम्बूनदमयैः पट्टैर्बद्धाश्च विपुला गदाः ॥ ३२ ॥
जातरूपमयीश्चर्ष्टीः पट्टिशान् हेमभूषितान् ।
दण्डैः कनकचित्रैश्च विप्रविद्धान् परश्वधान् ॥ ३३ ॥

'सोनेके बने हुए प्रास, सुवर्णभूषित शक्तियाँ, सोनेके पत्रोंसे जड़ी हुई विशाल गदाएँ, स्वर्णमयी ऋष्टि, सुवर्णभूषित पट्टिश तथा स्वर्णचित्रित दंडोंके साथ बहुतसे फरसे फेंके पड़े हैं, इनपर दृष्टिपात करो ॥ ३२-३३॥

परिघान् भिंदिपालांश्च भुशुण्डीः कुणपानपि ।
अयस्कुन्तांश्च पतितान् मुसलानि गुरूणि च ॥ ३४ ॥

'देखो, ये परिघ, भिन्दिपाल, भुशुण्डी, कुणप, लोहेके बने हुए भाले तथा भारी-भारी मुसल पड़े हुए हैं ॥ ३४ ॥

नानाविधानि शस्त्राणि प्रगृह्य जयगृद्धिनः ।
जीवन्त इव दृश्यन्ते गतसत्त्वास्तरस्विनः ॥ ३५ ॥

'विजयकी अभिलाषा रखनेवाले वेगशाली वीर सैनिक हाथोंमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये प्राणशून्य हो गये हैं तो भी जीवित-से दिखायी देते हैं ॥ ३५ ॥

गदाविमथितैर्गात्रैर्मुसलैर्भिन्नमस्तकान् ।
गजवाजिरथैः क्षुण्णान् पश्य योधान् सहस्रशः॥ ३६ ॥

'देखो, ये सहस्रों योद्धा हाथी, घोड़ों और रथोंसे कुचल गये हैं । गदाओंके आघातसे इनके अंग चूर-चूर हो गये हैं और मुसलोंकी मारसे मस्तक फट गये हैं ॥ ३६ ॥

मनुष्यगजवाजीनां शरशक्त्यृष्टितोमरैः ।
निस्त्रिंशैः पट्टिशैः प्रासैर्नखरैर्लगुडैरपि ॥ ३७ ॥
शरीरैर्बहुधा छिन्नैः शोणितौघपरिप्लुतैः ।
गतासुभिरमित्रघ्न संवृता रणभूमयः ॥ ३८ ॥

'शत्रुसूदन अर्जुन ! बाण, शक्ति, ऋष्टि, तोमर, खड्ग, पट्टिश, प्रास, नखर और लगुडोंकी मारसे हाथी, घोड़े और मनुष्योंके शरीरोंके कई टुकड़े हो गये हैं । वे सब-के-सब खूनसे लथपथ हो प्राणशून्य होकर पड़े हैं और उनके द्वारा सारी रणभूमि पट गयी है ॥ ३७-३८ ॥

बाहुभिश्चन्दनादिग्धैः साङ्गदैः शुभभूषणैः ।
सतलत्रैः सकेयूरैर्भाति भारत मेदिनी ॥ ३९ ॥

'भारत ! बाजूबंद और सुन्दर आभूषणोंसे विभूषित, चन्दनसे चर्चित, दस्ताने और केयूरोंसे सुशोभित कटी भुजाओंद्वारा रणभूमिकी अद्भुत शोभा हो रही है ॥ ३९ ॥

साङ्गुलित्रैर्भुजाग्रैश्च विप्रविद्धैरलंकृतैः ।
हस्तिहस्तोपमैश्छिन्नैरूरुभिश्च तरस्विनाम् ॥ ४० ॥
बद्धचूडामणिवरैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।

'अंगुलित्र और अलंकारोंसे अलंकृत हाथ फेंके पड़े हैं।

वेगवान् वीरोंकी हाथीकी सूँड़के समान मोटी जाँघें कटकर गिरी हैं और जिनपर सुन्दर चूड़ामणि बँधी है वे योद्धाओंके कुण्डल-मण्डित मस्तक भी खण्डित होकर इधर-उधर बिखरे पड़े हैं। उन सबसे रणभूमिकी अपूर्व शोभा हो रही है ॥४०१/२॥

रथांश्च बहुधा भग्नान् हेमकिङ्किणिनः शुभान् ॥ ४१ ॥
अश्वांश्च बहुधा पश्य शोणितेन परिप्लुतान् ।
अनुकर्षानुपासङ्गान् पताका विविधान् ध्वजान्॥ ४२॥
योधानां च महाशङ्खान् पाण्डुरांश्च प्रकीर्णकान्।
निरस्तजिह्वान् मातङ्गान् शयानान् पर्वतोपमान् ॥४३॥

'देखो, सोनेकी छोटी-छोटी घंटियोंसे सुशोभित बहुसंख्यक रथोंके कितने ही टुकड़े हो गये हैं और नाना प्रकारके घोड़े लहूलुहान होकर पड़े हैं। अनुकर्ष, उपासंग, पताका, नाना प्रकारके ध्वज, योद्धाओंके सब ओर बिखरे हुए बड़े-बड़े श्वेत शङ्ख तथा कितने ही पर्वताकार हाथी जीभ निकाले सोये पड़े हैं॥

वैजयन्तीर्विचित्राश्च हतांश्च गजयोधिनः ।
वारणानां परिस्तोमान् संयुक्तानेककम्बलान् ॥ ४४ ॥

'कहीं विचित्र वैजयन्ती पताकाएँ पड़ी हैं, कहीं हाथी-सवार मरकर गिरे हैं और कहीं अनेक कम्बलोंसे युक्त हाथियोंके झूल बिखरे पड़े हैं। इनकी ओर दृष्टिपात करो ॥ ४४॥

विपाटितविचित्राश्च रूपचित्राः कुथास्तथा ।
भिन्नाश्च बहुधा घण्टाः पतद्भिश्चूर्णिता गजैः ॥ ४५ ॥

'हाथीकी पीठपर बिछाये जानेवाले कितने ही विचित्र कम्बल फट जानेके कारण विचित्र दशाको पहुँच गये हैं। कटकर गिरे हुए नाना प्रकारके घंटे गिरते हुए हाथियोंसे दबकर चूर-चूर हो गये हैं ॥ ४५ ॥

वैदूर्यमणिदण्डांश्च पतितांश्चाङ्कुशान् भुवि ।
अश्वानां च युगापीडान् रत्नचित्रानुरश्छदान्॥ ४६ ॥

'देखो, वैदूर्यमणिके बने हुए दण्ड और अंकुश भूतलपर पड़े हैं, घोड़ोंके युगापीड तथा रत्नचित्रित कवच इधर-उधर गिरे हैं॥

विद्धाः सादिध्वजाग्रेषु सुवर्णविकृताः कुथाः ।
विचित्रान् मणिचित्रांश्च जातरूपपरिष्कृतान् ॥ ४७ ॥
अश्वास्तरपरिस्तोमान् राङ्कवान् पतितान् भुवि ।

'घुड़सवारोंकी ध्वजाओंके अग्रभागमें हाथियोंके सुनहरे कंबल उलझ गये हैं। घोड़ोंकी पीठपर बिछाये जानेवाले विचित्र, मणिजटित एवं सुवर्णभूषित रंकुमृगके चमड़ेके बने हुए झूल और जीन धरतीपर पड़े हैं, इन्हें देखो ॥ ४७१/२ ॥

चूडामणीन् नरेन्द्राणां विचित्राः काञ्चनस्रजः ॥ ४८ ॥
छत्राणि चापविद्धानि चामरव्यजनानि च ।

'राजाओंकी चूड़ामणियाँ, विचित्र स्वर्णमालाएँ, छत्र, चँवर और व्यजन फेंके पड़े हैं ॥ ४८१/२॥

चन्द्रनक्षत्रभासैश्च वदनैश्चारुकुण्डलैः ॥ ४९ ॥
क्लृप्तश्मश्रुभिराकीर्णा पूर्णचन्द्रनिभैर्महीम् ।

'यहाँकी भूमि राजाओंके मनोहर कुण्डलयुक्त, चन्द्रमा और नक्षत्रोंके समान कान्तिमान् एवं दाढ़ी-मूँछवाले पूर्ण चन्द्र-तुल्य मुखोंसे ढक गयी है ॥ ४९१/२ ॥

कुमुदोत्पलपद्मानां खण्डैः फुल्लं यथा सरः ॥ ५० ॥
तथा महीभृतां वक्त्रैः कुमुदोत्पलसंनिभैः ।

'जैसे तालाब कुमुद, उत्पल और कमलोंके समूहसे विकसित दिखायी देता है, उसी प्रकार राजाओंके कुमुद और उत्पल-सदृश मुखोंसे यह रणभूमि सुशोभित हो रही है ॥५०१/२॥

तारागणविचित्रस्य निर्मलेन्दुद्युतित्विषः ॥ ५१ ॥
पश्येमां नभसस्तुल्यां शरन्नक्षत्रमालिनीम् ।

'तारागणोंसे जिसकी विचित्र शोभा होती है तथा जहाँ निर्मल चन्द्रमाकी चाँदनी छिटकी रहती है, उस आकाशके समान इस रणभूमिकी शोभाको देखो। जान पड़ता है कि यह शरद्ऋतुके नक्षत्रोंकी मालाओंसे अलंकृत है ॥ ५११/२ ॥

एतत् तवैवानुरूपं कर्मार्जुन महाहवे ॥ ५२ ॥
दिवि वा देवराजस्य त्वया यत् कृतमाहवे ।

'अर्जुन ! महासमरमें ऐसा पराक्रम, जो तूने किया है, या तो तुम्हारे ही योग्य है या स्वर्गमें देवराज इन्द्रके योग्य' ॥

एवं तां दर्शयन् कृष्णो युद्धभूमिं किरीटिने ॥ ५३ ॥
गच्छन्नेवाशृणोच्छब्दं दुर्योधनबले महत् ।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषं भेरीपणवनिःस्वनम् ॥ ५४ ॥
रथाश्वगजनादांश्च शस्त्रशब्दांश्च दारुणान् ।

इस प्रकार किरीटधारी अर्जुनको उस युद्धभूमिका दर्शन कराते हुए श्रीकृष्णने जाते-जाते ही दुर्योधनकी सेनामें महान् कोलाहल सुना। वहाँ शङ्खों और दुन्दुभियोंकी ध्वनि छा रही थी। भेरी और पणव आदि बाजे बज रहे थे। रथके घोड़ों और हाथियोंके हींसने एवं चिग्घाड़नेके तथा शस्त्रोंके परस्पर टकरानेके भयानक शब्द भी सुनायी पड़ते थे ॥ ५३-५४१/२ ॥

प्रविश्य तद् बलं कृष्णस्तुरगैर्वातवेगितैः ॥ ५५ ॥
पाण्ड्येनाभ्यर्दितं सैन्यं त्वदीयं वीक्ष्य विस्मितः ।

तब श्रीकृष्णने वायुके समान वेगशाली अश्वोंद्वारा उस सेनामें प्रवेश करके देखा कि पाण्ड्यनरेशने आपकी सेनाको अत्यन्त पीड़ित कर दिया है; यह देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ॥

स हि नानाविधैर्बाणैरिष्वस्त्रप्रवरो युधि ॥ ५६ ॥
न्यहनद् द्विषतां पूगान् गतासूनन्तको यथा ।

जैसे यमराज आयुरहित प्राणियोंके प्राण हर लेते हैं, उसी प्रकार धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ पाण्ड्य युद्धस्थलमें नाना प्रकारके बाणोंद्वारा शत्रुसमूहोंका नाश कर रहे थे ॥ ५६१/२ ॥

गजवाजिमनुष्याणां शरीराणि शितैः शरैः ॥ ५७ ॥
भित्त्वा प्रहरतां श्रेष्ठो विदेहासूनपातयत् ।

प्रहार करनेवाले योद्धाओंमें श्रेष्ठ पाण्ड्य अपने तीखे बाणोंसे हाथी, घोड़े और मनुष्योंके शरीरोंको विदीर्ण करके उन्हें देह और प्राणोंसे शून्य एवं धराशायी कर देते थे ॥५७१/२॥

शत्रुप्रवीरैरस्त्राणि नानाशस्त्राणि सायकैः ।

छित्त्वा तानवधीच्छत्रून् पाण्ड्यः शक्र इवासुरान् ५८

जैसे इन्द्र असुरोंका संहार करते हैं, उसी प्रकार पाण्ड्य-नरेश शत्रुवीरोंद्वारा चलाये गये नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंको अपने बाणोंद्वारा नष्ट करके उन शत्रुओंका वध कर डालते थे॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः

अश्वत्थामाके द्वारा पाण्ड्यनरेशका वध

धृतराष्ट्र उवाच

प्रोक्तस्त्वया पूर्वमेव प्रवीरो लोकविश्रुतः ।
न त्वस्य कर्म संग्रामे त्वया संजय कीर्तितम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! तुमने पाण्ड्यको पहले ही लोकविख्यात वीर बतलाया था; परंतु संग्राममें उनके किये हुए वीरोचित कर्मका वर्णन नहीं किया ॥ १ ॥

तस्य विस्तरशो ब्रूहि प्रवीरस्याद्य विक्रमम् ।
शिक्षां प्रभावं वीर्यं च प्रमाणं दर्पमेव च ॥ २ ॥

आज उन प्रमुख वीरके पराक्रम, शिक्षा, प्रभाव, बल, प्रमाण और दर्पका विस्तारपूर्वक वर्णन करो ॥ २ ॥

संजय उवाच

भीष्मद्रोणकृपद्रौणिकर्णार्जुनजनार्दनान् ।
समाप्तविद्यान् धनुषि श्रेष्ठान् यान् मन्यसे रथान्॥ ३॥
यो ह्याक्षिपति वीर्येण सर्वानेतान् महारथान् ।
न मेने चात्मना तुल्यं कंचिदेव नरेश्वरम् ॥ ४ ॥
तुल्यतां द्रोणभीष्माभ्यामात्मनो यो न मृष्यते ।
वासुदेवार्जुनाभ्यां च न्यूनतां नैच्छतात्मनि ॥ ५ ॥
स पाण्ड्यो नृपतिश्रेष्ठः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
कर्णस्यानीकमहनत् पराभूत इवान्तकः ॥ ६ ॥

संजयने कहा—राजन् ! भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण, अर्जुन तथा श्रीकृष्ण आदि जिन वीरोंको आप पूर्ण विद्वान्, धनुर्वेदमें श्रेष्ठ तथा महारथी मानते हैं, इन सब महारथियोंको जो अपने पराक्रमके समक्ष तुच्छ समझता था, जो किसी भी नरेशको अपने समान नहीं मानता था, जो द्रोण और भीष्मके साथ अपनी तुलना नहीं सह सकता था और जिसने श्रीकृष्ण तथा अर्जुनसे भी अपनेमें तनिक भी न्यूनता माननेकी इच्छा नहीं की, उसी सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ नृपशिरोमणि पाण्ड्यने अपमानित हुए यमराजके समान कुपित हो कर्णकी सेनाका वध आरम्भ किया ॥ ३—६ ॥

तदुदीर्णरथाश्वेभं पत्तिप्रवरसंकुलम् ।
कुलालचक्रवद् भ्रान्तं पाण्ड्येनाभ्याहतं बलात् ॥७॥

कौरवसेनामें रथ, घोड़े और हाथियोंकी संख्या बढ़ी-चढ़ी थी, श्रेष्ठ पैदल सैनिकोंसे भी वह सेना भरी हुई थी, तथापि पाण्ड्यनरेशके द्वारा बलपूर्वक आहत होकर वह कुम्हारके चाककी भाँति चक्कर काटने लगी ॥ ७ ॥

व्यश्वसूतध्वजरथान् विप्रविद्धायुधद्विपान् ।
सम्यगस्तैः शरैः पाण्ड्यो वायुर्मेघानिवाक्षिपत् ८

जैसे वायु मेघोंको उड़ा देती है, उसी प्रकार पाण्ड्यनरेशने अच्छी तरह चलाये हुए बाणोंद्वारा समस्त सैनिकोंको घोड़े, सारथि, ध्वज और रथोंसे हीन कर दिया। उनके आयुधों और हाथियोंको भी मार गिराया ॥ ८ ॥

द्विरदान् द्विरदारोहान् विपताकायुधध्वजान् ।
सपादरक्षानहनद् वज्रेणाद्रीनिवाद्रिहा ॥ ९ ॥

जैसे पर्वतोंका हनन करनेवाले इन्द्रने वज्रद्वारा पर्वतोंपर आघात किया था, उसी प्रकार पाण्ड्यनरेशने पादरक्षकोंसहित हाथियों और हाथीसवारोंको ध्वजा, पताका तथा आयुधोंसे वञ्चित करके मार डाला ॥ ९ ॥

सशक्तिप्रासतूणीरानश्वारोहान् हयानपि ।
पुलिन्दखसबाह्लीकनिषादान्ध्रककुन्तलान् ॥ १० ॥
दाक्षिणात्यांश्च भोजांश्च शूरान् संग्रामकर्कशान्।
विशस्त्रकवचान् बाणैः कृत्वा चैवाकरोद् व्यसून् ॥११॥

शक्ति, प्रास और तरकसोंसहित घुड़सवारों तथा घोड़ोंको भी यमलोक पहुँचा दिया। पुलिन्द, खस, बाह्लीक, निषाद, आन्ध्र, कुन्तल, दाक्षिणात्य तथा भोजप्रदेशीय रणकर्कश शूर-वीरोंको अपने बाणोंद्वारा अस्त्र-शस्त्र तथा कवचोंसे हीन करके उनके प्राण हर लिये ॥ १०-११ ॥

चतुरङ्गं बलं बाणैर्निघ्नन्तं पाण्ड्यमाहवे ।
दृष्ट्वा द्रौणिरसम्भ्रान्तमसम्भ्रान्तस्ततोऽभ्ययात्॥१२॥

राजा पाण्ड्यको समराङ्गणमें बिना किसी घबराहटके अपने बाणोंद्वारा कौरवोंकी चतुरङ्गिणी सेनाका विनाश करते देख अश्वत्थामाने निर्भय होकर उनका सामना किया ॥ १२ ॥

आभाष्य चैनं मधुरमभीतं तमभीतवत् ।
प्राह प्रहरतां श्रेष्ठः स्मितपूर्वं समाह्वयन् ॥ १३ ॥

साथ ही उन निर्भय नरेशको मधुर वाणीमें सम्बोधित करके योद्धाओंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामाने मुसकराकर युद्धके लिये उनका आह्वान करते हुए निर्भीकके समान कहा—॥ १३ ॥

राजन् कमलपत्राक्ष विशिष्टाभिजनश्रुत ।
वज्रसंहननप्रख्य प्रख्यातबलपौरुष ॥ १४ ॥

'राजन् ! कमलनयन ! तुम्हारा कुल और शास्त्रज्ञान सर्वश्रेष्ठ है। तुम्हारा सुगठित शरीर वज्रके समान कान्तिमान् है, तुम्हारे बल और पुरुषार्थ भी प्रसिद्ध हैं ॥ १४ ॥

मुष्टिश्लिष्टायतज्यं च व्यायताभ्यां महद् धनुः ।

दोर्भ्यां विस्फारयन् भासि महाजलदवद् भृशम् ॥ १५॥

'तुम्हारे धनुषकी प्रत्यञ्चा एक ही समय तुम्हारी मुट्ठीमें सटी हुई तथा गोलाकार फैली हुई दिखायी देती है। जब तुम अपनी दोनों बड़ी-बड़ी भुजाओंसे विशाल धनुषको खींचने और उसकी टङ्कार करने लगते हो, उस समय महान् मेघके समान तुम्हारी बड़ी शोभा होती है ॥ १५ ॥

शरवर्षैर्महावेगैरमित्रानभिवर्षतः ।
मदन्यं नानुपश्यामि प्रतिवीरं तवाहवे ॥ १६ ॥

'जब तुम अपने शत्रुओंपर बड़े वेगसे बाण-वर्षा करने लगते हो, उस समय मैं अपने सिवा दूसरे किसी वीरको ऐसा नहीं देखता, जो समराङ्गणमें तुम्हारा सामना कर सके ॥१६॥

रथद्विरदपत्यश्वानेकः प्रमथसे बहून् ।
मृगसंघानिवारण्ये विभीर्भीमबलो हरिः ॥ १७ ॥

तुम अकेले ही बहुत-से रथ, हाथी, पैदल और घोड़ोंको मथ डालते हो। ठीक उसी तरह, जैसे वनमें भयंकर बलशाली सिंह बिना किसी भयके मृग-समूहोंका संहार कर डालता है ॥

महता रथघोषेण दिवं भूमिं च नादयन् ।
वर्षान्ते सस्यहा मेघो भासि ह्रादीव पार्थिव ॥ १८ ॥

'राजन् ! तुम अपने रथके गम्भीर घोषसे आकाश और पृथ्वीको प्रतिध्वनित करते हुए शरत्कालमें गर्जना करनेवाले सस्यनाशक मेघके समान जान पड़ते हो ॥ १८ ॥

संस्पृशानः शरांस्तीक्ष्णांस्तूणादाशीविषोपमान् ।
मयैवैकेन युध्यस्व त्र्यम्बकेनान्धको यथा ॥ १९ ॥

'अब तुम अपने तरकससे विषधर सर्पोंके समान तीखे बाण लेकर जैसे महादेवजीके साथ अन्धकासुरने संग्राम किया था, उसी प्रकार केवल मेरे साथ युद्ध करो' ॥ १९ ॥

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा प्रहरेति च ताडितः ।
कर्णिना द्रोणतनयं विव्याध मलयध्वजः ॥ २० ॥

अश्वत्थामाके ऐसा कहनेपर पाण्ड्यनरेश बोले—'अच्छा ऐसा ही होगा। पहले तुम प्रहार करो।' इस प्रकार आक्षेपयुक्त वचन सुनकर अश्वत्थामाने उनपर अपने बाणका प्रहार किया। तब मलयध्वज पाण्ड्यनरेशने कर्णी नामक बाणके द्वारा द्रोणपुत्रको बींध डाला ॥

मर्मभेदिभिरत्युग्रैर्बाणैरग्निशिखोपमैः ।
स्मयन्नभ्यहनद् द्रौणिः पाण्ड्यमाचार्यसत्तमः ॥ २१ ॥

तब आचार्यप्रवर अश्वत्थामाने अत्यन्त भयंकर तथा अग्निशिखाके समान तेजस्वी मर्मभेदी बाणोंद्वारा पाण्ड्यनरेशको मुसकराते हुए घायल कर दिया ॥ २१ ॥

ततोऽपरान् सुतीक्ष्णाग्रान् नाराचान् मर्मभेदिनः ।
गत्या दशम्या संयुक्तानश्वत्थामाप्यवासृजत् ॥२२॥

तत्पश्चात् अश्वत्थामाने तीखे अग्रभागवाले दूसरे बहुत-से मर्मभेदी नाराच चलाये, जो दसवीं गतिका आश्रय लेकर छोड़े गये थे* ॥ २२ ॥

ताञ्शरानच्छिनत् पाण्ड्यो नवभिर्निशितैः शरैः ।
चतुर्भिरर्दयच्चाश्वानाशु ते व्यसवोऽभवन् ॥ २३ ॥

परंतु पाण्ड्यनरेशने नौ तीखे सायकोंद्वारा उन सब बाणोंके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। फिर चार बाणोंसे उसके अश्वोंको अत्यन्त पीड़ा दी, जिससे वे शीघ्र ही अपने प्राण छोड़ बैठे ॥

अथ द्रोणसुतस्येषूंस्ताञ्छित्त्वा निशितैः शरैः ।
धनुर्ज्यां विततां पाण्ड्यश्चिच्छेदादित्यतेजसः ॥ २४ ॥

तत्पश्चात् पाण्ड्यराजने अपने तीखे बाणोंद्वारा सूर्यके समान तेजस्वी अश्वत्थामाके उन बाणोंको छिन्न-भिन्न करके उसके धनुषकी फैली हुई डोरी भी काट डाली ॥ २४ ॥

दिव्यं धनुरथाधिज्यं कृत्वा द्रौणिरमित्रहा ।
प्रेक्ष्य चाशु रथे युक्तान् नरैरन्यान् हयोत्तमान्॥२५॥
ततः शरसहस्राणि प्रेषयामास वै द्विजः ।
इषुसम्बाधमाकाशमकरोद् दिश एव च ॥ २६ ॥

तब शत्रुसूदन द्रोणपुत्र विप्रवर अश्वत्थामाने अपने दिव्य धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर तथा यह भी देखकर कि मेरे रथमें सेवकोंने शीघ्र ही दूसरे उत्तम घोड़े लाकर जोत दिये हैं, सहस्रों बाण छोड़े तथा आकाश और दिशाओंको अपने बाणोंसे खचाखच भर दिया ॥ २५-२६ ॥

ततस्तानस्यतः सर्वान् द्रौणेर्बाणान् महात्मनः ।
जानानोऽप्यक्षयान् पाण्ड्योऽशातयत् पुरुषर्षभः॥२७॥

पुरुषशिरोमणि पाण्ड्यने बाण चलाते हुए महामनस्वी अश्वत्थामाके उन सब बाणोंको अक्षय जानते हुए भी काट डाला॥

प्रयुक्तांस्तान् प्रयत्नेन छित्त्वा द्रौणेरिषूनरिः ।
चक्ररक्षौ रणे तस्य प्राणुदन्निशितैः शरैः ॥ २८ ॥

इस प्रकार अश्वत्थामाके चलाये हुए उन बाणोंको प्रयत्न-पूर्वक काटकर उसके शत्रु पाण्ड्यनरेशने पैने बाणोंद्वारा रण-भूमिमें उसके दोनों चक्ररक्षकोंको मार डाला ॥ २८ ॥

---

* बाणोंकी दस गतियाँ बतायी गयी हैं, जो इस प्रकार हैं— १–उन्मुखी, २–अभिमुखी, ३–तिर्यक्, ४–मन्दा, ५–गोमूत्रिका, ६–ध्रुवा, ७–स्खलिता, ८–यमकाक्रान्ता, ९–क्रुष्टा, और १०–अतिक्रुष्टा। इनमेंसे पूर्वकी तीन गतियाँ क्रमशः मस्तक, हृदय तथा पार्श्वदेशका स्पर्श करनेवाली हैं। अर्थात् उन्मुखी गतिसे छोड़ा हुआ बाण मस्तकपर, अभिमुखी गतिसे प्रेरित बाण वक्षःस्थलपर और तिर्यक्-गतिसे चलाया हुआ बाण पार्श्वभागमें आघात करता है। मन्दा गतिसे छोड़े गये बाण त्वचाको कुछ-कुछ छेद पाते हैं। गोमूत्रिका गतिसे चलाये गये बाण बायें और दायें दोनों ओर जाते तथा कवचको भी काट देते हैं। ध्रुवा गति निश्चितरूपसे लक्ष्यका भेदन करानेवाली होती है। स्खलिता कहते हैं, लक्ष्यसे विचलित होनेवाली गतिको। उसके द्वारा संचालित बाण लक्ष्यभ्रष्ट होते हैं। यमकाक्रान्ता वह गति है, जिसके द्वारा प्रेरित बाण बारंबार लक्ष्य वेधकर निकल जाते हैं। क्रुष्टा उस गतिका नाम है, जो लक्ष्यके एक अवयव भुजा आदिका छेदन कराती है। दसवीं गतिका नाम है अतिक्रुष्टा; जिसके द्वारा चलाया गया बाण शत्रुका मस्तक काटकर उसके साथ ही दूर जा गिरता है। (नीलकण्ठीके आधारपर)

अथारेर्लाघवं दृष्ट्वा मण्डलीकृतकार्मुकः।
प्रास्यद् द्रोणसुतो बाणान् वृष्टिं पूषानुजो यथा॥ २९ ॥

शत्रुकी यह फुर्ती देखकर द्रोणकुमारने अपने धनुषको खींच कर मण्डलाकार बना दिया और जैसे पूषाका भाई पर्जन्य जलकी वर्षा करता है, उसी प्रकार उसने बाणोंकी वृष्टि आरम्भ कर दी॥

अष्टावष्टगवान्यूहुः शकटानि यदायुधम्।
अह्नस्तदष्टभागेन द्रौणिश्चिक्षेप मारिष ॥ ३० ॥

मान्यवर ! आठ बैलोंसे जुते हुए आठ छकड़ोंने जितने आयुध ढोये थे, उन सबको अश्वत्थामाने उस दिनके आठवें भागमें चलाकर समाप्त कर दिया ॥ ३० ॥

तमन्तकमिव क्रुद्धमन्तकस्यान्तकोपमम्।
ये ये ददृशिरे तत्र विसंज्ञाः प्रायशोऽभवन् ॥ ३१ ॥

यमराजके समान क्रोधमें भरा हुआ अश्वत्थामा उस समय कालका भी काल-सा जान पड़ता था। जिन-जिन लोगोंने वहाँ उसे देखा, वे प्रायः बेहोश हो गये ॥ ३१ ॥

पर्जन्य इव धर्मान्ते वृष्ट्या साद्रिद्रुमां महीम्।
आचार्यपुत्रस्तां सेनां बाणवृष्ट्या व्यवीवृषत् ॥ ३२ ॥

जैसे वर्षाकालमें मेघ पर्वत और वृक्षोंसहित इस पृथ्वीपर जलकी वर्षा करता है, उसी प्रकार आचार्यपुत्र अश्वत्थामा-ने उस सेनापर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ३२ ॥

द्रौणिपर्जन्यमुक्तां तां बाणवृष्टिं सुदुःसहाम्।
वायव्यास्त्रेण संक्षिप्य मुदा पाण्ड्यानिलोऽनुदत् ॥३३॥

अश्वत्थामारूपी मेघद्वारा की हुई उस दुःसह बाणवर्षाको पाण्ड्यराजरूपी वायुने वायव्यास्त्रसे छिन्न-भिन्न करके प्रसन्नता-पूर्वक उड़ा दिया ॥ ३३ ॥

तस्य नानदतः केतुं चन्दनागुरुरूषितम्।
मलयप्रतिमं द्रौणिश्छित्वाश्वांश्चतुरोऽहनत् ॥ ३४ ॥

उस समय द्रोणकुमार अश्वत्थामाने बारंबार गर्जना करते हुए पाण्ड्यके मलयाचल-सदृश ऊँचे तथा चन्दन और अगुरुसे चर्चित ध्वजको काटकर उनके चारों घोड़ोंको भी मार डाला॥

सूतमेकेषुणा हत्वा महाजलदनिःस्वनम्।
धनुश्छित्त्वार्धचन्द्रेण तिलशो व्यधमद् रथम् ॥ ३५ ॥

फिर एक बाणसे सारथिको मारकर महान् मेघके समान गम्भीर शब्द करनेवाले उनके धनुषको भी अर्धचन्द्राकार बाणके द्वारा काट दिया और उनके रथको तिल-तिल करके नष्ट कर डाला ॥ ३५ ॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य छित्त्वा सर्वायुधानि च।
प्राप्तमप्यहितं द्रौणिर्न जघान रणेप्सया ॥ ३६ ॥

इस प्रकार अस्त्रोंद्वारा पाण्ड्यके अस्त्रोंका निवारण करके अश्वत्थामाने उनके सारे आयुध काट डाले, तथापि युद्धकी अभिलाषासे उसने अपने वशमें आये हुए शत्रुका भी वध नहीं किया ॥ ३६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे कर्णो गजानीकमुपाद्रवत्।
द्रावयामास स तदा पाण्डवानां महद् बलम् ॥ ३७ ॥

इसी बीचमें कर्णने पाण्डवोंकी गजसेनापर आक्रमण किया। उस समय उसने पाण्डवोंकी विशाल सेनाको खदेड़ना आरम्भ किया ॥ ३७ ॥

विरथान् रथिनश्चक्रे गजानश्वांश्च भारत।
गजान् बहुभिरानर्छच्छरैः संनतपर्वभिः ॥ ३८ ॥

भारत ! उसने बहुत-से रथियोंको रथहीन कर दिया, हाथीसवारों और घुड़सवारोंके हाथी और घोड़े मार डाले तथा झुकी हुई गाँठवाले बहुसंख्यक बाणोंद्वारा कितने ही हाथियोंको अत्यन्त पीड़ित कर दिया ॥ ३८ ॥

अथ द्रौणिर्महेष्वासः पाण्ड्यं शत्रुनिबर्हणम्।
विरथं रथिनां श्रेष्ठं नाहनद् युद्धकाङ्क्षया ॥ ३९ ॥

इधर महाधनुर्धर अश्वत्थामाने शत्रुसंहारक, रथियोंमें श्रेष्ठ पाण्ड्यको रथहीन करके भी उनका वध इसलिये नहीं किया कि वह उनके साथ अभी युद्ध करना चाहता था ॥ ३९ ॥

हतेश्वरो दन्तिवरः सुकल्पित-
स्त्वराभिसृष्टः प्रतिशब्दगो बली।
तमाद्रवद् द्रौणिशराहतस्त्वरन्
जवेन कृत्वा प्रतिहस्तिगर्जितम् ॥ ४० ॥

इतनेहीमें एक सजा-सजाया श्रेष्ठ एवं बलवान् गजराज बड़ी उतावलीके साथ छूटकर प्रतिध्वनिका अनुसरण करता हुआ उधर आ निकला, उसके मालिक और महावत मारे जा चुके थे। अश्वत्थामाके बाणोंसे आहत होकर वह शीघ्रतापूर्वक पाण्ड्यराजकी ओर दौड़ा। उसने प्रतिपक्षी हाथीकी गर्जनाका शब्द सुनकर बड़े वेगसे उसी ओर धावा किया था ॥४०॥

तं वारणं वारणयुद्धकोविदो
द्विपोत्तमं पर्वतसानुसंनिभम्।
समभ्यतिष्ठन्मलयध्वजस्त्वरन्
यथाद्रिशृङ्गं हरिरुन्नदंस्तथा ॥ ४१ ॥

परंतु गजयुद्धविशारद मलयध्वज पाण्ड्यनरेश पर्वतशिखर-के समान ऊँचे उस श्रेष्ठ गजराजपर उतनी ही शीघ्रताके साथ चढ़ गये, जैसे दहाड़ता हुआ सिंह किसी पहाड़की चोटीपर चढ़ जाता है ॥ ४१ ॥

स तोमरं भास्कररश्मिवर्चसं
बलास्त्रसर्गोत्तमयत्नमन्युभिः ।
ससर्ज शीघ्रं परिपीडयन् गजं
गुरोः सुतायाद्रिपतीश्वरो नदन् ॥ ४२ ॥

गिरिराज मलयके स्वामी पाण्ड्यराजने तुरंत अग्रसर होनेके लिये उस हाथीको पीड़ा दी और अस्त्र-प्रहारके लिये उत्तम यत्न, बल तथा क्रोधसे प्रेरित हो सूर्यकी किरणोंके समान तेजस्वी एक तोमर हाथमें लेकर गर्जना करते हुए उसे शीघ्र ही आचार्यपुत्रपर चला दिया ॥ ४२ ॥

मणिप्रवेकोत्तमवज्रहाटकै-
रलंकृतं चांशुकमाल्यमौक्तिकैः ।
हतो हतोऽसीत्यसकृन्मुदा नदन्
पराहनद् द्रौणिवराङ्गभूषणम् ॥ ४३ ॥

उस तोमरद्वारा उन्होंने उत्तम मणि, श्रेष्ठ हीरक, स्वर्ण, वस्त्र, माला और मुक्तासे विभूषित अश्वत्थामाके मुकुटपर बारंबार यह कहते हुए प्रसन्नतापूर्वक आघात किया कि 'तुम मारे गये, मारे गये' ॥ ४३ ॥

तदर्कचन्द्रग्रहपावकत्विषं
भृशातिपातात् पतितं विचूर्णितम् ।
महेन्द्रवज्राभिहतं महास्वनं
यथाद्रिश्रृङ्गं धरणीतले तथा ॥ ४४ ॥

सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह और अग्निके समान प्रकाशमान वह मुकुट उस तोमरके गहरे आघातसे चूर-चूर होकर महान् शब्दके साथ उसी प्रकार पृथ्वीपर गिर पड़ा, जैसे इन्द्रके वज्रसे आहत हो किसी पर्वतका शिखर भारी आवाजके साथ धराशायी हो जाता है ॥ ४४ ॥

ततः प्रजज्वाल परेण मन्युना
पादाहतो नागपतिर्यथा तथा ।
समाददे चान्तकदण्डसंनिभा-
निषूनमित्रार्तिकरांश्चतुर्दश ॥ ४५ ॥

तब अश्वत्थामा पैरोंसे ठुकराये हुए नागराजके समान शीघ्र ही अत्यन्त क्रोधसे जल उठा । फिर तो उसने यमदण्डके समान शत्रुओंको संताप देनेवाले चौदह बाण हाथमें लिये ॥

द्विपस्य पादाग्रकरान् स पञ्चभि-
र्नृपस्य बाहू च शिरोऽथ च त्रिभिः ।
जघान षड्भिः षडनुत्तमत्विषः
स पाण्ड्यराजानुचरान् महारथान् ॥४६॥

उसने पाँच बाणोंसे उस हाथीके पैर तथा सूँड़ काट लिये । फिर तीन बाणोंसे पाण्ड्यनरेशकी दोनों भुजाओं और मस्तकको शरीरसे अलग कर दिया । इसके बाद छः बाणोंसे पाण्ड्यराजके पीछे चलनेवाले उत्तम कान्तिसे सुशोभित छः महारथियोंको भी मार डाला ॥ ४६ ॥

सुदीर्घवृत्तौ वरचन्दनोक्षितौ
सुवर्णमुक्तामणिवज्रभूषणौ ।
भुजौ धरायां पतितौ नृपस्य तौ
विचेष्टतुस्तार्क्ष्यहताविवोरगौ ॥ ४७ ॥

उत्तम, विशाल, गोलाकार, श्रेष्ठ चन्दनसे चर्चित, सुवर्ण, मुक्ता, मणि तथा हीरोंसे विभूषित पाण्ड्यनरेशकी वे दोनों भुजाएँ पृथ्वीपर गिरकर गरुड़के मारे हुए दो सर्पोंके समान छटपटाने लगीं ॥ ४७ ॥

शिरश्च तत् पूर्णशशिप्रभाननं
सरोषताम्रायतनेत्रमुन्नसम् ।
क्षितावपि भ्राजति तत् सकुण्डलं
विशाखयोर्मध्यगतः शशी यथा ॥ ४८ ॥

जिसका मुखमण्डल पूर्ण चन्द्रमाके सदृश प्रकाशमान तथा नेत्र क्रोधके कारण अरुणवर्ण थे, जिसकी नासिका ऊँची थी, वह पाण्ड्यराजका कुण्डलमण्डित मस्तक पृथ्वीपर गिरकर भी दो विशाखा नक्षत्रोंके बीचमें विराजमान चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहा था ॥ ४८ ॥

स तु द्विपः पञ्चभिरुत्तमेषुभिः
कृतः षडंशश्चतुरो नृपस्त्रिभिः ।
कृतो दशांशः कुशलेन युध्यता
यथा हविस्तद्दशदैवतं तथा ॥ ४९ ॥

युद्धकुशल अश्वत्थामाने पाँच उत्तम बाण मारकर उस हाथीके छः टुकड़े कर दिये और फिर तीन बाणसे राजाके भी चार टुकड़े कर डाले । इस प्रकार दोनों मिलाकर दस भाग कर दिये । जैसे कि कर्मनिपुण पुरोहित दस हविर्धान यज्ञमें इन्द्र आदि दस देवताओंके लिये हविष्यके दस भाग कर देता है ॥ ४९ ॥

स पादशो राक्षसभोजनान् बहून्
प्रदाय पाण्ड्योऽश्वमनुष्यकुञ्जरान् ।
स्वधामिवाप्य ज्वलनः पितृप्रिय-
स्ततः प्रशान्तः सलिलप्रवाहतः ॥ ५० ॥

जैसे पितरोंकी प्रिय चिताग्नि मृत शरीरको पाकर प्रज्वलित हो उसे जलाती है और अन्तमें जलका अभिषेक पाकर शान्त हो जाती है, उसी प्रकार पाण्ड्यनरेश घोड़े, हाथी और मनुष्योंके टुकड़े-टुकड़े करके उन्हें प्रचुर मात्रामें राक्षसोंके लिये भोजन देकर अन्तमें अश्वत्थामाके बाणसे सदाके लिये शान्त हो गये॥

समाप्तविद्यं तु गुरोः सुतं नृपः
समाप्तकर्माणमुपेत्य ते सुतः ।
सुहृद्वृतोऽत्यर्थमपूजयन्मुदा
जिते बलौ विष्णुमिवामरेश्वरः ॥ ५१ ॥

जिसने पूरी विद्या समाप्त कर ली है तथा समस्त कर्तव्यकर्म पूर्ण कर लिये हैं, उस गुरुपुत्र अश्वत्थामाके पास सुहृदोंसहित आकर आपके पुत्र दुर्योधनने प्रसन्नतापूर्वक उसकी बड़ी पूजा की । ठीक उसी तरह, जैसे बलिके पराजित होनेपर देवराज इन्द्रने विष्णुका पूजन किया था ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि पाण्ड्यवधे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें पाण्ड्यवधविषयक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २० ॥



त्रिपुर-विनाशके लिये देवताओंद्वारा शंकरजीकी स्तुति

एकविंशोऽध्यायः

कौरव-पाण्डव-दलोंका भयंकर घमासान युद्ध

धृतराष्ट्र उवाच

पाण्ड्ये हते किमकरोदर्जुनो युधि संजय।
एकवीरेण कर्णेन द्रावितेषु परेषु च॥ १॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! जब युद्धस्थलमें अश्वत्थामाद्वारा पाण्ड्यनरेश मार डाले गये और मेरे पक्षके अद्वितीय वीर कर्णने जब शत्रुसैनिकोंको मार भगाया, उस समय अर्जुनने क्या किया?॥ १॥

समाप्तविद्यो बलवान् युक्तो वीरः स पाण्डवः।
सर्वभूतेष्वनुज्ञातः शङ्करेण महात्मना॥ २॥

पाण्डुकुमार अर्जुन युद्धविद्याकी शिक्षा समाप्त कर चुके हैं। वे विजयके प्रयत्नमें लगे हुए बलवान् वीर हैं। भगवान् शङ्करने उन्हें कृपापूर्वक अनुगृहीत करते हुए यह कह दिया है कि 'तुम समस्त प्राणियोंमें प्रधान एवं अजेय होओगे'॥२॥

तस्मान्महद् भयं तीव्रममित्रघ्नाद् धनंजयात्।
स यत् तत्राकरोत् पार्थस्तन्ममाचक्ष्व संजय॥ ३॥

इसलिये उन शत्रुनाशक धनंजयसे मुझे अत्यन्त तीव्र एवं महान् भय बना रहता है। अतः संजय! वहाँ कुन्तीकुमार अर्जुनने जो कुछ किया हो, वह मुझे बताओ॥ ३॥

संजय उवाच

हते पाण्ड्येऽर्जुनं कृष्णस्त्वरन्नाह वचो हितम्।
पश्यामि नाहं राजानमपयातांश्च पाण्डवान्॥ ४॥

संजयने कहा—राजन्! पाण्ड्यनरेशके मारे जानेपर श्रीकृष्णने बड़ी उतावलीके साथ अर्जुनसे यह हितकर वचन कहा—'पार्थ! मैं राजा युधिष्ठिरको नहीं देख रहा हूँ। युद्ध-स्थलसे हटे हुए अन्य पाण्डव भी मुझे नहीं दिखायी दे रहे हैं॥

निवृत्तैश्च पुनः पार्थैर्भग्नं शत्रुबलं महत्।
अश्वत्थाम्नश्च सङ्कल्पाद्धताः कर्णेन सृञ्जयाः॥ ५॥
तथाश्वरथनागानां कृतं च कदनं महत्।

'पुनः लौटे हुए पाण्डव-योद्धाओंने विशाल शत्रुसेनामें भगदड़ मचा दी थी; परंतु अश्वत्थामाके संकल्पके अनुसार कर्णने सृंजयोंका संहार कर डाला तथा अपनी सेनाके हाथी, घोड़े एवं रथोंका भारी विनाश कर दिया'॥ ५½॥

सर्वमाख्यातवान् वीरो वासुदेवः किरीटिने॥ ६॥
एतच्छ्रुत्वा च दृष्ट्वा च भ्रातुर्घोरं महद्भयम्।
वाहयाश्वान् हृषीकेश क्षिप्रमित्याह पाण्डवः॥ ७॥

वीर वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णने किरीटधारी अर्जुनको ये सारी बातें बतायीं। यह सुनकर तथा अपने भाईके ऊपर आये हुए इस घोर एवं महान् भयको देखकर पाण्डुकुमार अर्जुनने कहा—'हृषीकेश! आप शीघ्र ही इन घोड़ोंको बढ़ाइये'॥६-७॥

ततः प्रायाद्धृषीकेशो रथेनाप्रतियोधिना।
दारुणश्च पुनस्तत्र प्रादुरासीत् समागमः॥ ८॥

तब भगवान् हृषीकेश जिसका सामना करनेवाला दूसरा कोई योद्धा नहीं था उस रथके द्वारा आगे बढ़े। उस समय वहाँ पुनः बड़ा भयंकर संग्राम छिड़ा हुआ था॥ ८॥

ततः पुनः समाजग्मुरभीताः कुरुपाण्डवाः।
भीमसेनमुखाः पार्थाः सूतपुत्रमुखा वयम्॥ ९॥

कौरव तथा पाण्डव योद्धा पुनः निर्भय होकर एक दूसरेसे भिड़ गये थे। पाण्डव-सैनिकोंके प्रधान थे भीमसेन और हम लोगोंका प्रधान था सूतपुत्र कर्ण॥ ९॥

ततः प्रववृते भूयः संग्रामो राजसत्तम।
कर्णस्य पाण्डवानां च यमराष्ट्रविवर्धनः॥ १०॥

नृपश्रेष्ठ! उस समय कर्णका पाण्डव-सैनिकोंके साथ जो पुनः संग्राम आरम्भ हुआ था, वह यमराजके राज्यकी श्रीवृद्धि करनेवाला था॥ १०॥

धनूंषि बाणान् परिघानसिपट्टिशतोमरान्।
मुसलानि भुशुण्डीश्च सशक्त्यृष्टिपरश्वधान्॥ ११॥
गदाःप्रासाञ्छितान् कुन्तान् भिन्दिपालान् महाङ्कुशान्।
प्रगृह्य क्षिप्रमापेतुः परस्परजिघांसया॥ १२॥

दोनों दलोंके सैनिक एक दूसरेको मार डालनेकी इच्छासे धनुष, बाण, परिघ, खड्ग, पट्टिश, तोमर, मुसल, भुशुण्डी, शक्ति, ऋष्टि, फरसे, गदा, प्रास, तीखे कुन्त, भिन्दिपाल और बड़े-बड़े अङ्कुश लेकर शीघ्रतापूर्वक युद्धके मैदानमें कूद पड़े थे॥

बाणज्यातलशब्देन द्यां दिशः प्रदिशो वियत्।
पृथिवीं नेमिघोषेण नादयन्तोऽभ्ययुः परान्॥ १३॥

रथी वीर अपने बाणसहित धनुषकी प्रत्यञ्चाकी टंकारध्वनि एवं रथके पहियोंकी घर्घराहटसे आकाश, अन्तरिक्ष, दिशा, विदिशा तथा भूतलको शब्दायमान करते हुए शत्रुओंपर चढ़ आये॥ १३॥

तेन शब्देन महता संहृष्टाश्चक्रुराहवम्।
वीरा वीरैर्महाघोरं कलहान्तं तितीर्षवः॥ १४॥

कलहके पार जानेकी इच्छा रखनेवाले वे सभी वीर उस महान् शब्दसे हर्ष एवं उत्साहमें भरकर विपक्षी वीरोंके साथ अत्यन्त घोर संग्राम करने लगे॥ १४॥

ज्यातलत्रधनुःशब्दः कुञ्जराणां च बृंहताम्।
पादातानां च पततां नृणां नादो महानभूत्॥ १५॥

प्रत्यञ्चा, हस्तत्राण और धनुषका शब्द, चिग्घाड़ते हुए हाथियोंकी आवाज तथा रणभूमिमें गिरते हुए पैदल मनुष्योंके महान् आर्तनादकी तुमुल ध्वनि वहाँ गूँजने लगी॥ १५॥

तालशब्दांश्च विविधाञ्शूराणां चाभिगर्जताम्।

श्रुत्वा तत्र भृशं त्रेसुः पेतुर्मम्लुश्च सैनिकाः ॥ १६ ॥

सामने गर्जना करनेवाले शूरवीरोंके ताल ठोंकनेके विविध शब्द सुनकर कितने ही सैनिक वहाँ भयसे थर्रा उठते थे, कितने ही गिर पड़ते थे और कितने ही ग्लानिसे भर जाते थे॥

तेषां निनदतां चैव शस्त्रवर्षं च मुञ्चताम् ।
बहूनाधिरथिर्वीरः प्रममाथेषुभिः परान् ॥ १७ ॥

जोर-जोरसे गर्जते तथा अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करते हुए उन शत्रुसैनिकोंमेंसे बहुतोंको वीर कर्णने अपने बाणोंसे मथ डाला ॥ १७ ॥

पञ्च पाञ्चालवीराणां रथान् दश च पञ्च च ।
साश्वसूतध्वजान् कर्णः शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ १८ ॥

उसने अपने बाणोंद्वारा पाञ्चाल वीरोंमेंसे पहले पाँच, फिर दस और फिर पाँच रथियोंको घोड़े, सारथि एवं ध्वजों-सहित मारकर यमलोक पहुँचा दिया ॥ १८ ॥

योधमुख्या महावीर्याः पाण्डूनां कर्णमाहवे ।
शीघ्रास्त्रास्तूर्णमावृत्य परिवव्रुः समन्ततः ॥ १९ ॥

तब समराङ्गणमें पाण्डवदलके शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलानेवाले महापराक्रमी प्रधान-प्रधान योद्धाओंने तुरंत आकर कर्णको चारों ओरसे घेर लिया ॥ १९ ॥

ततः कर्णो द्विषत्सेनां शरवर्षैर्विलोडयन् ।
विजगाहाण्डजाकीर्णां पद्मिनीमिव यूथपः ॥ २० ॥

तदनन्तर कर्णने अपने बाणोंकी वर्षासे शत्रुसेनाका मन्थन करते हुए उसके भीतर उसी प्रकार प्रवेश किया, जैसे यूथपति गजराज पक्षियोंसे भरे हुए कमलपूर्ण सरोवरमें घुसकर उसे मथने लगता है ॥ २० ॥

द्विषन्मध्यमवस्कन्द्य राधेयो धनुरुत्तमम् ।
विधुन्वानः शितैर्बाणैः शिरांस्युन्मथ्य पातयत् ॥ २१ ॥

राधापुत्र कर्ण क्रमशः शत्रुसेनाके मध्यभागमें पहुँचकर अपने उत्तम धनुषको कम्पित करता हुआ पैने बाणोंसे शत्रुओंके सिर काट-काटकर गिराने लगा ॥ २१ ॥

चर्मवर्माणि संछिन्नान्यपतन् भुवि देहिनाम् ।
विषेहुर्नास्य संस्पर्शं द्वितीयस्य पतत्रिणः ॥ २२ ॥

उस समय देहधारियोंके चमड़े और कवच कट-कटकर भूतलपर गिर रहे थे। शत्रुसैनिक कर्णके द्वितीय बाणका स्पर्श नहीं सहन कर पाते थे ॥ २२ ॥

वर्मदेहासुमथनैर्धनुषः प्रच्युतैः शरैः ।
मौर्व्या तलत्रे न्यहनत् कशया वाजिनो यथा ॥ २३ ॥

जैसे घुड़सवार घोड़ोंको कोड़ेसे पीटता है, उसी प्रकार कर्ण धनुषसे छूटकर कवच, शरीर और प्राणोंको मथ डालनेवाले बाणोंद्वारा शत्रुओंके हस्तत्राणपर भी प्रहार करने लगा॥

पाण्डुसृञ्जयपञ्चालाञ्शरगोचरमागतान् ।
ममर्द तरसा कर्णः सिंहो मृगगणानिव ॥ २४ ॥

जैसे सिंह अपनी दृष्टिमें पड़े हुए मृगोंको वेगपूर्वक मसल डालता है, उसी प्रकार कर्णने अपने बाणोंकी पहुँचके भीतर आये हुए पाण्डव, सृंजय तथा पाञ्चाल योद्धाओंको बड़े वेगसे रौंद डाला ॥ २४ ॥

ततः पाञ्चालराजश्च द्रौपदेयाश्च मारिष ।
यमौ च युयुधानश्च सहिताः कर्णमभ्ययुः ॥ २५ ॥

मान्यवर ! तब पाञ्चालराज धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पुत्र तथा नकुल, सहदेव और सात्यकि--इन सबने एक साथ आकर कर्णपर आक्रमण किया ॥ २५ ॥

तेषु व्यायच्छमानेषु कुरुपाञ्चालपाण्डुषु ।
प्रियानसून् रणे त्यक्त्वा योधा जघ्नुः परस्परम् ॥२६॥

उस समय जब कौरव, पाञ्चाल तथा पाण्डव योद्धा परिश्रमपूर्वक युद्धमें लगे हुए थे, सभी सैनिक रणभूमिमें अपने प्यारे प्राणोंका मोह छोड़कर एक दूसरेको मारने लगे ॥

सुसंनद्धाः कवचिनः सशिरस्त्राणभूषणाः ।
गदाभिर्मुसलैश्चान्ये परिघैश्च महाबलाः ॥ २७ ॥
समभ्यधावन्त भृशं कालदण्डैरिवोद्यतैः ।
नर्दन्तश्चाह्वयन्तश्च प्रवल्गन्तश्च मारिष ॥ २८ ॥

माननीय नरेश ! कमर कसे, कवच बाँधे तथा शिरस्त्राण एवं आभूषण धारण किये हुए महाबली योद्धा गरजते, उछलते-कूदते और एक दूसरेको ललकारते हुए कालदण्डके समान गदा, मुसल और परिघ उठाये परस्पर धावा बोल रहे थे ॥ २७-२८ ॥

ततो निजघ्नुरन्योन्यं पेतुश्चान्योन्यताडिताः ।
वमन्तो रुधिरं गात्रैर्विमस्तिष्केक्षणायुधाः ॥ २९ ॥

तदनन्तर वे एक दूसरेका वध करने, परस्पर चोट खाकर धराशायी होने तथा शरीरसे रक्त बहाने लगे। उनके मस्तिष्क, नेत्र और आयुध नष्ट हो गये थे ॥ २९ ॥

दन्तपूर्णैः सरुधिरैर्वक्त्रैर्दाडिमसंनिभैः ।
जीवन्त इव चाप्येके तस्थुः शस्त्रोपबृंहिताः ॥ ३० ॥

कितने ही वीरोंके शरीर अस्त्र-शस्त्रोंसे व्याप्त एवं प्राणशून्य होकर पड़े थे; परंतु उनके खुले हुए मुखमें जो रक्तरञ्जित दाँत थे, उनके द्वारा वे फटे हुए अनारके फलों-जैसे जान पड़ते थे और उस तरहके मुखोंद्वारा वे जीवित-से प्रतीत होते थे ॥ ३० ॥

परश्वधैश्चाप्यपरे पट्टिशैरसिभिस्तथा ।
शक्तिभिर्भिन्दिपालैश्च नखरप्रासतोमरैः ॥ ३१ ॥
ततक्षुश्चिच्छिदुश्चान्ये बिभिदुश्चिक्षिपुस्तथा ।
संचकर्तुश्च जघ्नुश्च क्रुद्धा रणमहार्णवे ॥ ३२ ॥

महासागरके समान उस विशाल युद्धस्थलमें परस्पर कुपित हुए अन्यान्य योद्धा परशु, पट्टिश, खड्ग, शक्ति, भिन्दिपाल, नखर, प्रास तथा तोमरोंद्वारा यथासम्भव एक

दूसरेका छेदन-भेदन, विदारण, क्षेपण, कर्तन और हनन करने लगे ॥ ३१-३२ ॥

पेतुरन्योन्यनिहता व्यसवो रुधिरोक्षिताः ।
क्षरन्तः सुरसं रक्तं प्रकृत्ताश्चन्दना इव ॥ ३३ ॥

जैसे लाल चन्दनके वृक्ष कट जानेपर रक्त वर्णका रस बहाने लगते हैं, उसी प्रकार परस्परके आघातसे मारे गये योद्धा खूनसे लथपथ एवं प्राणशून्य होकर युद्धभूमिमें पड़े थे और अपने अङ्गोंसे रक्त बहा रहे थे ॥ ३३ ॥

रथै रथा विनिहता हस्तिभिश्चापि हस्तिनः ।
नरैर्नरा हताः पेतुरश्वाश्चाश्वैः सहस्रशः ॥ ३४ ॥

रथियोंसे रथी, हाथियोंसे हाथी, पैदल मनुष्योंसे मनुष्य और घोड़ोंसे घोड़े मारे जाकर रणभूमिमें सहस्रोंकी संख्यामें पड़े थे ॥ ३४ ॥

ध्वजाः शिरांसि च्छत्राणि द्विपहस्ता नृणां भुजाः ।
क्षुरैर्भल्लार्धचन्द्रैश्च च्छिन्नाः पेतुर्महीतले ॥ ३५ ॥

ध्वज, मस्तक, छत्र, हाथीकी सूँड़ तथा मनुष्योंकी भुजाएँ—ये सबके सब क्षुरों, भल्लों तथा अर्धचन्द्रोंद्वारा कट-कर भूतलपर पड़े थे ॥ ३५ ॥

नरांश्च नागान् सरथान् हयान् ममृदुराहवे ।
अश्वारोहैर्हताः शूराश्छिन्नहस्ताश्च दन्तिनः ॥ ३६ ॥
सपताकाध्वजाः पेतुर्विशीर्णा इव पर्वताः ।

घुड़सवारोंने कितने ही शूरवीरोंको मार डाला और बड़े-बड़े दन्तार हाथियोंकी सूँड़ें काट लीं। सूँड़ कट जानेपर उन हाथियोंने युद्धस्थलमें बहुत-से मनुष्यों, हाथियों, रथों और घोड़ोंको कुचल डाला । फिर वे पताका और ध्वजोंसहित टूटे-फूटे पर्वतोंके समान पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ३६½ ॥

पत्तिभिश्च समाप्लुत्य द्विरदाः स्यन्दनास्तथा ॥ ३७ ॥
हताश्च हन्यमानाश्च पतिताश्चैव सर्वशः ।

पैदल वीरोंद्वारा उछल-उछलकर मारे गये और मारे जाते हुए कितने ही हाथी और रथ सवारोंसहित सब ओर पड़े थे ॥ ३७½ ॥

अश्वारोहाः समासाद्य त्वरिताः पत्तिभिर्हताः ॥ ३८ ॥
सादिभिः पत्तिसंघाश्च निहता युधि शेरते ।

कितने ही घुड़सवार बड़ी उतावलीके साथ पैदल वीरोंके पास जाकर उनके द्वारा मारे गये तथा झुंड-के-झुंड पैदल सैनिक भी घुड़सवारोंकी चोटसे मारे जाकर युद्धस्थलमें सदाके लिये सो गये थे ॥ ३८½ ॥

मृदितानीव पद्मानि प्रम्लाना इव च स्रजः ॥ ३९ ॥
हतानां वदनान्यासन् गात्राणि च महाहवे ।

उस महासमरमें मारे गये योद्धाओंके मुख और शरीर कुचले हुए कमलों और कुम्हलायी हुई मालाओंके समान श्रीहीन हो गये थे ॥ ३९½ ॥

रूपाण्यत्यर्थकान्तानि द्विरदाश्वनृणां नृप ।
समुन्नानीव वस्त्राणि ययुर्दुर्दर्शतां पराम् ॥ ४० ॥

नरेश्वर ! हाथी, घोड़े और मनुष्योंके अत्यन्त सुन्दर रूप भी वहाँ कीचड़में सने हुए वस्त्रोंके समान घिनौने हो गये थे। उनकी ओर देखना कठिन हो रहा था ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

पाण्डवसेनापर भयानक गज-सेनाका आक्रमण, पाण्डवोंद्वारा पुण्ड्रकी पराजय तथा वङ्गराज और अङ्गराजका वध, गजसेनाका विनाश और पलायन

संजय उवाच

हस्तिभिस्तु महामात्रास्तव पुत्रेण चोदिताः ।
धृष्टद्युम्नं जिघांसन्तः क्रुद्धाः पार्षतमभ्ययुः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! आपके पुत्र दुर्योधनकी आज्ञा पाकर बहुत-से महावत धृष्टद्युम्नको मार डालनेकी इच्छासे क्रोधपूर्वक हाथियोंके साथ आकर उनपर टूट पड़े ॥

प्राच्याश्च दाक्षिणात्याश्च प्रवरा गजयोधिनः ।
अङ्गा वङ्गाश्च पुण्ड्राश्च मागधास्ताम्रलिप्तकाः ॥ २ ॥
मेकलाः कोसला मद्रा दशार्णा निषधास्तथा ।
गजयुद्धेषु कुशलाः कलिङ्गैः सह भारत ॥ ३ ॥
शरतोमरनाराचैर्वृष्टिमन्त इवाम्बुदाः ।
सिषिचुस्ते ततः सर्वे पाञ्चालबलमाहवे ॥ ४ ॥

भारत ! पूर्व और दक्षिण दिशाके श्रेष्ठ गजयोद्धा तथा अंग, बंग, पुण्ड्र, मगध, ताम्रलिप्त, मेकल, कोसल, मद्र, दशार्ण तथा निषध देशोंके समस्त गजयुद्धनिपुण वीर कलिङ्गों-के साथ मिलकर वर्षा करनेवाले मेघोंके समान समराङ्गणमें पाञ्चाल-सेनापर बाण, तोमर और नाराचोंकी वृष्टि करने लगे ॥

तान् सम्मिमर्दिषून् नागान् पार्ष्ण्यङ्गुष्ठाङ्कुशैर्भृशम् ।
चोदितान् पार्षतो बाणैर्नाराचैरभ्यवीवृषत् ॥ ५ ॥

वे नाग शत्रुओंकी सारी सेनाको कुचल डालनेकी इच्छा रखते थे और उन्हें पैरोंकी एड़ी, अँगूठों तथा अङ्कुशोंकी मारसे बारंबार आगे बढ़नेके लिये प्रेरित किया जा रहा था। यह देखकर द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्नने उनपर नाराच नामक बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ५ ॥

एकैकं दशभिः षड्भिरष्टाभिरपि भारत ।

द्विरदानभिविव्याध क्षितैर्गिरिनिभाञ्शरैः ॥ ६ ॥

भरतनन्दन ! धृष्टद्युम्नने उन पर्वताकार हाथियोंमेंसे प्रत्येकको अपने चलाये हुए दस-दस, छः-छः और आठ-आठ बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ६ ॥

प्रच्छाद्यमानं द्विरदैर्मेघैरिव दिवाकरम् ।
प्रययुः पाण्डुपञ्चाला नदन्तो निशितायुधाः ॥ ७ ॥

उस समय मेघोंकी घटासे ढके हुए सूर्यके समान धृष्टद्युम्नको उन हाथियोंसे आच्छादित हुआ देख पाण्डव और पाञ्चाल सैनिक तीखे आयुध लिये गर्जना करते हुए आगे बढ़े ॥ ७ ॥

तान् नागानभिवर्षन्तो ज्यातन्त्रीतलनादितैः ।
वीरनृत्यं प्रनृत्यन्तः शूरतालप्रचोदितैः ।
नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ॥ ८ ॥
सात्यकिश्च शिखण्डी च चेकितानश्च वीर्यवान् ।
समन्तात् सिषिचुर्वीरा मेघास्तोयैरिवाचलान् ॥ ९ ॥

वे प्रत्यञ्चारूपी वीणाके तारको झंकारते, शूरवीरोंके दिये हुए तालसे प्रेरणा लेते तथा वीरोचित नृत्य करते हुए उन हाथियोंपर बाणोंकी वर्षा कर रहे थे । नकुल, सहदेव, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, प्रभद्रकगण, सात्यकि, शिखण्डी तथा पराक्रमी चेकितान—ये सभी वीर चारों ओरसे उन हाथियोंपर उसी प्रकार बाणोंकी वृष्टि करने लगे, जैसे बादल पर्वतोंपर पानी बरसाते हैं ॥ ८-९ ॥

ते म्लेच्छैः प्रेषिता नागा नरानश्वान् रथानपि ।
हस्तैराक्षिप्य ममृदुः पद्भिश्चाप्यतिमन्यवः ॥ १० ॥

म्लेच्छोंद्वारा आगे बढ़ाये हुए वे अत्यन्त क्रोधी गजराज



मनुष्यों, घोड़ों और रथोंको अपनी सूँड़ोंसे उठाकर फेंक देते और उन्हें पैरोंसे मसल डालते थे ॥ १० ॥

बिभिदुश्च विषाणाग्रैः समाक्षिप्य च चिक्षिपुः ।
विषाणलग्नाश्चाप्यन्ये परिपेतुर्विभीषणाः ॥ ११ ॥

कितनोंको अपने दाँतोंके अग्रभागसे विदीर्ण कर देते और बहुतोंको सूँड़ोंसे खींचकर दूर फेंक देते थे । कितने ही योद्धा उनके दाँतोंमें गुँथकर बड़ी भयानक अवस्थामें नीचे गिरते थे ॥

प्रमुखे वर्तमानं तु द्विपं वङ्गस्य सात्यकिः ।
नाराचेनोग्रवेगेन भित्त्वा मर्माण्यपातयत् ॥ १२ ॥

इसी समय सात्यकिने अपने सामने उपस्थित हुए वंगराजके हाथीके मर्मस्थानोंको भयंकर वेगवाले नाराचसे विदीर्ण करके उसे धराशायी कर दिया ॥ १२ ॥

तस्यावर्जितकायस्य द्विरदादुत्पतिष्यतः ।
नाराचेनाहनद् वक्षःसात्यकिःसोऽपतद् भुवि ॥ १३ ॥

वंगराज अपने शरीरको सिकोड़कर उस हाथीसे कूदना ही चाहता था कि सात्यकिने नाराचद्वारा उसकी छाती छेद डाली; अतः वह घायल होकर भूतलपर गिर पड़ा ॥ १३ ॥

पुण्ड्रस्यापततो नागं चलन्तमिव पर्वतम् ।
सहदेवः प्रयत्नास्त्रैर्नाराचैरहनत् त्रिभिः ॥ १४ ॥

दूसरी ओर पुण्ड्रराज अक्रमण कर रहे थे । उनका हाथी चलते-फिरते पर्वतके समान जान पड़ता था । सहदेवने प्रयत्नपूर्वक चलाये हुए तीन नाराचोंद्वारा उसे घायल कर दिया ॥

विपताकं वियन्तारं विवर्मध्वजजीवितम् ।
तं कृत्वा द्विरदं भूयः सहदेवोऽङ्गमभ्ययात् ॥ १५ ॥

इस प्रकार उस हाथीको पताका, महावत, कवच, ध्वज तथा प्राणोंसे हीन करके सहदेव पुनः अङ्गराजकी ओर बढ़े ॥१५॥

सहदेवं तु नकुलो वारयित्वाङ्गमार्दयत् ।
नाराचैर्यमदण्डाभैस्त्रिभिर्नागं शतेन तम् ॥ १६ ॥

परंतु नकुलने सहदेवको रोककर स्वयं ही अङ्गराजको पीड़ित किया । उन्होंने यमदण्डके समान तीन भयानक नाराचोंद्वारा उनके हाथीको और सौ नाराचोंसे अङ्गराजको घायल कर दिया ॥ १६ ॥

दिवाकरकरप्रख्यानङ्गश्चिक्षेप तोमरान् ।
नकुलाय शतान्यष्टौ त्रिधैकैकं तु सोऽच्छिनत् ॥ १७ ॥

अङ्गराजने नकुलपर सूर्यकिरणोंके समान तेजस्वी आठ सौ तोमर चलाये; परंतु नकुलने उनमेंसे प्रत्येकके तीन-तीन टुकड़े कर डाले ॥ १७ ॥

तथार्धचन्द्रेण शिरस्तस्य चिच्छेद पाण्डवः ।
स पपात हतो म्लेच्छस्तेनैव सह दन्तिना ॥ १८ ॥

तत्पश्चात् पाण्डुकुमार नकुलने एक अर्धचन्द्रके द्वारा अङ्गराजका सिर काट लिया । इस प्रकार मारा गया म्लेच्छजातीय अङ्गराज अपने हाथीके साथ ही पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥

अथाङ्गपुत्रे निहते हस्तिशिक्षाविशारदे ।
अङ्गाः क्रुद्धा महामात्रा नागैर्नकुलमभ्ययुः ॥ १९ ॥

गजशिक्षामें कुशल अङ्गराजके पुत्रके मारे जानेपर कुपित हुए अङ्गदेशीय महावतोंने हाथियोंद्वारा नकुलपर आक्रमण किया ॥ १९ ॥

चलत्पताकैः सुमुखैर्हेमकक्षातनुच्छदैः ।
मिमर्दिषन्तस्त्वरिताः प्रदीप्तैरिव पर्वतैः ॥ २० ॥
मेकलोत्कलकालिङ्गा निषधास्ताम्रलिप्तकाः ।
शरतोमरवर्षाणि विमुञ्चन्तो जिघांसवः ॥ २१ ॥

उन हाथियोंपर पताकाएँ फहरा रही थीं। उनके मुख बहुत सुन्दर थे। उनको कसनेके लिये बनी हुई रस्सी और कवच सुवर्णमय थे। वे प्रज्वलित पर्वतोंके समान जान पड़ते थे। उन हाथियोंके द्वारा नकुलको कुचलवा देनेकी इच्छा रखकर मेकल, उत्कल, कलिङ्ग, निषध तथा ताम्रलिप्त-देशीय योद्धा बड़ी उतावलीके साथ बाणों और तोमरोंकी वर्षा कर रहे थे। वे सब-के-सब उन्हें मार डालनेको उतारू थे ॥

तैश्छाद्यमानं नकुलं दिवाकरमिवाम्बुदैः ।
परिपेतुः सुसंरब्धाः पाण्डुपाञ्चालसोमकाः ॥ २२ ॥

बादलोंसे ढके हुए सूर्यके समान नकुलको उनके द्वारा आच्छादित होते देख क्रोधमें भरे हुए पाण्डव, पाञ्चाल और सोमक योद्धा तुरंत उन म्लेच्छोंपर टूट पड़े ॥ २२ ॥

ततस्तदभवद् युद्धं रथिनां हस्तिभिः सह ।
सृजतां शरवर्षाणि तोमरांश्च सहस्रशः ॥ २३ ॥

तब उन रथियोंका हाथियोंके साथ युद्ध छिड़ गया। वे रथी वीर उनके ऊपर सहस्रों तोमरों और बाणोंकी वर्षा कर रहे थे ॥ २३ ॥

नागानां प्रास्फुटन् कुम्भा मर्माणि विविधानि च ।
दन्ताश्चैवातिविद्धानां नाराचैर्भूषणानि च ॥ २४ ॥

नाराचोंसे अत्यन्त घायल हुए उन हाथियोंके कुम्भस्थल फूट गये, विभिन्न मर्मस्थान विदीर्ण हो गये तथा उनके दाँत और आभूषण कट गये ॥ २४ ॥

तेषामष्टौ महानागांश्चतुःषष्ट्या सुतेजनैः ।
सहदेवो जघानाशु तेऽपतन् सह सादिभिः ॥ २५ ॥

सहदेवने उनमेंसे आठ महागजोंको चौसठ पैने बाणोंसे शीघ्र मार डाला। वे सब-के-सब सवारोंके साथ धराशायी हो गये ॥ २५ ॥

अञ्जोगतिभिरायम्य प्रयत्नाद् धनुरुत्तमम् ।
नाराचैरहनन्नागान् नकुलः कुलनन्दनः ॥ २६ ॥

अपने कुलको आनन्दित करनेवाले नकुलने भी प्रयत्न-पूर्वक उत्तम धनुषको खींचकर अनायास ही दूरतक जानेवाले नाराचोंद्वारा बहुतसे हाथियोंका वध कर डाला ॥ २६ ॥

ततः पाञ्चालशैनेयौ द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ।
शिखण्डी च महानागान् सिषिचुः शरवृष्टिभिः ॥ २७ ॥

तदनन्तर धृष्टद्युम्न, सात्यकि, द्रौपदीके पुत्र, प्रभद्रकगण तथा शिखण्डीने भी उन महान् गजराजोंपर अपने बाणोंकी वर्षा की ॥ २७ ॥

ते पाण्डुयोधाम्बुधरैः शत्रुद्विरदपर्वताः ।
बाणवर्षैर्हताः पेतुर्वज्रवर्षैरिवाचलाः ॥ २८ ॥

जैसे वज्रोंकी वर्षासे पर्वत ढह जाते हैं, उसी प्रकार पाण्डव-सैनिकरूपी बादलोंद्वारा की हुई बाणोंकी वृष्टिसे आहत हो शत्रुओंके हाथीरूपी पर्वत धराशायी हो गये ॥ २८ ॥

एवं हत्वा तव गजांस्ते पाण्डुरथकुञ्जराः ।
द्रुतां सेनामवैक्षन्त भिन्नकूलामिवापगाम् ॥ २९ ॥

इस प्रकार उन श्रेष्ठ पाण्डव महारथियोंने आपके हाथि-योंका संहार करके देखा कि आपकी सेना किनारा तोड़कर बहनेवाली नदीके समान सब ओर भाग रही है ॥ २९ ॥

तां ते सेनां समालोड्य पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः ।
विक्षोभयित्वा च पुनः कर्णं समभिदुद्रुवुः ॥ ३० ॥

पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके उन सैनिकोंने आपकी उस सेनाको मथकर उसमें हलचल पैदा करके पुनः कर्णपर धावा किया ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

सहदेवके द्वारा दुःशासनकी पराजय

संजय उवाच

सहदेवं तथा क्रुद्धं दहन्तं तव वाहिनीम् ।
दुःशासनो महाराज भ्राता भ्रातरमभ्ययात् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! सहदेव क्रोधमें भरकर आपकी विशाल सेनाको दग्ध करने लगे। उस समय भाई दुःशासनने अपने उस भ्राताका सामना किया ॥ १ ॥

तौ समेतौ महायुद्धे दृष्ट्वा तत्र महारथाः ।
सिंहनादरवांश्चक्रुर्वासांस्यादुधुवुश्च ह ॥ २ ॥

उस महायुद्धमें उन दोनों भाइयोंको एकत्र हुआ देख वहाँ खड़े हुए महारथी योद्धा सिंहनाद करने और वस्त्र हिलाने लगे ॥ २ ॥

ततो भारत क्रुद्धेन तव पुत्रेण धन्विना ।
पाण्डुपुत्रस्त्रिभिर्बाणैर्वक्षस्यभिहतो बली ॥ ३ ॥

भारत ! उस समय कुपित हुए आपके धनुर्धर पुत्रने

अपने तीन बाणोंद्वारा बलवान् पाण्डुपुत्र सहदेवकी छातीमें गहरा आघात किया ॥ ३ ॥

सहदेवस्ततो राजन् नाराचेन तवात्मजम् ।
विद्ध्वा विव्याध सप्तत्या सारथिं च त्रिभिः शरैः ॥

राजन् ! तब सहदेवने आपके पुत्रको एक नाराचसे घायल करके पुनः सत्तर बाणोंसे बींध डाला । तत्पश्चात् उनके सारथिको भी तीन बाण मारे ॥ ४ ॥

दुःशासनस्ततश्चापं छित्त्वा राजन् महाहवे ।
सहदेवं त्रिसप्तत्या बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ५ ॥

राजन् ! उस महासमरमें दुःशासनने सहदेवका धनुष काटकर उनकी दोनों भुजाओं और छातीमें तिहत्तर बाण मारे॥

सहदेवस्तु संक्रुद्धः खड्गं गृह्य महाहवे ।
आविध्य प्रासृजत् तूर्णं तव पुत्ररथं प्रति ॥ ६ ॥

तब सहदेवने अत्यन्त कुपित होकर उस महासमरमें तलवार उठा ली और उसे घुमाकर तुरंत ही आपके पुत्रके रथकी ओर फेंका॥

समार्गणगुणं चापं छित्त्वा तस्य महानसिः ।
निपपात ततो भूमौ च्युतः सर्प इवाम्बरात् ॥ ७ ॥

उनकी वह लंबी तलवार दुःशासनके धनुष, बाण और प्रत्यञ्चाको काटकर आकाशसे भ्रष्ट हुए सर्पकी भाँति वहाँ पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ७ ॥

अथान्यद् धनुरादाय सहदेवः प्रतापवान् ।
दुःशासनाय चिक्षेप बाणमन्तकरं ततः ॥ ८ ॥

तदनन्तर प्रतापी सहदेवने दूसरा धनुष लेकर दुःशासन-पर एक विनाशकारी बाणका प्रहार किया ॥ ८ ॥

तमापतन्तं विशिखं यमदण्डोपमत्विषम् ।
खड्गेन शितधारेण द्विधा चिच्छेद कौरवः ॥ ९ ॥

यमदण्डके समान प्रकाशित होनेवाले उस बाणको आते देख कुरुवंशी दुःशासनने तीखी धारवाले खड्गसे उसके दो टुकड़े कर डाले ॥ ९ ॥

ततस्तं निशितं खड्गमाविध्य युधि सत्वरः ।
धनुश्चान्यत् समादाय शरं जग्राह वीर्यवान् ॥ १० ॥

तत्पश्चात् दुःशासनने युद्धस्थलमें तुरंत ही तीखी तलवार घुमाकर सहदेवपर दे मारी; फिर उस पराक्रमी वीरने दूसरा धनुष लेकर उसपर बाणका संधान किया ॥ १० ॥

तमापतन्तं सहसा निस्त्रिंशं निशितैः शरैः ।
पातयामास समरे सहदेवो हसन्निव ॥ ११ ॥

सहदेवने हँसते हुए-से सहसा अपनी ओर आती हुई उस तलवारको तीखे बाणोंसे समरभूमिमें गिरा दिया ॥ ११ ॥

ततो बाणांश्चतुःषष्टिं तव पुत्रो महारणे ।
सहदेवरथं तूर्णं प्रेषयामास भारत ॥ १२ ॥

भारत ! इतनेहीमें आपके पुत्रने उस महासमरमें सहदेवपर तुरंत ही चौसठ बाण चलाये ॥ १२ ॥

ताञ्छरान् समरे राजन् वेगेनापततो बहून् ।
एकैकं पञ्चभिर्बाणैः सहदेवो न्यकृन्तत ॥ १३ ॥

राजन् ! सहदेवने रणभूमिमें वेगसे आते हुए उन बहु-संख्यक बाणोंमेंसे प्रत्येकको पाँच-पाँच बाण मारकर काट गिराया ॥ १३ ॥

संनिवार्य महाबाणांस्तव पुत्रेण प्रेषितान् ।
अथास्मै सुबहून् बाणान् प्रेषयामास संयुगे ॥ १४ ॥

इस प्रकार आपके पुत्रके चलाये हुए उन महाबाणोंका निवारण करके युद्धस्थलमें सहदेवने उसके ऊपर भी बहुत-से बाण छोड़े ॥ १४ ॥

तान् बाणांस्तव पुत्रोऽपि छित्त्वैकैकं त्रिभिः शरैः ।
ननाद सुमहानादं दारयाणो वसुन्धराम् ॥ १५ ॥

आपके पुत्रने भी सहदेवके उन बाणोंमेंसे प्रत्येकको तीन-तीन बाणोंसे काटकर पृथ्वीको विदीर्ण-सी करते हुए बड़े जोरसे गर्जना की ॥ १५ ॥

ततो दुःशासनो राजन् विद्ध्वा पाण्डुसुतं रणे ।
सारथिं नवभिर्बाणैर्माद्रेयस्य समार्पयत् ॥ १६ ॥

राजन् ! इसके बाद दुःशासनने रणभूमिमें पाण्डुकुमार सहदेवको घायल करके उन माद्रीकुमारके सारथिको भी नौ बाण मारे ॥ १६ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज सहदेवः प्रतापवान् ।
समाधत्त शरं घोरं मृत्युकालान्तकोपमम् ॥ १७ ॥

महाराज ! इससे कुपित होकर प्रतापी सहदेवने अपने धनुषपर मृत्यु, काल और यमराजके समान भयंकर बाण रक्खा॥

विकृष्य बलवच्चापं तव पुत्राय सोऽसृजत् ।
स तं निर्भिद्य वेगेन भित्त्वा च कवचं महत् ॥ १८ ॥
प्राविशद् धरणीं राजन् वल्मीकमिव पन्नगः ।
ततः सम्मुमुहे राजंस्तव पुत्रो महारथः ॥ १९ ॥

फिर उस धनुषको बलपूर्वक खींचकर उसने आपके पुत्रपर वह बाण छोड़ दिया । राजन् ! वह बाण दुःशासनको तथा उसके विशाल कवचको भी वेगपूर्वक विदीर्ण करके बाँबीमें घुसनेवाले सर्पके समान धरतीमें समा गया । महाराज ! इससे आपका महारथी पुत्र मूर्छित हो गया ॥ १८-१९ ॥

मूढं चैनं समालोक्य सारथिस्त्वरितो रथम् ।
अपोवाह भृशं त्रस्तो वध्यमानः शितैः शरैः ॥ २० ॥

उसे मूर्छित देख उसका सारथि तीखे बाणोंकी मार खाकर अत्यन्त भयभीत हो तुरंत ही रथको रणभूमिसे दूर हटा ले गया ॥ २० ॥

पराजित्य रणे तं तु कौरव्यं पाण्डुनन्दनः ।
दुर्योधनबलं दृष्ट्वा प्रममाथ समन्ततः ॥ २१ ॥

कुरुवंशी दुःशासनको रणभूमिमें पराजित करके पाण्डु-नन्दन सहदेवने दुर्योधनकी सेनाको वहाँ उपस्थित देख उसे

सब ओरसे मथ डाला ॥ २१ ॥

पिपीलिकपुटं राजन् यथा मृद्गन्नरो रुषा।
तथा सा कौरवी सेना मृदिता तेन भारत ॥ २२ ॥

भरतवंशी नरेश ! जैसे मनुष्य रोषमें आकर चींटियोंके दलको मसल डालता है, उसी प्रकार सहदेवने उस कौरव-सेनाको धूलमें मिला दिया ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि सहदेवदुःशासनयुद्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें सहदेव और दुःशासनका युद्धविषयक तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

नकुल और कर्णका घोर युद्ध तथा कर्णके द्वारा नकुलकी पराजय और पाञ्चाल-सेनाका संहार

संजय उवाच

नकुलं रभसं युद्धे द्रावयन्तं वरूथिनीम्।
कर्णो वैकर्तनो राजन् वारयामास वै रुषा ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! युद्धस्थलमें कौरव-सेनाको खदेड़ते हुए वेगशाली वीर नकुलको वैकर्तन कर्णने रोषपूर्वक रोका ॥ १ ॥

नकुलस्तु ततः कर्णं प्रहसन्निदमब्रवीत्।
चिरस्य बत दृष्टोऽहं दैवतैः सौम्यचक्षुषा ॥ २ ॥
पश्य मां त्वं रणे पाप चक्षुर्विषयमागतम्।
त्वं हि मूलमनर्थानां वैरस्य कलहस्य च ॥ ३ ॥
त्वद्दोषात् कुरवः क्षीणाः समासाद्य परस्परम्।
त्वामद्य समरे हत्वा कृतकृत्योऽस्मि विज्वरः ॥ ४ ॥

तब नकुलने कर्णसे हँसते हुए इस प्रकार कहा—'आज दीर्घकालके पश्चात् देवताओंने मुझे सौम्य दृष्टिसे देखा है; यह बड़े हर्षकी बात है। पापी कर्ण ! मैं रणभूमिमें तेरी आँखोंके सामने आ गया हूँ। तू अच्छी तरह मुझे देख ले। तू ही इन सारे अनर्थोंकी तथा वैर एवं कलहकी जड़ है। तेरे ही दोषसे कौरव आपसमें लड़-भिड़कर क्षीण हो गये। आज मैं तुझे समरभूमिमें मारकर कृतकृत्य एवं निश्चिन्त हो जाऊँगा'॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच नकुलं सूतनन्दनः।
सदृशं राजपुत्रस्य धन्विनश्च विशेषतः ॥ ५ ॥
प्रहरस्व च मे वीर पश्यामस्तव पौरुषम्।
कर्म कृत्वा रणे शूर ततः कत्थितुमर्हसि ॥ ६ ॥

नकुलके ऐसा कहनेपर सूतनन्दन कर्णने उनसे कहा—'वीर ! तुम एक राजपुत्रके विशेषतः धनुर्धर योद्धाके योग्य कार्य करते हुए मुझपर प्रहार करो। हम तुम्हारा पुरुषार्थ देखेंगे। शूर ! पहले रणभूमिमें पराक्रम प्रकट करके फिर उसके विषयमें तुम्हें बढ़-बढ़कर बातें बनानी चाहिये ॥५-६॥

अनुक्त्वा समरे तात शूरा युध्यन्ति शक्तितः।
प्रयुध्यस्व मया शक्त्या हनिष्ये दर्पमेव ते ॥ ७ ॥

'तात ! शूरवीर समराङ्गणमें बातें न बनाकर अपनी शक्तिके अनुसार युद्ध करते हैं। तुम पूरी शक्ति लगाकर मेरे साथ युद्ध करो। मैं तुम्हारा घमंड चूर कर दूँगा'॥ ७ ॥

इत्युक्त्वा प्राहरत् तूर्णं पाण्डुपुत्राय सूतजः।
विव्याध चैनं समरे त्रिसप्तत्या शिलीमुखैः ॥ ८ ॥

ऐसा कहकर सूतपुत्र कर्णने पाण्डुकुमार नकुलपर तुरंत ही प्रहार किया। उन्हें युद्धस्थलमें तिहत्तर बाणोंसे बींध डाला॥

नकुलस्तु ततो विद्धः सूतपुत्रेण भारत।
अशीत्याशीविषप्रख्यैः सूतपुत्रमविध्यत ॥ ९ ॥

भारत ! सूतपुत्रके द्वारा घायल होकर नकुलने उसे भी विषधर सर्पोंके समान अस्सी बाणोंसे क्षत-विक्षत कर दिया॥

तस्य कर्णो धनुश्छित्त्वा स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः।
त्रिंशता परमेष्वासः शरैः पाण्डवमार्दयत् ॥ १० ॥

तब महाधनुर्धर कर्णने शिलापर तेज किये हुए स्वर्णमय पंखवाले बाणोंसे नकुलके धनुषको काटकर उन्हें तीस बाणोंसे पीड़ित कर दिया ॥ १० ॥

ते तस्य कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे।
आशीविषा यथा नागा भित्त्वा गां सलिलं पपुः॥ ११ ॥

जैसे विषधर नाग धरती फोड़कर जल पी लेते हैं, उसी प्रकार उन बाणोंने नकुलका कवच छिन्न-भिन्न करके युद्ध-स्थलमें उनका रक्त पी लिया ॥ ११ ॥

अथान्यद् धनुरादाय हेमपृष्ठं दुरासदम्।
कर्णं विव्याध सप्तत्या सारथिं च त्रिभिः शरैः॥ १२ ॥

तत्पश्चात् नकुलने सोनेकी पीठवाला दूसरा दुर्जय धनुष हाथमें लेकर कर्णको सत्तर और उसके सारथिको तीन बाणोंसे घायल कर दिया ॥ १२ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज नकुलः परवीरहा।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन कर्णस्य धनुराच्छिनत् ॥ १३ ॥

महाराज ! इसके बाद शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले नकुल-ने कुपित होकर एक अत्यन्त तीखे क्षुरप्रसे कर्णका धनुष काट दिया ॥ १३ ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं सायकानां शतैस्त्रिभिः।
आजघ्ने प्रहसन् वीरः सर्वलोकमहारथम् ॥ १४ ॥

धनुष कट जानेपर सम्पूर्ण लोकोंके विख्यात महारथी कर्णको वीर नकुलने हँसते-हँसते तीन सौ बाण मारे ॥ १४ ॥

कर्णमभ्यर्दितं दृष्ट्वा पाण्डुपुत्रेण मारिष।
विस्मयं परमं जग्मू रथिनः सह दैवतैः ॥ १५ ॥

मान्यवर ! पाण्डुपुत्र नकुलके द्वारा कर्णको इस तरह

पीड़ित हुआ देख देवताओंसहित सम्पूर्ण रथियोंको महान् आश्चर्य हुआ ॥ १५ ॥

अथान्यद् धनुरादाय कर्णो वैकर्तनस्तदा।
नकुलं पञ्चभिर्बाणैर्जत्रुदेशे समार्पयत् ॥ १६ ॥

तब वैकर्तन कर्णने दूसरा धनुष लेकर नकुलके गलेकी हँसलीपर पाँच बाण मारे ॥ १६ ॥

तत्रस्थैरथ तैर्बाणैर्माद्रीपुत्रो व्यरोचत।
स्वरश्मिभिरिवादित्यो भुवने विसृजन् प्रभाम् ॥ १७ ॥

वहाँ धँसे हुए उन बाणोंसे माद्रीकुमार नकुल उसी प्रकार सुशोभित हुए, जैसे सम्पूर्ण जगत्‌में प्रभा बिखेरनेवाले भगवान् सूर्य अपनी किरणोंसे प्रकाशित होते हैं ॥ १७ ॥

नकुलस्तु ततः कर्णं विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः।
अथास्य धनुषः कोटिं पुनश्चिच्छेद मारिष ॥ १८ ॥

माननीय नरेश ! तदनन्तर नकुलने कर्णको सात बाणोंसे घायल करके उसके धनुषका एक कोना पुनः काट डाला ॥

सोऽन्यत् कार्मुकमादाय समरे वेगवत्तरम्।
नकुलस्य ततो बाणैः सर्वतोऽवारयद् दिशः ॥ १९ ॥

तब कर्णने समराङ्गणमें दूसरा अत्यन्त वेगशाली धनुष लेकर नकुलके चारों ओर सम्पूर्ण दिशाओंको बाणोंसे आच्छादित कर दिया ॥ १९ ॥

संछाद्यमानः सहसा कर्णचापच्युतैः शरैः।
चिच्छेद स शरांस्तूर्णं शरैरेव महारथः ॥ २० ॥

कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा सहसा आच्छादित होते हुए महारथी नकुलने तुरंत ही उसके बाणोंको अपने बाणोंद्वारा ही काट गिराया ॥ २० ॥

ततो बाणमयं जालं विततं व्योम्नि दृश्यते।
खद्योतानामिव व्रातैः सम्पतद्भिर्यथा नभः ॥ २१ ॥

तत्पश्चात् आकाशमें बाणोंका जाल-सा बिछा हुआ दिखायी देने लगा, मानो वहाँ जुगनुओंके समूह उड़ रहे हों ॥ २१ ॥

तैर्विमुक्तैः शरशतैश्छादितं गगनं तदा।
शलभानां यथा व्रातैस्तद्वदासीद् विशाम्पते ॥ २२ ॥

प्रजानाथ ! उस समय धनुषसे छूटे हुए सौ-सौ बाणोंद्वारा आच्छादित हुआ आकाश पतंगोंके समूहसे भरा हुआ-सा प्रतीत होता था ॥ २२ ॥

ते शरा हेमविकृताः सम्पतन्तो मुहुर्मुहुः।
श्रेणीकृता व्यकाशन्त क्रौञ्चाः श्रेणीकृता इव ॥ २३ ॥

बारंबार गिरते हुए वे सुवर्णभूषित बाण श्रेणिबद्ध होकर ऐसी शोभा पा रहे थे, मानो बहुत-से क्रौञ्चपक्षी एक पंक्तिमें होकर उड़ रहे हों ॥ २३ ॥

बाणजालावृते व्योम्नि च्छादिते च दिवाकरे।
न स्म सम्पतते भूम्यां किंचिदप्यन्तरिक्षगम् ॥ २४ ॥

बाणोंके जालसे आकाश और सूर्यके ढक जानेपर अन्तरिक्षकी कोई भी वस्तु उस समय पृथ्वीपर नहीं गिरती थी ॥ २४ ॥

निरुद्धे तत्र मार्गे च शरसंघैः समन्ततः।
व्यरोचेतां महात्मानौ कालसूर्याविवोदितौ ॥ २५ ॥

बाणोंके समूहसे वहाँ सब ओरका मार्ग अवरुद्ध हो जानेपर वे दोनों महामनस्वी वीर नकुल और कर्ण प्रलयकालमें उदित हुए दो सूर्योंके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ २५ ॥

कर्णचापच्युतैर्बाणैर्वध्यमानास्तु सोमकाः।
अवालीयन्त राजेन्द्र वेदनार्ता भृशार्दिताः ॥ २६ ॥

राजेन्द्र ! कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंकी मार खाकर सोमक-योद्धा वेदनासे कराह उठे और अत्यन्त पीड़ित हो इधर-उधर छिपने लगे ॥ २६ ॥

नकुलस्य तथा बाणैर्हन्यमाना चमूस्तव।
व्यशीर्यत दिशो राजन् वातनुन्ना इवाम्बुदाः ॥ २७ ॥

राजन् ! नकुलके बाणोंसे मारी जाती हुई आपकी सेना भी हवासे उड़ाये गये बादलोंके समान सम्पूर्ण दिशाओंमें बिखर गयी ॥ २७ ॥

ते सेने हन्यमाने तु ताभ्यां दिव्यैर्महाशरैः।
शरपातमपाक्रम्य तस्थतुः प्रेक्षिके तदा ॥ २८ ॥

उन दोनोंके दिव्य महाबाणोंद्वारा आहत होती हुई दोनों सेनाएँ उस समय उनके बाणोंके गिरनेके स्थानसे दूर हटकर खड़ी हो गयीं और दर्शक बनकर तमाशा देखने लगीं ॥२८॥

प्रोत्सारितजने तस्मिन् कर्णपाण्डवयोः शरैः।
अविध्येतां महात्मानावन्योन्यं शरवृष्टिभिः ॥ २९ ॥

कर्ण और नकुलके बाणोंद्वारा जब सब लोग वहाँसे दूर हटा दिये गये, तब वे दोनों महामनस्वी वीर अपने बाणोंकी वर्षासे एक दूसरेको चोट पहुँचाने लगे ॥ २९ ॥

विदर्शयन्तौ दिव्यानि शस्त्राणि रणमूर्धनि।
छादयन्तौ च सहसा परस्परवधैषिणौ ॥ ३० ॥

युद्धके मुहानेपर वे दोनों दिव्य अस्त्र-शस्त्रोंका प्रदर्शन करते हुए एक दूसरेको मार डालनेकी इच्छासे सहसा बाणोंद्वारा आच्छादित करने लगे ॥ ३० ॥

नकुलेन शरा मुक्ताः कङ्कबर्हिणवाससः।
सूतपुत्रमवच्छाद्य व्यतिष्ठन्त यथाम्बरे ॥ ३१ ॥
तथैव सूतपुत्रेण प्रेषिताः परमाहवे।
पाण्डुपुत्रमवच्छाद्य व्यतिष्ठन्ताम्बरे शराः ॥ ३२ ॥

नकुलके बाणोंमें कङ्क और मयूरके पंख लगे हुए थे। वे उनके धनुषसे छूटकर सूतपुत्रको आच्छादित करके जिस प्रकार आकाशमें स्थित होते थे, उसी प्रकार उस महासमरमें सूतपुत्रके चलाये हुए बाण पाण्डुकुमार नकुलको आच्छादित करके आकाशमें छा जाते थे ॥ ३१-३२ ॥

शरवेश्मप्रविष्टौ तौ ददृशाते न कैश्चन।
सूर्याचन्द्रमसौ राजञ्छाद्यमानौ घनैरिव ॥ ३३ ॥

राजन् ! जैसे मेघोंद्वारा ढक जानेपर सूर्य और चन्द्रमा दिखायी नहीं देते, उसी प्रकार बाणनिर्मित भवनमें प्रविष्ट हुए उन दोनों वीरोंपर किसीकी दृष्टि नहीं पड़ती थी ॥ ३३॥

ततः क्रुद्धो रणे कर्णः कृत्वा घोरतरं वपुः।
पाण्डवं छादयामास समन्ताच्छरवृष्टिभिः ॥ ३४ ॥

तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए कर्णने रणभूमिमें अत्यन्त भयंकर स्वरूप प्रकट करके चारों ओरसे बाणोंकी वर्षाद्वारा पाण्डुपुत्र नकुलको ढक दिया ॥ ३४ ॥

सोऽतिच्छन्नो महाराज सूतपुत्रेण पाण्डवः।
न चकार व्यथां राजन् भास्करो जलदैर्यथा ॥ ३५ ॥

महाराज ! सूतपुत्रके द्वारा अत्यन्त आच्छन्न कर दिये जानेपर भी बादलोंसे ढके हुए सूर्यके समान नकुलने अपने मनमें तनिक भी व्यथाका अनुभव नहीं किया ॥ ३५ ॥

ततः प्रहस्याधिरथिः शरजालानि मारिष।
प्रेषयामास समरे शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३६ ॥

मान्यवर ! तत्पश्चात् सूतपुत्रने बड़े जोरसे हँसकर पुनः समराङ्गणमें बाणोंके जाल बिछा दिये। उसने सैकड़ों और हजारों बाण चलाये ॥ ३६ ॥

एकच्छायमभूत् सर्वं तस्य बाणैर्महात्मनः।
अभ्रच्छायेव संजज्ञे सम्पतद्भिः शरोत्तमैः ॥ ३७ ॥

उस महामनस्वी वीरके गिरते हुए उत्तम बाणोंसे घिर जानेके कारण वहाँ सब कुछ एकमात्र अन्धकारमें निमग्न हो गया। ठीक उसी तरह, जैसे बादलोंकी घोर घटा घिर आनेपर सब ओर अँधेरा छा जाता है ॥ ३७ ॥

ततः कर्णो महाराज धनुश्छित्त्वा महात्मनः।
सारथिं पातयामास रथनीडाद्धसन्निव ॥ ३८ ॥

महाराज ! तदनन्तर हँसते हुए-से कर्णने महामना नकुलका धनुष काटकर उनके सारथिको रथकी बैठकसे मार गिराया ॥ ३८ ॥

ततोऽश्वांश्चतुरश्चास्य चतुर्भिर्निशितैः शरैः।
यमस्य भवनं तूर्णं प्रेषयामास भारत ॥ ३९ ॥

भारत ! फिर चार तीखे बाणोंसे उनके चारों घोड़ोंको भी तुरंत ही यमराजके घर भेज दिया ॥ ३९ ॥

अथास्य तं रथं दिव्यं तिलशो व्यधमच्छरैः।
पताकां चक्ररक्षांश्च गदां खड्गं च मारिष ॥ ४० ॥
शतचन्द्रं च तच्चर्म सर्वोपकरणानि च।

मान्यवर ! इसके बाद उसने अपने बाणोंद्वारा नकुलके उस दिव्य रथको तिल-तिल करके काट दिया और पताका, चक्ररक्षकों, गदा एवं खड्गको भी छिन्न-भिन्न कर दिया। साथ ही सौ चन्द्राकार चिह्नोंसे सुशोभित उनकी ढाल तथा अन्य सब उपकरणोंको भी उसने नष्ट कर दिया ॥ ४०½ ॥

हताश्वो विरथश्चैव विवर्मा च विशाम्पते ॥ ४१ ॥
अवतीर्य रथात्तूर्णं परिघं गृह्य धिष्ठितः।

प्रजापालक नरेश ! घोड़े, रथ और कवचके नष्ट हो जानेपर नकुल तुरंत उस रथसे उतरकर हाथमें परिघ लिये खड़े हो गये ॥ ४१½ ॥

तमुद्यतं महाघोरं परिघं तस्य सूतजः ॥ ४२ ॥
व्यहनत् सायकै राजन् सुतीक्ष्णैर्भारसाधनैः।

राजन् ! उनके उठे हुए उस महाभयंकर परिघको सूतपुत्रने अत्यन्त तीखे तथा दुष्कर कार्यको सिद्ध करनेवाले बाणोंद्वारा काट डाला ॥ ४२½ ॥

व्यायुधं चैनमालक्ष्य शरैः संनतपर्वभिः ॥ ४३ ॥
आर्पयद् बहुभिः कर्णो न चैनं समपीडयत्।

उन्हें अस्त्र-शस्त्रोंसे हीन देखकर कर्णने झुकी हुई गाँठवाले बहुसंख्यक बाणोंद्वारा और भी घायल कर दिया; परंतु उन्हें घातक पीड़ा नहीं दी ॥ ४३½ ॥

स हन्यमानः समरे कृतास्त्रेण बलीयसा ॥ ४४ ॥
प्राद्रवत् सहसा राजन् नकुलो व्याकुलेन्द्रियः।

अत्यन्त बलवान् तथा अस्त्रविद्याके विद्वान् कर्णके द्वारा समराङ्गणमें आहत हो सहसा नकुल भाग चले। उस समय उनकी सारी इन्द्रियाँ व्याकुल हो रही थीं ॥ ४४½ ॥

तमभिद्रुत्य राधेयः प्रहसन् वै पुनः पुनः ॥ ४५ ॥
सज्यमस्य धनुः कण्ठे व्यवासृजत भारत।

भारत ! राधापुत्र कर्णने बारंबार हँसते हुए उनका पीछा करके उनके गलेमें प्रत्यञ्चासहित अपना धनुष डाल दिया ॥ ४५½ ॥

ततः स शुशुभे राजन् कण्ठासक्तमहाधनुः ॥ ४६ ॥
परिवेषमनुप्राप्तो यथा स्याद् व्योम्नि चन्द्रमाः।
यथैव चासितो मेघः शक्रचापेन शोभितः ॥ ४७ ॥

राजन् ! कण्ठमें पड़े हुए उस महाधनुषसे युक्त नकुल ऐसी शोभा पाने लगे, मानो आकाशमें चन्द्रमापर घेरा पड़ गया हो अथवा कोई श्याम मेघ इन्द्रधनुषसे सुशोभित हो रहा हो ॥ ४६–४७ ॥

तमब्रवीत्ततः कर्णो व्यर्थं व्याहृतवानसि।
वदेदानीं पुनर्हृष्टो वध्यमानः पुनः पुनः ॥ ४८ ॥
मा योत्सीः कुरुभिः सार्धं बलवद्भिश्च पाण्डव।
सदृशैस्तात युध्यस्व व्रीडां मा कुरु पाण्डव ॥ ४९ ॥
गृहं वा गच्छ माद्रेय यत्र वा कृष्णफाल्गुनौ।
एवमुक्त्वा महाराज व्यसर्जयत तं तदा ॥ ५० ॥

उस समय कर्णने नकुलसे कहा—'पाण्डुकुमार ! तुमने व्यर्थ ही बढ़-चढ़कर बातें बनायी थीं। अब इस समय बारंबार मेरे बाणोंकी मार खाकर पुनः उसी हर्षके साथ तुम वैसी ही बातें करो तो सही। बलवान् कौरव-योद्धाओंके साथ आजसे युद्ध न करना। तात ! जो तुम्हारे समान हों, उन्हीं

के साथ युद्ध किया करो। माद्रीकुमार ! लज्जित न होओ। इच्छा हो तो घर चले जाओ अथवा जहाँ श्रीकृष्ण और अर्जुन हों, वहीं भाग जाओ।' महाराज ! ऐसा कहकर उस समय कर्णने नकुलको छोड़ दिया ॥ ४८–५० ॥

वधप्राप्तं तु तं शूरो नाहनद् धर्मवित्तदा।
स्मृत्वा कुन्त्या वचो राजंस्तत एनं व्यसर्जयत्॥ ५१ ॥

राजन् ! यद्यपि नकुल वधके योग्य अवस्थामें आ पहुँचे थे, तो भी कुन्तीको दिये हुए वचनको याद करके धर्मज्ञ वीर कर्णने उस समय उन्हें मारा नहीं, जीवित छोड़ दिया ॥ ५१ ॥

विसृष्टः पाण्डवो राजन् सूतपुत्रेण धन्विना।
व्रीडन्निव जगामाथ युधिष्ठिररथं प्रति ॥ ५२ ॥

नरेश्वर ! धनुर्धर सूतपुत्रके छोड़ देनेपर पाण्डुकुमार नकुल लजाते हुए-से वहाँसे युधिष्ठिरके रथके पास चले गये॥

आरुरोह रथं चापि सूतपुत्रप्रतापितः।
निःश्वसन् दुःखसंतप्तः कुम्भस्थ इव पन्नगः ॥ ५३ ॥

सूतपुत्रके द्वारा सताये हुए नकुल दुःखसे संतप्त हो घड़ेमें बंद किये हुए सर्पके समान दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए युधिष्ठिरके रथपर चढ़ गये ॥ ५३ ॥

तं विजित्याथ कर्णोऽपि पञ्चालांस्त्वरितो ययौ।
रथेनातिपताकेन चन्द्रवर्णहयेन च ॥ ५४ ॥

इस प्रकार नकुलको पराजित करके कर्ण भी चन्द्रमाके समान श्वेत रंगवाले घोड़ों और ऊँची पताकाओंसे युक्त रथके द्वारा तुरंत ही पाञ्चालोंकी ओर चला गया ॥ ५४ ॥

तत्राक्रन्दो महानासीत् पाण्डवानां विशाम्पते।
दृष्ट्वा सेनापतिं यान्तं पञ्चालानां रथव्रजान् ॥ ५५ ॥

प्रजानाथ ! कौरव-सेनापति कर्णको पाञ्चाल रथियोंकी ओर जाते देख पाण्डव-सैनिकोंमें महान् कोलाहल मच गया ॥ ५५ ॥

तत्राकरोन्महाराज कदनं सूतनन्दनः।
मध्यं प्राप्ते दिनकरे चक्रवद् विचरन् प्रभुः॥ ५६ ॥

महाराज ! दोपहर होते-होते शक्तिशाली सूतनन्दन कर्णने चक्रके समान चारों ओर विचरण करते हुए वहाँ पाण्डव-सैनिकोंका महान् संहार मचा दिया ॥ ५६ ॥

भग्नचक्रै रथैः कांश्चिच्छिन्नध्वजपताकिभिः।
हताश्वैर्हतसूतैश्च भग्नाक्षैश्चैव मारिष ॥ ५७ ॥
ह्रियमाणानपश्याम पञ्चालानां रथव्रजान्।

माननीय नरेश ! उस समय हमलोगोंने कितने ही रथियोंको ऐसी अवस्थामें देखा कि उनके रथके पहिये टूट गये हैं, ध्वजा, पताकाएँ छिन्न-भिन्न हो गयी हैं, घोड़े और सारथि मारे गये हैं और उन रथोंके धुरे भी खण्डित हो गये हैं। उस अवस्थामें समूह-के-समूह पाञ्चाल महारथी हमें भागते दिखायी दिये ॥ ५७½ ॥

तत्र तत्र च सम्भ्रान्ता विचेरुर्मत्तकुञ्जराः ॥ ५८ ॥
दावाग्निपरिदग्धाङ्गा यथैव स्युर्महावने।

बहुत-से मतवाले हाथी वहाँ बड़ी घबराहटमें पड़कर इधर-उधर चक्कर काट रहे थे, मानो किसी बड़े भारी जंगलमें दावानलसे उनके सारे अङ्ग झुलस गये हों ॥ ५८½ ॥

भिन्नकुम्भार्द्ररुधिराश्छिन्नहस्ताश्च वारणाः ॥ ५९ ॥
छिन्नगात्रावराश्चैव च्छिन्नवालधयोऽपरे।
छिन्नाभ्राणीव सम्पेतुर्हन्यमाना महात्मना ॥ ६० ॥

कितने ही हाथियोंके कुम्भस्थल फट गये थे और वे खूनसे भीग गये थे। कितनोंकी सूँड़ें कट गयी थीं, कितनोंके कवच छिन्न-भिन्न हो गये थे, बहुतोंकी पूँछें कट गयी थीं और कितने ही हाथी महामना कर्णकी मार खाकर खण्डित हुए मेघोंके समान पृथ्वीपर गिर गये थे ॥ ५९-६० ॥

अपरे त्रासिता नागा नाराचशरतोमरैः।
तमेवाभिमुखं जग्मुः शलभा इव पावकम् ॥ ६१ ॥

दूसरे बहुत-से गजराज कर्णके नाराचों, शरों और तोमरोंसे संत्रस्त हो जैसे पतंग आगमें कूद पड़ते हैं, उसी प्रकार कर्णके सम्मुख चले जाते थे ॥

अपरे निष्टनन्तश्च व्यदृश्यन्त महाद्विपाः।
क्षरन्तः शोणितं गात्रैर्नगा इव जलस्रवाः ॥ ६२ ॥

अन्य बहुत-से बड़े-बड़े हाथी झरने बहानेवाले पर्वतोंके समान अपने अङ्गोंसे रक्तकी धारा बहाते और आर्तनाद करते दिखायी देते थे ॥ ६२ ॥

उरश्छदैर्वियुक्तांश्च वालबन्धैश्च वाजिनः।
राजतैश्च तथा कांस्यैः सौवर्णैश्चैव भूषणैः ॥ ६३ ॥
हीनांश्चाभरणैश्चैव खलीनैश्च विवर्जितान्।
चामरैश्च कुथाभिश्च तूणीरैः पतितैरपि ॥ ६४ ॥
निहतैः सादिभिश्चैव शूरैराहवशोभितैः।
अपश्याम रणे तत्र भ्राम्यमाणान् हयोत्तमान् ॥ ६५ ॥

कितने ही घोड़ोंके उनकी छातीको छिपानेवाले कवच कटकर गिर गये थे, बालबन्ध छिन्न-भिन्न हो गये थे, सोने, चाँदी और कांस्यके आभूषण नष्ट हो गये थे, दूसरे साज-बाज भी चौपट हो गये थे, उनके मुखोंसे लगाम भी निकल गये थे, चँवर, झूल और तरकस धराशायी हो गये थे तथा संग्रामभूमिमें शोभा पानेवाले उनके शूरवीर सवार भी मारे जा चुके थे। ऐसी दशामें रण-भूमिमें भ्रान्त होकर भटकते हुए बहुत-से उत्तम घोड़ोंको हमने देखा था ॥ ६३–६५ ॥

प्रासैः खड्गैश्च रहितानृष्टिभिश्चापि भारत।
हयसादीनपश्याम कञ्चुकोष्णीषधारिणः ॥ ६६ ॥

निहतान् वध्यमानांश्च वेपमानांश्च भारत ।
नानाङ्गावयवैर्हीनांस्तत्र तत्रैव भारत ॥ ६७ ॥

भारत ! कवच और पगड़ी धारण करनेवाले कितने ही घुड़सवारोंको हमने प्रास, खड्ग और ऋष्टि आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे रहित होकर मारा गया देखा । कितने ही कर्णके बाणोंकी मार खाते हुए थरथर काँप रहे थे और बहुत-से अपने शरीरके विभिन्न अवयवोंसे रहित हो यत्र-तत्र मरे पड़े थे ॥ ६६-६७ ॥

रथान् हेमपरिष्कारान् संयुक्ताञ्जवनैर्हयैः ।
भ्राम्यमाणानपश्याम हतेषु रथिषु द्रुतम् ॥ ६८ ॥

वेगशाली घोड़ोंसे जुते हुए कितने ही सुवर्णभूषित रथ सारथि और रथियोंके मारे जानेसे वेगपूर्वक दौड़ते दिखायी देते थे ॥ ६८ ॥

भग्नाक्षकूबरान् कांश्चिद् भग्नचक्रांश्च भारत ।
विपताकध्वजांश्चान्यांश्छिन्नेषादण्डबन्धुरान् ॥ ६९ ॥

भरतनन्दन ! कितने ही रथोंके धुरे और कूबर टूट गये थे, पहिये टूक-टूक हो गये थे, पताका और ध्वज खण्डित हो गये थे तथा ईषादण्ड और बन्धुरोंके टुकड़े-टुकड़े हो गये थे ॥ ६९ ॥

विहतान् रथिनस्तत्र धावमानांस्ततस्ततः ।
सूतपुत्रशरैस्तीक्ष्णैर्हन्यमानान् विशाम्पते ॥ ७० ॥
विशस्त्रांश्च तथैवान्यान् सशस्त्रांश्च हतान् बहून् ।

प्रजानाथ ! सूतपुत्रके तीखे बाणोंसे हताहत होकर बहुतेरे रथी वहाँ इधर-उधर भागते देखे गये । कितने ही रथी शस्त्रहीन होकर तथा दूसरे बहुत-से सशस्त्र रहकर ही मारे गये थे ॥ ७०½ ॥

तारकाजालसंछन्नान् वरघण्टाविशोभितान् ॥ ७१ ॥
नानावर्णविचित्राभिः पताकाभिरलंकृतान् ।
वारणाननुपश्याम धावमानान् समन्ततः ॥ ७२ ॥

नक्षत्रसमूहोंके चिह्नवाले कवचोंसे आच्छादित, उत्तम घंटोंसे सुशोभित तथा अनेक रंगकी विचित्र ध्वजा-पताकाओंसे अलंकृत हाथियोंको हमने चारों ओर भागते देखा था ॥

शिरांसि बाहूनूरूंश्च छिन्नानन्यांस्तथैव च ।
कर्णचापच्युतैर्बाणैरपश्याम समन्ततः ॥ ७३ ॥

हमने यह भी देखा कि कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा योद्धाओंके मस्तक, भुजाएँ और जाँघें कट-कटकर चारों ओर गिर रही हैं ॥ ७३ ॥

महान् व्यतिकरो रौद्रो योधानामन्वपद्यत ।
कर्णसायकनुन्नानां युध्यतां च शितैः शरैः ॥ ७४ ॥

कर्णके बाणोंसे आहत हो तीखे बाणोंसे युद्ध करते हुए योद्धाओंमें वहाँ अत्यन्त भयंकर और महान् संग्राम मच गया था ॥ ७४ ॥

ते वध्यमानाः समरे सूतपुत्रेण सृञ्जयाः ।
तमेवाभिमुखं यान्ति पतङ्गा इव पावकम् ॥ ७५ ॥

समराङ्गणमें सृंजयोंपर कर्णके बाणोंकी मार पड़ रही थी, तो भी पतंग जैसे अग्निपर टूट पड़ते हैं, उसी प्रकार वे कर्णके ही सम्मुख बढ़ते जा रहे थे ॥ ७५ ॥

तं दहन्तमनीकानि तत्र तत्र महारथम् ।
क्षत्रिया वर्जयामासुर्युगान्ताग्निमिवोल्बणम् ॥ ७६ ॥

महारथी कर्ण प्रलयकालके प्रचण्ड अग्निके समान जहाँ-तहाँ पाण्डव-सेनाओंको दग्ध कर रहा था । उस समय क्षत्रिय लोग उसे छोड़कर दूर हट जाते थे ॥ ७६ ॥

हतशेषास्तु ये वीराः पञ्चालानां महारथाः ।
तान् प्रभग्नान् द्रुतान् वीरः पृष्ठतो विकिरञ्छरैः ॥७७॥
अभ्यधावत तेजस्वी विशीर्णकवचध्वजान् ।
तापयामास तान् बाणैः सूतपुत्रो महाबलः ।
मध्यंदिनमनुप्राप्तो भूतानीव तमोनुदः ॥ ७८ ॥

पाञ्चालोंके जो वीर महारथी मरनेसे बच गये थे, उन्हें भागते देख तेजस्वी वीर कर्ण पीछेसे उनपर बाणोंकी वर्षा करता हुआ उनकी ओर दौड़ा । उन योद्धाओंके कवच और ध्वज छिन्न-भिन्न हो गये थे । जैसे मध्याह्नकालका सूर्य सम्पूर्ण प्राणियोंको अपनी किरणोंद्वारा तपाता है, उसी प्रकार महाबली सूतपुत्र अपने बाणोंसे उन शत्रु-सैनिकोंको संतप्त करने लगा ॥ ७७-७८ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णयुद्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्णका युद्धविषयक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

युयुत्सु और उलूकका युद्ध, युयुत्सुका पलायन, शतानीक और धृतराष्ट्रपुत्र श्रुतकर्माका तथा सुतसोम और शकुनिका घोर युद्ध एवं शकुनिद्वारा पाण्डवसेनाका विनाश

संजय उवाच

युयुत्सुं तव पुत्रस्य द्रावयन्तं बलं महत् ।
उलूको न्यपतत्तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! दूसरी ओर युयुत्सु आपके पुत्रकी विशाल सेनाको खदेड़ रहा था । यह देख उलूक तुरंत वहाँ आ धमका और युयुत्सुसे बोला—'अरे ! खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ १ ॥

युयुत्सुश्च ततो राजञ्शितधारेण पत्रिणा ।

उलूकं ताडयामास वज्रेणेन्द्र इवाचलम् ॥ २ ॥

राजन् ! तब युयुत्सुने तीखी धारवाले बाणसे महाबली उलूकको उसी प्रकार पीट दिया, जैसे इन्द्र पर्वत-पर वज्रका प्रहार करते हैं ॥ २ ॥

उलूकस्तु ततः क्रुद्धस्तव पुत्रस्य संयुगे।
क्षुरप्रेण धनुश्छित्त्वा ताडयामास कर्णिना ॥ ३ ॥

इससे उलूकको बड़ा क्रोध हुआ। उसने युद्धस्थलमें एक क्षुरप्रके द्वारा आपके पुत्रका धनुष काटकर उसपर कर्णीनामक बाणका प्रहार किया ॥ ३ ॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं युयुत्सुर्वेगवत्तरम्।
अन्यदादत्त सुमहच्चापं संरक्तलोचनः ॥ ४ ॥

युयुत्सुने उस कटे हुए धनुषको फेंककर क्रोधसे आँखें लाल करके दूसरा अत्यन्त वेगशाली एवं विशाल धनुष हाथमें लिया ॥

शाकुनिं तु ततः षष्ट्या विव्याध भरतर्षभ।
सारथिं त्रिभिरानर्च्छत्तं च भूयो व्यविध्यत ॥ ५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उसने शकुनिपुत्र उलूकको साठ बाणोंसे बेध दिया और तीन बाणोंसे उसके सारथिको पीड़ित किया। तत्पश्चात् उसे और भी घायल कर दिया ॥ ५ ॥

उलूकस्तं तु विंशत्या विद्ध्वा स्वर्णविभूषितैः।
अथास्य समरे क्रुद्धो ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम् ॥ ६ ॥

तब उलूकने संग्रामभूमिमें कुपित हो स्वर्णभूषित बीस बाणोंसे युयुत्सुको घायल करके उनके सुवर्णमय ध्वजको भी काट डाला ॥ ६ ॥

सच्छिन्नयष्टिः सुमहाञ्शीर्यमाणो महाध्वजः।
पपात प्रमुखे राजन् युयुत्सोः काञ्चनध्वजः ॥ ७ ॥

राजन् ! ध्वजका दण्ड कट जानेपर युयुत्सुका वह विशाल काञ्चनध्वज छिन्न-भिन्न हो उसके सामने ही गिर पड़ा ॥ ७ ॥

ध्वजमुन्मथितं दृष्ट्वा युयुत्सुः क्रोधमूर्च्छितः।
उलूकं पञ्चभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ॥ ८ ॥

अपने ध्वजका यह विध्वंस देखकर युयुत्सु क्रोधसे मूर्छित-सा हो गया और उसने पाँच बाणोंसे उलूककी छाती छेद डाली ॥ ८ ॥

उलूकस्तस्य समरे तैलधौतेन मारिष।
शिरश्चिच्छेद भल्लेन यन्तुर्भरतसत्तम ॥ ९ ॥

माननीय भरतभूषण ! उलूकने तेलसे साफ किये हुए भल्लके द्वारा युयुत्सुके सारथिका मस्तक काट डाला ॥

तच्छिन्नमपतद् भूमौ युयुत्सोः सारथेस्तदा।
तारारूपं यथा चित्रं निपपात महीतले ॥ १० ॥

उस समय युयुत्सुके सारथिका वह कटा हुआ मस्तक पृथ्वीपर उसी भाँति गिरा, मानो आकाशसे भूतलपर कोई विचित्र तारा टूट पड़ा हो ॥ १० ॥

जघान चतुरोऽश्वांश्च तं च विव्याध पञ्चभिः।
सोऽतिविद्धो बलवता प्रत्यपायाद् रथान्तरम् ॥ ११ ॥

तत्पश्चात् उलूकने युयुत्सुके चारों घोड़ोंको भी मार डाला और पाँच बाणोंसे उसे भी घायल कर दिया। उस बलवान् वीरके द्वारा अत्यन्त घायल हो युयुत्सु दूसरे रथपर आरूढ़ हो वहाँसे भाग गया ॥ ११ ॥

तं निर्जित्य रणे राजन्नुलूकस्त्वरितो ययौ।
पञ्चालान् सृञ्जयांश्चैव विनिघ्नन् निशितैः शरैः ॥ १२ ॥

राजन् ! रणभूमिमें युयुत्सुको पराजित करके उलूक तुरंत ही पाञ्चालों और सृंजयोंकी ओर चला गया और उन्हें तीखे बाणोंसे मारने लगा ॥ १२ ॥

शतानीकं महाराज श्रुतकर्मा सुतस्तव।
व्यश्वसूतरथं चक्रे निमेषार्धादसम्भ्रमः ॥ १३ ॥

महाराज ! दूसरी ओर आपके पुत्र श्रुतकर्माने बिना किसी घबराहटके आधे निमेषमें ही शतानीकके रथको घोड़ों और सारथिसे शून्य कर दिया ॥ १३ ॥

हताश्वे तु रथे तिष्ठञ्शतानीको महारथः।
गदां चिक्षेप संक्रुद्धस्तव पुत्रस्य मारिष ॥ १४ ॥

मान्यवर ! महारथी शतानीकने कुपित होकर अपने अश्वहीन रथपर खड़े रहकर ही आपके पुत्रके ऊपर गदाका प्रहार किया ॥ १४ ॥

सा कृत्वा स्यन्दनं भस्म हयांश्चैव ससारथीन्।
पपात धरणीं तूर्णं दारयन्तीव भारत ॥ १५ ॥

भारत ! वह गदा तुरंत ही श्रुतकर्माके रथ, घोड़ों और सारथिको भस्म करके पृथ्वीको विदीर्ण करती हुई-सी गिर पड़ी ॥ १५ ॥

तावुभौ विरथौ वीरौ कुरूणां कीर्तिवर्धनौ।
व्यपाक्रमेतां युद्धात्तु प्रेक्षमाणौ परस्परम् ॥ १६ ॥

कुरुकुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले वे दोनों वीर रथहीन हो एक दूसरेको देखते हुए युद्धस्थलसे हट गये ॥ १६ ॥

पुत्रस्तु तव सम्भ्रान्तो विवित्सो रथमारुहत्।
शतानीकोऽपि त्वरितः प्रतिविन्ध्यरथं गतः ॥ १७ ॥

आपका पुत्र श्रुतकर्मा घबरा गया था। वह विवित्सुके रथपर जा चढ़ा और शतानीक भी तुरंत ही प्रतिविन्ध्यके रथपर चला गया ॥ १७ ॥

सुतसोमं तु शकुनिर्विद्ध्वा तु निशितैः शरैः।
नाकम्पयत संक्रुद्धो वार्योघ इव पर्वतम् ॥ १८ ॥

दूसरी ओर शकुनि अत्यन्त कुपित हो अपने तीखे बाणोंसे सुतसोमको घायल करके भी उसे विचलित न कर सका। ठीक उसी तरह, जैसे जलका प्रवाह पर्वतको नहीं हिला सकता ॥ १८ ॥

सुतसोमस्तु तं दृष्ट्वा पितुरत्यन्तवैरिणम्।
शरैरनेकसाहस्रैश्छादयामास भारत ॥ १९ ॥

भरतनन्दन ! सुतसोमने अपने पिताके अत्यन्त वैरी शकुनिको सामने देखकर उसे कई हजार बाणोंसे आच्छादित कर दिया ॥ १९ ॥

ताञ्शराञ्शकुनिस्तूर्णं चिच्छेदान्यैः पतत्रिभिः ।
लघ्वस्त्रश्चित्रयोधी च जितकाशी च संयुगे ॥ २० ॥
निवार्य समरे चापि शरांस्तान् निशितैः शरैः ।
आजघान सुसंक्रुद्धः सुतसोमं त्रिभिः शरैः ॥ २१ ॥

परंतु शकुनिने तुरंत ही दूसरे बाणोंद्वारा सुतसोमके बाणोंको काट डाला। वह शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलानेवाला, विचित्र युद्धमें कुशल और युद्धस्थलमें विजयश्रीसे सुशोभित होनेवाला था । उसने समराङ्गणमें अपने तीखे बाणोंसे सुतसोमके बाणोंका निवारण करके अत्यन्त कुपित हो तीन बाणोंद्वारा सुतसोमको भी घायल कर दिया ॥ २०-२१ ॥

तस्याश्वान् केतनं सूतं तिलशो व्यधमच्छरैः ।
स्यालस्तव महाराज तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ २२ ॥

महाराज ! आपके सालेने सुतसोमके घोड़ोंको तथा ध्वज और सारथिको भी अपने बाणोंसे तिल-तिल करके काट डाला; इससे सब लोग हर्षसूचक कोलाहल करने लगे ॥

हताश्वो विरथश्चैव छिन्नकेतुश्च मारिष ।
धन्वी धनुर्वरं गृह्य रथाद् भूमावतिष्ठत ॥ २३ ॥

मान्यवर ! घोड़े, रथ और ध्वजके नष्ट हो जानेपर धनुर्धर सुतसोम अपने हाथमें श्रेष्ठ धनुष लिये रथसे उतरकर धरतीपर खड़ा हो गया ॥ २३ ॥

व्यसृजत् सायकांश्चैव स्वर्णपुङ्खाञ्शिलाशितान् ।
छादयामास समरे तव स्यालस्य तं रथम् ॥ २४ ॥

फिर उसने शिलापर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले बहुत-से बाण छोड़े। उन बाणोंद्वारा समरभूमिमें उसने आपके सालेके रथको ढक दिया ॥ २४ ॥

शलभानामिव व्राताञ्शरव्रातान् महारथः ।
रथोपगान् समीक्ष्यैवं विव्यथे नैव सौबलः ॥ २५ ॥
प्रममाथ शरांस्तस्य शरव्रातैर्महायशाः ।

उसके बाणसमूह टिड्डीदलोंके समान जान पड़ते थे। उन्हें अपने रथके समीप देखकर भी महारथी सुबलपुत्र शकुनिके मनमें तनिक भी व्यथा नहीं हुई। उस महायशस्वी वीरने अपने बाणसमूहोंद्वारा सुतसोमके सारे बाणोंको पूर्णतया मथ डाला ॥ २५½ ॥

तत्रातुष्यन्त योधाश्च सिद्धाश्चापि दिवि स्थिताः ॥ २६ ॥
सुतसोमस्य तत् कर्म दृष्ट्वा श्रद्धेयमद्भुतम् ।
रथस्थं शकुनिं यस्तु पदातिः समयोधयत् ॥ २७ ॥

सुतसोम जो वहाँ पैदल होकर भी रथपर बैठे हुए शकुनिके साथ युद्ध कर रहा था। उसके इस अविश्वसनीय और अद्भुत कर्मको देखकर वहाँ खड़े हुए समस्त योद्धा तथा आकाशमें स्थित हुए सिद्धगण भी बहुत संतुष्ट हुए ॥२६-२७॥

तस्य तीक्ष्णैर्महावेगैर्भल्लैः संनतपर्वभिः ।
व्यहनत् कार्मुकं राजंस्तूणीरांश्चैव सर्वशः ॥ २८ ॥

राजन् ! उस समय शकुनिने अत्यन्त वेगशाली और झुकी हुई गाँठवाले तीखे भल्लोंद्वारा सुतसोमके धनुष, तरकस तथा अन्य सब उपकरणोंको भी नष्ट कर दिया ॥ २८ ॥

स च्छिन्नधन्वा विरथः खड्गमुद्यम्य चानदत् ।
वैदूर्योत्पलवर्णाभं दन्तिदन्तमयत्सरुम् ॥ २९ ॥

रथ तो नष्ट हो ही चुका था, जब धनुष भी कट गया, तब सुतसोमने वैदूर्यमणि तथा नील कमलके समान श्याम रंगवाले, हाथीके दाँतकी बनी हुई मूठसे युक्त खड्गको ऊपर उठाकर बड़े जोरसे गर्जना की ॥ २९ ॥

भ्राम्यमाणं ततस्तं तु विमलाम्बरवर्चसम् ।
कालदण्डोपमं मेने सुतसोमस्य धीमतः ॥ ३० ॥

बुद्धिमान् सुतसोमके उस निर्मल आकाशके समान कान्तिवाले खड्गको घुमाया जाता देख शकुनिने उसे अपने लिये कालदण्डके समान माना ॥ ३० ॥

सोऽचरत् सहसा खड्गी मण्डलानि समन्ततः ।
चतुर्दश महाराज शिक्षाबलसमन्वितः ॥ ३१ ॥

महाराज ! सुतसोम शिक्षा और बल दोनोंसे सम्पन्न था, वह खड्ग लेकर सहसा उसके चौदह मण्डल (पैंतरे) दिखाता हुआ रणभूमिमें सब ओर विचरने लगा ॥ ३१ ॥

भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं विप्लुतं सृतम् ।
सम्पातसमुदीर्णे च दर्शयामास संयुगे ॥ ३२ ॥

उसने युद्धस्थलमें भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविद्ध, आप्लुत, प्लुत, सृत, सम्पात और समुदीर्ण आदि गतियोंको दिखाया ॥[1]

सौबलस्तु ततस्तस्य शरांश्चिक्षेप वीर्यवान् ।
तानापतत एवाशु चिच्छेद परमासिना ॥ ३३ ॥

तब पराक्रमी सुबलपुत्रने सुतसोमपर बहुत-से बाण चलाये; परंतु उसने अपने उत्तम खड्गसे निकट आते ही उन सब बाणोंको काट गिराया ॥ ३३ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज सौबलः परवीरहा ।
प्राहिणोत् सुतसोमाय शरानाशीविषोपमान् ॥ ३४ ॥

महाराज ! इससे शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले सुबलपुत्र शकुनिको बड़ा क्रोध हुआ। उसने सुतसोमपर विषधर सर्पोंके समान बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ३४ ॥

चिच्छेद तांस्तु खड्गेन शिक्षया च बलेन च ।
दर्शयँल्लाघवं युद्धे तार्क्ष्यतुल्यपराक्रमः ॥ ३५ ॥

---

१. भ्रान्त, उद्भ्रान्त आदि सात गतियोंको अनुलोम और बिलोम-क्रमसे दिखानेपर उनके चौदह भेद हो जाते हैं। भ्रान्त और उद्भ्रान्त आदिकी व्याख्या पहले पृष्ठ ३६९६में की जा चुकी है।

परंतु गरुड़के तुल्य पराक्रमी सुतसोमने अपनी शिक्षा और बलके अनुसार युद्धमें फुर्ती दिखाते हुए खड्गसे उन सब बाणोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ ३५ ॥

तस्य संचरतो राजन् मण्डलावर्तने तदा ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन खड्गं चिच्छेद सुप्रभम् ॥ ३६ ॥

राजन् ! सुतसोम जब अपनी चमकीली तलवारको मण्डलाकार घुमा रहा था, उसी समय शकुनिने तीखे क्षुरप्रसे उसके दो टुकड़े कर दिये ॥ ३६ ॥

स च्छिन्नः सहसा भूमौ निपपात महानसिः ।
अर्धमस्य स्थितं हस्ते सुत्सरोस्तत्र भारत ॥ ३७ ॥

वह महान् खड्ग कटकर सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ा । भारत ! सुन्दर मूठवाले उस खड्गका आधा भाग सुतसोमके हाथमें ही रह गया ॥ ३७ ॥

छिन्नमाज्ञाय निस्त्रिंशमवप्लुत्य पदानि षट् ।
प्राविध्यत ततः शेषं सुतसोमो महारथः ॥ ३८ ॥

अपने उस खड्गको कटा हुआ जान महारथी सुतसोमने छः पग ऊँचे उछलकर उसके शेष भागको ही शकुनिपर दे मारा ॥ ३८ ॥

तच्छित्त्वा सगुणं चापं रणे तस्य महात्मनः ।
पपात धरणीं तूर्णं स्वर्णवज्रविभूषितम् ॥ ३९ ॥

वह स्वर्ण और हीरेसे विभूषित कटा हुआ खड्ग रणभूमिमें महामना शकुनिके धनुषको प्रत्यञ्चासहित काटकर तुरंत ही पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३९ ॥

सुतसोमस्ततोऽगच्छच्छ्रुतकीर्तेर्महारथम् ।
सौबलोऽपि धनुर्गृह्य घोरमन्यत् सुदुर्जयम् ॥ ४० ॥
अभ्ययात् पाण्डवानीकं निघ्नञ्शत्रुगणान् बहून् ।

तत्पश्चात् सुतसोम श्रुतकीर्तिके विशाल रथपर चढ़ गया। उधर शकुनि भी दूसरा अत्यन्त दुर्जय एवं भयंकर धनुष लेकर बहुत-से शत्रुओंका संहार करता हुआ पाण्डव-सेनाकी ओर चल दिया ॥ ४०½ ॥

तत्र नादो महानासीत् पाण्डवानां विशाम्पते ॥ ४१ ॥
सौबलं समरे दृष्ट्वा विचरन्तमभीतवत् ।

प्रजानाथ ! सुबलपुत्र शकुनिको समरभूमिमें निर्भय-से विचरते देख पाण्डव-दलमें महान् सिंहनाद होने लगा ॥४१½॥

तान्यनीकानि दृप्तानि शस्त्रवन्ति महान्ति च ॥ ४२ ॥
द्राव्यमाणान्यदृश्यन्त सौबलेन महात्मना ।

महामना शकुनिने घमंडमें भरे हुए उन शस्त्रसम्पन्न महान् सैनिकोंको भगा दिया । यह सब हमने अपनी आँखों देखा ॥

यथा दैत्यचमूं राजन् देवराजो ममर्द ह ।
तथैव पाण्डवीं सेनां सौबलेयो व्यनाशयत् ॥ ४३ ॥

राजन् ! जिस प्रकार देवराज इन्द्रने दैत्योंकी सेनाको कुचल दिया था, उसी प्रकार सुबलपुत्र शकुनिने पाण्डव-सेनाका विनाश कर डाला ॥ ४३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि सुतसोमसौबलयुद्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें सुतसोम और शकुनिका युद्धविषयक पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः

कृपाचार्यसे धृष्टद्युम्नका भय तथा कृतवर्माके द्वारा शिखण्डीकी पराजय

संजय उवाच

धृष्टद्युम्नं कृपो राजन् वारयामास संयुगे ।
यथा दृष्ट्वा वने सिंहं शरभो वारयेद् युधि ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! कृपाचार्यने धृष्टद्युम्नको आक्रमण करते देख युद्धभूमिमें उसी प्रकार उन्हें आगे बढ़नेसे रोका, जैसे वनमें शरभ[१] सिंहको रोक देता है ॥ १ ॥

निरुद्धः पार्षतस्तेन गौतमेन बलीयसा ।
पदात् पदं विचलितुं नाशकत्तत्र भारत ॥ २ ॥

भारत ! अत्यन्त बलवान् गौतम-गोत्रीय कृपाचार्यसे अवरुद्ध होकर धृष्टद्युम्न एक पग भी चलनेमें समर्थ न हो सका॥

गौतमस्य रथं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नरथं प्रति ।
वित्रेसुः सर्वभूतानि क्षयं प्राप्तं च मेनिरे ॥ ३ ॥

कृपाचार्यके रथको धृष्टद्युम्नके रथकी ओर जाते देख समस्त प्राणी भयसे थर्रा उठे और धृष्टद्युम्नको नष्ट हुआ ही मानने लगे ॥ ३ ॥

तत्रावोचन् विमनसो रथिनः सादिनस्तथा ।
द्रोणस्य निधनान्नूनं संक्रुद्धो द्विपदां वरः ॥ ४ ॥
शारद्वतो महातेजा दिव्यास्त्रविदुदारधीः ।
अपि स्वस्ति भवेदद्य धृष्टद्युम्नस्य गौतमात् ॥ ५ ॥

वहाँ सभी रथी और घुड़सवार उदास होकर कहने लगे कि 'निश्चय ही द्रोणाचार्यके मारे जानेसे दिव्यास्त्रोंके ज्ञाता, उदारबुद्धि, महातेजस्वी, नरश्रेष्ठ, शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्य अत्यन्त कुपित हो उठे होंगे । क्या आज कृपाचार्यसे धृष्टद्युम्न कुशलपूर्वक सुरक्षित रह सकेंगे ? ॥ ४-५ ॥

अपीयं वाहिनी कृत्स्ना मुच्येत महतो भयात् ।
अप्ययं ब्राह्मणः सर्वान् न नो हन्यात् समागतान् ॥ ६॥

१. शरभ आठ पैरोंका एक जानवर है, जिसका आधा शरीर पशुका और आधा पक्षीका होता है । भगवान् नृसिंहकी भाँति उसका शरीर भी द्विविध आकृतियोंके सम्मिश्रणसे बना है । वह इतना प्रबल है कि सिंहको भी मार सकता है ।

'क्या यह सारी सेना महान् भयसे मुक्त हो सकती है ? कहीं ऐसा न हो कि ये ब्राह्मण देवता यहाँ आये हुए हम सब लोगोंका वध कर डालें ?॥ ६ ॥

यादृशं दृश्यते रूपमन्तकप्रतिमं भृशम्।
गमिष्यत्यद्य पदवीं भारद्वाजस्य गौतमः ॥ ७ ॥

'इनका यमराजके समान जैसा अत्यन्त भयंकर रूप दिखायी देता है, उससे जान पड़ता है, आज कृपाचार्य भी द्रोणाचार्यके पथपर ही चलेंगे ॥ ७ ॥

आचार्यः क्षिप्रहस्तश्च विजयी च सदा युधि।
अस्त्रवान् वीर्यसम्पन्नः क्रोधेन च समन्वितः ॥ ८ ॥

'कृपाचार्य शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले तथा युद्धमें सर्वथा विजय प्राप्त करनेवाले हैं। वे अस्त्रवेत्ता, पराक्रमी और क्रोधसे युक्त हैं ॥ ८ ॥

पार्षतश्च महायुद्धे विमुखोऽद्याभिलक्ष्यते।
इत्येवं विविधा वाचस्तावकानां परैः सह ॥ ९ ॥
व्यश्रूयन्त महाराज तयोस्तत्र समागमे।

'आज इस महायुद्धमें धृष्टद्युम्न विमुख होता दिखायी देता है।' महाराज ! इस प्रकार वहाँ धृष्टद्युम्न और कृपाचार्यका समागम होनेपर आपके सैनिकोंकी शत्रुओंके साथ होनेवाली नाना प्रकारकी बातें सुनायी देने लगीं ॥ ९½ ॥

विनिःश्वस्य ततः क्रोधात् कृपः शारद्वतो नृप ॥ १० ॥
पार्षतं चार्दयामास निश्चेष्टं सर्वमर्मसु।

नरेश्वर ! तदनन्तर शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्यने क्रोधसे लंबी साँस खींचकर निश्चेष्ट खड़े हुए धृष्टद्युम्नके सम्पूर्ण मर्मस्थानोंमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ १०½ ॥

स हन्यमानः समरे गौतमेन महात्मना ॥ ११ ॥
कर्तव्यं न स्म जानाति मोहेन महताऽऽवृतः।

समराङ्गणमें महामना कृपाचार्यके द्वारा आहत होनेपर भी धृष्टद्युम्नको कोई कर्तव्य नहीं सूझता था। वे महान् मोहसे आच्छन्न हो गये थे ॥ ११½ ॥

तमब्रवीत्ततो यन्ता कच्चित् क्षेमं तु पार्षत ॥ १२ ॥
ईदृशं व्यसनं युद्धे न ते दृष्टं मया क्वचित्।

तब उनके सारथिने उनसे कहा—'द्रुपदनन्दन ! कुशल तो है न ? युद्धमें आपपर कभी ऐसा संकट आया हो, यह मैंने नहीं देखा है ॥ १२½ ॥

दैवयोगात्तु ते बाणा नापतन् मर्मभेदिनः ॥ १३ ॥
प्रेषिता द्विजमुख्येन मर्माण्युद्दिश्य सर्वतः।

'द्विजश्रेष्ठ कृपाचार्यने सब ओरसे आपके मर्मस्थानोंको लक्ष्य करके बाण चलाये थे; परंतु दैवयोगसे ही वे मर्मभेदी बाण आपके मर्मस्थानोंपर नहीं पड़े हैं ॥ १३½ ॥

व्यावर्तये रथं तूर्णं नदीवेगमिवार्णवात् ॥ १४ ॥
अवध्यं ब्राह्मणं मन्ये येन ते विक्रमो हतः।

'जैसे कोई शक्तिशाली पुरुष समुद्रसे नदीके वेगको पीछे लौटा दे, उसी प्रकार मैं आपके इस रथको तुरंत लौटा ले चलूँगा। मेरी समझमें ये ब्राह्मण देवता अवध्य हैं, जिनसे आज आपका पराक्रम प्रतिहत हो गया' ॥ १४½ ॥

धृष्टद्युम्नस्ततो राजञ्शनकैरब्रवीद् वचः ॥ १५ ॥
मुह्यते मे मनस्तात गात्रस्वेदश्च जायते।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च सारथे ॥ १६ ॥

राजन् ! यह सुनकर धृष्टद्युम्नने धीरेसे कहा—'सारथे ! मेरे मनपर मोह छा रहा है और शरीरसे पसीना छूटने लगा है। मेरे सारे अङ्ग काँप रहे हैं और रोमाञ्च हो आया है ॥

वर्जयन् ब्राह्मणं युद्धे शनैर्याहि यतोऽर्जुनः।
अर्जुनं भीमसेनं वा समरे प्राप्य सारथे ॥ १७ ॥
क्षेममद्य भवेदेवमेषा मे नैष्ठिकी मतिः।

'तुम युद्धस्थलमें ब्राह्मण कृपाचार्यको छोड़ते हुए धीरे-धीरे जहाँ अर्जुन हैं, उसी ओर चल दो। समराङ्गणमें अर्जुन अथवा भीमसेनके पास पहुँचकर ही आज मैं सकुशल रह सकता हूँ, ऐसा मेरा दृढ़ विचार है' ॥ १७½ ॥

ततः प्रायान्महाराज सारथिस्त्वरयन् हयान् ॥ १८ ॥
यतो भीमो महेष्वासो युयुधे तव सैनिकैः।

महाराज ! तब सारथि घोड़ोंको तेजीसे हाँकता हुआ उसी ओर चल दिया जहाँ महाधनुर्धर भीमसेन आपके सैनिकोंके साथ युद्ध कर रहे थे ॥ १८½ ॥

प्रद्रुतं च रथं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नस्य मारिष ॥ १९ ॥
किरञ्शतशतान्येव गौतमोऽनुययौ तदा।

मान्यवर नरेश ! धृष्टद्युम्नके रथको वहाँसे भागते देख कृपाचार्यने सैकड़ों बाणोंकी वर्षा करते हुए उनका पीछा किया॥

शङ्खं च पूरयामास मुहुर्मुहुररिंदमः ॥ २० ॥
पार्षतं त्रासयामास महेन्द्रो नमुचिं यथा।

शत्रुओंका दमन करनेवाले कृपाचार्यने बारंबार शङ्खध्वनि की और जैसे इन्द्रने नमुचिको डराया था, उसी प्रकार उन्होंने धृष्टद्युम्नको भयभीत कर दिया ॥ २०½ ॥

शिखण्डिनं तु समरे भीष्ममृत्युं दुरासदम् ॥ २१ ॥
हार्दिक्यो वारयामास स्मयन्निव मुहुर्मुहुः।

दूसरी ओर समराङ्गणमें दुर्जय वीर शिखण्डीको, जो भीष्मके लिये मृत्युस्वरूप था, कृतवर्माने बारंबार मुस्कराते हुए-से रोका ॥ २१½ ॥

शिखण्डी तु समासाद्य हृदिकानां महारथम् ॥ २२ ॥
पञ्चभिर्निशितैर्भल्लैर्जत्रुदेशे समाहनत्।

हृदिकवंशी यादवोंके महारथी वीर कृतवर्माको सामने पाकर शिखण्डीने उसके गलेकी हँसलीपर पाँच तीखे भल्लोंद्वारा प्रहार किया ॥ २२½ ॥

कृतवर्मा तु संक्रुद्धो भित्त्वा षष्ट्या पतत्रिभिः ॥ २३ ॥

धनुरेकेन चिच्छेद हसन् राजन् महारथः ।

राजन् ! तब महारथी कृतवर्माने अत्यन्त कुपित हो साठ बाणोंसे शिखण्डीको घायल करके एकसे हँसते-हँसते उसका धनुष काट डाला ॥ २३½ ॥

अथान्यद् धनुरादाय द्रुपदस्यात्मजो बली ॥ २४ ॥
तिष्ठ तिष्ठेति संक्रुद्धो हार्दिक्यं प्रत्यभाषत ।

तत्पश्चात् द्रुपदके बलवान् पुत्रने दूसरा धनुष हाथमें लेकर कृतवर्मासे क्रोधपूर्वक कहा—'अरे ! खड़ा रह, खड़ा रह'॥

ततोऽस्य नवतिं बाणान् रुक्मपुङ्खान् सुतेजनान् ॥ २५ ॥
प्रेषयामास राजेन्द्र तेऽस्याभ्रश्यन्त वर्मणः ।

राजेन्द्र ! फिर सोनेकी पाँखवाले नब्बे पैने बाण उसने चलाये, परंतु वे कृतवर्माके कवचसे फिसलकर गिर गये ॥

वितथांस्तान् समालक्ष्य पतितांश्च महीतले ॥ २६ ॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन कार्मुकं चिच्छिदे भृशम् ।

उन्हें व्यर्थ होकर पृथ्वीपर गिरा देख शिखण्डीने तीखे क्षुरप्रसे कृतवर्माके धनुषके टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ २६½ ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं भग्नशृङ्गमिवर्षभम् ॥ २७ ॥
अशीत्या मार्गणैः क्रुद्धो बाह्वोरुरसि चार्पयत् ।

धनुष कट जानेपर कृतवर्माकी दशा टूटे सींगवाले बैलके समान हो गयी । उस समय शिखण्डीने कुपित होकर उसकी दोनों भुजाओं तथा छातीमें अस्सी बाण मारे ॥ २७½ ॥

कृतवर्मा तु संक्रुद्धो मार्गणैः क्षतविक्षतः ॥ २८ ॥
ववाम रुधिरं गात्रैः कुम्भवक्त्रादिवोदकम् ।

कृतवर्मा उन बाणोंसे क्षत-विक्षत होकर अत्यन्त कुपित हो उठा और जैसे घड़ेके मुँहसे जल गिर रहा हो, उसी प्रकार वह अपने अङ्गोंसे रक्त वमन करने लगा ॥ २८½ ॥

रुधिरेण परिक्लिन्नः कृतवर्मा त्वराजत ॥ २९ ॥
वर्षेण क्लेदितो राजन् यथा गैरिकपर्वतः ।

राजन् ! खूनसे लथपथ हुआ कृतवर्मा वर्षासे भीगे हुए गेरूके पहाड़के समान शोभा पा रहा था ॥ २९½ ॥

अथान्यद् धनुरादाय समार्गणगुणं प्रभुः ॥ ३० ॥
शिखण्डिनं बाणगणैः स्कन्धदेशे व्यताडयत् ।

तदनन्तर शक्तिशाली कृतवर्माने बाण और प्रत्यञ्चासहित दूसरा धनुष हाथमें लेकर शिखण्डीके कंधोंपर अपने बाणसमूहोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३०½ ॥

स्कन्धदेशस्थितैर्बाणैः शिखण्डी तु व्यराजत ॥ ३१ ॥
शाखाप्रशाखाविपुलः सुमहान् पादपो यथा ।

कंधोंमें धँसे हुए उन बाणोंसे शिखण्डी वैसी ही शोभा पाने लगा, जैसे कोई महान् वृक्ष अपनी शाखा-प्रशाखाओंके कारण अधिक विस्तृत दिखायी देता हो ॥ ३१½ ॥

तावन्योन्यं भृशं विद्ध्वा रुधिरेण समुक्षितौ ॥ ३२ ॥
(पोप्लूयमानौ हि यथा महान्तौ शोणितह्रदे ।)

वे दोनों महान् वीर एक दूसरेको अत्यन्त घायल करके खूनसे इस प्रकार नहा गये थे, मानो रक्तके सरोवरमें बारंबार डुबकी लगाकर आये हों ॥ ३२ ॥

अन्योन्यशृङ्गाभिहतौ रेजतुर्वृषभाविव ।

उस समय एक दूसरेके सींगोंसे चोट खाये हुए दो साँड़के समान उन दोनोंकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ ३२½ ॥

अन्योन्यस्य वधे यत्नं कुर्वाणौ तौ महारथौ ॥ ३३ ॥
रथाभ्यां चेरतुस्तत्र मण्डलानि सहस्रशः ।

एक दूसरेके वधके लिये प्रयत्न करते हुए वे दोनों महारथी अपने रथके द्वारा वहाँ सहस्रों बार मण्डलाकार गतिसे विचरते थे ॥ ३३½ ॥

कृतवर्मा महाराज पार्षतं निशितैः शरैः ॥ ३४ ॥
रणे विव्याध सप्तत्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।

महाराज ! कृतवर्माने रणभूमिमें सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्णमय पङ्खवाले सत्तर बाणोंसे द्रुपदपुत्र शिखण्डीको घायल कर दिया ॥ ३४½ ॥

ततोऽस्य समरे बाणं भोजः प्रहरतां वरः ॥ ३५ ॥
जीवितान्तकरं घोरं व्यसृजत्त्वरयान्वितः ।

तत्पश्चात् प्रहार करनेवाले योद्धाओंमें श्रेष्ठ कृतवर्माने उसके ऊपर समराङ्गणमें बड़ी उतावलीके साथ एक भयंकर प्राणान्तकारी बाण छोड़ा ॥ ३५½ ॥

स तेनाभिहतो राजन् मूर्च्छामाशु समाविशत् ॥ ३६ ॥
ध्वजयष्टिं च सहसा शिश्रिये कश्मलावृतः ।

राजन् ! उस बाणसे आहत हो शिखण्डी तत्काल मूर्छित हो गया । उसने सहसा मोहाच्छन्न होकर ध्वजदण्डका सहारा ले लिया ॥ ३६½ ॥

अपोवाह रणात्तूर्णं सारथी रथिनां वरम् ॥ ३७ ॥
हार्दिक्यशरसंतप्तं निःश्वसन्तं पुनः पुनः ।

कृतवर्माके बाणोंसे संतप्त हो बारंबार लंबी साँस खींचते हुए रथियोंमें श्रेष्ठ शिखण्डीको उसका सारथि तुरंत रणभूमिसे बाहर हटा ले गया ॥ ३७½ ॥

पराजिते ततः शूरे द्रुपदस्यात्मजे प्रभो ।
व्यद्रवत् पाण्डवी सेना वध्यमाना समन्ततः ॥ ३८ ॥

प्रभो ! शूरवीर द्रुपदपुत्रके पराजित हो जानेपर सब ओरसे मारी जाती हुई पाण्डव-सेना भागने लगी ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुल-युद्धविषयक छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २६ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ३८½ श्लोक हैं)

सप्तविंशोऽध्यायः

अर्जुनद्वारा राजा श्रुतंजय, सौश्रुति, चन्द्रदेव और सत्यसेन आदि महारथियोंका वध एवं संशप्तक-सेनाका संहार

संजय उवाच

श्वेताश्वोऽथ महाराज व्यधमत्तावकं बलम्।
यथा वायुः समासाद्य तूलराशिं समन्ततः॥ १॥

संजय कहते हैं—महाराज ! एक ओर श्वेतवाहन अर्जुन आपकी सेनाको उसी प्रकार छिन्न-भिन्न कर रहे थे, जैसे वायु रूईके ढेरको पाकर उसे सब ओर बिखेर देती है ॥

प्रत्युद्ययुस्त्रिगर्तास्तं शिबयः कौरवैः सह।
शाल्वाः संशप्तकाश्चैव नारायणबलं च तत्॥ २॥

उस समय उनका सामना करनेके लिये त्रिगर्त, शिबि, कौरवोंसहित शाल्व, संशप्तकगण तथा नारायणी-सेनाके सैनिक आगे बढ़े ॥ २ ॥

सत्यसेनश्चन्द्रदेवो मित्रदेवः श्रुतंजयः।
सौश्रुतिश्चित्रसेनश्च मित्रवर्मा च भारत॥ ३॥
त्रिगर्तराजः समरे भ्रातृभिः परिवारितः।
पुत्रैश्चैव महेष्वासैर्नानाशस्त्रविशारदैः॥ ४॥

भरतनन्दन ! सत्यसेन, चन्द्रदेव, मित्रदेव, श्रुतंजय, सौश्रुति, चित्रसेन तथा मित्रवर्मा—इन सात भाइयों तथा नाना प्रकारके शस्त्रोंके प्रहारमें कुशल महाधनुर्धर पुत्रोंसे घिरा हुआ त्रिगर्तराज सुशर्मा समराङ्गणमें उपस्थित हुआ ॥३-४॥

ते सृजन्तः शरव्रातान् किरन्तोऽर्जुनमाहवे।
अभ्यवर्तन्त सहसा वार्योघा इव सागरम्॥ ५॥

वे सभी वीर युद्धस्थलमें अर्जुनपर बाणसमूहोंकी वर्षा करते हुए जैसे जलका प्रवाह समुद्रकी ओर जाता है, उसी प्रकार सहसा उनके सामने आ पहुँचे ॥ ५ ॥

ते त्वर्जुनं समासाद्य योधाः शतसहस्रशः।
अगच्छन् विलयं सर्वे तार्क्ष्यं दृष्ट्वेव पन्नगाः॥ ६॥

परंतु जैसे गरुड़को देखते ही सर्प अपने प्राण खो देते हैं, उसी प्रकार वे सब-के-सब लाखों योद्धा अर्जुनके पास पहुँचते ही कालके गालमें चले गये ॥ ६ ॥

ते हन्यमानाः समरे नाजहुः पाण्डवं रणे।
हन्यमाना महाराज शलभा इव पावकम्॥ ७॥

जैसे पतङ्ग जलते रहनेपर भी आगमें टूटे पड़ते हैं, उसी प्रकार रणभूमिमें मारे जानेपर भी वे समस्त योद्धा युद्धमें पाण्डुकुमार अर्जुनको छोड़कर भाग न सके ॥ ७ ॥

सत्यसेनस्त्रिभिर्बाणैर्विव्याध युधि पाण्डवम्।
मित्रदेवस्त्रिषष्ट्या तु चन्द्रदेवस्तु सप्तभिः॥ ८॥
मित्रवर्मा त्रिसप्तत्या सौश्रुतिश्चापि सप्तभिः।
श्रुतंजयस्तु विंशत्या सुशर्मा नवभिः शरैः॥ ९॥

सत्यसेनने तीन, मित्रदेवने तिरसठ, चन्द्रदेवने सात, मित्रवर्माने तिहत्तर, सौश्रुतिने सात, श्रुतंजयने बीस तथा सुशर्माने नौ बाणोंसे युद्धस्थलमें पाण्डुपुत्र अर्जुनको बींध डाला ॥

स विद्धो बहुभिः संख्ये प्रतिविव्याध तान् नृपान्।
सौश्रुतिं सप्तभिर्विद्ध्वा सत्यसेनं त्रिभिः शरैः॥ १०॥

इस प्रकार रणभूमिमें बहुसंख्यक योद्धाओंद्वारा घायल किये जानेपर बदलेमें अर्जुनने भी उन सभी नरेशोंको क्षत-विक्षत कर दिया। उन्होंने सौश्रुतिको सात बाणोंसे घायल करके सत्यसेनको तीन बाण मारे ॥ १० ॥

श्रुतंजयं च विंशत्या चन्द्रदेवं तथाष्टभिः।
मित्रदेवं शतेनैव श्रुतसेनं त्रिभिः शरैः॥ ११॥
नवभिर्मित्रवर्माणं सुशर्माणं तथाष्टभिः।

श्रुतंजयको बीस, चन्द्रदेवको आठ, मित्रदेवको सौ, श्रुतसेन (चित्रसेन) को तीन, मित्रवर्माको नौ तथा सुशर्माको आठ बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ११½ ॥

श्रुतंजयं च राजानं हत्वा तत्र शिलाशितैः॥ १२॥
सौश्रुतेः सशिरस्त्राणं शिरः कायादपाहरत्।
त्वरितश्चन्द्रदेवं च शरैर्निन्ये यमक्षयम्॥ १३॥

फिर सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए कई बाणोंसे राजा श्रुतंजयका वध करके सौश्रुतिके शिरस्त्राणसहित सिरको धड़से अलग कर दिया। फिर तुरंत ही चन्द्रदेवको भी अपने बाणोंद्वारा यमलोक पहुँचा दिया ॥ १२-१३ ॥

तथेतरान् महाराज यतमानान् महारथान्।
पञ्चभिः पञ्चभिर्बाणैरेकैकं प्रत्यवारयत्॥ १४॥

महाराज ! इसी प्रकार विजयके लिये प्रयत्नशील अन्य महारथियोंमेंसे प्रत्येकको पाँच-पाँच बाण मारकर रोक दिया ॥

सत्यसेनस्तु संक्रुद्धस्तोमरं व्यसृजन्महत्।
समुद्दिश्य रणे कृष्णं सिंहनादं ननाद च॥ १५॥

तब सत्यसेनने अत्यन्त कुपित होकर रणभूमिमें श्रीकृष्णको लक्ष्य करके एक विशाल तोमरका प्रहार किया और सिंहके समान गर्जना की ॥ १५ ॥

स निर्भिद्य भुजं सव्यं माधवस्य महात्मनः।
अयस्मयो हेमदण्डो जगाम धरणीं तदा॥ १६॥

सुवर्णमय दण्डवाला वह लोहनिर्मित तोमर महात्मा श्रीकृष्णकी बायीं भुजापर चोट करके तत्काल धरतीपर गिर पड़ा ॥

माधवस्य तु विद्धस्य तोमरेण महारणे।
प्रतोदः प्रापतद्धस्ताद् रश्मयश्च विशाम्पते॥ १७॥

प्रजानाथ ! उस महासमरमें तोमरसे घायल हुए श्रीकृष्णके हाथसे चाबुक और बागडोर गिर पड़ी ॥ १७ ॥

वासुदेवं विभिन्नाङ्गं दृष्ट्वा पार्थो धनंजयः।

क्रोधमाहारयत्तीव्रं कृष्णं चेदमुवाच ह ॥ १८ ॥

श्रीकृष्णके शरीरमें घाव देखकर कुन्तीकुमार अर्जुनको बड़ा क्रोध हुआ। वे उनसे इस प्रकार बोले ॥ १८ ॥

प्रापयाश्वान् महाबाहो सत्यसेनं प्रति प्रभो।
यावदेनं शरैस्तीक्ष्णैर्नयामि यमसादनम् ॥ १९ ॥

'प्रभो ! महाबाहो ! आप घोड़ोंको सत्यसेनके निकट पहुँचाइये। मैं अपने तीखे बाणोंसे पहले इसीको यमलोक भेज दूँगा' ॥ १९ ॥

प्रतोदं गृह्य सोऽन्यत्तु रश्मीनपि यथा पुरा।
वाहयामास तानश्वान् सत्यसेनरथं प्रति ॥ २० ॥

तब भगवान् श्रीकृष्णने दूसरा चाबुक लेकर पूर्ववत् घोड़ोंकी बागडोर सँभाली और उन घोड़ोंको सत्यसेनके रथके समीप पहुँचा दिया ॥ २० ॥

विष्वक्सेनं तु निर्भिन्नं दृष्ट्वा पार्थो धनंजयः।
सत्यसेनं शरैस्तीक्ष्णैर्वारयित्वा महारथः ॥ २१ ॥
ततः सुनिशितैर्भल्लै राज्ञस्तस्य महच्छिरः।
कुण्डलोपचितं कायाच्चकर्त पृतनान्तरे ॥ २२ ॥

कुन्तीकुमार महारथी अर्जुनने श्रीकृष्णको घायल हुआ देख सत्यसेनको तीखे बाणोंसे रोककर तेज धारवाले भल्लोंसे सेनाके मध्यभागमें उस राजकुमारके कुण्डल-मण्डित महान् मस्तकको धड़से काट डाला ॥ २१–२२ ॥

तन्निकृत्य शितैर्बाणैर्मित्रवर्माणमाक्षिपत्।
वत्सदन्तेन तीक्ष्णेन सारथिं चास्य मारिष ॥ २३ ॥

मान्यवर ! सत्यसेनको मारकर तीखे बाणोंद्वारा मित्रवर्माको और एक पैने वत्सदन्तसे उसके सारथिको भी मार गिराया॥

ततः शरशतैर्भूयः संशप्तकगणान् बली
पातयामास संक्रुद्धः शतशोऽथ सहस्रशः॥२४॥

तदनन्तर अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए बलवान् अर्जुनने पुनः हजारों और सैकड़ों संशप्तकगणोंको सैकड़ों बाणोंसे मारकर धरतीपर सुला दिया ॥ २४ ॥

ततो रजतपुङ्खेन राजञ्शीर्षं महात्मनः।
मित्रदेवस्य चिच्छेद क्षुरप्रेण महारथः ॥ २५ ॥

राजन्! फिर महारथी धनंजयने रजतमय पंखवाले क्षुरप्रसे महामना मित्रदेवके मस्तकको काट डाला ॥ २५ ॥

सुशर्माणं सुसंक्रुद्धो जत्रुदेशे समाहनत्।
ततः संशप्तकाः सर्वे परिवार्य धनंजयम् ॥ २६ ॥
शस्त्रौघैर्ममृदुः क्रुद्धा नादयन्तो दिशो दश।

साथ ही अत्यन्त कुपित होकर अर्जुनने सुशर्माके गलेकी हँसलीपर भी गहरी चोट पहुँचायी। फिर तो क्रोधमें भरे हुए सभी संशप्तक दसों दिशाओंको अपनी गर्जनासे प्रतिध्वनित करते हुए अर्जुनको चारों ओरसे घेरकर अपने अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा पीड़ा देने लगे ॥ २६½ ॥

अभ्यर्दितस्तु तैर्जिष्णुः शक्रतुल्यपराक्रमः ॥ २७ ॥
ऐन्द्रमस्त्रममेयात्मा प्रादुश्चक्रे महारथः।

उनसे पीड़ित होकर इन्द्रके तुल्य पराक्रमी तथा अमेय आत्मबलसे सम्पन्न महारथी अर्जुनने ऐन्द्रास्त्र प्रकट किया ॥

ततः शरसहस्राणि प्रादुरासन् विशाम्पते ॥ २८ ॥
ध्वजानां छिद्यमानानां कार्मुकाणां च मारिष।
रथानां सपताकानां तूणीराणां युगैः सह ॥ २९ ॥
अक्षाणामथ चक्राणां योक्त्राणां रश्मिभिः सह।
कूबराणां वरूथानां पृषत्कानां च संयुगे ॥ ३० ॥
अश्वानां पततां चापि प्रासानामृष्टिभिः सह।
गदानां परिघानां च शक्तितोमरपट्टिशैः ॥ ३१ ॥
शतघ्नीनां सचक्राणां भुजानां चोरुभिः सह।
कण्ठसूत्राङ्गदानां च केयूराणां च मारिष ॥ ३२ ॥
हाराणामथ निष्काणां तनुत्राणां च भारत।
छत्राणां व्यजनानां च शिरसां मुकुटैः सह ॥ ३३ ॥
अश्रूयत महाञ्शब्दस्तत्र तत्र विशाम्पते।

प्रजानाथ ! फिर तो वहाँ हजारों बाण प्रकट होने लगे। माननीय भरतवंशी प्रजापालक नरेश ! उस समय कट-कटकर गिरनेवाले ध्वज, धनुष, रथ, पताका, तरकस, जूए, धुरे, पहिये, जोत, बागडोर, कूबर, वरूथ (रथका चर्ममय आवरण), बाण, घोड़े, प्रास, ऋष्टि, गदा, परिघ, शक्ति, तोमर, पट्टिश, चक्रयुक्त शतघ्नी, बाँह-जाँघ, कण्ठसूत्र, अङ्गद, केयूर, हार, निष्क, कवच, छत्र, व्यजन और मुकुट-सहित मस्तकोंका महान् शब्द युद्धस्थलमें जहाँ-तहाँ सब ओर सुनायी देने लगा ॥ २८–३३½ ॥

सकुण्डलानि स्वक्षीणि पूर्णचन्द्रनिभानि च ॥ ३४ ॥
शिरांस्युर्व्यामदृश्यन्त ताराजालमिवाम्बरे।

पृथ्वीपर गिरे हुए कुण्डल और सुन्दर नेत्रोंसे युक्त पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मस्तक आकाशमें ताराओंके समूहकी भाँति दिखायी देते थे ॥ ३४½ ॥

सुस्रग्वीणि सुवासांसि चन्दनेनोक्षितानि च ॥ ३५ ॥
शरीराणि व्यदृश्यन्त निहतानां महीतले।

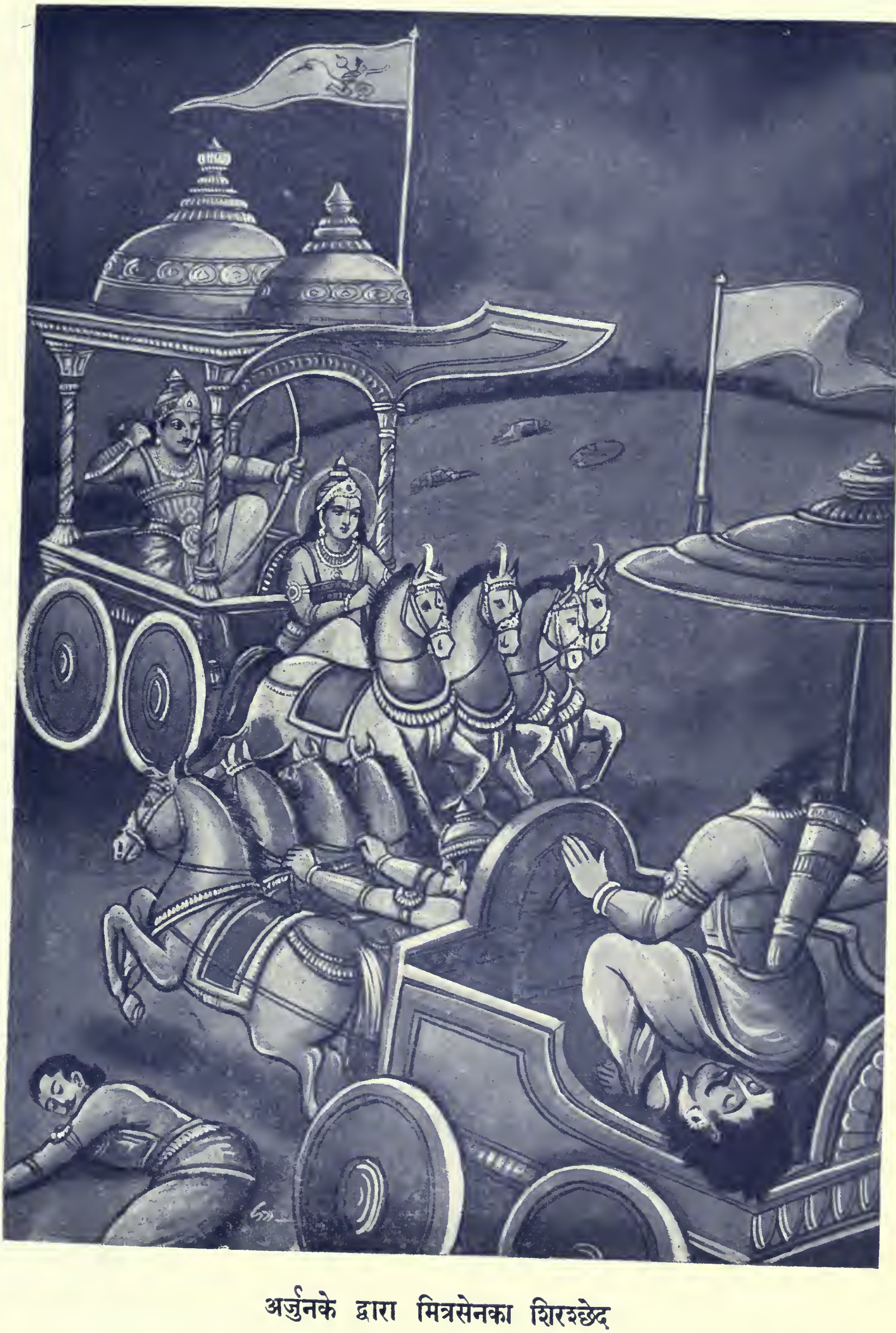
वहाँ मारे गये राजाओंके सुन्दर हारोंसे सुशोभित, उत्तम वस्त्रोंसे सम्पन्न तथा चन्दनसे चर्चित शरीर पृथ्वीपर पड़े देखे जाते थे ॥ ३५½ ॥

गन्धर्वनगराकारं घोरमायोधनं तदा ॥ ३६ ॥
निहतै राजपुत्रैश्च क्षत्रियैश्च महाबलैः।

उस समय वहाँ मारे गये राजकुमारों तथा महाबली क्षत्रियोंकी लाशोंसे वह युद्धस्थल गन्धर्वनगरके समान भयानक जान पड़ता था ॥ ३६½ ॥

हस्तिभिः पतितैश्चैव तुरङ्गैश्चाभवन्मही ॥ ३७ ॥
अगम्यरूपा समरे विशीर्णैरिव पर्वतैः।

समराङ्गणमें टूट-फूटकर गिरे हुए पर्वतोंके समान धरा-



अर्जुनके द्वारा मित्रसेनका शिरश्छेद



शायी हुए हाथियों और घोड़ोंके कारण वहाँकी भूमिपर चलना-फिरना असम्भव हो गया था ॥ ३७½ ॥

नासीच्चक्रपथस्तत्र पाण्डवस्य महात्मनः ॥ ३८ ॥
निघ्नतः शात्रवान् भल्लैर्हस्त्यश्वं चास्यतो महत् ।

अपने भल्लोंसे शत्रुसैनिकों तथा उनके हाथी-घोड़ेके महान् समुदायको मारते-गिराते हुए महामना पाण्डुकुमार अर्जुनके रथके पहियोंके लिये मार्ग नहीं मिलता था ॥ ३८½ ॥

आतङ्कादिव सीदन्ति रथचक्राणि मारिष ॥ ३९ ॥
चरतस्तस्य संग्रामे तस्मिँल्लोहितकर्दमे ।

मान्यवर ! उस संग्राममें रक्तकी कीच मच गयी थी। उसमें विचरते हुए अर्जुनके रथके पहिये मानो भयसे शिथिल होते जा रहे थे ॥ ३९½ ॥

सीदमानानि चक्राणि समूहुस्तुरगा भृशम् ॥ ४० ॥
श्रमेण महता युक्ता मनोमारुतरंहसः ।

मन और वायुके समान वेगशाली घोड़े भी वहाँ धँसते हुए पहियोंको बड़े परिश्रमसे खींच पाते थे ॥ ४०½ ॥

वध्यमानं तु तत् सैन्यं पाण्डुपुत्रेण धन्विना ॥ ४१ ॥
प्रायशो विमुखं सर्वं नावतिष्ठत भारत ।

धनुर्धर पाण्डुकुमारकी मार खाकर आपकी वह सारी सेना प्रायः पीठ दिखाकर भाग चली । वहाँ क्षणभरके लिये भी ठहर न सकी ॥ ४१½ ॥

ताञ्जित्वा समरे जिष्णुः संशप्तकगणान् बहून् ॥ ४२ ॥
विरराज तदा पार्थो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ ४३ ॥

उस समय समराङ्गणमें उन बहुसंख्यक संशप्तकगणोंको परास्त करके विजयी कुन्तीकुमार अर्जुन धूमरहित प्रज्वलित अग्निके समान शोभा पा रहे थे ॥ ४२-४३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संशप्तकजये सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संशप्तकोंकी पराजयविषयक सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

युधिष्ठिर और दुर्योधनका युद्ध, दुर्योधनकी पराजय तथा उभयपक्षकी सेनाओंका अमर्यादित भयंकर संग्राम

संजय उवाच

युधिष्ठिरं महाराज विसृजन्तं शरान् बहून् ।
स्वयं दुर्योधनो राजा प्रत्यगृह्णादभीतवत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! बहुत-से बाणोंकी वर्षा करते हुए युधिष्ठिरका स्वयं राजा दुर्योधनने एक निर्भीक वीरकी भाँति सामना किया ॥ १ ॥

तमापतन्तं सहसा तव पुत्रं महारथम् ।
धर्मराजो द्रुतं विद्ध्वा तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ २ ॥

सहसा आते हुए आपके महारथी पुत्रको धर्मराज युधिष्ठिरने तुरंत ही घायल करके कहा—'अरे ! खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ २ ॥

स तु तं प्रतिविव्याध नवभिर्निशितैः शरैः ।
सारथिं चास्य भल्लेन भृशं क्रुद्धोऽभ्यताडयत् ॥ ३ ॥

इससे दुर्योधनको बड़ा क्रोध हुआ । उसने युधिष्ठिरको नौ तीखे बाणोंसे बेधकर बदला चुकाया और उनके सारथिपर भी एक भल्लका प्रहार किया ॥ ३ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजन् स्वर्णपुङ्खाञ्छिलीमुखान् ।
दुर्योधनाय चिक्षेप त्रयोदश शिलाशितान् ॥ ४ ॥

राजन् ! तब युधिष्ठिरने सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले तेरह बाण दुर्योधनपर चलाये ॥ ४ ॥

चतुर्भिश्चतुरो वाहांस्तस्य हत्वा महारथः ।
पञ्चमेन शिरः कायात् सारथेश्च समाक्षिपत् ॥ ५ ॥

महारथी युधिष्ठिरने उनमेंसे चार बाणोंद्वारा दुर्योधनके चारों घोड़ोंको मारकर पाँचवेंसे उसके सारथिका भी मस्तक धड़से काट गिराया ॥ ५ ॥

षष्ठेन तु ध्वजं राज्ञः सप्तमेन तु कार्मुकम् ।
अष्टमेन तथा खड्गं पातयामास भूतले ॥ ६ ॥

फिर छठे बाणसे राजा दुर्योधनके ध्वजको, सातवेंसे उसके धनुषको और आठवेंसे उसकी तलवारको भी पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ६ ॥

पञ्चभिर्नृपतिं चापि धर्मराजोऽर्दयद् भृशम् ।

तदनन्तर पाँच बाणोंसे धर्मराजने राजा दुर्योधनको भी गहरी चोट पहुँचायी ॥ ६½ ॥

हताश्वात्तु रथात्तस्मादवप्लुत्य सुतस्तव ॥ ७ ॥
उत्तमं व्यसनं प्राप्तो भूमावेवावतिष्ठत ।

उस अश्वहीन रथसे कूदकर आपका पुत्र भारी संकटमें पड़नेपर भी वहाँ पृथ्वीपर ही खड़ा रहा (युद्ध छोड़कर भागा नहीं) ॥ ७½ ॥

तं तु कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा कर्णद्रौणिकृपादयः ॥ ८ ॥
अभ्यवर्तन्त सहसा परीप्सन्तो नराधिपम् ।

उसे संकटमें पड़ा देख कर्ण, अश्वत्थामा तथा कृपाचार्य आदि वीर अपने राजाकी रक्षा चाहते हुए सहसा युधिष्ठिरके सामने आ पहुँचे ॥ ८½ ॥

अथ पाण्डुसुताः सर्वे परिवार्य युधिष्ठिरम् ॥ ९ ॥
अन्वयुः समरे राजंस्ततो युद्धमवर्तत ।

राजन् ! तत्पश्चात् समस्त पाण्डव भी युधिष्ठिरको सब

ओरसे घेरकर उनका अनुसरण करने लगे; फिर तो दोनों दलोंमें भारी युद्ध छिड़ गया ॥ ९½ ॥

ततस्तूर्यसहस्राणि प्रावाद्यन्त महामृधे ॥ १० ॥
ततः किलकिलाशब्दाः प्रादुरासन् महीपते ।

भूपाल ! तदनन्तर उस महासमरमें सहस्रों बाजे बजने लगे और वहाँ किलकिलाहटकी आवाज गूँज उठी ॥ १०½ ॥

यत्राभ्यगच्छन् समरे पञ्चालाः कौरवैः सह ॥ ११ ॥
नरा नरैः समाजग्मुर्वारणा वरवारणैः ।
रथाश्च रथिभिः सार्धं हयाश्च हयसादिभिः ॥ १२ ॥

उस युद्धमें समस्त पाञ्चाल कौरवोंके साथ भिड़ गये । पैदल पैदलोंके, हाथी हाथियोंके, रथी रथियोंके और घुड़सवार घुड़सवारोंके साथ युद्ध करने लगे ॥ ११-१२ ॥

द्वन्द्वान्यासन् महाराज प्रेक्षणीयानि संयुगे ।
विविधान्यप्यचिन्त्यानि शस्त्रवन्त्युत्तमानि च ॥ १३ ॥

महाराज ! उस रणभूमिमें होनेवाले नाना प्रकारके अचिन्तनीय, शस्त्रयुक्त तथा उत्तम द्वन्द्वयुद्ध देखने ही योग्य थे ॥ १३ ॥

ते शूराः समरे सर्वे चित्रं लघु च सुष्ठु च ।
अयुध्यन्त महावेगाः परस्परवधैषिणः ॥ १४ ॥

वे महान् वेगशाली समस्त शूरवीर समराङ्गणमें एक दूसरेके वधकी इच्छासे विचित्र, शीघ्रतापूर्ण तथा सुन्दर रीतिसे युद्ध करने लगे ॥ १४ ॥

अन्योन्यं समरे जघ्नुर्योधव्रतमनुष्ठिताः ।
न हि ते समरं चक्रुः पृष्ठतो वै कथञ्चन ॥ १५ ॥

वे वीर योद्धाके व्रतका पालन करते हुए युद्धस्थलमें एक दूसरेको मारते थे । उन्होंने किसी तरह भी युद्धमें पीठ नहीं दिखायी ॥ १५ ॥

मुहूर्तमेव तद् युद्धमासीन्मधुरदर्शनम् ।
तत उन्मत्तवद् राजन् निर्मर्यादमवर्तत ॥ १६ ॥

राजन् ! दो ही घड़ीतक वह युद्ध देखनेमें मधुर जान पड़ा । फिर तो वहाँ उन्मत्तके समान मर्यादाशून्य बर्ताव होने लगा ॥ १६ ॥

रथी नागं समासाद्य दारयन् निशितैः शरैः ।
प्रेषयामास कालाय शरैः संनतपर्वभिः ॥ १७ ॥

रथी हाथीका सामना करके झुकी हुई गाँठवाले तीखे बाणोंद्वारा उसे विदीर्ण करते हुए कालके गालमें भेजने लगे ॥

नागा हयान् समासाद्य विक्षिपन्तो बहून् रणे ।
दारयामासुरत्युग्रं तत्र तत्र तदा तदा ॥ १८ ॥

हाथी बहुत-से घोड़ोंको पकड़-पकड़कर रणभूमिमें इधर-उधर फेंकने और विदीर्ण करने लगे । उससे वहाँ उस समय बड़ा भयंकर दृश्य उपस्थित हो गया ॥ १८ ॥

हयारोहाश्च बहवः परिवार्य गजोत्तमान् ।
तलशब्दरवांश्चक्रुः सम्पतन्तस्ततस्ततः ॥ १९ ॥
धावमानांस्ततस्तांस्तु द्रवमाणान् महागजान् ।
पार्श्वतः पृष्ठतश्चैव निजघ्नुर्हयसादिनः ॥ २० ॥

बहुत-से घुड़सवार उत्तम गजराजोंको चारों ओरसे घेरकर इधर-उधर दौड़ने और ताली पीटने लगे । इससे जब वे विशालकाय हाथी दौड़ने और भागने लगते, तब वे घुड़सवार अगल-बगलसे और पीछेकी ओरसे उनपर बाणोंकी चोट करते थे ॥ १९-२० ॥

विद्राव्य च बहूनश्वान् नागा राजन् मदोत्कटाः ।
विषाणैश्चापरे जघ्नुर्ममृदुश्चापरे भृशम् ॥ २१ ॥

राजन् ! कितने ही मदोन्मत्त हाथी भी बहुत-से घोड़ोंको खदेड़कर उन्हें दाँतोंसे दबाकर मार डालते अथवा वेगपूर्वक पैरोंसे कुचल डालते थे ॥ २१ ॥

साश्वारोहांश्च तुरगान् विषाणैर्विव्यधू रुषा ।
अपरे चिक्षिपुर्वेगात् प्रगृह्यातिबलास्तदा ॥ २२ ॥

कितने ही हाथियोंने रोषमें भरकर सवारोंसहित घोड़ोंको अपने दाँतोंसे विदीर्ण कर डाला तथा कुछ अत्यन्त बलवान् गजराजोंने उन घोड़ोंको पकड़कर वेगपूर्वक दूर फेंक दिया ॥

पादातैराहता नागा विवरेषु समन्ततः ।
चक्रुरार्तस्वरं घोरं दुद्रुवुश्च दिशो दश ॥ २३ ॥

प्रहारका अवसर मिलनेपर पैदल सैनिक भी चारों ओरसे हाथियोंको गहरी चोट पहुँचाते और वे घोर आर्तनाद करते हुए सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर भाग जाते थे ॥ २३ ॥

पदातीनां तु सहसा प्रद्रुतानां महाहवे ।
उत्सृज्याभरणं तूर्णमवप्लुत्य रणाजिरे ॥ २४ ॥
निमित्तं मन्यमानास्तु परिणाम्य महागजाः ।
जगृहुर्बिभिदुश्चैव चित्राण्याभरणानि च ॥ २५ ॥

पैदल सैनिक युद्धस्थलमें अपने आभूषण त्यागकर तुरंत उछल-उछलकर बड़े वेगसे भागने लगे । उस समय सहसा भागते हुए उन पैदलोंके उन विचित्र आभूषणोंको अपने ऊपर प्रहार होनेमें निमित्त मानकर हाथी उन्हें सूँड़से उठा लेते और फिर दाँतोंसे दबाकर फोड़ डालते थे ॥ २४-२५ ॥

तांस्तु तत्र प्रसक्तान् वै परिवार्य पदातयः ।
हस्त्यारोहान् निजघ्नुस्ते महावेगा बलोत्कटाः ॥ २६ ॥

इस प्रकार आभूषणोंमें उलझे हुए उन हाथियों और उनके सवारोंको चारों ओरसे घेरकर महान् वेगशाली तथा बलोन्मत्त पैदल योद्धा मार डालते थे ॥ २६ ॥

अपरे हस्तिभिर्हस्तैः खं विक्षिप्ता महाहवे ।
निपतन्तो विषाणाग्रैर्भृशं विद्धाः सुशिक्षितैः ॥ २७ ॥

कितने ही पैदल सैनिक उस महासमरमें सुशिक्षित हाथियोंकी सूँड़ोंसे आकाशमें फेंक दिये जाते और उधरसे गिरते समय उन हाथियोंके दन्ताग्रभागोंद्वारा अत्यन्त विदीर्ण कर दिये जाते थे ॥ २७ ॥

अपरे सहसा गृह्य विषाणैरेव सूदिताः ।
सेनान्तरं समासाद्य केचित् तत्र महागजैः ॥ २८ ॥
क्षुण्णगात्रा महाराज विक्षिप्य च पुनः पुनः ।
अपरे व्यजनानीव विभ्राम्य निहता मृधे ॥ २९ ॥

कितने ही योद्धा हाथियोंद्वारा पकड़े जाकर उनके दाँतोंसे ही मार डाले गये । महाराज ! बहुत-से विशालकाय गजराज सेनाके भीतर घुसकर कितने ही पैदलोंको सहसा पकड़कर उनके शरीरोंको बारंबार पटक-झटककर चूर-चूर कर देते और कितनोंको व्यजनोंके समान घुमाकर युद्धमें मार डालते थे ॥ २८-२९ ॥

पुरःसराश्च नागानामपरेषां विशाम्पते ।
शरीराण्यतिविद्धानि तत्र तत्र रणाजिरे ॥ ३० ॥

प्रजानाथ ! जो हाथियोंके आगे चलनेवाले पैदल थे, वे दूसरे पक्षके हाथियोंके शरीरोंको जहाँ-तहाँ रणभूमिमें अत्यन्त घायल कर देते थे ॥ ३० ॥

प्रतिमानेषु कुम्भेषु दन्तवेष्टेषु चापरे ।
निगृहीता भृशं नागाः प्रासतोमरशक्तिभिः ॥ ३१ ॥

कहीं-कहीं पैदल सैनिक प्रास, तोमर और शक्तिद्वारा शत्रुपक्षके हाथियोंके दोनों दाँतोंके बीचके स्थानमें, कुम्भस्थलमें और ओठोंके ऊपर प्रहार करके उन्हें अत्यन्त काबूमें कर लेते थे ॥ ३१ ॥

निगृह्य च गजाः केचित् पार्श्वस्थैर्भृशदारुणैः ।
रथाश्वसादिभिस्तत्र सम्भिन्ना न्यपतन् भुवि ॥ ३२ ॥

कितने ही हाथियोंको अवरुद्ध करके पार्श्वभागमें खड़े हुए अत्यन्त भयंकर रथी और घुड़सवार उन्हें बाणोंसे विदीर्ण कर डालते, जिससे वे हाथी वहीं पृथ्वीपर गिर जाते थे ॥३२॥

सहसा सादिनस्तत्र तोमरेण महामृधे ।
भूमावमृद्नन् वेगेन सचर्माणं पदातिनम् ॥ ३३ ॥

उस महासमरमें कितने ही हाथीसवार सहसा तोमरका प्रहार करके ढालसहित पैदल योद्धाको गिराकर उसे वेगपूर्वक धरतीपर रौंद डालते थे ॥ ३३ ॥

तथा सावरणान् कांश्चित्तत्र तत्र विशाम्पते ।
रथान् नागाः समासाद्य परिगृह्य च मारिष ॥ ३४ ॥
व्याक्षिपन् सहसा तत्र घोररूपे भयानके ।
नाराचैर्निहताश्चापि गजाः पेतुर्महाबलाः ॥ ३५ ॥
पर्वतस्येव शिखरं वज्ररुग्णं महीतले ।

माननीय नरेश ! उस घोर एवं भयानक युद्धमें कितने ही हाथी निकट आकर अपनी सूँड़ोंसे कुछ आवरणयुक्त रथोंको पकड़ लेते और उन्हें वेगपूर्वक खींचकर सहसा दूर फेंक देते थे । फिर वे महाबली हाथी भी नाराचोंसे मारे जाकर वज्रके तोड़े हुए पर्वत-शिखरकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ते थे ॥ ३४-३५½ ॥

योधा योधान् समासाद्य मुष्टिभिर्व्यहनन् युधि ॥३६॥
केशेष्वन्योन्यमाक्षिप्य चिक्षिपुर्बिभिदुश्च ह ।

बहुत-से पैदल योद्धा दूसरे योद्धाओंको निकट पाकर युद्धस्थलमें उनपर मुक्कोंसे प्रहार करने लगते थे । कितने ही एक दूसरेकी चुटिया पकड़कर परस्पर झटकते-फेंकते और एक दूसरेको घायल करते थे ॥ ३६½ ॥

उद्यम्य च भुजावन्यो निक्षिप्य च महीतले ॥ ३७ ॥
पदा चोरः समाक्रम्य स्फुरतोऽपाहरच्छिरः ।

दूसरा योद्धा अपनी दोनों भुजाओंको उठाकर उनके द्वारा शत्रुको पृथ्वीपर पटक देता और एक पैरसे उसकी छातीको दबाकर उसके छटपटाते रहनेपर भी उसका सिर काट लेता था ॥ ३७½ ॥

पततश्चापरो राजन् विजहारासिना शिरः ॥ ३८ ॥
जीवतश्च तथैवान्यः शस्त्रं काये न्यमज्जयत् ।

राजन् ! दूसरा सैनिक किसी गिरते हुए योद्धाका सिर अपनी तलवारसे काट लेता था और कोई जीवित शत्रुके ही शरीरमें अपना शस्त्र घुसेड़ देता था ॥ ३८½ ॥

मुष्टियुद्धं महच्चासीद् योधानां तत्र भारत ॥ ३९ ॥
तथा केशग्रहश्चोग्रो बाहुयुद्धं च भैरवम् ।

भारत ! वहाँ योद्धाओंमें बहुत बड़ा मुष्टियुद्ध हो रहा था । साथ ही भयंकर केशग्रहण और भयानक बाहुयुद्ध भी चालू था ॥ ३९½ ॥

समासक्तस्य चान्येन अविज्ञातस्तथापरः ॥ ४० ॥
जहार समरे प्राणान् नानाशस्त्रैरनेकधा ।

कोई-कोई योद्धा दूसरेके साथ उलझे हुए सैनिकसे स्वयं अपरिचित रहकर नाना प्रकारके अनेक अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा युद्धमें उसके प्राण हर लेता था ॥ ४०½ ॥

संसक्तेषु च योधेषु वर्तमाने च संकुले ॥ ४१ ॥
कबन्धान्युत्थितानि स्युःशतशोऽथ सहस्रशः ।

इस प्रकार जब सभी योद्धा युद्धमें लगे थे और तुमुल संग्राम चल रहा था, उस समय सैकड़ों और हजारों कबन्ध (धड़) उठ खड़े हुए थे ॥ ४१½ ॥

शोणितैः सिच्यमानानि शस्त्राणि कवचानि च ॥ ४२ ॥
महारागानुरक्तानि वस्त्राणीव चकाशिरे ।

खूनसे भीगे हुए शस्त्र और कवच गाढ़े रंगमें रंगे हुए वस्त्रोंके समान सुशोभित होते थे ॥ ४२½ ॥

एवमेतन्महद् युद्धं दारुणं शस्त्रसंकुलम् ॥ ४३ ॥
उन्मत्तगङ्गाप्रतिमं शब्देनापूरयज्जगत् ।

इस प्रकार अस्त्र-शस्त्रोंसे परिपूर्ण यह महाभयानक युद्ध बढ़ी हुई गङ्गाके समान जगत्को कोलाहलसे परिपूर्ण कर रहा था ॥ ४३½ ॥

नैव स्वे न परे राजन् विज्ञायन्ते शरातुराः ॥ ४४ ॥
योद्धव्यमिति युध्यन्ते राजानो जयगृद्धिनः ।

राजन् ! बाणोंकी चोटसे व्याकुल हुए अपने और पराये योद्धा पहचानमें नहीं आते थे । विजयकी अभिलाषा रखनेवाले राजालोग 'युद्ध करना अपना कर्तव्य है' यह समझकर जूझ रहे थे ॥ ४४½ ॥

स्वान् स्वे जघ्नुर्महाराज परांश्चैव समागतान्॥ ४५ ॥
उभयोः सेनयोर्वीरैर्व्याकुलं समपद्यत ।

महाराज ! सामने आये हुए अपने और शत्रुपक्षके योद्धाओंको भी अपने ही पक्षके लोग मार डालते थे । दोनों सेनाओंके वीर मर्यादाशून्य युद्धमें प्रवृत्त हो गये थे ॥ ४५½ ॥

रथैर्भग्नैर्महाराज वारणैश्च निपातितैः ॥ ४६ ॥
हयैश्च पतितैस्तत्र नरैश्च विनिपातितैः ।
अगम्यरूपा पृथिवी क्षणेन समपद्यत ॥ ४७ ॥

राजेन्द्र ! टूटे हुए रथों, धराशायी हुए हाथियों, मरकर गिरे हुए घोड़ों और गिराये गये पैदल सैनिकोंसे क्षणभरमें यह पृथ्वी ऐसी हो गयी कि वहाँ चलना-फिरना असम्भव हो गया ॥ ४६-४७ ॥

क्षणेनासीन्महीपाल क्षतजौघप्रवर्तिनी ।
पञ्चालानहनत् कर्णस्त्रिगर्तांश्च धनंजयः ॥ ४८ ॥

भूपाल ! क्षणभरमें वहाँ भूतलपर खूनकी नदी बह चली । कर्णने पञ्चालोंका और अर्जुनने त्रिगर्तोंका संहार कर डाला ॥ ४८ ॥

भीमसेनः कुरून् राजन् हस्त्यनीकं च सर्वशः ।
एवमेष क्षयो वृत्तः कुरुपाण्डवसेनयोः ।
अपराह्णे गते सूर्ये काङ्क्षतां विपुलं यशः ॥ ४९ ॥

राजन् ! भीमसेनने कौरवों तथा आपकी गजसेनाको सर्वथा नष्ट कर दिया । इस प्रकार सूर्यदेवके अपराह्णकालमें जाते-जाते कौरव और पाण्डव दोनों सेनाओंमें महान् यशकी अभिलाषा रखनेवाले वीरोंका यह विनाश-कार्य सम्पन्न हुआ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें तुमुलयुद्धविषयक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

युधिष्ठिरके द्वारा दुर्योधनकी पराजय

धृतराष्ट्र उवाच

अतितीव्राणि दुःखानि दुःसहानि बहूनि च ।
त्वत्तोऽहं संजयाश्रौषं पुत्राणां चैव संक्षयम् ॥ १ ॥
यथा त्वं मे कथयसे तथा युद्धमवर्तत ।
न सन्ति सूत कौरव्या इति मे निश्चिता मतिः ॥ २ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! तुमसे मैंने अबतक अत्यन्त तीव्र और दुःसह दुःख देनेवाली बहुत-सी घटनाएँ सुनी हैं । अपने पुत्रोंके विनाशकी बात भी सुन ली । सूत ! जैसा तुम मुझसे कह रहे हो और जिस प्रकार वह युद्ध सम्पन्न हुआ, उसे देखते हुए मेरा यह दृढ़ निश्चय हो रहा है कि अब कुरुवंशी जीवित नहीं रहे ॥ १-२ ॥

दुर्योधनश्च विरथः कृतस्तत्र महारथः ।
धर्मपुत्रः कथं चक्रे तस्य वा नृपतिः कथम् ॥ ३ ॥

सुनता हूँ महारथी दुर्योधन भी वहाँ रथहीन कर दिया गया । धर्मपुत्र युधिष्ठिरने उसके साथ किस प्रकार युद्ध किया अथवा राजा दुर्योधनने युधिष्ठिरके प्रति कैसा बर्ताव किया ? ॥ ३ ॥

अपराह्णे कथं युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ।
तन्ममाचक्ष्व तत्त्वेन कुशलो ह्यसि संजय ॥ ४ ॥

संजय ! अपराह्णकालमें किस प्रकार वह रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ था ? यह मुझे ठीक-ठीक बताओ; क्योंकि तुम उसका वर्णन करनेमें कुशल हो ॥ ४ ॥

संजय उवाच

संसक्तेषु तु सैन्येषु वध्यमानेषु भागशः ।
रथमन्यं समास्थाय पुत्रस्तव विशाम्पते ॥ ५ ॥
क्रोधेन महता युक्तः सविषो भुजगो यथा ।

संजयने कहा—प्रजानाथ ! जब सारी सेनाएँ विभिन्न भागोंमें बँटकर जूझने और मरने लगीं, तब आपका पुत्र दुर्योधन दूसरे रथपर बैठकर विषधर सर्पके समान अत्यन्त कुपित हो उठा ॥ ५½ ॥

(सर्वसैन्यमुदीक्ष्यैव क्रोधादुद्वृत्तलोचनः ।
दृष्ट्वा धर्मसुतं चापि सैन्यमध्ये व्यवस्थितम् ॥
श्रिया ज्वलन्तं कौन्तेयं यथा वज्रधरं युधि ।)
दुर्योधनः समालक्ष्य धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ ६ ॥
प्रोवाच सूतं त्वरितो याहि याहीति भारत ।
तत्र मां प्रापय क्षिप्रं सारथे यत्र पाण्डवः ॥ ७ ॥
ध्रियमाणातपत्रेण राजा राजति दंशितः ।

सारी सेनाओंपर दृष्टिपात करके क्रोधसे उसकी आँखें घूमने लगीं । उस समय युद्धस्थलमें धर्मपुत्र कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर वज्रधारी इन्द्रके समान अपनी दिव्य कान्तिसे प्रकाशित होते हुए सेनाके बीचमें खड़े थे । भारत ! उन धर्मराज युधिष्ठिरको देखकर दुर्योधनने तुरंत अपने सारथिसे कहा—'सारथे ! चलो, चलो, जहाँ पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर कवच बाँध-

कर छत्र धारण किये सुशोभित हो रहे हैं, वहाँ मुझे शीघ्र पहुँचा दो' ॥ ६-७½ ॥

स सूतश्चोदितो राज्ञा राज्ञः स्यन्दनमुत्तमम् ॥ ८ ॥
युधिष्ठिरस्याभिमुखं प्रेषयामास संयुगे ।

राजा दुर्योधनसे इस प्रकार प्रेरित होकर सारथिने उस उत्तम रथको राजा युधिष्ठिरके सामने बढ़ाया ॥ ८½ ॥

ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धः प्रभिन्न इव कुञ्जरः ॥ ९ ॥
सारथिं चोदयामास याहि यत्र सुयोधनः ।

तब मदस्रावी हाथीके समान कुपित हुए राजा युधिष्ठिरने भी अपने सारथिको आज्ञा दी, 'जहाँ दुर्योधन है, वहीं चलो' ॥ ९½ ॥

तौ समाजग्मतुर्वीरौ भ्रातरौ रथसत्तमौ ॥ १० ॥
समेत्य च महावीरौ संरब्धौ युद्धदुर्मदौ ।
ववर्षतुर्महेष्वासौ शरैरन्योन्यमाहवे ॥ ११ ॥

इस प्रकार वे महाधनुर्धर, महावीर और महारथी दोनों रणदुर्मद बन्धु एक दूसरेके सामने आ गये और क्रोधपूर्वक आपसमें भिड़कर युद्धस्थलमें परस्पर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १०-११ ॥

ततो दुर्योधनो राजा धर्मशीलस्य मारिष ।
शिलाशितेन भल्लेन धनुश्चिच्छेद संयुगे ॥ १२ ॥

मान्यवर ! तदनन्तर युद्धस्थलमें राजा दुर्योधनने सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए भल्लसे धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरका धनुष काट दिया ॥ १२ ॥

तं नामृष्यत संक्रुद्धो ह्यवमानं युधिष्ठिरः ।
अपविध्य धनुश्छिन्नं क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ १३ ॥
अन्यत् कार्मुकमादाय धर्मपुत्रश्चमूमुखे ।
दुर्योधनस्य चिच्छेद ध्वजं कार्मुकमेव च ॥ १४ ॥

राजा युधिष्ठिर उस अपमानको सहन न कर सके। उनका क्रोध बहुत बढ़ गया। उनकी आँखें रोषसे लाल हो गयीं। उन्होंने उस कटे हुए धनुषको फेंककर दूसरा हाथमें ले लिया। फिर उन धर्मपुत्रने सेनाके मुहानेपर दुर्योधनके ध्वज और धनुषको भी काट डाला ॥

अथान्यद् धनुरादाय प्राविध्यत युधिष्ठिरम् ।
तावन्योन्यं सुसंक्रुद्धौ शस्त्रवर्षाण्यमुञ्चताम् ॥ १५ ॥

तत्पश्चात् दुर्योधनने दूसरा धनुष लेकर युधिष्ठिरको बींध डाला। वे दोनों वीर अत्यन्त क्रोधमें भरकर एक दूसरेपर अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे ॥ १५ ॥

सिंहाविव सुसंरब्धौ परस्परजिगीषया ।
जघ्नतुस्तौ रणेऽन्योन्यं नर्दमानौ वृषाविव ॥ १६ ॥

परस्पर विजयकी इच्छासे रोषमें भरे हुए दो सिंहोंके समान दहाड़ते अथवा दो साँड़ोंके समान गरजते हुए वे रणभूमिमें एक दूसरेपर चोट करते थे ॥ १६ ॥

अन्तरं मार्गमाणौ च चेरतुस्तौ महारथौ ।
ततः पूर्णायतोत्सृष्टैः शरैस्तौ तु कृतव्रणौ ॥ १७ ॥
विरेजतुर्महाराज किंशुकाविव पुष्पितौ ।

वे दोनों महारथी एक दूसरेका अन्तर (प्रहार करनेका अवसर) ढूँढ़ते हुए रणभूमिमें विचर रहे थे। महाराज ! धनुषको पूर्णतः खींचकर छोड़े गये बाणोंद्वारा वे दोनों वीर क्षत-विक्षत होकर फूले हुए दो पलाश वृक्षोंके समान शोभा पा रहे थे ॥ १७½ ॥

ततो राजन् विमुञ्चन्तौ सिंहनादान् मुहुर्मुहुः ॥ १८ ॥
तलयोश्च तथा शब्दान् धनुषश्च महाहवे ।
शङ्खशब्दवरांश्चैव चक्रतुस्तौ नरेश्वरौ ॥ १९ ॥

राजन् ! तब वे दोनों नरेश बारंबार सिंहनाद करते हुए उस महासमरमें तालियाँ बजाने, धनुषकी टंकार करने और उत्तम शङ्खनाद फैलाने लगे ॥ १८-१९ ॥

अन्योन्यं तौ महाराज पीडयाञ्चक्रतुर्भृशम् ।
ततो युधिष्ठिरो राजा पुत्रं तव शरैस्त्रिभिः ॥ २० ॥
आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रवेगैर्दुरासदैः ।

महाराज ! वे दोनों एक दूसरेको अत्यन्त पीड़ा दे रहे थे। तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने वज्रके समान वेगशाली एवं दुर्जय तीन बाणोंद्वारा आपके पुत्रकी छातीमें क्रोधपूर्वक प्रहार किया ॥ २०½ ॥

प्रतिविव्याध तं तूर्णं तव पुत्रो महीपतिः ॥ २१ ॥
पञ्चभिर्निशितैर्बाणैः स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।

आपके पुत्र राजा दुर्योधनने भी शिलापर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले पाँच पैने बाणोंद्वारा युधिष्ठिरको घायल करके तुरंत बदला चुकाया ॥ २१½ ॥

ततो दुर्योधनो राजा शक्तिं चिक्षेप भारत ॥ २२ ॥
सर्वपारशवीं तीक्ष्णां महोल्काप्रतिमां तदा ।

भारत ! इसके बाद राजा दुर्योधनने सम्पूर्णतः लोहेकी बनी हुई एक तीखी शक्ति चलायी, जो उस समय बड़ी भारी उल्काके समान प्रतीत हो रही थी ॥ २२½ ॥

तामापतन्तीं सहसा धर्मराजः शितैः शरैः ॥ २३ ॥
त्रिभिश्चिच्छेद सहसा तं च विव्याध पञ्चभिः ।

सहसा अपने ऊपर आती हुई उस शक्तिको धर्मराज युधिष्ठिरने तीन तीखे बाणोंसे तत्काल काट डाला और दुर्योधनको भी पाँच बाणोंसे घायल कर दिया ॥ २३½ ॥

निपपात ततः साथ स्वर्णदण्डा महास्वना ॥ २४ ॥
निपतन्ती महोल्केव व्यराजच्छिखिसंनिभा ।

सुवर्णमय दण्डवाली वह शक्ति आकाशसे गिरती हुई बड़ी भारी उल्काके समान महान् शब्दके साथ गिर पड़ी। उस समय वह अग्निके तुल्य प्रकाशित हो रही थी ॥२४½॥

शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा पुत्रस्तव विशाम्पते ॥ २५ ॥

नवभिर्निशितैर्भल्लैर्निजघान युधिष्ठिरम् ।

प्रजानाथ ! उस शक्तिको नष्ट हुई देख आपके पुत्रने नौ तीखे भल्लोंसे युधिष्ठिरको गहरी चोट पहुँचायी ॥२५½॥

सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुतापनः ॥ २६ ॥
दुर्योधनं समुद्दिश्य बाणं जग्राह सत्वरः ।
समाधत्त च तं बाणं धनुर्मध्ये महाबलः ॥ २७ ॥

बलवान् शत्रुके द्वारा अत्यन्त घायल किये जानेपर शत्रुओंको संताप देनेवाले महाबली युधिष्ठिरने दुर्योधनको लक्ष्य करके एक बाण हाथमें लिया और उसे धनुषके मध्यभागमें रखा ॥ २६-२७ ॥

चिक्षेप च महाराज ततः क्रुद्धः पराक्रमी ।
स तु बाणः समासाद्य तव पुत्रं महारथम् ॥ २८ ॥
व्यामोहयत राजानं धरणीं च ददार ह ।

महाराज ! तत्पश्चात् पराक्रमी युधिष्ठिरने उस बाणको क्रोधपूर्वक चला दिया । उस बाणने आपके महारथी पुत्र दुर्योधनको घायल करके उसे मूर्च्छित कर दिया और पृथ्वीको भी विदीर्ण कर डाला ॥ २८½ ॥

ततो दुर्योधनः क्रुद्धो गदामुद्यम्य वेगितः ॥ २९ ॥
विधित्सुः कलहस्यान्तं धर्मराजमुपाद्रवत् ।

उसके बाद क्रोधमें भरे हुए दुर्योधनने वेगपूर्वक गदा उठाकर कलहका अन्त कर देनेकी इच्छासे धर्मराज युधिष्ठिरपर आक्रमण किया ॥ २९½ ॥

तमुद्यतगदं दृष्ट्वा दण्डहस्तमिवान्तकम् ॥ ३० ॥
धर्मराजो महाशक्तिं प्राहिणोत् तव सूनवे ।
दीप्यमानां महावेगां महोल्कां ज्वलितामिव ॥ ३१ ॥

दण्डधारी यमराजके समान उसे गदा उठाये देख धर्मराजने आपके उस पुत्रपर अत्यन्त वेगशालिनी महाशक्तिका प्रहार किया, जो प्रज्वलित हुई बड़ी भारी उल्काके समान देदीप्यमान हो रही थी ॥ ३०-३१ ॥

रथस्थः स तया विद्धो वर्म भित्त्वा स्तनान्तरे ।
भृशं संविग्नहृदयः पपात च मुमोह च ॥ ३२ ॥

रथपर बैठे हुए ही दुर्योधनका कवच फाड़कर वह शक्ति उसकी छातीमें चुभ गयी । इससे अत्यन्त उद्विग्नचित्त होकर दुर्योधन गिरा और मूर्छित हो गया ॥ ३२ ॥

भीमस्तमाह च ततः प्रतिज्ञामनुचिन्तयन् ।
नायं वध्यस्तव नृप इत्युक्तः स न्यवर्तत ॥ ३३ ॥

उस समय भीमसेनने अपनी प्रतिज्ञाका विचार करते हुए युधिष्ठिरसे कहा—'महाराज ! यह राजा दुर्योधन आपका वध्य नहीं है ।' उनके ऐसा कहनेपर राजा युधिष्ठिर उसके वधसे निवृत्त हो गये ॥ ३३ ॥

ततस्त्वरितमागम्य कृतवर्मा तवात्मजम् ।
प्रत्यपद्यत राजानं निमग्नं व्यसनार्णवे ॥ ३४ ॥

तब कृतवर्मा विपत्तिके समुद्रमें डूबे हुए आपके पुत्र राजा दुर्योधनके पास तुरंत आकर उसकी रक्षाके लिये उद्यत हो गया ॥ ३४ ॥

गदामादाय भीमोऽपि हेमपट्टपरिष्कृताम् ।
अभिदुद्राव वेगेन कृतवर्माणमाहवे ॥ ३५ ॥

यह देख भीमसेन भी सुवर्णपत्रजटित गदा हाथमें लेकर युद्धस्थलमें बड़े वेगसे कृतवर्मापर टूट पड़े ॥ ३५ ॥

एवं तदभवद् युद्धं त्वदीयानां परैः सह ।
अपराह्णे महाराज काङ्क्षतां विजयं युधि ॥ ३६ ॥

महाराज ! इस प्रकार अपराह्णके समय रणक्षेत्रमें विजय चाहनेवाले आपके योद्धाओंका शत्रुओंके साथ भीषण युद्ध होने लगा ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें तुमुलयुद्धविषयक उन्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २९ ॥

त्रिंशोऽध्यायः

सात्यकि और कर्णका युद्ध तथा अर्जुनके द्वारा कौरव-सेनाका संहार और पाण्डवोंकी विजय

संजय उवाच

ततः कर्णं पुरस्कृत्य त्वदीया युद्धदुर्मदाः ।
पुनरावृत्य संग्रामं चक्रुर्देवासुरोपमम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर आपके रणदुर्मद योद्धा कर्णको आगे करके पुनः लौटकर देवताओं और असुरोंके समान संग्राम करने लगे ॥ १ ॥

द्विरदनररथाश्वशङ्खशब्दैः
परिहृषिता विविधैश्च शस्त्रपातैः ।
द्विरदरथपदातिसादिसंघाः
परिकुपिताभिमुखाः प्रजह्निरे ते ॥ २ ॥

हाथी, मनुष्य, रथ, घोड़ों और शङ्खके शब्दोंसे अत्यन्त हर्ष और उत्साहमें भरे हाथीसवार, रथी, पैदल और घुड़सवारोंके समुदाय क्रोधपूर्वक सामना करते हुए नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करके एक दूसरेको मारने लगे ॥ २ ॥

शितपरश्वधसासिपट्टिशै-
रिषुभिरनेकविधैश्च सूदिताः ।
द्विरदरथहया महाहवे
वरपुरुषैः पुरुषाश्च वाहनैः ॥ ३ ॥

उस महायुद्धमें श्रेष्ठ वीर पुरुषोंने वाहनों तथा तीखे

फरसों, तलवारों, पट्टिशों और अनेक प्रकारके बाणोंद्वारा सवारोंसहित हाथियों, रथों, घोड़ों एवं पैदल मनुष्योंका संहार कर डाला ॥ ३ ॥

कमलदिनकरेन्दुसंनिभैः
सितदशनैः सुमुखाक्षिनासिकैः ।
रुचिरमुकुटकुण्डलैर्मही
पुरुषशिरोभिरुपस्तृता बभौ ॥ ४ ॥

उस समय नरमुण्डोंसे ढकी हुई रणभूमिकी अद्भुत शोभा हो रही थी। वीरोंके वे कटे हुए मस्तक कमल, सूर्य और चन्द्रमाके समान कान्तिमान् थे। उनके सफेद दाँत चमक रहे थे। उनके मुख, नेत्र और नासिकाएँ भी बड़ी सुन्दर थीं और वे मनोहर मुकुट तथा कुण्डलोंसे मण्डित थे ॥ ४ ॥

परिघमुसलशक्तितोमरै-
र्नखरभुशुण्डिगदाशतैर्हताः ।
द्विरदनरहयाः सहस्रशो
रुधिरनदीप्रवहास्तदाभवन् ॥ ५ ॥

उस समय परिघ, मुसल, शक्ति, तोमर, नखर, भुशुण्डी और गदाओंकी सौ-सौ चोटें खाकर हजारों हाथी, मनुष्य और घोड़े खूनकी नदी बहाने लगे ॥ ५ ॥

प्रहतरथनराश्वकुञ्जरं
प्रतिभयदर्शनमुल्बणव्रणम् ।
तदहितहतमाबभौ बलं
पितृपतिराष्ट्रमिव प्रजाक्षये ॥ ६ ॥

नष्ट हुए रथ, मनुष्य, घोड़े और हाथियोंसे भरी एवं शत्रुओंकी मारी हुई वह सेना गहरे आघातोंसे युक्त हो प्रलयकालमें यमराजके राज्यकी भाँति बड़ी भयंकर दिखायी देती थी ॥ ६ ॥

अथ तव नरदेव सैनिका-
स्तव च सुताः सुरसूनुसंनिभाः ।
अमितबलपुरःसरा रणे
कुरुवृषभाः शिनिपौत्रमभ्ययुः ॥ ७ ॥

नरदेव ! तदनन्तर आपके सैनिक तथा देवकुमारोंके समान तेजस्वी कुरुकुलभूषण आपके पुत्र असंख्य सेना साथ लेकर रणभूमिमें शिनिपौत्र सात्यकिपर चढ़ आये ॥ ७ ॥

तदतिरुधिरभीममाबभौ
पुरुषवराश्वरथद्विपाकुलम् ।
लवणजलसमुद्धतस्वनं
बलमसुरामरसैन्यसप्रभम् ॥ ८ ॥

पैदल मनुष्यों, श्रेष्ठ घोड़ों, रथों और हाथियोंसे भरी और खारे पानीके समुद्रके समान भयंकर गर्जना करनेवाली वह सेना अत्यन्त रक्तरंजित होकर देवताओं और असुरोंकी सेनाके समान भयानक प्रतीत होती थी ॥ ८ ॥

सुरपतिसमविक्रमस्तत-
स्त्रिदशवरावरजोपमं युधि ।
दिनकरकिरणप्रभैः पृषत्कै
रवितनयोऽभ्यहनच्छिनिप्रवीरम् ॥ ९ ॥

उस समय देवराज इन्द्रके समान पराक्रमी सूर्यपुत्र कर्णने युद्धस्थलमें इन्द्रके छोटे भाई उपेन्द्रके समान शक्तिशाली शिनिवंशके प्रमुख वीर सात्यकिको सूर्यकी किरणोंके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा घायल कर दिया ॥ ९ ॥

तमपि सरथवाजिसारथिं
शिनिवृषभो विविधैः शरैस्त्वरन् ।
भुजगविषसमप्रभै रणे
पुरुषवरं समवास्तृणोत् तदा ॥ १० ॥

तब शिनिवंशशिरोमणि सात्यकिने बड़ी उतावलीके साथ विषधर सर्पोंके समान विषैले नाना प्रकारके बाणोंद्वारा रथ, घोड़े और सारथिसहित नरश्रेष्ठ कर्णको भी आच्छादित कर दिया ॥ १० ॥

शिनिवृषभशरैर्निपीडितं
तव सुहृदो वसुषेणमभ्ययुः ।
त्वरितमतिरथा रथर्षभं
द्विरदरथाश्वपदातिभिः सह ॥ ११ ॥

उस समय आपके हितैषी सुहृद् अतिरथी वीर वहाँ शिनिवंशशिरोमणि सात्यकिके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित हुए महारथी कर्णके पास हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंकी चतुरङ्गिणी सेना साथ लेकर तुरंत आ पहुँचे ॥ ११ ॥

तदुदधिनिभमाद्रवद् बलं
त्वरिततरैः समभिद्रुतं परैः ।
द्रुपदसुतमुखैस्तदाभवत्
पुरुषरथाश्वगजक्षयो महान् ॥ १२ ॥

तत्पश्चात् धृष्टद्युम्न आदि शीघ्रकारी शत्रुओंने आपकी समुद्र-सदृश विशाल वाहिनीपर आक्रमण किया और आपकी सेना भी शत्रुओंकी ओर दौड़ी। फिर तो वहाँ मनुष्यों, रथों, घोड़ों और हाथियोंका महान् संहार होने लगा ॥ १२ ॥

अथ पुरुषवरौ कृताह्निकौ
भवमभिपूज्य यथाविधि प्रभुम् ।
अरिवधकृतनिश्चयौ द्रुतं
तव बलमर्जुनकेशवौ सृतौ ॥ १३ ॥

तदनन्तर अपराह्नकालके कृत्य समाप्त करके विधिपूर्वक भगवान् शङ्करकी पूजा करनेके पश्चात् नरश्रेष्ठ अर्जुन और श्रीकृष्ण शत्रुओंके वधका निश्चय करके तुरंत आपकी सेनापर चढ़ आये ॥ १३ ॥

जलदनिनदनिःस्वनं रथं
पवननिधूतपताककेतनम् ।

सितहयमुपयान्तमन्तिकं
हतमनसो ददृशुस्तदारयः ॥ १४ ॥

अर्जुनके रथसे मेघकी गर्जनाके समान गम्भीर ध्वनि हो रही थी, पवनकी प्रेरणा पाकर उसकी ऊँची पताका फहरा रही थी और उसमें श्वेत घोड़े जुते हुए थे। उस समय शत्रुओंने उत्साहशून्य हृदयसे उस रथको समीप आते देखा ॥ १४ ॥

अथ विस्फार्य गाण्डीवं रथे नृत्यन्निवार्जुनः ।
शरसम्बाधमकरोत् खं दिशः प्रदिशस्तथा ॥ १५ ॥

इसके बाद रथपर नृत्य करते हुए-से अर्जुनने गाण्डीव धनुषको फैलाकर आकाश, दिशा और विदिशाओं-को बाणोंसे भर दिया ॥ १५ ॥

रथान् विमानप्रतिमान् मज्जयन् सायुधध्वजान् ।
ससारथींस्तदा बाणैरभ्राणीवानिलोऽवधीत् ॥ १६ ॥

जैसे वायु मेघोंकी घटाको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार उस समय अर्जुनने अपने बाणोंद्वारा विमान-जैसे रथोंको आयुध, ध्वज और सारथियोंसहित नष्ट कर दिया ॥ १६ ॥

गजान् गजप्रयन्तॄंश्च वैजयन्त्यायुधध्वजान् ।
सादिनोऽश्वांश्च पत्तींश्च शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ १७ ॥

उन्होंने अपने तीखे बाणोंसे पताका, ध्वज और आयुधोंसहित गजों एवं गजारोहियोंको, घोड़ों और घुड़सवारोंको तथा पैदल मनुष्योंको भी यमलोक भेज दिया ॥

तमन्तकमिव क्रुद्धमनिवार्यं महारथम् ।
दुर्योधनोऽभ्ययादेको निघ्नन् बाणैरजिह्मगैः ॥ १८ ॥

इस प्रकार क्रोधमें भरे हुए यमराजके समान अबाध गतिवाले महारथी अर्जुनपर सीधे जानेवाले बाणोंसे प्रहार करता हुआ अकेला दुर्योधन उनका सामना करनेके लिये गया ॥ १८ ॥

तस्यार्जुनो धनुः सूतमश्वान् केतुं च सायकैः ।
हत्वा सप्तभिरेकेन छत्रं चिच्छेद पत्रिणा ॥ १९ ॥

अर्जुनने सात बाणोंसे दुर्योधनके धनुष, सारथि, घोड़ों और ध्वजको नष्ट करके एक बाणसे उसका छत्र भी काट डाला ॥ १९ ॥

नवमं च समाधाय व्यसृजत् प्राणघातिनम् ।
दुर्योधनायेषुवरं तं द्रौणिः सप्तधाच्छिनत् ॥ २० ॥

फिर नवें प्राणघातक बाणको धनुषपर रखकर उन्होंने दुर्योधनकी ओर चला दिया; परंतु अश्वत्थामाने उस उत्तम बाणके सात टुकड़े कर डाले ॥ २० ॥

ततो द्रौणेर्धनुश्छित्त्वा हत्वा चाश्वरथाञ्शरैः ।
कृपस्यापि तदत्युग्रं धनुश्चिच्छेद पाण्डवः ॥ २१ ॥

तब पाण्डुकुमार अर्जुनने अश्वत्थामाका धनुष काटकर उसके रथ और घोड़ोंको नष्ट करके अपने बाणोंद्वारा कृपाचार्यके अत्यन्त भयंकर धनुषको भी खण्डित कर दिया ॥ २१ ॥

हार्दिक्यस्य धनुश्छित्त्वा
ध्वजं चाश्वांस्तदावधीत् ।
दुःशासनस्येष्वसनं
छित्त्वा राधेयमभ्ययात् ॥ २२ ॥

इसके बाद उन्होंने कृतवर्माका धनुष काटकर उसके ध्वज और घोड़ोंको भी तत्काल नष्ट कर दिया। फिर दुःशासनके धनुषके टुकड़े-टुकड़े करके राधापुत्र कर्णपर आक्रमण किया ॥ २२ ॥

अथ सात्यकिमुत्सृज्य
त्वरन् कर्णोऽर्जुनं त्रिभिः ।
विद्ध्वा विव्याध विंशत्या
कृष्णं पार्थं पुनः पुनः ॥ २३ ॥

तदनन्तर कर्णने सात्यकिको छोड़कर अर्जुनको तीन बाणोंसे बींध डाला। फिर बीस बाण मारकर श्रीकृष्णको भी घायल कर दिया। इस प्रकार वह दोनोंको बारंबार चोट पहुँचाने लगा ॥ २३ ॥

न ग्लानिरासीत् कर्णस्य
क्षिपतः सायकान् बहून् ।
रणे विनिघ्नतः शत्रून्
क्रुद्धस्येव शतक्रतोः ॥ २४ ॥

उस समय कर्ण क्रोधमें भरे हुए इन्द्रके समान रणभूमि-में बहुत-से बाणोंकी वर्षा करके शत्रुओंका संहार कर रहा था; परंतु उसे इस कार्यमें तनिक भी क्लेश अथवा थकावटका अनुभव नहीं होता था ॥ २४ ॥

अथ सात्यकिरागत्य कर्णं विद्ध्वा शितैः शरैः ।
नवत्या नवभिश्चोग्रैः शतेन पुनरार्पयत् ॥ २५ ॥

फिर सात्यकिने भी लौटकर कर्णको तीखे बाणोंसे घायल करके पुनः उसे एक सौ निन्यानबे भयंकर बाण मारे ॥

ततः प्रवीराः पार्थानां सर्वे कर्णमपीडयन् ।
युधामन्युः शिखण्डी च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ॥ २६ ॥
उत्तमौजा युयुत्सुश्च यमौ पार्षत एव च ।
चेदिकारूषमत्स्यानां केकयानां च यद् बलम् ॥ २७ ॥
चेकितानश्च बलवान् धर्मराजश्च सुव्रतः ।
एते रथाश्वद्विरदैः पत्तिभिश्चोग्रविक्रमैः ॥ २८ ॥
परिवार्य रणे कर्णं नानाशस्त्रैरवाकिरन् ।
भाषन्तो वाग्भिरुग्राभिः सर्वे कर्णवधे धृताः ॥ २९ ॥

इसके बाद कुन्तीपुत्रोंकी सेनाके सभी प्रमुख वीर कर्णको पीड़ा देने लगे। युधामन्यु, शिखण्डी, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, प्रभद्रकगण, उत्तमौजा, युयुत्सु, नकुल-सहदेव,

धृष्टद्युम्न, चेदि, कारूष, मत्स्य और केकय देशोंकी सेनाएँ, बलवान् चेकितान तथा उत्तम व्रतका पालन करनेवाले धर्मराज युधिष्ठिर—ये भयंकर पराक्रम प्रकट करनेवाले रथी, घुड़सवार, हाथीसवार और पैदल सैनिकों-द्वारा रणभूमिमें कर्णको चारों ओरसे घेरकर उसके ऊपर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। सभी भयंकर वचन बोलते हुए वहाँ कर्णके वधका निश्चय कर चुके थे॥

तां शस्त्रवृष्टिं बहुधा कर्णश्छित्त्वा शितैः शरैः।
अपोवाहास्त्रवीर्येण द्रुमं भङ्क्त्वेव मारुतः॥ ३०॥

जैसे प्रचण्ड वायु वृक्षको तोड़कर गिरा देती है, उसी प्रकार कर्ण अपने तीखे बाणोंसे शत्रुओंकी उस शस्त्रवर्षाको बहुधा छिन्न-भिन्न करके अपने अस्त्रबलसे दूर हटा दिया॥ ३०॥

रथिनः समहामात्रान् गजानश्वान् ससादिनः।
पत्तिव्रातांश्च संक्रुद्धो निघ्नन् कर्णो व्यदृश्यत॥ ३१॥

क्रोधमें भरा हुआ कर्ण रथियों, महावतोंसहित हाथियों, सवारोंसहित घोड़ों तथा पैदल-समूहोंका वध करता देखा जा रहा था॥ ३१॥

तद् वध्यमानं पाण्डूनां बलं कर्णास्त्रतेजसा।
विशस्त्रपत्रदेहासु प्राय आसीत् पराङ्मुखम्॥ ३२॥

कर्णके अस्त्रोंके तेजसे मारी जाती हुई पाण्डवोंकी सेना शस्त्र, वाहन, शरीर और प्राणोंसे रहित हो प्रायः रणभूमिसे विमुख होकर भाग चली॥ ३२॥

अथ कर्णास्त्रमस्त्रेण प्रतिहत्यार्जुनः स्मयन्।
दिशं खं चैव भूमिं च प्रावृणोच्छरवृष्टिभिः॥ ३३॥

तब अर्जुनने मुस्कराते हुए अपने अस्त्रसे कर्णके अस्त्रको नष्ट करके बाणोंकी वर्षाद्वारा आकाश, दिशा और पृथ्वीको आच्छादित कर दिया॥ ३३॥

मुसलानीव सम्पेतुः परिघा इव चेषवः।
शतघ्न्य इव चाप्यन्ये वज्राण्युग्राणि चापरे॥ ३४॥

उनके कुछ बाण मुसलोंके समान गिरते थे, कुछ परिघोंके समान, कुछ शतघ्नियोंके तुल्य तथा कुछ दूसरे बाण भयंकर वज्रोंके समान शत्रुओंपर पड़ते थे॥ ३४॥

तैर्वध्यमानं तत् सैन्यं सपत्त्यश्वरथद्विपम्।
निमीलिताक्षमत्यर्थं बभ्राम च ननाद च॥ ३५॥

उन बाणोंसे हताहत होती हुई पैदल, घोड़े, रथ और हाथियोंसे युक्त कौरवसेना आँख मूँदकर जोर-जोरसे चिल्लाने और चक्कर काटने लगी॥ ३५॥

निष्कैवल्यं तदा युद्धं प्रापुरश्वनरद्विपाः।
हन्यमानाः शरैरार्तास्तदा भीताः प्रदुद्रुवुः॥ ३६॥

उस समय घोड़े, हाथी और मनुष्योंको ऐसा युद्ध प्राप्त हुआ, जिसमें मृत्यु निश्चित है। उन सब लोगोंपर जब बाणोंकी मार पड़ने लगी, तब वे सब-के-सब आर्त और भयभीत होकर भाग चले॥ ३६॥

त्वदीयानां तदा युद्धे संसक्तानां जयैषिणाम्।
गिरिमस्तं समासाद्य प्रत्यपद्यत भानुमान्॥ ३७॥

इस प्रकार जब आपके विजयाभिलाषी सैनिक युद्धमें संलग्न हो रहे थे, उसी समय सूर्यदेव अस्ताचल पहुँचकर डूब गये॥ ३७॥

तमसा च महाराज रजसा च विशेषतः।
न किंचित् प्रत्यपश्याम शुभं वा यदि वाशुभम्॥ ३८॥

महाराज! उस समय अन्धकार और विशेषतः धूलसे सब कुछ आच्छादित होनेके कारण हमलोग किसी भी शुभ या अशुभ वस्तुको देख नहीं पाते थे॥ ३८॥

ते त्रसन्तो महेष्वासा रात्रियुद्धस्य भारत।
अपयानं ततश्चक्रुः सहिताः सर्वयोधिभिः॥ ३९॥

भारत! वे महाधनुर्धर योद्धा रात्रियुद्धसे डरते थे। इसलिये समस्त सैनिकोंके साथ उन्होंने वहाँसे शिविरको प्रस्थान कर दिया॥ ३९॥

कौरवेष्वपयातेषु तदा राजन् दिनक्षये।
जयं सुमनसः प्राप्य पार्थाः स्वशिबिरं ययुः॥ ४०॥
वादित्रशब्दैर्विविधैः सिंहनादैः सगर्जितैः।
परानुपहसन्तश्च स्तुवन्तश्चाच्युतार्जुनौ॥ ४१॥

राजन्! दिनके अन्तमें कौरवोंके हट जानेपर पाण्डव भी विजय पाकर प्रसन्नचित्त हो भाँति-भाँतिके बाजोंकी आवाज, सिंहनाद और गर्जनाके द्वारा शत्रुओंका उपहास और श्रीकृष्ण तथा अर्जुनकी स्तुति करते हुए अपने शिबिरको लौट गये॥ ४०-४१॥

कृतेऽवहारे तैर्वीरैः सैनिकाः सर्व एव ते।
आशीर्वाचः पाण्डवेषु प्रायुञ्जन्त नरेश्वराः॥ ४२॥

उन वीरोंके द्वारा युद्धका उपसंहार कर दिये जानेपर समस्त सैनिक और नरेश पाण्डवोंको आशीर्वाद देने लगे॥

ततः कृतेऽवहारे च प्रहृष्टास्तत्र पाण्डवाः।
निशायां शिबिरं गत्वा न्यवसन्त नरेश्वराः॥ ४३॥

इस प्रकार सैनिकोंके लौटा लिये जानेपर हर्षमें भरे हुए पाण्डव-पक्षीय नरेश रातको शिबिरमें जाकर सो रहे॥ ४३॥

ततो रक्षःपिशाचाश्च श्वापदाश्चैव संघशः।
जग्मुरायोधनं घोरं रुद्रस्याक्रीडसंनिभम्॥ ४४॥

तदनन्तर रुद्रके क्रीडास्थल (श्मशान) सदृश उस भयंकर युद्धभूमिमें राक्षस, पिशाच और झुंड-के-झुंड हिंसक जीव-जन्तु जा पहुँचे॥ ४४॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि प्रथमे युद्धदिवसे त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्णके सेनापतित्वमें प्रथम दिनका युद्धविषयक तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३०॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

रात्रिमें कौरवोंकी मन्त्रणा, धृतराष्ट्रके द्वारा दैवकी प्रबलताका प्रतिपादन, संजयद्वारा धृतराष्ट्रपर दोषारोप तथा कर्ण और दुर्योधनकी बातचीत

धृतराष्ट्र उवाच

स्वेनच्छन्देन नः सर्वानवधीद् व्यक्तमर्जुनः ।
न ह्यस्य समरे मुच्येदन्तकोऽप्याततायिनः ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—संजय ! निश्चय ही अर्जुनने अपनी इच्छासे हमारे सब सैनिकोंका वध किया । समराङ्गणमें यदि वे शस्त्र उठा लें तो यमराज भी उनके हाथसे जीवित नहीं छूट सकता ॥ १ ॥

पार्थश्चैकोऽहरद् भद्रामेकश्चाग्निमतर्पयत् ।
एकश्चेमां महीं जित्वा चक्रे बलिभृतो नृपान् ॥ २ ॥

अर्जुनने अकेले ही सुभद्राका अपहरण किया, अकेले ही खाण्डव वनमें अग्निदेवको तृप्त किया और अकेले ही इस पृथ्वीको जीतकर सम्पूर्ण नरेशोंको कर देनेवाला बना दिया ॥

एको निवातकवचानहनद् दिव्यकार्मुकः ।
एकः किरातरूपेण स्थितं शर्वमयोधयत् ॥ ३ ॥

उन्होंने दिव्य धनुष धारण करके अकेले ही निवातकवचों-का संहार कर डाला और किरातरूप धारण करके खड़े हुए महादेवजीके साथ भी अकेले ही युद्ध किया ॥ ३ ॥

एको ह्यरक्षद् भरतानेको भवमतोषयत् ।
तेनैकेन जिताः सर्वे महीपा ह्युग्रतेजसा ॥ ४ ॥

अर्जुनने अकेले ही घोषयात्राके समय दुर्योधन आदि भरतवंशियोंकी रक्षा की, अकेले ही अपने पराक्रमसे महादेवजीको संतुष्ट किया और उन उग्रतेजस्वी वीरने अकेले ही (विराट-नगरमें) कौरव-दलके समस्त भूमिपालोंको पराजित किया था ॥

न ते निन्द्याः प्रशस्यास्ते यत्ते चक्रुर्ब्रवीहि तत् ।
ततो दुर्योधनः सूत पश्चात् किमकरोत् तदा ॥ ५ ॥

इसलिये वे हमारे पक्षके सैनिक या नरेश निन्दनीय नहीं हैं, प्रशंसाके ही पात्र हैं । उन्होंने जो कुछ किया हो, बताओ । सूत ! सेनाके शिबिरमें लौट आनेके पश्चात् उस समय दुर्योधनने क्या किया ? ॥ ५ ॥

संजय उवाच

हतप्रहतविध्वस्ता विवर्मायुधवाहनाः ।
दीनस्वरा दूयमाना मानिनः शत्रुनिर्जिताः ॥ ६ ॥

संजय बोले—राजन् ! कौरव सैनिक बाणोंसे घायल, छिन्न-भिन्न अवयवोंसे युक्त और अपने वाहनोंसे भ्रष्ट हो गये थे । उनके कवच, आयुध और वाहन नष्ट हो गये थे । उनके स्वरोंमें दीनता थी । शत्रुओंसे पराजित होनेके कारण वे स्वाभिमानी कौरव मन-ही-मन बहुत दुःख पा रहे थे ॥ ६ ॥

शिबिरस्थाः पुनर्मन्त्रं मन्त्रयन्ति स्म कौरवाः ।
भग्नदंष्ट्रा हतविषाः पादाक्रान्ता इवोरगाः ॥ ७ ॥

शिबिरमें आनेपर वे कौरव पुनः गुप्त मन्त्रणा करने लगे । उस समय उनकी दशा पैरसे कुचले गये उन सर्पोंके समान हो रही थी, जिनके दाँत तोड़ दिये और विष नष्ट कर दिये गये हों ॥ ७ ॥

तानब्रवीत् ततः कर्णः क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् ।
करं करेण निष्पीड्य प्रेक्षमाणस्तवात्मजम् ॥ ८ ॥

उस समय क्रोधमें भरकर फुफकारते हुए सर्पके समान कर्णने हाथ-से-हाथ दबाकर आपके पुत्रकी ओर देखते हुए उन कौरव वीरोंसे इस प्रकार कहा—॥ ८ ॥

यत्तो दृढश्च दक्षश्च धृतिमानर्जुनस्तदा ।
सम्बोधयति चाप्येनं यथाकालमधोक्षजः ॥ ९ ॥

'अर्जुन सावधान, दृढ़, चतुर और धैर्यवान् हैं । साथ ही उन्हें समय-समयपर श्रीकृष्ण भी कर्तव्यका ज्ञान कराते रहते हैं ॥ ९ ॥

सहसास्त्रविसर्गेण वयं तेनाद्य वञ्चिताः ।
श्वस्त्वहं तस्य संकल्पं सर्वं हन्ता महीपते ॥ १० ॥

'इसीलिये उन्होंने सहसा अस्त्रोंका प्रयोग करके आज हमें ठग लिया है; परंतु भूपाल ! कल मैं उनके सारे मनसूबे-को नष्ट कर दूँगा' ॥ १० ॥

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा सोऽनुजज्ञे नृपोत्तमान् ।
तेऽनुज्ञाता नृपाः सर्वे स्वानि वेश्मानि भेजिरे ॥ ११ ॥

कर्णके ऐसा कहनेपर दुर्योधनने 'तथास्तु' कहकर समस्त श्रेष्ठ राजाओंको विश्रामके लिये जानेकी आज्ञा दी । आज्ञा पाकर वे सब नरेश अपने-अपने शिबिरोंमें चले गये ॥ ११ ॥

सुखोषितास्तां रजनीं हृष्टा युद्धाय निर्ययुः ।
तेऽपश्यन् विहितं व्यूहं धर्मराजेन दुर्जयम् ॥ १२ ॥
प्रयत्नात् कुरुमुख्येन बृहस्पत्युशनोमते ।

वहाँ रातभर सुखसे रहे । फिर प्रसन्नतापूर्वक युद्धके लिये निकले । निकलकर उन्होंने देखा कि कुरुवंशके श्रेष्ठ पुरुष धर्मराज युधिष्ठिरने बृहस्पति और शुक्राचार्यके मतके अनुसार प्रयत्नपूर्वक अपनी सेनाका दुर्जय व्यूह बना रक्खा है ॥ १२½ ॥

अथ प्रतीपकर्तारं प्रवीरं परवीरहा ॥ १३ ॥
सस्मार वृषभस्कन्धं कर्णं दुर्योधनस्तदा ।

तदनन्तर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले दुर्योधनने शत्रुओं-के विरुद्ध व्यूह-रचनामें समर्थ और वृषभके समान पुष्ट कंधोंवाले प्रमुख वीर कर्णका स्मरण किया ॥ १३½ ॥

पुरंदरसमं युद्धे मरुद्गणसमं बले ॥ १४ ॥
कार्तवीर्यसमं वीर्ये कर्णं राज्ञोऽगमन्मनः ।

कर्ण युद्धमें इन्द्रके समान पराक्रमी, मरुद्गणोंके समान बलवान् तथा कार्तवीर्य अर्जुनके समान शक्तिशाली था। राजा दुर्योधनका मन उसीकी ओर गया ॥ १४½ ॥

सर्वेषां चैव सैन्यानां कर्णमेवागमन्मनः।
सूतपुत्रं महेष्वासं बन्धुमात्ययिकेष्विव ॥ १५ ॥

जैसे प्राण-संकटकालमें लोग अपने बन्धुजनोंका स्मरण करते हैं, उसी प्रकार समस्त सेनाओंमेंसे केवल महाधनुर्धर सूतपुत्र कर्णकी ओर ही उसका मन गया ॥ १५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

ततो दुर्योधनः सूत पश्चात् किमकरोत्तदा।
यद्वोऽगमन्मनो मन्दाः कर्णं वैकर्तनं प्रति ॥ १६ ॥
अप्यपश्यत राधेयं शीतार्ता इव भास्करम्।

धृतराष्ट्रने पूछा—सूत ! तत्पश्चात् दुर्योधनने क्या किया। मूर्खो ! तुमलोगोंका मन जो वैकर्तन कर्णकी ओर गया था, उसका क्या कारण है। जैसे शीतसे पीड़ित हुए प्राणी सूर्यकी ओर देखते हैं, क्या उसी प्रकार तुमलोग भी राधापुत्र कर्णकी ओर देखते थे ? ॥ १६½ ॥

कृतेऽवहारे सैन्यानां प्रवृत्ते च रणे पुनः ॥ १७ ॥
कथं वैकर्तनः कर्णस्तत्रायुध्यत संजय।
कथं च पाण्डवाः सर्वे युयुधुस्तत्र सूतजम् ॥ १८ ॥

संजय ! सेनाको शिविरकी ओर लौटानेके बाद जब रात बीती और प्रातःकाल पुनः संग्राम आरम्भ हुआ, उस समय वैकर्तन कर्णने वहाँ किस प्रकार युद्ध किया तथा समस्त पाण्डवोंने सूतपुत्र कर्णके साथ किस प्रकार युद्ध आरम्भ किया ?॥

कर्णो ह्येको महाबाहुर्हन्यात् पार्थान् ससृंजयान्।
कर्णस्य भुजयोर्वीर्यं शक्रविष्णुसमं युधि ॥ १९ ॥
तस्य शस्त्राणि घोराणि विक्रमश्च महात्मनः।
कर्णमाश्रित्य संग्रामे मत्तो दुर्योधनो नृपः ॥ २० ॥

'अकेला महाबाहु कर्ण सृंजयोंसहित समस्त कुन्तीपुत्रोंको मार सकता है। युद्धमें कर्णका बाहुबल इन्द्र और विष्णुके समान है। उसके अस्त्र-शस्त्र भयंकर हैं तथा उस महामनस्वी वीरका पराक्रम भी अद्भुत है।' यह सब सोचकर राजा दुर्योधन संग्राममें कर्णका सहारा ले मतवाला हो उठा था ॥

दुर्योधनं ततो दृष्ट्वा पाण्डवेन भृशार्दितम्।
पराक्रान्तान् पाण्डुसुतान् दृष्ट्वा चापि महारथः ॥ २१ ॥

किंतु उस समय पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरद्वारा दुर्योधनको अत्यन्त पीड़ित होते और पाण्डुपुत्रोंको पराक्रम प्रकट करते देखकर भी महारथी कर्णने क्या किया ?॥ २१ ॥

कर्णमाश्रित्य संग्रामे मन्दो दुर्योधनः पुनः।
जेतुमुत्सहते पार्थान् सपुत्रान् सहकेशवान् ॥ २२ ॥

मूर्ख दुर्योधन संग्राममें कर्णका आश्रय लेकर पुनः पुत्रों-सहित कुन्तीकुमारों और श्रीकृष्णको जीतनेके लिये उत्साहित हुआ था ॥ २२ ॥

अहो बत महद् दुःखं यत्र पाण्डुसुतान् रणे।
नातरद् रभसः कर्णो दैवं नूनं परायणम्' ॥ २३ ॥

अहो ! यह महान् दुःखकी बात है कि वेगशाली वीर कर्ण भी रणभूमिमें पाण्डवोंसे पार न पा सका। अवश्य दैव ही सबका परम आश्रय है ॥ २३ ॥

अहो द्यूतस्य निष्ठेयं घोरा सम्प्रति वर्तते।
अहो तीव्राणि दुःखानि दुर्योधनकृतान्यहम् ॥ २४ ॥
सोढा घोराणि बहुशः शल्यभूतानि संजय।

अहो ! द्यूतक्रीडाका यह घोर परिणाम इस समय प्रकट हुआ है। संजय ! आश्चर्य है कि मैंने दुर्योधनके कारण बहुत-से तीव्र एवं भयंकर दुःख, जो काँटोंके समान कसक रहे हैं, सहन किये हैं ॥ २४½ ॥

सौबलं च तदा तात नीतिमानिति मन्यते ॥ २५ ॥
कर्णश्च रभसो नित्यं राजा तं चाप्यनुव्रतः।

तात ! दुर्योधन उन दिनों शकुनिको बड़ा नीतिज्ञ मानता था तथा वेगशाली वीर कर्ण भी नीतिज्ञ है, ऐसा समझकर राजा दुर्योधन उसका भी भक्त बना रहा ॥ २५½ ॥

यदेवं वर्तमानेषु महायुद्धेषु संजय ॥ २६ ॥
अश्रौषं निहतान् पुत्रान् नित्यमेव विनिर्जितान्।
न पाण्डवानां समरे कश्चिदस्ति निवारकः ॥ २७ ॥
स्त्रीमध्यमिव गाहन्ते दैवं तु बलवत्तरम्।

संजय ! इस प्रकार वर्तमान महान् युद्धोंमें जो मैं प्रतिदिन ही अपने कुछ पुत्रोंको मारा गया और कुछको पराजित हुआ सुनता आ रहा हूँ, इससे मुझे यह विश्वास हो गया है कि समराङ्गणमें कोई भी ऐसा वीर नहीं है, जो पाण्डवोंको रोक सके। जैसे लोग स्त्रियोंके बीचमें निर्भय प्रवेश कर जाते हैं, उसी प्रकार पाण्डव मेरी सेनामें बेखटके घुस जाते हैं। अवश्य इस विषयमें दैव ही अत्यन्त प्रबल हैं ॥ २६-२७½ ॥

संजय उवाच

राजन् पूर्वनिमित्तानि धर्मिष्ठानि विचिन्तय ॥ २८ ॥
अतिक्रान्तं हि यत् कार्यं पश्चाच्चिन्तयते नरः।
तच्चास्य न भवेत् कार्यं चिन्तया च विनश्यति ॥ २९ ॥

संजयने कहा—राजन् ! पूर्वकालमें आपने जो द्यूतक्रीडा आदि धर्मसङ्गत कारण उपस्थित किये थे, उन्हें याद तो कीजिये। जो मनुष्य बीती हुई बातके लिये पीछे चिन्ता करता है, उसका वह कार्य तो सिद्ध होता नहीं, केवल चिन्ता करनेसे वह स्वयं नष्ट हो जाता है ॥ २८-२९ ॥

तदिदं तव कार्यं तु दूरप्राप्तं विजानता।
न कृतं यत् त्वया पूर्वं प्राप्ताप्राप्तविचारणम् ॥ ३० ॥

पाण्डवोंके राज्यके अपहरणरूपी इस कार्यमें सफलता मिलनी आपके लिये दूरकी बात थी। यह जानते हुए भी आपने पहले इस बातका विचार नहीं किया कि यह उचित है या अनुचित ॥ ३० ॥

उक्तोऽसि बहुधा राजन् मा युध्यस्वेति पाण्डवैः ।
गृह्णीषे न च तन्मोहाद् वचनं च विशाम्पते ॥ ३१ ॥

राजन् ! पाण्डवोंने तो आपसे बारंबार कहा था कि 'आप युद्ध न छेड़िये ।' किंतु प्रजानाथ ! आपने मोहवश उनकी बात नहीं मानी ॥ ३१ ॥

त्वया पापानि घोराणि समाचीर्णानि पाण्डुषु ।
त्वत्कृते वर्तते घोरः पार्थिवानां जनक्षयः ॥ ३२ ॥

आपने पाण्डवोंपर भयंकर अत्याचार किये हैं । आपके ही कारण राजाओंद्वारा यह घोर नरसंहार हो रहा है ॥ ३२ ॥

तत्त्विदानीमतिक्रान्तं मा शुचो भरतर्षभ ।
शृणु सर्वं यथावृत्तं घोरं वैशसमुच्यते ॥ ३३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! वह बात तो अब बीत गयी । उसके लिये शोक न करें । युद्धका सारा वृत्तान्त यथावत् रूपसे सुनें । मैं उस भयंकर विनाशका वर्णन करता हूँ ॥ ३३ ॥

प्रभातायां रजन्यां तु कर्णो राजानमभ्ययात् ।
समेत्य च महाबाहुर्दुर्योधनमथाब्रवीत् ॥ ३४ ॥

जब रात बीती और प्रातःकाल हो गया, तब महाबाहु कर्ण राजा दुर्योधनके पास आया और उससे मिलकर इस प्रकार बोला ॥ ३४ ॥

कर्ण उवाच

अद्य राजन् समेष्यामि पाण्डवेन यशस्विना ।
निहनिष्यामि तं वीरं स वा मां निहनिष्यति ॥ ३५ ॥

कर्णने कहा—राजन् ! आज मैं यशस्वी पाण्डुपुत्र अर्जुनके साथ संग्राम करूँगा । या तो मैं ही उस वीरको मार डालूँगा या वही मेरा वध कर डालेगा ॥ ३५ ॥

बहुत्वान्मम कार्याणां तथा पार्थस्य भारत ।
नाभूत् समागमो राजन् मम चैवार्जुनस्य च ॥ ३६ ॥

भरतवंशी नरेश ! मेरे तथा अर्जुनके सामने बहुत-से कार्य आते गये; इसीलिये अबतक मेरा और उनका द्वैरथ युद्ध न हो सका ॥ ३६ ॥

इदं तु मे यथाप्राज्ञं शृणु वाक्यं विशाम्पते ।
अनिहत्य रणे पार्थं नाहमेष्यामि भारत ॥ ३७ ॥

प्रजानाथ ! भरतनन्दन ! मैं अपनी बुद्धिके अनुसार निश्चय करके यह जो बात कह रहा हूँ, उसे ध्यान देकर सुनो । आज मैं रणभूमिमें अर्जुनका वध किये बिना नहीं लौटूँगा ॥ ३७ ॥

हतप्रवीरे सैन्येऽस्मिन् मयि चावस्थिते युधि ।
अभियास्यति मां पार्थः शक्रशक्तिविनाकृतम् ॥ ३८ ॥

हमारी इस सेनाके प्रमुख वीर मारे गये हैं । अतः मैं युद्धमें जब इस सेनाके भीतर खड़ा होऊँगा, उस समय अर्जुन मुझे इन्द्रकी दी हुई शक्तिसे वञ्चित जानकर अवश्य मुझपर आक्रमण करेंगे ॥ ३८ ॥

ततः श्रेयस्करं यच्च तन्निबोध जनेश्वर ।
आयुधानां च मे वीर्यं दिव्यानामर्जुनस्य च ॥ ३९ ॥

जनेश्वर ! अब जो यहाँ हितकर बात है, उसे सुनिये । मेरे तथा अर्जुनके पास भी दिव्यास्त्रोंका समान बल है ॥ ३९ ॥

कायस्य महतो भेदे लाघवे दूरपातने ।
सौष्ठवे चास्त्रपाते च सव्यसाची न मत्समः ॥ ४० ॥

हाथी आदिके विशाल शरीरका भेदन करने, शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलाने, दूरका लक्ष्य वेधने, सुन्दर रीतिसे युद्ध करने तथा दिव्यास्त्रोंके प्रयोगमें भी सव्यसाची अर्जुन मेरे समान नहीं हैं ॥ ४० ॥

प्राणे शौर्येऽथ विज्ञाने विक्रमे चापि भारत ।
निमित्तज्ञानयोगे च सव्यसाची न मत्समः ॥ ४१ ॥

भारत ! शारीरिक बल, शौर्य, अस्त्रविज्ञान, पराक्रम तथा शत्रुओंपर विजय पानेके उपायको ढूँढ़ निकालनेमें भी सव्यसाची अर्जुन मेरी समानता नहीं कर सकते ॥ ४१ ॥

सर्वायुधमहामात्रं विजयं नाम तद्धनुः ।
इन्द्रार्थं प्रियकामेन निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ ४२ ॥

मेरे धनुषका नाम विजय है । यह समस्त आयुधोंमें श्रेष्ठ है । इसे इन्द्रका प्रिय चाहनेवाले विश्वकर्माने उन्हींके लिये बनाया था ॥ ४२ ॥

येन दैत्यगणान् राजञ्जितवान् वै शतक्रतुः ।
यस्य घोषेण दैत्यानां व्यामुह्यन्त दिशो दश ॥ ४३ ॥
तद् भार्गवाय प्रायच्छच्छक्रः परमसम्मतम् ।
तद् दिव्यं भार्गवो मह्यमददाद् धनुरुत्तमम् ॥ ४४ ॥

राजन् ! इन्द्रने जिसके द्वारा दैत्योंको जीता था, जिसकी टङ्कारसे दैत्योंको दसों दिशाओंके पहचाननेमें भ्रम हो जाता था, उसी अपने परम प्रिय दिव्य धनुषको इन्द्रने परशुरामजीको दिया था और परशुरामजीने वह दिव्य उत्तम धनुष मुझे दे दिया है ॥ ४३-४४ ॥

तेन योत्स्ये महाबाहुमर्जुनं जयतां वरम् ।
यथेन्द्रः समरे सर्वान् दैतेयान् वै समागतान् ॥ ४५ ॥

उसी धनुषके द्वारा मैं विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ महाबाहु अर्जुनके साथ युद्ध करूँगा । ठीक वैसे ही, जैसे समराङ्गणमें आये हुए समस्त दैत्योंके साथ इन्द्रने युद्ध किया था ॥ ४५ ॥

धनुर्घोरं रामदत्तं गाण्डीवात् तद् विशिष्यते ।
त्रिस्सप्तकृत्वः पृथिवी धनुषा येन निर्जिता ॥ ४६ ॥

परशुरामजीका दिया हुआ वह घोर धनुष गाण्डीवसे श्रेष्ठ है । यह वही धनुष है, जिसके द्वारा परशुरामजीने पृथ्वीपर इक्कीस बार विजय पायी थी ॥ ४६ ॥

धनुषो ह्यस्य कर्माणि दिव्यानि प्राह भार्गवः ।
तद् रामो ह्यददान्मह्यं तेन योत्स्यामि पाण्डवम् ॥ ४७ ॥

स्वयं भृगुनन्दन परशुरामने ही मुझे उस धनुषके दिव्य

कर्म बताये हैं और उसे उन्होंने मुझे अर्पित कर दिया है; उसी धनुषके द्वारा मैं पाण्डुकुमार अर्जुनके साथ युद्ध करूँगा॥

अद्य दुर्योधनाहं त्वां नन्दयिष्ये सबान्धवम्।
निहत्य समरे वीरमर्जुनं जयतां वरम्॥ ४८॥

दुर्योधन! आज मैं समरभूमिमें विजयी पुरुषोंमें श्रेष्ठ वीर अर्जुनका वध करके बन्धु-बान्धवोंसहित तुम्हें आनन्दित करूँगा॥ ४८॥

सपर्वतवनद्वीपा हतवीरा ससागरा।
पुत्रपौत्रप्रतिष्ठा ते भविष्यत्यद्य पार्थिव॥ ४९॥

भूपाल! आज उस वीरके मारे जानेपर पर्वत, वन, द्वीप और समुद्रोंसहित यह सारी पृथ्वी तुम्हारे पुत्र-पौत्रोंकी परम्परामें प्रतिष्ठित हो जायगी॥ ४९॥

नाशक्यं विद्यते मेऽद्य त्वत्प्रियार्थं विशेषतः।
सम्यग्धर्मानुरक्तस्य सिद्धिरात्मवतो यथा॥ ५०॥

जैसे उत्तम धर्ममें अनुरक्त हुए मनस्वी पुरुषके लिये सिद्धि दुर्लभ नहीं है, उसी प्रकार आज विशेषतः तुम्हारा प्रिय करनेके हेतु मेरे लिये कुछ भी असम्भव नहीं है॥ ५०॥

न हि मां समरे सोढुं संशक्तोऽग्निं तरुर्यथा।
अवश्यं तु मया वाच्यं येन हीनोऽस्मि फाल्गुनात्॥ ५१॥

जैसे वृक्ष अग्निका आक्रमण नहीं सह सकता, उसी प्रकार अर्जुनमें ऐसी शक्ति नहीं है कि मेरा वेग सह सकें; परंतु जिस बातमें मैं अर्जुनसे कम हूँ, वह भी मुझे अवश्य ही बता देना उचित है॥ ५१॥

ज्या तस्य धनुषो दिव्या तथाक्षय्ये महेषुधी।
सारथिस्तस्य गोविन्दो मम तादृङ् न विद्यते॥ ५२॥

उनके धनुषकी प्रत्यञ्चा दिव्य है। उनके पास दो बड़े-बड़े दिव्य तरकस हैं, जो कभी खाली नहीं होते तथा उनके सारथि श्रीकृष्ण हैं, ये सब मेरे पास वैसे नहीं हैं॥ ५२॥

तस्य दिव्यं धनुः श्रेष्ठं गाण्डीवमजितं युधि।
विजयं च महद्दिव्यं ममापि धनुरुत्तमम्॥ ५३॥

यदि उनके पास युद्धमें अजेय, श्रेष्ठ, दिव्य गाण्डीव धनुष है तो मेरे पास भी विजय नामक महान् दिव्य एवं उत्तम धनुष मौजूद है॥ ५३॥

तत्राहमधिकः पार्थाद् धनुषा तेन पार्थिव।
येन चाप्यधिको वीरः पाण्डवस्तन्निबोध मे॥ ५४॥

राजन्! धनुषकी दृष्टिसे तो मैं ही अर्जुनसे बढ़ा-चढ़ा हूँ; परंतु वीर पाण्डुकुमार अर्जुन जिसके कारण मुझसे बढ़ जाते हैं, वह भी सुन लो॥ ५४॥

रश्मिग्राहश्च दाशार्हः सर्वलोकनमस्कृतः।
अग्निदत्तश्च वै दिव्यो रथः काञ्चनभूषणः॥ ५५॥
अच्छेद्यः सर्वतो वीर वाजिनश्च मनोजवाः।
ध्वजश्च दिव्यो द्युतिमान् वानरो विस्मयंकरः॥ ५६॥

सर्वलोकवन्दित, दशार्हकुलनन्दन श्रीकृष्ण उनके घोड़ोंकी रास सँभालते हैं। वीर! उनके पास अग्निका दिया हुआ सुवर्णभूषित दिव्य रथ है, जिसे किसी प्रकार नष्ट नहीं किया जा सकता। उनके घोड़े भी मनके समान वेगशाली हैं। उनका तेजस्वी ध्वज दिव्य है, जिसके ऊपर सबको आश्चर्यमें डालनेवाला वानर बैठा रहता है॥ ५५-५६॥

कृष्णश्च स्रष्टा जगतो रथं तमभिरक्षति।
एतैर्द्रव्यैरहं हीनो योद्धुमिच्छामि पाण्डवम्॥ ५७॥

श्रीकृष्ण जगत्के स्रष्टा हैं। वे अर्जुनके उस रथकी रक्षा करते हैं। इन्हीं वस्तुओंसे हीन होकर मैं पाण्डुपुत्र अर्जुनसे युद्धकी इच्छा रखता हूँ॥ ५७॥

अयं तु सदृशः शौरेः शल्यः समितिशोभनः।
सारथ्यं यदि मे कुर्याद् ध्रुवस्ते विजयो भवेत्॥ ५८॥

अवश्य ही, ये युद्धमें शोभा पानेवाले राजा शल्य श्रीकृष्णके समान हैं, यदि ये मेरे सारथिका कार्य कर सकें तो तुम्हारी विजय निश्चित है॥ ५८॥

तस्य मे सारथिः शल्यो भवत्वसुकरः परैः।
नाराचान् गार्ध्रपत्रांश्च शकटानि वहन्तु मे॥ ५९॥

शत्रुओंसे सुगमतापूर्वक जीते न जा सकनेवाले राजा शल्य मेरे सारथि हो जायँ और बहुत-से छकड़े मेरे पास गीधकी पाँखोंसे युक्त नाराच पहुँचाते रहें॥ ५९॥

रथाश्च मुख्या राजेन्द्र युक्ता वाजिभिरुत्तमैः।
आयान्तु पश्चात् सततं मामेव भरतर्षभ॥ ६०॥

राजेन्द्र! भरतश्रेष्ठ! उत्तम घोड़ोंसे जुते हुए अच्छे-अच्छे रथ सदा मेरे पीछे चलते रहें॥ ६०॥

एवमभ्यधिकः पार्थाद् भविष्यामि गुणैरहम्।
शल्योऽप्यधिकः कृष्णादर्जुनादपि चाप्यहम्॥ ६१॥

ऐसी व्यवस्था होनेपर मैं गुणोंमें पार्थसे बढ़ जाऊँगा। शल्य भी श्रीकृष्णसे बढ़े-चढ़े हैं और मैं भी अर्जुनसे श्रेष्ठ हूँ॥

यथाश्वहृदयं वेद दाशार्हः परवीरहा।
तथा शल्यो विजानीते हयज्ञानं महारथः॥ ६२॥

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले दशार्हवंशी श्रीकृष्ण अश्वविद्याके रहस्यको जिस प्रकार जानते हैं, उसी प्रकार महारथी शल्य भी अश्वविज्ञानके विशेषज्ञ हैं॥ ६२॥

बाहुवीर्ये समो नास्ति मद्रराजस्य कश्चन।
तथास्त्रे मत्समो नास्ति कश्चिदेव धनुर्धरः॥ ६३॥

बाहुबलमें मद्रराज शल्यकी समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। उसी प्रकार अस्त्रविद्यामें मेरे समान कोई भी धनुर्धर नहीं है॥ ६३॥

तथा शल्यसमो नास्ति हयज्ञाने हि कश्चन।
सोऽयमभ्यधिकः कृष्णाद् भविष्यति रथो मम॥ ६४॥

अश्वविज्ञानमें भी शल्यके समान कोई नहीं है। शल्यके

सारथि होनेपर मेरा यह रथ अर्जुनके रथसे बढ़ जायगा ॥

एवं कृते रथस्थोऽहं गुणैरभ्यधिकोऽर्जुनात्।
भवे युधि जयेयं च फाल्गुनं कुरुसत्तम ॥ ६५ ॥
समुद्यातुं न शक्ष्यन्ति देवा अपि सवासवाः।

ऐसी व्यवस्था कर लेनेपर जब मैं रथमें बैठूँगा, उस समय सभी गुणोंद्वारा अर्जुनसे बढ़ जाऊँगा। कुरुश्रेष्ठ! फिर तो मैं युद्धमें अर्जुनको अवश्य जीत लूँगा। इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी मेरा सामना नहीं कर सकेंगे ॥ ६५½ ॥

एतत् कृतं महाराज त्वयेच्छामि परंतप ॥ ६६ ॥
क्रियतामेष कामो मे मा वः कालोऽत्यगादयम्।

शत्रुओंको संताप देनेवाले महाराज! मैं चाहता हूँ कि आपके द्वारा यही व्यवस्था हो जाय। मेरा यह मनोरथ पूर्ण किया जाय। अब आपलोगोंका यह समय व्यर्थ नहीं बीतना चाहिये ॥ ६६½ ॥

एवं कृते कृतं साह्यं सर्वकामैर्भविष्यति ॥ ६७ ॥
ततो द्रक्ष्यसि संग्रामे यत् करिष्यामि भारत।
सर्वथा पाण्डवान् संख्ये विजेष्ये वै समागतान् ॥ ६८ ॥

ऐसा करनेपर मेरी सम्पूर्ण इच्छाओंके अनुसार सहायता सम्पन्न हो जायगी। भारत! उस समय मैं संग्राममें जो कुछ करूँगा, उसे तुम स्वयं देख लोगे। युद्धस्थलमें आये हुए समस्त पाण्डवोंको निश्चय ही मैं सब प्रकारसे जीत लूँगा ॥

न हि मे समरे शक्ताः समुद्यातुं सुरासुराः।
किमु पाण्डुसुता राजन् रणे मानुषयोनयः ॥ ६९ ॥

राजन्! समराङ्गणमें देवता और असुर भी मेरा सामना नहीं कर सकते, फिर मनुष्य-योनिमें उत्पन्न हुए पाण्डव तो कर ही कैसे सकते हैं ॥ ६९ ॥

संजय उवाच

एवमुक्तस्तव सुतः कर्णेनाहवशोभिना।
सम्पूज्य सम्प्रहृष्टात्मा ततो राधेयमब्रवीत् ॥ ७० ॥

संजय कहते हैं—राजन्! युद्धमें शोभा पानेवाले कर्णके ऐसा कहनेपर आपके पुत्र दुर्योधनका मन प्रसन्न हो गया। फिर उसने राधापुत्र कर्णका पूर्णतः सम्मान करके उससे कहा ॥

दुर्योधन उवाच

एवमेतत् करिष्यामि यथा त्वं कर्ण मन्यसे।
सोपासङ्गा रथाः साश्वाः स्वनुयास्यन्ति संयुगे ॥ ७१ ॥

दुर्योधन बोला—कर्ण! जैसा तुम ठीक समझते हो उसीके अनुसार यह सारा कार्य मैं करूँगा। युद्धस्थलमें अनेक तरकसोंसे भरे हुए बहुत-से अश्वयुक्त रथ तुम्हारे पीछे-पीछे जायँगे ॥ ७१ ॥

नाराचान् गार्ध्रपत्रांश्च शकटानि वहन्तु ते।
अनुयास्याम कर्ण त्वां वयं सर्वे च पार्थिवाः ॥ ७२ ॥

कई छकड़े तुम्हारे पास गीधकी पाँखोंसे युक्त नाराच पहुँचाया करेंगे। कर्ण! हमलोग तथा समस्त भूपालगण तुम्हारे पीछे-पीछे चलेंगे ॥ ७२ ॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वा महाराज तव पुत्रः प्रतापवान्।
अभिगम्याब्रवीद् राजा मद्रराजमिदं वचः ॥ ७३ ॥

संजय कहते हैं—महाराज! ऐसा कहकर आपके प्रतापी पुत्र राजा दुर्योधनने मद्रराज शल्यके पास जाकर इस प्रकार कहा ॥ ७३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णदुर्योधनसंवादे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्ण और दुर्योधनका संवादविषयक इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

दुर्योधनकी शल्यसे कर्णका सारथि बननेके लिये प्रार्थना और शल्यका इस विषयमें घोर विरोध करना, पुनः श्रीकृष्णके समान अपनी प्रशंसा सुनकर उसे स्वीकार कर लेना

संजय उवाच

पुत्रस्तव महाराज मद्रराजं महारथम्।
विनयेनोपसंगम्य प्रणयाद् वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज! आपका पुत्र दुर्योधन मद्रराज महारथी शल्यके पास विनीतभावसे जाकर प्रेमपूर्वक इस प्रकार बोला— ॥ १ ॥

सत्यव्रत महाभाग द्विषतां तापवर्धन।
मद्रेश्वर रणे शूर परसैन्यभयंकर ॥ २ ॥
श्रुतवानसि कर्णस्य ब्रुवतो वदतां वर।
यथा नृपतिसिंहानां मध्ये त्वां वरये स्वयम् ॥ ३ ॥

'महाभाग! सत्यव्रत! शत्रुओंका संताप बढ़ानेवाले मद्रराज! रणवीर! शत्रुसैन्यभयंकर! वक्ताओंमें श्रेष्ठ! आपने कर्णकी बात सुनी है। उसीके अनुसार इन राजसिंहोंके बीचमें मैं स्वयं आपका वरण करता हूँ ॥ २-३ ॥

तत्त्वामप्रतिवीर्याद्य शत्रुपक्षक्षयावह।
मद्रेश्वर प्रयाचेऽहं शिरसा विनयेन च ॥ ४ ॥
तस्मात् पार्थविनाशार्थं हितार्थं मम चैव हि।
सारथ्यं रथिनां श्रेष्ठ प्रणयात् कर्तुमर्हसि ॥ ५ ॥

'शत्रुपक्षका विनाश करनेवाले, अनुपम शक्तिशाली, रथियोंमें श्रेष्ठ मद्रराज! मैं मस्तक झुकाकर विनयपूर्वक आपसे



दुर्योधनकी शल्यसे कर्णका सारथि बननेके लिये प्रार्थना

यह याचना करता हूँ कि आप अर्जुनके विनाश और मेरे हितके लिये प्रेमपूर्वक कर्णका सारथ्य कीजिये ॥ ४-५ ॥

त्वयि यन्तरि राधेयो विद्विषो मे विजेष्यते ।
अभीषूणां हि कर्णस्य ग्रहीतान्यो न विद्यते ॥ ६ ॥
ऋते हि त्वां महाभाग वासुदेवसमं युधि ।

'आपके सारथि होनेपर राधापुत्र कर्ण मेरे शत्रुओंको जीत लेगा । कर्णके रथकी बागडोर पकड़नेवाला आपके सिवा दूसरा कोई नहीं है। महाभाग ! आप युद्धमें वसुदेव-नन्दन श्रीकृष्णके समान हैं ॥ ६½ ॥

स पाहि सर्वथा कर्णं यथा ब्रह्मा महेश्वरम् ॥ ७ ॥
यथा च सर्वथाऽऽपत्सु वार्ष्णेयः पाति पाण्डवम् ।
तथा मद्रेश्वराद्य त्वं राधेयं प्रतिपालय ॥ ८ ॥

'जैसे ब्रह्माजीने सारथि बनकर महादेवजीकी रक्षा की थी और जैसे सब प्रकारकी आपत्तियोंसे श्रीकृष्ण अर्जुनकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप कर्णकी सर्वथा रक्षा कीजिये । मद्रराज ! आज आप राधापुत्रका प्रतिपालन कीजिये ॥ ७-८ ॥

भीष्मो द्रोणः कृपः कर्णो भवान् भोजश्च वीर्यवान् ।
शकुनिः सौबलो द्रौणिरहमेव च नो बलम् ॥ ९ ॥

'भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, आप, पराक्रमी कृतवर्मा, सुबलपुत्र शकुनि, द्रोणकुमार अश्वत्थामा और मैं—ये ही हमारे बल हैं ॥ ९ ॥

एवमेष कृतो भागो नवधा पृथिवीपते ।
न च भागोऽत्र भीष्मस्य द्रोणस्य च महात्मनः ॥ १० ॥
ताभ्यामतीत्य तौ भागौ निहता मम शत्रवः ।

'पृथ्वीपते ! इस प्रकार मेरी सेनाके ये नौ भाग किये गये थे । अब यहाँ भीष्म तथा महात्मा द्रोणाचार्यका भाग नहीं रह गया है । उन दोनोंने उनके लिये निर्धारित भागोंसे और आगे बढ़कर मेरे शत्रुओंका संहार किया है ॥ १०½ ॥

वृद्धौ हि तौ महेष्वासौ छलेन निहतौ युधि ॥ ११ ॥
कृत्वा नसुकरं कर्म गतौ स्वर्गमितोऽनघ ।
तथान्ये पुरुषव्याघ्राः परैर्विनिहता युधि ॥ १२ ॥

'वे दोनों महाधनुर्धर योद्धा बूढ़े हो गये थे, इसलिये युद्धमें शत्रुओंद्वारा छलपूर्वक मारे गये । अनघ ! वे दुष्कर कर्म करके यहाँसे स्वर्गलोकमें चले गये । इसी प्रकार दूसरे पुरुषसिंह वीर भी युद्धमें शत्रुओंद्वारा मारे गये हैं ॥ ११-१२ ॥

अस्मदीयाश्च बहवः स्वर्गायोपगता रणे ।
त्यक्त्वा प्राणान् यथाशक्ति चेष्टां कृत्वा च पुष्कलाम् १३

'मेरे पक्षके बहुत-से योद्धा विजयके लिये यथाशक्ति पूरी चेष्टा करके रणभूमिमें प्राण त्यागकर स्वर्गलोकको चले गये ॥ १३ ॥

तदिदं हतभूयिष्ठं बलं मम नराधिप ।
पूर्वमप्यल्पकैः पार्थैर्हतं किमुत साम्प्रतम् ॥ १४ ॥

'नरेश्वर ! इस प्रकार मेरी इस सेनाका अधिकांश भाग नष्ट हो चुका है । पहले भी जब अपनी सारी सेना मौजूद थी, अल्पसंख्यक कुन्तीकुमारोंने कौरवसेनाका नाश कर दिया था । फिर इस समय तो कहना ही क्या है ? ॥ १४ ॥

बलवन्तो महात्मानः कौन्तेयाः सत्यविक्रमाः ।
बलं शेषं न हन्युर्मे यथा तत् कुरु पार्थिव ॥ १५ ॥

'भूपाल ! बलवान्, महामनस्वी और सत्यपराक्रमी कुन्ती-कुमार मेरी शेष सेनाको जिस तरह भी नष्ट न कर सकें, ऐसा उपाय कीजिये ॥ १५ ॥

हतवीरमिदं सैन्यं पाण्डवैः समरे विभो ।
कर्णो ह्येको महाबाहुरस्मत्प्रियहिते रतः ॥ १६ ॥

'प्रभो ! पाण्डवोंने समराङ्गणमें मेरी सेनाके प्रमुख वीरों-को मार डाला है । एक महाबाहु कर्ण ही ऐसा है, जो हमारे प्रिय एवं हितसाधनमें लगा हुआ है ॥ १६ ॥

भवांश्च पुरुषव्याघ्र सर्वलोकमहारथः ।
शल्य कर्णोऽर्जुनेनाद्य योद्धुमिच्छति संयुगे ॥ १७ ॥

'पुरुषसिंह शल्य ! दूसरे आप भी सम्पूर्ण विश्वमें विख्यात महारथी होकर हमारे हितसाधनमें संलग्न हैं । आज कर्ण रणभूमिमें अर्जुनके साथ युद्ध करना चाहता है ॥ १७ ॥

तस्मिञ्जयाशा विपुला मद्रराज नराधिप ।
तस्याभीषुग्रहवरो नान्योऽस्ति भुवि कश्चन ॥ १८ ॥

'मद्रराज ! नरेश्वर ! उसके मनमें विजयकी बड़ी भारी आशा है, परंतु उसके घोड़ोंकी रास पकड़नेवाला (आपके समान) दूसरा कोई इस भूतलपर नहीं है ॥ १८ ॥

पार्थस्य समरे कृष्णो यथाभीषुग्रहो वरः ।
तथा त्वमपि कर्णस्य रथेऽभीषुग्रहो भव ॥ १९ ॥

'जैसे संग्रामभूमिमें अर्जुनके रथकी बागडोर सँभालनेवाले श्रेष्ठ सारथि श्रीकृष्ण हैं, उसी प्रकार आप भी कर्णके रथपर बैठ-कर उसकी बागडोर अपने हाथमें लीजिये ॥ १९ ॥

तेन युक्तो रणे पार्थो रक्ष्यमाणश्च पार्थिव ।
यानि कर्माणि कुरुते प्रत्यक्षाणि तथैव तत् ॥ २० ॥

'राजन् ! श्रीकृष्णसे संयुक्त एवं सुरक्षित होकर पार्थ रणभूमिमें जो-जो कर्म करते हैं, वे सब आपकी आँखोंके सामने हैं ॥ २० ॥

पूर्वं न समरे ह्येवमवधीदर्जुनो रिपून् ।
इदानीं विक्रमो ह्यस्य कृष्णेन सहितस्य च ॥ २१ ॥

'पहले युद्धमें अर्जुन इस प्रकार शत्रुओंका वध नहीं

करते थे । इस समय श्रीकृष्णके साथ होनेसे ही इनका पराक्रम बढ़ गया है ॥ २१ ॥

कृष्णेन सहितः पार्थो धार्तराष्ट्रीं महाचमूम् ।
अहन्यहनि मद्रेश द्रावयन् दृश्यते युधि ॥ २२ ॥

'मद्रराज ! श्रीकृष्णके साथ अर्जुन प्रतिदिन हमारी विशाल सेनाको युद्धभूमिमें खदेड़ते देखे जाते हैं ॥ २२ ॥

भागोऽवशिष्टः कर्णस्य तव चैव महाद्युते ।
तं भागं सह कर्णेन युगपन्नाशयाद्य हि ॥ २३ ॥

'महातेजस्वी नरेश ! अब कर्णका और आपका भाग शेष रह गया है । अतः आप कर्णके साथ रहकर शत्रुसेनाके उस भागको एक साथ ही नष्ट कर दीजिये ॥ २३ ॥

अरुणेन यथा सार्धं तमः सूर्यो व्यपोहति ।
तथा कर्णेन सहितो जहि पार्थं महाहवे ॥ २४ ॥

'जैसे अरुणके साथ सूर्य अन्धकारका नाश करते हैं, उसी प्रकार आप महासमरमें कर्णके साथ रहकर कुन्तीकुमार अर्जुनका वध कीजिये ॥ २४ ॥

उद्यन्तौ च यथा सूर्यौ बालसूर्यसमप्रभौ ।
कर्णशल्यौ रणे दृष्ट्वा विद्रवन्तु महारथाः ॥ २५ ॥

'प्रातःकालीन सूर्यके तुल्य तेजस्वी कर्ण और शल्यको उदित होते हुए दो सूर्योंके समान रणभूमिमें देखकर शत्रुसेनाके महारथी भाग जायँ ॥ २५ ॥

सूर्यारुणौ यथा दृष्ट्वा तमो नश्यति मारिष ।
तथा नश्यन्तु कौन्तेयाः सपञ्चालाः ससृंजयाः ॥ २६ ॥

'मान्यवर ! जैसे सूर्य और अरुणको देखते ही अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार आप दोनोंको देखकर कुन्तीके पुत्र, पाञ्चाल और सृंजय नष्ट हो जायँ ॥ २६ ॥

रथिनां प्रवरः कर्णो यन्तॄणां प्रवरो भवान् ।
संयोगो युवयोर्लोके नाभून्न च भविष्यति ॥ २७ ॥

'कर्ण रथियोंमें श्रेष्ठ है और आप सारथियोंके शिरोमणि हैं । संसारमें आप दोनोंका संयोग जो आज बन गया है, न तो कभी हुआ था और न आगे कभी होगा ॥ २७ ॥

यथा सर्वास्ववस्थासु वार्ष्णेयः पाति पाण्डवम् ।
तथा भवान् परित्रातु कर्णं वैकर्तनं रणे ॥ २८ ॥

'जैसे श्रीकृष्ण सभी अवस्थाओंमें पाण्डुपुत्र अर्जुनकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप रणभूमिमें वैकर्तन कर्णकी रक्षा करें ॥ २८ ॥

(सारथ्यं क्रियतां तस्य युध्यमानस्य संयुगे ।)
त्वया सारथिना ह्येष अप्रधृष्यो भविष्यति ।
देवतानामपि रणे सशक्राणां महीपते ।
किं पुनः पाण्डवेयानां मा विशङ्कीर्वचो मम ॥ २९ ॥

'युद्धस्थलमें युद्ध करते समय कर्णके सारथिका कार्य सँभालिये । राजन् ! आपके सारथि होनेसे यह कर्ण रणभूमिमें इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंके लिये भी अजेय हो जायगा, फिर पाण्डवोंकी तो बात ही क्या है । आप मेरे इस कथनमें संदेह न कीजिये' ॥ २९ ॥

संजय उवाच

दुर्योधनवचः श्रुत्वा शल्यः क्रोधसमन्वितः ।
त्रिशिखां भ्रुकुटिं कृत्वा धुन्वन् हस्तौ पुनः पुनः ॥ ३० ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! दुर्योधनकी बात सुनकर शल्यको बड़ा क्रोध हुआ । वे अपनी भौंहोंको तीन जगहसे टेढ़ी करके बारंबार हाथ हिलाने लगे ॥ ३० ॥

क्रोधरक्ते महानेत्रे परिवृत्य महाभुजः ।
कुलैश्वर्यश्रुतबलैर्दृप्तः शल्योऽब्रवीदिदम् ॥ ३१ ॥

महाबाहु शल्यको अपने कुल, ऐश्वर्य, शास्त्रज्ञान और बलका बड़ा अभिमान था । वे क्रोधसे लाल हुए विशाल नेत्रोंको घुमाकर इस प्रकार बोले ॥ ३१ ॥

शल्य उवाच

अवमन्यसि गान्धारे ध्रुवं च परिशङ्कसे ।
यन्मां ब्रवीषि विश्रब्धं सारथ्यं क्रियतामिति ॥ ३२ ॥

शल्यने कहा—गान्धारीपुत्र ! तुम मेरा अपमान कर रहे हो, निश्चय ही तुम्हारे मनमें मेरे प्रति संदेह है, तभी तुम निर्भय होकर कह रहे हो कि आप 'सारथिका कार्य कीजिये' ॥

अस्मत्तोऽभ्यधिकं कर्णं मन्यमानः प्रशंससि ।
न चाहं युधि राधेयं गणये तुल्यमात्मनः ॥ ३३ ॥

तुम कर्णको मुझसे श्रेष्ठ मानकर उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हो; परंतु युद्धस्थलमें राधापुत्र कर्णको मैं अपने समान नहीं गिनता हूँ ॥ ३३ ॥

आदिश्यतामभ्यधिको ममांशः पृथिवीपते ।
तमहं समरे जित्वा गमिष्यामि यथागतम् ॥ ३४ ॥

राजन् ! तुम शत्रुसेनाके अधिक-से-अधिक भागको मेरे हिस्सेमें दे दो, मैं उसे जीतकर जैसे आया हूँ, वैसे लौट जाऊँगा॥

अथवाप्येक एवाहं योत्स्यामि कुरुनन्दन ।
पश्य वीर्यं ममाद्य त्वं संग्रामे दहतो रिपून् ॥ ३५ ॥

अथवा कुरुनन्दन ! आज मैं अकेला ही युद्ध करूँगा । तुम संग्राममें शत्रुओंको दग्ध करते हुए मेरे पराक्रमको देख लेना॥

न चापि कामान् कौरव्य निधाय हृदये पुमान् ।
अस्मद्विधः प्रवर्तेत मा मां त्वमभिशङ्किथाः ॥ ३६ ॥

कौरव्य ! मेरे-जैसा पुरुष अपने मनमें कुछ कामनाएँ

रखकर युद्धमें प्रवृत्त नहीं होता । अतः तुम मुझपर संदेह न करो ॥ ३६ ॥

युधि वाप्यवमानो मे न कर्तव्यः कथञ्चन ।
पश्य पीनौ मम भुजौ वज्रसंहननौ दृढौ ॥ ३७ ॥
धनुः पश्य च मे चित्रं शरांश्चाशीविषोपमान् ।
रथं पश्य च मे क्लृप्तं सदश्वैर्वातवेगितैः ॥ ३८ ॥
गदां च पश्य गान्धारे हेमपट्टविभूषिताम् ।

तुम्हें युद्धमें किसी प्रकार मेरा अपमान नहीं करना चाहिये । तुम मेरी मोटी और वज्रके समान गँठीली इन सुदृढ़ भुजाओंको तो देखो । मेरे इस विचित्र धनुष और विषधर सर्पके समान इन विषैले बाणोंकी ओर तो दृष्टिपात करो । गान्धारीकुमार ! वायुके समान वेगशाली उत्तम घोड़ोंसे जुते हुए मेरे इस सजे-सजाये रथ और सुवर्णपत्रसे मढ़ी हुई गदापर भी तो दृष्टि डालो ॥ ३७-३८½ ॥

दारयेयं महीं कृत्स्नां विकिरेयं च पर्वतान् ॥ ३९ ॥
शोषयेयं समुद्रांश्च तेजसा स्वेन पार्थिव ।

राजन् ! मैं सारी पृथ्वीको विदीर्ण कर सकता हूँ, पर्वतोंको तोड़-फोड़कर बिखेर सकता हूँ और अपने तेजसे समुद्रोंको भी सुखा सकता हूँ ॥ ३९½ ॥

तं मामेवंविधं राजन् समर्थमरिनिग्रहे ॥ ४० ॥
कस्माद् युनङ्क्षि सारथ्ये नीचस्याधिरथे रणे ।

नरेश्वर ! इस प्रकार शत्रुओंका दमन करनेमें पूर्णतया समर्थ होनेपर भी तुम मुझे इस नीच सूतपुत्र कर्णके सारथिके कामपर कैसे नियुक्त कर रहे हो ? ॥ ४०½॥

न मामधुरि राजेन्द्र नियोक्तुं त्वमिहार्हसि ॥ ४१ ॥
न हि पापीयसः श्रेयान् भूत्वा प्रेष्यत्वमुत्सहे ।

राजेन्द्र ! तुम्हें मुझे नीचकर्ममें नहीं लगाना चाहिये । मैं श्रेष्ठ होकर अत्यन्त नीच पापी पुरुषकी दासता नहीं कर सकता ॥ ४१½ ॥

यो ह्यभ्युपगतं प्रीत्या गरीयांसं वशे स्थितम् ॥ ४२ ॥
वशे पापीयसो धत्ते तत् पापमधरोत्तरम् ।

जो पुरुष प्रेमवश अपने पास आकर अपनी आज्ञाके अधीन रहनेवाले किसी श्रेष्ठतम पुरुषको नीचतम मनुष्यके अधीन कर देता है, उसे उच्चको नीच और नीचको उच्च करनेका महान् पाप लगता है ॥ ४२½ ॥

ब्रह्मणा ब्राह्मणाः सृष्टा मुखात् क्षत्रं च बाहुतः ४३
ऊरुभ्यामसृजद् वैश्याञ्शूद्रान् पद्भ्यामिति श्रुतिः ।

ब्रह्माजीने ब्राह्मणोंको अपने मुखसे, क्षत्रियोंको भुजाओंसे, वैश्योंको जाँघोंसे और शूद्रोंको पैरोंसे उत्पन्न किया है, ऐसा श्रुतिका मत है ॥ ४३½ ॥

तेभ्यो वर्णविशेषाश्च प्रतिलोमानुलोमजाः ॥ ४४ ॥
अथान्योन्यस्य संयोगाच्चातुर्वर्ण्यस्य भारत ।

भारत ! इन्हींसे अनुलोम और विलोम क्रमसे विभिन्न वर्णोंकी उत्पत्ति होती है । चारों वर्णोंके पारस्परिक संयोगसे अन्य जातियाँ उत्पन्न हुई हैं ॥ ४४½ ॥

गोप्तारः संगृहीतारो दातारः क्षत्रियाःस्मृताः ॥ ४५ ॥
याजनाध्यापनैर्विप्रा विशुद्धैश्च प्रतिग्रहैः ।
लोकस्यानुग्रहार्थाय स्थापिता ब्राह्मणा भुवि ॥ ४६ ॥

इनमें क्षत्रिय-जातिके लोग सबकी रक्षा करनेवाले, सबसे कर लेनेवाले और दान देनेवाले बताये गये हैं । ब्राह्मण यज्ञ कराने, वेद पढ़ाने और विशुद्ध दान ग्रहण करनेके द्वारा जीवन-निर्वाह करते हुए सम्पूर्ण जगत्पर अनुग्रह करनेके लिये इस भूतलपर ब्रह्माजीके द्वारा स्थापित किये गये हैं ॥

कृषिश्च पाशुपाल्यं च विशां दानं च धर्मतः ।
ब्रह्मक्षत्रविशां शूद्रा विहिताः परिचारकाः ॥ ४७ ॥

कृषि, पशुपालन और धर्मानुसार दान देना वैश्योंका कर्म है तथा शूद्रलोग ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंकी सेवाके काममें नियुक्त किये गये हैं ॥ ४७ ॥

ब्रह्मक्षत्रस्य विहिताः सूता वै परिचारकाः ।
न क्षत्रियो वै सूतानां शृणुयाच्च कथञ्चन ॥ ४८ ॥

सूतजातिके लोग ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके सेवक नियुक्त किये गये हैं, क्षत्रिय सूतोंका सेवक हो, यह कोई किसी प्रकार कहीं नहीं सुन सकता ॥ ४८ ॥

अहं मूर्धाभिषिक्तो हि राजर्षिकुलजो नृपः ।
महारथः समाख्यातः सेव्यः स्तुत्यश्च वन्दिनाम्॥४९॥

मैं राजर्षियोंके कुलमें उत्पन्न हुआ मूर्द्धाभिषिक्त नरेश हूँ, विश्वविख्यात महारथी हूँ, सूतोंद्वारा सेव्य और वन्दीजनोंद्वारा स्तुतिके योग्य हूँ ॥ ४९ ॥

सोऽहमेतादृशो भूत्वा नेहारिबलसूदनः ।
सूतपुत्रस्य संग्रामे सारथ्यं कर्तुमुत्सहे ॥ ५० ॥

ऐसा प्रतिष्ठित एवं शत्रुसेनाका संहार करनेमें समर्थ होकर मैं यहाँ युद्धस्थलमें एक सूतपुत्रके सारथिका कार्य कदापि नहीं कर सकता ॥ ५० ॥

अवमानमहं प्राप्य न योत्स्यामि कथञ्चन ।
आपृच्छे त्वाद्य गान्धारे गमिष्यामि गृहाय वै ॥५१ ॥

गान्धारीनन्दन ! आज इस अपमानको पाकर अब मैं किसी प्रकार युद्ध नहीं करूँगा । अतः तुमसे आज्ञा चाहता हूँ । आज ही अपने घरको लौट जाऊँगा ॥ ५१ ॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वा महाराज शल्यः समितिशोभनः ।

उत्थाय प्रययौ तूर्णं राजमध्यादमर्षितः ॥ ५२ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! ऐसा कहकर युद्धमें शोभा पानेवाले शल्य अमर्षमें भर गये और राजाओंके बीचसे उठकर तुरंत चल दिये ॥ ५२ ॥

प्रणयाद् बहुमानाच्च तं निगृह्य सुतस्तव ।
अब्रवीन्मधुरं वाक्यं साम्ना सर्वार्थसाधकम् ॥ ५३ ॥

तब आपके पुत्रने बड़े प्रेम और आदरसे उन्हें रोका



तथा सान्त्वनापूर्ण मधुर स्वरमें उनसे यह सर्वार्थसाधक वचन कहा—॥ ५३ ॥

यथा शल्य विजानीषे एवमेतदसंशयम् ।
अभिप्रायस्तु मे कश्चित् तं निबोध जनेश्वर ॥ ५४ ॥

'महाराज शल्य ! आप अपने विषयमें जैसा समझते हैं ऐसी ही बात है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है । मेरा कोई और ही अभिप्राय है, उसे ध्यान देकर सुनिये ॥ ५४ ॥

न कर्णोऽभ्यधिकस्त्वत्तो न शङ्के त्वां च पार्थिव ।
न हि मद्रेश्वरो राजा कुर्याद् यदनृतं भवेत् ॥ ५५ ॥

'भूपाल ! न तो कर्ण आपसे श्रेष्ठ है और न आपके प्रति मैं संदेह ही करता हूँ । मद्रदेशके स्वामी राजा शल्य कोई ऐसा कार्य नहीं कर सकते, जो उनकी सत्य प्रतिज्ञाके विपरीत हो ॥

ऋतमेव हि पूर्वास्ते वदन्ति पुरुषोत्तमाः ।
तस्मादार्तायनिः प्रोक्तो भवानिति मतिर्मम ॥ ५६ ॥

'आपके पूर्वज श्रेष्ठ पुरुष थे और सदा सत्य ही बोला करते थे, इसीलिये आप 'आर्तायनि' कहलाते हैं; मेरी ऐसी ही धारणा है ॥ ५६ ॥

शल्यभूतस्तु शत्रूणां यस्मात्त्वं युधि मानद ।
तस्माच्छल्यो हि ते नाम कथ्यते पृथिवीतले ॥ ५७ ॥

'मानद ! आप युद्धस्थलमें शत्रुओंके लिये शल्य (काँटे) के समान हैं, इसीलिये इस भूतलपर आपका शल्य नाम विख्यात है ॥ ५७ ॥

यदेतद् व्याहृतं पूर्वं भवता भूरिदक्षिण ।
तदेव कुरु धर्मज्ञ मदर्थे यद् यदुच्यते ॥ ५८ ॥

'यज्ञोंमें प्रचुर दक्षिणा देनेवाले धर्मज्ञ नरेश्वर ! आपने पहले यह जो कुछ कहा है और इस समय जो कुछ कह रहे हैं, उसीको मेरे लिये पूर्ण करें ॥ ५८ ॥

न च त्वत्तो हि राधेयो न चाहमपि वीर्यवान् ।
वृणेऽहं त्वां हयाग्र्याणां यन्तारमिह संयुगे ॥ ५९ ॥

'आपकी अपेक्षा न तो राधापुत्र कर्ण बलवान् है और न मैं ही ।आप उत्तम अश्वोंके सर्वश्रेष्ठ संचालक (अश्वविद्याके सर्वोत्तम ज्ञाता) हैं, इसलिये इस युद्धस्थलमें आपका वरण कर रहा हूँ ॥ ५९ ॥

मन्ये चाभ्यधिकं शल्य गुणैः कर्णं धनंजयात् ।
भवन्तं वासुदेवाच्च लोकोऽयमिति मन्यते ॥ ६० ॥

'शल्य ! मैं कर्णको अर्जुनसे अधिक गुणवान् मानता हूँ और यह सारा जगत् आपको वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णसे श्रेष्ठ मानता है ॥ ६० ॥

कर्णो ह्यभ्यधिकः पार्थादस्त्रैरेव नरर्षभ ।
भवानभ्यधिकः कृष्णादश्वज्ञाने बले तथा ॥ ६१ ॥

'नरश्रेष्ठ ! कर्ण तो अर्जुनसे केवल अस्त्र-ज्ञानमें ही बढ़ा-चढ़ा है, परंतु आप श्रीकृष्णसे अश्वविद्या और बल दोनोंमें बड़े हैं ॥

यथाश्वहृदयं वेद वासुदेवो महामनाः ।
द्विगुणं त्वं तथा वेत्सि मद्रराजेश्वरात्मज ॥ ६२ ॥

'मद्रराजकुमार ! महामनस्वी श्रीकृष्ण जिस प्रकार अश्वविद्याका रहस्य जानते हैं, वैसा ही, बल्कि उससे भी दूना आप जानते हैं' ॥ ६२ ॥

शल्य उवाच

यन्मां ब्रवीषि गान्धारे मध्ये सैन्यस्य कौरव ।
विशिष्टं देवकीपुत्रात् प्रीतिमानस्म्यहं त्वयि ॥ ६३ ॥

शल्यने कहा—कौरव ! गान्धारीपुत्र ! तुम सारी सेनाके बीचमें जो मुझे देवकीनन्दन श्रीकृष्णसे भी बढ़कर बता रहे हो, इससे मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ ॥ ६३ ॥

एष सारथ्यमातिष्ठे राधेयस्य यशस्विनः ।
युध्यतः पाण्डवाग्र्येण यथा त्वं वीर मन्यसे ॥ ६४ ॥

वीर ! जैसा तुम चाहते हो उसके अनुसार मैं पाण्डव-शिरोमणि अर्जुनके साथ युद्ध करते हुए यशस्वी कर्णका सारथिकर्म अब स्वीकार किये लेता हूँ ॥ ६४ ॥

समयश्च हि मे वीर कश्चिद् वैकर्तनं प्रति ।
उत्सृजेयं यथाश्रद्धमहं वाचोऽस्य संनिधौ ॥ ६५ ॥

परंतु वीरवर ! कर्णके साथ मेरी एक शर्त रहेगी । 'मैं इसके समीप, जैसी मेरी इच्छा हो, वैसी बातें कर सकता हूँ' ॥

संजय उवाच

तथेति राजन् पुत्रस्ते सह कर्णेन भारत ।
अब्रवीन्मद्रराजस्य मतं भरतसत्तम ॥ ६६ ॥

संजयने कहा—भारत ! भरतभूषण नरेश ! इसपर कर्णसहित आपके पुत्रने 'बहुत अच्छा' कहकर शल्यकी शर्त स्वीकार कर ली ॥ ६६ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि शल्यसारथ्ये द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें शल्यका सारथिकर्मविषयक बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३२ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ६६½ श्लोक हैं)

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

दुर्योधनका शल्यसे त्रिपुरोंकी उत्पत्तिका वर्णन, त्रिपुरोंसे भयभीत इन्द्र आदि देवताओंका ब्रह्माजीके साथ भगवान् शङ्करके पास जाकर उनकी स्तुति करना

दुर्योधन उवाच

भूय एव तु मद्रेश यत्ते वक्ष्यामि तच्छृणु ।
यथा पुरावृत्तमिदं युद्धे देवासुरे विभो ॥ १ ॥
यदुक्तवान् पितुर्मह्यं मार्कण्डेयो महानृषिः ।
तदशेषेण ब्रुवतो मम राजर्षिसत्तम ॥ २ ॥
निबोध मनसा चात्र न ते कार्या विचारणा ।

दुर्योधन बोला—मद्रराज ! मैं पुनः आपसे जो कुछ कह रहा हूँ, उसे सुनिये । प्रभो ! पूर्वकालमें देवासुर-संग्रामके अवसरपर जो घटना घटित हुई थी तथा जिसे महर्षि मार्कण्डेयने मेरे पिताजीको सुनाया था, वह सब मैं पूर्णरूपसे बता रहा हूँ । राजर्षिप्रवर ! आप मन लगाकर इसे सुनिये, इसके विषयमें आपको कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये ॥

देवानामसुराणां च परस्परजिगीषया ॥ ३ ॥
बभूव प्रथमो राजन् संग्रामस्तारकामयः ।

राजन् ! देवताओं और असुरोंमें परस्पर विजय पानेकी इच्छासे सर्वप्रथम तारकामय संग्राम हुआ था ॥ ३½ ॥

निर्जिताश्च तदा दैत्या दैवतैरिति नः श्रुतम् ॥ ४ ॥
निर्जितेषु च दैत्येषु तारकस्य सुतास्त्रयः ।
ताराक्षः कमलाक्षश्च विद्युन्माली च पार्थिव ॥ ५ ॥
तप उग्रं समास्थाय नियमे परमे स्थिताः ।

उस समय देवताओंने दैत्योंको परास्त कर दिया था, यह हमारे सुननेमें आया है । राजन् ! दैत्योंके परास्त हो जानेपर तारकासुरके तीन पुत्र ताराक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली उग्र तपस्याका आश्रय ले उत्तम नियमोंका पालन करने लगे ॥

तपसा कर्शयामासुर्देहान् स्वान् शत्रुतापन ॥ ६ ॥
दमेन तपसा चैव नियमेन समाधिना ।

शत्रुओंको संताप देनेवाले नरेश ! उन तीनोंने तपस्याके द्वारा अपने शरीरोंको सुखा दिया । वे इन्द्रिय-संयम, तप, नियम और समाधिसे संयुक्त रहने लगे ॥ ६½ ॥

तेषां पितामहः प्रीतो वरदः प्रददौ वरम् ॥ ७ ॥
अवध्यत्वं च ते राजन् सर्वभूतस्य सर्वदा ।
सहिता वरयामासुः सर्वलोकपितामहम् ॥ ८ ॥

राजन् ! उनपर प्रसन्न होकर वरदायक भगवान् ब्रह्मा उन्हें वर देनेको उद्यत हुए । उस समय उन तीनोंने एक साथ होकर सम्पूर्ण लोकोंके पितामह ब्रह्मासे यह वर माँगा कि 'हम सदा सम्पूर्ण भूतोंसे अवध्य हों ॥ ७-८ ॥

तानब्रवीत्तदा देवो लोकानां प्रभुरीश्वरः ।
नास्ति सर्वामरत्वं वै निवर्तध्वमितोऽसुराः ॥ ९ ॥
अन्यं वरं वृणीध्वं वै यादृशं सम्प्ररोचते ।

तब लोकनाथ भगवान् ब्रह्माने उनसे कहा—'असुरो ! सबके लिये अमरत्व सम्भव नहीं है । तुम इस तपस्यासे निवृत्त हो जाओ और दूसरा कोई वर जैसा तुम्हें रुचे माँग लो' ॥९½॥

ततस्ते सहिता राजन् सम्प्रधार्यासकृत् प्रभुम् ॥ १० ॥
सर्वलोकेश्वरं वाक्यं प्रणम्येदमथाब्रुवन् ।

राजन् ! तब उन सबने एक साथ बारंबार विचार करके सर्वलोकेश्वर भगवान् ब्रह्माको शीश नवाकर उनसे इस प्रकार कहा—॥ १०½ ॥

अस्मभ्यं त्वं वरं देव सम्प्रयच्छ पितामह ॥ ११ ॥
(वस्तुमिच्छाम नगरं कृत्वा कामगमं शुभम् ।
सर्वकामसमृद्धार्थमवध्यं देवदानवैः ॥
यक्षरक्षोरगगणैर्नानाजातिभिरेव च ।
न कृत्याभिर्न शस्त्रैश्च न शापैर्ब्रह्मवादिनाम् ॥
वध्येत त्रिपुरं देव प्रसन्ने त्वयि सादरम् ॥

'पितामह ! देव ! हम सबको आप वर प्रदान कीजिये । हमलोग इच्छानुसार चलनेवाला नगराकार सुन्दर विमान बनाकर उसमें निवास करना चाहते हैं । हमारा वह पुर सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंसे सम्पन्न तथा देवताओं और दानवोंके लिये अवध्य हो । देव ! आपके सादर प्रसन्न होनेसे हमारे तीनों पुर यक्ष, राक्षस, नाग तथा नाना जातिके अन्य प्राणियोंद्वारा भी विनष्ट न हों । उन्हें न तो कृत्याएँ नष्ट कर सकें, न शस्त्र छिन्न-भिन्न कर सकें और न ब्रह्मवादियोंके शापोंद्वारा ही इनका विनाश हो' ॥ ११ ॥

ब्रह्मोवाच

विलयः समयस्यान्ते मरणं जीवितस्य च ।
इति वित्त वधोपायं कञ्चिदेव निशाम्यत ॥)

ब्रह्माजीने कहा—दैत्यो ! समय पूरा होनेपर सबका लय होता है। जो आज जीवित है, उसकी भी एक दिन मृत्यु होती है। इस बातको अच्छी तरह समझ लो और इन तीनों पुरोंके वधका कोई निमित्त कह सुनाओ।

दैत्या ऊचुः

वयं पुराणि त्रीण्येव समास्थाय महीमिमाम्।
विचरिष्याम लोकेऽस्मिंस्त्वत्प्रसादपुरस्कृताः॥ १२ ॥

दैत्य बोले—भगवन्! हम तीनों पुरोंमें ही रहकर इस पृथ्वीपर एवं इस जगत्‌में आपके कृपा-प्रसादसे विचरेंगे॥१२॥

ततो वर्षसहस्रे तु समेष्यामः परस्परम्।
एकीभावं गमिष्यन्ति पुराण्येतानि चानघ ॥ १३ ॥
समागतानि चैतानि यो हन्याद् भगवंस्तदा।
एकेषुणा देववरः स नो मृत्युर्भविष्यति ॥ १४ ॥

अनघ! तदनन्तर एक हजार वर्ष पूर्ण होनेपर हमलोग एक दूसरेसे मिलेंगे। भगवन्! ये तीनों पुर जब एकत्र होकर एकीभावको प्राप्त हो जायँ, उस समय जो एक ही बाणसे इन तीनों पुरोंको नष्ट कर सके, वही देवेश्वर हमारी मृत्युका कारण होगा॥ १३-१४॥

एवमस्त्विति तान् देवः प्रत्युक्त्वा प्राविशद् दिवम्।
ते तु लब्धवराः प्रीताः सम्प्रधार्य परस्परम् ॥ १५ ॥
पुरत्रयविसृष्ट्यर्थं मयं वव्रुर्महासुरम्।
विश्वकर्माणमजरं दैत्यदानवपूजितम् ॥ १६ ॥

'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) यों कहकर भगवान् ब्रह्मा अपने धामको चले गये। वरदान पाकर वे तीनों असुर बड़े प्रसन्न हुए और परस्पर विचार करके उन्होंने दैत्य-दानव-पूजित, अजर-अमर विश्वकर्मा महान् असुर मयका तीन पुरोंके निर्माणके लिये वरण किया॥ १५-१६॥

ततो मयः स्वतपसा चक्रे धीमान् पुराणि च।
त्रीणि काञ्चनमेकं वै रौप्यं कार्ष्णायसं तथा ॥ १७ ॥

तब बुद्धिमान् मयासुरने अपनी तपस्याद्वारा तीन पुरोंका निर्माण किया। उनमेंसे एक सोनेका, दूसरा चाँदीका और तीसरा पुर लोहेका बना था॥ १७॥

काञ्चनं दिवि तत्रासीदन्तरिक्षे च राजतम्।
आयसं चाभवद् भौमं चक्रस्थं पृथिवीपते ॥ १८ ॥

पृथ्वीपते! सोनेका बना हुआ पुर स्वर्गलोकमें स्थित हुआ। चाँदीका अन्तरिक्षलोकमें और लोहेका भूलोकमें स्थित हुआ; जो आज्ञाके अनुसार सर्वत्र विचरनेवाला था॥ १८॥

एकैकं योजनशतं विस्तारायामतः समम्।
गृहाट्टालकसंयुक्तं बहुप्राकारतोरणम् ॥ १९ ॥

प्रत्येक नगरकी लंबाई-चौड़ाई बराबर-बराबर सौ योजनकी थी। सबमें बड़े-बड़े महल और अट्टालिकाएँ थीं। अनेकानेक प्राकार (परकोटे) और तोरण (फाटक) सुशोभित थे॥ १९॥

गृहप्रवरसम्बाधमसम्बाधमहापथम्।
प्रासादैर्विविधैश्चापि द्वारैश्चैवोपशोभितम् ॥ २० ॥

बड़े-बड़े घरोंसे वह नगर भरा था। उसकी विशाल सड़कें संकीर्णतासे रहित एवं विस्तृत थीं। नाना प्रकारके प्रासाद और द्वार उन पुरोंकी शोभा बढ़ाते थे॥ २०॥

पुरेषु चाभवन् राजन् राजानो वै पृथक्-पृथक्।
काञ्चनं तारकाक्षस्य चित्रमासीन्महात्मनः ॥ २१ ॥

राजन्! उन तीनों पुरोंके राजा अलग-अलग थे। सुवर्णमय विचित्र पुर महामना तारकाक्षके अधिकारमें था॥२१॥

राजतं कमलाक्षस्य विद्युन्मालिन आयसम्।
त्रयस्ते दैत्यराजानस्त्रींल्लोकानस्त्रतेजसा ॥ २२ ॥
आक्रम्य तस्थुरूचुश्च कश्च नाम प्रजापतिः।

चाँदीका बना हुआ पुर कमलाक्षके और लोहेका विद्युन्मालीके अधिकारमें था। वे तीनों दैत्यराज अपने अस्त्रोंके तेजसे तीनों लोकोंको दबाकर रहते और कहते थे कि 'प्रजापति कौन है?'॥ २२½॥

तेषां दानवमुख्यानां प्रयुतान्यर्बुदानि च ॥ २३ ॥
कोट्यश्चाप्रतिवीराणां समाजग्मुस्ततस्ततः।

उन दानवशिरोमणियोंके पास लाखों, करोड़ों और अरबों अप्रतिम वीर दैत्य इधर-उधरसे आ गये थे॥ २३½॥

मांसाशिनः सुदृप्ताश्च सुरैर्विनिकृताः पुरा ॥ २४ ॥
महदैश्वर्यमिच्छन्तस्त्रिपुरं दुर्गमाश्रिताः।

वे सब-के-सब मांसभक्षी और अत्यन्त अभिमानी थे। पूर्वकालमें देवताओंने उनके साथ बहुत छल-कपट किया था। अतः वे महान् ऐश्वर्यकी इच्छा रखते हुए त्रिपुर-दुर्गके आश्रयमें आये थे॥ २४½॥

सर्वेषां च पुनश्चैषां सर्वयोगवहो मयः ॥ २५ ॥
तमाश्रित्य हि ते सर्वे वर्तयन्तेऽकुतोभयाः।

मयासुर इन सबको सब प्रकारकी अप्राप्त वस्तुएँ प्राप्त कराता था। उसका आश्रय लेकर वे सम्पूर्ण दैत्य निर्भय होकर रहते थे॥ २५½॥

यो हि यन्मनसा कामं दध्यौ त्रिपुरसंश्रयः ॥ २६ ॥
तस्मै कामं मयस्तं तं विदधे मायया तदा।

उक्त तीनों पुरोंमें निवास करनेवाला जो भी असुर अपने मनसे जिस अभीष्ट भोगका चिन्तन करता था, उसके लिये मयासुर अपनी मायासे वह-वह भोग तत्काल प्रस्तुत कर देता था॥ २६½॥

तारकाक्षसुतो वीरो हरिर्नाम महाबलः ॥ २७ ॥
तपस्तेपे परमकं येनातुष्यत् पितामहः।

तारकाक्षका महाबली वीर पुत्र 'हरि' नामसे प्रसिद्ध था, उसने बड़ी भारी तपस्या की, जिससे ब्रह्माजी उसपर संतुष्ट हो गये॥ २७½॥

संतुष्टमवृणोद् देवं वापी भवतु नः पुरे ॥ २८ ॥
शस्त्रैर्विनिहता यत्र क्षिप्ताः स्युर्बलवत्तराः।

संतुष्ट हुए ब्रह्माजीसे उसने यह वर माँगा कि 'हमारे पुरोंमें एक-एक ऐसी बावड़ी हो जाय, जिसके भीतर डाल दिये जानेपर शस्त्रोंके आघातसे मरे हुए दैत्य वीर और भी प्रबल होकर जीवित हो उठें' ॥ २८½ ॥

स तु लब्ध्वा वरं वीरस्तारकाक्षसुतो हरिः ॥ २९ ॥
ससृजे तत्र वापीं तां मृतानां जीविनीं प्रभो।

प्रभो ! वह वरदान पाकर तारकाक्षके वीर पुत्र हरिने उन पुरोंमें एक-एक बावड़ीका निर्माण किया, जो मृतकोंको जीवन प्रदान करनेवाली थी ॥ २९½ ॥

येन रूपेण दैत्यस्तु येन वेषेण चैव ह ॥ ३० ॥
मृतस्तस्यां परिक्षिप्तस्तादृशेनैव जज्ञिवान्।

जो दैत्य जिस रूप और जैसे वेषमें रहता था, मरनेपर उस बावड़ीमें डालनेके पश्चात् वैसे ही रूप और वेषसे सम्पन्न होकर प्रकट हो जाता था ॥ ३०½ ॥

तां प्राप्य ते पुनस्तांस्तु लोकान् सर्वान् बबाधिरे॥३१॥
महता तपसा सिद्धाः सुराणां भयवर्धनाः।
न तेषामभवद् राजन् क्षयो युद्धे कदाचन ॥ ३२ ॥

उस वापीमें पहुँच जानेपर नया जीवन धारण करके वे दैत्य पुनः उन सभी लोकोंको बाधा पहुँचाने लगते थे। राजन् ! वे महान् तपसे सिद्ध हुए असुर देवताओंका भय बढ़ा रहे थे। युद्धमें कभी उनका विनाश नहीं होता था ॥

ततस्ते लोभमोहाभ्यामभिभूता विचेतसः।
निर्ह्रीकाः संस्थिताः सर्वे स्थापिताः समलूलुपन्।३३।

उन पुरोंमें बसाये गये सभी दैत्य लोभ और मोहके वशीभूत हो विवेकहीन और निर्लज्ज होकर सब ओर लूटपाट करने लगे ॥ ३३ ॥

विद्राव्य सगणान् देवांस्तत्र तत्र तदा तदा।
विचेरुः स्वेन कामेन वरदानेन दर्पिताः ॥ ३४ ॥

वरदान पानेके कारण उनका घमंड बढ़ गया था। वे विभिन्न स्थानोंमें देवताओं और उनके गणोंको भगाकर वहाँ अपनी इच्छाके अनुसार विचरते थे ॥ ३४ ॥

देवोद्यानानि सर्वाणि प्रियाणि च दिवौकसाम्।
ऋषीणामाश्रमान् पुण्यान् रम्याञ्जनपदांस्तथा ॥३५॥
व्यनाशयन्नमर्यादा दानवा दुष्टचारिणः।

स्वर्गवासियोंके परम प्रिय समस्त देवोद्यानों, ऋषियोंके पवित्र आश्रमों तथा रमणीय जनपदोंको भी वे मर्यादाशून्य दुराचारी दानव नष्ट-भ्रष्ट कर देते थे ॥ ३५½ ॥

(निःस्थानाश्च कृता देवा ऋषयः पितृभिः सह।
दैत्यैस्त्रिभिस्त्रयो लोका ह्याक्रान्तास्तैः सुरेतरैः ॥)

उन देवविरोधी तीनों दैत्योंने देवताओं, पितरों और ऋषियोंको भी उनके स्थानोंसे हटाकर निराश्रय कर दिया। वे ही नहीं, तीनों लोकोंके निवासी उनके द्वारा पददलित हो रहे थे ॥

पीड्यमानेषु लोकेषु ततः शक्रो मरुद्वृतः ॥ ३६ ॥
पुराण्यायोधयांचक्रे वज्रपातैः समन्ततः।

जब सम्पूर्ण लोकोंके प्राणी पीडित होने लगे, तब देवताओंसहित इन्द्र चारों ओरसे वज्रपात करते हुए उन तीनों पुरोंके साथ युद्ध करने लगे ॥ ३६½ ॥

नाशकत् तान्यभेद्यानि यदा भेत्तुं पुरंदरः ॥ ३७ ॥
पुराणि वरदत्तानि धात्रा तेन नराधिप।
तदा भीतः सुरपतिर्मुक्त्वा तानि पुराण्यथ ॥ ३८ ॥
तैरेव विबुधैः सार्धं पितामहमरिंदम।
जगामाथ तदाख्यातुं विप्रकारं सुरेतरैः ॥ ३९ ॥

शत्रुदमननरेश्वर ! जब देवराज इन्द्र ब्रह्माजीका वर पाये हुए उन अभेद्य पुरोंका भेदन न कर सके, तब वे भयभीत हो उन पुरोंको छोड़कर उन्हीं देवताओंके साथ ब्रह्माजीके पास उन दैत्योंका अत्याचार बतानेके लिये गये ॥ ३७—३९ ॥

ते तत्त्वं सर्वमाख्याय शिरोभिः सम्प्रणम्य च।
वधोपायमपृच्छन्त भगवन्तं पितामहम् ॥ ४० ॥

उन्होंने मस्तक झुकाकर भगवान् ब्रह्माजीको प्रणाम किया और सारी बातें ठीक-ठीक बताकर उनसे उन दैत्योंके वधका उपाय पूछा ॥ ४० ॥

श्रुत्वा तद् भगवान् देवो देवानिदमुवाच ह।
ममापि सोऽपराध्नोति यो युष्माकमसौख्यकृत् ॥ ४१ ॥

वह सब सुनकर भगवान् ब्रह्माने उन देवताओंसे इस प्रकार कहा—'देवगण ! जो तुम्हारी बुराई करता है, वह मेरा भी अपराधी है ॥ ४१ ॥

असुरा हि दुरात्मानः सर्व एव सुरद्विषः।
अपराध्यन्ति सततं ये युष्मान् पीडयन्त्युत ॥ ४२ ॥

'वे समस्त देवद्रोही दुरात्मा असुर, जो सदा तुम्हें पीडा देते रहते हैं, निश्चय ही मेरा भी महान् अपराध करते हैं ॥ ४२ ॥

अहं हि तुल्यः सर्वेषां भूतानां नात्र संशयः।
अधार्मिकास्तु हन्तव्या इति मे व्रतमाहितम् ॥ ४३ ॥

'इसमें संशय नहीं कि समस्त प्राणियोंके प्रति मेरा समान भाव है, तथापि मैंने यह व्रत ले रखा है कि पापात्माओंका वध कर दिया जाय ॥ ४३ ॥

एकेषुणा विभेद्यानि तानि दुर्गाणि नान्यथा।
न च स्थाणुमृते शक्तो भेत्तुमेकेषुणा पुरः ॥ ४४ ॥

'वे तीनों पुर एक ही बाणसे वेध दिये जायँ तो नष्ट हो सकते हैं, अन्यथा नहीं; परंतु महादेवजीके सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो उन तीनोंको एक साथ एक ही बाणसे बेध सके ॥ ४४ ॥

ते यूयं स्थाणुमीशानं जिष्णुमक्लिष्टकारिणम् ।
योद्धारं वृणुतादित्याः स तान् हन्ता सुरेतरान् ।४५।

'अतः अदितिकुमारो ! तुमलोग अनायास ही महान् कर्म करनेवाले, विजयशील, ईश्वर, महादेवजीका योद्धाके रूपमें वरण करो । वे ही उन दैत्योंको मार सकते हैं' ॥ ४५ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा देवाः शक्रपुरोगमाः ।
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा वृषाङ्कं शरणं ययुः ॥ ४६ ॥

उनकी यह बात सुनकर इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता ब्रह्माजीको आगे करके महादेवजीकी शरणमें गये ॥

तपो नियममास्थाय गृणन्तो ब्रह्म शाश्वतम् ।
ऋषिभिः सह धर्मज्ञा भवं सर्वात्मना गताः ॥ ४७ ॥

तप और नियमका आश्रय ले ऋषियोंसहित धर्मज्ञ देवता सनातन ब्रह्मस्वरूप महादेवजीकी स्तुति करते हुए सम्पूर्ण हृदयसे उनकी शरणमें गये ॥ ४७ ॥

तुष्टुवुर्वाग्भिरिष्टाभिर्भयेष्वभयदं नृप ।
सर्वात्मानं महात्मानं येनाप्तं सर्वमात्मना ॥ ४८ ॥

नरेश्वर ! जिन्होंने आत्मस्वरूपसे सबको व्याप्त कर रखा है तथा जो भयके अवसरोंपर अभय प्रदान करनेवाले हैं, उन सर्वात्मा, महात्मा भगवान् शिवकी उन देवताओंने अभीष्ट वाणीद्वारा स्तुति की ॥ ४८ ॥

तपोविशेषैर्विविधैर्योगं यो वेद चात्मनः ।
यः सांख्यमात्मनो वेत्ति यस्य चात्मा वशे सदा॥४९॥
तं ते ददृशुरीशानं तेजोराशिमुमापतिम् ।
अनन्यसदृशं लोके भगवन्तमकल्मषम् ॥ ५० ॥

जो नाना प्रकारकी विशेष तपस्याओंद्वारा मनकी सम्पूर्ण वृत्तियोंके निरोधका उपाय जानते हैं, जिन्हें अपनी ज्ञानस्वरूपताका बोध नित्य बना रहता है, जिनका अन्तःकरण सदा अपने वशमें रहता है, जगत्में जिनकी कहीं भी तुलना नहीं है, उन निष्पाप, तेजोराशि, महेश्वर भगवान् उमापतिका उन देवताओंने दर्शन किया ॥ ४९–५० ॥

एकं च भगवन्तं ते नानारूपमकल्पयन् ।
आत्मनः प्रतिरूपाणि रूपाण्यथ महात्मनि ॥ ५१ ॥
परस्परस्य चापश्यन् सर्वे परमविस्मिताः ।

उन्होंने एक ही भगवान् शिवको अपनी भावनाके अनुसार अनेक रूपोंमें कल्पित किया। उन परमात्मामें अपने तथा दूसरोंके प्रतिबिम्ब देखे । यह सब देखकर परस्पर दृष्टिपात करके वे सब-के-सब अत्यन्त आश्चर्यचकित हो उठे ॥ ५१½ ॥

सर्वभूतमयं दृष्ट्वा तमजं जगतः पतिम् ॥ ५२ ॥
देवा ब्रह्मर्षयश्चैव शिरोभिर्धरणीं गताः ।

उन सर्वभूतमय अजन्मा जगदीश्वरको देखकर सम्पूर्ण देवताओं तथा ब्रह्मर्षियोंने धरतीपर मस्तक टेक दिये ॥

तान् स्वस्तिवादेनाभ्यर्च्य समुत्थाप्य च शङ्करः ॥५३॥
ब्रूत ब्रूतेति भगवान् स्मयमानोऽभ्यभाषत ।

तब भगवान् शङ्करने 'तुम्हारा कल्याण हो' ऐसा कहकर उनका समादर करते हुए उनको उठाया और मुसकराते हुए कहा—'बोलो, बोलो; क्या है ?' ॥ ५३½ ॥

त्र्यम्बकेणाभ्यनुज्ञातास्ततस्ते स्वस्थचेतसः ॥ ५४ ॥
नमो नमो नमस्तेऽस्तु प्रभो इत्यब्रुवन् वचः ।

भगवान् त्रिलोचनकी आज्ञा पाकर स्वस्थचित्त हुए वे देवगण इस प्रकार उनकी स्तुति करने लगे—'प्रभो ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है ॥ ५४½ ॥

नमो देवाधिदेवाय धन्विने वनमालिने ॥ ५५ ॥
प्रजापतिमखघ्नाय प्रजापतिभिरीड्यते ।
नमः स्तुताय स्तुत्याय स्तूयमानाय शम्भवे ॥ ५६ ॥

'आप देवताओंके अधिदेवता, धनुर्धर और वनमालाधारी हैं । आपको नमस्कार है। आप दक्षप्रजापतिके यज्ञका विध्वंस करनेवाले हैं, प्रजापति भी आपकी स्तुति करते हैं, सबके द्वारा आपकी ही स्तुति की गयी है, आप ही स्तुतिके योग्य हैं तथा सब लोग आपकी ही स्तुति करते हैं। आप कल्याणस्वरूप शम्भुको नमस्कार है ॥ ५५-५६ ॥

विलोहिताय रुद्राय नीलग्रीवाय शूलिने ।
अमोघाय मृगाक्षाय प्रवरायुधयोधिने ॥ ५७ ॥

'आप विशेषतः लालवर्णके हैं, पापियोंको रुलानेवाले रुद्र हैं, नीलकण्ठ और त्रिशूलधारी हैं, आपका दर्शन अमोघ फल देनेवाला है, आपके नेत्र मृगोंके समान हैं तथा आप श्रेष्ठ आयुधोंद्वारा युद्ध करनेवाले हैं । आपको नमस्कार है ॥ ५७ ॥

अर्हाय चैव शुद्धाय क्षयाय क्रथनाय च ।
दुर्वारणाय शुक्राय ब्रह्मणे ब्रह्मचारिणे ॥ ५८ ॥
ईशानायाप्रमेयाय नियन्त्रे चर्मवाससे ।
तपोरताय पिङ्गाय व्रतिने कृत्तिवाससे ॥ ५९ ॥

'आप पूजनीय, शुद्ध, प्रलयकालमें सबका संहार करनेवाले हैं। आपको रोकना या पराजित करना सर्वथा कठिन है । आप शुक्लवर्ण, ब्रह्म, ब्रह्मचारी, ईशान, अप्रमेय, नियन्ता तथा व्याघ्रचर्ममय वस्त्र धारण करनेवाले हैं । आप सदा तपस्यामें तत्पर रहनेवाले, पिङ्गलवर्ण, व्रतधारी और कृत्तिवासा हैं। आपको नमस्कार है ॥ ५८-५९ ॥

कुमारपित्रे त्र्यक्षाय प्रवरायुधधारिणे ।
प्रपन्नार्तिविनाशाय ब्रह्मद्विट्संघघातिने ॥ ६० ॥

'आप कुमार कार्तिकेयके पिता, त्रिनेत्रधारी, उत्तम आयुध धारण करनेवाले, शरणागतदुःखभञ्जन तथा

ब्रह्मद्रोहियोंके समुदायका विनाश करनेवाले हैं। आपको नमस्कार है ॥ ६० ॥

वनस्पतीनां पतये नराणां पतये नमः।
गवां च पतये नित्यं यज्ञानां पतये नमः ॥ ६१ ॥

'आप वनस्पतियोंके पालक और मनुष्योंके अधिपति हैं। आप ही गौओंके स्वामी और सदा यज्ञोंके अधीश्वर हैं। आपको बारंबार नमस्कार है ॥ ६१ ॥

नमोऽस्तु ते ससैन्याय त्र्यम्बकायामितौजसे।
मनोवाक्कर्मभिर्देव त्वां प्रपन्नान् भजस्व नः ॥ ६२ ॥

'सेनासहित आप अमिततेजस्वी भगवान् त्र्यम्बकको नमस्कार है। देव! हम मन, वाणी और क्रियाद्वारा आपकी शरणमें आये हैं। आप हमें अपनाइये' ॥ ६२ ॥

ततः प्रसन्नो भगवान् स्वागतेनाभिनन्द्य च।
प्रोवाच व्येतु वस्त्रासो ब्रूत किं करवाणि वः ॥ ६३ ॥

तब भगवान् शङ्करने प्रसन्न होकर स्वागत-सत्कारके द्वारा देवताओंको आनन्दित करके कहा—'देवगण! तुम्हारा भय दूर हो जाना चाहिये; बोलो, मैं तुम्हारे लिये क्या करूँ?' ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि त्रिपुराख्याने त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें त्रिपुराख्यानविषयक तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३३ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ४½ श्लोक मिलाकर कुल ६७½ श्लोक हैं)

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

दुर्योधनका शल्यको शिवके विचित्ररथका विवरण सुनाना और शिवजीद्वारा त्रिपुर-वधका उपाख्यान सुनाना एवं परशुरामजीके द्वारा कर्णको दिव्य अस्त्र मिलनेकी बात कहना

दुर्योधन उवाच

पितृदेवर्षिसंघेभ्योऽभये दत्ते महात्मना।
सत्कृत्य शङ्करं प्राह ब्रह्मा लोकहितं वचः ॥ १ ॥

दुर्योधन बोला—राजन्! परमात्मा शिवने जब देवताओं, पितरों तथा ऋषियोंके समुदायको अभय दे दिया, तब ब्रह्माजीने उन भगवान् शङ्करका सत्कार करके यह लोक-हितकारी वचन कहा—॥ १ ॥

तवातिसर्गाद् देवेश प्राजापत्यमिदं पदम्।
मयाधितिष्ठता दत्तो दानवेभ्यो महान् वरः ॥ २ ॥

'देवेश्वर! आपके आदेशसे इस प्रजापतिपदपर स्थित रहते हुए मैंने दानवोंको एक महान् वर दे दिया है ॥ २ ॥

ताननतिक्रान्तमर्यादान् नान्यः संहर्तुमर्हति।
त्वामृते भूतभव्येश त्वं ह्येषां प्रत्यरिर्वधे ॥ ३ ॥

'उस वरको पाकर वे मर्यादाका उल्लङ्घन कर चुके हैं। भूत, वर्तमान और भविष्यके स्वामी महेश्वर! आपके सिवा दूसरा कोई भी उनका संहार नहीं कर सकता। उनके वधके लिये आप ही प्रतिपक्षी शत्रु हो सकते हैं ॥ ३ ॥

स त्वं देव प्रपन्नानां याचतां च दिवौकसाम्।
कुरु प्रसादं देवेश दानवाञ्जहि शङ्कर ॥ ४ ॥

'देव! हम सब देवता आपकी शरणमें आकर याचना करते हैं। देवेश्वर शङ्कर! आप हमपर कृपा कीजिये और इन दानवोंको मार डालिये ॥ ४॥

त्वत्प्रसादाज्जगत् सर्वं सुखमैधत मानद।
शरण्यस्त्वं हि लोकेश ते वयं शरणं गताः ॥ ५ ॥

'मानद! आपके प्रसादसे सम्पूर्ण जगत् सुखपूर्वक उन्नति करता आया है, लोकेश्वर! आप ही आश्रयदाता हैं; इसलिये हम आपकी शरणमें आये हैं' ॥ ५ ॥

स्थाणुरुवाच

हन्तव्याः शत्रवः सर्वे युष्माकमिति मे मतिः।
न त्वेक उत्सहे हन्तुं बलस्था हि सुरद्विषः ॥ ६ ॥

भगवान् शिवने कहा—देवताओ! मेरा ऐसा विचार है कि तुम्हारे सभी शत्रुओंका वध किया जाय, परंतु मैं अकेला ही उन सबको नहीं मार सकता; क्योंकि वे देवद्रोही दैत्य बड़े बलवान् हैं ॥ ६ ॥

ते यूयं संहताः सर्वे मदीयेनार्धतेजसा।
जयध्वं युधि ताञ्शत्रून् संहता हि महाबलाः ॥ ७ ॥

अतः तुम सब लोग एक साथ सङ्घ बनाकर मेरे आधे तेजसे पुष्ट हो युद्धमें उन शत्रुओंको जीत लो; क्योंकि जो संघटित होते हैं, वे महान् बलशाली हो जाते हैं ॥ ७ ॥

देवा ऊचुः

अस्मत्तेजोबलं यावत् तावद्द्विगुणमाहवे।
तेषामिति हि मन्यामो दृष्टतेजोबला हि ते ॥ ८ ॥

देवता बोले—प्रभो! युद्धमें हमलोगोंका जितना भी तेज और बल है, उससे दूना उन दैत्योंका है, ऐसा हम मानते हैं; क्योंकि उनके तेज और बलको हमने देख लिया है ॥ ८ ॥

स्थाणुरुवाच

वध्यास्ते सर्वतः पापा ये युष्मास्वपराधिनः।
मम तेजोबलार्धेन सर्वान् निघ्नत शात्रवान् ॥ ९ ॥

भगवान् शिव बोले—देवताओ! जो पापी तुमलोगोंके अपराधी हैं, वे सब प्रकारसे वधके ही योग्य हैं। मेरे तेज और बलके आधे भागसे युक्त हो तुमलोग समस्त शत्रुओंको मार डालो॥

देवा ऊचुः

बिभर्तुं भवतोऽर्धं तु न शक्ष्यामो महेश्वर।
सर्वेषां नो बलार्धेन त्वमेव जहि शात्रवान् ॥ १० ॥

देवताओंने कहा—महेश्वर ! हम आपका आधा बल धारण नहीं कर सकते; अतः आप ही हम सब लोगोंके आधे बलसे युक्त हो शत्रुओंका वध कीजिये ॥ १० ॥

स्थाणुरुवाच

यदि शक्तिर्न वः काचिद् बिभर्तुं मामकं बलम् ।
अहमेतान् हनिष्यामि युष्मत्तेजोऽर्धबृंहितः ॥ ११॥

भगवान् शिव बोले–देवगण ! यदि मेरे बलको धारण करनेमें तुम्हारी सामर्थ्य नहीं है तो मैं ही तुमलोगोंके आधे तेजसे परिपुष्ट हो इन दैत्योंका वध करूँगा ॥ ११ ॥

ततस्तथेति देवेशस्तैरुक्तो राजसत्तम ।
अर्धमादाय सर्वेषां तेजसाभ्यधिकोऽभवत् ॥ १२ ॥

नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर देवताओंने देवेश्वर भगवान् शिवसे 'तथास्तु' कह दिया और उन सबके तेजका आधा भाग लेकर वे अधिक तेजस्वी हो गये ॥ १२ ॥

स तु देवो बलेनासीत् सर्वेभ्यो बलवत्तरः ।
महादेव इति ख्यातस्ततः प्रभृति शङ्करः ॥ १३ ॥

वे देव बलके द्वारा उन सबकी अपेक्षा अधिक बलशाली हो गये । इसलिये उसी समयसे उन भगवान् शङ्करका महादेव नाम विख्यात हो गया ॥ १३ ॥

ततोऽब्रवीन्महादेवो धनुर्बाणधरो ह्यहम् ।
हनिष्यामि रथेनाजौ तान् रिपून् वो दिवौकसः ॥ १४ ॥

तत्पश्चात् महादेवजीने कहा—'देवताओ ! मैं धनुष-बाण धारण करके रथपर बैठकर युद्धस्थलमें तुम्हारे उन शत्रुओंका वध करूँगा ॥ १४ ॥

ते यूयं मे रथं चैव धनुर्बाणं तथैव च ।
पश्यध्वं यावदद्यैतान् पातयामि महीतले ॥ १५ ॥

'अतः तुमलोग मेरे लिये रथ और धनुष-बाणकी खोज करो, जिसके द्वारा आज इन दैत्योंको भूतलपर मार गिराऊँ' ॥

देवा ऊचुः

मूर्तीः सर्वाः समाधाय त्रैलोक्यस्य ततस्ततः ।
रथं ते कल्पयिष्यामो देवेश्वर सुवर्चसम् ॥ १६ ॥
तथैव बुद्ध्या विहितं विश्वकर्मकृतं शुभम् ।

देवता बोले—देवेश्वर ! हमलोग तीनों लोकोंके तेजकी सारी मात्राओंको एकत्र करके आपके लिये परम तेजस्वी रथका निर्माण करेंगे । विश्वकर्माका बुद्धिपूर्वक बनाया हुआ वह रथ बहुत ही सुन्दर होगा ॥ १६½ ॥

ततो विबुधशार्दूलास्ते रथं समकल्पयन् ॥ १७ ॥
विष्णुं सोमं हुताशं च तस्येषुं समकल्पयन् ।

तदनन्तर उन देवसंघोंने रथका निर्माण किया और विष्णु, चन्द्रमा तथा अग्नि—इन तीनोंको उनका बाण बनाया ॥ १७½ ॥

शृङ्गमग्निर्बभूवास्य भल्लः सोमो विशाम्पते ॥ १८ ॥
कुड्मलश्चाभवद् विष्णुस्तस्मिन्निषुवरे तदा ।

प्रजानाथ ! उस बाणका शृङ्ग (गाँठ) अग्नि हुए । उसका भल्ल (फल) चन्द्रमा हुए और उस श्रेष्ठ बाणके अग्रभागमें भगवान् विष्णु प्रतिष्ठित हुए ॥ १८½ ॥

रथं वसुन्धरां देवीं विशालपुरमालिनीम् ॥ १९ ॥
सपर्वतवनद्वीपां चक्रुर्भूतधरां तदा ।

बड़े-बड़े नगरोंसे सुशोभित, पर्वत, वन और द्वीपोंसे युक्त, प्राणियोंकी आधारभूता पृथ्वी देवीको उस समय देवताओंने रथ बनाया ॥ १९½ ॥

मन्दरः पर्वतश्चाक्षो जङ्घा तस्य महानदी ॥ २० ॥
दिशश्च प्रदिशश्चैव परिवारो रथस्य तु ।

मन्दराचल उस रथका धुरा था, महानदी गङ्गा जंघा (धुरेका आश्रय) बनी थीं, दिशाएँ और विदिशाएँ उस रथका आवरण थीं ॥ २०½ ॥

ईषा नक्षत्रवंशश्च युगः कृतयुगोऽभवत् ॥ २१ ॥
कूबरश्च रथस्यासीद् वासुकिर्भुजगोत्तमः ।
अपस्करमधिष्ठाने हिमवान् विन्ध्यपर्वतः ।
उदयास्तावधिष्ठाने गिरी चक्रुः सुरोत्तमाः ॥ २२ ॥

नक्षत्रोंका समूह ईषादण्ड हुआ और कृतयुगने जुएका रूप धारण किया । नागराज वासुकि उस रथका कूबर बन गये थे । हिमालय पर्वत अपस्कर (रथके पीछेका काठ) और विन्ध्याचलने उसके आधारकाष्ठका रूप धारण किया । उदयाचल और अस्ताचल दोनोंको उन श्रेष्ठ देवताओंने पहियोंका आधारभूत काष्ठ बनाया ॥ २१-२२ ॥

समुद्रमक्षमसृजन् दानवालयमुत्तमम् ।
सप्तर्षिमण्डलं चैव रथस्यासीत् परिष्करः ॥ २३ ॥

दानवोंके उत्तम निवासस्थान समुद्रको बन्धनरज्जु बनाया । सप्तर्षियोंका समुदाय रथका परिस्कर (चक्ररक्षा आदिका साधन) बन गया ॥ २३ ॥

गङ्गा सरस्वती सिन्धुर्धुरमाकाशमेव च ।
उपस्करो रथस्यासन्नापः सर्वाश्च निम्नगाः ॥ २४ ॥

गङ्गा, सरस्वती और सिंधु—इन तीनों नदियोंके साथ आकाश त्रिवेणुकाष्ठयुक्त धुरेका भाग हुआ । उस रथके बन्धन आदिकी सामग्री जल तथा सम्पूर्ण नदियाँ थीं ॥ २४ ॥

अहोरात्रं कलाश्चैव काष्ठाश्च ऋतवस्तथा ।
अनुकर्षं ग्रहा दीप्ता वरूथं चापि तारकाः ॥ २५ ॥

दिन, रात, कला, काष्ठा और छहों ऋतुएँ उस रथका अनुकर्ष (नीचेका काष्ठ) बन गयीं । चमकते हुए ग्रह और तारे वरूथ (रथकी रक्षाके लिये आवरण) हुए ॥ २५ ॥

धर्मार्थकामं संयुक्तं त्रिवेणुं दारु बन्धुरम् ।
ओषधीर्वीरुधश्चैव घण्टाः पुष्पफलोपगाः ॥ २६ ॥

त्रिवेणु-तुल्य धर्म, अर्थ और काम–तीनोंको संयुक्त करके

रथकी बैठक बनाया। फल और फूलोंसे युक्त ओषधियों एवं लताओंको घण्टाका रूप दिया ॥ २६ ॥

सूर्याचन्द्रमसौ कृत्वा चक्रे रथवरोत्तमे।
पक्षौ पूर्वापरौ तत्र कृते राज्यहनी शुभे ॥ २७ ॥

उस श्रेष्ठ रथमें सूर्य और चन्द्रमाको दोनों पहिये बनाकर सुन्दर रात्रि और दिनको वहाँ पूर्वपक्ष और अपर-पक्षके रूपमें प्रतिष्ठित किया ॥ २७ ॥

दश नागपतीनीषां धृतराष्ट्रमुखांस्तदा।
योक्त्राणि चक्रुर्नागांश्च निःश्वसन्तो महोरगान् ॥ २८ ॥

धृतराष्ट्र आदि दस नागराजोंको भी ईषादण्डमें ही स्थान दिया। फुफकारते हुए बड़े-बड़े सर्पोंको उस रथके जोत बनाये ॥ २८ ॥

द्यां युगं युगचर्माणि संवर्तकबलाहकान्।
कालपृष्ठोऽथ नहुषः कर्कोटकधनंजयौ ॥ २९ ॥
इतरे चाभवन् नागा हयानां बालबन्धनाः।
दिशश्च प्रदिशश्चैव रश्मयो रथवाजिनाम् ॥ ३० ॥

द्युलोकको भी जूएमें ही स्थान दिया। प्रलयकालके मेघोंको युगचर्म बनाया। कालपृष्ठ, नहुष, कर्कोटक, धनंजय तथा दूसरे-दूसरे नाग घोड़ोंके केसर बाँधनेकी रस्सी बनाये गये। दिशाओं और विदिशाओंने रथमें जुते हुए घोड़ों-की बागडोरका भी रूप धारण किया ॥ २९-३० ॥

संध्यां धृतिं च मेधां च स्थितिं संनतिमेव च।
ग्रहनक्षत्रताराभिश्चर्म चित्रं नभस्तलम् ॥ ३१ ॥

संध्या, धृति, मेधा, स्थिति और संनतिसहित आकाशको, जो ग्रह, नक्षत्र और तारोंसे विचित्र शोभा धारण करता है, चर्म (रथका ऊपरी आवरण) बनाया ॥ ३१ ॥

सुराम्बुप्रेतवित्तानां पतीँल्लोकेश्वरान् हयान्।
सिनीवालीमनुमतिं कुहूं राकां च सुव्रताम् ॥ ३२ ॥
योक्त्राणि चक्रुर्वाहानां रोहकांस्तत्र कण्टकान्।

इन्द्र, वरुण, यम और कुबेर—इन चार लोकपालोंको देवताओंने उस रथके घोड़े बनाये। सिनीवाली, अनुमति, कुहू तथा उत्तम व्रतका पालन करनेवाली राका इनकी अधिष्ठात्री देवियोंको घोड़ोंके जोतेका रूप दिया और इनके अधिकारी देवताओंको घोड़ोंकी लगामोंके काँटे बनाया॥

धर्मः सत्यं तपोऽर्थश्च विहितास्तत्र रश्मयः ॥ ३३ ॥
अधिष्ठानं मनश्चासीत् परिरथ्या सरस्वती।
नानावर्णाश्च चित्राश्च पताकाः पवनेरिताः ॥ ३४ ॥
विद्युदिन्द्रधनुर्नद्धं रथं दीप्तं व्यदीपयन्।

धर्म, सत्य, तप और अर्थ—इनको वहाँ लगाम बनाया गया। रथकी आधारभूमि मन हुआ और सरस्वती देवी रथके आगे बढ़नेका मार्ग थीं। नाना रंगोंकी विचित्र पताकाएँ पवनसे प्रेरित होकर फहरा रही थीं, जो बिजली और इन्द्रधनुषसे बँधे हुए उस देदीप्यमान रथकी शोभा बढ़ाती थीं ॥ ३३-३४½ ॥

वषट्कारः प्रतोदोऽभूद् गायत्री शीर्षबन्धना ॥ ३५ ॥

वषट्कार घोड़ोंका चाबुक हुआ और गायत्री उस रथके ऊपरी भागकी बन्धन-रज्जु बनीं ॥ ३५ ॥

यो यज्ञे विहितः पूर्वमीशानस्य महात्मनः।
संवत्सरो धनुस्तद् वै सावित्री ज्या महास्वना ॥ ३६ ॥

पूर्वकालमें जो महात्मा महादेवजीके यज्ञमें निर्मित हुआ था, वह संवत्सर ही उनके लिये धनुष बना और सावित्री उस धनुषकी महान् टंकार करनेवाली प्रत्यञ्चा बनी ॥ ३६ ॥

दिव्यं च वर्म विहितं महार्हं रत्नभूषितम्।
अभेद्यं विरजस्कं वै कालचक्रबहिष्कृतम् ॥ ३७ ॥

महादेवजीके लिये एक दिव्य कवच तैयार किया गया, जो बहुमूल्य, रत्नभूषित, रजोगुणरहित (अथवा धूलरहित स्वच्छ), अभेद्य तथा कालचक्रकी पहुँचसे परे था ॥ ३७ ॥

ध्वजयष्टिरभून्मेरुः श्रीमान् कनकपर्वतः।
पताकाश्चाभवन् मेघास्तडिद्भिः समलङ्कृताः ॥ ३८ ॥
रेजुरध्वर्युमध्यस्था ज्वलन्त इव पावकाः।

कान्तिमान् कनकमय मेरुपर्वत रथके ध्वजका दण्ड बना था। बिजलियोंसे विभूषित बादल ही पताकाओंका काम दे रहे थे, जो यजुर्वेदी ऋत्विजोंके बीचमें स्थित हुई अग्नियोंके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ ३८½ ॥

क्लृप्तं तु तं रथं दृष्ट्वा विस्मिता देवताऽभवन् ॥ ३९ ॥
सर्वलोकस्य तेजांसि दृष्ट्वैकस्थानि मारिष।
युक्तं निवेदयामासुर्देवास्तस्मै महात्मने ॥ ४० ॥

मान्यवर ! वह रथ क्या था, सम्पूर्ण जगत्के तेजका पुञ्ज एकत्र हो गया था। उसे निर्मित हुआ देख सम्पूर्ण देवता आश्चर्यचकित हो उठे। फिर उन्होंने महात्मा महादेव-जीसे यह निवेदन किया कि रथ तैयार है ॥ ३९-४० ॥

एवं तस्मिन् महाराज कल्पिते रथसत्तमे।
देवैर्मनुजशार्दूल द्विषतामभिमर्दने ॥ ४१ ॥
स्वान्यायुधानि मुख्यानि न्यदधाच्छङ्करो रथे।
ध्वजयष्टिं वियत् कृत्वा स्थापयामास गोवृषम् ॥ ४२ ॥

पुरुषसिंह ! महाराज ! इस प्रकार देवताओंद्वारा शत्रुओंका मर्दन करनेवाले उस श्रेष्ठ रथका निर्माण हो जानेपर भगवान् शङ्करने उसके ऊपर अपने मुख्य-मुख्य अस्त्र-शस्त्र रख दिये और ध्वजदण्डको आकाशव्यापी बनाकर उसके ऊपर अपने वृषभ नन्दीको स्थापित कर दिया ॥ ४१-४२ ॥

ब्रह्मदण्डः कालदण्डो रुद्रदण्डस्तथा ज्वरः।
परिस्कन्दा रथस्यासन् सर्वतोदिशमुद्यताः ॥ ४३ ॥

तत्पश्चात् ब्रह्मदण्ड, कालदण्ड, रुद्रदण्ड तथा ज्वर—ये

उस रथके पार्श्वरक्षक बनकर चारों ओर शस्त्र लेकर खड़े हो गये ॥ ४३ ॥

अथर्वाङ्गिरसावास्तां चक्ररक्षौ महात्मनः ।
ऋग्वेदः सामवेदश्च पुराणं च पुरःसराः ॥ ४४ ॥

अथर्वा और अङ्गिरा महात्मा शिवके उस रथके पहियोंकी रक्षा करने लगे । ऋग्वेद, सामवेद और समस्त पुराण उस रथके आगे चलनेवाले योद्धा हुए ॥ ४४ ॥

इतिहासयजुर्वेदौ पृष्ठरक्षौ बभूवतुः ।
दिव्या वाचश्च विद्याश्च परिपार्श्वचराः स्थिताः ॥४५॥

इतिहास और यजुर्वेद पृष्ठरक्षक हो गये तथा दिव्य वाणी और विद्याएँ पार्श्ववर्ती बनकर खड़ी हो गयीं ॥

स्तोत्रादयश्च राजेन्द्र वषट्कारस्तथैव च ।
ओंकारश्च मुखे राजन्नतिशोभाकरोऽभवत् ॥ ४६ ॥

राजेन्द्र ! स्तोत्र-कवच आदि, वषट्कार तथा ओङ्कार—ये मुखभागमें स्थित होकर अत्यन्त शोभा बढ़ाने लगे ॥

विचित्रमृतुभिः षड्भिः कृत्वा संवत्सरं धनुः ।
छायामेवात्मनश्चक्रे धनुर्ज्यामक्षयां रणे ॥ ४७ ॥

छहों ऋतुओंसे युक्त संवत्सरको विचित्र धनुष बनाकर अपनी छायाको ही महादेवजीने उस धनुषकी प्रत्यञ्चा बनायी, जो रणभूमिमें कभी नष्ट होनेवाली नहीं थी ॥

कालो हि भगवान् रुद्रस्तस्य संवत्सरो धनुः ।
तस्माद् रौद्री कालरात्रिर्ज्या कृता धनुषोऽजरा ॥४८॥

भगवान् रुद्र ही काल हैं, अतः कालका अवयवभूत संवत्सर ही उनका धनुष हुआ । कालरात्रि भी रुद्रका ही अंश है, अतः उसीको उन्होंने अपने धनुषकी अटूट प्रत्यञ्चा बना लिया ॥ ४८ ॥

इषुश्चाप्यभवद् विष्णुर्ज्वलनः सोम एव च ।
अग्नीषोमौ जगत् कृत्स्नं वैष्णवं चोच्यते जगत् ॥ ४९ ॥

भगवान् विष्णु, अग्नि और चन्द्रमा—ये ही बाण हुए थे; क्योंकि सम्पूर्ण जगत् अग्नि और सोमका ही स्वरूप है । साथ ही सारा संसार वैष्णव (विष्णुमय) भी कहा जाता है ॥ ४९ ॥

विष्णुश्चात्मा भगवतो भवस्यामिततेजसः ।
तस्माद् धनुर्ज्यासंस्पर्शं न विषेहुर्हरस्य ते ॥ ५० ॥

अमिततेजस्वी भगवान् शङ्करके आत्मा हैं विष्णु । अतः वे दैत्य भगवान् शिवके धनुषकी प्रत्यञ्चा एवं बाणका स्पर्श न सह सके ॥ ५० ॥

तस्मिञ्शरे तिग्ममन्युं मुमोचासह्यमीश्वरः ।
भृग्वङ्गिरोमन्युभवं क्रोधाग्निमतिदुःसहम् ॥ ५१ ॥

महेश्वरने उस बाणमें अपने असह्य एवं प्रचण्ड कोपको तथा भृगु और अङ्गिराके रोषसे उत्पन्न हुई अत्यन्त दुःसह क्रोधाग्निको भी स्थापित कर दिया ॥ ५१ ॥

स नीललोहितो धूम्रः कृत्तिवासाभयंकरः ।
आदित्यायुतसंकाशस्तेजोज्वालावृतो ज्वलन् ॥ ५२ ॥

तत्पश्चात् धूम्रवर्ण, व्याघ्रचर्मधारी, देवताओंको अभय तथा दैत्योंको भय देनेवाले, सहस्रों सूर्योंके समान तेजस्वी नीललोहित भगवान् शिव तेजोमयी ज्वालासे आवृत हो प्रकाशित होने लगे ॥ ५२ ॥

दुश्च्यावच्यावनो जेता हन्ता ब्रह्मद्विषां हरः ।
नित्यं त्राता च हन्ता च धर्माधर्माश्रितान् नरान् ॥५३॥

जिस लक्ष्यको मार गिराना अत्यन्त कठिन है, उसको भी गिरानेमें समर्थ, विजयशील, ब्रह्मद्रोहियोंके विनाशक भगवान् शिव धर्मका आश्रय लेनेवाले मनुष्योंकी सदा रक्षा और पापियोंका विनाश करनेवाले हैं ॥ ५३ ॥

प्रमाथिभिर्भीमबलैर्भीमरूपैर्मनोजवैः ।
विभाति भगवान् स्थाणुस्तैरेवात्मगुणैर्वृतः ॥ ५४ ॥

उनके जो अपने उपयोगमें आनेवाले रथ आदि गुणवान् उपकरण थे, वे शत्रुओंको मथ डालनेमें समर्थ, भयानक बलशाली, भयंकररूपधारी और मनके समान वेगवान् थे । उनसे घिरे हुए भगवान् शिवकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ ५४ ॥

तस्याङ्गानि समाश्रित्य स्थितं विश्वमिदं जगत् ।
जङ्गमाजङ्गमं राजञ्शुशुभेऽद्भुतदर्शनम् ॥ ५५ ॥

राजन् ! उनके पञ्चभूतस्वरूप अङ्गोंका आश्रय लेकर ही यह अद्भुत दिखायी देनेवाला सारा चराचर जगत् स्थित एवं सुशोभित है ॥ ५५ ॥

दृष्ट्वा तु तं रथं युक्तं कवची स शरासनी ।
बाणमादाय तं दिव्यं सोमविष्ण्वग्निसम्भवम् ॥ ५६ ॥

उस रथको जुता हुआ देख भगवान् शङ्कर कवच और धनुषसे युक्त हो चन्द्रमा, विष्णु और अग्निसे प्रकट हुए उस दिव्य बाणको लेकर युद्धके लिये उद्यत हुए ॥५६॥

तस्य राजंस्तदा देवाः कल्पयाञ्चक्रिरे प्रभो ।
पुण्यगन्धवहं राजञ्श्वसनं देवसत्तमम् ॥ ५७ ॥

राजन् ! प्रभो ! उस समय देवताओंने पवित्र सुगन्ध वहन करनेवाले देवश्रेष्ठ वायुको उनके लिये हवा करनेके कामपर नियुक्त किया ॥ ५७ ॥

तमास्थाय महादेवस्त्रासयन् दैवतान्यपि ।
आरुरोह तदा यत्तः कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ ५८ ॥

तब महादेवजी दानवोंके वधके लिये प्रयत्नशील हो देवताओंको भी डराते और पृथ्वीको कम्पित करते हुए-से उस रथको थामकर उसपर चढ़ने लगे ॥ ५८ ॥

तमारुरुक्षुं देवेशं तुष्टुवुः परमर्षयः ।
गन्धर्वा देवसङ्घाश्च तथैवाप्सरसां गणाः ॥ ५९ ॥

देवेश्वर शिव रथपर चढ़ना चाहते हैं, यह देखकर

महर्षियों, गन्धर्वों, देवसमूहों तथा अप्सराओंके समुदायोंने उनकी स्तुति की ॥ ५९ ॥

ब्रह्मर्षिभिः स्तूयमानो वन्द्यमानश्च वन्दिभिः ।
तथैवाप्सरसां वृन्दैर्नृत्यद्भिर्नृत्यकोविदैः ॥ ६० ॥
स शोभमानो वरदः खड्गी बाणी शरासनी ।
हसन्निवाब्रवीद् देवान् सारथिः को भविष्यति ॥ ६१ ॥

ब्रह्मर्षियोंद्वारा प्रशंसित, वन्दीजनोंद्वारा वन्दित तथा नाचती हुई नृत्य-कुशल अप्सराओंसे सुशोभित होते हुए वरदायक भगवान् शिव खड्ग, बाण और धनुष ले देवताओंसे हँसते हुए-से बोले—'मेरा सारथि कौन होगा ?' ॥ ६०-६१ ॥

तमब्रुवन् देवगणा यं भवान् संनियोक्ष्यते ।
स भविष्यति देवेश सारथिस्ते न संशयः ॥ ६२ ॥

यह सुनकर देवताओंने उनसे कहा—'देवेश ! आप जिसको इस कार्यमें नियुक्त करेंगे, वही आपका सारथि होगा, इसमें संशय नहीं है' ॥ ६२ ॥

तानब्रवीत् पुनर्देवो मत्तः श्रेष्ठतरो हि यः ।
तं सारथिं कुरुध्वं मे स्वयं संचिन्त्य मा चिरम् ॥ ६३ ॥

तब महादेवजीने फिर कहा—'तुमलोग स्वयं ही सोच-विचारकर जो मुझसे भी श्रेष्ठतर हो, उसे मेरा सारथि बना दो, विलम्ब न करो' ॥ ६३ ॥

एतच्छ्रुत्वा ततो देवा वाक्यमुक्तं महात्मना ।
गत्वा पितामहं देवाः प्रसाद्येदं वचोऽब्रुवन् ॥ ६४ ॥

उन महात्माके कहे हुए इस वचनको सुनकर सब देवता ब्रह्माजीके पास गये और उन्हें प्रसन्न करके इस प्रकार बोले—॥

यथा त्वत्कथितं देव त्रिदशारिविनिग्रहे ।
तथा च कृतमस्माभिः प्रसन्नो नो वृषध्वजः ॥ ६५ ॥

'देव ! देवशत्रुओंका दमन करनेके विषयमें आपने जैसा कहा था, वैसा ही हमने किया है । भगवान् शङ्कर हम लोगोंपर प्रसन्न हैं ॥ ६५ ॥

रथश्च विहितोऽस्माभिर्विचित्रायुधसंवृतः ।
सारथिं च न जानीमः कः स्यात् तस्मिन् रथोत्तमे ॥ ६६ ॥

'हमने उनके लिये विचित्र आयुधोंसे सम्पन्न रथ तैयार कर दिया है; परंतु उस उत्तम रथपर कौन सारथि होकर बैठेगा ? यह हम नहीं जानते हैं' ॥ ६६ ॥

तस्माद् विधीयतां कश्चित् सारथिर्देवसत्तम ।
सफलां तां गिरं देव कर्तुमर्हसि नो विभो ॥ ६७ ॥

'अतः देवश्रेष्ठ प्रभो ! आप किसीको सारथि बनाइये । देव ! आपने हमें जो वचन दिया है, उसे सफल कीजिये ॥ ६७ ॥

एवमस्मासु हि पुरा भगवन्नुक्तवानसि ।
हितकर्तास्मि भवतामिति तत् कर्तुमर्हसि ॥ ६८ ॥

'भगवन् ! आपने पहले हमलोगोंसे कहा था कि 'मैं तुम लोगोंका हित करूँगा ।' अतः उसे पूर्ण कीजिये ॥ ६८ ॥

स देव युक्तो रथसत्तमो नो
दुराधरो द्रावणः शात्रवाणाम् ।
पिनाकपाणिर्विहितोऽत्र योद्धा
विभीषयन् दानवानुद्यतोऽसौ ॥ ६९ ॥

'देव ! हमारा तैयार किया हुआ वह श्रेष्ठ रथ शत्रुओंको मार भगानेवाला और दुर्धर्ष है । पिनाकपाणि भगवान् शङ्करको उसपर योद्धा बनाकर बैठा दिया गया है और वे दानवोंको भयभीत करते हुए युद्धके लिये उद्यत हैं ॥ ६९ ॥

तथैव वेदाश्चतुरो हयाग्र्या
धरा सशैला च रथो महात्मनः ।
नक्षत्रवंशानुगतो वरूथी
हरो योद्धा सारथिर्नाभिलक्ष्यः ॥ ७० ॥

'इसी प्रकार चारों वेद उन महात्माके उत्तम घोड़े हैं और पर्वतोंसहित पृथ्वी उनका उत्तम रथ बनी हुई है । नक्षत्र-समुदायरूपी ध्वजसे युक्त तथा आवरणसे सुशोभित भगवान् शिव उस रथपर रथी योद्धा बनकर बैठे हुए हैं; परंतु कोई सारथि नहीं दिखायी देता ॥ ७० ॥

तत्र सारथिरेष्टव्यः सर्वैरेतैर्विशेषवान् ।
तत्प्रतिष्ठो रथो देव हया योद्धा तथैव च ॥ ७१ ॥

'देव ! उस रथके लिये ऐसे सारथिका अनुसंधान करना चाहिये, जो इन सबसे बढ़कर हो; क्योंकि रथ, घोड़े और योद्धा इन सबकी प्रतिष्ठा सारथिपर ही निर्भर है ॥ ७१ ॥

कवचानि सशस्त्राणि कार्मुकं च पितामह ।
त्वामृते सारथिं तत्र नान्यं पश्यामहे वयम् ॥ ७२ ॥
त्वं हि सर्वगुणैर्युक्तो दैवतेभ्योऽधिकः प्रभो ।

'पितामह ! कवच, शस्त्र और धनुषकी सफलता भी सारथिपर ही निर्भर है । हमलोग आपके सिवा दूसरे किसीको वहाँ सारथि होनेके योग्य नहीं देखते हैं । प्रभो ! क्योंकि आप सभी देवताओंसे श्रेष्ठ और सर्वगुणसम्पन्न हैं ॥ ७२½ ॥

(त्वं देव शक्तो लोकेऽस्मिन् नियन्तुं प्रद्रुतानिमान् ।
वेदाश्वान् सोपनिषदः सारथिर्भव नः स्वयम् ॥

'देव ! आप ही इस जगत्में इन भागते हुए उपनिषद्-सहित वेदरूपी अश्वोंको नियन्त्रणमें रख सकते हैं; अतः आप स्वयं ही सारथि हो जाइये ॥

योद्धुं बलेन सत्त्वेन वीर्येण विनयेन च ।
अधिकः सारथिः कार्यो नास्ति चान्योऽधिको भवात् ॥

'बल, धैर्य, पराक्रम और विनय इन सभी गुणोंद्वारा जो रथीसे भी श्रेष्ठ हो, उसे ही युद्धके लिये सारथि बनाना चाहिये; दूसरा कोई ऐसा नहीं है जो भगवान् शङ्करसे भी बढ़कर हो ॥

स भवांस्तारयत्वस्मान् कुरु सारथ्यमव्ययम् ।
भवानभ्यधिकस्त्वत्तो नान्योऽस्तीह पितामह ॥

'पितामह ! आप अक्षय सारथिकर्म कीजिये और हमें इस सङ्कटसे उबारिये । आप ही सबसे श्रेष्ठ हैं; आपसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है ॥

त्वं हि देवेश सर्वैस्तु विशिष्टो वदतां वर ।)
स रथं तूर्णमारुह्य संयच्छ परमान् हयान् ॥ ७३ ॥
जयाय त्रिदेवेशानां वधाय त्रिदशद्विषाम् ।

'वक्ताओंमें श्रेष्ठ देवेश्वर ! आप सभी गुणोंसे श्रेष्ठ हैं; इसलिये देवद्रोहियोंके वध और देवताओंकी विजयके लिये तुरंत रथपर आरूढ़ होकर इन उत्तम घोड़ोंको काबूमें रखिये ॥ ७३ ॥

(तव प्रसादाद् वध्येरन् देव दैवतकण्टकाः ।
स नो रक्ष महाबाहो दैत्येभ्यो महतो भयात् ॥

'देव ! आपके प्रसादसे देवताओंके लिये यह कण्टकरूप दैत्य मारे जायँगे । महाबाहो ! आप दैत्योंके महान् भयसे हमारी रक्षा करें ॥

त्वं हि नो गतिरव्यग्र त्वं नो गोप्ता महाव्रत ।
त्वत्प्रसादात् सुराः सर्वे पूज्यन्ते त्रिदिवे प्रभो ॥)

'व्यग्रताशून्य महान् व्रतधारी प्रभो ! आप ही हमारे आश्रय तथा संरक्षक हैं; आपकी कृपासे ही समस्त देवता स्वर्गलोकमें पूजित होते हैं' ॥

इति ते शिरसा गत्वा त्रिलोकेशं पितामहम् ॥ ७४ ॥
देवाः प्रसादयामासुः सारथ्यायेति नः श्रुतम् ।

इस प्रकार देवताओंने तीनों लोकोंके ईश्वर पितामह ब्रह्माजीके आगे मस्तक टेककर उन्हें सारथि बननेके लिये प्रसन्न किया । यह बात हमारे सुननेमें आयी है ॥ ७४½ ॥

पितामह उवाच

नात्र किंचिन्मृषा वाक्यं यदुक्तं त्रिदिवौकसः ॥ ७५ ॥
संयच्छामि हयानेष युध्यतो वै कपर्दिनः ।

पितामह बोले—देवताओ ! तुमने जो कुछ कहा है, उसमें तनिक भी मिथ्या नहीं है । मैं युद्ध करते समय भगवान् शङ्करके घोड़ोंको काबूमें रक्खूँगा ॥ ७५½ ॥

ततः स भगवान् देवो लोकस्रष्टा पितामहः ॥ ७६ ॥
(एवमुक्त्वा जटाभारं संयम्य प्रपितामहः ।
परिधायाजिनं गाढं संन्यस्य च कमण्डलुम् ॥
प्रतोदपाणिर्भगवानारुरोह रथं तदा ।)

तदनन्तर लोकस्रष्टा भगवान् पितामह देवने जो जगत्के प्रपितामह हैं, उपर्युक्त बात कहकर अपनी जटाओंके बोझको बाँध लिया और मृगचर्मके वस्त्रको अच्छी तरह कसकर कमण्डलुको अलग रख दिया । तत्पश्चात् वे भगवान् ब्रह्मा हाथमें चाबुक लेकर तत्काल उस रथपर जा चढ़े ॥ ७६ ॥

सारथ्ये कल्पितो देवैरीशानस्य महात्मनः ।
तस्मिन्नारोहति क्षिप्रं स्यन्दने लोकपूजिते ॥ ७७ ॥
शिरोभिरगमन् भूमिं ते हया वातरंहसः ।

इस प्रकार देवताओंने भगवान् शङ्करके सारथिके पदपर उन्हें प्रतिष्ठित कर दिया । जब उस लोकपूजित रथपर ब्रह्माजी चढ़ रहे थे, उस समय वायुके समान वेगशाली घोड़े धरतीपर माथा टेककर बैठ गये थे ॥ ७७½ ॥

आरुह्य भगवान् देवो दीप्यमानः स्वतेजसा ॥ ७८ ॥
अभीषून् हि प्रतोदं च संजग्राह पितामहः ।

अपने तेजसे प्रकाशित होते हुए भगवान् ब्रह्माने रथारूढ़ होकर घोड़ोंकी बागडोर और चाबुक दोनों वस्तुएँ अपने हाथमें ले लीं ॥ ७८½ ॥

तत उत्थाप्य भगवांस्तान् हयाननिलोपमान् ॥ ७९ ॥
बभाषे च तदा स्थाणुमारोहेति सुरोत्तमः ।

तत्पश्चात् वायुके समान तीव्रगतिवाले उन घोड़ोंको उठाकर सुरश्रेष्ठ भगवान् ब्रह्माने महादेवजीसे कहा—'अब आप रथपर आरूढ़ होइये' ॥ ७९½ ॥

ततस्तमिषुमादाय विष्णुसोमाग्निसम्भवम् ॥ ८० ॥
आरुरोह तदा स्थाणुर्धनुषा कम्पयन् परान् ।

तब विष्णु, चन्द्रमा और अग्निसे उत्पन्न हुए उस बाणको हाथमें लेकर महादेवजी अपने धनुषके द्वारा शत्रुओंको कम्पित करते हुए उस रथपर चढ़ गये ॥ ८०½ ॥

तमारूढं तु देवेशं तुष्टुवुः परमर्षयः ॥ ८१ ॥
गन्धर्वा देवसंघाश्च तथैवाप्सरसां गणाः ।

रथपर आरूढ़ हुए देवेश्वर शिवकी महर्षियों, गन्धर्वों, देवसमूहों तथा अप्सराओंके समुदायोंने स्तुति की ॥ ८१½ ॥

स शोभमानो वरदः खड्गी बाणी शरासनी ॥ ८२ ॥
प्रदीपयन् रथे तस्थौ त्रीँल्लोकान् स्वेन तेजसा।

खड्ग, धनुष और बाण लेकर शोभा पाते हुए वरदायक महादेवजी अपने तेजसे तीनों लोकोंको प्रकाशित करते हुए रथपर स्थित हो गये ॥ ८२½ ॥

ततो भूयोऽब्रवीद् देवो देवानिन्द्रपुरोगमान् ॥ ८३ ॥
न हन्यादिति कर्तव्यो न शोको वः कथञ्चन ।
हतानित्येव जानीत बाणेनानेन चासुरान् ॥ ८४ ॥

तब महादेवजीने पुनः इन्द्र आदि देवताओंसे कहा—'शायद ये दैत्योंको न मारें' ऐसा समझकर तुम्हें किसी प्रकार भी शोक नहीं करना चाहिये । तुमलोग असुरोंको इस बाणसे 'मरा हुआ' ही समझो' ॥ ८३-८४ ॥

ते देवाः सत्यमित्याहुर्निहता इति चाब्रुवन् ।
न च तद् वचनं मिथ्या यदाह भगवान् प्रभुः॥८५॥
इति संचिन्त्य वै देवाः परां तुष्टिमवाप्नुवन् ।

यह सुनकर उन देवताओंने कहा—'प्रभो ! आपका कथन सत्य है । अवश्य ही वे दैत्य मारे गये । शक्तिशाली भगवान् जो कुछ कह रहे हैं, वह वचन मिथ्या नहीं हो सकता' यह सोचकर देवताओंको बड़ा संतोष हुआ ॥८५½॥

ततः प्रयातो देवेशः सर्वैर्देवगणैर्वृतः ॥ ८६ ॥

रथेन महता राजन्नुपमा नास्ति यस्य ह।

राजन्! तदनन्तर जिसकी कहीं उपमा नहीं थी, उस विशाल रथके द्वारा देवेश्वर महादेवजी समस्त देवताओंसे घिरे हुए वहाँसे चल दिये॥ ८६½॥

स्वैश्च पारिषदैर्देवः पूज्यमानो महायशाः॥ ८७॥
नृत्यद्भिरपरैश्चैव मांसभक्षैर्दुरासदैः।
धावमानैः समन्ताच्च तर्जमानैः परस्परम्॥ ८८॥

उस समय उनके अपने पार्षद भी महायशस्वी महादेवजीकी पूजा कर रहे थे। शिवके वे दुर्धर्ष पार्षद नृत्य करते और परस्पर एक दूसरेको डाँटते हुए चारों ओर दौड़ लगाते थे। अन्य कितने ही पार्षद (भूत-प्रेतादि) मांसभक्षी थे॥ ८७-८८॥

ऋषयश्च महाभागास्तपोयुक्ता महागुणाः।
आशंसुर्वै जना देवा महादेवस्य सर्वशः॥ ८९॥

महान् भाग्यशाली और उत्तम गुणसम्पन्न तपस्वी ऋषियों, देवताओं तथा अन्य लोगोंने भी सब प्रकारसे महादेवजीकी विजयके लिये शुभाशंसा की॥ ८९॥

एवं प्रयाते देवेशे लोकानामभयंकरे।
तुष्टमासीज्जगत् सर्वं देवताश्च नरोत्तम॥ ९०॥

नरश्रेष्ठ! सम्पूर्ण लोकोंको अभय देनेवाले देवेश्वर महादेवजीके इस प्रकार प्रस्थान करनेपर सारा जगत् संतुष्ट हो गया। देवता भी बड़े प्रसन्न हुए॥ ९०॥

ऋषयस्तत्र देवेशं स्तुवन्तो बहुभिः स्तवैः।
तेजश्चास्मै वर्धयन्तो राजन्नासन् पुनः पुनः॥ ९१॥

राजन्! ऋषिगण नाना प्रकारके स्तोत्रोंका पाठ करके देवेश्वर महादेवकी स्तुति करते हुए बारंबार उनका तेज बढ़ा रहे थे॥ ९१॥

गन्धर्वाणां सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च।
वादयन्ति प्रयाणेऽस्य वाद्यानि विविधानि च॥ ९२॥

उनके प्रस्थानके समय सहस्रों, लाखों और अरबों गन्धर्व नाना प्रकारके बाजे बजा रहे थे॥ ९२॥

ततोऽधिरूढे वरदे प्रयाते चासुरान् प्रति।
साधु साध्विति विश्वेशः स्मयमानोऽभ्यभाषत॥ ९३॥

रथपर आरूढ़ हो वरदायक भगवान् शङ्कर जब असुरोंकी ओर चले, तब वे विश्वनाथ ब्रह्माजीको साधुवाद देते हुए मुसकराकर बोले—॥ ९३॥

याहि देव यतो दैत्याश्चोदयाश्वानतन्द्रितः।
पश्य बाह्वोर्बलं मेऽद्य निघ्नतः शात्रवान् रणे॥ ९४॥

'देव! जिस ओर दैत्य हैं, उधर ही चलिये और सावधान होकर घोड़ोंको हाँकिये। आज रणभूमिमें जब मैं शत्रुसेनाका संहार करने लगूँ, उस समय आप मेरी इन दोनों भुजाओंका बल देखियेगा'॥ ९४॥

ततोऽश्वांश्चोदयामास मनोमारुतरंहसः।
येन तत् त्रिपुरं राजन् दैत्यदानवरक्षितम्॥ ९५॥

राजन्! तब ब्रह्माजीने मन और पवनके समान वेगशाली घोड़ोंको उसी ओर बढ़ाया, जिस ओर दैत्यों और दानवोंद्वारा सुरक्षित वे तीनों पुर थे॥ ९५॥

पिबद्भिरिव चाकाशं तैर्हयैर्लोकपूजितैः।
जगाम भगवान् क्षिप्रं जयाय त्रिदिवौकसाम्॥ ९६॥

वे लोकपूजित अश्व ऐसे तीव्र वेगसे चल रहे थे, मानो सारे आकाशको पी जायँगे। उस समय भगवान् शिव उन अश्वोंके द्वारा देवताओंकी विजयके लिये बड़ी शीघ्रताके साथ जा रहे थे॥ ९६॥

प्रयाते रथमास्थाय त्रिपुराभिमुखे भवे।
ननाद सुमहानादं वृषभः पूरयन् दिशः॥ ९७॥

रथपर आरूढ़ हो जब महादेवजी त्रिपुरकी ओर प्रस्थित हुए, उस समय नन्दी वृषभने सम्पूर्ण दिशाओंको गुँजाते हुए बड़े जोरसे सिंहनाद किया॥ ९७॥

वृषभस्यास्य निनदं श्रुत्वा भयकरं महत्।
विनाशमगमंस्तत्र तारकाः सुरशत्रवः॥ ९८॥

उस वृषभका वह अत्यन्त भयंकर सिंहनाद सुनकर बहुतसे देवशत्रु तारक नामवाले दैत्यगण वहीं विनष्ट हो गये॥

अपरेऽवस्थितास्तत्र युद्धायाभिमुखास्तदा।
ततः स्थाणुर्महाराज शूलधृक् क्रोधमूर्छितः॥ ९९॥

दूसरे जो दैत्य वहाँ खड़े थे, वे युद्धके लिये महादेवजीके सामने आये। महाराज! तब त्रिशूलधारी महादेवजी क्रोधसे आतुर हो उठे॥ ९९॥

त्रस्तानि सर्वभूतानि त्रैलोक्यं भूः प्रकम्पते।
निमित्तानि च घोराणि तत्र संदधतः शरम्॥ १००॥
तस्मिन् सोमाग्निविष्णूनां क्षोभेण ब्रह्मरुद्रयोः।
स रथो धनुषः क्षोभादतीव ह्यवसीदति॥ १०१॥

फिर तो समस्त प्राणी भयभीत हो उठे। सारी त्रिलोकी और भूमि काँपने लगी। जब वे वहाँ धनुषपर बाणका संधान करने लगे, तब उसमें चन्द्रमा, अग्नि, विष्णु, ब्रह्मा और रुद्रके क्षोभसे बड़े भयंकर निमित्त प्रकट हुए। धनुषके क्षोभसे वह रथ अत्यन्त शिथिल होने लगा॥ १००-१०१॥

ततो नारायणस्तस्माच्छरभागाद् विनिःसृतः।
वृषरूपं समास्थाय उज्जहार महारथम्॥ १०२॥

तब भगवान् नारायणने उस बाणके एक भागसे बाहर निकलकर वृषभका रूप धारण करके भगवान् शिवके विशाल रथको ऊपर उठाया॥ १०२॥

सीदमाने रथे चैव नर्दमानेषु शत्रुषु।
स सम्भ्रमात् तु भगवान् नादं चक्रे महाबलः॥ १०३॥

जब रथ शिथिल होने लगा और शत्रु गर्जना करने लगे,

तब महाबली भगवान् शिवने बड़े वेगसे घोर गर्जना की ॥

वृषभस्य स्थितो मूर्ध्नि हयपृष्ठे च मानद ।
तदा स भगवान् रुद्रो निरैक्षद् दानवं पुरम् ॥१०४॥
वृषभस्यास्थितो रुद्रो हयस्य च नरोत्तम ।
स्तनांस्तदाऽशातयत खुरांश्चैव द्विधाकरोत्॥१०५॥

मानद ! उस समय वे वृषभके मस्तक और घोड़ेकी पीठपर खड़े थे । नरोत्तम ! भगवान् रुद्रने वृषभ तथा घोड़ेकी भी पीठपर सवार हो उस दानव-नगरको देखा । तब उन्होंने वृषभके खुरोंको चीरकर उन्हें दो भागोंमें बांट दिया और घोड़ोंके स्तन काट डाले ॥ १०४-१०५॥

ततःप्रभृति भद्रं ते गवां द्वैधीकृताः खुराः ।
हयानां च स्तना राजंस्तदाप्रभृति नाभवन् ॥१०६॥
पीडितानां बलवता रुद्रेणाद्भुतकर्मणा ।

राजन् ! आपका कल्याण हो । तभीसे बैलोंके दो खुर हो गये और तभीसे अद्भुत कर्म करनेवाले बलवान् रुद्रके द्वारा पीड़ित हुए घोड़ोंके स्तन नहीं उगे ॥ १०६½ ॥

अथाधिज्यं धनुः कृत्वा शर्वः संधाय तं शरम् ॥१०७॥
युक्त्वा पाशुपतास्त्रेण त्रिपुरं समचिन्तयत् ।

तदनन्तर भगवान् रुद्रने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर उसके ऊपर पूर्वोक्त बाणको रक्खा और उसे पाशुपतास्त्रसे संयुक्त करके तीनों पुरोंके एकत्र होनेका चिन्तन किया ॥

तस्मिन् स्थिते महाराज रुद्रे विधृतकार्मुके ॥१०८॥
पुराणि तानि कालेन जग्मुरेवैकतां तदा ।

महाराज ! इस प्रकार जब रुद्रदेव धनुष चढ़ाकर खड़े हो गये, उसी समय कालकी प्रेरणासे वे तीनों पुर मिलकर एक हो गये ॥ १०८½ ॥

एकीभावं गते चैव त्रिपुरत्वमुपागते ॥१०९॥
बभूव तुमुलो हर्षो देवतानां महात्मनाम् ।

जब तीनों एक होकर त्रिपुर-भावको प्राप्त हुए, तब महामनस्वी देवताओंको बड़ा हर्ष हुआ ॥ १०९½ ॥

ततो देवगणाः सर्वे सिद्धाश्च परमर्षयः ॥११०॥
जयेति वाचो मुमुचुः संस्तुवन्तो महेश्वरम् ।

उस समय समस्त देवता, महर्षि और सिद्धगण महेश्वरकी स्तुति करते हुए उनकी जय-जयकार करने लगे ॥ ११०½ ॥

ततोऽग्रतः प्रादुरभूत् त्रिपुरं निघ्नतोऽसुरान् ॥१११॥
अनिर्देश्योग्रवपुषो देवस्यासह्यतेजसः ।

तब असुरोंका संहार करते हुए अवर्णनीय भयङ्कर रूपवाले असह्य तेजस्वी महादेवजीके सामने वह तीनों पुरोंका समुदाय सहसा प्रकट हो गया ॥ १११½ ॥

स तद् विकृष्य भगवान् दिव्यं लोकेश्वरो धनुः॥११२॥
त्रैलोक्यसारं तमिषुं मुमोच त्रिपुरं प्रति ।

फिर तो सम्पूर्ण जगत्के स्वामी भगवान् रुद्रने अपने उस दिव्य धनुषको खींचकर उसपर रक्खे हुए त्रिलोकीके सारभूत उस बाणको त्रिपुरपर छोड़ दिया ॥ ११२½ ॥

उत्सृष्टे वै महाभाग तस्मिंस्त्रिपुवरे तदा ॥११३॥
महानार्तस्वरो ह्यासीत् पुराणां पततां भुवि ।
तान् सोऽसुरगणान् दग्ध्वा प्राक्षिपत् पश्चिमार्णवे११४

महाभाग ! उस समय उस श्रेष्ठ बाणके छूटते ही भूतलपर गिरते हुए उन तीनों पुरोंका महान् आर्तनाद प्रकट हुआ । भगवान्ने उन असुरोंको भस्म करके पश्चिम समुद्रमें डाल दिया ॥ ११३-११४ ॥

एवं तु त्रिपुरं दग्धं दानवाश्चाप्यशेषतः ।
महेश्वरेण क्रुद्धेन त्रैलोक्यस्य हितैषिणा ॥११५॥

इस प्रकार तीनों लोकोंका हित चाहनेवाले महेश्वरने कुपित होकर उन तीनों पुरों तथा उनमें निवास करनेवाले दानवोंको दग्ध कर दिया ॥ ११५ ॥

स चात्मक्रोधजो वह्निर्हाहेत्युक्त्वा निवारितः ।
मा कार्षीर्भस्मसाल्लोकानिति त्र्यक्षोऽब्रवीच्च तम् ।११६।

उनके अपने क्रोधसे जो अग्नि प्रकट हुई थी, उसे भगवान् त्रिलोचनने 'हा-हा' कहकर रोक दिया और उससे कहा—'तू सम्पूर्ण जगत्को भस्म न कर' ॥ ११६ ॥

ततः प्रकृतिमापन्ना देवा लोकास्त्वथर्षयः ।
तुष्टुवुर्वाग्भिरग्र्याभिः स्थाणुमप्रतिमौजसम् ॥११७॥

तब समस्त देवता, महर्षि तथा तीनों लोकोंके प्राणी स्वस्थ हो गये । सबने श्रेष्ठ वचनोंद्वारा अप्रतिम शक्तिशाली महादेवजीका स्तवन किया ॥ ११७ ॥

तेऽनुज्ञाता भगवता जग्मुः सर्वे यथागतम् ।
कृतकामाः प्रयत्नेन प्रजापतिमुखाः सुराः ॥११८॥

फिर भगवान्‌की आज्ञा लेकर अपने प्रयत्नसे पूर्णकाम हुए प्रजापति आदि सम्पूर्ण देवता जैसे आये थे, वैसे चले गये ॥ ११८ ॥

एवं स भगवान् देवो लोकस्रष्टा महेश्वरः ।
देवासुरगणाध्यक्षो लोकानां विदधे शिवम् ॥११९॥

इस प्रकार देवताओं तथा असुरोंके भी अध्यक्ष जगत्स्रष्टा भगवान् महेश्वर देवने तीनों लोकोंका कल्याण किया था ॥

यथैव भगवान् ब्रह्मा लोकधाता पितामहः ।
सारथ्यमकरोत्तत्र रुद्रस्य परमोऽव्ययः ॥१२०॥
तथा भवानपि क्षिप्रं रुद्रस्येव पितामहः ।
संयच्छतु हयानस्य राधेयस्य महात्मनः ॥१२१॥

वहाँ विश्वविधाता सर्वोत्कृष्ट अविनाशी पितामह भगवान् ब्रह्माने जिस प्रकार रुद्रका सारथि-कर्म किया था तथा जिस प्रकार उन पितामहने रुद्रदेवके घोड़ोंकी बागडोर सँभाली थी, उसी प्रकार आप भी शीघ्र ही इस महामनस्वी राधापुत्र कर्णके घोड़ोंको काबूमें कीजिये ॥ १२०-१२१ ॥

त्वं हि कृष्णाच्च कर्णाच्च फाल्गुनाच्च विशेषतः।
विशिष्टो राजशार्दूल नास्ति तत्र विचारणा ॥१२२॥

नृपश्रेष्ठ ! आप श्रीकृष्णसे, कर्णसे और अर्जुनसे भी श्रेष्ठ हैं, इसमें कोई अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ १२२ ॥

युद्धे ह्ययं रुद्रकल्पस्त्वं च ब्रह्मसमो नये।
तस्माच्छक्तो भवाञ्जेतुं मच्छत्रूंस्तानिवासुरान् ॥१२३॥

यह कर्ण युद्धक्षेत्रमें रुद्रके समान है और आप भी नीतिमें ब्रह्माजीके तुल्य हैं; अतः आप उन असुरोंकी भाँति मेरे शत्रुओंको जीतनेमें समर्थ हैं ॥ १२३ ॥

यथा शल्यायं कर्णोऽयं श्वेताश्वं कृष्णसारथिम्।
प्रमथ्य हन्यात् कौन्तेयं तथा शीघ्रं विधीयताम् ॥१२४॥

शल्य ! आप शीघ्र ऐसा प्रयत्न कीजिये, जिससे यह कर्ण उस श्वेतवाहन अर्जुनको, जिसके सारथि श्रीकृष्ण हैं, मथकर मार डाले ॥ १२४ ॥

त्वयि मद्रेश राज्याशा जीविताशा तथैव च।
विजयश्च तथैवाद्य कर्णसाचिव्यकारितः ॥१२५॥

मद्रराज ! आपपर ही मेरी राज्यप्राप्तिविषयक अभिलाषा और जीवनकी आशा निर्भर है। आपके द्वारा कर्णका सारथि-कर्म सम्पादित होनेपर जो आज विजय मिलनेवाली है, उसकी सफलता भी आपपर ही निर्भर है ॥ १२५ ॥

त्वयि कर्णश्च राज्यं च वयं चैव प्रतिष्ठिताः।
विजयश्चैव संग्रामे संयच्छाद्य हयोत्तमान् ॥१२६॥

आपपर ही कर्ण, राज्य, हम और हमारी विजय प्रतिष्ठित हैं। इसलिये आज संग्राममें आप इन उत्तम घोड़ोंको अपने वशमें कीजिये ॥ १२६ ॥

इमं चाप्यपरं भूय इतिहासं निबोध मे।
पितुर्मम सकाशे यद् ब्राह्मणः प्राह धर्मवित् ॥१२७॥

राजन् ! आप मुझसे फिर यह दूसरा इतिहास भी सुनिये, जिसे एक धर्मज्ञ ब्राह्मणने मेरे पिताके समीप कहा था ॥१२७॥

श्रुत्वा चैतद् वचश्चित्रं हेतुकार्यार्थसंहितम्।
कुरु शल्य विनिश्चित्य माभूदत्र विचारणा ॥१२८॥

शल्य ! कारण और कार्यसे युक्त इस विचित्र ऐतिहासिक वार्ताको सुनकर आप अच्छी तरह सोच-विचार लेनेके पश्चात् मेरा कार्य करें, इस विषयमें आपके मनमें कोई अन्यथा विचार नहीं होना चाहिये ॥ १२८ ॥

भार्गवाणां कुले जातो जमदग्निर्महायशाः।
तस्य रामेति विख्यातः पुत्रस्तेजोगुणान्वितः ॥१२९॥

भार्गववंशमें महायशस्वी महर्षि जमदग्नि प्रकट हुए थे, जिनके तेजस्वी और गुणवान् पुत्र परशुरामके नामसे विख्यात हैं ॥ १२९ ॥

स तीव्रं तप आस्थाय प्रसादयितवान् भवम्।
अस्त्रहेतोः प्रसन्नात्मा नियतः संयतेन्द्रियः ॥१३०॥

उन्होंने अस्त्र-प्राप्तिके लिये मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए प्रसन्न हृदयसे भारी तपस्या करके भगवान् शङ्करको प्रसन्न किया ॥ १३० ॥

तस्य तुष्टो महादेवो भक्त्या च प्रशमेन च।
हृद्गतं चास्य विज्ञाय दर्शयामास शङ्करः ॥१३१॥
(प्रत्यक्षेण महादेवः स्वां तनुं सर्वशङ्करः।)

उनकी भक्ति और मनःसंयमसे संतुष्ट हो सबका कल्याण करनेवाले महादेवजीने उनके मनोगत भावको जानकर उन्हें अपने दिव्य शरीरका प्रत्यक्ष दर्शन कराया ॥ १३१ ॥

महेश्वर उवाच

राम तुष्टोऽस्मि भद्रं ते विदितं मे तवेप्सितम्।
कुरुष्व पूतमात्मानं सर्वमेतदवाप्स्यसि ॥१३२॥

महादेवजी बोले—राम ! तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम क्या चाहते हो, यह मुझे विदित है। अपने हृदयको शुद्ध करो। तुम्हें यह सब कुछ प्राप्त हो जायगा ॥ १३२ ॥

दास्यामि ते तदास्त्राणि यदा पूतो भविष्यसि।
अपात्रमसमर्थं च दहन्त्यस्त्राणि भार्गव ॥१३३॥

जब तुम पवित्र हो जाओगे, तब तुम्हें अपने अस्त्र दूँगा, भृगुनन्दन ! अपात्र और असमर्थ पुरुषको तो ये अस्त्र जलाकर भस्म कर डालते हैं ॥ १३३ ॥

इत्युक्तो जामदग्न्यस्तु देवदेवेन शूलिना।
प्रत्युवाच महात्मानं शिरसावनतः प्रभुम् ॥१३४॥

त्रिशूलधारी देवाधिदेव महादेवजीके ऐसा कहनेपर जमदग्निनन्दन परशुरामने उन महात्मा भगवान् शिवको मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—॥ १३४ ॥

यदा जानाति देवेशः पात्रं मामस्त्रधारणे।
तदा शुश्रूषवेऽस्त्राणि भवान् मे दातुमर्हति ॥१३५॥

'यदि आप देवेश्वर प्रभु मुझे अस्त्रधारणका पात्र समझें तभी मुझ सेवकको दिव्यास्त्र प्रदान करें' ॥ १३५ ॥

दुर्योधन उवाच

ततः स तपसा चैव दमेन नियमेन च।
पूजोपहारबलिभिर्होममन्त्रपुरस्कृतैः ॥१३६॥
आराधयितवान् शर्वं बहून् वर्षगणांस्तदा।

दुर्योधन कहता है—तदनन्तर परशुरामने बहुत वर्षों-तक तपस्या, इन्द्रिय-संयम, मनोनिग्रह, पूजा, उपहार, भेंट, अर्पण, होम और मन्त्र-जप आदि साधनोंद्वारा भगवान् शिवकी आराधना की ॥ १३६½ ॥

प्रसन्नश्च महादेवो भार्गवस्य महात्मनः ॥१३७॥
अब्रवीत् तस्य बहुशो गुणान् देव्याः समीपतः।
भक्तिमानेष सततं मयि रामो दृढव्रतः ॥१३८॥

इससे महादेवजी महात्मा परशुरामपर प्रसन्न हो गये और उन्होंने पार्वती देवीके समीप उनके गुणोंका बारंबार वर्णन किया—'ये दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाले परशुराम मेरे प्रति सदा भक्तिभाव रखते हैं' ॥ १३७-१३८ ॥

एवं तस्य गुणान् प्रीतो बहुशोऽकथयत् प्रभुः ।
देवतानां पितॄणां च समक्षमरिसूदन ॥१३९॥

शत्रुसूदन ! इसी प्रकार प्रसन्न हुए भगवान् शिवने देवताओं और पितरोंके समक्ष भी बारंबार प्रसन्नतापूर्वक उनके गुणोंका वर्णन किया ॥ १३९ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु दैत्या ह्यासन् महाबलाः ।
तैस्तदा दर्पमोहाद्यैरबाध्यन्त दिवौकसः ॥१४०॥

इन्हीं दिनोंकी बात है, दैत्यलोग महान् बलसे सम्पन्न हो गये थे । वे दर्प और मोह आदिके वशीभूत हो उस समय देवताओंको सताने लगे ॥ १४० ॥

ततः सम्भूय विबुधास्तान् हन्तुं कृतनिश्चयाः ।
चक्रुः शत्रुवधे यत्नं न शेकुर्जेतुमेव तान् ॥१४१॥

तब सम्पूर्ण देवताओंने एकत्र हो उन्हें मारनेका निश्चय करके शत्रुओंके वधके लिये यत्न किया; परंतु वे उन्हें जीत न सके ॥ १४१ ॥

अभिगम्य ततो देवा महेश्वरमुमापतिम् ।
प्रासादयंस्तदा भक्त्या जहि शत्रुगणानिति ॥१४२॥

तत्पश्चात् देवताओंने उमावल्लभ महेश्वरके समीप जाकर भक्तिपूर्वक उन्हें प्रसन्न किया और कहा–'प्रभो ! हमारे शत्रुओंका संहार कीजिये' ॥ १४२ ॥

प्रतिज्ञाय ततो देवो देवतानां रिपुक्षयम् ।
रामं भार्गवमाहूय सोऽभ्यभाषत शङ्करः ॥१४३॥

तब कल्याणकारी महादेवजीने देवताओंके समक्ष उनके शत्रुओंका संहार करनेकी प्रतिज्ञा करके भृगुनन्दन परशुरामको बुलाकर इस प्रकार कहा—॥ १४३ ॥

रिपून् भार्गव देवानां जहि सर्वान् समागतान् ।
लोकानां हितकामार्थं मत्प्रीत्यर्थं तथैव च ॥१४४॥

'भार्गव ! तुम तीनों लोकोंके हितकी इच्छासे तथा मेरी प्रसन्नताके लिये देवताओंके समस्त समागत शत्रुओंका वध करो' ॥ १४४ ॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच त्र्यम्बकं वरदं प्रभुम् ।

उनके ऐसा कहनेपर परशुरामने वरदायक भगवान् त्रिलोचनको इस प्रकार उत्तर दिया ॥ १४४½ ॥

राम उवाच

का शक्तिर्मम देवेश अकृतास्त्रस्य संयुगे ॥१४५॥
निहन्तुं दानवान् सर्वान् कृतास्त्रान् युद्धदुर्मदान् ।

परशुराम बोले—देवेश्वर ! मैं तो अस्त्रविद्याका ज्ञाता नहीं हूँ । फिर युद्धस्थलमें अस्त्रविद्याके ज्ञाता तथा रणदुर्मद समस्त दानवोंका वध करनेके लिये मुझमें क्या शक्ति है ? ॥

महेश्वर उवाच

गच्छ त्वं मदनुज्ञातो निहनिष्यसि शात्रवान् ॥१४६॥
विजित्य च रिपून् सर्वान्गुणान् प्राप्स्यसि पुष्कलान् ।

महेश्वरने कहा—राम ! तुम मेरी आज्ञासे जाओ । निश्चय ही देव-शत्रुओंका संहार करोगे । उन समस्त वैरियोंपर विजय पाकर प्रचुर गुण प्राप्त कर लोगे ॥ १४६½ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं प्रतिगृह्य च सर्वशः ॥१४७॥
रामः कृतस्वस्त्ययनः प्रययौ दानवान् प्रति ।
अब्रवीद् देवशत्रूंस्तान् महादर्पबलान्वितान् ॥१४८॥

उनकी यह बात सुनकर उसे सब प्रकारसे शिरोधार्य करके परशुराम स्वस्तिवाचन आदि मङ्गलकृत्य करनेके पश्चात् दानवोंका सामना करनेके लिये गये और महान् दर्प एवं बलसे सम्पन्न उन देवशत्रुओंसे इस प्रकार बोले—॥१४७–१४८॥

मम युद्धं प्रयच्छध्वं दैत्या युद्धमदोत्कटाः ।
प्रेषितो देवदेवेन वो निर्जेतुं महासुराः ॥१४९॥

'युद्धके मदसे उन्मत्त रहनेवाले दैत्यो ! मुझे युद्ध प्रदान करो । महान् असुरगण ! मुझे देवाधिदेव महादेवजीने तुम्हें परास्त करनेके लिये भेजा है' ॥ १४९ ॥

इत्युक्ता भार्गवेणाथ दैत्या युद्धं प्रचक्रमुः ।
स तान् निहत्य समरे दैत्यान् भार्गवनन्दनः ॥१५०॥
वज्राशनिसमस्पर्शैः प्रहारैरेव भार्गवः ।
स दानवैः क्षततनुर्जामदग्न्यो द्विजोत्तमः ॥१५१॥

भृगुवंशी परशुरामके ऐसा कहनेपर दैत्य उनके साथ युद्ध करने लगे । भार्गवनन्दन रामने समराङ्गणमें वज्र और विद्युत्के समान स्पर्शवाले प्रहारोंद्वारा उन दैत्योंका वध कर डाला । साथ ही उन द्विजश्रेष्ठ जमदग्निकुमारके शरीरको भी दानवोंने क्षत-विक्षत कर दिया ॥ १५०–१५१ ॥

संस्पृष्टः स्थाणुना सद्यो निर्व्रणः समजायत ।
प्रीतश्च भगवान् देवः कर्मणा तेन तस्य वै ॥१५२॥

परंतु महादेवजीके हाथोंका स्पर्श पाकर परशुरामजीके सारे घाव तत्काल दूर हो गये । परशुरामके उस शत्रुविजयरूपी कर्मसे भगवान् शङ्कर बड़े प्रसन्न हुए ॥ १५२ ॥

वरान् प्रादाद् बहुविधान् भार्गवाय महात्मने ।
उक्तश्च देवदेवेन प्रीतियुक्तेन शूलिना ॥१५३॥

उन देवाधिदेव त्रिशूलधारी भगवान् शिवने बड़ी प्रसन्नताके साथ महात्मा भार्गवको नाना प्रकारके वर प्रदान किये ॥

निपातात्तव शस्त्राणां शरीरे याभवद् रुजा ।
तया ते मानुषं कर्म व्यपोढं भृगुनन्दन ॥१५४॥
गृहाणास्त्राणि दिव्यानि मत्सकाशाद् यथेप्सितम् ।

उन्होंने कहा–'भृगुनन्दन ! दैत्योंके अस्त्र-शस्त्रोंके आघातसे तुम्हारे शरीरमें जो चोट पहुँची है, उससे तुम्हारा मानवो-

चित कर्म नष्ट हो गया (अब तुम देवताओंके ही समान हो गये); अतः मुझसे अपनी इच्छाके अनुसार दिव्यास्त्र ग्रहण करो ॥' १५४½ ॥

दुर्योधन उवाच

ततोऽस्त्राणि समस्तानि वरांश्च मनसेप्सितान् ॥१५५॥
लब्ध्वा बहुविधान् रामः प्रणम्य शिरसा भवम्।
अनुज्ञां प्राप्य देवेशाज्जगाम स महातपाः ॥१५६॥

दुर्योधन कहता है—राजन् ! तब रामने भगवान् शिवसे समस्त दिव्यास्त्र और नाना प्रकारके मनोवाञ्छित वर पाकर उनके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया। फिर वे महातपस्वी परशुराम देवेश्वर शिवसे आज्ञा लेकर चले गये ॥

एवमेतत् पुरावृत्तं तदा कथितवानृषिः।
भार्गवोऽपि ददौ दिव्यं धनुर्वेदं महात्मने ॥१५७॥
कर्णाय पुरुषव्याघ्र सुप्रीतेनान्तरात्मना।

राजन् ! इस प्रकार यह पुरातन वृत्तान्त उस समय ऋषिने मेरे पिताजीसे कहा था। पुरुषसिंह ! भृगुनन्दन परशुरामने भी अत्यन्त प्रसन्न हृदयसे महामना कर्णको दिव्य धनुर्वेद प्रदान किया है ॥ १५७½ ॥

वृजिनं हि भवेत् किंचिद् यदि कर्णस्य पार्थिव ॥१५८॥
नास्मै ह्यस्त्राणि दिव्यानि प्रादास्यद् भृगुनन्दनः।

भूपाल ! यदि कर्णमें कोई पाप या दोष होता तो भृगुनन्दन परशुराम इसे दिव्यास्त्र न देते ॥ १५८½ ॥

नापि सूतकुले जातं कर्णं मन्ये कथंचन ॥१५९॥
देवपुत्रमहं मन्ये क्षत्रियाणां कुलोद्भवम्।
विसृष्टमवबोधार्थं कुलस्येति मतिर्मम ॥१६०॥

राजन् ! मैं किसी तरह इस बातपर विश्वास नहीं करता कि कर्ण सूतकुलमें उत्पन्न हुआ है। मैं इसे क्षत्रियकुलमें उत्पन्न देवपुत्र मानता हूँ। मेरा तो यह विश्वास है कि इसकी माताने अपने गुप्त रहस्यको छिपानेके लिये तथा इसे अन्य कुलका बालक विख्यात करनेके लिये ही सूतकुलमें छोड़ दिया होगा ॥ १५९–१६० ॥

सर्वथा न ह्ययं शल्य कर्णः सूतकुलोद्भवः।
सकुण्डलं सकवचं दीर्घबाहुं महारथम् ॥१६१॥
कथमादित्यसदृशं मृगी व्याघ्रं जनिष्यति।

शल्य ! मैं सर्वथा इस बातपर विश्वास करता हूँ कि इस कर्णका जन्म सूतकुलमें नहीं हुआ है। इस महाबाहु महारथी और सूर्यके समान तेजस्वी कुण्डल-कवचविभूषित पुत्रको सूतजातिकी स्त्री कैसे पैदा कर सकती है ? क्या कोई हरिणी अपने पेटसे बाघको जन्म दे सकी है ? ॥ १६१½ ॥

यथा ह्यस्य भुजौ पीनौ नागराजकरोपमौ ॥१६२॥
वक्षः पश्य विशालं च सर्वशत्रुनिबर्हणम्।
न त्वेष प्राकृतः कश्चित् कर्णो वैकर्तनो वृषः।
महात्मा ह्येष राजेन्द्र रामशिष्यः प्रतापवान् ॥१६३॥

राजेन्द्र ! गजराजके शुण्डदण्डके समान जैसी इसकी मोटी भुजाएँ हैं तथा समस्त शत्रुओंका संहार करनेमें समर्थ जैसा इसका विशाल वक्षःस्थल है, उससे सूचित होता है कि परशुरामजीका यह प्रतापी शिष्य महामनस्वी धर्मात्मा वैकर्तन कर्ण कोई प्राकृत पुरुष नहीं है ॥ १६२–१६३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि त्रिपुरवधोपाख्याने चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें त्रिपुरवधोपाख्यानविषयक चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३४ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ७½ श्लोक मिलाकर कुल १७०½ श्लोक हैं)

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

शल्य और दुर्योधनका वार्तालाप, कर्णका सारथि होनेके लिये शल्यकी स्वीकृति

दुर्योधन उवाच

एवं स भगवान् देवः सर्वलोकपितामहः।
सारथ्यमकरोत् तत्र ब्रह्मा रुद्रोऽभवद् रथी ॥ १ ॥

दुर्योधन बोला—राजन् ! इस प्रकार सर्वलोकपितामह भगवान् ब्रह्माने वहाँ सारथिका कार्य किया और रथी हुए रुद्र॥

रथिनोऽभ्यधिको वीर कर्तव्यो रथसारथिः।
तस्मात्त्वं पुरुषव्याघ्र नियच्छ तुरगान् युधि ॥ २ ॥

वीर ! रथका सारथि तो उसीको बनाना चाहिये, जो रथीसे भी बढ़कर हो। अतः पुरुषसिंह ! आप युद्धमें कर्णके घोड़ोंको काबूमें रखिये ॥ २ ॥

यथा देवगणैस्तत्र वृतो यत्नात् पितामहः।
तथास्माभिर्भवान् यत्नात् कर्णादभ्यधिको वृतः ॥ ३ ॥

जैसे देवताओंने वहाँ यत्नपूर्वक ब्रह्माजीका वरण किया था, उसी प्रकार हमलोगोंने विशेष चेष्टा करके कर्णसे भी अधिक बलवान् आपका सारथि-कर्मके लिये वरण किया ॥ ३ ॥

यथा देवैर्महाराज ईश्वरादधिको वृतः।
तथा भवानपि क्षिप्रं रुद्रस्येव पितामहः ॥ ४ ॥
नियच्छ तुरगान् युद्धे राधेयस्य महाद्युते।

महाराज ! जैसे देवताओंने महादेवजीसे भी बड़े ब्रह्माजीको उनका सारथि चुना था, उसी प्रकार हमने भी आपको चुना है। अतः महातेजस्वी नरेश ! आप युद्धमें राधापुत्र कर्णके घोड़ोंका नियन्त्रण कीजिये ॥ ४½ ॥

शल्य उवाच

मयाप्येतन्नरश्रेष्ठ बहुशोऽमरसिंहयोः ॥ ५ ॥

कथ्यमानं श्रुतं दिव्यमाख्यानमतिमानुषम्।
यथा च चक्रे सारथ्यं भवस्य प्रपितामहः ॥ ६ ॥
यथासुराश्च निहता इषुणैकेन भारत।

शल्यने कहा—भारत ! नरश्रेष्ठ ! मैंने भी देवश्रेष्ठ ब्रह्मा और महादेवजीके इस अलौकिक एवं दिव्य उपाख्यानको विद्वानोंके मुखसे सुना है कि किस प्रकार प्रपितामह ब्रह्माजीने महादेवजीका सारथि-कर्म किया था ? और कैसे एक ही बाणसे समस्त असुर मारे गये ? ॥ ५–६½ ॥

कृष्णस्य चापि विदितं सर्वमेतत् पुरा ह्यभूत् ॥ ७ ॥
यथा पितामहो जज्ञे भगवान् सारथिस्तदा।

भगवान् ब्रह्मा उस समय जिस प्रकार महादेवजीके सारथि हुए थे, यह सारा पुरातन वृत्तान्त श्रीकृष्णको भी विदित ही होगा ॥ ७½ ॥

अनागतमतिक्रान्तं वेद कृष्णोऽपि तत्त्वतः ॥ ८ ॥
एतदर्थे विदित्वापि सारथ्यमुपजग्मिवान्।
स्वयंभूरिव रुद्रस्य कृष्णः पार्थस्य भारत ॥ ९ ॥

क्योंकि श्रीकृष्ण भी भूत और भविष्यको यथार्थरूपसे जानते हैं। भारत! इस विषयको अच्छी तरह जानकर ही रुद्रके सारथि ब्रह्माजीके समान श्रीकृष्ण पार्थके सारथि बने हुए हैं॥

यदि हन्याच्च कौन्तेयं सूतपुत्रः कथंचन।
दृष्ट्वा पार्थं हि निहतं स्वयं योत्स्यति केशवः ॥ १० ॥
शङ्खचक्रगदापाणिर्धक्ष्यते तव वाहिनीम्।

यदि सूतपुत्र कर्ण किसी प्रकार कुन्तीकुमार अर्जुनको मार डालेगा तो अर्जुनको मारा गया देख श्रीकृष्ण स्वयं ही युद्ध करेंगे। उनके हाथमें शङ्ख, चक्र और गदा होगी। वे तुम्हारी सेनाको जलाकर भस्म कर देंगे ॥ १०½ ॥

न चापि तस्य क्रुद्धस्य वार्ष्णेयस्य महात्मनः ॥ ११ ॥
स्थास्यते प्रत्यनीकेषु कश्चिदत्र नृपस्तव।

महात्मा श्रीकृष्ण कुपित होकर जब हथियार उठायेंगे, उस समय तुम्हारे पक्षका कोई भी नरेश उनके सामने ठहर नहीं सकेगा ॥ ११½ ॥

संजय उवाच

तं तथा भाषमाणं तु मद्रराजमरिंदमः ॥ १२ ॥
प्रत्युवाच महाबाहुरदीनात्मा सुतस्तव।

संजय कहते हैं—राजन् ! मद्रराज शल्यको ऐसी बातें करते देख आपके शत्रुदमन पुत्र महाबाहु दुर्योधनने मनमें तनिक भी दीनता न लाकर उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया—॥ १२½ ॥

मावमंस्था महाबाहो कर्णं वैकर्तनं रणे ॥ १३ ॥
सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठं सर्वशास्त्रार्थपारगम्।

'महाबाहो ! तुम रणक्षेत्रमें वैकर्तन कर्णका अपमान न करो। वह सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ तथा सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थका पारङ्गत विद्वान् है ॥ १३½ ॥

यस्य ज्यातलनिर्घोषं श्रुत्वा भयकरं महत् ॥ १४ ॥
पाण्डवेयानि सैन्यानि विद्रवन्ति दिशो दश।

'यह वही वीर है जिसकी प्रत्यञ्चाकी अत्यन्त भयानक टङ्कार सुनकर पाण्डव-सेना दसों दिशाओंमें भागने लगती है॥

प्रत्यक्षं ते महाबाहो यथा रात्रौ घटोत्कचः ॥ १५ ॥
मायाशतानि कुर्वाणो हतो मायापुरस्कृतः।

'महाबाहो ! यह तो तुमने अपनी आँखों देखा था कि किस प्रकार उस दिन रातमें सैकड़ों मायाओंका प्रयोग करनेवाला मायावी घटोत्कच कर्णके हाथसे मारा गया ॥ १५½ ॥

न चातिष्ठत बीभत्सुः प्रत्यनीके कथंचन ॥ १६ ॥
एतांश्च दिवसान् सर्वान् भयेन महता वृतः।

'इन सारे दिनोंमें महान् भयसे घिरे हुए अर्जुन किसी तरह भी कर्णके सामने खड़े न हो सके थे ॥ १६½ ॥

भीमसेनश्च बलवान् धनुष्कोट्याभिचोदितः॥ १७ ॥
उक्तश्च संज्ञया राजन् मूढ औदरिको यथा।

'राजन् ! बलवान् भीमसेनको भी इसने अपने धनुषकी कोटिसे दबाकर युद्धके लिये प्रेरित किया था और उन्हें मूर्ख, पेटू आदि नामोंसे पुकारा था ॥ १७½ ॥

माद्रीपुत्रौ तथा शूरौ येन जित्वा महारणे ॥ १८ ॥
कमप्यर्थं पुरस्कृत्य न हतौ युधि मारिष।

'मान्यवर ! इसने महासमरमें शूरवीर नकुल-सहदेवको भी परास्त करके किसी विशेष प्रयोजनको सामने रखकर उन दोनोंको युद्धमें मार नहीं डाला ॥ १८½ ॥

येन वृष्णिप्रवीरस्तु सात्यकिः सात्वतां वरः ॥ १९ ॥
निर्जित्य समरे शूरो विरथश्च बलात् कृतः।

'इसने वृष्णिवंशके प्रमुख वीर सात्वतशिरोमणि शूरवीर सात्यकिको समराङ्गणमें परास्त करके उन्हें बलपूर्वक रथहीन कर दिया था ॥ १९½ ॥

सृञ्जयाश्चेतरे सर्वे धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ॥ २० ॥
असकृन्निर्जिताः संख्ये स्मयमानेन संयुगे।

'इसके सिवा धृष्टद्युम्न आदि समस्त सृञ्जयोंको भी इसने युद्धस्थलमें हँसते-हँसते अनेक बार परास्त किया है ॥ २०½ ॥

तं कथं पाण्डवा युद्धे विजेष्यन्ति महारथम् ॥ २१ ॥
यो हन्यात् समरे क्रुद्धो वज्रहस्तं पुरंदरम्।

'जो कुपित होनेपर वज्रधारी इन्द्रको भी समरभूमिमें मार डालनेकी शक्ति रखता है, उस महारथी वीर कर्णको पाण्डवलोग युद्धमें कैसे जीत लेंगे ? ॥ २१½ ॥

त्वं च सर्वास्त्रविद् वीरः सर्वविद्यास्त्रपारगः ॥ २२ ॥
बाहुवीर्येण ते तुल्यः पृथिव्यां नास्ति कश्चन।

'आप भी सम्पूर्ण अस्त्रोंके ज्ञाता, समस्त विद्याओं तथा अस्त्रोंके पारङ्गत विद्वान् एवं वीर हैं। इस भूतलपर बाहुबलके द्वारा आपकी समानता करनेवाला कोई नहीं है ॥ २२½ ॥

त्वं शल्यभूतः शत्रूणामविषह्यः पराक्रमे ॥ २३ ॥
ततस्त्वमुच्यसे राजञ्शल्य इत्यरिसूदन ।

'शत्रुसूदन नरेश ! आप पराक्रम प्रकट करते समय शत्रुओंके लिये असह्य हो उठते हैं, उनके लिये आप शल्यभूत (कण्टकस्वरूप) हैं; इसीलिये आपको शल्य कहा जाता है ॥

तव बाहुबलं प्राप्य न शेकुः सर्वसात्वताः ॥ २४ ॥
तव बाहुबलाद् राजन् किं नु कृष्णो बलाधिकः ।

'राजन् ! आपके बाहुबलको सामने पाकर सम्पूर्ण सात्वत-वंशी क्षत्रिय कभी युद्धमें टिक न सके हैं । क्या आपके बाहुबल-से श्रीकृष्णका बल अधिक है ? ॥ २४½ ॥

यथा हि कृष्णेन बलं धार्यं वै फाल्गुने हते ॥ २५ ॥
तथा कर्णात्ययीभावे त्वया धार्यं महद् बलम् ।

'जैसे अर्जुनके मारे जानेपर श्रीकृष्ण पाण्डव-सेनाकी रक्षा करेंगे, उसी प्रकार यदि कर्ण मारा गया तो आपको मेरी विशाल वाहिनीका संरक्षण करना होगा ॥ २५½ ॥

किमर्थं समरे सैन्यं वासुदेवो न्यवारयत् ॥ २६ ॥
किमर्थं च भवान् सैन्यं न हनिष्यति मारिष ।

'मान्यवर ! वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण क्यों कौरव-सेनाका निवारण करेंगे और क्यों आप पाण्डव-सेनाका वध नहीं करेंगे?॥

त्वत्कृते पदवीं गन्तुमिच्छेयं युधि मारिष ।
सोदराणां च वीराणां सर्वेषां च महीक्षिताम् ॥ २७ ॥

'माननीय नरेश ! मैं तो आपके ही भरोसे युद्धमें मारे गये अपने वीर भाइयों तथा समस्त राजाओंके (ऋणसे मुक्त होनेके लिये उन्हींके) पथपर चलनेकी इच्छा करता हूँ' ॥

शल्य उवाच

यन्मां ब्रवीषि गान्धारे अग्रे सैन्यस्य मानद ।
विशिष्टं देवकीपुत्रात् प्रीतिमानस्म्यहं त्वयि ॥ २८ ॥

शल्यने कहा—मानद ! गान्धारीनन्दन ! तुम सम्पूर्ण सेनाके आगे जो मुझे देवकीपुत्र श्रीकृष्णसे बढ़कर बता रहे हो, इससे मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ ॥ २८ ॥

एष सारथ्यमातिष्ठे राधेयस्य यशस्विनः ।
युध्यतः पाण्डवाग्र्येण यथा त्वं वीर मन्यसे ॥ २९ ॥

वीर ! मैं यशस्वी राधापुत्र कर्णका पाण्डवशिरोमणि अर्जुनके साथ युद्ध करते समय सारथ्य करूँगा जैसा कि तुम चाहते हो ॥ २९ ॥

समयश्च हि मे वीर कश्चिद् वैकर्तनं प्रति ।
उत्सृजेयं यथाश्रद्धमहं वाचोऽस्य संनिधौ ॥ ३० ॥

वीरवर ! परंतु वैकर्तन कर्णको मेरी एक शर्तका पालन करना होगा । मैं इसके समीप जो जीमें आयेगा, वैसी बातें करूँगा ॥ ३० ॥

संजय उवाच

तथेति राजन् पुत्रस्ते सह कर्णेन मारिष ।
अब्रवीन्मद्रराजानं सर्वक्षत्रस्य संनिधौ ॥ ३१ ॥

संजय कहते हैं—माननीय नरेश ! तब समस्त क्षत्रियोंके समीप कर्णसहित आपके पुत्रने मद्रराज शल्यसे कहा—'बहुत अच्छा, आपकी शर्त स्वीकार है' ॥ ३१ ॥

सारथ्यस्याभ्युपगमाच्छल्येनाश्वासितस्तदा ।
दुर्योधनस्तदा हृष्टः कर्णं तमभिषस्वजे ॥ ३२ ॥

सारथ्य स्वीकार करके जब शल्यने आश्वासन दिया, तब राजा दुर्योधनने बड़े हर्षके साथ कर्णको हृदयसे लगा लिया ॥

अब्रवीच्च पुनः कर्णं स्तूयमानः सुतस्तव ।
जहि पार्थान् रणे सर्वान् महेन्द्रो दानवानिव ॥ ३३ ॥

तत्पश्चात् वन्दीजनोंद्वारा अपनी स्तुति सुनते हुए आपके पुत्रने कर्णसे फिर कहा—'वीर ! तुम रणक्षेत्रमें कुन्तीके समस्त पुत्रोंको उसी प्रकार मार डालो, जैसे देवराज इन्द्र दानवोंका संहार करते हैं' ॥ ३३ ॥

स शल्येनाभ्युपगते हयानां संनियच्छने ।
कर्णो हृष्टमना भूयो दुर्योधनमभाषत ॥ ३४ ॥

शल्यके द्वारा अश्वोंका नियन्त्रण स्वीकार कर लिये जाने-पर कर्ण प्रसन्नचित्त हो पुनः दुर्योधनसे बोला—॥ ३४ ॥

नातिहृष्टमना ह्येष मद्रराजोऽभिभाषते ।
राजन् मधुरया वाचा पुनरेनं ब्रवीहि वै ॥ ३५ ॥

'राजन् ! ये मद्रराज शल्य अधिक प्रसन्न होकर बात नहीं कर रहे हैं; अतः तुम मधुर वाणीद्वारा इन्हें फिरसे समझाते हुए कुछ कहो' ॥ ३५ ॥

ततो राजा महाप्राज्ञः सर्वास्त्रकुशलो बली ।
दुर्योधनोऽब्रवीच्छल्यं मद्रराजं महीपतिम् ॥ ३६ ॥
पूरयन्निव घोषेण मेघगम्भीरया गिरा ।

तब सम्पूर्ण अस्त्रोंके संचालनमें कुशल, परम बुद्धिमान् एवं बलवान् राजा दुर्योधनने मद्रदेशके राजा पृथ्वीपति शल्य-को सम्बोधित करके अपने स्वरसे वहाँके प्रदेशको गुँजाते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीद्वारा इस प्रकार कहा—॥३६½॥

शल्य कर्णोऽर्जुनेनाद्य योद्धव्यमिति मन्यते ॥ ३७ ॥
तस्य त्वं पुरुषव्याघ्र नियच्छ तुरगान् युधि ।

'शल्य ! आज कर्ण अर्जुनके साथ युद्ध करनेकी इच्छा रखता है । पुरुषसिंह ! आप रणस्थलमें इसके घोड़ोंको काबूमें रक्खें ॥ ३७½ ॥

कर्णो हत्वेतरान् सर्वान् फाल्गुनं हन्तुमिच्छति ॥ ३८ ॥
तस्याभीषुग्रहे राजन् प्रयाचे त्वां पुनः पुनः ।

'कर्ण अन्य सब शत्रुवीरोंका संहार करके अर्जुनका वध करना चाहता है । राजन् ! आपसे उसके घोड़ोंकी बागडोर सँभालनेके लिये मैं बारंबार याचना करता हूँ ॥ ३८½ ॥

पार्थस्य सचिवः कृष्णो यथाभीषुग्रहो वरः ।
तथा त्वमपि राधेयं सर्वतः परिपालय ॥ ३९ ॥

'जैसे श्रीकृष्ण अर्जुनके श्रेष्ठ सचिव तथा सारथि हैं, उसी प्रकार आप भी राधापुत्र कर्णकी सर्वथा रक्षा कीजिये' ॥ ३९ ॥

संजय उवाच

ततः शल्यः परिष्वज्य सुतं ते वाक्यमब्रवीत् ।
दुर्योधनममित्रघ्नं प्रीतो मद्राधिपस्तदा ॥ ४० ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! तब मद्रराज शल्यने प्रसन्न हो आपके पुत्र शत्रुसूदन दुर्योधनको हृदयसे लगाकर कहा ॥ ४० ॥

शल्य उवाच

एवं चेन्मन्यसे राजन् गान्धारे प्रियदर्शन ।
तस्मात् ते यत् प्रियं किंचित् तत् सर्वं करवाण्यहम् ॥ ४१ ॥

शल्य बोले—गान्धारीनन्दन ! प्रियदर्शन नरेश ! यदि तुम ऐसा समझते हो तो तुम्हारा जो कुछ प्रिय कार्य है, वह सब मैं करूँगा ॥ ४१ ॥

यत्रास्मि भरतश्रेष्ठ योग्यः कर्मणि कर्हिचित् ।
तत्र सर्वात्मना युक्तो वक्ष्ये कार्यधुरं तव ॥ ४२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! मैं जहाँ कहीं कभी भी जिस कर्मके योग्य होऊँ, वहाँ उस कर्ममें तुम्हारे द्वारा नियुक्त कर दिये जानेपर मैं सम्पूर्ण हृदयसे उस कार्यभारको वहन करूँगा ॥ ४२ ॥

यत्तु कर्णमहं ब्रूयां हितकामः प्रियाप्रिये ।
मम तत् क्षमतां सर्वं भवान् कर्णश्च सर्वशः ॥ ४३ ॥

परंतु मैं हितकी इच्छा रखते हुए कर्णसे जो भी प्रिय अथवा अप्रिय वचन कहूँ, वह सब तुम और कर्ण सर्वथा क्षमा करो ॥ ४३ ॥

कर्ण उवाच

ईशानस्य यथा ब्रह्मा यथा पार्थस्य केशवः ।
तथा नित्यं हिते युक्तो मद्रराज भवस्व नः ॥ ४४ ॥

कर्णने कहा—मद्रराज ! जैसे ब्रह्मा महादेवजीके और श्रीकृष्ण अर्जुनके हितमें सदा तत्पर रहते हैं, उसी प्रकार आप भी निरन्तर हमारे हितसाधनमें संलग्न रहें ॥ ४४ ॥

शल्य उवाच

आत्मनिन्दाऽऽत्मपूजा च परनिन्दा परस्तवः ।
अनाचरितमार्याणां वृत्तमेतच्चतुर्विधम् ॥ ४५ ॥

शल्य बोले—अपनी निन्दा और प्रशंसा, परायी निन्दा और परायी स्तुति—ये चार प्रकारके बर्ताव श्रेष्ठ पुरुषोंने कभी नहीं किये हैं ॥ ४५ ॥

यत् तु विद्वन् प्रवक्ष्यामि प्रत्ययार्थमहं तव ।
आत्मनः स्तवसंयुक्तं तन्निबोध यथातथम् ॥ ४६ ॥

परंतु विद्वन् ! मैं तुम्हें विश्वास दिलानेके लिये जो अपनी प्रशंसासे भरी बात कहता हूँ, उसे तुम यथार्थरूपसे सुनो ॥

अहं शक्रस्य सारथ्ये योग्यो मातलिवत् प्रभो ।
अप्रमादात् प्रयोगाच्च ज्ञानविद्याचिकित्सनैः ॥ ४७ ॥

प्रभो ! मैं सावधानी, अश्वसंचालन, ज्ञान, विद्या तथा चिकित्सा आदि सद्गुणोंकी दृष्टिसे इन्द्रके सारथि-कर्ममें नियुक्त मातलिके समान सुयोग्य हूँ ॥ ४७ ॥

ततः पार्थेन संग्रामे युध्यमानस्य तेऽनघ ।
वाहयिष्यामि तुरगान् विज्वरो भव सूतज ॥ ४८ ॥

निष्पाप सूतपुत्र कर्ण ! जब तुम युद्धस्थलमें अर्जुनके साथ युद्ध करोगे, तब मैं तुम्हारे घोड़े अवश्य हाँकूँगा । तुम निश्चिन्त रहो ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि शल्यसारथ्यस्वीकारे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें शल्यके सारथिकर्मको स्वीकार करनेसे सम्बन्ध रखनेवाला पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

कर्णका युद्धके लिये प्रस्थान और शल्यसे उसकी बातचीत

दुर्योधन उवाच

अयं ते कर्ण सारथ्यं मद्रराजः करिष्यति ।
कृष्णादभ्यधिको यन्ता देवेशस्येव मातलिः ॥ १ ॥

दुर्योधन बोला—कर्ण ! ये मद्रराज शल्य तुम्हारा सारथ्यकर्म करेंगे । देवराज इन्द्रके सारथि मातलिके समान ये श्रीकृष्णसे भी श्रेष्ठ रथसंचालक हैं ॥ १ ॥

यथा हरिहयैर्युक्तं संगृह्णाति स मातलिः ।
शल्यस्तथा तवाद्यायं संयन्ता रथवाजिनाम् ॥ २ ॥

जैसे मातलि इन्द्रके घोड़ोंसे जुते हुए रथकी बागडोर सँभालते हैं, उसी प्रकार ये तुम्हारे रथके घोड़ोंको काबूमें रखेंगे ॥ २ ॥

योधे त्वयि रथस्थे च मद्रराजे च सारथौ ।
रथश्रेष्ठो ध्रुवं संख्ये पार्थानभिभविष्यति ॥ ३ ॥

जब तुम योद्धा बनकर रथपर बैठोगे और मद्रराज शल्य सारथिके रूपमें प्रतिष्ठित होंगे, उस समय वह श्रेष्ठ रथ निश्चय ही युद्धस्थलमें कुन्तीपुत्रोंको पराजित कर देगा ॥ ३ ॥

संजय उवाच

ततो दुर्योधनो भूयो मद्रराजं तरस्विनम् ।
उवाच राजन् संग्रामेऽध्युषिते पर्युपस्थिते ॥ ४ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर दुर्योधनने प्रातःकाल युद्ध उपस्थित होनेपर पुनः वेगशाली मद्रराज शल्यसे कहा—॥ ४ ॥

कर्णस्य यच्छ संग्रामे मद्रराज हयोत्तमान् ।
त्वयाभिगुप्तो राधेयो विजेष्यति धनंजयम् ॥ ५ ॥

'मद्रराज ! आप संग्राममें कर्णके इन उत्तम घोड़ोंको वशमें कीजिये । आपसे सुरक्षित होकर राधापुत्र कर्ण निश्चय ही अर्जुनको जीत लेगा' ॥ ५ ॥

इत्युक्तो रथमास्थाय तथेति प्राह भारत ।
शल्येऽभ्युपगते कर्णः सारथिं सुमनाब्रवीत् ॥ ६ ॥
त्वं सूत स्यन्दनं मह्यं कल्पयेत्यसकृत् त्वरन् ।

भारत ! दुर्योधनके ऐसा कहनेपर शल्यने रथका स्पर्श करके कहा—'तथास्तु ।' जब शल्यने सारथि होना पूर्णरूपसे स्वीकार कर लिया, तब कर्णने प्रसन्नचित्त होकर बारंबार अपने पूर्व सारथिसे शीघ्रतापूर्वक कहा—'सूत ! तुम मेरा रथ सजाकर तैयार करो' ॥ ६½ ॥

ततो जैत्रं रथवरं गन्धर्वनगरोपमम् ॥ ७ ॥
विधिवत् कल्पितं भद्रं जयेत्युक्त्वा न्यवेदयत् ।

तब सारथिने गन्धर्वनगरके समान विशाल, विजयशील श्रेष्ठ और मङ्गलकारक रथको विधिपूर्वक सुसज्जित करके सूचित किया—'स्वामिन् ! आपकी जय हो ! रथ तैयार है' ॥ ७½ ॥

तं रथं रथिनां श्रेष्ठः कर्णोऽभ्यर्च्य यथाविधि ॥ ८ ॥
सम्पादितं ब्रह्मविदा पूर्वमेव पुरोधसा ।
कृत्वा प्रदक्षिणं यत्नादुपस्थाय च भास्करम् ॥ ९ ॥
समीपस्थं मद्रराजमारोह त्वमथाब्रवीत् ।

रथियोंमें श्रेष्ठ कर्णने वेदज्ञ पुरोहितद्वारा पहलेसे ही जिसका माङ्गलिक कृत्य सम्पन्न कर दिया गया था, उस रथकी विधिपूर्वक पूजा और प्रदक्षिणा की । तत्पश्चात् सूर्यदेवका प्रयत्नपूर्वक उपस्थान करके पास ही खड़े हुए मद्रराजसे कहा—'पहले आप रथपर बैठिये' ॥ ८-९½ ॥

ततः कर्णस्य दुर्धर्षं स्यन्दनप्रवरं महत् ॥ १० ॥
आरुरोह महातेजाः शल्यः सिंह इवाचलम् ।

तदनन्तर जैसे सिंह पर्वतपर चढ़ता है, उसी प्रकार महातेजस्वी शल्य कर्णके दुर्जय, विशाल एवं श्रेष्ठ रथपर आरूढ़ हुए ॥ १०½ ॥

ततः शल्याश्रितं दृष्ट्वा कर्णः स्वं रथमुत्तमम् ॥ ११ ॥
अध्यतिष्ठद् यथाम्भोदं विद्युत्वन्तं दिवाकरः ।

कर्ण अपने उत्तम रथको सारथि शल्यसे सनाथ हुआ देख स्वयं भी उसपर आरूढ़ हुआ, मानो सूर्यदेव बिजलियोंसे युक्त मेघपर प्रतिष्ठित हुए हों ॥ ११½ ॥

तावेकरथमारूढावादित्याग्निसमत्विषौ ॥ १२ ॥
अभ्राजेतां यथा मेघं सूर्याग्नी सहितौ दिवि ।

जैसे आकाशमें किसी महान् मेघखण्डपर एक साथ बैठे हुए सूर्य और अग्नि प्रकाशित हो रहे हों, उसी प्रकार सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी कर्ण और शल्य उस एक ही रथपर आरूढ़ हो बड़ी शोभा पाने लगे ॥ १२½ ॥

संस्तूयमानौ तौ वीरौ तदास्तां द्युतिमत्तमौ ॥ १३ ॥
ऋत्विक्सदस्यैरिन्द्राग्नी स्तूयमानाविवाध्वरे ।

उस समय उन दोनों परम तेजस्वी वीरोंकी उसी प्रकार स्तुति होने लगी, जैसे यज्ञमण्डपमें ऋत्विजों और सदस्योंद्वारा इन्द्र और अग्नि देवताका स्तवन किया जाता है ॥



स शल्यसंगृहीताश्वे रथे कर्णः स्थितो बभौ ॥ १४ ॥
धनुर्विस्फारयन् घोरं परिवेषीव भास्करः ।

शल्यने घोड़ोंकी बागडोर हाथमें ले ली । उस रथपर बैठा हुआ कर्ण अपने भयंकर धनुषको फैलाकर उसी प्रकार सुशोभित हो रहा था, मानो सूर्यमण्डलपर घेरा पड़ा हो ॥

आस्थितः स रथश्रेष्ठं कर्णः शरगभस्तिमान् ॥ १५ ॥
प्रबभौ पुरुषव्याघ्रो मन्दरस्थ इवांशुमान् ।

उस श्रेष्ठ रथपर चढ़ा हुआ पुरुषसिंह कर्ण अपनी बाणमयी किरणोंसे युक्त हो मन्दराचलके शिखरपर देदीप्यमान होनेवाले सूर्यके समान प्रकाशित हो रहा था ॥ १५½ ॥

तं रथस्थं महाबाहुं युद्धायामिततेजसम् ॥ १६ ॥
दुर्योधनस्तु राधेयमिदं वचनमब्रवीत् ।
अकृतं द्रोणभीष्माभ्यां दुष्करं कर्म संयुगे ॥ १७ ॥
कुरुष्वाधिरथे वीर मिषतां सर्वधन्विनाम् ।

युद्धके लिये रथपर बैठे हुए अमिततेजस्वी महाबाहु

राधापुत्र कर्णसे दुर्योधनने इस प्रकार कहा—'वीर ! अधिरथकुमार ! युद्धस्थलमें द्रोणाचार्य और भीष्म भी जिसे न कर सके, वही दुष्कर कर्म तुम सम्पूर्ण धनुर्धरोंके देखते-देखते कर डालो ॥ १६–१७½ ॥

मनोगतं मम ह्यासीद् भीष्मद्रोणौ महारथौ ॥ १८ ॥
अर्जुनं भीमसेनं च निहन्ताराविति ध्रुवम् ।

'मेरे मनमें यह विश्वास था कि 'महारथी भीष्म और द्रोणाचार्य अर्जुन और भीमसेनको अवश्य ही मार डालेंगे' ॥

ताभ्यां यदकृतं वीर वीरकर्म महामृधे ॥ १९ ॥
तत् कर्म कुरु राधेय वज्रपाणिरिवापरः ।

'वीर राधापुत्र ! वे दोनों जिसे न कर सके, वही वीरोचित कर्म आज महासमरमें दूसरे वज्रधारी इन्द्रके समान तुम निश्चय ही पूर्ण करो ॥ १९½ ॥

गृहाण धर्मराजं वा जहि वा त्वं धनंजयम् ॥ २० ॥
भीमसेनं च राधेय माद्रीपुत्रौ यमावपि ।

'राधानन्दन ! या तो तुम धर्मराज युधिष्ठिरको कैद कर लो या अर्जुन, भीमसेन तथा माद्रीकुमार नकुल-सहदेवको मार डालो ॥ २०½ ॥

जयश्च तेऽस्तु भद्रं ते प्रयाहि पुरुषर्षभ ॥ २१ ॥
पाण्डुपुत्रस्य सैन्यानि कुरु सर्वाणि भस्मसात् ।

'पुरुषप्रवर ! तुम्हारी जय हो । कल्याण हो । अब तुम जाओ और पाण्डुपुत्रकी सारी सेनाओंको भस्म करो' ॥२१½॥

ततस्तूर्यसहस्राणि भेरीणामयुतानि च ॥ २२ ॥
वाद्यमानान्यराजन्त मेघशब्दो यथा दिवि ।

तदनन्तर सहस्रों तूर्य और कई सहस्र रणभेरियाँ बज उठीं, जो आकाशमें मेघोंकी गर्जनाके समान प्रतीत हो रही थीं २२½

प्रतिगृह्य तु तद् वाक्यं रथस्थो रथसत्तमः ॥ २३ ॥
अभ्यभाषत राधेयः शल्यं युद्धविशारदम् ।
चोदयाश्वान् महाबाहो यावद्धन्मि धनंजयम् ॥ २४ ॥
भीमसेनं यमौ चोभौ राजानं च युधिष्ठिरम् ।

रथपर बैठे हुए रथियोंमें श्रेष्ठ राधापुत्र कर्णने दुर्योधनके उस आदेशको शिरोधार्य करके युद्धकुशल राजा शल्यसे कहा—'महाबाहो ! मेरे घोड़ोंको बढ़ाइये, जिससे कि मैं अर्जुन, भीमसेन, दोनों भाई नकुल-सहदेव तथा राजा युधिष्ठिरका वध कर सकूँ ॥

अद्य पश्यतु मे शल्य बाहुवीर्यं धनंजयः ॥ २५ ॥
अस्यतः कङ्कपत्राणां सहस्राणि शतानि च ।

'शल्य ! आज सैकड़ों और सहस्रों कङ्कपत्रयुक्त बाणोंकी वर्षा करते हुए मुझ कर्णके बाहुबलको अर्जुन देखें ॥ २५½ ॥

अद्य क्षेप्स्याम्यहं शल्य शरान् परमतेजनान् ॥ २६ ॥
पाण्डवानां विनाशाय दुर्योधनजयाय च ।

'शल्य ! आज मैं पाण्डवोंके विनाश और दुर्योधनकी विजयके लिये अत्यन्त तीखे बाण चलाऊँगा' ॥ २६½ ॥

शल्य उवाच

सूतपुत्र कथं नु त्वं पाण्डवानवमन्यसे ॥ २७ ॥
सर्वास्त्रज्ञान् महेष्वासान् सर्वानेव महाबलान् ।
अनिवर्तिनो महाभागानजय्यान् सत्यविक्रमान् ॥ २८ ॥

शल्यने कहा—सूतपुत्र ! तुम पाण्डवोंकी अवहेलना कैसे करते हो । वे सब-के-सब तो सम्पूर्ण अस्त्रोंके ज्ञाता, महाधनुर्धर, महाबलवान्, युद्धसे पीछे न हटनेवाले, अजेय तथा सत्यपराक्रमी हैं ॥ २७-२८ ॥

अपि संजनयेयुर्ये भयं साक्षाच्छतक्रतोः ।
यदा श्रोष्यसि निर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः ॥ २९ ॥
राधेय गाण्डिवस्याजौ तदा नैवं वदिष्यसि ।

वे साक्षात् इन्द्रके मनमें भी भय उत्पन्न कर सकते हैं । राधापुत्र ! जब तुम युद्धस्थलमें वज्रकी गड़गड़ाहटके समान गाण्डीव धनुषका गम्भीर घोष सुनोगे, तब ऐसी बातें नहीं कहोगे ॥ २९½ ॥

यदा द्रक्ष्यसि भीमेन कुञ्जरानीकमाहवे ॥ ३० ॥
विशीर्णदन्तं निहतं तदा नैवं वदिष्यसि ।

जब तुम देखोगे कि भीमसेनने संग्रामभूमिमें गजराजोंकी सेनाके दाँत तोड़-तोड़कर उसका संहार कर डाला है, तब तुम इस प्रकार नहीं बोल सकोगे ॥ ३०½ ॥

यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे धर्मपुत्रं यमौ तथा ॥ ३१ ॥
शितैः पृषत्कैः कुर्वाणानभ्रच्छायामिवाम्बरे ।
अस्यतः क्षिण्वतश्चारील्लँघुहस्तान् दुरासदान् ।
पार्थिवानपि चान्यांस्त्वं तदा नैवं वदिष्यसि ॥ ३२ ॥

जब तुम्हें यह दिखायी देगा कि संग्राममें धर्मपुत्र युधिष्ठिर, नकुल-सहदेव तथा अन्यान्य दुर्जय भूपाल बड़ी शीघ्रताके साथ हाथ चला रहे हैं, अपने तीखे बाणोंद्वारा आकाशमें मेघोंकी छायाके समान छाया कर रहे हैं, निरन्तर बाणवर्षा करते और शत्रुओंका संहार किये डालते हैं, तब तुम ऐसी बातें मुँहसे न निकाल सकोगे ॥ ३१-३२ ॥

संजय उवाच

अनादृत्य तु तद् वाक्यं मद्रराजेन भाषितम् ।
याहीत्येवाब्रवीत् कर्णो मद्रराजं तरस्विनम् ॥ ३३ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! मद्रराजकी कही हुई उस बातकी उपेक्षा करके कर्णने उन वेगशाली मद्रनरेशसे कहा—'चलिये, चलिये' ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि शल्यसंवादे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें शल्यसंवादविषयक छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

कौरवसेनामें अपशकुन, कर्णकी आत्मप्रशंसा, शल्यके द्वारा उसका उपहास और अर्जुनके बल-पराक्रमका वर्णन

संजय उवाच

दृष्ट्वा कर्णं महेष्वासं युयुत्सुं समवस्थितम्।
चुक्रुशुः कुरवः सर्वे हृष्टरूपाः समन्ततः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! जब महाधनुर्धर कर्ण युद्धकी इच्छासे समराङ्गणमें डटकर खड़ा हो गया, तब समस्त कौरव बड़े हर्षमें भरकर सब ओर कोलाहल करने लगे ॥ १ ॥

ततो दुन्दुभिनिर्घोषैर्भेरीणां निनदेन च।
बाणशब्दैश्च विविधैर्गर्जितैश्च तरस्विनाम् ॥ २ ॥
निर्ययुस्तावका युद्धे मृत्युं कृत्वा निवर्तनम्।

तदनन्तर आपके पक्षके समस्त वीर दुन्दुभि और भेरियोंकी ध्वनि, बाणोंकी सनसनाहट और वेगशाली वीरोंकी विविध गर्जनाओंके साथ युद्धके लिये निकल पड़े। उनके मनमें यह निश्चय था कि अब मौत ही हमें युद्धसे निवृत्त कर सकेगी ॥

प्रयाते तु ततः कर्णे योधेषु मुदितेषु च ॥ ३ ॥
चचाल पृथिवी राजन् ववाश च सुविस्तरम्।

राजन् ! कर्ण और कौरव योद्धाओंके प्रसन्नतापूर्वक प्रस्थान करनेपर धरती डोलने और बड़े जोर-जोरसे अव्यक्त शब्द करने लगी ॥ ३½ ॥

निःसरन्तो व्यदृश्यन्त सूर्यात् सप्त महाग्रहाः ॥ ४ ॥
उल्कापाताश्च संजज्ञुर्दिशां दाहास्तथैव च।
शुष्काशन्यश्च सम्पेतुर्ववुर्वाताश्च भैरवाः ॥ ५ ॥

उस समय सूर्यमण्डलसे सात बड़े-बड़े ग्रह निकलते दिखायी दिये, उल्कापात होने लगे, दिशाओंमें आग-सी जल उठी, बिना वर्षाके ही बिजलियाँ गिरने लगीं और भयानक आँधी चलने लगी ॥ ४-५ ॥

मृगपक्षिगणाश्चैव पृतनां बहुशस्तव।
अपसव्यं तदा चक्रुर्वेदयन्तो महाभयम् ॥ ६ ॥

बहुतेरे मृग और पक्षी महान् भयकी सूचना देते हुए अनेक बार आपकी सेनाको दाहिने करके चले गये ॥ ६ ॥

प्रस्थितस्य च कर्णस्य निपेतुस्तुरगा भुवि।
अस्थिवर्षं च पतितमन्तरिक्षाद् भयानकम् ॥ ७ ॥

कर्णके प्रस्थान करते ही उसके घोड़े पृथ्वीपर गिर पड़े और आकाशसे हड्डियोंकी भयंकर वर्षा होने लगी ॥ ७ ॥

जज्वलुश्चैव शस्त्राणि ध्वजाश्चैव चकम्पिरे।
अश्रूणि च व्यमुञ्चन्त वाहनानि विशाम्पते ॥ ८ ॥

प्रजानाथ ! कौरवोंके शस्त्र जल उठे, ध्वज हिलने लगे और वाहन आँसू बहाने लगे ॥ ८ ॥

एते चान्ये च बहव उत्पातास्तत्र दारुणाः।
समुत्पेतुर्विनाशाय कौरवाणां सुदारुणाः ॥ ९ ॥

ये तथा और भी बहुतसे भयंकर उत्पात वहाँ प्रकट हुए, जो कौरवोंके विनाशकी सूचना दे रहे थे ॥ ९ ॥

न च तान् गणयामासुः सर्वे दैवेन मोहिताः।
प्रस्थितं सूतपुत्रं च जयेत्यूचुर्नराधिपाः।
निर्जितान् पाण्डवांश्चैव मेनिरे तत्र कौरवाः ॥ १० ॥

परंतु दैवसे मोहित होनेके कारण उन सबने उन उत्पातोंको कुछ गिना ही नहीं। सूतपुत्रके प्रस्थान करनेपर सब राजा उसकी जय-जयकार बोलने लगे। कौरवोंको यह विश्वास हो गया कि अब पाण्डव परास्त हो जायँगे ॥ १० ॥

ततो रथस्थः परवीरहन्ता
भीष्मद्रोणावस्तवीर्यौ समीक्ष्य।
समुज्ज्वलद्भास्करपावकाभो
वैकर्तनोऽसौ रथकुञ्जरो नृप ॥ ११ ॥
स शल्यमाभाष्य जगाद वाक्यं
पार्थस्य कर्मातिशयं विचिन्त्य।
मानेन दर्पेण विदह्यमानः
क्रोधेन दीप्यन्निव निःश्वसंश्च ॥ १२ ॥

नरेश्वर ! तदनन्तर प्रकाशमान सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी, शत्रुवीरोंका संहार करनेमें समर्थ एवं रथपर बैठा हुआ रथिश्रेष्ठ कर्ण यह देखकर कि भीष्म और द्रोणाचार्यके पराक्रमका लोप हो गया, अर्जुनके अलौकिक कर्मका चिन्तन करके अभिमान और दर्पसे दग्ध हो उठा तथा क्रोधसे जलता हुआ-सा लंबी-लंबी साँस खींचने लगा। उस समय उसने शल्यको सम्बोधित करके कहा—॥ ११-१२ ॥

नाहं महेन्द्रादपि वज्रपाणेः
क्रुद्धाद् बिभेम्यायुधवान् रथस्थः।
दृष्ट्वा हि भीष्मप्रमुखाञ्शयाना-
नतीव मां ह्यस्थिरता जहाति ॥ १३ ॥

'राजन् ! मैं हाथमें आयुध लेकर रथपर बैठा रहूँ, उस अवस्थामें यदि वज्र धारण करनेवाले इन्द्र भी कुपित होकर आ जायँ तो उनसे भी मुझे भय न होगा। भीष्म आदि महारथियोंको रणभूमिमें सदाके लिये सोया हुआ देखकर भी अस्थिरता (घबराहट) मुझसे दूर ही रहती है ॥ १३ ॥

महेन्द्रविष्णुप्रतिमावनिन्दितौ
रथाश्वनागप्रवरप्रमाथिनौ।
अवध्यकल्पौ निहतौ यदा परै-
स्ततो न मेऽप्यस्ति रणेऽद्य साध्वसम् ॥ १४ ॥

'भीष्म और द्रोणाचार्य देवराज इन्द्र और विष्णुके समान पराक्रमी, सबके द्वारा प्रशंसित, रथों, घोड़ों और गजराजोंको भी मथ डालनेवाले तथा अवध्य-तुल्य थे, जब उन्हें भी शत्रुओंने मार डाला, तब मेरी क्या गिनती है ? यह सोचकर भी आज मुझे रणभूमिमें कोई भय नहीं हो रहा है ॥ १४ ॥

समीक्ष्य संख्येऽतिबलान् नराधिपान्
ससूतमातङ्गरथान् परैर्हतान् ।
कथं न सर्वानहितान् रणेऽवधीद्
महास्त्रविद् ब्राह्मणपुङ्गवो गुरुः॥ १५ ॥

'युद्धस्थलमें अत्यन्त बलवान् नरेशोंको सारथि, रथ और हाथियोंसहित शत्रुओंद्वारा मारा गया देखकर भी महान् अस्त्रवेत्ता ब्राह्मणशिरोमणि आचार्य द्रोणने रणभूमिमें समस्त शत्रुओंका वध क्यों नहीं कर डाला ? ॥ १५ ॥

स संस्मरन् द्रोणमहं महाहवे
ब्रवीमि सत्यं कुरवो निबोधत ।
न वा मदन्यः प्रसहेद् रणेऽर्जुनं
समागतं मृत्युमिवोग्ररूपिणम् ॥ १६ ॥

'अतः महासमरमें मारे गये द्रोणाचार्यका स्मरण करके मैं सत्य कहता हूँ, कौरवो ! तुमलोग ध्यान देकर सुनो। मेरे सिवा दूसरा कोई रणभूमिमें अर्जुनका वेग नहीं सह सकता। वे सामने आये हुए भयानक रूपधारी मृत्युके समान हैं ॥

शिक्षाप्रमादश्च बलं धृतिश्च
द्रोणे महास्त्राणि च संनतिश्च ।
स चेदगान्मृत्युवशं महात्मा
सर्वानन्यानातुरानद्य मन्ये ॥ १७ ॥

'शिक्षा, सावधानी, बल, धैर्य, महान् अस्त्र और विनय—ये सभी सद्गुण द्रोणाचार्यमें विद्यमान थे। वे महात्मा द्रोण भी यदि मृत्युके वशमें पड़ गये तो अन्य सब लोगोंको भी मैं मरणासन्न ही समझता हूँ ॥ १७ ॥

नेह ध्रुवं किंचिदपि प्रचिन्तयन्
विद्यां लोके कर्मणो नित्ययोगात् ।
सूर्योदये को हि विमुक्तसंशयो
भावं कुर्वीताद्य गुरौ निपातिते ॥ १८ ॥

'बहुत सोचनेपर भी मैं कर्म-सम्बन्धकी अनित्यताके कारण इस लोकमें किसी भी वस्तुको नित्य नहीं मानता। जब आचार्य द्रोण भी मार दिये गये, तब कौन संदेहरहित होकर आगामी सूर्योदयतक जीवित रहनेका दृढ़ विश्वास कर सकता है ? ॥ १८ ॥

न नूनमस्त्राणि बलं पराक्रमः
क्रियाः सुनीतं परमायुधानि वा ।
अलं मनुष्यस्य सुखाय वर्तितुं
तथा हि युद्धे निहतः परैर्गुरुः ॥ १९ ॥

'निश्चय ही अस्त्र, बल, पराक्रम, क्रिया, अच्छी नीति अथवा उत्तम आयुध आदि किसी मनुष्यको सुख पहुँचानेके लिये पर्याप्त नहीं हैं; क्योंकि इन सब साधनोंके होते हुए भी आचार्यको शत्रुओंने युद्धमें मार डाला है ॥ १९ ॥

हुताशनादित्यसमानतेजसं
पराक्रमे विष्णुपुरन्दरोपमम् ।
नये बृहस्पत्युशनोः सदा समं
न चैनमस्त्रं तदुपास्त दुःसहम् ॥ २० ॥

'अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी, विष्णु और इन्द्रके समान पराक्रमी तथा सदा बृहस्पति और शुक्राचार्यके समान नीतिमान् इन गुरुदेवको बचानेके लिये इनके दुःसह अस्त्र आदि पास न आ सके अर्थात् उनकी रक्षा नहीं कर सके ॥

सम्प्राकुष्टे रुदितस्त्रीकुमारे
पराभूते पौरुषे धार्तराष्ट्रे ।
मया कृत्यमिति जानामि शल्य
प्रयाहि तस्माद् द्विषतामनीकम् ॥ २१ ॥

'शल्य ! (द्रोणाचार्यके मारे जानेपर) जब सब ओर त्राहि-त्राहिकी पुकार हो रही है, स्त्रियाँ और बच्चे विलख-विलखकर रो रहे हैं तथा दुर्योधनका पुरुषार्थ दब गया है, ऐसे समयमें दुर्योधनको मेरी सहायताकी विशेष आवश्यकता है। मैं अपने इस कर्तव्यको अच्छी तरह समझता हूँ । इसलिये तुम शत्रुओंकी सेनाकी ओर चलो ॥ २१ ॥

यत्र राजा पाण्डवः सत्यसंधो
व्यवस्थितो भीमसेनार्जुनौ च ।
वासुदेवः सात्यकिः सृञ्जयाश्च
यमौ च कस्तान् विषहेन्मदन्यः ॥ २२ ॥

'जहाँ सत्यप्रतिज्ञ पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर खड़े हैं, जहाँ भीमसेन, अर्जुन, वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण, सात्यकि, सृंजय वीर तथा नकुल और सहदेव डटे हुए हैं, वहाँ मेरे सिवा दूसरा कौन उन वीरोंका वेग सह सकता है ? ॥ २२ ॥

तस्मात् क्षिप्रं मद्रपते प्रयाहि
रणे पञ्चालान् पाण्डवान् सृञ्जयांश्च ।
तान् वा हनिष्यामि समेत्य संख्ये
यास्यामि वा द्रोणपथा यमाय ॥ २३ ॥

'इसलिये मद्रराज ! तुम शीघ्र ही रणभूमिमें पाञ्चाल, पाण्डव तथा सृंजय वीरोंकी ओर रथ ले चलो । आज युद्धस्थलमें उन सबके साथ भिड़कर या तो उन्हें ही मार डालूँगा या स्वयं ही द्रोणाचार्यके मार्गसे यमलोक चला जाऊँगा ॥ २३ ॥

न त्वेवाहं न गमिष्यामि मध्ये
तेषां शूराणामिति मां शल्य विद्धि ।
मित्रद्रोहो मर्षणीयो न मेऽयं
त्यक्त्वा प्राणाननुयास्यामि द्रोणम् ॥ २४ ॥

'शल्य ! मैं उन शूरवीरोंके बीचमें नहीं जाऊँगा, ऐसा मुझे न समझो; क्योंकि संग्रामसे पीछे हटनेपर मित्रद्रोह होगा और यह मित्रद्रोह मेरे लिये असह्य है। इसलिये मैं प्राणोंका परित्याग करके द्रोणाचार्यका ही अनुसरण करूँगा ॥

प्राज्ञस्य मूढस्य च जीवितान्ते
नास्ति प्रमोक्षोऽन्तकसत्कृतस्य।
अतो विद्वन्नभियास्यामि पार्थान्
दिष्टं न शक्यं व्यतिवर्तितुं वै ॥ २५ ॥

'विद्वान् हो या मूर्ख, आयुकी समाप्ति होनेपर सभीका यमराजके द्वारा यथायोग्य सत्कार होता है। उससे किसीको छुटकारा नहीं मिलता। अतः विद्वन् ! मैं कुन्तीके पुत्रोंपर अवश्य चढ़ाई करूँगा। निश्चय ही दैवके विधानको कोई पलट नहीं सकता ॥ २५ ॥

कल्याणवृत्तः सततं हि राजा
वैचित्रवीर्यस्य सुतो ममासीत्।
तस्यार्थसिद्ध्यर्थमहं त्यजामि
प्रियान् भोगान् दुस्त्यजं जीवितं च ॥२६॥

'धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधन सदा ही मेरे कल्याण-साधनमें तत्पर रहा है; अतः आज उसके मनोरथकी सिद्धिके लिये मैं अपने प्रिय भोगोंको और जिसे त्यागना अत्यन्त कठिन है, उस जीवनको भी त्याग दूँगा ॥ २६ ॥

वैयाघ्रचर्माणमकूजनाक्षं
हैमत्रिकोषं रजतत्रिवेणुम्।
रथप्रबर्हं तुरगप्रबर्है-
र्युक्तं प्रादान्मह्यमिमं हि रामः ॥ २७ ॥

'गुरुवर परशुरामजीने मुझे यह व्याघ्रचर्मसे आच्छादित और उत्तम अश्वोंसे जुता हुआ श्रेष्ठ रथ प्रदान किया है। इसमें तीन सुवर्णमय कोष और रजतमय त्रिवेणु सुशोभित हैं। इसके धुरों और पहियोंसे कोई आवाज नहीं निकलती है ॥

धनूंषि चित्राणि निरीक्ष्य शल्य
ध्वजान् गदाः सायकांश्चोग्ररूपान्।
असिं च दीप्तं परमायुधं च
शङ्खं च शुभ्रं स्वनवन्तमुग्रम् ॥ २८ ॥

'शल्य ! तत्पश्चात् उन्होंने भलीभाँति इस रथका निरीक्षण करके बहुत-से विचित्र धनुष, भयंकर बाण, ध्वज, गदा, खड्ग, चमचमाते हुए उत्तम आयुध तथा गम्भीर ध्वनिसे युक्त भयंकर श्वेत शङ्ख भी दिये थे ॥ २८ ॥

पताकिनं वज्रनिपातनिःस्वनं
सिताश्वयुक्तं शुभतूणशोभितम्।
इमं समास्थाय रथं रथर्षभं
रणे हनिष्याम्यहमर्जुनं बलात् ॥ २९ ॥

'यह रथ सब रथोंसे उत्तम है। इसमें पताकाएँ फहरा रही हैं, सफेद घोड़े जुते हुए हैं और सुन्दर तरकस इसकी शोभा बढ़ाते हैं। चलते समय इस रथकी धमकसे वज्रपातके समान शब्द होता है। मैं इस रथपर बैठकर रणभूमिमें अर्जुनको बलपूर्वक मार डालूँगा ॥ २९ ॥

तं चेन्मृत्युः सर्वहरोऽभिरक्षेत्
सदाप्रमत्तः समरे पाण्डुपुत्रम्।
तं वा हनिष्यामि रणे समेत्य
यास्यामि वा भीष्ममुखो यमाय ॥ ३० ॥

'यदि सबका संहार करनेवाली मृत्यु सदा सावधान रहकर समराङ्गणमें पाण्डुपुत्र अर्जुनकी रक्षा करे तो रणक्षेत्रमें उससे भी भिड़कर या तो मैं उसे ही मार डालूँगा या स्वयं ही भीष्मके सम्मुख यमलोकको चला जाऊँगा ॥ ३० ॥

यमवरुणकुबेरवासवा वा
यदि युगपत्सगणा महाहवे।
जुगुपिषव इहैत्य पाण्डवं
किमु बहुना सह तैर्जयामि तम् ॥ ३१ ॥

'अधिक कहनेसे क्या लाभ ? यदि इस महासमरमें अपने गणोंसहित यम, वरुण, कुबेर और इन्द्र भी एक साथ आकर यहाँ पाण्डुपुत्र अर्जुनकी रक्षा करना चाहें तो मैं उन सबके साथ ही उन्हें जीत लूँगा' ॥ ३१ ॥

संजय उवाच

इति रणरभसस्य कत्थत-
स्तदुत निशम्य वचः स मद्रराट्।
अवहसदवमन्य वीर्यवान्
प्रतिषिषिधे च जगाद चोत्तरम् ॥ ३२॥

संजय कहते हैं—राजन्! पराक्रमी मद्रराज शल्य युद्धके उत्साहमें भरकर बढ़-बढ़कर बातें बनानेवाले कर्णके उस कथनको सुनकर उसकी अवहेलना करके उपहास करने लगे। उन्होंने फिर ऐसी बातें कहनेसे कर्णको रोका और इस प्रकार उत्तर दिया ॥ ३२ ॥

शल्य उवाच

विरम विरम कर्ण कत्थना-
दतिरभसोऽप्यतिवाचमुक्तवान्।
क्व च हि नरवरो धनंजयः
क्व पुनरहो पुरुषाधमो भवान् ॥ ३३ ॥

शल्यने कहा—कर्ण ! बस, अब बढ़-बढ़कर बातें बनाना बंद करो, बंद करो। तुम अधिक जोशमें आकर अपनी शक्तिसे बहुत बड़ी बात कह गये। भला, कहाँ नर-

श्रेष्ठ अर्जुन और कहाँ मनुष्योंमें अधम तुम ! ॥ ३३ ॥



यदुसदनमुपेन्द्रपालितं
त्रिदशमिवामरराजरक्षितम् ।
प्रसभमतिविलोड्य को हरेत्
पुरुषवरावरजामृतेऽर्जुनात् ॥ ३४ ॥

बताओ तो सही, अर्जुनके सिवा दूसरा कौन ऐसा वीर है, जो साक्षात् विष्णु भगवान्‌से सुरक्षित यदुवंशियोंकी पुरीको, जिसकी उपमा देवराज इन्द्रद्वारा पालित देवनगरी अमरावतीसे दी जाती है, बलपूर्वक मथकर पुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी छोटी बहिन सुभद्राका अपहरण कर सके ॥ ३४ ॥

त्रिभुवनविभुमीश्वरेश्वरं
क इह पुमान् भवमाह्वयेद् युधि ।
मृगवधकलहे ऋतेऽर्जुनात्
सुरपतिवीर्यसमप्रभावतः ॥ ३५ ॥

देवराज इन्द्रके समान बल और प्रभाव रखनेवाले अर्जुनको छोड़कर इस संसारमें दूसरा कौन ऐसा वीर पुरुष है, जो एक वन्य पशुको मारनेके विषयमें उठे हुए विवादके अवसरपर ईश्वरोंके भी ईश्वर त्रिलोकीनाथ भगवान् शङ्करको भी युद्धके लिये ललकार सके ॥ ३५ ॥

असुरसुरमहोरगान् नरान्
गरुडपिशाचसयक्षराक्षसान् ।
इषुभिरजयदग्निगौरवात्
स्वभिलषितं च हविर्ददौ जयः ॥ ३६ ॥

अर्जुनने अग्निदेवका गौरव मानकर गरुड़, पिशाच, यक्ष, राक्षस, देवता, असुर, बड़े-बड़े नाग तथा मनुष्योंको भी बाणोंद्वारा परास्त कर दिया और अग्निको अभीष्ट हविष्य प्रदान किया था ॥ ३६ ॥

स्मरसि ननु यदा परैर्हृतः
स च धृतराष्ट्रसुतोऽपि मोक्षितः ।
दिनकरसदृशैः शरोत्तमैर्युधा
कुरुषु बहून् विनिहत्य तानरीन् ॥ ३७ ॥

कर्ण ! याद है वह घटना, जब कि कुरुजाङ्गल-प्रदेशमें घोषयात्राके समय गन्धर्वोंने शत्रु बनकर दुर्योधनका अपहरण कर लिया था, उस समय इन्हीं अर्जुनने सूर्यकिरणोंके समान तेजस्वी उत्तमोत्तम बाणोंद्वारा उन बहुसंख्यक शत्रुओंको मारकर धृतराष्ट्रपुत्रको बन्धनसे मुक्त किया था ॥ ३७ ॥

प्रथममपि पलायिते त्वयि
प्रियकलहा धृतराष्ट्रसूनवः ।
स्मरसि ननु यदा प्रमोचिताः
खचरगणानवजित्य पाण्डवैः ॥ ३८ ॥

उस युद्धमें तुम सबसे पहले भाग गये थे । उस समय पाण्डवोंने गन्धर्वोंको पराजित करके कलहप्रिय धृतराष्ट्र-पुत्रोंको कैदसे छुड़ाया था । क्या ये सब बातें तुम्हें याद हैं ? ॥

समुदितबलवाहनाः पुनः
पुरुषवरेण जिताः स्थ गोग्रहे ।
सगुरुगुरुसुताः सभीष्मकाः
किमु न जितः स तदा त्वयार्जुनः ॥ ३९ ॥

विराटनगरमें गोहरणके समय पुरुषश्रेष्ठ अर्जुनने विशाल बल-वाहनसे सम्पन्न तुम सब लोगोंको द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और भीष्मके सहित परास्त कर दिया था । उस समय तुमने अर्जुनको क्यों नहीं जीत लिया ? ॥ ३९ ॥

इदमपरमुपस्थितं पुन-
स्तव निधनाय सुयुद्धमद्य वै ।
यदि न रिपुभयात् पलायसे
समरगतोऽद्य हतोऽसि सूतज ॥ ४० ॥

सूतपुत्र ! अब आज तुम्हारे वधके लिये पुनः यह दूसरा उत्तम युद्ध उपस्थित हुआ है । यदि तुम शत्रुके भयसे भाग नहीं गये तो समराङ्गणमें पहुँचकर अवश्य मारे जाओगे ॥

संजय उवाच

इति बहु परुषं प्रभाषति
प्रमनसि मद्रपतौ रिपुस्तवम् ।
भृशमभिरुषितः परंतपः
कुरुपृतनापतिराह मद्रपम् ॥ ४१ ॥

संजयने कहा—राजन् ! जब महामना मद्रराज शल्य इस प्रकार शत्रुकी प्रशंसासे सम्बन्ध रखनेवाली बहुत-सी कड़वी बातें सुनाने लगे, तब कौरव-सेनापति शत्रुसंतापी कर्ण अत्यन्त क्रोधसे जल उठा और शल्यसे बोला ॥ ४१ ॥

कर्ण उवाच

भवतु भवतु किं विकत्थसे
ननु मम तस्य हि युद्धमुद्यतम् ।
यदि स जयति मामिहाहवे
तत इदमस्तु सुकत्थितं तव ॥ ४२ ॥

कर्णने कहा—रहने दो, रहने दो। क्यों बहुत बढ़-बढ़कर रहे हो। अब तो मेरा और उनका युद्ध उपस्थित हो ही गया है। यदि अर्जुन यहाँ युद्धमें मुझे परास्त कर दें, तब तुम्हारा यह बढ़-बढ़कर बातें करना ठीक और अच्छा समझा जायगा ॥ ४२ ॥

संजय उवाच

एवमस्त्विति मद्रेश उक्त्वा नोत्तरमुक्तवान् ।
याहि शल्येति चाप्येनं कर्णः प्राह युयुत्सया ॥ ४३ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तब मद्रराज शल्य 'एवमस्तु' कहकर चुप हो गये। उन्होंने कर्णकी उस बातका कोई उत्तर नहीं दिया। तब कर्णने युद्धकी इच्छासे उनसे कहा—'शल्य ! रथ आगे ले चलो' ॥ ४३ ॥

स रथः प्रययौ शत्रूञ्श्वेताश्वः शल्यसारथिः ।
निघ्नन्नमित्रान् समरे तमो घ्नन् सविता यथा ॥ ४४ ॥

तत्पश्चात् शल्य जिसके सारथि थे और जिसमें श्वेत घोड़े जुते हुए थे, वह विशाल रथ अन्धकारका विनाश करनेवाले सूर्यदेवके समान शत्रुओंका संहार करता हुआ आगे बढ़ा ॥

ततः प्रायात् प्रीतिमान् वै रथेन
वैयाघ्रेण श्वेतयुजाथ कर्णः ।
स चालोक्य ध्वजिनीं पाण्डवानां
धनंजयं त्वरया पर्यपृच्छत् ॥ ४५ ॥

तदनन्तर व्याघ्रचर्मसे आच्छादित और श्वेत अश्वोंसे युक्त उस रथके द्वारा कर्ण बड़ी प्रसन्नताके साथ प्रस्थित हुआ। उसने सामने ही पाण्डवोंकी सेनाको खड़ी देख बड़ी उतावलीके साथ धनंजयका पता पूछा ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्ण और शल्यका संवादविषयक सैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३७ ॥

अष्टात्रिंशोऽध्यायः

कर्णके द्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुनका पता बतानेवालेको नाना प्रकारकी भोगसामग्री और इच्छानुसार धन देनेकी घोषणा

संजय उवाच

प्रयाणे च ततः कर्णो हर्षयन् वाहिनीं तव ।
एकैकं समरे दृष्ट्वा पाण्डवान् पर्यपृच्छत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! प्रस्थानकालमें आपकी सेनाका हर्ष बढ़ाता हुआ कर्ण समराङ्गणमें पाण्डव-सैनिकोंको देखकर प्रत्येकसे पूछने और कहने लगा—॥ १ ॥

यो मामद्य महात्मानं दर्शयेच्छ्वेतवाहनम् ।
तस्मै दद्यामभिप्रेतं धनं यन्मनसेच्छति ॥ २ ॥

'जो आज मुझे महात्मा श्वेतवाहन अर्जुनको दिखा देगा, उसे मैं उसका अभीष्ट धन, जिसे वह मनसे लेना चाहे, दे दूँगा ॥

न चेत् तदभिमन्येत तस्मै दद्यामहं पुनः ।
शकटं रत्नसम्पूर्णं यो मे ब्रूयाद् धनंजयम् ॥ ३ ॥

'यदि उतने धनसे वह संतुष्ट न होगा तो मैं उसे और धन दूँगा। जो मुझे अर्जुनका पता बता देगा, उसे मैं रत्नोंसे भरा हुआ छकड़ा दूँगा ॥ ३ ॥

न चेत्तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ।
शतं दद्यां गवां तस्मै नैत्यिकं कांस्यदोहनम् ॥ ४ ॥

'यदि अर्जुनको दिखानेवाला पुरुष उस धनको पर्याप्त न माने तो मैं उसे प्रतिदिन दूध देनेवाली सौ गौएँ और कांसका दुग्ध-पात्र प्रदान करूँगा ॥ ४ ॥

शतं ग्रामवरांश्चैव दद्यामर्जुनदर्शिने ।
तथा तस्मै पुनर्दद्यां श्वेतमश्वतरीरथम् ॥ ५ ॥
युक्तमञ्जनकेशीभिर्यो मे ब्रूयाद् धनंजयम् ।

'इतना ही नहीं, मैं अर्जुनको दिखा देनेवाले व्यक्तिके लिये सौ बड़े-बड़े गाँव दूँगा तथा जो अर्जुनका पता बता देगा उसे खच्चरियोंसे जुता हुआ एक श्वेत रथ भी भेंट करूँगा; जिसमें काले केशवाली युवतियाँ बैठी होंगी ॥ ५½ ॥

न चेत् तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ॥ ६ ॥
अन्यं वास्मै पुनर्दद्यां सौवर्णं हस्तिषड्गवम् ।
तथाप्यस्मै पुनर्दद्यां स्त्रीणां शतमलंकृतम् ॥ ७ ॥
श्यामानां निष्ककण्ठीनां गीतवाद्यविपश्चिताम् ।

'यदि अर्जुनका पता बतानेवाला पुरुष उस धनको पूरा न समझे तो उसे दूसरा सोनेका बना हुआ रथ प्रदान करूँगा, जिसमें हाथीके समान हृष्ट-पुष्ट छः बैल जुते होंगे। साथ ही उसे वस्त्राभूषणोंसे विभूषित सौ ऐसी स्त्रियाँ दूँगा, जो श्यामा (सोलह वर्षकी अवस्थावाली), सुवर्णमय कण्ठहारसे अलंकृत तथा गाने-बजानेकी कलामें विदुषी होंगी ॥ ६–७½ ॥

न चेत् तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ॥ ८ ॥
तस्मै दद्यां शतं नागाञ्शतं ग्रामाञ्शतं रथान् ।
सुवर्णस्य च मुख्यस्य हयाग्र्याणां शतं शतान् ॥ ९ ॥
ऋद्ध्या गुणैः सुदान्तांश्च धुर्यवाहान् सुशिक्षितान् ।

'अर्जुनको दिखानेवाला पुरुष यदि उसे भी पूरा न समझे

तो मैं उसे सौ हाथी, सौ गाँव, पक्के सोनेके बने हुए सौ रथ तथा दस हजार अच्छे घोड़े भी दूँगा। वे घोड़े हृष्ट-पुष्ट, गुणवान्, विनीत, सुशिक्षित तथा रथका भार वहन करनेमें समर्थ होंगे ॥ ८–९½ ॥

तथा सुवर्णशृङ्गीणां गोधेनूनां चतुःशतम् ॥ १० ॥
दद्यां तस्मै सवत्सानां यो मे ब्रूयाद् धनंजयम्।

'जो मुझे अर्जुनका पता बता देगा, उसे मैं चार सौ सवत्सा दुधारू गौएँ दूँगा, जिनके सींगोंमें सोने मढ़े होंगे ॥

न चेत् तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ॥ ११ ॥
अन्यदस्मै वरं दद्यां श्वेतान् पञ्चशतान् हयान्।
हेमभाण्डपरिच्छन्नान् सुमृष्टमणिभूषणान् ॥ १२ ॥

'यदि अर्जुनको दिखानेवाला पुरुष उस धनको पूर्ण नहीं समझेगा तो उसे और भी उत्तम धन, श्वेत रङ्गके पाँच सौ घोड़े दूँगा, जो सोनेके साज-बाजसे सुसज्जित तथा विशुद्ध मणियोंके आभूषणोंसे विभूषित होंगे ॥ ११–१२ ॥

सुदान्तानपि चैवाहं दद्यामष्टादशापरान्।
रथं च शुभ्रं सौवर्णं दद्यां तस्मै स्वलंकृतम् ॥ १३ ॥
युक्तं परमकाम्बोजैर्यो मे ब्रूयाद् धनंजयम्।

'इनके सिवा, अठारह और भी घोड़े दूँगा, जो अच्छी तरह रथमें सधे हुए होंगे। जो मुझे अर्जुनका पता बता देगा, उसे मैं परम उज्ज्वल और अलंकारोंसे सजाया हुआ एक सुवर्णमय रथ दूँगा, जिसमें अच्छी नस्लके काबुली घोड़े जुते होंगे ॥ १३½ ॥

न चेत् तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ॥ १४ ॥
अन्यदस्मै वरं दद्यां कुञ्जराणां शतानि षट्।
काञ्चनैर्विविधैर्भाण्डैराच्छन्नान् हेममालिनः ॥ १५ ॥
उत्पन्नानपरान्तेषु विनीतान् हस्तिशिक्षकैः।

'यदि अर्जुनको दिखानेवाला पुरुष उसे भी पूरा न समझे तो उसे मैं और भी श्रेष्ठ धन दूँगा। नाना प्रकारके सुवर्णमय आभूषणोंसे सुशोभित तथा सोनेकी मालाओंसे अलंकृत छः सौ ऐसे हाथी प्रदान करूँगा, जो भारतवर्षकी पश्चिमी सीमाके जङ्गलोंमें उत्पन्न हुए हैं और जिन्हें गजशिक्षकोंने अच्छी तरह सुशिक्षित कर लिया है ॥ १४–१५½ ॥

न चेत् तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ॥ १६ ॥
अन्यदस्मै वरं दद्यां वैश्यग्रामांश्चतुर्दश।
सुस्फीतान् धनसंयुक्तान् प्रत्यासन्नवनोदकान्।
अकुतोभयान् सुसम्पन्नान् राजभोज्यांश्चतुर्दश ॥ १७ ॥

'यदि अर्जुनको दिखानेवाला पुरुष उसे भी पूरा न समझे तो मैं उसे दूसरा श्रेष्ठ धन प्रदान करूँगा। जिनमें वैश्य निवास करते हों ऐसे चौदह समृद्धिशाली और धनसम्पन्न ग्राम दूँगा, जिनके आसपास जङ्गल और जलकी सुविधा होगी और जहाँ किसी प्रकारका भय नहीं होगा। वे चौदहों गाँव अधिक सम्पन्न तथा राजोचित भोगोंसे परिपूर्ण होंगे ॥ १६-१७ ॥

दासीनां निष्ककण्ठीनां मागधीनां शतं तथा।
प्रत्यग्रवयसां दद्यां यो मे ब्रूयाद् धनंजयम् ॥ १८ ॥

'जो मुझे अर्जुनका पता बता देगा, उसे मैं सोनेके कण्ठहारोंसे विभूषित मगध देशकी सौ नवयुवती दासियाँ दूँगा ॥

न चेत् तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान्।
अन्यं तस्मै वरं दद्यां यमसौ कामयेत् स्वयम् ॥ १९ ॥

'यदि अर्जुनको दिखानेवाला पुरुष उसे भी पर्याप्त न समझे तो मैं उसे दूसरा वर प्रदान करूँगा, जिसकी वह स्वयं इच्छा करे ॥ १९ ॥

पुत्रदारान् विहारांश्च यदन्यद् वित्तमस्ति मे।
तच्च तस्मै पुनर्दद्यां यद् यच्च मनसेच्छति ॥ २० ॥

'स्त्री, पुत्र, विहारस्थान तथा दूसरा भी जो कुछ धन-वैभव मेरे पास है, उसमेंसे जिस-जिस वस्तुको वह अपने मनसे चाहेगा, वह सब कुछ मैं उसे दे डालूँगा' ॥ २० ॥

हत्वा च सहितौ कृष्णौ तयोर्वित्तानि सर्वशः।
तस्मै दद्यामहं यो मे प्रब्रूयात् केशवार्जुनौ ॥ २१ ॥

'जो मुझे श्रीकृष्ण और अर्जुनका पता बता देगा, उसे मैं उन दोनोंको मारकर उनका सारा धन-वैभव दे दूँगा' ॥ २१ ॥

एता वाचः सुबहुशः कर्ण उच्चारयन् युधि।
दध्मौ सागरसम्भूतं सुस्वरं शङ्खमुत्तमम् ॥ २२ ॥

इन सब बातोंको बारंबार कहते हुए कर्णने युद्धस्थलमें समुद्रसे उत्पन्न हुए अपने उत्तम शङ्खको उच्च स्वरसे बजाया ॥

ता वाचः सूतपुत्रस्य तथा युक्ता निशम्य तु।
दुर्योधनो महाराज संहृष्टः सानुगोऽभवत् ॥ २३ ॥

महाराज ! सूतपुत्रकी कही हुई उस अवसरके अनुरूप उन बातोंको सुनकर दुर्योधन अपने सेवकोंसहित बड़ा प्रसन्न हुआ ॥ २३ ॥

ततो दुन्दुभिनिर्घोषो मृदङ्गानां च सर्वशः।
सिंहनादः सवादित्रः कुञ्जराणां च निःस्वनः ॥ २४ ॥

फिर तो सब ओर दुन्दुभियोंकी गम्भीर ध्वनि होने लगी, मृदङ्ग बजने लगे, वाद्योंकी ध्वनिके साथ-साथ वीरोंका सिंहनाद तथा हाथियोंके चिग्घाड़नेका शब्द वहाँ गूँज उठा ॥ २४ ॥

प्रादुरासीत् तदा राजन् सैन्येषु पुरुषर्षभ।
योधानां सम्प्रहृष्टानां तथा समभवत् स्वनः ॥ २५ ॥

पुरुषप्रवर नरेश ! उस समय सभी सेनाओंमें हर्ष और उत्साहसे भरे हुए योद्धाओंका गम्भीर गर्जन होने लगा ॥ २५ ॥

तथा प्रहृष्टे सैन्ये तु प्लवमानं महारथम्।
विकत्थमानं च तदा राधेयमरिकर्षणम्।

मद्रराजः प्रहस्येदं वचनं प्रत्यभाषत ॥ २६ ॥

इस प्रकार हर्षसे उल्लसित हुई सेनामें जाते और बढ़-बढ़कर बातें बनाते हुए शत्रुसूदन राधापुत्र महारथी कर्णसे मद्रराज शल्यने हँसकर इस प्रकार कहा ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णावलेपे अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्णका अभिमानविषयक अड़तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

शल्यका कर्णके प्रति अत्यन्त आक्षेपपूर्ण वचन कहना

शल्य उवाच

मा सूतपुत्र दानेन सौवर्णं हस्तिषड्गवम्।
प्रयच्छ पुरुषायाद्य द्रक्ष्यसि त्वं धनंजयम् ॥ १ ॥

शल्य बोले—सूतपुत्र ! तुम किसी पुरुषको हाथीके समान हृष्ट-पुष्ट छः बैलोंसे जुता हुआ सोनेका रथ न दो। आज अवश्य ही अर्जुनको देखोगे ॥ १ ॥

बाल्यादिह त्वं त्यजसि वसु वैश्रवणो यथा।
अयत्नेनैव राधेय द्रष्टास्यद्य धनजयम् ॥ २ ॥

राधापुत्र ! तुम मूर्खतासे ही यहाँ कुबेरके समान धन लुटा रहे हो, आज अर्जुनको तो तुम बिना यत्न किये ही देख लोगे ॥ २ ॥

परान् सृजसि यद् वित्तं किंचित्त्वं बहु मूढवत्।
अपात्रदाने ये दोषास्तान् मोहान्नावबुध्यसे ॥ ३ ॥

मूढ़ पुरुषोंके समान तुम अपना बहुत कुछ धन जो दूसरोंको दे रहे हो, इससे जान पड़ता है कि अपात्रको धनका दान देनेसे जो दोष पैदा होते हैं, उन्हें मोहवश तुम नहीं समझ रहे हो ॥ ३ ॥

यत् त्वं प्रेरयसे वित्तं बहु तेन खलु त्वया।
शक्यं बहुविधैर्यज्ञैर्यष्टुं सूत यजस्व तैः ॥ ४ ॥

सूत ! तुम जो बहुत धन देनेकी यहाँ घोषणा कर रहे हो, निश्चय ही उसके द्वारा नाना प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान कर सकते हो; अतः तुम उन धन-वैभवोंद्वारा यज्ञोंका ही अनुष्ठान करो ॥ ४ ॥

यच्च प्रार्थयसे हन्तुं कृष्णौ मोहाद् वृथैव तत्।
न हि शुश्रुम सम्मर्दे क्रोष्ट्रा सिंहौ निपातितौ ॥ ५ ॥

और जो तुम मोहवश श्रीकृष्ण तथा अर्जुनको मारना चाहते हो, वह मनसूबा तो व्यर्थ ही है; क्योंकि हमने यह बात कभी नहीं सुनी है कि किसी गीदड़ने युद्धमें दो सिंहोंको मार गिराया हो ॥ ५ ॥

अप्रार्थितं प्रार्थयसे सुहृदो न हि सन्ति ते।
ये त्वां न वारयन्त्याशु प्रपतन्तं हुताशने ॥ ६ ॥

तुम ऐसी चीज चाहते हो, जिसकी अबतक किसीने इच्छा नहीं की थी। जान पड़ता है तुम्हारे कोई सुहृद् नहीं हैं, जो शीघ्र ही आकर तुम्हें जलती आगमें गिरनेसे रोक नहीं रहे हैं ॥ ६ ॥

कार्याकार्यं न जानीषे कालपक्वोऽस्यसंशयम्।
बह्वबद्धमकर्णीयं को हि ब्रूयाज्जिजीविषुः ॥ ७ ॥

तुम्हें कर्तव्य और अकर्तव्यका कुछ भी ज्ञान नहीं है। निःसंदेह तुम्हें कालने पका दिया है। (अतः तुम पके हुए फलके समान गिरनेवाले ही हो); अन्यथा जो जीवित रहना चाहता है, ऐसा कौन पुरुष ऐसी बहुत-सी न सुनने योग्य अटपटांग बातें कह सकता है ? ॥ ७ ॥

समुद्रतरणं दोर्भ्यां कण्ठे बद्ध्वा यथा शिलाम्।
गिर्यग्राद् वा निपतनं तादृक् तव चिकीर्षितम् ॥ ८ ॥

जैसे कोई गलेमें पत्थर बाँधकर दोनों हाथोंसे समुद्र पार करना चाहे अथवा पहाड़की चोटीसे पृथ्वीपर कूदनेकी इच्छा करे, ऐसी ही तुम्हारी सारी चेष्टा और अभिलाषा है ॥ ८ ॥

सहितः सर्वयोधैस्त्वं व्यूढानीकैः सुरक्षितः।
धनंजयेन युध्यस्व श्रेयश्चेत् प्राप्तुमिच्छसि ॥ ९ ॥

यदि तुम कल्याण प्राप्त करना चाहते हो तो व्यूहरचना-पूर्वक खड़े हुए समस्त सैनिकोंके साथ सुरक्षित रहकर अर्जुन-से युद्ध करो ॥ ९ ॥

हितार्थं धार्तराष्ट्रस्य ब्रवीमि त्वां न हिंसया।
श्रद्धस्वैवं मया प्रोक्तं यदि तेऽस्ति जिजीविषा ॥ १० ॥

दुर्योधनके हितके लिये ही मैं ऐसा कह रहा हूँ, हिंसा-भावसे नहीं! यदि तुम्हें जीनेकी इच्छा है तो मेरे इस कथन-पर विश्वास करो ॥ १० ॥

कर्ण उवाच

स्वबाहुवीर्यमाश्रित्य प्रार्थयाम्यर्जुनं रणे।
त्वं तु मित्रमुखः शत्रुर्मां भीषयितुमिच्छसि ॥ ११ ॥

कर्ण बोला—शल्य ! मैं अपने बाहुबलका भरोसा करके रणक्षेत्रमें अर्जुनको पाना चाहता हूँ; परंतु तुम तो मुँहसे मित्र बने हुए वास्तवमें शत्रु हो, जो मुझे यहाँ डराना चाहते हो ॥ ११ ॥

न मामस्मादभिप्रायात् कश्चिदद्य निवर्तयेत्।
अपीन्द्रो वज्रमुद्यम्य किमु मर्त्यः कथंचन ॥ १२ ॥

परंतु मुझे इस अभिप्रायसे आज कोई भी पीछे नहीं लौटा सकता। वज्र उठाये हुए इन्द्र भी मुझे किसी तरह इस निश्चयसे डिगा नहीं सकते, फिर मनुष्यकी तो बात ही क्या है ! ॥ १२ ॥

संजय उवाच

इति कर्णस्य वाक्यान्ते शल्यः प्राहोत्तरं वचः।
चुकोपयिषुरत्यर्थं कर्णं मद्रेश्वरः पुनः ॥ १३॥

संजय कहते हैं—राजन्! कर्णकी यह बात समाप्त होते ही मद्रराज शल्य उसे अत्यन्त कुपित करनेकी इच्छासे पुनः इस प्रकार उत्तर देने लगे—॥ १३॥

यदा वै त्वां फाल्गुनवेगयुक्ता
ज्याचोदिता हस्तवता विसृष्टाः।
अन्वेतारः कङ्कपत्राः सिताग्रा-
स्तदा तप्स्यस्यर्जुनस्यानुयोगात् ॥ १४॥

'कर्ण! अर्जुनके वेगसे युक्त हो उनकी प्रत्यञ्चासे प्रेरित और सुशिक्षित हाथोंसे छोड़े हुए तीखी धारवाले कङ्कपत्र-विभूषित बाण जब तुम्हारे शरीरमें घुसने लगेंगे, तब जो तुम अर्जुनको पूछते फिरते हो, इसके लिये पश्चात्ताप करोगे॥

यदा दिव्यं धनुरादाय पार्थः
प्रतापयन् पृतनां सव्यसाची।
त्वां मर्दयिष्यन्निशितैः पृषत्कै-
स्तदा पश्चात् तप्स्यसे सूतपुत्र ॥ १५॥

'सूतपुत्र! जब सव्यसाची कुन्तीकुमार अर्जुन अपने हाथमें दिव्य धनुष लेकर शत्रुसेनाको तपाते हुए पैने बाणों-द्वारा तुम्हें रौंदने लगेंगे, तब तुम्हें अपने कियेपर पछतावा होगा॥ १५॥

बालश्चन्द्रं मातुरङ्के शयानो
यथा कश्चित् प्रार्थयतेऽपहर्तुम्।
तद्वन्मोहाद् द्योतमानं रथस्थं
सम्प्रार्थयस्यर्जुनं जेतुमद्य ॥ १६॥

'जैसे अपनी माँकी गोदमें सोया हुआ कोई बालक चन्द्रमाको पकड़ लाना चाहता हो, उसी प्रकार तुम भी रथपर बैठे हुए तेजस्वी अर्जुनको आज मोहवश परास्त करना चाहते हो॥ १६॥

त्रिशूलमाश्रित्य सुतीक्ष्णधारं
सर्वाणि गात्राणि विघर्षसि त्वम्।
सुतीक्ष्णधारोपमकर्मणा त्वं
युयुत्ससे योऽर्जुनेनाद्य कर्ण ॥ १७॥

'कर्ण! अर्जुनका पराक्रम अत्यन्त तीखी धारवाले त्रिशूलके समान है। उन्हीं अर्जुनके साथ आज जो तुम युद्ध करना चाहते हो, वह दूसरे शब्दोंमें यों है कि तुम पैनी धारवाले त्रिशूलको लेकर उसीसे अपने सारे अङ्गोंको रगड़ना या खुजलाना चाहते हो॥ १७॥

क्रुद्धं सिंहं केसरिणं बृहन्तं
बालो मूढः क्षुद्रमृगस्तरस्वी।
समाह्वयेत् तद्वदेतत् तवाद्य
समाह्वानं सूतपुत्रार्जुनस्य ॥ १८॥

'सूतपुत्र! जैसे बालक, मूढ़ और वेगसे चौकड़ी भरनेवाला क्षुद्र मृग क्रोधमें भरे हुए विशालकाय, केसरयुक्त सिंहको ललकारे, तुम्हारा आज यह अर्जुनका युद्धके लिये आह्वान करना भी वैसा ही है॥ १८॥

मा सूतपुत्राह्वय राजपुत्रं
महावीर्यं केसरिणं यथैव।
वने शृगालः पिशितेन तृप्तो
मा पार्थमासाद्य विनङ्क्ष्यसि त्वम् ॥ १९॥

'सूतपुत्र! तुम महापराक्रमी राजकुमार अर्जुनका आह्वान न करो। जैसे वनमें मांस-भक्षणसे तृप्त हुआ गीदड़ महाबली सिंहके पास जाकर नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार तुम भी अर्जुनसे भिड़कर विनाशके गर्तमें न गिरो॥ १९॥

ईषादन्तं महानागं प्रभिन्नकरटामुखम्।
शशको ह्वयसे युद्धे कर्ण पार्थं धनंजयम् ॥ २०॥

'कर्ण! जैसे कोई खरगोश ईषादण्डके समान दाँतोंवाले महान् मदस्रावी गजराजको अपने साथ युद्धके लिये बुलाता हो, उसी प्रकार तुम भी कुन्तीपुत्र धनंजयका रणक्षेत्रमें आह्वान करते हो॥ २०॥

बिलस्थं कृष्णसर्पं त्वं बाल्यात् काष्ठेन विध्यसि।
महाविषं पूर्णकोपं यत् पार्थं योद्धुमिच्छसि ॥ २१॥

'तुम यदि पूर्णतः क्रोधमें भरे हुए अर्जुनके साथ जूझना चाहते हो तो मूर्खतावश बिलमें बैठे हुए महाविषैले काले सर्पको किसी काठकी छड़ीसे बींध रहे हो॥ २१॥

सिंहं केसरिणं क्रुद्धमतिक्रम्याभिनर्दसे।
शृगाल इव मूढस्त्वं नृसिंहं कर्ण पाण्डवम् ॥ २२॥

'कर्ण! तुम मूर्ख हो; जैसे गीदड़ क्रोधमें भरे हुए केसरी सिंहका अनादर करके गर्जना करे, उसी प्रकार तुम भी मनुष्योंमें सिंहके समान पराक्रमी और क्रोधमें भरे हुए पाण्डु-कुमार अर्जुनका लङ्घन करके गरज रहे हो॥ २२॥

सुपर्णं पतगश्रेष्ठं वैनतेयं तरस्विनम्।
भोगीवाह्वयसे पाते कर्ण पार्थं धनंजयम् ॥ २३॥

'कर्ण! जैसे कोई सर्प अपने पतनके लिये ही पक्षियोंमें श्रेष्ठ वेगशाली विनतानन्दन गरुडका आह्वान करता है, उसी प्रकार तुम भी अपने विनाशके लिये ही कुन्तीकुमार अर्जुनको ललकार रहे हो॥ २३॥

सर्वाम्भसां निधिं भीमं मूर्तिमन्तं झषायुतम्।
चन्द्रोदये विवर्धन्तमप्लवः संतितीर्षसि ॥ २४॥

'अरे! तुम चन्द्रोदयके समय बढ़ते हुए, जलजन्तुओंसे पूर्ण तथा उत्ताल तरङ्गोंसे व्याप्त अगाध जलराशिवाले भयंकर समुद्रको बिना किसी नावके ही केवल दोनों हाथोंके सहारे पार करना चाहते हो॥ २४॥

ऋषभं दुन्दुभिग्रीवं तीक्ष्णशृङ्गं प्रहारिणम्।
वत्स आह्वयसे युद्धे कर्ण पार्थं धनंजयम् ॥ २५॥

'बेटा कर्ण! दुन्दुभिकी ध्वनिके समान जिसका कंठस्वर गम्भीर है, जिसके सींग तीखे हैं तथा जो प्रहार करनेमें कुशल है, उस साँडके समान पराक्रमी पृथापुत्र अर्जुनको तुम युद्धके लिये ललकार रहे हो ॥ २५ ॥

महामेघं महाघोरं दर्दुरः प्रतिनर्दसि ।
बाणतोयप्रदं लोके नरपर्जन्यमर्जुनम् ॥ २६ ॥

'जैसे महाभयंकर महामेघके मुकाबिलेमें कोई मेढक टर्र-टर्र कर रहा हो, उसी प्रकार तुम संसारमें बाणरूपी जलकी वर्षा करनेवाले मानवमेघ अर्जुनको लक्ष्य करके गर्जना करते हो ॥ २६ ॥

यथा च स्वगृहस्थः श्वा व्याघ्रं वनगतं भषेत् ।
तथा त्वं भषसे कर्ण नरव्याघ्रं धनंजयम् ॥ २७ ॥

'कर्ण! जैसे अपने घरमें बैठा हुआ कोई कुत्ता वनमें रहनेवाले बाघकी ओर भूँके, उसी प्रकार तुम भी नरव्याघ्र अर्जुनको लक्ष्य करके भूँक रहे हो ॥ २७ ॥

शृगालोऽपि वने कर्ण शशैः परिवृतो वसन् ।
मन्यते सिंहमात्मानं यावत् सिंहं न पश्यति ॥ २८ ॥

'कर्ण! वनमें ख़रगोशोंके साथ रहनेवाला गीदड़ भी जबतक सिंहको नहीं देखता, तबतक अपनेको सिंह ही मानता रहता है ॥ २८ ॥

तथा त्वमपि राधेय सिंहमात्मानमिच्छसि ।
अपश्यञ्शत्रुदमनं नरव्याघ्रं धनंजयम् ॥ २९ ॥

'राधानन्दन! उसी प्रकार तुम भी शत्रुओंका दमन करनेवाले पुरुषसिंह अर्जुनको न देखनेके कारण ही अपनेको सिंह समझना चाहते हो ॥ २९ ॥

व्याघ्रं त्वं मन्यसेऽऽत्मानं यावत् कृष्णौ न पश्यसि ।
समास्थितावेकरथे सूर्याचन्द्रमसाविव ॥ ३० ॥

'एक रथपर बैठे हुए सूर्य और चन्द्रमाके समान सुशोभित श्रीकृष्ण और अर्जुनको जबतक तुम नहीं देख रहे हो, तभी-तक अपनेको बाघ माने बैठे हो ॥ ३० ॥

यावद् गाण्डीवघोषं त्वं न शृणोषि महाहवे ।
तावदेव त्वया कर्ण शक्यं वक्तुं यथेच्छसि ॥ ३१ ॥

'कर्ण! महासमरमें जबतक गाण्डीवकी टङ्कार नहीं सुनते हो, तभीतक तुम जैसा चाहो, बक सकते हो ॥ ३१ ॥

रथशब्दधनुःशब्दैर्नादयन्तं दिशो दश ।
नर्दन्तमिव शार्दूलं दृष्ट्वा क्रोष्टा भविष्यसि ॥ ३२ ॥

'रथकी घर्घराहट और धनुषकी टंकारसे दसों दिशाओंको निनादित करते हुए सिंहसदृश अर्जुनको जब दहाड़ते देखोगे, तब तुरंत गीदड़ बन जाओगे ॥ ३२ ॥

नित्यमेव शृगालस्त्वं नित्यं सिंहो धनंजयः ।
वीरप्रद्वेषणान्मूढ तस्मात् क्रोष्टेव लक्ष्यसे ॥ ३३ ॥

'ओ मूढ! तुम सदासे ही गीदड़ हो और अर्जुन सदासे ही सिंह हैं। वीरोंके प्रति द्वेष रखनेके कारण ही तुम गीदड़-जैसे दिखायी देते हो ॥ ३३ ॥

यथाखुः स्याद् विडालश्च श्वा व्याघ्रश्च बलाबले ।
यथा शृगालः सिंहश्च यथा च शशकुञ्जरौ ॥ ३४ ॥

'जैसे चूहा और बिलाव, कुत्ता और बाघ, गीदड़ और सिंह तथा खरगोश और हाथी अपनी निर्बलता और प्रबलता-के लिये प्रसिद्ध हैं, उसी प्रकार तुम निर्बल हो और अर्जुन सबल हैं ॥ ३४ ॥

यथानृतं च सत्यं च यथा चापि विषामृते ।
तथा त्वमपि पार्थश्च प्रख्यातावात्मकर्मभिः ॥ ३५ ॥

'जैसे झूठ और सच तथा विष और अमृत अपना अलग-अलग प्रभाव रखते हैं, उसी प्रकार तुम और अर्जुन भी अपने-अपने कर्मोंके लिये सर्वत्र विख्यात हो' ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्याधिक्षेपे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्णके प्रति शल्यका आक्षेपविषयक उनतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

कर्णका शल्यको फटकारते हुए मद्रदेशके निवासियोंकी निन्दा करना एवं उसे मार डालनेकी धमकी देना

संजय उवाच

अधिक्षिप्तस्तु राधेयः शल्येनामिततेजसा ।
शल्यमाह सुसंक्रुद्धो वाक्शल्यमवधारयन् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! अमिततेजस्वी शल्यके इस प्रकार आक्षेप करनेपर राधापुत्र कर्ण अत्यन्त कुपित हो उठा और यह वचनरूपी शल्य (बाण) छोड़नेके कारण ही इसका नाम शल्य पड़ा है, ऐसा निश्चय करके शल्यसे इस प्रकार बोला ॥ १ ॥

कर्ण उवाच

गुणान् गुणवतां शल्य गुणवान् वेत्ति नागुणः ।
त्वं तु शल्य गुणैर्हीनः किं ज्ञास्यसि गुणागुणम् ॥ २ ॥

कर्णने कहा—शल्य! गुणवान् पुरुषोंके गुणोंको गुणवान् ही जानता है, गुणहीन नहीं। तुम तो समस्त गुणोंसे शून्य हो; फिर गुण-अवगुण क्या समझोगे? ॥ २ ॥

अर्जुनस्य महास्त्राणि क्रोधं वीर्यं धनुः शरान् ।
अहं शल्याभिजानामि विक्रमं च महात्मनः ॥ ३ ॥

शल्य ! मैं महात्मा अर्जुनके महान् अस्त्र, क्रोध, बल, धनुष, बाण और पराक्रमको अच्छी तरह जानता हूँ ॥ ३ ॥

तथा कृष्णस्य माहात्म्यमृषभस्य महीक्षिताम्।
यथाहं शल्य जानामि न त्वं जानासि तत् तथा ॥ ४ ॥

शल्य ! इसी प्रकार महीपालशिरोमणि श्रीकृष्णके माहात्म्यको जैसा मैं जानता हूँ, वैसा तुम नहीं जानते ॥ ४ ॥

एवमेवात्मनो वीर्यमहं वीर्यं च पाण्डवे।
जानन्नेवाह्वये युद्धे शल्य गाण्डीवधारिणम् ॥ ५ ॥

शल्य ! मैं अपना और पाण्डुपुत्र अर्जुनका बल-पराक्रम समझकर ही गाण्डीवधारी पार्थको युद्धके लिये बुलाता हूँ॥ ५॥

अस्ति वायमिषुः शल्य सुपुङ्खो रक्तभोजनः।
एकतूणीशयः पत्री सुधौतः समलंकृतः ॥ ६ ॥

शल्य ! मेरा यह सुन्दर पंखोंसे युक्त बाण शत्रुओंका रक्त पीनेवाला है। यह अकेले ही एक तरकसमें रक्खा जाता है, जो बहुत ही स्वच्छ, कङ्कपत्रयुक्त और भलीभाँति अलंकृत है ॥ ६ ॥

शेते चन्दनचूर्णेषु पूजितो बहुलाः समाः।
आहेयो विषवानुग्रो नराश्वद्विपसंघहा ॥ ७ ॥

यह सर्पमय भयानक विषैला बाण बहुत वर्षोंतक चन्दनके चूर्णमें रखकर पूजित होता आया है, जो मनुष्यों, हाथियों और घोड़ोंके समुदायका संहार करनेवाला है ॥ ७ ॥

घोररूपो महारौद्रस्तनुत्रास्थिविदारणः।
निर्भिन्द्यां येन रुष्टोऽहमपि मेरुं महागिरिम् ॥ ८ ॥

यह अत्यन्त भयङ्कर घोर बाण कवच तथा हड्डियोंको भी चीर देनेवाला है। मैं कुपित होनेपर इस बाणके द्वारा महान् पर्वत मेरुको भी विदीर्ण कर सकता हूँ ॥ ८ ॥

तमहं जातु नास्येयमन्यस्मिन् फाल्गुनादृते।
कृष्णाद् वा देवकीपुत्रात् सत्यं चापि शृणुष्व मे॥ ९ ॥

इस बाणको मैं अर्जुन अथवा देवकीपुत्र श्रीकृष्णको छोड़कर दूसरे किसीपर कभी नहीं छोड़ूँगा। मेरी सच्ची बातको तुम कान खोलकर सुन लो ॥ ९ ॥

तेनाहमिषुणा शल्य वासुदेवधनंजयौ।
योत्स्ये परमसंक्रुद्धस्तत् कर्म सदृशं मम ॥ १० ॥

शल्य ! मैं अत्यन्त कुपित होकर उस बाणके द्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुनके साथ युद्ध करूँगा और वह कार्य मेरे योग्य होगा ॥ १० ॥

सर्वेषां वृष्णिवीराणां कृष्णे लक्ष्मीः प्रतिष्ठिता।
सर्वेषां पाण्डुपुत्राणां जयः पार्थे प्रतिष्ठितः ॥ ११ ॥
उभयं तु समासाद्य को निवर्तितुमर्हति।

समस्त वृष्णिवंशी वीरोंकी सम्पत्ति श्रीकृष्णपर ही प्रतिष्ठित है और पाण्डुके सभी पुत्रोंकी विजय अर्जुनपर ही अवलम्बित है; फिर उन दोनोंको एक साथ युद्धमें पाकर कौन वीर पीछे लौट सकता है ? ॥ ११½ ॥

तावेतौ पुरुषव्याघ्रौ समेतौ स्यन्दने स्थितौ ॥ १२ ॥
मामेकमभिसंयातौ सुजातं पश्य शल्य मे।

शल्य ! वे दोनों पुरुषसिंह एक साथ रथपर बैठकर एकमात्र मुझपर आक्रमण करनेवाले हैं। देखो, मेरा जन्म कितना उत्तम है ! ॥ १२½ ॥

पितृष्वसामातुलजौ भ्रातरावपराजितौ ॥ १३ ॥
मणी सूत्र इव प्रोतौ द्रष्टासि निहतौ मया।

धागेमें पिरोयी हुई दो मणियोंके समान प्रेमसूत्रमें बँधे हुए उन दोनों फुफेरे और ममेरे भाइयोंको, जो किसीसे पराजित नहीं होते, तुम मेरे द्वारा मारा गया देखोगे ॥ १३½॥

अर्जुने गाण्डिवं कृष्णे चक्रं तार्क्ष्यकपिध्वजौ ॥ १४ ॥
भीरूणां त्रासजननं शल्य हर्षकरं मम।

अर्जुनके हाथमें गाण्डीव धनुष और श्रीकृष्णके हाथमें सुदर्शन चक्र है। एक कपिध्वज है तो दूसरा गरुड़ध्वज। शल्य ! ये सब वस्तुएँ कायरोंको भय देनेवाली हैं; परंतु मेरा हर्ष बढ़ाती हैं ॥ १४½ ॥

त्वं तु दुष्प्रकृतिर्मूढो महायुद्धेष्वकोविदः ॥ १५ ॥
भयावदीर्णः संत्रासादबद्धं बहु भाषसे।

तुम तो दुष्ट स्वभावके मूर्ख मनुष्य हो। बड़े-बड़े युद्धोंमें कैसे शत्रुका सामना किया जाता है, इस बातसे अनभिज्ञ हो। भयसे तुम्हारा हृदय विदीर्ण-सा हो रहा है; अतः डरके मारे बहुत-सी असङ्गत बातें कह रहे हो ॥ १५½ ॥

संस्तौषि तौ तु केनापि हेतुना त्वं कुदेशज ॥ १६ ॥
तौ हत्वा समरे हन्ता त्वामद्य सहबान्धवम्।
पापदेशज दुर्बुद्धे क्षुद्र क्षत्रियपांसन ॥ १७ ॥

दुष्ट और पापी देशमें उत्पन्न हुए नीच क्षत्रियकुलाङ्गार दुर्बुद्धि शल्य ! तुम उन दोनोंकी किसी स्वार्थसिद्धिके लिये स्तुति करते हो; परंतु आज समराङ्गणमें उन दोनोंको मारकर बन्धु-बान्धवोंसहित तुम्हारा भी वध कर डालूँगा ॥ १६-१७ ॥

सुहृद् भूत्वा रिपुः किं मां कृष्णाभ्यां भीषयिष्यसि।
तौ वा मामद्य हन्तारौ हनिष्ये वापि तावहम् ॥ १८ ॥

तुम मेरे शत्रु होकर भी सुहृद् बनकर मुझे श्रीकृष्ण और अर्जुनसे क्यों डरा रहे हो। आज या तो वे ही दोनों मुझे मार डालेंगे या मैं ही उन दोनोंका संहार कर दूँगा ॥ १८ ॥

नाहं बिभेमि कृष्णाभ्यां विजानन्नात्मनो बलम्।

वासुदेवसहस्रं वा फाल्गुनानां शतानि वा ॥ १९ ॥
अहमेको हनिष्यामि जोषमास्स्व कुदेशज ।

मैं अपने बलको अच्छी तरह जानता हूँ; इसलिये श्रीकृष्ण और अर्जुनसे कदापि नहीं डरता हूँ। नीच देशमें उत्पन्न शल्य! तुम चुप रहो। मैं अकेला ही सहस्रों श्रीकृष्णों और सैकड़ों अर्जुनोंको मार डालूँगा ॥ १९½ ॥

स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च प्रायः क्रीडागता जनाः ॥ २० ॥
या गाथाः सम्प्रगायन्ति कुर्वन्तोऽध्ययनं यथा ।
ता गाथाः शृणु मे शल्य मद्रकेषु दुरात्मसु ॥ २१ ॥
ब्राह्मणैः कथिताः पूर्वं यथावद् राजसंनिधौ ।
श्रुत्वा चैकमना मूढ क्षम वा ब्रूहि चोत्तरम् ॥ २२ ॥

मूर्ख शल्य! स्त्रियाँ, बच्चे और बूढ़े लोग, खेल-कूदमें लगे हुए मनुष्य और स्वाध्याय करनेवाले पुरुष भी दुरात्मा मद्रनिवासियोंके विषयमें जिन गाथाओंको गाया करते हैं तथा ब्राह्मणोंने पहले राजाके समीप आकर यथावत् रूपसे जिनका वर्णन किया है, उन गाथाओंको एकाग्रचित्त होकर मुझसे सुनो और सुनकर चुपचाप सह लो या जवाब दो ॥ २०—२२ ॥

मित्रध्रुङ्मद्रको नित्यं यो नो द्वेष्टि स मद्रकः ।
मद्रके संगतं नास्ति क्षुद्रवाक्ये नराधमे ॥ २३ ॥

मद्रदेशका अधम मनुष्य सदा मित्रद्रोही होता है। जो हमलोगोंसे अकारण द्वेष करता है, वह मद्रदेशका ही अधम मनुष्य है। क्षुद्रतापूर्ण वचन बोलनेवाले मद्रदेशके निवासीमें किसीके प्रति सौहार्दकी भावना नहीं होती ॥ २३ ॥

दुरात्मा मद्रको नित्यं नित्यमानृतिकोऽनृजुः ।
यावदन्त्यं हि दौरात्म्यं मद्रकेष्विति नः श्रुतम् ॥२४॥

मद्रनिवासी मनुष्य सदा ही दुरात्मा, सर्वदा झूठ बोलनेवाला और सदा ही कुटिल होता है। हमने सुन रक्खा है कि मद्रनिवासियोंमें मरते दमतक दुष्टता बनी रहती है ॥२४॥

पिता पुत्रश्च माता च श्वश्रूश्वशुरमातुलाः ।
जामाता दुहिता भ्राता नप्तान्ये ते च बान्धवाः ॥ २५ ॥
वयस्याभ्यागताश्चान्ये दासीदासं च संगतम् ।
पुम्भिर्विमिश्रा नार्यश्च ज्ञाताज्ञाताः स्वयेच्छया ॥ २६ ॥
येषां गृहेष्वशिष्टानां सक्तुमत्स्याशिनां तथा ।
पीत्वा सीधु सगोमांसं क्रन्दन्ति च हसन्ति च ॥२७॥
गायन्ति चाप्यबद्धानि प्रवर्तन्ते च कामतः ।
कामप्रलापिनोऽन्योन्यं तेषु धर्मः कथं भवेत् ॥ २८ ॥
मद्रकेष्ववलिप्तेषु प्रख्याताशुभकर्मसु ।

सत्तू और मांस खानेवाले जिन अशिष्ट मद्रनिवासियोंके घरोंमें पिता, पुत्र, माता, सास, ससुर, मामा, बेटी, दामाद, भाई, नाती, पोते, अन्यान्य बन्धु-बान्धव, समवयस्क मित्र, दूसरे अभ्यागत अतिथि और दास-दासी—ये सभी अपनी इच्छाके अनुसार एक दूसरेसे मिलते हैं। परिचित-अपरिचित सभी स्त्रियाँ सभी पुरुषोंसे सम्पर्क स्थापित कर लेती हैं और गोमांससहित मदिरा पीकर रोती, हँसती, गाती, असङ्गत बातें करती तथा कामभावसे किये जानेवाले कार्योंमें प्रवृत्त होती हैं। जिनके यहाँ सभी स्त्री-पुरुष एक दूसरेसे कामसम्बन्धी प्रलाप करते हैं, जिनके पापकर्म सर्वत्र विख्यात हैं, उन घमंडी मद्रनिवासियोंमें धर्म कैसे रह सकता है? ॥ २५—२८½ ॥

नापि वैरं न सौहार्दं मद्रकेण समाचरेत् ॥ २९ ॥
मद्रके संगतं नास्ति मद्रको हि सदामलः ।

मद्रनिवासीके साथ न तो वैर करे और न मित्रता ही स्थापित करे, क्योंकि उसमें सौहार्दकी भावना नहीं होती। मद्रनिवासी सदा पापमें ही डूबा रहता है ॥ २९½ ॥

मद्रकेषु च संसृष्टं शौचं गान्धारकेषु च ॥ ३० ॥
राजयाजकयाज्ये च नष्टं दत्तं हविर्भवेत् ।
शूद्रसंस्कारको विप्रो यथा याति पराभवम् ॥ ३१ ॥
यथा ब्रह्मद्विषो नित्यं गच्छन्तीह पराभवम् ।
यथैव संगतं कृत्वा नरः पतति मद्रकैः ॥ ३२ ॥
मद्रके संगतं नास्ति हतं वृश्चिक ते विषम् ।
आथर्वणेन मन्त्रेण यथा शान्तिः कृता मया ॥ ३३ ॥

'ओ बिच्छू! जैसे मद्रनिवासियोंके पास रक्खी हुई धरोहर और गान्धारनिवासियोंमें शौचाचार नष्ट हो जाते हैं, जहाँ क्षत्रिय पुरोहित हो उस यजमानके यज्ञमें दिया हुआ हविष्य जैसे नष्ट हो जाता है, जैसे शूद्रोंका संस्कार करानेवाला ब्राह्मण पराभवको प्राप्त होता है, जैसे ब्रह्मद्रोही मनुष्य इस जगत्में सदा ही तिरस्कृत होते रहते हैं, जैसे मद्रनिवासियोंके साथ मित्रता करके मनुष्य पतित हो जाता है तथा जिस प्रकार मद्रनिवासीमें सौहार्दकी भावना सर्वथा नष्ट हो गयी है, उसी प्रकार तेरा यह विष भी नष्ट हो गया। मैंने अथर्ववेदके मन्त्रसे तेरे विषको शान्त कर दिया'॥३०-३३॥

इति वृश्चिकदष्टस्य विषवेगहतस्य च ।
कुर्वन्ति भेषजं प्राज्ञाः सत्यं तच्चापि दृश्यते ॥ ३४ ॥

ये उपर्युक्त बातें कहकर जो बुद्धिमान् विषवैद्य बिच्छूके काटनेपर उसके विषके वेगसे पीड़ित हुए मनुष्यकी चिकित्सा या औषध करते हैं, उनका वह कथन सत्य ही दिखायी देता है ॥ ३४ ॥

एवं विद्वञ्जोषमास्स्व शृणु चात्रोत्तरं वचः ।
वासांस्युत्सृज्य नृत्यन्ति स्त्रियो या मद्यमोहिताः ३५

मैथुनेऽसंयताश्चापि यथाकामवराश्च ताः ।
तासां पुत्रः कथं धर्मं मद्रको वक्तुमर्हति ॥ ३६ ॥

विद्वान् राजा शल्य ! ऐसा समझकर तुम चुपचाप बैठे रहो और इसके बाद जो बात मैं कह रहा हूँ, उसे भी सुन लो । जो स्त्रियाँ मद्यसे मोहित हो कपड़े उतारकर नाचती हैं, मैथुनमें संयम एवं मर्यादाको छोड़कर प्रवृत्त होती हैं और अपनी इच्छाके अनुसार जिस किसी पुरुषका वरण कर लेती हैं, उनका पुत्र मद्रनिवासी नराधम दूसरोंको धर्मका उपदेश कैसे कर सकता है ? ॥ ३५-३६ ॥

यास्तिष्ठन्त्यः प्रमेहन्ति यथैवोष्ट्रदशेरकाः ।
तासां विभ्रष्टधर्माणां निर्लज्जानां ततस्ततः ॥ ३७ ॥
त्वं पुत्रस्तादृशीनां हि धर्मं वक्तुमिहेच्छसि ।

जो ऊँटों और गदहोंके समान खड़ी-खड़ी मूतती हैं तथा जो धर्मसे भ्रष्ट होकर लज्जाको तिलाञ्जलि दे चुकी हैं, वैसी मद्रनिवासिनी स्त्रियोंके पुत्र होकर तुम मुझे यहाँ धर्मका उपदेश करना चाहते हो ॥ ३७½ ॥

सुवीरकं याच्यमाना मद्रिका कर्षति स्फिचौ॥ ३८ ॥
अदातुकामा वचनमिदं वदति दारुणम् ।
मा मां सुवीरकं कश्चिद् याचतां दयितं मम ॥ ३९॥
पुत्रं दद्यां पतिं दद्यां न तु दद्यां सुवीरकम् ।

यदि कोई पुरुष मद्रदेशकी किसी स्त्रीसे कांजी माँगता है तो वह उसकी कमर पकड़कर खींच ले जाती है और कांजी न देनेकी इच्छा रखकर यह कठोर वचन बोलती है— 'कोई मुझसे कांजी न माँगे, क्योंकि वह मुझे अत्यन्त प्रिय है । मैं अपने पुत्रको दे दूँगी, पतिको भी दे दूँगी; परंतु कांजी नहीं दे सकती' ॥ ३८-३९½ ॥

गौर्यो बृहत्यो निर्ह्रीका मद्रिकाः कम्बलावृताः ॥ ४० ॥
घस्मरा नष्टशौचाश्च प्राय इत्यनुशुश्रुम ।

मद्रदेशकी स्त्रियाँ प्रायः गोरी, लंबे कदवाली, निर्लज्ज, कम्बलसे शरीरको ढकनेवाली, बहुत खानेवाली और अत्यन्त अपवित्र होती हैं, ऐसा हमने सुन रक्खा है ॥ ४०½ ॥

एवमादि मयान्यैर्वा शक्यं वक्तुं भवेद् बहु ॥ ४१ ॥
आकेशाग्रान्नखाग्राच्च वक्तव्येषु कुकर्मसु ।

मद्रनिवासी सिरकी चोटीसे लेकर पैरोंके नखाग्रभाग-तक निन्दाके ही योग्य हैं । वे सब-के-सब कुकर्ममें लगे रहते हैं । उनके विषयमें हम तथा दूसरे लोग भी ऐसी बहुत-सी बातें कह सकते हैं ॥ ४१½ ॥

मद्रकाः सिन्धुसौवीराः धर्मं विद्युः कथं त्विह ॥४२ ॥
पापदेशोद्भवा म्लेच्छा धर्माणामविचक्षणाः ।

मद्र तथा सिन्धु-सौवीर देशके लोग पापपूर्ण देशमें उत्पन्न हुए म्लेच्छ हैं । उन्हें धर्म-कर्मका पता नहीं है । वे इस जगत्में धर्मकी बातें कैसे समझ सकते हैं ? ॥ ४२½ ॥

एष मुख्यतमो धर्मः क्षत्रियस्येति नः श्रुतम् ॥ ४३ ॥
यदाजौ निहतः शेते सद्भिः समभिपूजितः ।

हमने सुना है कि क्षत्रियके लिये सबसे श्रेष्ठ धर्म यह है कि वह युद्धमें मारा जाकर रणभूमिमें सो जाय और सत्पुरुषोंके आदरका पात्र बने ॥ ४३½ ॥

आयुधानां साम्पराये यन्मुच्येयमहं ततः ॥ ४४ ॥
ममैष प्रथमः कल्पो निधने स्वर्गमिच्छतः ।

मैं अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा किये जानेवाले युद्धमें अपने प्राणोंका परित्याग करूँ, यही मेरे लिये प्रथम श्रेणीका कार्य है; क्योंकि मैं मृत्युके पश्चात् स्वर्ग पानेकी अभिलाषा रखता हूँ ॥ ४४½ ॥

सोऽयं प्रियः सखा चास्मि धार्तराष्ट्रस्य धीमतः॥४५॥
तदर्थे हि मम प्राणा यच्च मे विद्यते वसु ।
व्यक्तं त्वमप्युपहितः पाण्डवैः पापदेशज ॥ ४६ ॥
यथा चामित्रवत् सर्वं त्वमस्मासु प्रवर्तसे ।

मैं बुद्धिमान् दुर्योधनका प्रिय मित्र हूँ । अतः मेरे पास जो कुछ धन-वैभव है, वह और मेरे प्राण भी उसीके लिये हैं । परंतु पापदेशमें उत्पन्न हुए शल्य ! यह स्पष्ट जान पड़ता है कि पाण्डवोंने तुम्हें हमारा भेद लेनेके लिये ही यहाँ रख छोड़ा है; क्योंकि तुम हमारे साथ शत्रुके समान ही सारा बर्ताव कर रहे हो ॥ ४५-४६½ ॥

कामं न खलु शक्योऽहं त्वद्विधानां शतैरपि ॥ ४७ ॥
संग्रामाद् विमुखः कर्तुं धर्मज्ञ इव नास्तिकैः ।

जैसे सैकड़ों नास्तिक मिलकर भी धर्मज्ञ पुरुषको धर्मसे विचलित नहीं कर सकते, उसी प्रकार तुम्हारे-जैसे सैकड़ों मनुष्योंके द्वारा भी मुझे संग्रामसे विमुख नहीं किया जा सकता, यह निश्चय है ॥ ४७½ ॥

सारङ्ग इव घर्मार्तः कामं विलप शुष्य च ॥ ४८ ॥
नाहं भीषयितुं शक्यः क्षत्रवृत्ते व्यवस्थितः ।

तुम धूपसे संतप्त हुए हरिणके समान चाहे विलाप करो चाहे सूख जाओ । क्षत्रियधर्ममें स्थित हुए मुझ कर्णको तुम डरा नहीं सकते ॥ ४८½ ॥

तनुत्यजां नृसिंहानामाहवेष्वनिवर्तिनाम् ॥ ४९ ॥
या गतिर्गुरुणा प्रोक्ता पुरा रामेण तां स्मरे ।

पूर्वकालमें गुरुवर परशुरामजीने युद्धमें पीठ न दिखाने-वाले एवं शत्रुका सामना करते हुए प्राण विसर्जन कर देनेवाले पुरुषसिंहोंके लिये जो उत्तम गति बतायी है, उसे मैं सदा याद रखता हूँ ॥ ४९½ ॥

तेषां त्राणार्थमुद्यन्तं वधार्थं द्विषतामपि ॥ ५० ॥
विद्धि मामास्थितं वृत्तं पौरूरवसमुत्तमम्।

शल्य! तुम यह जान लो कि मैं धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी रक्षाके लिये वैरियोंका वध करनेके लिये उद्यत हो राजा पुरूरवाके उत्तम[1] चरित्रका आश्रय लेकर युद्धभूमिमें डटा हुआ हूँ ॥ ५०½ ॥

न तद् भूतं प्रपश्यामि त्रिषु लोकेषु मद्रप ॥ ५१ ॥
यो मामस्मादभिप्रायाद् वारयेदिति मे मतिः।

मद्रराज! मैं तीनों लोकोंमें किसी ऐसे प्राणीको नहीं देखता, जो मुझे मेरे इस संकल्पसे विचलित कर दे, यह मेरा दृढ़ निश्चय है ॥ ५१½ ॥

एवं विद्वञ्जोषमास्स्व त्रासात् किं बहु भाषसे ॥ ५२ ॥
मा त्वां हत्वा प्रदास्यामि क्रव्याद्भ्यो मद्रकाधम।

समझदार शल्य! ऐसा जानकर चुपचाप बैठे रहो। डरके मारे बहुत बड़बड़ाते क्यों हो? मद्रदेशके नराधम! यदि तुम चुप न हुए तो तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े करके मांसभक्षी प्राणियोंको बाँट दूँगा ॥ ५२½ ॥

मित्रप्रतीक्षया शल्य धृतराष्ट्रस्य चोभयोः ॥ ५३ ॥
अपवादतितिक्षाभिस्त्रिभिरेतैर्हि जीवसि।

शल्य! एक तो मैं मित्र दुर्योधन और राजा धृतराष्ट्र दोनोंके कार्यकी ओर दृष्टि रखता हूँ, दूसरे अपनी निन्दासे डरता हूँ और तीसरे मैंने क्षमा करनेका वचन दिया है—इन्हीं तीन कारणोंसे तुम अबतक जीवित हो ॥ ५३½ ॥

पुनश्चेदीदृशं वाक्यं मद्रराज वदिष्यसि ॥ ५४ ॥
शिरस्ते पातयिष्यामि गदया वज्रकल्पया।

मद्रराज! यदि फिर ऐसी बात बोलोगे तो मैं अपनी वज्र-सरीखी गदासे तुम्हारा मस्तक चूर-चूर करके गिरा दूँगा ॥ ५४½ ॥

श्रोतारस्त्विदमद्येह द्रष्टारो वा कुदेशज ॥ ५५ ॥
कर्णं वा जघ्नतुः कृष्णौ कर्णो वा निजघान तौ।

नीच देशमें उत्पन्न शल्य! आज यहाँ सुननेवाले सुनेंगे और देखनेवाले देख लेंगे कि 'श्रीकृष्ण और अर्जुनने कर्णको मारा या कर्णने ही उन दोनोंको मार गिराया' ॥ ५५½ ॥

एवमुक्त्वा तु राधेयः पुनरेव विशाम्पते।
अब्रवीन्मद्रराजानं याहि याहीत्यसम्भ्रमम् ॥ ५६ ॥

प्रजानाथ! ऐसा कहकर राधापुत्र कर्णने बिना किसी घबराहटके पुनः मद्रराज शल्यसे कहा—'चलो, चलो' ॥ ५६ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णमद्राधिपसंवादे चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्ण और शल्यका संवादविषयक चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

राजा शल्यका कर्णको एक हंस और कौएका उपाख्यान सुनाकर उसे श्रीकृष्ण और अर्जुनकी प्रशंसा करते हुए उनकी शरणमें जानेकी सलाह देना

संजय उवाच

मारिषाधिरथेः श्रुत्वा वाचो युद्धाभिनन्दिनः।
शल्योऽब्रवीत् पुनः कर्णं निदर्शनमिदं वचः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—माननीय नरेश! युद्धका अभिनन्दन करनेवाले अधिरथपुत्र कर्णकी पूर्वोक्त बात सुनकर फिर शल्यने उससे यह दृष्टान्तयुक्त बात कही— ॥ १ ॥

जातोऽहं यज्वनां वंशे संग्रामेष्वनिवर्तिनाम्।
राज्ञां मूर्धाभिषिक्तानां स्वयं धर्मपरायणः ॥ २ ॥

'सूतपुत्र! मैं युद्धमें पीठ न दिखानेवाले यज्ञपरायण, मूर्धाभिषिक्त नरेशोंके कुलमें उत्पन्न हुआ हूँ और स्वयं भी धर्ममें तत्पर रहता हूँ ॥ २ ॥

यथैव मत्तो मद्येन त्वं तथा लक्ष्यसे वृष।
तथाद्य त्वां प्रमाद्यन्तं चिकित्सेयं सुहृत्तया ॥ ३ ॥

किंतु वृषभस्वरूप कर्ण! जैसे कोई मदिरासे मतवाला हो गया हो, उसी प्रकार तुम भी उन्मत्त दिखायी दे रहे हो; अतः मैं हितैषी सुहृद् होनेके नाते तुम-जैसे प्रमत्तकी आज चिकित्सा करूँगा ॥ ३ ॥

इमां काकोपमां कर्ण प्रोच्यमानां निबोध मे।
श्रुत्वा यथेष्टं कुर्यास्त्वं निहीन कुलपांसन ॥ ४ ॥

ओ नीच कुलाङ्गार कर्ण! मेरेद्वारा बताये जानेवाले कौएके इस दृष्टान्तको सुनो और सुनकर जैसी इच्छा हो वैसा करो ॥ ४ ॥

नाहमात्मनि किंचिद् वै किल्बिषं कर्ण संस्मरे।
येन मां त्वं महाबाहो हन्तुमिच्छस्यनागसम् ॥ ५ ॥

महाबाहु कर्ण! मुझे अपना कोई ऐसा अपराध नहीं याद आता है, जिसके कारण तुम मुझ निरपराधको भी मार डालनेकी इच्छा रखते हो ॥ ५ ॥

अवश्यं तु मया वाच्यं बुद्ध्यता त्वद्धिताहितम्।
विशेषतो रथस्थेन राज्ञश्चैव हितैषिणा ॥ ६ ॥

मैं राजा दुर्योधनका हितैषी हूँ और विशेषतः रथपर सारथि बनकर बैठा हूँ; इसलिये तुम्हारे हिताहितको जानते हुए मेरा आवश्यक कर्तव्य है कि तुम्हें वह सब बता दूँ ॥ ६ ॥

१. युद्धसे पीछे न हटना ही राजा पुरूरवाका उत्तम चरित्र है।

समं च विषमं चैव रथिनश्च बलाबलम् ।
श्रमः खेदश्च सततं हयानां रथिना सह ॥ ७ ॥
आयुधस्य परिज्ञानं रुतं च मृगपक्षिणाम् ।
भारश्चाप्यतिभारश्च शल्यानां च प्रतिक्रिया ॥ ८ ॥
अस्त्रयोगश्च युद्धं च निमित्तानि तथैव च ।
सर्वमेतन्मया ज्ञेयं रथस्यास्य कुटुम्बिना ॥ ९ ॥
अतस्त्वां कथये कर्ण निदर्शनमिदं पुनः ।

सम और विषम अवस्था, रथीकी प्रबलता और निर्बलता, रथीके साथ ही घोड़ोंके सतत परिश्रम और कष्ट, अस्त्र हैं या नहीं, इसकी जानकारी, जय और पराजयकी सूचना देनेवाली पशु-पक्षियोंकी बोली, भार, अतिभार, शल्य-चिकित्सा, अस्त्रप्रयोग, युद्ध और शुभाशुभ निमित्त—इन सारी बातोंका ज्ञान रखना मेरे लिये आवश्यक है; क्योंकि मैं इस रथका एक कुटुम्बी हूँ। कर्ण ! इसीलिये मैं पुनः तुमसे इस दृष्टान्तका वर्णन करता हूँ ॥ ७–९½ ॥

वैश्यः किल समुद्रान्ते प्रभूतधनधान्यवान् ॥ १० ॥
यज्वा दानपतिः क्षान्तः स्वकर्मस्थोऽभवच्छुचिः ।
बहुपुत्रः प्रियापत्यः सर्वभूतानुकम्पकः ॥ ११ ॥
राज्ञो धर्मप्रधानस्य राष्ट्रे वसति निर्भयः ।

कहते हैं समुद्रके तटपर किसी धर्मप्रधान राजाके राज्यमें एक प्रचुर धन-धान्यसे सम्पन्न वैश्य रहता था । वह यज्ञ-यागादि करनेवाला, दानपति, क्षमाशील, अपने वर्णानुकूल कर्ममें तत्पर, पवित्र, बहुत-से पुत्रवाला, संतानप्रेमी और समस्त प्राणियोंपर दया करनेवाला था ॥ १०–११½ ॥

पुत्राणां तस्य बालानां कुमाराणां यशस्विनाम् ॥१२॥
काको बहूनामभवदुच्छिष्टकृतभोजनः ।

उसके जो बहुत-से अल्पवयस्क यशस्वी पुत्र थे, उन सबकी जूठन खानेवाला एक कौआ भी वहाँ रहा करता था ॥ १२½ ॥

तस्मै सदा प्रयच्छन्ति वैश्यपुत्राः कुमारकाः ॥ १३ ॥
मांसौदनं दधि क्षीरं पायसं मधुसर्पिषी ।

वैश्यके बालक उस कौएको सदा मांस, भात, दही, दूध, खीर, मधु और घी आदि दिया करते थे ॥ १३½ ॥

स चोच्छिष्टभृतः काको वैश्यपुत्रैः कुमारकैः ॥ १४ ॥
सदृशान् पक्षिणो दृप्तः श्रेयसश्चाधिचिक्षिपे ।

वैश्यके बालकोंद्वारा जूठन खिला-खिलाकर पाला हुआ वह कौआ बड़े घमंडमें भरकर अपने समान तथा अपनेसे श्रेष्ठ पक्षियोंका भी अपमान करने लगा ॥ १४½ ॥

अथ हंसाः समुद्रान्ते कदाचिदतिपातिनः ॥ १५ ॥
गरुडस्य गतौ तुल्याश्चक्राङ्गा हृष्टचेतसः ।

एक दिनकी बात है, उस समुद्रके तटपर गरुड़के समान लंबी उड़ानें भरनेवाले मानसरोवरनिवासी राजहंस आये । उनके अङ्गोंमें चक्रके चिह्न थे और वे मन-ही-मन बहुत प्रसन्न थे ॥ १५½ ॥

कुमारकास्तदा हंसान् दृष्ट्वा काकमथाब्रुवन् ॥ १६ ॥
भवानेव विशिष्टो हि पतत्रिभ्यो विहङ्गम ।
(एतेऽतिपातिनः पश्य विहङ्गान् वियदाश्रितान् ।
एभिस्त्वमपि शक्तो हि कामान्न पतितं त्वया ॥)

उस समय उन हंसोंको देखकर कुमारोंने कौएसे इस प्रकार कहा—'विहङ्गम ! तुम्हीं समस्त पक्षियोंमें श्रेष्ठ हो । देखो, ये आकाशचारी हंस आकाशमें जाकर बड़ी दूरकी उड़ानें भरते हैं । तुम भी इन्हींके समान दूरतक उड़नेमें समर्थ हो । तुमने अपनी इच्छासे ही अबतक वैसी उड़ान नहीं भरी' १६½

प्रतार्यमाणस्तैः सर्वैरल्पबुद्धिभिरण्डजः ॥ १७ ॥
तद्वचः सत्यमित्येव मौर्ख्याद् दर्पाच्च मन्यते ।

उन सारे अल्पबुद्धि बालकोंद्वारा ठगा गया वह पक्षी मूर्खता और अभिमानसे उनकी बातको सत्य मानने लगा ॥ १७½ ॥

तान् सोऽभिपत्य जिज्ञासुः क एषां श्रेष्ठभागिति ॥१८॥
उच्छिष्टदर्पितः काको बहूनां दूरपातिनाम् ।
तेषां यं प्रवरं मेने हंसानां दूरपातिनाम् ॥ १९ ॥
तमाह्वयत दुर्बुद्धिः पताव इति पक्षिणम् ।

फिर वह जूठनपर घमंड करनेवाला कौआ इन हंसोंमें सबसे श्रेष्ठ कौन है ? यह जाननेकी इच्छासे उड़कर उनके पास गया और दूरतक उड़नेवाले उन बहुसंख्यक हंसोंमेंसे जिस पक्षीको उसने श्रेष्ठ समझा, उसीको उस दुर्बुद्धिने ललकारते हुए कहा—'चलो, हम दोनों उड़ें' ॥ १८ १९½ ॥

तच्छ्रुत्वा प्राहसन् हंसा ये तत्रासन् समागताः ॥२०॥
भाषतो बहु काकस्य बलिनः पततां वराः ।
इदमूचुः स्म चक्राङ्गा वचः काकं विहङ्गमाः ॥ २१ ॥

बहुत काँव-काँव करनेवाले उस कौएकी वह बात सुनकर वहाँ आये हुए वे पक्षियोंमें श्रेष्ठ आकाशचारी बलवान् चक्राङ्ग हँस पड़े और कौएसे इस प्रकार बोले ॥ २०-२१ ॥

हंसा ऊचुः

वयं हंसाश्चरामेमां पृथिवीं मानसौकसः ।
पक्षिणां च वयं नित्यं दूरपातेन पूजिताः ॥ २२ ॥

हंसोंने कहा—काक ! हम मानसरोवरनिवासी हंस हैं, जो सदा इस पृथ्वीपर विचरते रहते हैं । दूरतक उड़नेके कारण हमलोग सदा सभी पक्षियोंमें सम्मानित होते आये हैं॥

कथं हंसं नु बलिनं चक्राङ्गं दूरपातिनम् ।
काको भूत्वा निपतने समाह्वयसि दुर्मते ॥ २३ ॥
कथं त्वं पतिता काक सहास्माभिर्ब्रवीहि तत् ।

ओ खोटी बुद्धिवाले काग ! तू कौआ होकर लंबी उड़ान भरनेवाले और अपने अङ्गोंमें चक्रका चिह्न धारण करनेवाले

एक बलवान् हंसको अपने साथ उड़नेके लिये कैसे ललकार रहा है ? काग ! बता तो सही, तू हमारे साथ किस प्रकार उड़ेगा ?॥ २३½ ॥

अथ हंसवचो मूढः कुत्सयित्वा पुनः पुनः।
प्रजगादोत्तरं काकः कत्थनो जातिलाघवात्॥ २४॥

हंसकी बात सुनकर बढ़-बढ़कर बातें बनानेवाले मूर्ख कौएने अपनी जातिगत क्षुद्रताके कारण बारंबार उसकी निन्दा करके उसे इस प्रकार उत्तर दिया ॥ २४ ॥

काक उवाच

शतमेकं च पातानां पतितास्मि न संशयः।
शतयोजनमेकैकं विचित्रं विविधं तथा॥ २५॥

कौआ बोला—हंस ! मैं एक सौ एक प्रकारकी उड़ानें उड़ सकता हूँ, इसमें संशय नहीं है। उनमेंसे प्रत्येक उड़ान सौ-सौ योजनकी होती है और वे सभी विभिन्न प्रकारकी एवं विचित्र हैं ॥ २५ ॥

उड्डीनमवडीनं च प्रडीनं डीनमेव च।
निडीनमथ संडीनं तिर्यग्डीनगतानि च॥ २६॥
विडीनं परिडीनं च पराडीनं सुडीनकम्।
अभिडीनं महाडीनं निर्डीनमतिडीनकम्॥ २७॥
अवडीनं प्रडीनं च संडीनं डीनडीनकम्।
संडीनोड्डीनडीनं च पुनर्डीनविडीनकम्॥ २८॥
सम्पातं समुदीषं च ततोऽन्यद् व्यतिरिक्तकम्।
गतागतप्रतिगतं बह्वीश्च निकुलीनकाः॥ २९॥

उनमेंसे कुछ उड़ानोंके नाम इस प्रकार हैं—उड्डीन (ऊँचा उड़ना), अवडीन (नीचा उड़ना),प्रडीन (चारों ओर उड़ना), डीन (साधारण उड़ना); निडीन (धीरे-धीरे उड़ना); संडीन (ललित गतिसे उड़ना), तिर्यग्डीन (तिरछा उड़ना), विडीन (दूसरोंकी चालकी नकल करते हुए उड़ना); परिडीन (सब ओर उड़ना), पराडीन (पीछेकी ओर उड़ना), सुडीन (स्वर्गकी ओर उड़ना); अभिडीन (सामनेकी ओर उड़ना); महाडीन (बहुत वेगसे उड़ना); निर्डीन (परोंको हिलाये बिना ही उड़ना); अतिडीन (प्रचण्डतासे उड़ना); संडीन डीन-डीन (सुन्दर गतिसे आरम्भ करके फिर चक्कर काटकर नीचेकी ओर उड़ना); संडीनोड्डीनडीन (सुन्दर गतिसे आरम्भ करके फिर चक्कर काटकर ऊँचा उड़ना); डीनविडीन (एक प्रकारकी उड़ानमें दूसरी उड़ान दिखाना); सम्पात (क्षणभर सुन्दरतासे उड़कर फिर पंख फड़फड़ाना); समुदीष (कभी ऊपरकी ओर और कभी नीचेकी ओर उड़ना)और व्यतिरिक्तक (किसी लक्ष्यका संकल्प करके उड़ना);—ये छब्बीस उड़ानें हैं। इनमेंसे महाडीनके सिवा अन्य सब उड़ानोंके 'गत' (किसी लक्ष्य की ओर जाना), 'आगत' (लक्ष्यतक पहुँचकर लौट आना) और 'प्रतिगत (पलटा खाना)—ये तीन भेद हैं (इस प्रकार कुल छिहत्तर भेद हुए)। इसके सिवा बहुत-से (अर्थात् पचीस) निपात भी हैं।* (ये सब मिलकर एक सौ एक उड़ानें होती हैं) ॥ २६-२९ ॥

कर्तास्मि मिषतां वोऽद्य ततो द्रक्ष्यथ मे बलम्।
तेषामन्यतमेनाहं पतिष्यामि विहायसम्॥ ३०॥
प्रदिशध्वं यथान्यायं केन हंसाः पताम्यहम्।

आज मैं तुमलोगोंके देखते-देखते जब इतनी उड़ानें भरूँगा, उस समय मेरा बल तुम देखोगे। मैं इनमेंसे किसी भी उड़ानसे आकाशमें उड़ सकूँगा। हंसो ! तुमलोग यथोचितरूपसे विचार करके बताओ कि 'मैं किस उड़ानसे उड़ूँ?' ।३०½।

ते वै ध्रुवं विनिश्चित्य पतध्वं न मया सह॥ ३१॥
पातैरेभिः खलु खगाः पतितुं खे निराश्रये।

अतः पक्षियो ! तुम सब लोग दृढ़ निश्चय करके आश्रय-रहित आकाशमें इन विभिन्न उड़ानोंद्वारा उड़नेके लिये मेरे साथ चलो न ॥ ३१½ ॥

एवमुक्ते तु काकेन प्रहस्यैको विहंगमः॥ ३२॥
उवाच काकं राधेय वचनं तन्निबोध मे।

राधापुत्र ! कौएके ऐसा कहनेपर एक आकाशचारी हंसने हँसकर उससे जो कुछ कहा, वह मुझसे सुनो ॥३२½॥

हंस उवाच

शतमेकं च पातानां त्वं काक पतिता ध्रुवम्॥ ३३॥
एकमेव तु यं पातं विदुः सर्वे विहंगमाः।
तमहं पतिता काक नान्यं जानामि कञ्चन॥ ३४॥
पत त्वमपि ताम्राक्ष येन पातेन मन्यसे।

हंस बोला—काग ! तू अवश्य एक सौ एक उड़ानोंद्वारा उड़ सकता है। परंतु मैं तो जिस एक उड़ानको सारे पक्षी जानते हैं उसीसे उड़ सकता हूँ, दूसरी किसी उड़ानका मुझे पता नहीं है। लाल नेत्रवाले कौए ! तू भी जिस उड़ानसे उचित समझे, उसीसे उड़ ॥ ३३–३४½ ॥

अथ काकाः प्रजहसुर्ये तत्रासन् समागताः॥ ३५॥
कथमेकेन पातेन हंसः पातशतं जयेत्।
एकेनैव शतस्यैष पातेनाभिभविष्यति॥ ३६॥
हंसस्य पतितं काको बलवानाशुविक्रमः।

तब वहाँ आये हुए सारे कौए जोर-जोरसे हँसने लगे और आपसमें बोले—'भला यह हंस एक ही उड़ानसे सौ प्रकारकी उड़ानोंको कैसे जीत सकता है ? यह कौआ बलवान् और शीघ्रतापूर्वक उड़नेवाला है; अतः सौमेंसे एक ही

* महाडीनके सिवा, जो अन्य पचीस उड़ानें कही गयी है, उन सबका पृथक्-पृथक् एक-एक संपात (पंख फड़फड़ानेकी क्रिया) भी है. ये पचीस संपात जोड़नेसे एक सौ एक संख्याकी पूर्ति होती है।

उड़ानद्वारा हंसकी उड़ानको पराजित कर देगा' ॥ ३५-३६½ ॥

प्रपेततुः स्पर्धया च ततस्तौ हंसवायसौ ॥ ३७ ॥
एकपाती च चक्राङ्गः काकः पातशतेन च ।
पेतिवानथ चक्राङ्गः पेतिवानथ वायसः ॥ ३८ ॥

तदनन्तर हंस और कौआ दोनों होड़ लगाकर उड़े। चक्राङ्ग हंस एक ही गतिसे उड़नेवाला था और कौआ सौ उड़ानोंसे। इधरसे चक्राङ्ग उड़ा और उधरसे कौआ ३७-३८

विसिस्मापयिषुः पातैराचक्षाणोऽऽत्मनः क्रियाः ।
अथ काकस्य चित्राणि पतितानि मुहुर्मुहुः ॥ ३९ ॥
दृष्ट्वा प्रमुदिताः काका विनेदुरधिकैः स्वरैः ।

कौआ विभिन्न उड़ानोंद्वारा दर्शकोंको आश्चर्यचकित करनेकी इच्छासे अपने कार्योंका बखान करता जा रहा था। उस समय कौएकी विचित्र उड़ानोंको बारंबार देखकर दूसरे कौए बड़े प्रसन्न हुए और जोर-जोरसे काँव-काँव करने लगे ॥ ३९½ ॥

हंसांश्चावहसन्ति स्म प्रावदन्नप्रियाणि च ॥ ४० ॥
उत्पत्योत्पत्य च मुहुर्मुहूर्तमिति चेति च ।
वृक्षाग्रेभ्यः स्थलेभ्यश्च निपतन्त्युत्पतन्ति च ॥ ४१ ॥
कुर्वाणा विविधान् रावानाशंसन्तो जयं तथा ।

वे दो-दो घड़ीपर बारंबार उड़-उड़कर कहते—'देखो, कौएकी यह उड़ान, वह उड़ान'। ऐसा कहकर वे हंसोंका उपहास करते और उन्हें कटु वचन सुनाते थे। साथ ही कौएकी विजयके लिये शुभाशंसा करते और भाँति-भाँतिकी बोली बोलते हुए वे कभी वृक्षोंकी शाखाओंसे भूतलपर और कभी भूतलसे वृक्षोंकी शाखाओंपर नीचे-ऊपर उड़ते रहते थे ॥ ४०–४१½ ॥

हंसस्तु मृदुनैकेन विक्रान्तुमुपचक्रमे ॥ ४२ ॥
प्रत्यहीयत काकाच्च मुहूर्तमिव मारिष ।

आर्य! हंसने एक ही मृदुल गतिसे उड़ना आरम्भ किया था; अतः दो घड़ीतक वह कौएसे हारता-सा प्रतीत हुआ ॥ ४२½ ॥

अवमन्य च हंसांस्तानिदं वचनमब्रुवन् ॥ ४३ ॥
योऽसावुत्पतितो हंसः सोऽसावेवं प्रहीयते ।

तब कौओंने हंसोंका अपमान करके इस प्रकार कहा—'वह जो हंस उड़ा था, वह तो इस प्रकार कौएसे पिछड़ता जा रहा है!' ॥ ४३½ ॥

अथ हंसः स तच्छ्रुत्वा प्रापतत् पश्चिमां दिशम्॥४४॥
उपर्युपरि वेगेन सागरं मकरालयम् ।

उड़नेवाले हंसने कौओंकी वह बात सुनकर बड़े वेगसे मकरालय समुद्रके ऊपर-ऊपर पश्चिम दिशाकी ओर उड़ना आरम्भ किया ॥ ४४½ ॥

ततो भीः प्राविशत् काकं तदा तत्र विचेतसम्॥४५॥
द्वीपद्रुमानपश्यन्तं निपातार्थे श्रमान्वितम् ।

इधर कौआ थक गया था। उसे कहीं आश्रय लेनेके लिये द्वीप या वृक्ष नहीं दिखायी दे रहे थे; अतः उसके मनमें भय समा गया और वह घबराकर अचेत-सा हो उठा ४५½

निपतेयं क नु श्रान्त इति तस्मिञ्जलार्णवे ॥ ४६ ॥
अविषह्यः समुद्रो हि बहुसत्त्वगणालयः ।
महासत्त्वशतोद्भासी नभसोऽपि विशिष्यते ॥ ४७ ॥

कौआ सोचने लगा, 'मैं थक जानेपर इस जलराशिमें कहाँ उतरूँगा? बहुत-से जल-जन्तुओंका निवासस्थान समुद्र मेरे लिये असह्य है। असंख्य महाप्राणियोंसे उद्भासित होनेवाला यह महासागर तो आकाशसे भी बढ़कर है' ४६-४७

गाम्भीर्याद्धि समुद्रस्य न विशेषं हि सूतज ।
दिगम्बराम्भसः कर्ण समुद्रस्था विदुर्जनाः ॥ ४८ ॥
विदूरपातात् तोयस्य किं पुनः कर्ण वायसः ।

सूतपुत्र कर्ण! समुद्रमें विचरनेवाले मनुष्य भी उसकी गम्भीरताके कारण दिशाओंद्वारा आवृत उसकी जलराशिकी थाह नहीं जान पाते, फिर वह कौआ कुछ दूरतक उड़ने मात्रसे उस समुद्रके जलसमूहका पार कैसे पा सकता था?४८½

अथ हंसोऽप्यतिक्रम्य मुहूर्तमिति चेति च ॥ ४९ ॥
अवेक्षमाणस्तं काकं नाशकद् व्यपसर्पितुम् ।

उधर हंस दो घड़ीतक उड़कर इधर-उधर देखता हुआ कौएकी प्रतीक्षामें आगे न जा सका ॥४९½ ॥

अतिक्रम्य च चक्राङ्गः काकं तं समुदैक्षत ॥ ५० ॥
यावद् गत्वा पतत्येष काको मामिति चिन्तयन् ।

चक्राङ्ग कौएको लाँघकर आगे बढ़ चुका था तो भी यह सोचकर उसकी प्रतीक्षा करने लगा कि यह कौआ भी उड़कर मेरे पास आ जाय ॥ ५०½ ॥

ततः काको भृशं श्रान्तो हंसमभ्यागमत्तदा ॥ ५१ ॥
तं तथा हीयमानं तु हंसो दृष्ट्वाब्रवीदिदम् ।
उज्जिहीर्षुर्निमज्जन्तं स्मरन् सत्पुरुषव्रतम् ॥ ५२ ॥

तदनन्तर उस समय अत्यन्त थका-मादा कौआ हंसके समीप आया। हंसने देखा, कौएकी दशा बड़ी शोचनीय हो गयी है। अब यह पानीमें डूबनेहीवाला है। तब उसने सत्पुरुषोंके व्रतका स्मरण करके उसके उद्धारकी इच्छा मनमें लेकर इस प्रकार कहा ॥ ५१–५२ ॥

हंस उवाच

बहूनि पतितानि त्वमाचक्षाणो मुहुर्मुहुः ।
पातस्य व्याहरंश्चेदं न नो गुह्यं प्रभाषसे ॥ ५३ ॥

हंस बोला—काग! तू तो बारंबार अपनी बहुत-सी उड़ानोंका बखान कर रहा था; परंतु उन उड़ानोंका वर्णन करते समय उनमेंसे इस गोपनीय रहस्ययुक्त उड़ानकी बात तो तूने नहीं बतायी थी ॥ ५३ ॥



शल्य कर्णको हंस और कौएका उपाख्यान सुनाकर अपमानित कर रहे हैं

किं नाम पतितं काक यत्त्वं पतसि साम्प्रतम्।
जलं स्पृशसि पक्षाभ्यां तुण्डेन च पुनः पुनः॥ ५४॥

कौए ! बता तो सही, तू इस समय जिस उड़ानसे उड़ रहा है, उसका क्या नाम है ? इस उड़ानमें तो तू अपने दोनों पंखों और चोंचके द्वारा जलका बार-बार स्पर्श करने लगा है ॥ ५४ ॥

प्रब्रूहि कतमे तत्र पाते वर्तसि वायस।
एह्येहि काक शीघ्रं त्वमेष त्वां प्रतिपालये॥ ५५॥

वायस ! बता, बता । इस समय तू कौन-सी उड़ानमें स्थित है । कौए ! आ, शीघ्र आ । मैं अभी तेरी रक्षा करता हूँ ॥ ५५ ॥

शल्य उवाच

स पक्षाभ्यां स्पृशन्नार्तस्तुण्डेन च जलं तदा।
दृष्टो हंसेन दुष्टात्मन्निदं हंसं ततोऽब्रवीत्॥ ५६॥
अपश्यन्नम्भसः पारं निपतंश्च श्रमान्वितः।
पातवेगप्रमथितो हंसं काकोऽब्रवीदिदम्॥ ५७॥

शल्य कहते हैं— दुष्टात्मा कर्ण ! वह कौआ अत्यन्त पीड़ित हो जब अपनी दोनों पाँखों और चोंचसे जलका स्पर्श करने लगा, उस अवस्थामें हंसने उसे देखा । वह उड़ानके वेगसे थककर शिथिलांग हो गया था और जलका कहीं आर-पार न देखकर नीचे गिरता जा रहा था । उस समय उसने हंससे इस प्रकार कहा—॥ ५६-५७ ॥

वयं काकाः कुतो नाम चरामः काकवाशिकाः।
हंस प्राणैः प्रपद्ये त्वामुदकान्तं नयस्व माम्॥ ५८॥

'भाई हंस ! हम तो कौए हैं । व्यर्थ काँव-काँव किया करते हैं । हम उड़ना क्या जानें ? मैं अपने इन प्राणोंके साथ तुम्हारी शरणमें आया हूँ । तुम मुझे जलके किनारे तक पहुँचा दो' ॥ ५८ ॥

स पक्षाभ्यां स्पृशन्नार्तस्तुण्डेन च महार्णवे।
काको दृढपरिश्रान्तः सहसा निपपात ह॥ ५९॥

ऐसा कहकर अत्यन्त थका-माँदा कौआ दोनों पाँखों और चोंचसे जलका स्पर्श करता हुआ सहसा उस महासागर-में गिर पड़ा । उस समय उसे बड़ी पीड़ा हो रही थी ॥५९॥

सागराम्भसि तं दृष्ट्वा पतितं दीनचेतसम्।
म्रियमाणमिदं काकं हंसो वाक्यमुवाच ह॥ ६०॥

समुद्रके जलमें गिरकर अत्यन्त दीनचित्त हो मृत्युके निकट पहुँचे हुए उस कौएसे हंसने इस प्रकार कहा—॥६०॥

शतमेकं च पातानां पताम्यहमनुस्मर।
श्लाघमानस्त्वमात्मानं काक भाषितवानसि॥ ६१॥

'काग ! तूने अपनी प्रशंसा करते हुए कहा था कि मैं एक सौ एक उड़ानोंद्वारा उड़ सकता हूँ । अब उन्हें याद कर ॥ ६१ ॥

स त्वमेकशतं पातं पतन्नभ्यधिको मया।
कथमेवं परिश्रान्तः पतितोऽसि महार्णवे॥ ६२॥

'सौ उड़ानोंसे उड़नेवाला तू तो मुझसे बहुत बढ़ा-चढ़ा है । फिर इस प्रकार थककर महासागरमें कैसे गिर पड़ा ?' ॥

प्रत्युवाच ततः काकः सीदमान इदं वचः।
उपरिष्टं तदा हंसमभिवीक्ष्य प्रसादयन्॥ ६३॥

तब जलमें अत्यन्त कष्ट पाते हुए कौएने जलके ऊपर ठहरे हुए हंसकी ओर देखकर उसे प्रसन्न करनेके लिये कहा ॥ ६३ ॥

काक उवाच

उच्छिष्टदर्पितो हंस मन्येऽऽत्मानं सुपर्णवत्।
अवमन्य बहूंश्चाहं काकानन्यांश्च पक्षिणः॥ ६४॥

कौआ बोला—भाई हंस ! मैं जूठन खा-खाकर घमंडमें भर गया था और बहुत-से कौओं तथा दूसरे पक्षियों-का तिरस्कार करके अपने आपको गरुड़के समान शक्तिशाली समझने लगा था ॥ ६४ ॥

प्राणैर्हंस प्रपद्ये त्वां द्वीपान्तं प्रापयस्व माम्।
यद्यहं स्वस्तिमान् हंस स्वं देशं प्राप्नुयां प्रभो॥ ६५॥
न कंचिदवमन्येऽहमापदो मां समुद्धर।

हंस ! अब मैं अपने प्राणोंके साथ तुम्हारी शरणमें आया हूँ । तुम मुझे द्वीपके पास पहुँचा दो । शक्तिशाली हंस ! यदि मैं कुशलपूर्वक अपने देशमें पहुँच जाऊँ तो अब कभी किसीका अपमान नहीं करूँगा । तुम इस विपत्तिसे मेरा उद्धार करो ॥ ६५½ ॥

तमेवं वादिनं दीनं विलपन्तमचेतनम्॥ ६६॥
काक काकेति वाशन्तं निमज्जन्तं महार्णवे।
कृपयाऽऽदाय हंसस्तं जलक्लिन्नं सुदुर्दशम्॥ ६७॥
पद्भ्यामुत्क्षिप्य वेगेन पृष्ठमारोपयच्छनैः।

कर्ण ! इस प्रकार कहकर कौआ अचेत-सा होकर दीन-भावसे विलाप करने और काँव-काँव करते हुए महासागरके जलमें डूबने लगा । उस समय उसकी ओर देखना कठिन हो रहा था । वह पानीसे भीग गया था । हंसने कृपापूर्वक उसे पंजोंसे उठाकर बड़े वेगसे ऊपरको उछाला और धीरेसे अपनी पीठपर चढ़ा लिया ॥ ६६–६७½ ॥

आरोप्य पृष्ठं हंसस्तं काकं तूर्णं विचेतनम्॥ ६८॥
आजगाम पुनर्द्वीपं स्पर्धया पेततुर्यतः।

अचेत हुए कौएको पीठपर बिठाकर हंस तुरंत ही फिर उसी द्वीपमें आ पहुँचा, जहाँसे होड़ लगाकर दोनों उड़े थे ॥ ६८½ ॥

संस्थाप्य तं चापि पुनः समाश्वास्य च खेचरम्॥ ६९॥
गतो यथेप्सितं देशं हंसो मन इवाशुगः।

उस कौएको उसके स्थानपर रखकर उसे आश्वासन

दे मनके समान शीघ्रगामी हंस पुनः अपने अभीष्ट देशको चला गया ॥ ६९½ ॥

एवमुच्छिष्टपुष्टः स काको हंसपराजितः ॥ ७० ॥
बलवीर्यमदं कर्ण त्यक्त्वा क्षान्तिमुपागतः ।

कर्ण ! इस प्रकार जूठन खाकर पुष्ट हुआ कौआ उस हंससे पराजित हो अपने महान् बल-पराक्रमका घमंड छोड़कर शान्त हो गया ॥७०½ ॥

उच्छिष्टभोजनः काको यथा वैश्यकुले पुरा ॥ ७१ ॥
एवं त्वमुच्छिष्टभृतो धार्तराष्ट्रैर्न संशयः ।
सदृशाञ्श्रेयसश्चापि सर्वान् कर्णावमन्यसे॥ ७२ ॥

पूर्वकालमें वह कौआ जैसे वैश्यकुलमें सबकी जूठन खाकर पला था, उसी प्रकार धृतराष्ट्रके पुत्रोंने तुम्हें जूठन खिला-खिलाकर पाला है, इसमें संशय नहीं है । कर्ण ! इसीसे तुम अपने समान तथा अपनेसे श्रेष्ठ पुरुषोंका भी अपमान करते हो ॥ ७१–७२ ॥

द्रोणद्रौणिकृपैर्गुप्तो भीष्मेणान्यैश्च कौरवैः ।
विराटनगरे पार्थमेकं किं नावधीस्तदा ॥ ७३ ॥

विराटनगरमें तो द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, भीष्म तथा अन्य कौरव वीर भी तुम्हारी रक्षा कर रहे थे । फिर उस समय तुमने अकेले सामने आये हुए अर्जुनका वध क्यों नहीं कर डाला ? ॥ ७३ ॥

यत्र व्यस्ताः समस्ताश्च निर्जिताः स्थ किरीटिना ।
शृगाला इव सिंहेन क्व ते वीर्यमभूत् तदा ॥ ७४ ॥

वहाँ तो किरीटधारी अर्जुनने अलग-अलग और सब लोगोंसे एक साथ लड़कर भी तुमलोगोंको उसी प्रकार परास्त कर दिया था, जैसे एक ही सिंहने बहुत-से सियारोंको मार भगाया हो । कर्ण ! उस समय तुम्हारा पराक्रम कहाँ था ? ॥ ७४ ॥

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा समरे सव्यसाचिना ।
पश्यतां कुरुवीराणां प्रथमं त्वं पलायितः ॥ ७५ ॥

सव्यसाची अर्जुनके द्वारा समराङ्गणमें अपने भाईको मारा गया देखकर कौरव वीरोंके समक्ष सबसे पहले तुम्हीं भागे थे ॥ ७५ ॥

तथा द्वैतवने कर्ण गन्धर्वैः समभिद्रुतः ।
कुरून् समग्रानुत्सृज्य प्रथमं त्वं पलायितः ॥ ७६ ॥

कर्ण ! इसी प्रकार जब द्वैतवनमें गन्धर्वोंने आक्रमण किया था, उस समय समस्त कौरवोंको छोड़कर पहले तुमने ही पीठ दिखायी थी ॥ ७६ ॥

हत्वा जित्वा च गन्धर्वांश्चित्रसेनमुखान् रणे ।
कर्ण दुर्योधनं पार्थः सभार्यं सममोक्षयत् ॥ ७७ ॥

कर्ण ! वहाँ कुन्तीकुमार अर्जुनने ही रणभूमिमें चित्रसेन आदि गन्धर्वोंको मार-पीटकर उनपर विजय पायी थी और स्त्रियोंसहित दुर्योधनको उनकी कैदसे छुड़ाया था ॥ ७७ ॥

पुनः प्रभावः पार्थस्य पौराणः केशवस्य च ।
कथितः कर्ण रामेण सभायां राजसंसदि ॥ ७८ ॥

कर्ण ! पुनः तुम्हारे गुरु परशुरामजीने भी उस दिन राजसभामें अर्जुन और श्रीकृष्णके पुरातन प्रभावका वर्णन किया था ॥ ७८ ॥

सततं च त्वमश्रौषीर्वचनं द्रोणभीष्मयोः ।
अवध्यौ वदतः कृष्णौ संनिधौ च महीक्षिताम् ॥ ७९ ॥

तुमने समस्त भूपालोंके समीप द्रोणाचार्य और भीष्मकी कही हुई बातें सदा सुनी हैं । वे दोनों श्रीकृष्ण और अर्जुनको अवध्य बताया करते थे ॥ ७९ ॥

कियत् तत् तत् प्रवक्ष्यामि येन येन धनंजयः ।
त्वत्तोऽतिरिक्तः सर्वेभ्यो भूतेभ्यो ब्राह्मणो यथा॥ ८० ॥

मैं कहाँतक गिन-गिनकर बताऊँ कि किन-किन गुणोंके कारण अर्जुन तुमसे बढ़े-चढ़े हैं । जैसे ब्राह्मण समस्त प्राणियोंसे श्रेष्ठ है, उसी प्रकार अर्जुन तुमसे श्रेष्ठ हैं ॥ ८० ॥

इदानीमेव द्रष्टासि प्रधाने स्यन्दने स्थितौ ।
पुत्रं च वसुदेवस्य कुन्तीपुत्रं च पाण्डवम् ॥ ८१ ॥

तुम इसी समय प्रधान रथपर बैठे हुए वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण तथा कुन्तीकुमार पाण्डुपुत्र अर्जुनको देखोगे ॥८१॥

यथाश्रयत चक्राङ्गं वायसो बुद्धिमास्थितः ।
तथाश्रयस्व वार्ष्णेयं पाण्डवं च धनंजयम् ॥ ८२ ॥

जैसे कौआ उत्तम बुद्धिका आश्रय लेकर चक्राङ्गकी शरणमें गया था, उसी प्रकार तुम भी वृष्णिनन्दन श्रीकृष्ण और पाण्डुपुत्र अर्जुनकी शरण लो ॥ ८२ ॥

यदा त्वं युधि विक्रान्तौ वासुदेवधनंजयौ ।
द्रष्टास्येकरथे कर्ण तदा नैवं वदिष्यसि ॥ ८३ ॥

कर्ण ! जब तुम युद्धस्थलमें पराक्रमी श्रीकृष्ण और अर्जुनको एक रथपर बैठे देखोगे, तब ऐसी बातें नहीं बोल सकोगे ॥ ८३ ॥

यदा शरशतैः पार्थो दर्पं तव वधिष्यति ।
तदा त्वमन्तरं द्रष्टा आत्मनश्चार्जुनस्य च ॥ ८४ ॥

जब अर्जुन अपने सैकड़ों बाणोंद्वारा तुम्हारा घमंड चूर-चूर कर देंगे, तब तुम स्वयं ही देख लोगे कि तुममें और अर्जुनमें कितना अन्तर है ? ॥ ८४ ॥

देवासुरमनुष्येषु प्रख्यातौ यौ नरोत्तमौ ।
तौ मावमंस्था मौर्ख्यात् त्वं खद्योत इव रोचनौ ॥८५॥

जैसे जुगनू प्रकाशमान सूर्य और चन्द्रमाका तिरस्कार करे, उसी प्रकार तुम देवताओं, असुरों और मनुष्योंमें भी विख्यात उन दोनों नरश्रेष्ठ वीर श्रीकृष्ण और अर्जुनका मूर्खतावश अपमान न करो ॥ ८५ ॥

सूर्याचन्द्रमसौ यद्वत् तद्वदर्जुनकेशवौ ।
प्राकाश्येनाभिविख्यातौ त्वं तु खद्योतवन्नृषु॥ ८६ ॥

जैसे सूर्य और चन्द्रमा हैं, वैसे श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं। ये दोनों अपने तेजसे सर्वत्र विख्यात हैं; परंतु तुम तो मनुष्योंमें जुगनूके ही समान हो ॥ ८६ ॥

एवं विद्वान् मावमंस्थाः सूतपुत्राच्युतार्जुनौ ।
नृसिंहौ तौ महात्मानौ जोषमास्स्व विकत्थने ॥ ८७ ॥

सूतपुत्र ! तुम महात्मा पुरुषसिंह श्रीकृष्ण और अर्जुनको ऐसा जानकर उनका अपमान न करो। बढ़-बढ़कर बातें बनाना बंद करके चुपचाप बैठे रहो ॥ ८७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे हंसकाकीयोपाख्याने एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्ण-शल्य-संवादके अन्तर्गत हंसकाकीयोपाख्यानविषयक इकतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४१ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ८८ श्लोक हैं)

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

कर्णका श्रीकृष्ण और अर्जुनके प्रभावको स्वीकार करते हुए अभिमानपूर्वक शल्यको फटकारना और उनसे अपनेको परशुरामजीद्वारा और ब्राह्मणद्वारा प्राप्त हुए शापोंकी कथा सुनाना

संजय उवाच

मद्राधिपस्याधिरथिर्महात्मा
वचो निशम्याप्रियमप्रतीतः ।
उवाच शल्यं विदितं ममैतद्
यथाविधावर्जुनवासुदेवौ ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! मद्रराज शल्यकी ये अप्रिय बातें सुनकर महामनस्वी अधिरथपुत्र कर्णने असंतुष्ट होकर उनसे कहा—'शल्य ! अर्जुन और श्रीकृष्ण कैसे हैं, यह बात मुझे अच्छी तरह ज्ञात है ॥ १ ॥

शौरे रथं वाहयतोऽर्जुनस्य
बलं महास्त्राणि च पाण्डवस्य ।
अहं विजानामि यथावदद्य
परोक्षभूतं तव तत् तु शल्य ॥ २ ॥

'मद्रराज ! अर्जुनका रथ हाँकनेवाले श्रीकृष्णके बल और पाण्डुपुत्र अर्जुनके महान् दिव्यास्त्रोंको इस समय मैं भलीभाँति जानता हूँ। तुम स्वयं उनसे अपरिचित हो ॥ २ ॥

तौ चाप्यहं शस्त्रभृतां वरिष्ठौ
व्यपेतभीर्योधयिष्यामि कृष्णौ ।
संतापयत्यभ्यधिकं तु रामा-
च्छापोऽद्य मां ब्राह्मणसत्तमाच्च ॥ ३ ॥

'वे दोनों कृष्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ हैं तो भी मैं उनके साथ निर्भय होकर युद्ध करूँगा। परंतु परशुरामजीसे तथा एक ब्राह्मणशिरोमणिसे मुझे जो शाप प्राप्त हुआ है, वह आज मुझे अधिक संताप दे रहा है ॥ ३ ॥

अवसं वै ब्राह्मणच्छद्मनाहं
रामे पुरा दिव्यमस्त्रं चिकीर्षुः ।
तत्रापि मे देवराजेन विघ्नो
हितार्थिना फाल्गुनस्यैव शल्य ॥ ४ ॥
कृतो विभेदेन ममोरुमेत्य
प्रविश्य कीटस्य तनुं विरूपाम् ।
ममोरुमेत्य प्रबिभेद कीटः
सुप्ते गुरौ तत्र शिरो निधाय ॥ ५ ॥

'पूर्वकालकी बात है, मैं दिव्य अस्त्रोंको प्राप्त करनेकी इच्छासे ब्राह्मणका वेष बनाकर परशुरामजीके पास रहता था। शल्य ! वहाँ भी अर्जुनका ही हित चाहनेवाले देवराज इन्द्रने मेरे कार्यमें विघ्न उपस्थित कर दिया था। एक दिन गुरुदेव मेरी जाँघपर अपना मस्तक रखकर सो गये थे। उस समय इन्द्रने एक कीड़ेके भयङ्कर शरीरमें प्रवेश करके मेरी जाँघके पास आकर उसे काट लिया, काटकर उसमें भारी घाव कर दिया और इस कार्यके द्वारा इन्होंने मेरे मनोरथमें विघ्न डाल दिया ॥ ४–५ ॥

ऊरुप्रभेदाच्च महान् बभूव
शरीरतो मे घनशोणितौघः ।
गुरोर्भयाच्चापि न चेलिवानहं
ततो विबुद्धो ददृशे स विप्रः ॥ ६ ॥

'जाँघमें घाव हो जानेके कारण मेरे शरीरसे गाढ़े रक्तका महान् प्रवाह बह चला; परंतु गुरुके जागनेके भयसे मैं तनिक भी विचलित नहीं हुआ। तत्पश्चात् जब गुरुजी जागे, तब उन्होंने यह सब कुछ देखा ॥ ६ ॥

स धैर्ययुक्तं प्रसमीक्ष्य मां वै
न त्वं विप्रः कोऽसि सत्यं वदेति ।
तस्मै तदाऽऽत्मानमहं यथाव-
दाख्यातवान् सूत इत्येव शल्य ॥ ७ ॥

'शल्य ! उन्होंने मुझे ऐसे धैर्यसे युक्त देखकर पूछा—'अरे ! तू ब्राह्मण तो है नहीं; फिर कौन है ? सच-सच बता दे।' तब मैंने उनसे अपना यथार्थ परिचय देते हुए इस प्रकार कहा—'भगवन् ! मैं सूत हूँ' ॥ ७ ॥

स मां निशम्याथ महातपस्वी
संशप्तवान् रोषपरीतचेताः ।
सूतोपधावाप्तमिदं तवास्त्रं
न कर्मकाले प्रतिभास्यति त्वाम् ॥ ८ ॥

'तदनन्तर मेरा वृत्तान्त सुनकर महातपस्वी परशुरामजीके मनमें मेरे प्रति अत्यन्त रोष भर गया और उन्होंने मुझे शाप देते हुए कहा—'सूत ! तूने छल करके यह ब्रह्मास्त्र प्राप्त किया

है। इसलिये काम पड़नेपर तेरा यह अस्त्र तुझे याद न आयेगा ॥ ८ ॥

अन्यत्र तस्मात् तव मृत्युकाला-
द्ब्राह्मणे ब्रह्म न हि ध्रुवं स्यात्।
तदद्य पर्याप्तमतीव चास्त्र-
मस्मिन् संग्रामे तुमुलेऽतीव भीमे ॥ ९ ॥

'तेरी मृत्युके समयको छोड़कर अन्य अवसरोंपर ही यह अस्त्र तेरे काम आ सकता है; क्योंकि ब्राह्मणेतर मनुष्यमें यह ब्रह्मास्त्र सदा स्थिर नहीं रह सकता।' वह अस्त्र आज इस अत्यन्त भयङ्कर तुमुल संग्राममें पर्याप्त काम दे सकता है ॥ ९ ॥

योऽयं शल्य भरतेषूपपन्नः
प्रकर्षणः सर्वहरोऽतिभीमः।
सोऽभिमन्ये क्षत्रियाणां प्रवीरान्
प्रतापिता बलवान् वै विमर्दः ॥ १० ॥

'शल्य! वीरोंको आकृष्ट करनेवाला, सर्वसंहारक और अत्यन्त भयङ्कर जो यह प्रबल संग्राम भरतवंशी क्षत्रियोंपर आ पड़ा है; वह क्षत्रिय-जातिके प्रधान-प्रधान वीरोंको निश्चय ही संतप्त करेगा, ऐसा मेरा विश्वास है ॥ १० ॥

शल्योग्रधन्वानमहं वरिष्ठं
तरस्विनं भीमसह्यवीर्यम्।
सत्यप्रतिज्ञं युधि पाण्डवेयं
धनंजयं मृत्युमुखं नयिष्ये ॥ ११ ॥

'शल्य! आज मैं युद्धमें भयङ्कर धनुष धारण करनेवाले सर्वश्रेष्ठ, वेगवान्, भयङ्कर, असह्यपराक्रमी और सत्यप्रतिज्ञ पाण्डुपुत्र अर्जुनको मौतके मुखमें भेज दूँगा ॥ ११ ॥

अस्त्रं ततोऽन्यत् प्रतिपन्नमद्य
येन क्षेप्स्ये समरे शत्रुपूगान्।
प्रतापिनं बलवन्तं कृतास्त्रं
तमुग्रधन्वानममितौजसं च ॥ १२ ॥
क्रूरं शूरं रौद्रममित्रसाहं
धनंजयं संयुगेऽहं हनिष्ये।

'उस ब्रह्मास्त्रसे भिन्न एक दूसरा अस्त्र भी मुझे प्राप्त है, जिससे आज समराङ्गणमें मैं शत्रुसमूहोंको मार भगाऊँगा तथा उन भयङ्कर धनुर्धर, अमिततेजस्वी, प्रतापी, बलवान्, अस्त्रवेत्ता, क्रूर, शूर, रौद्ररूपधारी तथा शत्रुओंका वेग सहन करनेमें समर्थ अर्जुनको भी युद्धमें मार डालूँगा ॥ १२½ ॥

अपां पतिर्वेगवानप्रमेयो
निमज्जयिष्यन् बहुलाः प्रजाश्च ॥ १३ ॥
महावेगं संकुरुते समुद्रो
वेला चैनं धारयत्यप्रमेयम्।

'जलका स्वामी, वेगवान् और अप्रमेय समुद्र बहुत लोगोंको निमग्न कर देनेके लिये अपना महान् वेग प्रकट करता है; परंतु तटकी भूमि उस अनन्त महासागरको भी रोक लेती है ॥ १३½ ॥

प्रमुञ्चन्तं बाणसंघानमेयान्
मर्मच्छिदो वीरहणः सुपत्रान् ॥ १४ ॥
कुन्तीपुत्रं यत्र योत्स्यामि युद्धे
ज्यां कर्षतामुत्तममद्य लोके।

'उसी प्रकार मैं भी मर्मस्थलको विदीर्ण कर देनेवाले, सुन्दर पंखोंसे युक्त, असंख्य, वीरविनाशक बाणसमूहोंका प्रयोग करनेवाले उन कुन्तीकुमार अर्जुनके साथ रणभूमिमें युद्ध करूँगा, जो इस जगत्के भीतर प्रत्यञ्चा खींचनेवाले वीरोंमें सबसे उत्तम हैं ॥ १४½ ॥

एवं बलेनातिबलं महास्त्रं
समुद्रकल्पं सुदुरापमुग्रम् ॥ १५ ॥
शरौघिणं पार्थिवान् मज्जयन्तं
वेलेव पार्थमिषुभिः संसहिष्ये।

'कुन्तीकुमार अर्जुन अत्यन्त बलशाली, महान् अस्त्रधारी, समुद्रके समान दुर्लङ्घ्य, भयङ्कर, बाणसमूहोंकी धारा बहानेवाले और बहुसंख्यक भूपालोंको डुबो देनेवाले हैं; तथापि मैं समुद्रको रोकनेवाली तट-भूमिके समान अपने बाणोंद्वारा अर्जुनको बलपूर्वक रोकूँगा और उनका वेग सहन करूँगा ॥ १५½ ॥

अद्याहवे यस्य न तुल्यमन्यं
मन्ये मनुष्यं धनुराददानम् ॥ १६ ॥
सुरासुरान् युधि वै यो जयेत
तेनाद्य मे पश्य युद्धं सुघोरम्।

'आज मैं युद्धमें जिनके समान इस समय किसी दूसरे मनुष्यको नहीं मानता, जो हाथमें धनुष लेकर रणभूमिमें देवताओं और असुरोंको भी परास्त कर सकते हैं, उन्हीं वीर अर्जुनके साथ आज मेरा अत्यन्त घोर युद्ध होगा; उसे तुम देखना ॥ १६½ ॥

अतीव मानी पाण्डवो युद्धकामो
ह्यमानुषैरेष्यति मे महास्त्रैः ॥ १७ ॥
तस्यास्त्रमस्त्रैः प्रतिहत्य संख्ये
बाणोत्तमैः पातयिष्यामि पार्थम्।

'अत्यन्त मानी पाण्डुपुत्र अर्जुन युद्धकी इच्छासे महान् दिव्यास्त्रोंद्वारा मेरे सामने आयेंगे। उस समय मैं अपने अस्त्रोंद्वारा उनके अस्त्रका निवारण करके युद्धस्थलमें उत्तम बाणोंसे कुन्तीकुमार अर्जुनको मार गिराऊँगा ॥ १७½ ॥

सहस्ररश्मिप्रतिमं ज्वलन्तं
दिशश्च सर्वाः प्रतपन्तमुग्रम् ॥ १८ ॥
तमोनुदं मेघ इवातिमात्रं
धनंजयं छादयिष्यामि बाणैः।

'सहस्रों किरणोंवाले सूर्यके सदृश प्रकाशित हो सम्पूर्ण दिशाओंको ताप देते हुए भयङ्कर वीर अर्जुनको मैं अपने बाणोंद्वारा उसी प्रकार अत्यन्त आच्छादित कर दूँगा, जैसे मेघ अन्धकारनाशक सूर्यदेवको ढक देता है ॥ १८½ ॥

वैश्वानरं धूमशिखं ज्वलन्तं
तेजस्विनं लोकमिदं दहन्तम् ॥ १९ ॥
पर्जन्यभूतः शरवर्षैर्यथाग्निं
तथा पार्थं शमयिष्यामि युद्धे ।

'जैसे प्रलयकालका मेघ इस जगत्को दग्ध करनेवाले तेजस्वी एवं प्रज्वलित धूममयी शिखावाले संवर्तक अग्निको बुझा देता है, उसी प्रकार मैं मेघ बनकर बाणोंकी वर्षाद्वारा युद्धमें अग्निरूपी अर्जुनको शान्त कर दूँगा ॥ १९½ ॥

आशीविषं दुर्धरमप्रमेयं
सुतीक्ष्णदंष्ट्रं ज्वलनप्रभावम् ॥ २० ॥
क्रोधप्रदीप्तं त्वहितं महान्तं
कुन्तीपुत्रं शमयिष्यामि भल्लैः ।

'तीखे दाढ़ोंवाले विषधर सर्पके समान दुर्धर्ष, अप्रमेय, अग्निके समान प्रभावशाली तथा क्रोधसे प्रज्वलित अपने महान् शत्रु कुन्तीपुत्र अर्जुनको मैं भल्लोंद्वारा शान्त कर दूँगा ॥ २०½ ॥

प्रमाथिनं बलवन्तं प्रहारिणं
प्रभञ्जनं मातरिश्वानमुग्रम् ॥ २१ ॥
युद्धे सहिष्ये हिमवानिवाचलो
धनंजयं क्रुद्धममृष्यमाणम् ।

'वृक्षोंको तोड़-उखाड़ देनेवाली प्रचण्ड वायुके समान प्रमथनशील, बलवान्, प्रहारकुशल, तोड़-फोड़ करनेवाले तथा अमर्षशील क्रुद्ध अर्जुनका वेग आज मैं युद्धस्थलमें हिमालय पर्वतके समान अचल रहकर सहन करूँगा ॥ २१½ ॥

विशारदं रथमार्गेषु शक्तं
धुर्यं नित्यं समरेषु प्रवीरम् ॥ २२ ॥
लोके वरं सर्वधनुर्धराणां
धनंजयं संयुगे संसहिष्ये ।

'रथके मार्गोंपर विचरनेमें कुशल, शक्तिशाली, समराङ्गणमें सदा महान् भार वहन करनेवाले, संसारके समस्त धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ, प्रमुख वीर अर्जुनका आज युद्धस्थलमें मैं डटकर सामना करूँगा ॥ २२½ ॥

अद्याहवे यस्य न तुल्यमन्यं
मन्ये मनुष्यं धनुराददानम् ॥ २३ ॥
सर्वामिमां यः पृथिवीं विजिग्ये
तेन प्रयोद्धास्मि समेत्य संख्ये ।

'युद्धमें जिनके समान धनुर्धर मैं दूसरे किसी मनुष्यको नहीं मानता, जिन्होंने इस सारी पृथ्वीपर विजय पायी है, आज समराङ्गणमें उन्हींसे भिड़कर मैं बलपूर्वक युद्ध करूँगा ॥ २३½ ॥

यः सर्वभूतानि सदैवतानि
प्रस्थेऽजयत् खाण्डवे सव्यसाची ॥ २४ ॥
को जीवितं रक्षमाणो हि तेन
युयुत्सेद् वै मानुषो मामृतेऽन्यः ।

'जिन सव्यसाची अर्जुनने खाण्डववनमें देवताओंसहित समस्त प्राणियोंको जीत लिया था, उनके साथ मेरे सिवा दूसरा कौन मनुष्य, जो अपने जीवनकी रक्षा करना चाहता हो, युद्धकी इच्छा करेगा ॥ २४½ ॥

मानी कृतास्त्रः कृतहस्तयोगो
दिव्यास्त्रविच्छ्वेतहयः प्रमाथी ॥ २५ ॥
तस्याहमद्यातिरथस्य काया-
च्छिरो हरिष्यामि शितैः पृषत्कैः ।

'श्वेतवाहन अर्जुन मानी, अस्त्रवेत्ता, सिद्धहस्त, दिव्यास्त्रोंके ज्ञाता और शत्रुओंको मथ डालनेवाले हैं। आज मैं अपने पैने बाणोंद्वारा उन्हीं अतिरथी वीर अर्जुनका मस्तक धड़से काट लूँगा ॥ २५½ ॥

योत्स्याम्येनं शल्य धनंजयं वै
मृत्युं पुरस्कृत्य रणे जयं वा ॥ २६ ॥
अन्यो हि न ह्येकरथेन मर्त्यो
युध्येत यः पाण्डवमिन्द्रकल्पम् ।

'शल्य ! मैं रणभूमिमें मृत्यु अथवा विजयको सामने रखकर इन धनंजयके साथ युद्ध करूँगा। मेरे सिवा दूसरा कोई मनुष्य ऐसा नहीं है, जो इन्द्रके समान पराक्रमी पाण्डुपुत्र अर्जुनके साथ एकमात्र रथके द्वारा युद्ध कर सके ॥ २६½ ॥

तस्याहवे पौरुषं पाण्डवस्य
ब्रूयां हृष्टः समितौ क्षत्रियाणाम् ॥ २७ ॥
किं त्वं मूर्खः प्रसभं मूढचेता
ममावोचः पौरुषं फाल्गुनस्य ।

'मैं इस युद्धस्थलमें क्षत्रियोंके समाजमें बड़े हर्ष और उल्लासके साथ पाण्डुपुत्र अर्जुनके उत्साहका वर्णन कर सकता हूँ। तुम्हारे मनमें तो मूढ़ता भरी हुई है। तुम मूर्ख हो। फिर तुमने मुझसे अर्जुनके पुरुषार्थका हठपूर्वक वर्णन क्यों किया है ? ॥ २७½ ॥

अप्रियो यः पुरुषो निष्ठुरो हि
क्षुद्रः क्षेप्ता क्षमिणश्चाक्षमावान् ॥ २८ ॥
हन्यामहं तादृशानां शतानि
क्षमाम्यहं क्षमया कालयोगात् ।

'जो अप्रिय, निष्ठुर, क्षुद्र हृदय और क्षमाशून्य मनुष्य क्षमाशील पुरुषोंकी निन्दा करता है; ऐसे सौ-सौ मनुष्योंका मैं वध कर सकता हूँ; परंतु कालयोगसे क्षमाभावद्वारा मैं यह सब कुछ सह लेता हूँ ॥ २८½ ॥

अवोचस्त्वं पाण्डवार्थेऽप्रियाणि
प्रधर्षयन् मां मूढवत् पापकर्मन् ॥ २९ ॥

मय्यार्जवे जिह्ममतिर्हतस्त्वं
मित्रद्रोही साप्तपदं हि मैत्रम् ।

'ओ पापी ! मूर्खके समान तुमने पाण्डुपुत्र अर्जुनके लिये मेरा तिरस्कार करते हुए मेरे प्रति अप्रिय वचन सुनाये हैं। मेरे प्रति सरलताका व्यवहार करना तुम्हारे लिये उचित था; परंतु तुम्हारी बुद्धिमें कुटिलता भरी हुई है, अतः तुम मित्रद्रोही होनेके कारण अपने पापसे ही मारे गये। किसीके साथ सात पग चल देने मात्रसे ही मैत्री सम्पन्न हो जाती है। (किंतु तुम्हारे मनमें उस मैत्रीका उदय नहीं हुआ)॥२९½॥

कालस्त्वयं प्रत्युपयाति दारुणो
दुर्योधनो युद्धमुपागमद् यत् ॥ ३० ॥
अस्यार्थसिद्धिं त्वभिकाङ्क्षमाण-
स्तन्मन्यसे यत्र नैकान्त्यमस्ति ।

'यह बड़ा भयङ्कर समय सामने आ रहा है। राजा दुर्योधन रणभूमिमें आ पहुँचा है। मैं उसके मनोरथकी सिद्धि चाहता हूँ; किंतु तुम्हारा मन उधर लगा हुआ है, जिससे उसके कार्यकी सिद्धि होनेकी कोई सम्भावना नहीं है॥३०½॥

मित्रं मिन्देर्नन्दतेः प्रीयतेर्वा
संत्रायतेर्मिनुतेर्मोदतेर्वा ॥ ३१ ॥
ब्रवीमि ते सर्वमिदं ममास्ति
तच्चापि सर्वं मम वेत्ति राजा ।

'मिद, नन्द, प्री, त्रा, मि अथवा मुद्* धातुओंसे निपातनद्वारा मित्र शब्दकी सिद्धि होती है। मैं तुमसे सत्य कहता हूँ—इन सभी धातुओंका पूरा-पूरा अर्थ मुझमें मौजूद है। राजा दुर्योधन इन सब बातोंको अच्छी तरह जानते हैं॥ ३१½ ॥

शत्रुः शदेः शासतेर्वा श्यतेर्वा
शृणातेर्वा श्वसतेः सीदतेर्वा ॥ ३२ ॥
उपसर्गाद् बहुधा सूदतेश्च
प्रायेण सर्वं त्वयि तच्च मह्यम् ।

'शद्, शास्, शो, शृ, श्वस् अथवा षद् तथा नाना प्रकारके उपसर्गोंसे युक्त सूद† धातुसे भी शत्रु शब्दकी सिद्धि होती है। मेरे प्रति इन सभी धातुओंका सारा तात्पर्य तुममें संघटित होता है॥ ३२½ ॥

दुर्योधनार्थं तव च प्रियार्थं
यशोऽर्थमात्मार्थमपीश्वरार्थम् ॥ ३३ ॥
तस्मादहं पाण्डववासुदेवौ
योत्स्ये यत्नात् कर्म तत् पश्य मेऽद्य ।

'अतः मैं दुर्योधनका हित, तुम्हारा प्रिय, अपने लिये यश और प्रसन्नताकी प्राप्ति तथा परमेश्वरकी प्रीतिका सम्पादन करनेके लिये पाण्डुपुत्र अर्जुन और श्रीकृष्णके साथ प्रयत्नपूर्वक युद्ध करूँगा। आज मेरे इस कर्मको तुम देखो॥३३½॥

अस्त्राणि पश्याद्य ममोत्तमानि
ब्राह्माणि दिव्यान्यथ मानुषाणि ॥ ३४ ॥
आसादयिष्याम्यहमुग्रवीर्यं
द्विपो द्विपं मत्तमिवातिमत्तः ।

'आज मेरे उत्तम ब्रह्मास्त्र, दिव्यास्त्र और मानुषास्त्रोंको देखो। मैं इनके द्वारा भयङ्कर पराक्रमी अर्जुनके साथ उसी प्रकार युद्ध करूँगा, जैसे कोई अत्यन्त मतवाला हाथी दूसरे मतवाले हाथीके साथ भिड़ जाता है॥ ३४½ ॥

अस्त्रं ब्राह्मं मनसा युध्यजेयं
क्षेप्स्ये पार्थायाप्रमेयं जयाय ।
तेनापि मे नैव मुच्येत युद्धे
न चेत् पतेद् विषमे मेऽद्य चक्रम् ॥ ३५ ॥

'मैं युद्धमें अजेय तथा असीम शक्तिशाली ब्रह्मास्त्रका मन-ही-मन स्मरण करके अपनी विजयके लिये अर्जुनपर प्रहार करूँगा। यदि मेरे रथका पहिया किसी विषम स्थानमें न फँस जाय तो उस अस्त्रसे अर्जुन रणभूमिमें जीवित नहीं छूट सकते॥

वैवस्वताद् दण्डहस्ताद्वरुणाद् वापि पाशिनः ।
सगदाद् वा धनपतेः सवज्राद् वापि वासवात् ॥ ३६॥
अन्यस्मादपि कस्माच्चिदमित्रादाततायिनः ।
इति शल्य विजानीहि यथा नाहं बिभेम्यतः ॥
तस्मान्न मे भयं पार्थान्नापि चैव जनार्दनात् ॥ ३७ ॥
सह युद्धं हि मे ताभ्यां साम्पराये भविष्यति ।

'शल्य ! मैं दण्डधारी सूर्यपुत्र यमराजसे, पाशधारी वरुणसे, गदा हाथमें लिये हुए कुबेरसे, वज्रधारी इन्द्रसे अथवा दूसरे किसी आततायी शत्रुसे भी कभी नहीं डरता। इस बातको तुम अच्छी तरह समझ लो। इसीलिये मुझे अर्जुन और श्रीकृष्णसे भी कोई भय नहीं है। उन दोनोंके साथ रणक्षेत्रमें मेरा युद्ध अवश्य होगा॥ ३६–३७½ ॥

कदाचिद् विजयस्याहमस्त्रहेतोरटन्नृप ॥ ३८ ॥
अज्ञानाद्धि क्षिपन् बाणान् घोररूपान् भयानकान् ।
होमधेन्वा वत्समस्य प्रमत्त इषुणाहनम् ॥ ३९ ॥

'नरेश्वर ! एक समयकी बात है, मैं शस्त्रोंके अभ्यासके लिये विजय नामक एक ब्राह्मणके आश्रमके आसपास विचरण कर रहा था। उस समय घोर एवं भयंकर बाण चलाते हुए मैंने अनजानमें ही असावधानीके कारण उस ब्राह्मणकी होमधेनुके बछड़ेको एक बाणसे मार डाला॥ ३८-३९ ॥

* मिद आदि धातुओंका अर्थ क्रमशः स्नेह, आनन्द, प्रीणन (तृप्त करना), प्राण (रक्षा), सस्नेह दर्शन और आमोद है।

† शद् आदि धातुओंका अर्थ क्रमशः इस प्रकार है—शातन (काटना या छेदना), शासन करना, तनूकरण (क्षीण कर देना), हिंसा करना, अवसादन (शिथिल करना) और निषूदन (वध)।

चरन्तं विजने शल्य ततोऽनुव्याजहार माम् ।
यस्मात् त्वया प्रमत्तेन होमधेन्वा हतः सुतः ॥ ४० ॥
श्वभ्रे ते पततां चक्रमिति मां ब्राह्मणोऽब्रवीत् ।
युध्यमानस्य संग्रामे प्राप्तस्यैकायनं भयम् ॥ ४१ ॥

'शल्य ! तब उस ब्राह्मणने एकान्तमें घूमते हुए मुझसे आकर कहा—'तुमने प्रमादवश मेरी होमधेनुके बछड़ेको मार डाला है । इसलिये तुम जिस समय रणक्षेत्रमें युद्ध करते-करते अत्यन्त भयको प्राप्त होओ, उसी समय तुम्हारे रथका पहिया गड्ढेमें गिर जाय' ॥ ४०-४१ ॥



तस्माद् बिभेमि बलवद् ब्राह्मणव्याहृतादहम् ।
एते हि सोमराजान ईश्वराः सुखदुःखयोः ॥ ४२ ॥

'ब्राह्मणके उस शापसे मुझे अधिक भय हो रहा है । ये ब्राह्मण, जिनके राजा चन्द्रमा हैं, अपने शाप या वरदानद्वारा दूसरोंको दुःख एवं सुख देनेमें समर्थ हैं ॥ ४२ ॥

अदां तस्मै गोसहस्रं बलीवर्दांश्च षट्शतान् ।
प्रसादं न लभे शल्य ब्राह्मणान्मद्रकेश्वर ॥ ४३ ॥

'मद्रराज शल्य ! मैं ब्राह्मणको एक हजार गौएँ और छः सौ बैल दे रहा था; परंतु उससे उसका कृपाप्रसाद न प्राप्त कर सका ॥ ४३ ॥

ईषादन्तान् सप्तशतान् दासीदासशतानि च ।
ददतो द्विजमुख्यो मे प्रसादं न चकार सः ॥ ४४ ॥

'हलदण्डके समान दाँतोंवाले सात सौ हाथी और सैकड़ों दास-दासियोंके देनेपर भी उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने मुझपर कृपा नहीं की ॥ ४४ ॥

कृष्णानां श्वेतवत्सानां सहस्राणि चतुर्दश ।
आहरं न लभे तस्मात् प्रसादं द्विजसत्तमात् ॥४५॥

'श्वेत बछड़ेवाली चौदह हजार काली गौएँ मैं उसे देनेके लिये ले आया तो भी उस श्रेष्ठ ब्राह्मणसे अनुग्रह न पा सका॥

ऋद्धं गृहं सर्वकामैर्यच्च मे वसु किंचन ।
तत् सर्वमस्मै सत्कृत्य प्रयच्छामि न चेच्छति ॥ ४६ ॥

'मैं सम्पूर्ण भोगोंसे सम्पन्न समृद्धिशाली घर और जो कुछ भी धन मेरे पास था, वह सब उस ब्रह्मणको सत्कारपूर्वक देने लगा; परंतु उसने कुछ भी लेनेकी इच्छा नहीं की ॥

ततोऽब्रवीन्मां याचन्तमपराधं प्रयत्नतः ।
व्याहृतं यन्मया सूत तत् तथा न तदन्यथा ॥ ४७ ॥

'उस समय मैं प्रयत्नपूर्वक अपने अपराधके लिये क्षमा-याचना करने लगा । तब ब्राह्मणने कहा—'सूत ! मैंने जो कह दिया, वह वैसा ही होकर रहेगा । वह पलट नहीं सकता॥

अनृतोक्तं प्रजां हन्यात् ततः पापमवाप्नुयाम् ।
तस्माद् धर्माभिरक्षार्थं नानृतं वक्तुमुत्सहे ॥ ४८ ॥

''असत्य भाषण प्रजाका नाश कर देता है, अतः मैं झूठ बोलनेसे पापका भागी होऊँगा; इसीलिये धर्मकी रक्षाके उद्देश्यसे मैं मिथ्या भाषण नहीं कर सकता ॥ ४८ ॥

मा त्वं ब्रह्मगतिं हिंस्याः प्रायश्चित्तं कृतं त्वया ।
मद्वाक्यं नानृतं लोके कश्चित् कुर्यात् समाप्नुहि॥४९॥

''तुम (लोभ देकर) ब्राह्मणकी उत्तम गतिका विनाश न करो । तुमने पश्चात्ताप और दानद्वारा उस वत्सवधका प्रायश्चित्त कर लिया । जगत्में कोई भी मेरे कहे हुए वचनको मिथ्या नहीं कर सकता; इसलिये मेरा शाप तुझे प्राप्त होगा ही' ॥ ४९ ॥

इत्येतत्ते मया प्रोक्तं क्षिप्तेनापि सुहृत्तया ।
जानामि त्वां विक्षिपन्तं जोषमास्स्वोत्तरं शृणु॥ ५० ॥

'मद्रराज ! यद्यपि तुमने मुझपर आक्षेप किये हैं, तथापि सुहृद् होनेके नाते मैंने तुमसे ये सारी बातें कह दी हैं । मैं जानता हूँ, तुम अब भी निन्दा करनेसे बाज न आओगे, तो भी कहता हूँ कि चुप होकर बैठो और अबसे जो कुछ कहूँ, उसे सुनो' ॥ ५० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्ण और शल्यका संवादविषयक बयालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

कर्णका आत्मप्रशंसापूर्वक शल्यको फटकारना

संजय उवाच

ततः पुनर्महाराज मद्रराजमरिंदमः ।
अभ्यभाषत राधेयः संनिवार्योत्तरं वचः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! तदनन्तर शत्रुओंका दमन करनेवाले राधापुत्र कर्णने शल्यको रोककर पुनः उनसे इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

यत् त्वं निदर्शनार्थं मां शल्य जल्पितवानसि ।
नाहं शक्यस्त्वया वाचा विभीषयितुमाहवे ॥ २ ॥

'शल्य ! तुमने दृष्टान्तके लिये मेरे प्रति जो वाग्जाल फैलाया है, उसके उत्तरमें निवेदन है कि तुम इस युद्धस्थलमें मुझे अपनी बातोंसे नहीं डरा सकते ॥ २ ॥

यदि मां देवताः सर्वा योधयेयुः सवासवाः ।
तथापि मे भयं न स्यात् किमु पार्थात् सकेशवात्॥ ३ ॥

'यदि इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता मुझसे युद्ध करने लगें तो भी मुझे उनसे कोई भय नहीं होगा । फिर श्रीकृष्णसहित अर्जुनसे क्या भय हो सकता है ? ॥ ३ ॥

नाहं भीषयितुं शक्यो वाङ्मात्रेण कथंचन ।
अन्यं जानीहि यः शक्यस्त्वया भीषयितुं रणे ॥ ४ ॥

'मुझे केवल बातोंसे किसी प्रकार भी डराया नहीं जा सकता, जिसे तुम रणभूमिमें डरा सको, ऐसे किसी दूसरे ही पुरुषका पता लगाओ ॥ ४ ॥

नीचस्य बलमेतावत् पारुष्यं यत्त्वमात्थ माम् ।
अशक्तो मद्गुणान् वक्तुं वल्गसे बहु दुर्मते ॥ ५ ॥

'तुमने मेरे प्रति जो कटु वचन कहा है, इतना ही नीच पुरुषका बल है । दुर्बुद्धे ! तुम मेरे गुणोंका वर्णन करनेमें असमर्थ होकर बहुत-सी ऊटपटांग बातें बकते जा रहे हो ॥५॥

न हि कर्णः समुद्भूतो भयार्थमिह मद्रक ।
विक्रमार्थमहं जातो यशोऽर्थं च तथाऽऽत्मनः ॥ ६ ॥

'मद्रनिवासी शल्य ! कर्ण इस संसारमें भयभीत होनेके लिये नहीं पैदा हुआ है । मैं तो पराक्रम प्रकट करने और अपने यशको फैलानेके लिये ही उत्पन्न हुआ हूँ ॥ ६ ॥

सखिभावेन सौहार्दान्मित्रभावेन चैव हि ।
कारणैस्त्रिभिरेतैस्त्वं शल्य जीवसि साम्प्रतम् ॥ ७ ॥

'शल्य ! एक तो तुम सारथि बनकर मेरे सखा हो गये हो, दूसरे सौहार्दवश मैंने तुम्हें क्षमा कर दिया है और तीसरे मित्र दुर्योधनकी अभीष्टसिद्धिका मेरे मनमें विचार है—इन्हीं तीन कारणोंसे तुम अबतक जीवित हो ॥ ७ ॥

राज्ञश्च धार्तराष्ट्रस्य कार्यं सुमहदुद्यतम् ।
मयि तच्चाहितं शल्य तेन जीवसि मे क्षणम् ॥ ८ ॥

'राजा दुर्योधनका महान् कार्य उपस्थित हुआ है और उसका सारा भार मुझपर रक्खा गया है । शल्य ! इसीलिये तुम क्षणभर भी जीवित हो ॥ ८ ॥

कृतश्च समयः पूर्वं क्षन्तव्यं विप्रियं तव ।
ऋते शल्यसहस्रेण विजयेयमहं परान् ।
मित्रद्रोहस्तु पापीयानिति जीवसि साम्प्रतम् ॥ ९ ॥

'इसके सिवा, मैंने पहले ही यह शर्त कर दी है कि तुम्हारे अप्रिय वचनोंको क्षमा करूँगा । वैसे तो हजारों शल्य न रहें तो भी मैं शत्रुओंपर विजय पा सकता हूँ; परंतु मित्रद्रोह महान् पाप है, इसीलिये तुम अबतक जीवित हो' ॥ ९ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्ण और शल्यका संवादविषयक तैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

कर्णके द्वारा मद्र आदि बाहीक देशवासियोंकी निन्दा

शल्य उवाच

ननु प्रलापाः कर्णैते यान् ब्रवीषि परान् प्रति ।
ऋते कर्णसहस्रेण शक्या जेतुं परे युधि ॥ १ ॥

शल्य बोले—कर्ण ! तुम दूसरोंके प्रति जो आक्षेप करते हो, ये तुम्हारे प्रलापमात्र हैं । तुम-जैसे हजारों कर्ण न रहें तो भी युद्धस्थलमें शत्रुओंपर विजय पायी जा सकती है॥

संजय उवाच

तथा ब्रुवन्तं परुषं कर्णो मद्राधिपं तदा ।
परुषं द्विगुणं भूयः प्रोवाचाप्रियदर्शनम् ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! ऐसी कठोर बात बोलते हुए मद्रराज शल्यसे कर्णने पुनः दूनी कठोरता लिये अप्रिय वचन कहना आरम्भ किया ॥ २ ॥

कर्ण उवाच

इदं तु ते त्वमेकाग्रः शृणु मद्रजनाधिप ।
संनिधौ धृतराष्ट्रस्य प्रोच्यमानं मया श्रुतम् ॥ ३ ॥

कर्ण बोला—मद्रनरेश ! तुम एकाग्रचित्त होकर मेरी ये बातें सुनो । राजा धृतराष्ट्रके समीप कही जाती हुई इन सब बातोंको मैंने सुना था ॥ ३ ॥

देशांश्च विविधांश्चित्रान् पूर्ववृत्तांश्च पार्थिवान्।
ब्राह्मणाः कथयन्ति स्म धृतराष्ट्रनिवेशने ॥ ४ ॥

एक दिन महाराज धृतराष्ट्रके घरमें बहुत-से ब्राह्मण आ-आकर नाना प्रकारके विचित्र देशों तथा पूर्ववर्ती भूपालोंके वृत्तान्त सुना रहे थे ॥ ४ ॥

तत्र वृद्धः पुरावृत्ताः कथाः कश्चिद् द्विजोत्तमः।
वाहीकदेशं मद्रांश्च कुत्सयन् वाक्यमब्रवीत् ॥ ५ ॥

वहीं किसी वृद्ध एवं श्रेष्ठ ब्राह्मणने बाहीक और मद्रदेशकी निन्दा करते हुए वहाँकी पूर्वघटित बातें कही थीं—॥५॥

बहिष्कृता हिमवता गङ्गया च बहिष्कृताः।
सरस्वत्या यमुनया कुरुक्षेत्रेण चापि ये ॥ ६ ॥
पञ्चानां सिन्धुषष्ठानां नदीनां येऽन्तराश्रिताः।
तान् धर्मबाह्यानशुचीन् वाहीकानपि वर्जयेत् ॥ ७ ॥

'जो प्रदेश हिमालय, गङ्गा, सरस्वती, यमुना और कुरुक्षेत्रकी सीमासे बाहर हैं तथा जो सतलज, व्यास, रावी, चिनाब और झेलम—इन पाँचों एवं छठी सिंधु नदीके बीचमें स्थित हैं, उन्हें वाहीक कहते हैं। वे धर्मबाह्य और अपवित्र हैं। उन्हें त्याग देना चाहिये ॥ ६-७ ॥

गोवर्धनो नाम वटः सुभद्रं नाम चत्वरम्।
एतद् राजकुलद्वारमाकुमारात् स्मराम्यहम् ॥ ८ ॥

'गोवर्द्धन नामक वटवृक्ष और सुभद्र नामक चबूतरा—ये दोनों वहाँके राजभवनके द्वारपर स्थित हैं, जिन्हें मैं बचपनसे ही भूल नहीं पाता हूँ ॥ ८ ॥

कार्येणात्यर्थगूढेन वाहीकेषूषितं मया।
तत एषां समाचारः संवासाद् विदितो मम ॥ ९ ॥

'मैं अत्यन्त गुप्त कार्यवश कुछ दिनोंतक बाहीक देशमें रहा था। इससे वहाँके निवासियोंके सम्पर्कमें आकर मैंने उनके आचार-व्यवहारकी बहुत-सी बातें जान ली थीं ॥ ९ ॥

शाकलं नाम नगरमापगा नाम निम्नगा।
जर्तिका नाम वाहीकास्तेषां वृत्तं सुनिन्दितम्॥ १० ॥

'वहाँ शाकल नामक एक नगर और आपगा नामकी एक नदी है, जहाँ जर्तिक नामवाले बाहीक निवास करते हैं। उनका चरित्र अत्यन्त निन्दित है ॥ १० ॥

धाना गौड्यासवं पीत्वा गोमांसं लशुनैः सह।
अपूपमांसवाट्यानामाशिनः शीलवर्जिताः ॥ ११ ॥

'वे भुने हुए जौ और लहसुनके साथ गोमांस खाते और गुड़से बनी हुई मदिरा पीकर मतवाले बने रहते हैं। पूआ, मांस और वाटी खानेवाले बाहीक देशके लोग शील और आचारसे शून्य हैं ॥ ११ ॥

गायन्त्यथ च नृत्यन्ति स्त्रियो मत्ता विवाससः।
नगरागारवप्रेषु बहिर्माल्यानुलेपनाः ॥ १२ ॥

'वहाँकी स्त्रियाँ बाहर दिखायी देनेवाली माला और अङ्गराग धारण करके मतवाली तथा नंगी होकर नगर एवं घरोंकी चहारदिवारियोंके पास गाती और नाचती हैं ॥ १२ ॥

मत्तावगीतैर्विविधैः खरोष्ट्रनिनदोपमैः।
अनावृता मैथुने ताः कामचाराश्च सर्वशः ॥ १३ ॥

'वे गदहोंके रेंकने और ऊँटोंके बलबलानेकी-सी आवाजसे मतवालेपनमें ही भाँति-भाँतिके गीत गाती हैं और मैथुन-कालमें भी परदेके भीतर नहीं रहती हैं। वे सब-की-सब सर्वथा स्वेच्छाचारिणी होती हैं ॥ १३ ॥

आहुरन्योन्यसूक्तानि प्रब्रुवाणा मदोत्कटाः।
हे हते हे हतेत्येवं स्वामिभर्तृहतेति च ॥ १४ ॥
आक्रोशन्त्यः प्रनृत्यन्ति व्रात्याः पर्वस्वसंयताः।

'मदसे उन्मत्त होकर परस्पर सरस विनोदयुक्त बातें करती हुई वे एक दूसरीको 'ओ घायल की हुई ! ओ किसीकी मारी हुई ! हे पतिमर्दिते !' इत्यादि कहकर पुकारती और नृत्य करती हैं। पर्वों और त्योहारोंके अवसरपर तो उन संस्कारहीन रमणियोंके संयमका बाँध और भी टूट जाता है॥

तासां किलावलिप्तानां निवसन् कुरुजाङ्गले ॥ १५॥
कश्चिद् वाहीकदुष्टानां नातिहृष्टमना जगौ।

'उन्हीं बाहीकदेशी मदमत्त एवं दुष्ट स्त्रियोंका कोई सम्बन्धी वहाँसे आकर कुरुजाङ्गल प्रदेशमें निवास करता था। वह अत्यन्त खिन्नचित्त होकर इस प्रकार गुनगुनाया करता था—॥ १५½ ॥

सा नूनं बृहती गौरी सूक्ष्मकम्बलवासिनी ॥ १६॥
मामनुस्मरती शेते वाहीकं कुरुजाङ्गले।

''निश्चय ही वह लंबी, गोरी और महीन कम्बलकी साड़ी पहननेवाली मेरी प्रेयसी कुरुजाङ्गल प्रदेशमें निवास करनेवाले मुझ बाहीकको निरन्तर याद करती हुई सोती होगी॥ १६½ ॥

शतद्रुकामहं तीर्त्वा तां च रम्यामिरावतीम् ॥ १७ ॥
गत्वा स्वदेशं द्रक्ष्यामि स्थूलशङ्खाः शुभाः स्त्रियः।

''मैं कब सतलज और उस रमणीय रावी नदीको पार करके अपने देशमें पहुँचकर शङ्खकी बनी हुई मोटी-मोटी चूड़ियोंको धारण करनेवाली वहाँकी सुन्दरी स्त्रियोंको देखूँगा॥

मनःशिलोज्ज्वलापाङ्ग्यो गौर्यस्त्रिककुदाञ्जनाः॥ १८ ॥
कम्बलाजिनसंवीताः कूर्दन्त्यः प्रियदर्शनाः।
मृदङ्गानकशङ्खानां मर्दलानां च निःस्वनैः ॥ १९ ॥

''जिनके नेत्रोंके प्रान्तभाग मैनसिलके आलेपसे उज्ज्वल हैं, दोनों नेत्र और ललाट अञ्जनसे सुशोभित हैं तथा जिनके सारे अङ्ग कम्बल और मृगचर्मसे आवृत हैं, वे गोरे रंगवाली प्रियदर्शना (परम सुन्दरी) रमणियाँ मृदङ्ग, ढोल, शङ्ख और मर्दल आदि वाद्योंकी ध्वनिके साथ-साथ कब नृत्य करती दिखायी देंगी ॥ १८-१९ ॥

खरोष्ट्राश्वतरैश्चैव मत्ता यास्यामहे सुखम् ।
शमीपीलुकरीराणां वनेषु सुखवर्त्मसु ॥ २० ॥

''कब हमलोग मदोन्मत्त हो गदहे, ऊँट और खच्चरों-की सवारीद्वारा सुखद मार्गोंवाले शमी, पीलु और करीलोंके जंगलोंमें सुखसे यात्रा करेंगे ॥ २० ॥

अपूपान् सक्तुपिण्डांश्च प्राश्नन्तो मथितान्वितान् ।
पथि सुप्रबला भूत्वा कदा सम्पततोऽध्वगान् ॥२१॥
चेलापहारं कुर्वाणास्ताडयिष्याम भूयसः ।

'मार्गमें तक्रके साथ पूए और सत्तूके पिण्ड खाकर अत्यन्त प्रबल हो कब चलते हुए बहुत-से राहगीरोंको उनके कपड़े छीनकर हम अच्छी तरह पीटेंगे' ॥ २१½ ॥

एवंशीलेषु व्रात्येषु वाहीकेषु दुरात्मसु ॥ २२ ॥
कश्चेतयानो निवसेन्मुहूर्तमपि मानवः ।

संस्कारशून्य दुरात्मा बाहीक ऐसे ही स्वभावके होते हैं। उनके पास कौन सचेत मनुष्य दो घड़ी भी निवास करेगा ?'॥

ईदृशा ब्राह्मणेनोक्ता वाहीका मोघचारिणः ॥ २३ ॥
येषां षड्भागहर्ता त्वमुभयोः शुभपापयोः ।

ब्राह्मणने निरर्थक आचार-विचारवाले बाहीकोंको ऐसा ही बताया है, जिनके पुण्य और पाप दोनोंका छठा भाग तुम लिया करते हो ॥ २३½ ॥

इत्युक्त्वा ब्राह्मणः साधुरुत्तरं पुनरुक्तवान् ॥ २४ ॥
वाहीकेष्वविनीतेषु प्रोच्यमानं निबोध तत् ।

शल्य ! उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने ये सब बातें बताकर उद्दण्ड बाहीकोंके विषयमें पुनः जो कुछ कहा था, वह भी बताता हूँ, सुनो—॥ २४½ ॥

तत्र स्म राक्षसी गाति सदा कृष्णचतुर्दशीम् ॥ २५ ॥
नगरे शाकले स्फीते आहत्य निशि दुन्दुभिम् ।

'उस देशमें एक राक्षसी रहती है, जो सदा कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको समृद्धिशाली शाकल नगरमें रातके समय दुन्दुभि बजाकर इस प्रकार गाती है—॥ २५½ ॥

कदा वाहेयिका गाथाः पुनर्गास्यामि शाकले ॥ २६ ॥
गव्यस्य तृप्ता मांसस्य पीत्वा गौडं सुरासवम् ।
गौरीभिः सह नारीभिर्बृहतीभिः स्वलंकृताः ॥ २७ ॥
पलाण्डुगण्डूषयुतान् खादन्ती चैडकान् बहून् ।

''मैं वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो गोमांस खाकर और गुड़की बनी हुई मदिरा पीकर तृप्त हो अञ्जलि भर प्याजके साथ बहुत-सी भेड़ोंको खाती हुई गोरे रंगकी लंबी युवती स्त्रियोंके साथ मिलकर इस शाकल नगरमें पुनः कब इस तरहकी बाहीकसम्बन्धी गाथाओंका गान करूँगी ॥ २६-२७½ ॥

वाराहं कौक्कुटं मांसं गव्यं गार्दभमौष्ट्रिकम् ॥२८ ॥
ऐडं च ये न खादन्ति तेषां जन्म निरर्थकम् ।

''जो सूअर, मुर्गा, गाय, गदहा, ऊँट और भेड़के मांस नहीं खाते, उनका जन्म व्यर्थ है' ॥ २८½ ॥

इति गायन्ति ये मत्ताः सीधुना शाकलाश्च ये॥ २९ ॥
सबालवृद्धाः क्रन्दन्तस्तेषु धर्मः कथं भवेत् ।

'जो शाकलनिवासी आबालवृद्ध नरनारी मदिरासे उन्मत्त हो चिल्ला-चिल्लाकर ऐसी गाथाएँ गाया करते हैं, उनमें धर्म कैसे रह सकता है ?' ॥ २९½ ॥

इति शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते ॥ ३० ॥
यदन्योऽप्युक्तवानस्मान् ब्राह्मणः कुरुसंसदि ।

शल्य ! इस बातको अच्छी तरह समझ लो । हर्षका विषय है कि इसके सम्बन्धमें मैं तुम्हें कुछ और बातें बता रहा हूँ, जिन्हें दूसरे ब्राह्मणने कौरव-सभामें हमलोगोंसे कहा था—॥ ३०½ ॥

पञ्च नद्यो वहन्त्येता यत्र पीलुवनान्युत ॥ ३१ ॥
शतद्रुश्च विपाशा च तृतीयैरावती तथा ।
चन्द्रभागा वितस्ता च सिन्धुषष्ठा बहिर्गिरेः ॥ ३२ ॥
आरट्टा नाम ते देशा नष्टधर्मा न तान् व्रजेत् ।

'जहाँ शतद्रु (सतलज), विपाशा (व्यास), तीसरी इरावती (रावी), चन्द्रभागा (चिनाव) और वितस्ता (झेलम)—ये पाँच नदियाँ छठी सिंधु नदीके साथ बहती हैं, जहाँ पीलु नामक वृक्षोंके कई जंगल हैं, वे हिमालयकी सीमासे बाहरके प्रदेश 'आरट्ट' नामसे विख्यात हैं । वहाँका धर्म-कर्म नष्ट हो गया है । उन देशोंमें कभी न जाय ॥ ३१-३२½ ॥

व्रात्यानां दासमीयानां वाहीकानामयज्वनाम् ॥ ३३ ॥
न देवाः प्रतिगृह्णन्ति पितरो ब्राह्मणास्तथा ।
तेषां प्रणष्टधर्माणां वाहीकानामिति श्रुतिः ॥ ३४ ॥

'जिनके धर्म-कर्म नष्ट हो गये हैं, वे संस्कारहीन, जारज बाहीक यज्ञ-कर्मसे रहित होते हैं । उनके दिये हुए द्रव्यको देवता, पितर और ब्राह्मण भी नहीं ग्रहण करते हैं, यह बात सुननेमें आयी है' ॥ ३३-३४ ॥

ब्राह्मणेन तथा प्रोक्तं विदुषा साधुसंसदि ।
काष्ठकुण्डेषु वाहीका मृन्मयेषु च भुञ्जते ॥ ३५ ॥
सक्तुमद्यावलिप्तेषु श्वावलीढेषु निर्घृणाः ।
आविकं चौष्ट्रिकं चैव क्षीरं गार्दभमेव च ॥ ३६ ॥
तद्विकारांश्च वाहीकाः खादन्ति च पिबन्ति च ।

किसी विद्वान् ब्राह्मणने साधु पुरुषोंकी सभामें यह भी कहा था कि 'बाहीक देशके लोग काठके कुण्डों तथा मिट्टीके बर्तनोंमें जहाँ सत्तू और मदिरा लिपटे होते हैं और जिन्हें कुत्ते चाटते रहते हैं, घृणाशून्य होकर भोजन करते हैं । बाहीक देशके निवासी भेड़, ऊँटनी और गदहीके दूध पीते और उसी दूधके बने हुए दही-घी आदि भी खाते हैं।३५-३६½।

पुत्रसंकरिणो जाल्माः सर्वान्नक्षीरभोजनाः ॥ ३७ ॥
आरट्टा नाम वाहीका वर्जनीया विपश्चिता ।

'वे जारज पुत्र उत्पन्न करनेवाले नीच आरट्ट नामक बाहीक सबका अन्न खाते और सभी पशुओंके दूध पीते हैं। अतः विद्वान् पुरुषको उन्हें दूरसे ही त्याग देना चाहिये।' ३७½

हन्त शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते ॥ ३८ ॥
यदन्योऽप्युक्तवान् मह्यं ब्राह्मणः कुरुसंसदि ।

शल्य! इस बातको याद कर लो। अभी तुमसे और भी बातें बताऊँगा, जिन्हें किसी दूसरे ब्राह्मणने कौरवसभामें स्वयं मुझसे कहा था—॥ ३८½ ॥

युगन्धरे पयः पीत्वा प्रोष्य चाप्यच्युतस्थले ॥ ३९ ॥
तद्वद् भूतिलये स्नात्वा कथं स्वर्गं गमिष्यति ।

'युगन्धर नगरमें दूध पीकर अच्युतस्थल नामक नगरमें एक रात रहकर तथा भूतिलयमें स्नान करके मनुष्य कैसे स्वर्गमें जायगा?'॥ ३९½ ॥

पञ्च नद्यो वहन्त्येता यत्र निःसृत्य पर्वतात् ॥ ४० ॥
आरट्टा नाम वाहीका न तेष्वार्यो द्व्यहं वसेत् ।

जहाँ पर्वतसे निकलकर ये पूर्वोक्त पाँचों नदियाँ बहती हैं, वे आरट्ट नामसे प्रसिद्ध बाहीक प्रदेश हैं। उनमें श्रेष्ठ पुरुष दो दिन भी निवास न करे॥ ४०½ ॥

बहिश्च नाम हीकश्च विपाशायां पिशाचकौ ॥ ४१ ॥
तयोरपत्यं वाहीका नैषा सृष्टिः प्रजापतेः ।
ते कथं विविधान् धर्मान् ज्ञास्यन्ते हीनयोनयः ॥

विपाशा (व्यास) नदीमें दो पिशाच रहते हैं। एकका नाम है बहि और दूसरेका नाम है हीक। इन्हीं दोनोंकी संतानें बाहीक कहलाती हैं। ब्रह्माजीने इनकी सृष्टि नहीं की है। वे नीच योनिमें उत्पन्न हुए मनुष्य नाना प्रकारके धर्मोंको कैसे जानेंगे?॥ ४१-४२ ॥

कारस्करान्माहिषकान् कुरण्डान् केरलांस्तथा ।
कर्कोटकान् वीरकांश्च दुर्धर्मांश्च विवर्जयेत् ॥ ४३ ॥

कारस्कर, माहिषक, कुरंड, केरल, कर्कोटक और वीरक—इन देशोंके धर्म (आचार-व्यवहार) दूषित हैं; अतः इनका त्याग कर देना चाहिये॥ ४३ ॥

इति तीर्थानुसर्तारं राक्षसी काचिदब्रवीत् ।
एकरात्रशयी गेहे महोलूखलमेखला ॥ ४४ ॥

विशाल ओखलियोंकी मेखला (करधनी) धारण करनेवाली किसी राक्षसीने किसी तीर्थयात्रीके घरमें एक रात रहकर उससे इस प्रकार कहा था॥ ४४ ॥

आरट्टा नाम ते देशा वाहीकं नाम तज्जलम् ।
ब्राह्मणापसदा यत्र तुल्यकालाः प्रजापतेः ॥ ४५ ॥

जहाँ ब्रह्माजीके समकालीन (अत्यन्त प्राचीन) वेद-विरुद्ध आचरणवाले नीच ब्राह्मण निवास करते हैं, वे आरट्ट नामक देश हैं और वहाँके जलका नाम बाहीक है॥ ४५ ॥

वेदा न तेषां वेद्यश्च यज्ञा यजनमेव च ।
व्रात्यानां दासमीयानामन्नं देवा न भुञ्जते ॥ ४६ ॥

उन अधम ब्राह्मणोंको न तो वेदोंका ज्ञान है, न वहाँ यज्ञकी वेदियाँ हैं और न उनके यहाँ यज्ञ-याग ही होते हैं। वे संस्कारहीन एवं दासोंसे समागम करनेवाली कुलटा स्त्रियोंकी संतानें हैं; अतः देवता उनका अन्न नहीं ग्रहण करते हैं॥ ४६ ॥

प्रस्थला मद्रगान्धारा आरट्टा नामतः खशाः ।
वसातिसिन्धुसौवीरा इति प्रायोऽतिकुत्सिताः॥४७॥

प्रस्थल, मद्र, गान्धार, आरट्ट, खस, वसाति, सिंधु तथा सौवीर—ये देश प्रायः अत्यन्त निन्दित हैं॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्ण और शल्यका संवादविषयक चौवालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

कर्णका मद्र आदि बाहीक निवासियोंके दोष बताना, शल्यका उत्तर देना और दुर्योधनका दोनोंको शान्त करना

कर्ण उवाच

हन्त शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते ।
उच्यमानं मया सम्यक् त्वमेकाग्रमनाः शृणु ॥ १ ॥

कर्ण बोला—शल्य! पहले जो बातें बतायी गयी हैं, उन्हें समझो। अब मैं पुनः तुमसे कुछ कहता हूँ। मेरी कही हुई इस बातको तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो॥ १ ॥

ब्राह्मणः किल नो गेहमध्यगच्छत् पुरातिथिः ।
आचारं तत्र सम्प्रेक्ष्य प्रीतो वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

पूर्वकालमें एक ब्राह्मण अतिथिरूपसे हमारे घरपर ठहरा था। उसने हमारे यहाँका आचार-विचार देखकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए यह बात कही—॥ २ ॥

मया हिमवतः शृङ्गमेकेनाध्युषितं चिरम् ।
दृष्टाश्च बहवो देशा नानाधर्मसमावृताः ॥ ३ ॥

'मैंने अकेले ही दीर्घकालतक हिमालयके शिखरपर निवास किया है और विभिन्न धर्मोंसे सम्पन्न बहुत-से देश देखे हैं॥

न च केन च धर्मेण विरुध्यन्ते प्रजा इमाः ।
सर्वे हि तेऽब्रुवन् धर्मं यदुक्तं वेदपारगैः ॥ ४ ॥

'इन सब देशोंके लोग किसी भी निमित्तसे धर्मके विरुद्ध नहीं जाते। वेदोंके पारगामी विद्वानोंने जैसा बताया है, उसी रूपमें वे लोग सम्पूर्ण धर्मको मानते और बतलाते हैं॥ ४ ॥

अटता तु ततो देशान् नानाधर्मसमाकुलान्।
आगच्छता महाराज वाहीकेषु निशामितम्॥ ५॥

'महाराज! विभिन्न धर्मोंसे युक्त अनेक देशोंमें घूमता-घामता जब मैं बाहीक देशमें आ रहा था, तब वहाँ ऐसी बातें देखने और सुननेमें आयीं॥ ५॥

तत्र वै ब्राह्मणो भूत्वा ततो भवति क्षत्रियः।
वैश्यः शूद्रश्च वाहीकस्ततो भवति नापितः॥ ६॥
नापितश्च ततो भूत्वा पुनर्भवति ब्राह्मणः।
द्विजो भूत्वा च तत्रैव पुनर्दासोऽभिजायते॥ ७॥

'उस देशमें एक ही बाहीक पहले ब्राह्मण होकर फिर क्षत्रिय होता है। तत्पश्चात् वैश्य और शूद्र भी बन जाता है। उसके बाद वह नाई होता है। नाई होकर फिर ब्राह्मण हो जाता है। ब्राह्मण होनेके पश्चात् फिर वही दास बन जाता है*॥ ६-७॥

भवन्त्येककुले विप्राः प्रसृष्टाः कामचारिणः।
गान्धारा मद्रकाश्चैव वाहीकाश्चाल्पचेतसः॥ ८॥

'वहाँ एक ही कुलमें कुछ लोग ब्राह्मण और कुछ लोग स्वेच्छाचारी वर्णसंकर संतान उत्पन्न करनेवाले होते हैं। गान्धार, मद्र और बाहीक—इन सभी देशोंके लोग मन्दबुद्धि हुआ करते हैं॥ ८॥

एतन्मया श्रुतं तत्र धर्मसंकरकारकम्।
कृत्स्नामटित्वा पृथिवीं वाहीकेषु विपर्ययः॥ ९॥

'उस देशमें मैंने इस प्रकार धर्मसंकरता फैलानेवाली बातें सुनीं। सारी पृथ्वीमें घूमकर केवल बाहीक देशमें ही मुझे धर्मके विपरीत आचार-व्यवहार दिखायी दिया'॥ ९॥

हन्त शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते।
यदप्यन्योऽब्रवीद् वाक्यं वाहीकानां च कुत्सितम्॥ १०॥

शल्य! ये सब बातें जान लो। अभी और कहता हूँ। एक दूसरे यात्रीने भी बाहीकोंके सम्बन्धमें जो घृणित बातें बतायी थीं, उन्हें सुनो॥ १०॥

सती पुरा हृता काचिदारट्टात् किल दस्युभिः।
अधर्मतश्चोपयाता सा तानभ्यशपत् ततः॥ ११॥

'कहते हैं, प्राचीन कालमें लुटेरे डाकुओंने आरट्ट देशसे किसी सती स्त्रीका अपहरण कर लिया और अधर्मपूर्वक उसके साथ समागम किया। तब उसने उन्हें यह शाप दे दिया—११

बालां बन्धुमतीं यन्मामधर्मेणोपगच्छथ।
तस्मान्नार्यो भविष्यन्ति बन्धक्यो वै कुलस्य च॥ १२॥
न चैवास्मात् प्रमोक्षध्वं घोरात् पापान्नराधमाः।

'मैं अभी बालिका हूँ और मेरे भाई-बन्धु मौजूद हैं तो भी तुमलोगोंने अधर्मपूर्वक मेरे साथ समागम किया है। इसलिये इस कुलकी सारी स्त्रियाँ व्यभिचारिणी होंगी। नराधमो! तुम्हें इस घोर पापसे कभी छुटकारा नहीं मिलेगा'॥

तस्मात् तेषां भागहरा भागिनेया न सूनवः॥ १३॥

'इसलिये उनकी धन-सम्पत्तिके उत्तराधिकारी भानजे होते हैं, पुत्र नहीं॥ १३॥

कुरवः सहपाञ्चालाः शाल्वा मत्स्याः सनैमिषाः।
कोसलाः काशयोऽङ्गाश्च कालिङ्गा मागधास्तथा॥ १४॥
चेदयश्च महाभागा धर्मं जानन्ति शाश्वतम्।

'कुरु, पाञ्चाल, शाल्व, मत्स्य, नैमिष, कोसल, काशी, अङ्ग, कलिङ्ग, मगध और चेदिदेशोंके बड़भागी मनुष्य सनातन धर्मको जानते हैं॥ १४½॥

नानादेशेषु सन्तश्च प्रायो बाह्यालयादृते॥ १५॥
आ मत्स्येभ्यः कुरुपञ्चालदेश्या
आ नैमिषाच्चेदयो ये विशिष्टाः।
धर्मं पुराणमुपजीवन्ति सन्तो
मद्रानृते पाञ्चनदांश्च जिह्मान्॥ १६॥

'भिन्न-भिन्न देशोंमें बाहीकनिवासियोंको छोड़कर प्रायः सर्वत्र श्रेष्ठ पुरुष उपलब्ध होते हैं। मत्स्यसे लेकर कुरु और पाञ्चाल देशतक, नैमिषारण्यसे लेकर चेदिदेशतक जो लोग निवास करते हैं, वे सभी श्रेष्ठ एवं साधु पुरुष हैं और प्राचीन धर्मका आश्रय लेकर जीवननिर्वाह करते हैं। मद्र और पञ्चनद प्रदेशोंमें ऐसी बात नहीं है। वहाँके लोग कुटिल होते हैं'॥ १५-१६॥

एवं विद्वान् धर्मकथासु राजं-
स्तूष्णींभूतो जडवच्छल्य भूयाः।
त्वं तस्य गोप्ता च जनस्य राजा
षड्भागहर्ता शुभदुष्कृतस्य॥ १७॥

राजा शल्य! ऐसा जानकर तुम जड पुरुषोंके समान धर्मोपदेशकी ओरसे मुँह मोड़कर चुपचाप बैठे रहो। तुम बाहीक देशके लोगोंके राजा और रक्षक हो; अतः उनके पुण्य और पापका भी छठा भाग ग्रहण करते हो॥ १७॥

अथवा दुष्कृतस्य त्वं हर्ता तेषामरक्षिता।
रक्षिता पुण्यभाग् राजा प्रजानां त्वं ह्यपुण्यभाक्॥ १८॥

अथवा उनकी रक्षा न करनेके कारण तुम केवल उनके पापमें ही हिस्सा बँटाते हो। प्रजाकी रक्षा करनेवाला राजा ही उसके पुण्यका भागी होता है; तुम तो केवल पापके ही भागी हो॥ १८॥

पूज्यमाने पुरा धर्मे सर्वदेशेषु शाश्वते।
धर्मं पाञ्चनदं दृष्ट्वा धिगित्याह पितामहः॥ १९॥

पूर्वकालमें समस्त देशोंमें प्रचलित सनातन धर्मकी जब प्रशंसा की जा रही थी, उस समय ब्रह्माजीने पञ्चनदवासियोंके धर्मपर दृष्टिपात करके कहा था कि 'धिक्कार है इन्हें!'॥ १९॥

---

* विभिन्न जातियोंके कर्मको अपनानेके कारण वह उन जातियोंके नामसे निर्दिष्ट होने लगता है।

व्रात्यानां दासमीयानां कृतेऽप्यशुभकर्मणाम् ।
ब्रह्मणा निन्दिते धर्मे स त्वं लोके किमब्रवीः ॥ २० ॥

संस्कारहीन, जारज और पापकर्मी पञ्चनदवासियोंके धर्मकी जब ब्रह्माजीने सत्ययुगमें भी निन्दा की, तब तुम उसी देशके निवासी होकर जगत्‌में क्यों धर्मोपदेश करने चले हो ? ॥ २० ॥

इति पाञ्चनदं धर्ममवमेने पितामहः ।
स्वधर्मस्थेषु वर्णेषु सोऽप्येतान् नाभ्यपूजयत् ॥ २१ ॥

पितामह ब्रह्माने पञ्चनदनिवासियोंके आचार-व्यवहार-रूपी धर्मका इस प्रकार अनादर किया है । अपने धर्ममें तत्पर रहनेवाले अन्य देशोंकी तुलनामें उन्होंने इनका आदर नहीं किया ॥ २१ ॥

हन्त शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते ।
कल्माषपादः सरसि निमज्जन् राक्षसोऽब्रवीत् ॥ २२ ॥

शल्य ! इन सब बातोंको अच्छी तरह जान लो । अभी इस विषयमें तुमसे कुछ और भी बातें बता रहा हूँ, जिन्हें सरोवरमें डूबते हुए राक्षस कल्माषपादने कहा था—॥२२॥

क्षत्रियस्य मलं भैक्ष्यं ब्राह्मणस्याश्रुतं मलम् ।
मलं पृथिव्यां वाहीकाः स्त्रीणां मद्रस्त्रियो मलम् ॥ २३ ॥

'क्षत्रियका मल है भिक्षावृत्ति, ब्राह्मणका मल है वेद-शास्त्रोंके विपरीत आचरण, पृथ्वीके मल हैं बाहीक और स्त्रियोंका मल हैं मद्रदेशकी स्त्रियाँ' ॥ २३ ॥

निमज्जमानमुद्धृत्य कश्चिद् राजा निशाचरम् ।
अपृच्छत् तेन चाख्यातं प्रोक्तवांस्तन्निबोध मे ॥ २४ ॥

उस डूबते हुए राक्षसका किसी राजाने उद्धार करके उससे कुछ प्रश्न किया । उनके उस प्रश्नके उत्तरमें राक्षस-ने जो कुछ कहा था, उसे सुनो—॥ २४ ॥

मानुषाणां मलं म्लेच्छा म्लेच्छानां शौण्डिका मलम् ।
शौण्डिकानां मलं षण्ढाः षण्ढानां राजयाजकाः ॥२५॥

'मनुष्योंके मल हैं म्लेच्छ, म्लेच्छोंके मल हैं शराब बेचनेवाले कलाल, कलालोंके मल हैं हींजड़े और हींजड़ोंके मल हैं राजपुरोहित ॥

राजयाजकयाज्यानां मद्रकाणां च यन्मलम् ।
तद् भवेद् वै तव मलं यद्यस्मान्न विमुञ्चसि ॥ २६ ॥

'राजपुरोहितोंके पुरोहितों तथा मद्रदेशवासियोंका जो मल है, वह सब तुम्हें प्राप्त हो, यदि इस सरोवरसे तुम मेरा उद्धार न कर दो' ॥ २६ ॥

इति रक्षोपसृष्टेषु विषवीर्यहतेषु च ।
राक्षसं भेषजं प्रोक्तं संसिद्धवचनोत्तरम् ॥ २७ ॥

जिनपर राक्षसोंका उपद्रव है तथा जो विषके प्रभावसे मारे गये हैं, उनके लिये यह उत्तम सिद्ध वाक्य ही राक्षसके प्रभावका निवारण करनेवाला एवं जीवनरक्षक औषध बताया गया है ॥ २७ ॥

ब्राह्मं पञ्चालाः कौरवेयास्तु धर्म्यं
सत्यं मत्स्याः शूरसेनाश्च यज्ञम् ।
प्राच्या दासा वृषला दाक्षिणात्याः
स्तेना वाहीकाः संकरा वै सुराष्ट्राः ॥ २८ ॥

पाञ्चाल देशके लोग वेदोक्त धर्मका आश्रय लेते हैं, कुरुदेशके निवासी धर्मानुकूल कार्य करते हैं, मत्स्यदेशके लोग सत्य बोलते और शूरसेननिवासी यज्ञ करते हैं । पूर्व-देशके लोग दासकर्म करनेवाले, दक्षिणके निवासी वृषल, बाहीक देशके लोग चोर और सौराष्ट्रनिवासी वर्णसङ्कर होते हैं ॥ २८ ॥

कृतघ्नता परवित्तापहारो
मद्यपानं गुरुदारावमर्दः ।
वाक्पारुष्यं गोवधो रात्रिचर्या
बहिर्गेहं परवस्त्रोपभोगः ॥ २९ ॥
येषां धर्मस्तान् प्रति नास्त्यधर्मो
ह्यारट्टानां पञ्चनदान् धिगस्तु ।

कृतघ्नता, दूसरोंके धनका अपहरण, मदिरापान, गुरु-पत्नी गमन, कटुवचनका प्रयोग, गोवध, रातके समय घरसे बाहर घूमना और दूसरोंके वस्त्रका उपभोग करना—ये सब जिनके धर्म हैं, उन आरट्टों और पञ्चनदवासियोंके लिये अधर्म नामकी कोई वस्तु है ही नहीं । उन्हें धिक्कार है !।२९½

आ पाञ्चाल्येभ्यः कुरवो नैमिषाश्च
मत्स्याश्चैतेऽप्यथ जानन्ति धर्मम् ।
अथोदीच्याश्चाङ्गका मागधाश्च
शिष्टान् धर्मानुपजीवन्ति वृद्धाः ॥ ३० ॥

पाञ्चाल, कौरव, नैमिष और मत्स्यदेशोंके निवासी धर्मको जानते हैं । उत्तर, अङ्ग तथा मगध देशोंके वृद्ध पुरुष शास्त्रोक्त धर्मोंका आश्रय लेकर जीवन निर्वाह करते हैं ॥३०॥

प्राचीं दिशं श्रिता देवा जातवेदःपुरोगमाः ।
दक्षिणां पितरो गुप्तां यमेन शुभकर्मणा ॥ ३१ ॥
प्रतीचीं वरुणः पाति पालयानः सुरान् बली ।
उदीचीं भगवान् सोमो ब्राह्मणैः सह रक्षति ॥ ३२ ॥

अग्नि आदि देवता पूर्वदिशाका आश्रय लेकर रहते हैं, पितर पुण्यकर्मा यमराजके द्वारा सुरक्षित दक्षिण दिशामें निवास करते हैं, बलवान् वरुण देवताओंका पालन करते हुए पश्चिम दिशाकी रक्षामें तत्पर रहते हैं और भगवान् सोम ब्राह्मणोंके साथ उत्तर दिशाकी रक्षा करते हैं ॥ ३१-३२ ॥

तथा रक्षःपिशाचाश्च हिमवन्तं नगोत्तमम् ।
गुह्यकाश्च महाराज पर्वतं गन्धमादनम् ॥ ३३ ॥
ध्रुवः सर्वाणि भूतानि विष्णुः पाति जनार्दनः ।

महाराज ! राक्षस, पिशाच और गुह्यक—ये गिरिराज हिमालय तथा गन्धमादन पर्वतकी रक्षा करते हैं और

अविनाशी एवं सर्वव्यापी भगवान् जनार्दन समस्त प्राणियोंका पालन करते हैं (परंतु बाहीक देशपर किसी भी देवताका विशेष अनुग्रह नहीं है)॥ ३३½ ॥

इङ्गितज्ञाश्च मगधाः प्रेक्षितज्ञाश्च कोसलाः ॥ ३४ ॥
अर्धोक्ताः कुरुपञ्चालाः शाल्वाः कृत्स्नानुशासनाः।
पर्वतीयाश्च विषमा यथैव शिबयस्तथा ॥ ३५ ॥

मगधदेशके लोग इशारेसे ही सब बात समझ लेते हैं, कोसलनिवासी नेत्रोंकी भावभङ्गीसे मनका भाव जान लेते हैं, कुरु तथा पाञ्चालदेशके लोग आधी बात कहनेपर ही पूरी बात समझ लेते हैं, शाल्वदेशके निवासी पूरी बात कह देनेपर उसे समझ पाते हैं, परंतु शिबिदेशके लोगोंकी भाँति पर्वतीय प्रान्तोंके निवासी इन सबसे विलक्षण होते हैं। वे पूरी बात कहनेपर भी नहीं समझ पाते ॥ ३४-३५ ॥

सर्वज्ञा यवना राजञ्शूराश्चैव विशेषतः।
म्लेच्छाः स्वसंज्ञानियता नानुक्तमितरे जनाः ॥ ३६ ॥
प्रतिरब्धास्तु वाहीका न च केचन मद्रकाः।

राजन्! यद्यपि यवनजातीय म्लेच्छ सभी उपायोंसे बात समझ लेनेवाले और विशेषतः शूर होते हैं, तथापि अपने द्वारा कल्पित संज्ञाओंपर ही अधिक आग्रह रखते हैं (वैदिक धर्मको नहीं मानते)। अन्य देशोंके लोग बिना कहे हुए कोई बात नहीं समझते हैं, परंतु बाहीक देशके लोग सब काम उलटे ही करते हैं (उनकी समझ उलटी ही होती है) और मद्रदेशके कुछ निवासी तो ऐसे होते हैं कि कुछ भी नहीं समझ पाते ॥ ३६½ ॥

स त्वमेतादृशः शल्य नोत्तरं वक्तुमर्हसि।
पृथिव्यां सर्वदेशानां मद्रको मलमुच्यते ॥ ३७ ॥

शल्य! ऐसे ही तुम हो। अब मेरी बातका जवाब नहीं दोगे। मद्रदेशके निवासीको पृथ्वीके सम्पूर्ण देशोंका मल बताया जाता है ॥ ३७ ॥

सीधोः पानं गुरुतल्पावमर्दो
भ्रूणहत्या परवित्तापहारः।
येषां धर्मस्तान् प्रति नास्त्यधर्म
आरट्टजान् पञ्चनदान् धिगस्तु ॥ ३८ ॥

मदिरापान, गुरुकी शय्याका उपभोग, भ्रूणहत्या और दूसरोंके धनका अपहरण—ये जिनके लिये धर्म हैं, उनके लिये अधर्म नामकी कोई वस्तु है ही नहीं। ऐसे आरट्ट और पञ्चनददेशके लोगोंको धिक्कार है! ॥ ३८ ॥

एतज्ज्ञात्वा जोषमास्स्व प्रतीपं मा स्म वै कृथाः।
मा त्वां पूर्वमहं हत्वा हनिष्ये केशवार्जुनौ ॥ ३९ ॥

यह जानकर तुम चुपचाप बैठे रहो। फिर कोई प्रतिकूल बात मुँहसे न निकालो। अन्यथा पहले तुम्हींको मारकर पीछे श्रीकृष्ण और अर्जुनका वध करूँगा ॥ ३९ ॥

शल्य उवाच

आतुराणां परित्यागः स्वदारसुतविक्रयः।
अङ्गे प्रवर्तते कर्ण येषामधिपतिर्भवान् ॥ ४० ॥

शल्य बोले—कर्ण! तुम जहाँके राजा बनाये गये हो, उस अङ्गदेशमें क्या होता है? अपने सगे-सम्बन्धी जब रोगसे पीड़ित हो जाते हैं तो उनका परित्याग कर दिया जाता है। अपनी ही स्त्री और बच्चोंको वहाँके लोग सरे बाजार बेचते हैं ॥ ४० ॥

रथातिरथसंख्यायां यत् त्वां भीष्मस्तदाब्रवीत्।
तान् विदित्वाऽऽत्मनो दोषान् निर्मन्युर्भव मा क्रुधः॥४१॥

उस दिन रथी और अतिरथियोंकी गणना करते समय भीष्मजीने तुमसे जो कुछ कहा था, उसके अनुसार अपने उन दोषोंको जानकर क्रोधरहित हो शान्त हो जाओ ॥ ४१ ॥

सर्वत्र ब्राह्मणाः सन्ति सन्ति सर्वत्र क्षत्रियाः।
वैश्याः शूद्रास्तथा कर्ण स्त्रियः साध्व्यश्च सुव्रताः॥४२॥

कर्ण! सर्वत्र ब्राह्मण हैं। सब जगह क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं तथा सभी देशोंमें उत्तम व्रतका पालन करनेवाली साध्वी स्त्रियाँ होती हैं ॥ ४२ ॥

रमन्ते चोपहासेन पुरुषाः पुरुषैः सह।
अन्योन्यमवतक्षन्तो देशे देशे समैथुनाः ॥ ४३ ॥

सभी देशोंके पुरुष दूसरे पुरुषोंके साथ बात करते समय उपहासके द्वारा एक दूसरेको चोट पहुँचाते हैं और स्त्रियोंके साथ रमण करते हैं ॥ ४३ ॥

परवाच्येषु निपुणः सर्वो भवति सर्वदा।
आत्मवाच्यं न जानीते जानन्नपि च मुह्यति ॥ ४४ ॥

दूसरोंके दोष बतानेमें सभी लोग सदा ही निपुण होते हैं; परंतु अपने दोषोंका उन्हें पता नहीं रहता, अथवा जानकर भी अनजान बने रहते हैं ॥ ४४ ॥

सर्वत्र सन्ति राजानः स्वं स्वं धर्ममनुव्रताः।
दुर्मनुष्यान् निगृह्णन्ति सन्ति सर्वत्र धार्मिकाः॥ ४५ ॥

सभी देशोंमें अपने-अपने धर्मका पालन करनेवाले राजा रहते हैं, जो दुष्टोंका दमन करते हैं तथा सर्वत्र ही धर्मात्मा मनुष्य निवास करते हैं ॥ ४५ ॥

न कर्ण देशसामान्यात् सर्वः पापं निषेवते।
यादृशाः स्वस्वभावेन देवा अपि न तादृशाः ॥ ४६ ॥

कर्ण! एक देशमें रहनेमात्रसे सब लोग पापका ही सेवन नहीं करते हैं। उसी देशमें मनुष्य अपने श्रेष्ठ शील-स्वभावके कारण ऐसे महापुरुष हो जाते हैं कि देवता भी उनकी बराबरी नहीं कर सकते ॥ ४६ ॥

संजय उवाच

ततो दुर्योधनो राजा कर्णशल्याववारयत्।
सखिभावेन राधेयं शल्यं स्वाञ्जल्यकेन च ॥ ४७ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तब राजा दुर्योधनने कर्ण तथा शल्य दोनोंको रोक दिया। उसने कर्णको तो मित्रभाव-

से समझाकर मना किया और शल्यको हाथ जोड़कर रोका ॥

ततो निवारितः कर्णो धार्तराष्ट्रेण मारिष।
कर्णोऽपि नोत्तरं प्राह शल्योऽप्यभिमुखः परान्।
ततः प्रहस्य राधेयः पुनर्याहीत्यचोदयत् ॥ ४८ ॥

मान्यवर ! दुर्योधनके मना करनेपर कर्णने कोई उत्तर नहीं दिया और शल्यने भी शत्रुओंकी ओर मुँह फेर लिया। तब राधापुत्र कर्णने हँसकर शल्यको रथ बढ़ानेकी आज्ञा देते हुए कहा—'चलो, चलो' ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्ण और शल्यका संवादविषयक पैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

कौरव-सेनाकी व्यूहरचना, युधिष्ठिरके आदेशसे अर्जुनका आक्रमण, शल्यके द्वारा पाण्डवसेनाके प्रमुख वीरोंका वर्णन तथा अर्जुनकी प्रशंसा

संजय उवाच

ततः परानीकसहं व्यूहमप्रतिमं कृतम्।
समीक्ष्य कर्णः पार्थानां धृष्टद्युम्नाभिरक्षितम् ॥ १ ॥
प्रययौ रथघोषेण सिंहनादरवेण च।
वादित्राणां च निनदैः कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ २ ॥
वेपमान इव क्रोधाद् युद्धशौण्डः परंतपः।
प्रतिव्यूह्य महातेजा यथावद् भरतर्षभ ॥ ३ ॥
व्यधमत् पाण्डवीं सेनामासुरीं मघवानिव।
युधिष्ठिरं चाभ्यहनदपसव्यं चकार ह ॥ ४ ॥

संजय कहते हैं—भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर यह देखकर कि कुन्तीकुमारोंकी सेनाका अनुपम व्यूह बनाया गया है, जो शत्रुदलके आक्रमणको सह सकनेमें समर्थ और धृष्टद्युम्नद्वारा सुरक्षित है, शत्रुओंको संताप देनेवाला युद्धकुशल कर्ण रथकी घर्घराहट, सिंहकी-सी गर्जना तथा वाद्योंकी गम्भीर ध्वनिसे पृथ्वीको कँपाता और स्वयं भी क्रोधसे काँपता हुआ-सा आगे बढ़ा। उस महातेजस्वी वीरने शत्रुओंके मुकाबलेमें अपनी सेनाकी यथोचित व्यूहरचना करके, जैसे इन्द्र आसुरी सेनाका संहार करते हैं, उसी प्रकार पाण्डव-सेनाका विनाश आरम्भ कर दिया और युधिष्ठिरको भी घायल करके दाहिने कर दिया ॥ १–४ ॥

(तानि सर्वाणि सैन्यानि कर्णं दृष्ट्वा विशाम्पते।
बभूवुः सम्प्रहृष्टानि तावकानि युयुत्सया ॥
अश्रूयन्त ततो वाचस्तावकानां विशाम्पते।

प्रजानाथ ! (उस समय) आपके सभी सैनिक कर्णको देखकर युद्धकी इच्छासे हर्ष और उत्साहमें भर गये। राजन् ! उस समय आपके योद्धाओंकी कही हुई ये बातें सुनायी देने लगीं ॥

सैनिका ऊचुः

कर्णार्जुनमहायुद्धमेतदद्य भविष्यति।
अद्य दुर्योधनो राजा हतामित्रो भविष्यति ॥

सैनिक बोले—आज यह कर्ण और अर्जुनका महान् युद्ध होगा। आज राजा दुर्योधनके सारे शत्रु मार डाले जायँगे॥

अद्य कर्णं रणे दृष्ट्वा फाल्गुनो विद्रविष्यति।
अद्य तावद् वयं युद्धे कर्णस्यैवानुगामिनः ॥
कर्णबाणमयं भीमं युद्धं द्रक्ष्याम संयुगे।

आज अर्जुन रणभूमिमें कर्णको देखते ही भाग खड़े होंगे। आज युद्धमें हमलोग कर्णके ही अनुगामी होकर समराङ्गणमें कर्णके बाणोंसे भरा हुआ भीषण संग्राम देखेंगे ॥

चिरकालागतमिदमद्येदानीं भविष्यति ॥
अद्य द्रक्ष्याम संग्रामं घोरं देवासुरोपमम्।

दीर्घकालसे जिसकी सम्भावना की जाती थी, वह आज इसी समय उपस्थित होगा। आज हमलोग देवासुर-संग्रामके समान भयंकर युद्ध देखेंगे ॥

अद्येदानीं महद् युद्धं भविष्यति भयानकम् ॥
अद्येदानीं जयो नित्यमेकस्यैकस्य वा रणे।

आज अभी बड़ा भयानक युद्ध छिड़नेवाला है। आज रणभूमिमें इन दोनोंमेंसे एक-न-एककी विजय अवश्य होगी॥

अर्जुनं किल राधेयो वधिष्यति महारणे ॥
अथवा कं नरं लोके न स्पृशन्ति मनोरथाः।

निश्चय ही राधापुत्र कर्ण इस महायुद्धमें अर्जुनका वध कर डालेगा अथवा इस जगत्में किस मनुष्यके अंदर बड़े-बड़े मनसूबे नहीं उठते हैं ॥

संजय उवाच

इत्युक्त्वा विविधा वाचः कुरवः कुरुनन्दन।
आजघ्नुः पटहांश्चैव तूर्यांश्चैव सहस्रशः ॥

संजय कहते हैं—कुरुनन्दन ! इस तरह नाना प्रकारकी बातें कहकर कौरवोंने सहस्रों नगाड़े पीटे और दूसरे-दूसरे बाजे भी बजवाये ॥

भेरीनादांश्च विविधान् सिंहनादांश्च पुष्कलान्।
मुरजानां महाशब्दानानकानां महारवान् ॥

भाँति-भाँतिकी भेरी-ध्वनि हुई और बारंबार सैनिकोंद्वारा सिंहनाद किये गये। गम्भीर ध्वनि करनेवाले ढोल और मृदंगके महान् शब्द वहाँ सब ओर गूँजने लगे ॥

नृत्यमानाश्च बहवस्तर्जमानाश्च मारिष।
अन्योन्यमभ्ययुर्युद्धे युद्धरङ्गगता नराः॥

मान्यवर नरेश! युद्धके रङ्गभूमिमें उतरे हुए बहुसंख्यक मनुष्य नृत्य तथा गर्जन-तर्जन करते हुए एक दूसरेका सामना करनेके लिये आगे बढ़े॥

तेषां पदाता नागानां पादरक्षाः समन्ततः।
पट्टिशासिधराः शूराश्चापबाणभुशुण्डिनः॥
भिन्दिपालधराश्चैव शूलहस्ताः सुचक्रिणः।
तेषां समागमो घोरो देवासुररणोपमः॥)

उनमें शूरवीर पैदल सैनिक चारों ओरसे पट्टिश, खड्ग, धनुष-बाण, भुशुण्डी, भिन्दिपाल, त्रिशूल और चक्र हाथमें लेकर हाथियोंके पैरोंकी रक्षा कर रहे थे। उनमें देवासुर-संग्रामके समान भयंकर युद्ध छिड़ गया॥

धृतराष्ट्र उवाच

कथं संजय राधेयः प्रत्यव्यूहत पाण्डवान्।
धृष्टद्युम्नमुखान् सर्वान् भीमसेनाभिरक्षितान्॥ ५॥
सर्वानेव महेष्वासानजय्यानमरैरपि।
के च प्रपक्षौ पक्षौ वा मम सैन्यस्य संजय॥ ६॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! राधापुत्र कर्णने देवताओंके लिये भी अजेय तथा भीमसेनद्वारा सुरक्षित धृष्टद्युम्न आदि सम्पूर्ण महाधनुर्धर पाण्डव-वीरोंके जवाबमें किस प्रकार व्यूहका निर्माण किया? संजय! मेरी सेनाके दोनों पक्ष और प्रपक्षके रूपमें कौन-कौनसे वीर थे?॥ ५-६॥

प्रविभज्य यथान्यायं कथं वा समवस्थिताः।
कथं पाण्डुसुताश्चापि प्रत्यव्यूहन्त मामकान्॥ ७॥

वे किस प्रकार यथोचित रूपसे योद्धाओंका विभाजन करके खड़े हुए थे? पाण्डवोंने भी मेरे पुत्रोंके मुकाबलेमें कैसे व्यूहका निर्माण किया था?॥ ७॥

कथं चैव महद् युद्धं प्रावर्तत सुदारुणम्।
क च बीभत्सुरभवद् यत् कर्णोऽयाद् युधिष्ठिरम्॥ ८॥

यह अत्यन्त भयंकर महायुद्ध किस प्रकार आरम्भ हुआ? अर्जुन कहाँ थे कि कर्णने युधिष्ठिरपर आक्रमण कर दिया?॥

को ह्यर्जुनस्य सान्निध्ये शक्तोऽभ्येतुं युधिष्ठिरम्।
सर्वभूतानि यो ह्येकः खाण्डवे जितवान् पुरा।
कस्तमन्यस्तु राधेयात् प्रतियुद्ध्येज्जिजीविषुः॥ ९॥

जिन्होंने पूर्वकालमें अकेले ही खाण्डववनमें समस्त प्राणियोंको परास्त कर दिया था, उन अर्जुनके समीप रहते हुए युधिष्ठिरपर कौन आक्रमण कर सकता था? राधापुत्र कर्णके सिवा दूसरा कौन है, जो जीवित रहनेकी इच्छा रखते हुए भी अर्जुनके सामने युद्ध कर सके॥ ९॥

संजय उवाच

शृणु व्यूहस्य रचनामर्जुनश्च यथा गतः।
परिवार्य नृपं स्वं स्वं संग्रामश्चाभवद् यथा॥ १०॥

संजय कहते हैं—राजन्! व्यूहकी रचना किस प्रकार हुई थी, अर्जुन कैसे और कहाँ चले गये थे और अपने-अपने राजाको सब ओरसे घेरकर दोनों दलोंके योद्धाओंने किस प्रकार संग्राम किया था? यह सब बताता हूँ, सुनिये॥

कृपः शारद्वतो राजन् मागधाश्च तरस्विनः।
सात्वतः कृतवर्मा च दक्षिणं पक्षमाश्रिताः॥ ११॥
तेषां प्रपक्षे शकुनिरुलूकश्च महारथः।
सादिभिर्विमलप्रासैस्तवानीकमरक्षताम्॥ १२॥

नरेश्वर! शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्य, वेगशाली मागध वीर और सात्वतवंशी कृतवर्मा—ये व्यूहके दाहिने पक्षका आश्रय लेकर खड़े थे। महारथी शकुनि और उलूक चमचमाते हुए प्रासोंसे सुशोभित घुड़सवारोंके साथ उनके प्रपक्षमें स्थित हो आपके व्यूहकी रक्षा कर रहे थे॥ ११-१२॥

गान्धारिभिरसम्भ्रान्तैः पर्वतीयैश्च दुर्जयैः।
शलभानामिव व्रातैः पिशाचैरिव दुर्दृशैः॥ १३॥

उनके साथ कभी घबराहटमें न पड़नेवाले गान्धारदेशीय सैनिक और दुर्जय पर्वतीय वीर भी थे। पिशाचोंके समान उन योद्धाओंकी ओर देखना कठिन हो रहा था और वे टिड्डी-दलोंके समान यूथ बनाकर चलते थे॥ १३॥

चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि रथानामनिवर्तिनाम्।
संशप्तका युद्धशौण्डा वामं पार्श्वमपालयन्॥ १४॥
समन्वितास्तव सुतैः कृष्णार्जुनजिघांसवः।

श्रीकृष्ण और अर्जुनको मार डालनेकी इच्छावाले युद्ध-निपुण संशप्तक योद्धा युद्धसे कभी पीछे न हटनेवाले रथी वीर थे। उनकी संख्या चौंतीस हजार थी। वे आपके पुत्रोंके साथ रहकर व्यूहके वाम पार्श्वकी रक्षा करते थे॥ १४½॥

तेषां प्रपक्षाः काम्बोजाः शकाश्च यवनैः सह॥ १५॥
निदेशात् सूतपुत्रस्य सरथाः साश्वपत्तयः।
आह्वयन्तोऽर्जुनं तस्थुः केशवं च महाबलम्॥ १६॥

उनके प्रपक्षस्थानमें सूतपुत्रकी आज्ञासे रथों, घुड़सवारों और पैदलोंसहित काम्बोज, शक तथा यवन महाबली श्रीकृष्ण और अर्जुनको ललकारते हुए खड़े थे॥ १५-१६॥

मध्ये सेनामुखे कर्णोऽप्यवातिष्ठत दंशितः।
चित्रवर्माङ्गदः स्रग्वी पालयन् वाहिनीमुखम्॥ १७॥

कर्ण भी विचित्र कवच, अङ्गद और हार धारण करके सेनाके मुखभागकी रक्षा करता हुआ व्यूहके मुहानेपर ठीक बीचो-बीचमें खड़ा था॥ १७॥

रक्ष्यमाणैः सुसंरब्धैः पुत्रैः शस्त्रभृतां वरः।
वाहिनीं प्रमुखे वीरः सम्प्रकर्षन्नशोभत॥ १८॥

अभ्यवर्तन्महाबाहुः सूर्यवैश्वानरप्रभः ।

सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी और शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाबाहु कर्ण रोष और जोशमें भरकर सेनापतिकी रक्षामें तत्पर हुए आपके पुत्रोंके साथ प्रमुख भागमें स्थित हो कौरवसेनाको अपने साथ खींचता हुआ बड़ी शोभा पा रहा था, वह शत्रुओंके सामने डटा हुआ था ॥ १८½ ॥

महाद्विपस्कन्धगतः पिङ्गाक्षः प्रियदर्शनः ॥ १९ ॥
दुःशासनो वृतः सैन्यैः स्थितो व्यूहस्य पृष्ठतः ।

व्यूहके पृष्ठभागमें पिङ्गल नेत्रोंवाला प्रियदर्शन दुःशासन सेनाओंसे घिरा हुआ खड़ा था । वह एक विशाल गजराजकी पीठपर विराजमान था ॥ १९½ ॥

तमन्वयान्महाराज स्वयं दुर्योधनो नृपः ॥ २० ॥
चित्रास्त्रैश्चित्रसंनाहैः सोदर्यैरभिरक्षितः ।
रक्ष्यमाणो महावीर्यैः सहितैर्मद्रकेकयैः ॥ २१ ॥
अशोभत महाराज देवैरिव शतक्रतुः ।

महाराज ! विचित्र अस्त्र और कवच धारण करनेवाले सहोदर भाइयों तथा एक साथ आये हुए मद्र और केकयदेशके महापराक्रमी योद्धाओंद्वारा सुरक्षित साक्षात् राजा दुर्योधन दुःशासनके पीछे-पीछे चल रहा था । महाराज ! उस समय देवताओंसे घिरे हुए देवराज इन्द्रके समान उसकी शोभा हो रही थी ॥ २०–२१½ ॥

अश्वत्थामा कुरूणां च ये प्रवीरा महारथाः ॥ २२ ॥
नित्यमत्ताश्च मातङ्गाः शूरैर्म्लेच्छैः समन्विताः ।
अन्वयुस्तद् रथानीकं क्षरन्त इव तोयदाः ॥ २३ ॥

अश्वत्थामा, कौरवपक्षके प्रमुख महारथी वीर, शौर्यसम्पन्न म्लेच्छ सैनिकोंसे युक्त नित्य मतवाले हाथी वर्षा करनेवाले मेघोंके समान मदकी धारा बहाते हुए उस रथसेनाके पीछे-पीछे चल रहे थे ॥ २२–२३ ॥

ते ध्वजैर्वैजयन्तीभिर्ज्वलद्भिः परमायुधैः ।
सादिभिश्चास्थिता रेजुर्द्रुमवन्त इवाचलाः ॥ २४ ॥

वे हाथी ध्वजों, वैजयन्ती पताकाओं, प्रकाशमान अस्त्र-शस्त्रों तथा सवारोंसे सुशोभित हो वृक्षसमूहोंसे युक्त पर्वतोंके समान शोभा पा रहे थे ॥ २४ ॥

तेषां पदातिनागानां पादरक्षाः सहस्रशः ।
पट्टिशासिधराः शूरा बभूवुरनिवर्तिनः ॥ २५ ॥

पट्टिश और खड्ग धारण किये तथा युद्धसे कभी पीछे न हटनेवाले सहस्रों शूर सैनिक उन पैदलों एवं हाथियोंके पादरक्षक थे ॥ २५ ॥

सादिभिः स्यन्दनैर्नागैरधिकं समलङ्कृतैः ।
स व्यूहराजो विबभौ देवासुरचमूपमः ॥ २६ ॥

अधिकाधिक सुसज्जित हाथियों, रथों और घुड़सवारोंसे सम्पन्न वह व्यूहराज देवताओं और असुरोंकी सेनाके समान सुशोभित हो रहा था ॥ २६ ॥

बार्हस्पत्यः सुविहितो नायकेन विपश्चिता ।
नृत्यतीव महाव्यूहः परेषां भयमादधत् ॥ २७ ॥

विद्वान् सेनापति कर्णके द्वारा बृहस्पतिकी बतायी हुई रीतिके अनुसार भलीभाँति रचा गया वह महान् व्यूह शत्रुओंके मनमें भय उत्पन्न करता हुआ नृत्य-सा कर रहा था ॥

तस्य पक्षप्रपक्षेभ्यो निष्पतन्ति युयुत्सवः ।
पत्त्यश्वरथमातङ्गाः प्रावृषीव बलाहकाः ॥ २८ ॥

उसके पक्ष और प्रपक्षोंसे युद्धके इच्छुक पैदल, घुड़सवार, रथी और गजारोही योद्धा उसी प्रकार निकल पड़ते थे, जैसे वर्षाकालमें मेघ प्रकट होते हैं ॥ २८ ॥

ततः सेनामुखे कर्णं दृष्ट्वा राजा युधिष्ठिरः ।
धनंजयममित्रघ्नमेकवीरमुवाच ह ॥ २९ ॥

तदनन्तर सेनाके मुहानेपर कर्णको खड़ा देख राजा युधिष्ठिरने शत्रुओंका संहार करनेवाले अद्वितीय वीर धनंजयसे इस प्रकार कहा—॥ २९ ॥

पश्यार्जुन महाव्यूहं कर्णेन विहितं रणे ।
युक्तं पक्षैः प्रपक्षैश्च परानीकं प्रकाशते ॥ ३० ॥

'अर्जुन ! रणभूमिमें कर्णद्वारा रचित उस महाव्यूहको देखो । पक्षों और प्रपक्षोंसे युक्त शत्रुकी वह व्यूहबद्ध सेना कैसी प्रकाशित हो रही है ! ॥ ३० ॥



तदेतद् वै समालोक्य प्रत्यमित्रं महद् बलम् ।
यथा नाभिभवत्यस्मांस्तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ ३१ ॥

'अतः इस विशाल शत्रुसेनाकी ओर देखकर तुम ऐसी नीतिका निर्माण करो, जिससे वह हमें परास्त न कर सके' ॥

एवमुक्तोऽर्जुनो राज्ञा प्राञ्जलिर्नृपमब्रवीत् ।

यथा भवानाह तथा तत् सर्वं न तदन्यथा ॥ ३२ ॥

राजा युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर अर्जुन हाथ जोड़कर उनसे बोले—'भारत ! आप जैसा कहते हैं वह सब वैसा ही है। उसमें थोड़ा-सा भी अन्तर नहीं है ॥ ३२ ॥

यस्त्वस्य विहितो घातस्तं करिष्यामि भारत ।
प्रधानवध एवास्य विनाशस्तं करोम्यहम् ॥ ३३ ॥

'युद्धशास्त्रमें इस व्यूहके विनाशके लिये जो उपाय बताया गया है, उसीका सम्पादन करूँगा। प्रधान सेनापतिका वध होनेपर ही इसका विनाश हो सकता है; अतः मैं वही करूँगा' ॥ ३३ ॥

युधिष्ठिर उवाच

तस्मात् त्वमेव राधेयं भीमसेनः सुयोधनम् ।
वृषसेनं च नकुलः सहदेवोऽपि सौबलम् ॥ ३४ ॥
दुःशासनं शतानीको हार्दिक्यं शिनिपुङ्गवः ।
धृष्टद्युम्नो द्रोणसुतं स्वयं योत्स्याम्यहं कृपम् ॥ ३५ ॥

युधिष्ठिर बोले—अर्जुन ! तब तुम्हीं राधापुत्र कर्णके साथ भिड़ जाओ ! भीमसेन दुर्योधनसे, नकुल वृषसेनसे, सहदेव शकुनिसे, शतानीक दुःशासनसे, सात्यकि कृतवर्मासे और धृष्टद्युम्न अश्वत्थामासे युद्ध करें तथा स्वयं मैं कृपाचार्यके साथ युद्ध करूँगा ॥ ३४-३५ ॥

द्रौपदेया धार्तराष्ट्राञ्शिष्टान् सह शिखण्डिना ।
ते ते च तांस्तानहितानस्माकं घ्नन्तु मामकाः ॥ ३६ ॥

द्रौपदीके पुत्र शिखण्डीके साथ रहकर धृतराष्ट्रके शेष बचे हुए पुत्रोंपर धावा करें। इसी प्रकार हमारे विभिन्न सैनिक हमलोगोंके उन-उन शत्रुओंका विनाश करें ॥ ३६ ॥

संजय उवाच

इत्युक्तो धर्मराजेन तथेत्युक्त्वा धनंजयः ।
व्यादिदेश स्वसैन्यानि स्वयं चागाच्चमूमुखम् ॥ ३७ ॥

धर्मराजके ऐसा कहनेपर अर्जुनने 'तथास्तु' कहकर अपनी सेनाओंको युद्धके लिये आदेश दे दिया और स्वयं वे सेनाके मुहानेपर जा पहुँचे ॥ ३७ ॥

(धनंजयो महाराज दक्षिणं पक्षमास्थितः ।
भीमसेनो महाबाहुर्वामं पक्षमुपाश्रितः ॥
सात्यकिर्द्रौपदेयाश्च स्वयं राजा च पाण्डवः ।
व्यूहस्य प्रमुखे तस्थुः स्वेनानीकेन संवृताः ॥
स्वबलेनारिसैन्यं तत् प्रत्यवस्थाप्य पाण्डवः ।
प्रत्यव्यूहत् पुरस्कृत्य धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥
तत् सादिनागकलिलं पदातिरथसंकुलम् ।
धृष्टद्युम्नमुखं व्यूहमशोभत महाबलम् ॥)

महाराज ! अर्जुन दाहिने पक्षमें खड़े हुए और महाबाहु भीमसेनने बायें पक्षका आश्रय लिया। सात्यकि, द्रौपदीके पुत्र तथा स्वयं राजा युधिष्ठिर अपनी सेनासे घिरकर व्यूहके मुहानेपर खड़े हुए। युधिष्ठिरने अपनी सेना द्वारा प्रतिरोध करके शत्रुकी उस सेनाको ठहर जानेके लिये विवश कर दिया और धृष्टद्युम्न तथा शिखण्डीको आगे करके उसके मुकाबलेमें अपनी सेनाका व्यूह बनाया। घुड़सवारों, हाथियों, पैदलों और रथोंसे भरा हुआ वह प्रबल व्यूह, जिसके प्रमुख भागमें धृष्टद्युम्न थे, बड़ी शोभा पा रहा था ॥

अग्निर्वैश्वानरः पूर्वो ब्रह्मेद्धः सवितां गतः ।
तस्माद् यः प्रथमं जातस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ ३८ ॥

वेद-मन्त्रोंद्वारा प्रज्वलित और सबसे पहले प्रकट हुए सम्पूर्ण विश्वके नेता अग्निदेव, जो ब्रह्माजीके मुखसे सर्वप्रथम उत्पन्न हैं और इसी कारण देवता जिन्हें ब्राह्मण मानते हैं, अर्जुनके उस दिव्य रथके अश्व बने हुए थे ॥ ३८ ॥

ब्रह्मेशानेन्द्रवरुणान् क्रमशो योऽवहत् पुरा ।
तमाद्यं रथमास्थाय प्रयातौ केशवार्जुनौ ॥ ३९ ॥

जो प्राचीन कालमें क्रमशः ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र और वरुणकी सवारीमें आ चुका था, उसी आदि रथपर बैठकर श्रीकृष्ण और अर्जुन शत्रुओंकी ओर बढ़े चले जा रहे थे ॥ ३९ ॥

अथ तं रथमायान्तं दृष्ट्वात्यद्भुतदर्शनम् ।
उवाचाधिरथिं शल्यः पुनस्तं युद्धदुर्मदम् ॥ ४० ॥

अत्यन्त अद्भुत दिखायी देनेवाले उस रथको आते देख शल्यने रणदुर्मद सूतपुत्र कर्णसे पुनः इस प्रकार कहा—॥४०॥

अयं स रथ आयातः श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ।
दुर्वारः सर्वसैन्यानां विपाकः कर्मणामिव ॥ ४१ ॥
निघ्नन्नमित्रान् कौन्तेयो यं कर्ण परिपृच्छसि ।

'कर्ण ! तुम जिन्हें बारंबार पूछ रहे थे, वे ही ये कुन्तीकुमार अर्जुन शत्रुओंका संहार करते हुए रथके साथ आ पहुँचे। उनके घोड़े श्वेत रंगके हैं, श्रीकृष्ण उनके सारथि हैं और वे कर्मोंके फलकी भाँति तुम्हारी सम्पूर्ण सेनाओंके लिये दुर्निवार्य हैं ॥ ४१½ ॥

श्रूयते तुमुलः शब्दो यथा मेघस्वनो महान् ॥ ४२ ॥
ध्रुवमेतौ महात्मानौ वासुदेवधनंजयौ ।

'उनके रथका भयंकर शब्द ऐसा सुनायी दे रहा है, मानो महान् मेघकी गर्जना हो रही हो। निश्चय ही वे महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन ही आ रहे हैं ॥ ४२½ ॥

एष रेणुः समुद्भूतो दिवमावृत्य तिष्ठति ॥ ४३ ॥
चक्रनेमिप्रणुन्नेव कम्पते कर्ण मेदिनी ।

'कर्ण ! यह ऊपर उठी हुई धूल आकाशको आच्छादित करके स्थित हो रही है और यह पृथ्वी अर्जुनके रथके पहियोंद्वारा संचालित-सी होकर काँपने लगी है ॥ ४३½ ॥

प्रवात्येष महावायुरभितस्तव वाहिनीम् ॥ ४४ ॥
क्रव्यादा व्याहरन्त्येते मृगाः क्रन्दन्ति भैरवम् ।

'तुम्हारी सेनाके सब ओर यह प्रचण्ड वायु बह रही है, ये मांसभक्षी पशु-पक्षी बोल रहे हैं और मृगगण भयंकर क्रन्दन कर रहे हैं ॥ ४४½ ॥

पश्य कर्ण महाघोरं भयदं लोमहर्षणम् ॥ ४५ ॥
कबन्धं मेघसंकाशं भानुमावृत्य संस्थितम् ।

'कर्ण ! वह देखो, रोंगटे खड़े कर देनेवाला भयदायक मेघसदृश महाघोर कबन्धाकार केतु नामक ग्रह सूर्यमण्डलको घेरकर खड़ा है ॥ ४५½ ॥

पश्य यूथैर्बहुविधैर्मृगाणां सर्वतोदिशम् ॥ ४६ ॥
बलिभिर्दृप्तशार्दूलैरादित्योऽभिनिरीक्ष्यते ।

'देखो, चारों दिशाओंमें नाना प्रकारके पशुसमुदाय तथा बलवान् एवं स्वाभिमानी सिंह सूर्यकी ओर देख रहे हैं ॥

पश्य कङ्कांश्च गृध्रांश्च समवेतान् सहस्रशः ॥ ४७ ॥
स्थितानभिमुखान् घोरानन्योन्यमभिभाषतः ।

'देखो, सहस्रों घोर कङ्क और गीध एकत्र होकर सामने खड़े हैं और आपसमें कुछ बोल भी रहे हैं ॥ ४७½ ॥

रञ्जिताश्चामरा युक्तास्तव कर्ण महारथे ॥ ४८ ॥
प्रवराः प्रज्वलन्त्येते ध्वजश्चैव प्रकम्पते ।

'कर्ण ! तुम्हारे विशाल रथमें बँधे हुए ये रंगीन और श्रेष्ठ चँवर सहसा प्रज्वलित हो उठे हैं और तुम्हारी ध्वजा भी जोर-जोरसे हिलने लगी है ॥ ४८½ ॥

सवेपथून् हयान् पश्य महाकायान् महाजवान् ।४९।
प्लवमानान् दर्शनीयानाकाशे गरुडानिव ।

'देखो, ये तुम्हारे विशालकाय, महान् वेगशाली, दर्शनीय तथा आकाशमें गरुडके समान उड़नेवाले घोड़े थर्थर काँप रहे हैं ॥ ४९½ ॥

ध्रुवमेषु निमित्तेषु भूमिमाश्रित्य पार्थिवाः ॥ ५० ॥
स्वप्स्यन्ति निहताः कर्ण शतशोऽथ सहस्रशः ।

'कर्ण ! जब ऐसे अपशकुन प्रकट हो रहे हैं तो निश्चय ही आज सैकड़ों और हजारों नरेश मारे जाकर रणभूमिमें शयन करेंगे ॥ ५०½ ॥

शङ्खानां तुमुलः शब्दः श्रूयते लोमहर्षणः ॥ ५१ ॥
आनकानां च राधेय मृदङ्गानां च सर्वशः ।

'राधानन्दन ! सब ओर शङ्खों, ढोलों और मृदङ्गोंकी रोमाञ्चकारी तुमुल-ध्वनि सुनायी दे रही है ॥ ५१½ ॥

बाणशब्दान् बहुविधान् नराश्वरथनिस्वनान् ॥ ५२ ॥
ज्यातलत्रेषुशब्दांश्च शृणु कर्ण महात्मनाम् ।

'कर्ण ! बाणोंके भाँति-भाँतिके शब्द, मनुष्यों, घोड़ों और रथोंके कोलाहल तथा महामनस्वी वीरोंकी प्रत्यञ्चा और दस्तानोंके शब्द सुनो ॥ ५२½ ॥

हेमरूप्यप्रसृष्टानां वाससां शिल्पिनिर्मिताः ॥ ५३ ॥
नानावर्णा रथे भान्ति श्वसनेन प्रकम्पिताः ।

रथोंकी ध्वजाओंपर सोने और चाँदीके तारोंसे खचित वस्त्रोंकी बनी हुई शिल्पियोंद्वारा निर्मित बहुरंगी पताकाएँ हवाके झोंकेसे हिलती हुई कैसी शोभा पा रही हैं ॥ ५३½ ॥

सहेमचन्द्रतारार्काः पताकाः किङ्किणीयुताः ॥ ५४ ॥
पश्य कर्णार्जुनस्यैताः सौदामन्य इवाम्बुदे ।

'कर्ण ! देखो, अर्जुनके रथकी इन पताकाओंमें सुवर्णमय चन्द्रमा, सूर्य और तारोंके चिह्न बने हुए हैं और छोटी-छोटी घंटियाँ लगी हुई हैं । रथपर फहराती हुई ये पताकाएँ मेघोंकी घटामें बिजलीके समान प्रकाशित हो रही हैं ॥५४½॥

ध्वजाः कणकणायन्ते वातेनाभिसमीरिताः ॥ ५५ ॥
विभ्राजन्ति रथे कर्ण विमाने दैवते यथा ।

'कर्ण ! देवताओंके विमान-जैसे रथपर ये ध्वज हवाके झोंके खा-खाकर कड़कड़ शब्द करते हुए शोभा पा रहे हैं ॥

सपताका रथाश्चैते पञ्चालानां महात्मनाम् ॥ ५६ ॥
पश्य कुन्तीसुतं वीरं बीभत्सुमपराजितम् ।
प्रधर्षयितुमायान्तं कपिप्रवरकेतनम् ॥ ५७ ॥

'ये महामनस्वी पाञ्चाल वीरोंके रथ हैं, जिनपर पताकाएँ फहरा रही हैं । यह देखो, श्रेष्ठ वानरयुक्त ध्वजावाले अपराजित वीर कुन्तीकुमार अर्जुन आक्रमण करनेके लिये इधर ही आ रहे हैं ॥ ५६—५७ ॥

एष ध्वजाग्रे पार्थस्य प्रेक्षणीयः समन्ततः ।
दृश्यते वानरो भीमो द्विषतामघवर्धनः ॥ ५८ ॥

'अर्जुनके ध्वजके अग्रभागपर यह सब ओरसे देखने योग्य भयंकर वानर दृष्टिगोचर होता है, जो शत्रुओंका दुःख बढ़ानेवाला है ॥ ५८ ॥

एतच्चक्रं गदा शार्ङ्गं शङ्खः कृष्णस्य धीमतः ।
अत्यर्थं भ्राजते कृष्णे कौस्तुभस्तु मणिस्ततः ॥ ५९ ॥

'ये बुद्धिमान् श्रीकृष्णके शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनुष अत्यन्त शोभा पा रहे हैं । उनके वक्षःस्थलपर कौस्तुभमणि सबसे अधिक प्रकाशित हो रही है ॥ ५९ ॥

एष शङ्खगदापाणिर्वासुदेवोऽतिवीर्यवान् ।
वाहयन्नेति तुरगान् पाण्डुरान् वातरंहसः ॥ ६० ॥

'हाथोंमें शङ्ख और गदा धारण करनेवाले ये अत्यन्त पराक्रमी वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण वायुके समान वेगशाली श्वेत घोड़ोंको हाँकते हुए इधर ही आ रहे हैं ॥ ६० ॥

एतत् कूजति गाण्डीवं विकृष्टं सव्यसाचिना ।
एते हस्तवता मुक्ता घ्नन्त्यमित्राञ्शिताः शराः ॥ ६१ ॥

'सव्यसाची अर्जुनके हाथसे खींचे गये गाण्डीव धनुषकी यह टङ्कार होने लगी । उनके कुशल हाथोंसे छोड़े गये ये पैने बाण शत्रुओंके प्राण ले रहे हैं ॥ ६१ ॥

विशालायतताम्राक्षैः पूर्णचन्द्रनिभाननैः ।
एषा भूः कीर्यते राज्ञां शिरोभिरपलायिनाम् ॥ ६२ ॥

'युद्ध छोड़कर पीछे न हटनेवाले राजाओंके मस्तकोंसे रणभूमि पटती जा रही है। वे मस्तक पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुख और लाल-लाल विशाल नेत्रोंसे सुशोभित हैं ॥

एते सुपरिघाकाराः पुण्यगन्धानुलेपनाः।
उद्यतायुधशौण्डानां पात्यन्ते सायुधा भुजाः॥ ६३॥

'अस्त्र उठाये हुए युद्ध-कुशल वीरोंकी ये परिघ-जैसी मोटी और पवित्र सुगन्धयुक्त चन्दनसे चर्चित भुजाएँ आयुधोंसहित काटकर गिरायी जाने लगी हैं ॥ ६३ ॥

निरस्तनेत्रजिह्वान्त्रा वाजिनः सह सादिभिः।
पतिताः पात्यमानाश्च क्षितौ क्षीणाश्च शेरते॥ ६४॥

'जिनके नेत्र, जीभ और आँतें बाहर निकल आयी हैं, वे गिरे और गिराये जाते हुए घुड़सवारोंसहित घोड़े क्षत-विक्षत होकर पृथ्वीपर सो रहे हैं ॥ ६४ ॥

एते पर्वतशृङ्गाणां तुल्यरूपा हता द्विपाः।
संछिन्नभिन्नाः पार्थेन प्रपतन्त्यद्रयो यथा॥ ६५॥

'ये पर्वतशिखरोंके समान विशालकाय हाथी अर्जुनके द्वारा मारे जाकर छिन्न-भिन्न हो पर्वतोंके समान धराशायी हो रहे हैं ॥ ६५ ॥

गन्धर्वनगराकारा रथा हतनरेश्वराः।
विमानानीव पुण्यानि स्वर्गिणां निपतन्त्यमी॥ ६६॥

'जिनके नरेश मारे गये हैं, वे गन्धर्वनगरके समान विशाल रथ स्वर्गवासियोंके पुण्यमय विमानोंके समान नीचे गिर रहे हैं ॥ ६६ ॥

व्याकुलीकृतमत्यर्थं पश्य सैन्यं किरीटिना।
नानामृगसहस्राणां यूथं केसरिणा यथा॥ ६७॥

'देखो, किरीटधारी अर्जुनने कौरवसेनाको उसी प्रकार अत्यन्त व्याकुल कर दिया है, जैसे सिंह नाना जातिके सहस्रों मृगोंको भयभीत कर देता है ॥ ६७ ॥

घ्नन्त्येते पार्थिवान् वीराः पाण्डवाः समभिद्रुताः।
नागाश्वरथपत्त्योघांस्तावकान् समभिघ्नतः॥ ६८॥

'तुम्हारे सैनिकोंके आक्रमण करनेपर ये वीर पाण्डव-योद्धा अपने ऊपर प्रहार करनेवाले राजाओं तथा हाथी, घोड़े, रथ और पैदलसमूहोंको मार रहे हैं ॥ ६८ ॥

एष सूर्य इवाम्भोदैश्छन्नः पार्थो न दृश्यते।
ध्वजाग्रं दृश्यते त्वस्य ज्याशब्दश्चापि श्रूयते॥ ६९॥

'जैसे सूर्य बादलोंसे ढक जाते हैं, उसी प्रकार आड़में पड़ जानेके कारण ये अर्जुन नहीं दिखायी देते हैं; परंतु इनके ध्वजका अग्रभाग दीख रहा है और प्रत्यञ्चाकी टंकार भी सुनायी पड़ती है ॥ ६९ ॥

अद्य द्रक्ष्यसि तं वीरं श्वेताश्वं कृष्णसारथिम्।
निघ्नन्तं शात्रवान् संख्ये यं कर्ण परिपृच्छसि॥ ७०॥

'कर्ण ! तुम जिन्हें पूछ रहे थे, युद्धस्थलमें शत्रुओंका संहार करते हुए उन कृष्णसारथि श्वेतवाहन वीर अर्जुनको अभी देखोगे ॥ ७० ॥

अद्य तौ पुरुषव्याघ्रौ लोहिताक्षौ परंतपौ।
वासुदेवार्जुनौ कर्ण द्रष्टास्येकरथे स्थितौ॥ ७१॥

'कर्ण ! लाल नेत्रोंवाले उन शत्रुसंतापी पुरुषसिंह श्रीकृष्ण और अर्जुनको आज तुम एक रथपर बैठे हुए देखोगे ॥७१॥

सारथिर्यस्य वार्ष्णेयो गाण्डीवं यस्य कार्मुकम्।
तं चेद्धन्तासि राधेय त्वं नो राजा भविष्यसि॥७२॥

'राधापुत्र ! श्रीकृष्ण जिनके सारथि हैं और गाण्डीव जिनका धनुष है, उन अर्जुनको यदि तुमने मार लिया तो तुम हमारे राजा हो जाओगे ॥ ७२ ॥

एष संशप्तकाहूतस्तानेवाभिमुखो गतः।
करोति कदनं चैषां संग्रामे द्विषतां बली॥ ७३॥

'यह देखो, संशप्तकोंकी ललकार सुनकर महाबली अर्जुन उन्हींकी ओर चल पड़े और अब संग्राममें उन शत्रुओंका संहार कर रहे हैं' ॥ ७३ ॥

इति ब्रुवाणं मद्रेशं कर्णः प्राहातिमन्युना।
पश्य संशप्तकैः क्रुद्धैः सर्वतः समभिद्रुतः॥ ७४॥

ऐसी बातें कहते हुए मद्रराज शल्यसे कर्णने अत्यन्त क्रोधपूर्वक कहा—'तुम्हीं देखो न, रोषमें भरे हुए संशप्तकोंने उनपर चारों ओरसे आक्रमण कर दिया है ॥ ७४ ॥

एष सूर्य इवाम्भोदैश्छन्नः पार्थो न दृश्यते।
एतदन्तोऽर्जुनः शल्य निमग्नो योधसागरे॥ ७५॥

'यह लो, बादलोंसे ढके हुए सूर्यके समान अर्जुन अब नहीं दिखायी देते हैं। शल्य ! अब अर्जुनका यहीं अन्त हुआ समझो। वे योद्धाओंके समुद्रमें डूब गये' ॥ ७५ ॥

शल्य उवाच

वरुणं कोऽम्भसा हन्यादिन्धनेन च पावकम्।
को वानिलं निगृह्णीयात् पिबेद् वा को महार्णवम्॥७६॥

शल्यने कहा—कर्ण ! कौन ऐसा वीर है, जो जलसे वरुणको और ईंधनसे अग्निको मार सके ? वायुको कौन कैद कर सकता है अथवा महासागरको कौन पी सकता है ?॥७६॥

ईदृग्रूपमहं मन्ये पार्थस्य युधि विग्रहम्।
न हि शक्योऽर्जुनो जेतुं युधि सेन्द्रैः सुरासुरैः॥ ७७॥

मैं युद्धमें अर्जुनके स्वरूपको ऐसा ही समझता हूँ। संग्रामभूमिमें इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओं तथा असुरोंके द्वारा भी अर्जुन नहीं जीते जा सकते ॥ ७७ ॥

अथवा परितोषस्ते वाचोक्त्वा सुमना भव।
न स शक्यो युधा जेतुमन्यं कुरु मनोरथम्॥ ७८॥

अथवा यदि तुम्हें इसीसे संतोष होता है तो वाणीमात्रसे अर्जुनके वधकी चर्चा करके मन-ही-मन प्रसन्न हो लो। परंतु वास्तवमें युद्धके द्वारा कोई भी अर्जुनको जीत नहीं

सकता । अतः अब तुम कोई और ही मनसूबा बाँधो ॥७८॥

बाहुभ्यामुद्धरेद् भूमिं दहेत् क्रुद्ध इमाः प्रजाः ।
पातयेत् त्रिदिवाद् देवान् योऽर्जुनं समरे जयेत् ॥७९॥

जो समराङ्गणमें अर्जुनको जीत ले, वह मानो अपनी दोनों भुजाओंसे पृथ्वीको उठा सकता है, कुपित होनेपर इस सारी प्रजाको दग्ध कर सकता है तथा देवताओंको भी स्वर्गसे नीचे गिरा सकता है ॥ ७९ ॥

पश्य कुन्तीसुतं वीरं भीममक्लिष्टकारिणम् ।
प्रभासन्तं महाबाहुं स्थितं मेरुमिवापरम् ॥ ८० ॥

लो देख लो, अनायास ही महान् कर्म करनेवाले भयंकर वीर महाबाहु कुन्तीकुमार अर्जुन दूसरे मेरुपर्वतके समान अविचल भावसे खड़े हुए प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ८० ॥

अमर्षी नित्यसंरब्धश्चिरं वैरमनुस्मरन् ।
एष भीमो जयप्रेप्सुर्युधि तिष्ठति वीर्यवान् ॥ ८१ ॥

सदा क्रोधमें भरे रहकर दीर्घकालतक बैरको याद रखनेवाले ये अमर्षशील पराक्रमी भीमसेन विजयकी अभिलाषा लेकर युद्धके लिये खड़े हैं ॥ ८१ ॥

एष धर्मभृतां श्रेष्ठो धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
तिष्ठत्यसुकरः संख्ये परैः परपुरञ्जयः ॥ ८२ ॥

शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले, ये धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिर भी युद्धभूमिमें खड़े हैं । शत्रुओंके लिये इन्हें पराजित करना आसान नहीं है ॥ ८२ ॥

एतौ च पुरुषव्याघ्रावश्विनाविव सोदरौ ।
नकुलः सहदेवश्च तिष्ठतो युधि दुर्जयौ ॥ ८३ ॥

ये अश्विनीकुमारोंके समान सुन्दर दोनों भाई पुरुषप्रवर नकुल और सहदेव भी युद्धस्थलमें खड़े हैं । इन्हें पराजित करना अत्यन्त कठिन है ॥ ८३ ॥

अमी स्थिता द्रौपदेयाः पञ्च पञ्चाचला इव ।
व्यवस्थिता योद्धुकामाः सर्वेऽर्जुनसमा युधि ॥ ८४ ॥

ये द्रौपदीके पाँचों पुत्र पाँच पर्वतोंके समान अविचल भावसे युद्धके लिये खड़े हैं । रणभूमिमें ये सब-के-सब अर्जुनके समान पराक्रमी हैं ॥ ८४ ॥

एते द्रुपदपुत्राश्च धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ।
स्फीताः सत्यजितो वीरास्तिष्ठन्ति परमौजसः ॥ ८५ ॥

ये समृद्धिशाली, सत्यविजयी तथा परम बलवान् द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न आदि वीर युद्धके लिये डटे हुए हैं ॥ ८५ ॥

असाविन्द्र इवासह्यः सात्यकिः सात्वतां वरः ।
युयुत्सुरुपयात्यस्मान् क्रुद्धान्तकसमः पुरः ॥ ८६ ॥

वह सामने सात्वतवंशके श्रेष्ठ वीर सात्यकि, जो शत्रुओंके लिये इन्द्रके समान असह्य हैं, क्रोधमें भरे हुए यमराजके समान युद्धकी इच्छा लेकर सामनेसे हमलोगोंकी ओर आ रहे हैं ॥ ८६ ॥

इति संवदतोरेव तयोः पुरुषसिंहयोः ।
ते सेने समसज्जेतां गङ्गायमुनवद् भृशम् ॥ ८७ ॥

राजन् ! वे दोनों पुरुषसिंह शल्य और कर्ण इस प्रकार बातें कर ही रहे थे कि कौरव और पाण्डवकी दोनों सेनाएँ गङ्गा और यमुनाके समान एक दूसरीसे वेगपूर्वक जा मिलीं ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्ण और शल्यका संवादविषयक छियालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४६ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १६ श्लोक मिलाकर कुल १०३ श्लोक हैं)

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

कौरवों और पाण्डवोंकी सेनाओंका भयंकर युद्ध तथा अर्जुन और कर्णका पराक्रम

धृतराष्ट्र उवाच

तथा व्यूढेष्वनीकेषु संसक्तेषु च संजय ।
संशप्तकान् कथं पार्थो गतः कर्णश्च पाण्डवान् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! इस प्रकार जब सारी सेनाओंकी व्यूहरचना हो गयी और दोनों दलोंके योद्धा परस्पर युद्ध करने लगे, तब कुन्तीपुत्र अर्जुनने संशप्तकोंपर और कर्णने पाण्डव-योद्धाओंपर कैसे धावा किया ? ॥ १ ॥

एतद् विस्तरशो युद्धं प्रब्रूहि कुशलो ह्यसि ।
न हि तृप्यामि वीराणां शृण्वानो विक्रमान् रणे ॥२॥

सूत ! तुम युद्धसम्बन्धी इस समाचारका विस्तारपूर्वक वर्णन करो, क्योंकि इस कार्यमें कुशल हो । रणभूमिमें वीरोंके पराक्रमका वर्णन सुनकर मुझे तृप्ति नहीं हो रही है ॥२॥

संजय उवाच

तदास्थितमवज्ञाय प्रत्यमित्रबलं महत् ।
अव्यूहतार्जुनो व्यूहं पुत्रस्य तव दुर्नये ॥ ३ ॥

संजयने कहा—महाराज ! आपके पुत्रकी दुर्नीतिके कारण शत्रुओंकी उस विशाल सेनाको युद्धमें उपस्थित जानकर अर्जुनने अपनी सेनाका भी व्यूह बनाया ॥ ३ ॥

तत् सादिनागकलिलं पदातिरथसंकुलम् ।
धृष्टद्युम्नमुखं व्यूहमशोभत महद् बलम् ॥ ४ ॥

घुड़सवारों, हाथियों, रथों तथा पैदलोंसे भरे हुए उस व्यूहके मुखभागमें धृष्टद्युम्न खड़े थे, जिससे उस विशाल सेनाकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ ४ ॥

पारावतसवर्णाश्वश्चन्द्रादित्यसमद्युतिः ।
पार्षतः प्रबभौ धन्वी कालो विग्रहवानिव ॥ ५ ॥

कबूतरके समान रंगवाले घोड़ोंसे युक्त और चन्द्रमा तथा सूर्यके समान तेजस्वी धनुर्धर वीर द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न वहाँ मूर्तिमान् कालके समान जान पड़ते थे ॥ ५ ॥

पार्षतं जुगुपुः सर्वे द्रौपदेया युयुत्सवः ।
दिव्यवर्मायुधधराः शार्दूलसमविक्रमाः ॥ ६ ॥
सानुगा दीप्तवपुषश्चन्द्रं तारागणा इव ।

दिव्य कवच और आयुध धारण किये, सिंहके समान पराक्रमी सेवकोंसहित समस्त द्रौपदीपुत्र युद्धके लिये उत्सुक हो धृष्टद्युम्नकी रक्षा करने लगे, मानो तेजस्वी शरीरवाले नक्षत्र चन्द्रमाका संरक्षण कर रहे हों ॥ ६½ ॥

अथ व्यूढेष्वनीकेषु प्रेक्ष्य संशप्तकान् रणे ॥ ७ ॥
क्रुद्धोऽर्जुनोऽभिदुद्राव व्याक्षिपन् गाण्डिवं धनुः ।

इस प्रकार सेनाओंकी व्यूह-रचना हो जानेपर रणभूमिमें संशप्तकोंकी ओर देखकर क्रोधमें भरे हुए अर्जुनने गाण्डीव धनुषकी टंकार करते हुए उनपर आक्रमण किया ॥ ७½ ॥

अथ संशप्तकाः पार्थमभ्यधावन् वधैषिणः ॥ ८ ॥
विजये धृतसंकल्पा मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ।

तब विजयका दृढ़ संकल्प लेकर मृत्युको ही युद्धसे निवृत्त होनेका निमित्त बनाकर अर्जुनके वधकी इच्छावाले संशप्तकोंने भी उनपर धावा बोल दिया ॥ ८½ ॥

तन्नराश्वौघबहुलं मत्तनागरथाकुलम् ॥ ९ ॥
पत्तिमच्छूरवीरौघं द्रुतमर्जुनमार्दयत् ।

संशप्तकोंकी सेनामें पैदल मनुष्यों और घुड़सवारोंकी संख्या बहुत अधिक थी। मतवाले हाथी और रथ भी भरे हुए थे। पैदलोंसहित शूरवीरोंके उस समुदायने तुरंत ही अर्जुनको पीड़ा देना आरम्भ किया ॥ ९½ ॥

स सम्प्रहारस्तुमुलस्तेषामासीत् किरीटिना ॥ १० ॥
तस्यैव नः श्रुतो यादृङ्निवातकवचैः सह ।

किरीटधारी अर्जुनके साथ संशप्तकोंका वह संग्राम वैसा ही भयानक था, जैसा कि निवातकवच नामक दानवोंके साथ अर्जुनका युद्ध हमने सुन रक्खा है ॥ १०½ ॥

रथानश्वान् ध्वजान् नागान् पत्तीन् रणगतानपि ॥ ११ ॥
इषून् धनूंषि खड्गांश्च चक्राणि च परश्वधान् ।
सायुधानुद्यतान् बाहून् विविधान्यायुधानि च ॥ १२ ॥
चिच्छेद द्विषतां पार्थः शिरांसि च सहस्रशः ।

तदनन्तर कुन्तीकुमार अर्जुनने रणस्थलमें आये हुए शत्रुपक्षके रथों, घोड़ों, ध्वजों, हाथियों और पैदलोंको भी काट डाला, उन्होंने शत्रुओंके धनुष, बाण, खड्ग, चक्र, फरसे, आयुधोंसहित उठी हुई भुजा, नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र तथा सहस्रों मस्तक काट गिराये ॥ ११-१२½ ॥

तस्मिन् सैन्यमहावर्ते पातालतलसंनिभे ॥ १३ ॥
निमग्नं तं रथं मत्वा नेदुः संशप्तका मुदा ।

सेनाओंकी उस विशाल भँवरमें जो पातालतलके समान प्रतीत होता था, अर्जुनके उस रथको निमग्न हुआ मानकर संशप्तक सैनिक प्रसन्न हो सिंहनाद करने लगे ॥ १३½ ॥

स पुनस्तानरीन् हत्वा पुनरुत्तरतोऽवधीत् ॥ १४ ॥
दक्षिणेन च पश्चाच्च क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव ।

तत्पश्चात् उन शत्रुओंका वध करके पुनः अर्जुनने कुपित हो उत्तर, दक्षिण और पश्चिमकी ओरसे आपकी सेनाका उसी प्रकार संहार आरम्भ किया, जैसे प्रलयकालमें रुद्रदेव पशुओं (जगत्के प्राणियों) का विनाश करते हैं ॥ १४½ ॥

अथ पञ्चालचेदीनां सृंजयानां च मारिष ॥ १५ ॥
त्वदीयैः सह संग्राम आसीत् परमदारुणः ।

माननीय नरेश ! फिर आपके सैनिकोंके साथ पाञ्चाल, चेदि और सृंजय वीरोंका अत्यन्त भयंकर संग्राम होने लगा १५½

कृपश्च कृतवर्मा च शकुनिश्चापि सौबलः ॥ १६ ॥
हृष्टसेनाः सुसंरब्धा रथानीकप्रहारिणः ।
कोसलैः काश्यमत्स्यैश्च कारूषैः केकयैरपि ॥ १७ ॥
शूरसेनैः शूरवरैर्युयुधुर्युद्धदुर्मदाः ।

रथियोंकी सेनामें प्रहार करनेमें कुशल कृपाचार्य, कृतवर्मा और सुबलपुत्र शकुनि—ये रणदुर्मद वीर अत्यन्त कुपित हो हर्षमें भरी हुई सेना साथ लेकर कोसल, काशि, मत्स्य, करूष, केकय तथा शूरसेनदेशीय शूरवीरोंके साथ युद्ध करने लगे ॥ १६-१७½ ॥

तेषामन्तकरं युद्धं देहपाप्मासुनाशनम् ॥ १८ ॥
क्षत्रविट्शूद्रवीराणां धर्म्यं स्वर्ग्यं यशस्करम् ।

उनका वह युद्ध क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रवीरोंके शरीर, पाप और प्राणोंका विनाश करनेवाला, संहारकारी, धर्मसंगत, स्वर्गदायक तथा यशकी वृद्धि करनेवाला था ॥ १८½ ॥

दुर्योधनोऽथ सहितो भ्रातृभिर्भरतर्षभ ॥ १९ ॥
गुप्तः कुरुप्रवीरैश्च मद्राणां च महारथैः ।
पाण्डवैः सह पञ्चालैश्चेदिभिः सात्यकेन च ॥ २० ॥
युध्यमानं रणे कर्णं कुरुवीरो व्यपालयत् ।

भरतश्रेष्ठ ! भाइयोंसहित कुरुवीर दुर्योधन कौरव वीरों तथा मद्रदेशीय महारथियोंसे सुरक्षित हो रणभूमिमें पाण्डवों, पाञ्चालों, चेदिदेशके वीरों तथा सात्यकिके साथ जूझते हुए कर्णकी रक्षा करने लगा ॥ १९-२०½ ॥

कर्णोऽपि निशितैर्बाणैर्विनिहत्य महाचमूम् ॥ २१ ॥
प्रमृद्य च रथश्रेष्ठान् युधिष्ठिरमपीडयत् ।

कर्ण भी अपने पैने बाणोंसे विशाल पाण्डवसेनाको हताहत करके बड़े-बड़े रथियोंको धूलमें मिलाकर युधिष्ठिरको पीड़ा देने लगा ॥ २१½ ॥

विवस्त्रायुधदेहासून् कृत्वा शत्रून् सहस्रशः ॥ २२ ॥
युक्त्वा स्वर्गयशोभ्यां च स्वेभ्यो मुदमुदावहत्।

वह सहस्रों शत्रुओंको वस्त्र, आयुध, शरीर और प्राणोंसे शून्य करके उन्हें स्वर्ग और सुयशसे संयुक्त करता हुआ आत्मीयजनोंको आनन्द प्रदान करने लगा॥२२½॥

एवं मारिष संग्रामो नरवाजिगजक्षयः।
कुरूणां सृञ्जयानां च देवासुरसमोऽभवत् ॥ २३ ॥

मान्यवर ! इस प्रकार मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंका विनाश करनेवाला वह कौरवों तथा सृंजयोंका युद्ध देवासुर-संग्रामके समान भयंकर था ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक सैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

कर्णके द्वारा बहुत-से योद्धाओंसहित पाण्डवसेनाका संहार, भीमसेनके द्वारा कर्णपुत्र भानुसेनका वध, नकुल और सात्यकिके साथ वृषसेनका युद्ध तथा कर्णका राजा युधिष्ठिरपर आक्रमण

धृतराष्ट्र उवाच

यत्तत् प्रविश्य पार्थानां सैन्यं कुर्वञ्जनक्षयम्।
कर्णो राजानमभ्येत्य तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! कर्ण कुन्तीपुत्रोंकी सेनामें प्रवेश करके राजा युधिष्ठिरके पास पहुँचकर जो जनसंहार कर रहा था, उसका समाचार मुझे सुनाओ ॥ १ ॥

के च प्रवीराः पार्थानां युधि कर्णमवारयन्।
कांश्च प्रमथ्याधिरथिर्युधिष्ठिरमपीडयत् ॥ २ ॥

उस समय पाण्डवपक्षके किन-किन प्रमुख वीरोंने युद्धस्थलमें कर्णको आगे बढ़नेसे रोका और किन-किनको रौंदकर सूतपुत्र कर्णने युधिष्ठिरको पीड़ित किया ॥ २ ॥

संजय उवाच

धृष्टद्युम्नमुखान् पार्थान् दृष्ट्वा कर्णो व्यवस्थितान्।
समभ्यधावत्त्वरितः पञ्चालाञ्छत्रुकर्षिणः ॥ ३ ॥

संजयने कहा—राजन् ! कर्णने धृष्टद्युम्न आदि पाण्डव-वीरोंको खड़ा देख बड़ी उतावलीके साथ शत्रुसंहारकारी पाञ्चालोंपर धावा किया ॥ ३ ॥

तं तूर्णमभिधावन्तं पञ्चाला जितकाशिनः।
प्रत्युद्ययुर्महात्मानं हंसा इव महार्णवम् ॥ ४ ॥

विजयसे उल्लसित होनेवाले पाञ्चाल वीर शीघ्रतापूर्वक आक्रमण करते हुए महामना कर्णकी अगवानीके लिये उसी प्रकार आगे बढ़े, जैसे हंस महासागरकी ओर बढ़ते हैं ॥४॥

ततः शङ्खसहस्राणां निःस्वनो हृदयङ्गमः।
प्रादुरासीदुभयतो भेरीशब्दश्च दारुणः ॥ ५ ॥

तदनन्तर दोनों सेनाओंमें सहसा सहस्रों शङ्खोंकी ध्वनि प्रकट हुई, जो हृदयको कम्पित कर देती थी। साथ ही भयंकर भेरीनाद भी होने लगा ॥ ५ ॥

नानाबाणनिपाताश्च द्विपाश्वरथनिःस्वनः।
सिंहनादश्च वीराणामभवद् दारुणस्तदा ॥ ६ ॥

उस समय नाना प्रकारके बाणोंके गिरने, हाथियोंके चिग्घाड़ने, घोड़ोंके हींसने, रथके घर्घराने तथा वीरोंके सिंह-नाद करनेका दारुण शब्द वहाँ गूँज उठा ॥ ६ ॥

साद्रिद्रुमार्णवा भूमिः सवाताम्बुदमम्बरम्।
सार्केन्दुग्रहनक्षत्रा द्यौश्च व्यक्तं विघूर्णिता ॥ ७ ॥

पर्वत, वृक्ष और समुद्रोंसहित पृथ्वी, वायु तथा मेघों-सहित आकाश एवं सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह और नक्षत्रोंसहित स्वर्ग स्पष्ट ही घूमते-से जान पड़े ॥ ७ ॥

इति भूतानि तं शब्दं मेनिरे ते च विव्यथुः।
यानि चाप्यल्पसत्त्वानि प्रायस्तानि मृतानि च ॥ ८ ॥

इस प्रकार समस्त प्राणियोंने उस तुमुल नादको सुना और सब-के-सब व्यथित हो उठे। उनमें जो दुर्बल प्राणी थे, वे प्रायः मर गये ॥ ८ ॥

अथ कर्णो भृशं क्रुद्धः शीघ्रमस्त्रमुदीरयन्।
जघान पाण्डवीं सेनामासुरीं मघवानिव ॥ ९ ॥

तत्पश्चात् जैसे इन्द्र असुरोंकी सेनाका विनाश करते हैं, उसी प्रकार अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए कर्णने शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलाकर पाण्डवसेनाका संहार आरम्भ किया ॥ ९ ॥

स पाण्डवबलं कर्णः प्रविश्य विसृजञ्छरान्।
प्रभद्रकाणां प्रवरानहनत् सप्तसप्ततिम् ॥ १० ॥

पाण्डवोंकी सेनामें प्रवेश करके बाणोंकी वर्षा करते हुए कर्णने प्रभद्रकोंके सतहत्तर प्रमुख वीरोंको मार डाला ॥१०॥

ततः सुपुङ्खैर्निशितै रथश्रेष्ठो रथेषुभिः।
अवधीत् पञ्चविंशत्या पञ्चालान् पञ्चविंशतिम् ॥ ११ ॥

तदनन्तर रथियोंमें श्रेष्ठ कर्णने सुन्दर पंखवाले पचीस पैने बाणोंद्वारा पचीस पाञ्चालोंको कालके गालमें भेज दिया ॥११॥

सुवर्णपुङ्खैर्नाराचैः परकायविदारणैः।
चेदिकानवधीद् वीरः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १२ ॥

वीर कर्णने शत्रुओंके शरीरको विदीर्ण कर देनेवाले सुवर्णमय पंखयुक्त नाराचोंद्वारा सैकड़ों और हजारों चेदि-देशीय वीरोंका वध कर डाला ॥ १२ ॥

तं तथा समरे कर्म कुर्वाणमतिमानुषम्।
परिवव्रुर्महाराज पञ्चालानां रथव्रजाः ॥ १३ ॥

महाराज ! इस प्रकार समराङ्गणमें अलौकिक कर्म करनेवाले कर्णको पाञ्चाल रथियोंने चारों ओरसे घेर लिया ॥

ततः संधाय विशिखान् पञ्च भारत दुःसहान् ।
पञ्चालानवधीत् पञ्च कर्णो वैकर्तनो वृषः ॥ १४ ॥
भानुदेवं चित्रसेनं सेनाबिन्दुं च भारत ।
तपनं शूरसेनं च पञ्चालानहनद् रणे ॥ १५ ॥

भारत ! तब उस रणक्षेत्रमें धर्मात्मा वैकर्तन कर्णने पाँच दुःसह बाणोंका संधान करके भानुदेव, चित्रसेन, सेनाबिन्दु, तपन तथा शूरसेन—इन पाँच पाञ्चाल वीरोंका संहार कर दिया ॥ १४-१५ ॥

पञ्चालेषु च शूरेषु वध्यमानेषु सायकैः ।
हाहाकारो महानासीत् पञ्चालानां महाहवे ॥ १६ ॥

उस महासमरमें बाणोंद्वारा उन शूरवीर पाञ्चालोंके मारे जानेपर पाञ्चालोंकी सेनामें महान् हाहाकार मच गया ॥१६॥

परिवव्रुर्महाराज पञ्चालानां रथा दश ।
पुनरेव च तान् कर्णो जघानाशु पतत्रिभिः ॥ १७ ॥

महाराज ! फिर दस पाञ्चाल महारथियोंने आकर कर्णको घेर लिया, परंतु कर्णने अपने बाणोंद्वारा पुनः उन सबको तत्काल मार डाला ॥ १७ ॥

चक्ररक्षौ तु कर्णस्य पुत्रौ मारिष दुर्जयौ ।
सुषेणः सत्यसेनश्च त्यक्त्वा प्राणानयुध्यताम् ॥ १८ ॥

माननीय नरेश ! कर्णके दो दुर्जय पुत्र सुषेण और चित्रसेन उसके पहियोंकी रक्षामें तत्पर हो प्राणोंका मोह छोड़कर युद्ध करते थे ॥ १८ ॥

पृष्ठगोप्ता तु कर्णस्य ज्येष्ठः पुत्रो महारथः ।
वृषसेनः स्वयं कर्णं पृष्ठतः पर्यपालयत् ॥ १९ ॥

कर्णका ज्येष्ठ पुत्र महारथी वृषसेन पृष्ठरक्षक था। वह स्वयं ही कर्णके पृष्ठभागकी रक्षा कर रहा था ॥ १९ ॥

धृष्टद्युम्नः सात्यकिश्च द्रौपदेया वृकोदरः ।
जनमेजयः शिखण्डी च प्रवीराश्च प्रभद्रकाः ॥ २० ॥
चेदिकेकयपाञ्चाला यमौ मत्स्याश्च दंशिताः ।
समभ्यधावन् राधेयं जिघांसन्तः प्रहारिणम् ॥ २१ ॥

उस समय प्रहार करनेवाले राधापुत्र कर्णको मार डालनेकी इच्छासे धृष्टद्युम्न, सात्यकि, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, भीमसेन, जनमेजय, शिखण्डी, प्रमुख प्रभद्रक वीर, चेदि, केकय और पाञ्चाल देशके योद्धा, नकुल-सहदेव तथा मत्स्यदेशीय सैनिकोंने कवचसे सुसज्जित हो उसपर धावा बोल दिया २०-२१

त एनं विविधैः शस्त्रैः शरधाराभिरेव च ।
अभ्यवर्षन् विमर्दन्तं प्रावृषीवाम्बुदा गिरिम् ॥ २२ ॥

जैसे वर्षा ऋतुमें बादल पर्वतपर जलकी धारा गिराते हैं, उसी प्रकार उन पाण्डव वीरोंने अपनी सेनाका मर्दन करनेवाले कर्णपर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रों और बाणधाराओंकी वृष्टि की ॥ २२ ॥

पितरं तु परीप्सन्तः कर्णपुत्राः प्रहारिणः ।
त्वदीयाश्चापरे राजन् वीरा वीरानवारयन् ॥ २३ ॥

राजन् ! उस समय अपने पिताकी रक्षा चाहनेवाले प्रहारकुशल कर्णपुत्र तथा आपकी सेनाके दूसरे-दूसरे वीर पूर्वोक्त पाण्डववीरोंका निवारण करने लगे ॥ २३ ॥

सुषेणो भीमसेनस्य छित्त्वा भल्लेन कार्मुकम् ।
नाराचैः सप्तभिर्विद्ध्वा हृदि भीमं ननाद ह ॥ २४ ॥

सुषेणने एक भल्लसे भीमसेनके धनुषको काटकर उनकी छातीमें सात नाराचोंका प्रहार करके भयंकर गर्जना की २४

अथान्यद् धनुरादाय सुदृढं भीमविक्रमः ।
सज्यं वृकोदरः कृत्वा सुषेणस्याच्छिनद् धनुः॥ २५ ॥

तदनन्तर भीषण पराक्रम प्रकट करनेवाले भीमसेनने दूसरा सुदृढ़ धनुष लेकर उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और सुषेणके धनुषको काट डाला ॥ २५ ॥

विव्याध चैनं दशभिः क्रुद्धो नृत्यन्निवेषुभिः ।
कर्णं च तूर्णं विव्याध त्रिसप्तत्या शितैः शरैः ॥ २६ ॥

साथ ही कुपित हो नृत्य-से करते हुए भीमने दस बाणोंद्वारा उसे घायल कर दिया और तिहत्तर पैने बाणोंसे तुरंत ही कर्णको भी पीट दिया ॥ २६ ॥

भानुसेनं च दशभिः साश्वसूतायुधध्वजम् ।
पश्यतां सुहृदां मध्ये कर्णपुत्रमपातयत् ॥ २७ ॥

इतना ही नहीं, उन्होंने हितैषी सुहृदोंके बीचमें उनके देखते-देखते कर्णके पुत्र भानुसेनको दस बाणोंसे घोड़े, सारथि, आयुध और ध्वजोंसहित मार गिराया ॥ २७ ॥



क्षुरप्रणुन्नं तत्तस्य शिरश्चन्द्रनिभाननम् ।
शुभदर्शनमेवासीन्नालभ्रष्टमिवाम्बुजम् ॥ २८ ॥

भीमसेनके क्षुरसे कटा हुआ चन्द्रोपम मुखसे युक्त भानुसेनका वह मस्तक नालसे कटकर गिरे हुए कमलपुष्पके समान सुन्दर ही दिखायी दे रहा था ॥ २८ ॥

हत्वा कर्णसुतं भीमस्तावकान् पुनरार्दयत्।
कृपहार्दिक्ययोश्छित्त्वा चापौ तावप्यथार्दयत् ॥ २९ ॥

कर्णके पुत्रका वध करके भीमसेनने पुनः आपके सैनिकोंका मर्दन आरम्भ किया। कृपाचार्य और कृतवर्माके धनुषोंको काटकर उन दोनोंको भी गहरी चोट पहुँचायी॥२९॥

दुःशासनं त्रिभिर्विद्ध्वा शकुनिं षड्भिरायसैः।
उलूकं च पतत्त्रिं च चकार विरथावुभौ ॥ ३० ॥

तीन बाणोंसे दुःशासनको और छः लोहेके बाणोंसे शकुनिको भी घायल करके उलूक और पतत्त्रि दोनों वीरोंको रथहीन कर दिया ॥ ३० ॥

सुषेणं च हतोऽसीति ब्रुवन्नादत्त सायकम्।
तमस्य कर्णश्चिच्छेद त्रिभिश्चैनमताडयत् ॥ ३१ ॥

फिर सुषेणसे यह कहते हुए बाण हाथमें लिया कि 'अब तू मारा गया।' किंतु कर्णने भीमसेनके उस बाणको काट डाला और तीन बाणोंसे उन्हें भी घायल कर दिया ॥३१॥

अथान्यं परिजग्राह सुपर्वाणं सुतेजनम्।
सुषेणायासृजद् भीमस्तमप्यस्याच्छिनद् वृषः ॥ ३२ ॥

तब भीमसेनने सुन्दर गाँठ और तेज धारवाले दूसरे बाणको हाथमें लिया और उसे सुषेणपर चला दिया; किंतु कर्णने उसको भी काट डाला ॥ ३२ ॥

पुनः कर्णस्त्रिसप्तत्या भीमसेनमथेषुभिः।
पुत्रं परीप्सन् विव्याध क्रूरं क्रूरैर्जिघांसया ॥ ३३ ॥

फिर पुत्रके प्राण बचानेकी इच्छासे कर्णने क्रूर भीमसेनको मार डालनेकी अभिलाषा लेकर उनपर तिहत्तर बाणोंका प्रहार किया ॥ ३३ ॥

सुषेणस्तु धनुर्गृह्य भारसाधनमुत्तमम्।
नकुलं पञ्चभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ३४ ॥

तब सुषेणने महान् भारको सह लेनेवाले श्रेष्ठ धनुषको हाथमें लेकर नकुलकी दोनों भुजाओं और छातीमें पाँच बाणोंका प्रहार किया ॥ ३४ ॥

नकुलस्तं तु विंशत्या विद्ध्वा भारसहैर्दृढैः।
ननाद बलवन्नादं कर्णस्य भयमादधत् ॥ ३५ ॥

नकुलने भी भार सहन करनेमें समर्थ बीस सुदृढ़ बाणोंद्वारा सुषेणको घायल करके कर्णके मनमें भय उत्पन्न करते हुए बड़े जोरसे गर्जना की ॥ ३५ ॥

तं सुषेणो महाराज विद्ध्वा दशभिराशुगैः।
चिच्छेद च धनुः शीघ्रं क्षुरप्रेण महारथः ॥ ३६ ॥

महाराज ! महारथी सुषेणने दस बाणोंसे नकुलको चोट पहुँचाकर शीघ्र ही एक क्षुरप्रके द्वारा उनका धनुष काट दिया ॥ ३६ ॥

अथान्यद् धनुरादाय नकुलः क्रोधमूर्छितः।
सुषेणं नवभिर्बाणैर्वारयामास संयुगे ॥ ३७ ॥

तब क्रोधसे अचेत-से होकर नकुलने दूसरा धनुष हाथमें लिया और सुषेणको नौ बाण मारकर उसे युद्धस्थलमें आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ३७ ॥

स तु बाणैर्दिशो राजन्नाच्छाद्य परवीरहा।
आजघ्ने सारथिं चास्य सुषेणं च ततस्त्रिभिः ॥ ३८ ॥
चिच्छेद चास्य सुदृढं धनुर्भल्लैस्त्रिभिस्त्रिधा।

राजन् ! शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले नकुलने अपने बाणोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित करके फिर तीन बाणोंसे सुषेण और उसके सारथिको भी घायल कर दिया। साथ ही तीन भल्ल मारकर उसके सुदृढ़ धनुषके तीन टुकड़े कर डाले ॥ ३८½ ॥

अथान्यद् धनुरादाय सुषेणः क्रोधमूर्छितः ॥ ३९ ॥
आविध्यन्नकुलं षष्ट्या सहदेवं च सप्तभिः।

तब क्रोधसे मूर्छित हुए सुषेणने दूसरा धनुष लेकर नकुलको साठ और सहदेवको सात बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ३९½ ॥

तद् युद्धं सुमहद् घोरमासीद् देवासुरोपमम् ॥ ४० ॥
निघ्नतां सायकैस्तूर्णमन्योन्यस्य वधं प्रति।

बाणोंद्वारा शीघ्रतापूर्वक एक दूसरेके वधके लिये चोट करते हुए वीरोंका वह महान् युद्ध देवासुर-संग्रामके समान भयंकर जान पड़ता था ॥ ४०½ ॥

(सात्यकिर्वृषसेनं तु विद्ध्वा सप्तभिरायसैः।
पुनर्विव्याध सप्तत्या सारथिं च त्रिभिः शरैः॥

सात्यकिने लोहेके बने हुए सात बाणोंसे वृषसेनको घायल करके फिर सत्तर बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी। साथ ही तीन बाणोंसे उसके सारथिको भी बींध डाला ॥

वृषसेनस्तु शैनेयं शरेणानतपर्वणा।
आजघान महाराज शङ्खदेशे महारथम् ॥

महाराज ! वृषसेनने झुकी हुई गाँठवाले बाणसे महारथी सात्यकिके कपालमें आघात किया ॥

शैनेयो वृषसेनेन पत्त्रिणा परिपीडितः।
कोपं चक्रे महाराज क्रुद्धो वेगं च दारुणम् ॥
जग्राहेषुवरान् वीरः शीघ्रं वै दश पञ्च च।)

महाराज ! वृषसेनके उस बाणसे अत्यन्त पीड़ित होनेपर वीर सात्यकिको बड़ा क्रोध हुआ। क्रुद्ध होनेपर उन्होंने भयंकर वेग प्रकट किया और शीघ्र ही पंद्रह श्रेष्ठ बाण हाथमें ले लिये ॥

सात्यकिर्वृषसेनस्य सूतं हत्वा त्रिभिः शरैः ॥ ४१ ॥
धनुश्चिच्छेद भल्लेन जघानाश्वांश्च सप्तभिः।
ध्वजमेकेषुणोन्मथ्य त्रिभिस्तं हृद्यताडयत् ॥ ४२ ॥

उनमेंसे तीन बाणोंद्वारा सात्यकिने वृषसेनके सारथिको

मारकर एकसे उसका धनुष काट दिया और सात बाणोंसे उसके घोड़ोंको मार डाला । फिर एक बाणसे उसके ध्वजाको खण्डित करके तीन बाणोंसे वृषसेनकी छातीमें भी चोट पहुँचायी ॥ ४१-४२ ॥

अथावसन्नः स्वरथे मुहूर्तात् पुनरुत्थितः ।
स रणे युयुधानेन विसूताश्वरथध्वजः ॥ ४३ ॥
कृतो जिघांसुः शैनेयं खड्गचर्मधृगभ्ययात् ।

इस प्रकार रणक्षेत्रमें युयुधानके द्वारा सारथि, अश्व एवं रथकी ध्वजासे रहित किया हुआ वृषसेन दो घड़ीतक अपने रथपर ही शिथिल-सा होकर बैठा रहा । फिर उठकर सात्यकिको मार डालनेकी इच्छासे ढाल और तलवार लेकर उनकी ओर बढ़ा ॥ ४३½ ॥

तस्य चापततः शीघ्रं वृषसेनस्य सात्यकिः ॥ ४४ ॥
वाराहकर्णैर्दशभिरविध्यदसिचर्मणी ।

इस प्रकार आक्रमण करते हुए वृषसेनकी तलवार और ढालको सात्यकिने वाराहकर्ण नामक दस बाणोंद्वारा शीघ्र ही खण्डित कर दिया ॥ ४४½ ॥

दुःशासनस्तु तं दृष्ट्वा विरथं व्यायुधं कृतम् ॥ ४५ ॥
आरोप्य स्वरथं तूर्णमपोवाह रणातुरम् ।

तब दुःशासनने वृषसेनको रथ और अस्त्र-शस्त्रोंसे हीन हुआ देख उसे रणसे व्याकुल हुआ मानकर तुरंत ही अपने रथपर बिठा लिया और वहाँसे दूर हटा दिया ॥ ४५½ ॥

अथान्यं रथमास्थाय वृषसेनो महारथः ॥ ४६ ॥
द्रौपदेयांस्त्रिसप्तत्या युयुधानं च पञ्चभिः ।
भीमसेनं चतुःषष्ट्या सहदेवं च पञ्चभिः ॥ ४७ ॥
नकुलं त्रिंशता बाणैः शतानीकं च सप्तभिः ।
शिखण्डिनं च दशभिर्धर्मराजं शतेन च ॥ ४८ ॥
एतांश्चान्यांश्च राजेन्द्र प्रवीराञ्जयगृद्धिनः ।
अभ्यर्दयन्महेष्वासः कर्णपुत्रो विशाम्पते ॥ ४९ ॥
कर्णस्य युधि दुर्धर्षस्ततः पृष्ठमपालयत् ।

तदनन्तर महारथी वृषसेनने दूसरे रथपर बैठकर तिहत्तर बाणोंसे द्रौपदीके पुत्रोंको, पाँचसे युयुधानको, चौंसठसे भीमसेनको, पाँचसे सहदेवको, तीस बाणोंसे नकुलको, सातसे शतानीकको, दस बाणोंसे शिखण्डीको और सौ बाणोंद्वारा धर्मराज युधिष्ठिरको घायल कर दिया । राजेन्द्र ! प्रजानाथ ! महाधनुर्धर कर्णपुत्रने विजयकी अभिलाषा रखनेवाले इन सभी प्रमुख वीरोंको तथा दूसरोंको भी अपने बाणोंसे पीड़ित कर दिया । तत्पश्चात् वह दुर्धर्ष वीर युद्धस्थलमें पुनः कर्णके पृष्ठभागकी रक्षा करने लगा ॥ ४६–४९½ ॥

दुःशासनं च शैनेयो नवैर्नवभिरायसैः ॥ ५० ॥
विसूताश्वरथं कृत्वा ललाटे त्रिभिरार्पयत् ।

सात्यकिने लोहेके बने हुए नौ नूतन बाणोंसे दुःशासनको सारथि, घोड़ों और रथसे वञ्चित करके उसके ललाटमें तीन बाण मारे ॥ ५०½ ॥

स त्वन्यं रथमास्थाय विधिवत् कल्पितं पुनः ॥ ५१ ॥
युयुधे पाण्डुभिः सार्धं कर्णस्याप्याययन् बलम् ।

दुःशासन विधिपूर्वक सजाये हुए दूसरे रथपर बैठकर कर्णके बलको बढ़ाता हुआ पुनः पाण्डवोंके साथ युद्ध करने लगा ॥ ५१½ ॥

धृष्टद्युम्नस्ततः कर्णमविध्यद् दशभिः शरैः ॥ ५२ ॥
द्रौपदेयास्त्रिसप्तत्या युयुधानस्तु सप्तभिः ।
भीमसेनश्चतुःषष्ट्या सहदेवश्च सप्तभिः ॥ ५३ ॥
नकुलस्त्रिंशता बाणैः शतानीकस्तु सप्तभिः ।
शिखण्डी दशभिर्वीरो धर्मराजः शतेन तु ॥ ५४ ॥

तदनन्तर धृष्टद्युम्नने कर्णको दस बाणोंसे बींध डाला । फिर द्रौपदीके पुत्रोंने तिहत्तर, सात्यकिने सात, भीमसेनने चौंसठ, सहदेवने सात, नकुलने तीस, शतानीकने सात, शिखण्डीने दस और वीर धर्मराज युधिष्ठिरने सौ बाण कर्णको मारे ॥५२-५४॥

एते चान्ये च राजेन्द्र प्रवीरा जयगृद्धिनः ।
अभ्यर्दयन् महेष्वासं सूतपुत्रं महामृधे ॥ ५५ ॥

राजेन्द्र ! विजयकी अभिलाषा रखनेवाले इन प्रमुख वीरों तथा दूसरोंने भी उस महासमरमें महाधनुर्धर सूतपुत्र कर्णको बाणोंद्वारा पीड़ित कर दिया ॥ ५५ ॥

तान् सूतपुत्रो विशिखैर्दशभिर्दशभिः शरैः ।
रथेनानुचरन् वीरः प्रत्यविध्यदरिंदमः ॥ ५६ ॥

रथसे विचरनेवाले शत्रुदमन वीर सूतपुत्र कर्णने भी उन सबको दस-दस बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ५६ ॥

तत्रास्त्रवीर्यं कर्णस्य लाघवं च महात्मनः ।
अपश्याम महाभाग तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ५७ ॥

महाभाग ! हमने महामना कर्णके अस्त्र-बल और फुर्तीको वहाँ अपनी आँखों देखा था । वह सब कुछ अद्भुत-सा प्रतीत होता था ॥ ५७ ॥

न ह्याददानं ददृशुः संदधानं च सायकान् ।
विमुञ्चन्तं च संरम्भादपश्यन्त हतानरीन् ॥ ५८ ॥

वह कब तरकससे बाण निकालता है, कब धनुषपर रखता है और कब क्रोधपूर्वक शत्रुओंपर छोड़ देता है, यह सब किसीने नहीं देखा । सब लोग मारे जाते हुए शत्रुओंको ही देखते थे ॥ ५८ ॥

(प्रतीच्यां दिशि तं दृष्ट्वा प्राच्यां पश्याम लाघवात् ।
न तं पश्याम राजेन्द्र क्व नु कर्णोऽधितिष्ठति ॥

राजेन्द्र ! हमलोग एक ही क्षणमें कर्णको पश्चिम दिशामें देखकर उसकी फुर्तीके कारण उसे पूर्व दिशामें भी देखते थे । इस समय कर्ण कहाँ खड़ा है, यह हमलोग नहीं देख पाते थे ॥

इषूनेव स्म पश्यामो विनिकीर्णान् समन्ततः ।
छादयानान् दिशो राजञ्शलभानामिव व्रजान्॥)

राजन् ! सब ओर बिखरे हुए उसके बाण ही हमें दिखायी देते थे, जो टिड्डीदलोंके समान सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित किये रहते थे ॥

द्यौर्वियद्भूर्दिशश्चैव प्रपूर्णा निशितैः शरैः ।
अरुणाभ्रावृताकारं तस्मिन् देशे बभौ वियत् ॥ ५९ ॥

द्युलोक, आकाश, भूमि और सम्पूर्ण दिशाएँ पैने बाणोंसे खचाखच भर गयी थीं । उस प्रदेशमें आकाश अरुण रंगके बादलोंसे ढका हुआ-सा जान पड़ता था ॥ ५९ ॥

नृत्यन्निव हि राधेयश्चापहस्तः प्रतापवान् ।
यैर्विद्धः प्रत्यविद्ध्यत् तानेकैकं त्रिगुणैः शरैः॥ ६० ॥

प्रतापी राधापुत्र कर्ण हाथमें धनुष लेकर नृत्य-सा कर रहा था । जिन-जिन योद्धाओंने उसे एक बाणसे घायल किया, उनमेंसे प्रत्येकको उसने तीन गुने बाणोंसे बींध डाला ॥६०॥

दशभिर्दशभिश्चैतान् पुनर्विद्ध्वा ननाद च ।
साश्वसूतरथच्छत्रांस्ततस्ते विवरं ददुः ॥ ६१ ॥

फिर दस-दस बाणोंसे घोड़ों, सारथि, रथ और छत्रोंसहित इन सबको घायल करके कर्णने सिंहके समान दहाड़ना आरम्भ किया । फिर तो उन शत्रुओंने उसे आगे बढ़नेके लिये जगह दे दी ॥ ६१ ॥

तान् प्रमथ्य महेष्वासान् राधेयः शरवृष्टिभिः ।
राजानीकमसम्बाधं प्राविशच्छत्रुकर्शनः ॥ ६२ ॥

शत्रुओंका संहार करनेवाले राधापुत्र कर्णने अपने बाणोंकी वर्षाद्वारा उन महाधनुर्धरोंको रौंदकर राजा युधिष्ठिरकी सेनामें बेरोक-टोक प्रवेश किया ॥ ६२ ॥

स रथांस्त्रिशतं हत्वा चेदीनामनिवर्तिनाम् ।
राधेयो निशितैर्बाणैस्ततोऽभ्याच्र्छद् युधिष्ठिरम्॥ ६३॥

उसने युद्धसे पीछे न हटनेवाले तीन सौ चेदिदेशीय रथियोंको अपने पैने बाणोंद्वारा मारकर युधिष्ठिरपर आक्रमण किया ॥ ६३ ॥

ततस्ते पाण्डवा राजञ्शिखण्डी च ससात्यकिः ।
राधेयात् परिरक्षन्तो राजानं पर्यवारयन् ॥ ६४ ॥

राजन् ! तब पाण्डवों, शिखण्डी और सात्यकिने राधापुत्र कर्णसे राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करनेके लिये उन्हें चारों ओरसे घेर लिया ॥ ६४ ॥

तथैव तावकाः सर्वे कर्णं दुर्वारणं रणे ।
यत्ताः शूरा महेष्वासाः पर्यरक्षन्त सर्वशः ॥ ६५ ॥

इसी प्रकार आपके सभी महाधनुर्धर शूरवीर योद्धा रणमें अनिवार्य गतिसे विचरनेवाले कर्णकी सब ओरसे प्रयत्नपूर्वक रक्षा करने लगे ॥ ६५ ॥

नानावादित्रघोषाश्च प्रादुरासन् विशाम्पते ।
सिंहनादश्च संजज्ञे शूराणामभिगर्जताम् ॥ ६६ ॥

प्रजानाथ ! उस समय नाना प्रकारके रणवाद्योंकी ध्वनि होने लगी और सब ओरसे गर्जना करनेवाले शूरवीरोंका सिंहनाद सुनायी देने लगा ॥ ६६ ॥

ततः पुनः समाजग्मुरभीताः कुरुपाण्डवाः ।
युधिष्ठिरमुखाः पार्थाः सूतपुत्रमुखा वयम् ॥ ६७ ॥

तदनन्तर पुनः कौरव और पाण्डव योद्धा निर्भय होकर एक दूसरेसे भिड़ गये । एक ओर युधिष्ठिर आदि कुन्तीपुत्र थे और दूसरी ओर कर्ण आदि हमलोग ॥ ६७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ५½ श्लोक मिलाकर कुल ७२½ श्लोक हैं)

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कर्ण और युधिष्ठिरका संग्राम, कर्णकी मूर्छा, कर्णद्वारा युधिष्ठिरकी पराजय और तिरस्कार तथा पाण्डवोंके हजारों योद्धाओंका वध और रक्त-नदीका वर्णन तथा पाण्डव महारथियोंद्वारा कौरव-सेनाका विध्वंस और उसका पलायन

संजय उवाच

विदार्य कर्णस्तां सेनां युधिष्ठिरमथाद्रवत् ।
रथहस्त्यश्वपत्तीनां सहस्रैः परिवारितः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! सहस्रों रथ, हाथी, घोड़े और पैदलोंसे घिरे हुए कर्णने उस सेनाको विदीर्ण करके युधिष्ठिरपर धावा किया ॥ १ ॥

नानायुधसहस्राणि प्रेरितान्यरिभिर्वृषः ।
छित्त्वा बाणशतैरुग्रैस्तानविध्यदसम्भ्रमात् ॥ २ ॥

धर्मात्मा कर्णने शत्रुओंके चलाये हुए नाना प्रकारके हजारों अस्त्र-शस्त्रोंको काटकर उन सबको सैकड़ों उग्र बाणोंद्वारा बिना किसी घबराहटके बींध डाला ॥ २ ॥

निचकर्त शिरांस्येषां बाहूनूरूंश्च सूतजः ।
ते हता वसुधां पेतुर्भग्नाश्चान्ये विदुद्रुवुः ॥ ३ ॥

सूतपुत्रने पाण्डव सैनिकोंके मस्तकों, भुजाओं और जाँघोंको काट डाला । वे मरकर पृथ्वीपर गिर पड़े और दूसरे बहुत-से योद्धा घायल होकर भाग गये ॥ ३ ॥

द्राविडास्तु निषादास्तु पुनः सात्यकिचोदिताः ।
अभ्यद्रवञ्जिघांसन्तः पत्तयः कर्णमाहवे ॥ ४ ॥

तब सात्यकिसे प्रेरित होकर द्रविड और निषाद देशोंके पैदल सैनिक कर्णको युद्धमें मार डालनेकी इच्छासे पुनः उसपर टूट पड़े ॥ ४ ॥

ते विबाहुशिरस्त्राणाः प्रहताः कर्णसायकैः ।
पेतुः पृथिव्यां युगपच्छिन्नं शालवनं यथा ॥ ५ ॥

परंतु कर्णके बाणोंसे घायल होकर बाहु, मस्तक और कवच आदिसे रहित हो वे कटे हुए शालवनके समान एक साथ ही पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ५ ॥

एवं योधशतान्याजौ सहस्राण्ययुतानि च ।
हतानीयुर्महीं देहैर्यशसा पूरयन् दिशः ॥ ६ ॥

इस प्रकार युद्धस्थलमें मारे गये सैकड़ों, हजार और दस हजार योद्धा शरीरसे तो इस पृथ्वीपर गिर पड़े, किंतु अपने यशसे उन्होंने सम्पूर्ण दिशाओंको पूर्ण कर दिया ॥ ६ ॥

अथ वैकर्तनं कर्णं रणे क्रुद्धमिवान्तकम् ।
रुरुधुः पाण्डुपाञ्चाला व्याधिं मन्त्रौषधैरिव ॥ ७ ॥

तदनन्तर रणक्षेत्रमें कुपित हुए यमराजके समान वैकर्तन कर्णको पाण्डवों और पाञ्चालोंने अपने बाणोंद्वारा उसी प्रकार रोक दिया, जैसे चिकित्सक मन्त्रों और औषधोंसे रोगोंकी रोक-थाम कर लेते हैं ॥ ७ ॥

स तान् प्रमृद्याभ्यपतत् पुनरेव युधिष्ठिरम् ।
मन्त्रौषधिक्रियातीतो व्याधिरत्युल्बणो यथा ॥ ८ ॥

परंतु मन्त्र और ओषधियोंकी क्रियासे असाध्य भयानक रोगकी भाँति कर्णने उन सबको रौंदकर पुनः युधिष्ठिरपर ही आक्रमण किया ॥ ८ ॥

स राजगृद्धिभी रुद्धः पाण्डुपाञ्चालकेकयैः ।
नाशकत् तानतिक्रान्तुं मृत्युर्ब्रह्मविदो यथा ॥ ९ ॥

राजाकी रक्षा चाहनेवाले पाण्डवों, पाञ्चालों और केकयोंने पुनः कर्णको रोक दिया । जैसे मृत्यु ब्रह्मवेत्ताओंको नहीं लाँघ सकती, उसी प्रकार कर्ण उन सबको लाँघकर आगे न बढ़ सका ॥ ९ ॥

ततो युधिष्ठिरः कर्णमदूरस्थं निवारितम् ।
अब्रवीत् परवीरघ्नं क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ १० ॥

उस समय युधिष्ठिरने क्रोधसे लाल आँखें करके शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले कर्णसे, जो पास ही रोक दिया गया था, इस प्रकार कहा—॥ १० ॥

कर्ण कर्ण वृथादृष्टे सूतपुत्र वचः शृणु ।
सदा स्पर्धसि संग्रामे फाल्गुनेन तरस्विना ॥ ११ ॥
तथास्मान् बाधसे नित्यं धार्तराष्ट्रमते स्थितः ।

'कर्ण ! कर्ण ! मिथ्यादर्शी सूतपुत्र ! मेरी बात सुनो । तुम संग्राममें वेगशाली वीर अर्जुनके साथ सदा डाह रखते और दुर्योधनके मतमें रहकर सर्वदा हमें बाधा पहुँचाते हो ॥ ११½ ॥

यद् बलं यच्च ते वीर्यं प्रद्वेषो यस्तु पाण्डुषु ॥ १२ ॥
तत् सर्वं दर्शयस्वाद्य पौरुषं महदास्थितः ।
युद्धश्रद्धां च तेऽद्याहं विनेष्यामि महाहवे ॥ १३ ॥

'परंतु आज तुम्हारे पास जितना बल हो, जो पराक्रम हो तथा पाण्डवोंके प्रति तुम्हारे मनमें जो विद्वेष हो, वह सब महान् पुरुषार्थका आश्रय लेकर दिखाओ । आज महासमरमें मैं तुम्हारा युद्धका हौसला मिटा दूँगा' ॥ १२-१३ ॥

एवमुक्त्वा महाराज कर्णं पाण्डुसुतस्तदा ।
सुवर्णपुङ्खैर्दशभिर्विव्याधायस्मयैः शरैः ॥ १४ ॥

महाराज ! ऐसा कहकर पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने लोहेके बने हुए सुवर्णपंखयुक्त दस बाणोंद्वारा कर्णको बींध डाला ॥१४॥

तं सूतपुत्रो दशभिः प्रत्यविद्ध्यदरिंदमः ।
वत्सदन्तैर्महेष्वासः प्रहसन्निव भारत ॥ १५ ॥

भारत ! तब शत्रुओंका दमन करनेवाले महाधनुर्धर सूतपुत्रने हँसते हुए-से वत्सदन्त नामक दस बाणोंद्वारा युधिष्ठिरको घायल कर दिया ॥ १५ ॥

सोऽवज्ञाय तु निर्विद्धः सूतपुत्रेण मारिष ।
प्रजज्वाल ततः क्रोधाद्धविषेव हुताशनः ॥ १६ ॥

माननीय नरेश ! सूतपुत्रके द्वारा अवज्ञापूर्वक घायल किये जानेपर फिर राजा युधिष्ठिर घीकी आहुतिसे प्रज्वलित हुई अग्निके समान क्रोधसे जल उठे ॥ १६ ॥

ज्वालामालापरिक्षिप्तो राज्ञो देहो व्यदृश्यत ।
युगान्ते दग्धुकामस्य संवर्ताग्नेरिवापरः ॥ १७ ॥

ज्वालामालाओंसे घिरा हुआ युधिष्ठिरका शरीर प्रलयकालमें जगत्को दग्ध करनेकी इच्छावाले द्वितीय संवर्तक अग्निके समान दिखायी देता था ॥ १७ ॥

ततो विस्फार्य सुमहच्चापं हेमपरिष्कृतम् ।
समाधत्त शितं बाणं गिरीणामपि दारणम् ॥ १८ ॥

तदनन्तर उन्होंने अपने सुवर्णभूषित विशाल धनुषको फैलाकर उसपर पर्वतोंको भी विदीर्ण कर देनेवाले तीखे बाणका संधान किया ॥ १८ ॥

ततः पूर्णायतोत्कृष्टं यमदण्डनिभं शरम् ।
मुमोच त्वरितो राजा सूतपुत्रजिघांसया ॥ १९ ॥

तत्पश्चात् राजा युधिष्ठिरने सूतपुत्रको मार डालनेकी इच्छासे तुरंत ही धनुषको पूर्णरूपसे खींचकर वह यमदण्डके समान बाण उसके ऊपर छोड़ दिया ॥ १९ ॥

स तु वेगवता मुक्तो बाणो वज्राशनिस्वनः ।
विवेश सहसा कर्णं सव्ये पार्श्वे महारथम् ॥ २० ॥

वेगवान् युधिष्ठिरका छोड़ा हुआ वज्र और बिजलीके समान शब्द करनेवाला वह बाण सहसा महारथी कर्णकी बायीं पसलीमें घुस गया ॥ २० ॥

स तु तेन प्रहारेण पीडितः प्रमुमोह वै ।
स्रस्तगात्रो महाबाहुर्धनुरुत्सृज्य स्यन्दने ॥ २१ ॥

उस प्रहारसे पीड़ित हो महाबाहु कर्ण धनुष छोड़कर रथपर ही मूर्छित हो गया। उसका सारा शरीर शिथिल हो गया था ॥ २१ ॥

गतासुरिव निश्चेताः शल्यस्याभिमुखोऽपतत् ।
राजापि भूयो नाजघ्ने कर्णं पार्थहितेप्सया ॥ २२ ॥

वह शल्यके सामने ही अचेत होकर ऐसे गिर पड़ा, मानो उसके प्राण निकल गये हों। राजा युधिष्ठिरने अर्जुनके हितकी इच्छासे कर्णपर पुनः प्रहार नहीं किया ॥ २२ ॥

ततो हाहाकृतं सर्वं धार्तराष्ट्रबलं महत् ।
विवर्णमुखभूयिष्ठं कर्णं दृष्ट्वा तथागतम् ॥ २३ ॥

तब कर्णको उस अवस्थामें देखकर दुर्योधनकी सारी विशाल सेनामें हाहाकार मच गया और अधिकांश सैनिकोंके मुखका रंग विषादसे फीका पड़ गया ॥ २३ ॥

सिंहनादश्च संजज्ञे क्ष्वेलाः किलकिलास्तथा ।
पाण्डवानां महाराज दृष्ट्वा राज्ञः पराक्रमम् ॥ २४ ॥

महाराज ! राजाका वह पराक्रम देखकर पाण्डव-सैनिकोंमें सिंहनाद, आनन्द, कलरव और किलकिल शब्द होने लगा ॥

प्रतिलभ्य तु राधेयः संज्ञां नातिचिरादिव ।
दध्रे राजविनाशाय मनः क्रूरपराक्रमः ॥ २५ ॥

तब क्रूर पराक्रमी राधापुत्र कर्णने थोड़ी ही देरमें होशमें आकर राजा युधिष्ठिरको मार डालनेका विचार किया ॥२५॥

स हेमविकृतं चापं विस्फार्य विजयं महत् ।
अवाकिरदमेयात्मा पाण्डवं निशितैः शरैः ॥ २६ ॥

उस अमेय आत्मबलसे सम्पन्न वीरने विजय नामक अपने विशाल सुवर्ण-जटित धनुषको खींचकर पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको पैने बाणोंसे ढक दिया ॥ २६ ॥

ततः क्षुराभ्यां पाञ्चाल्यौ चक्ररक्षौ महात्मनः ।
जघान चन्द्रदेवं च दण्डधारं च संयुगे ॥ २७ ॥

तत्पश्चात् दो क्षुरोंसे महात्मा युधिष्ठिरके चक्ररक्षक दो पाञ्चाल वीर चन्द्रदेव और दण्डधारको युद्धस्थलमें मार डाला ॥२७॥

तावुभौ धर्मराजस्य प्रवीरौ परिपार्श्वतः ।
रथाभ्याशे चकाशेते चन्द्रस्येव पुनर्वसू ॥ २८ ॥

धर्मराजके रथके समीप पार्श्वभागोंमें वे दोनों प्रमुख पाञ्चाल वीर चन्द्रमाके पास रहनेवाले दो पुनर्वसु नामक नक्षत्रोंके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ २८ ॥

युधिष्ठिरः पुनः कर्णमविद्ध्यत् त्रिंशता शरैः ।
सुषेणं सत्यसेनं च त्रिभिस्त्रिभिरताडयत् ॥ २९ ॥

युधिष्ठिरने पुनः तीस बाणोंसे कर्णको बींध डाला तथा सुषेण और सत्यसेनको भी तीन-तीन बाणोंसे घायल कर दिया॥

शल्यं नवत्या विव्याध त्रिसप्तत्या च सूतजम् ।
तांस्तस्य गोप्तॄन् विव्याध त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः॥३०॥

उन्होंने शल्यको नब्बे और सूतपुत्र कर्णको तिहत्तर बाण मारे। साथ ही उनके रक्षकोंको सीधे जानेवाले तीन-तीन बाणोंसे बेध दिया ॥ ३० ॥

ततः प्रहस्याधिरथिर्विधुन्वानः स कार्मुकम् ।
भित्त्वा भल्लेन राजानं विद्ध्वा षष्ट्यानदत्तदा॥ ३१॥

तब अधिरथपुत्र कर्णने अपने धनुषको हिलाते हुए हँसकर एक भल्लद्वारा राजा युधिष्ठिरके धनुषको काट दिया और उन्हें भी साठ बाणोंसे घायल करके सिंहके समान गर्जना की॥

ततः प्रवीराः पाण्डूनामभ्यधावन्नमर्षिताः ।
युधिष्ठिरं परीप्सन्तः कर्णमभ्यर्दयञ्छरैः ॥ ३२ ॥

तदनन्तर अमर्षमें भरे हुए प्रमुख पाण्डव वीर युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये दौड़े आये और कर्णको अपने बाणोंसे पीड़ित करने लगे ॥ ३२ ॥

सात्यकिश्चेकितानश्च युयुत्सुः पाण्ड्य एव च ।
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ॥ ३३ ॥
यमौ च भीमसेनश्च शिशुपालस्य चात्मजः ।
कारूषा मत्स्यशेषाश्च केकयाः काशिकोसलाः ॥ ३४ ॥
एते च त्वरिता वीरा वसुषेणमताडयन् ।

सात्यकि, चेकितान, युयुत्सु, पाण्ड्य, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, प्रभद्रकगण, नकुल-सहदेव, भीमसेन और शिशुपालपुत्र एवं करूष, मत्स्य, केकय, काशि और कोसल-देशोंके योद्धा—ये सभी वीर सैनिक तुरंत ही वसुषेण (कर्ण) को घायल करने लगे ॥ ३३-३४½ ॥

जनमेजयश्च पाञ्चाल्यः कर्णं विव्याध सायकैः ॥३५॥
वाराहकर्णनाराचैर्नालीकैर्निशितैः शरैः ।
वत्सदन्तैर्विपाठैश्च क्षुरप्रैश्चटकामुखैः ॥ ३६ ॥
नानाप्रहरणैश्चोग्रै रथहस्त्यश्वसादिभिः ।
सर्वतोऽभ्यद्रवत् कर्णं परिवार्य जिघांसया ॥ ३७ ॥

पाञ्चालवीर जनमेजयने रथ, हाथी और घुड़सवारोंकी सेना साथ लेकर सब ओरसे कर्णपर धावा किया और उसे मार डालनेकी इच्छासे घेरकर बाण, वाराहकर्ण, नाराच, नालीक, पैने बाण, वत्सदन्त, विपाठ, क्षुरप्र, चटकामुख तथा नाना प्रकारके भयंकर अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा चोट पहुँचाना आरम्भ किया॥

स पाण्डवानां प्रवरैः सर्वतः समभिद्रुतः ।
उदीरयन् ब्राह्ममस्त्रं शरैरापूरयद् दिशः ॥ ३८ ॥

पाण्डवपक्षके प्रमुख वीरोंद्वारा सब ओरसे आक्रान्त होनेपर कर्णने ब्रह्मास्त्र प्रकट करके बाणोंद्वारा सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित कर दिया ॥ ३८ ॥

(ततः पुनरमेयात्मा चेदीनां प्रवरान् दश ।
न्यहनद् भरतश्रेष्ठ कर्णो वैकर्तनस्तदा ॥

भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर अप्रमेय आत्मबलसे सम्पन्न वैकर्तन

कर्णने चेदिदेशके दस प्रधान वीरोंको पुनः मार डाला ॥

तस्य बाणसहस्राणि सम्प्रपन्नानि मारिष।
दृश्यन्ते दिक्षु सर्वासु शलभानामिव व्रजाः ॥

माननीय नरेश ! कर्णके गिरते हुए सहस्रों बाण सम्पूर्ण दिशाओंमें टिड्डीदलोंके समान दिखायी देते थे ॥

कर्णनामाङ्किता बाणाः स्वर्णपुङ्खाः सुतेजनाः।
नराश्वकायान् निर्भिद्य पेतुरुर्व्यां समन्ततः ॥

उसके नामसे अंकित सुवर्णमय पंखवाले तेज बाण मनुष्यों और घोड़ोंके शरीरोंको विदीर्ण करके सब ओरसे पृथ्वीपर गिरने लगे ॥

कर्णेनैकेन समरे चेदीनां प्रवरा रथाः।
सृंजयानां च सर्वेषां शतशो निहता रणे ॥

समराङ्गणमें अकेले कर्णने चेदिदेशके प्रधान रथियोंका तथा सम्पूर्ण सृंजयोंके सैकड़ों योद्धाओंका भी संहार कर डाला॥

कर्णस्य शरसंछन्नं बभूव विपुलं तमः।
नाज्ञायत ततः किञ्चित् परेषामात्मनोऽपि वा ॥

कर्णके बाणोंसे सारी दिशाएँ ढक जानेके कारण वहाँ महान् अन्धकार छा गया। उस समय शत्रुपक्षकी तथा अपने पक्षकी भी कोई वस्तु पहचानी नहीं जाती थी ॥

तस्मिंस्तमसि भूते च क्षत्रियाणां भयंकरे।
विचचार महाबाहुर्निर्दहन् क्षत्रियान् बहून् ॥)

शत्रुओंके लिये भयदायक उस घोर अन्धकारमें महाबाहु कर्ण बहुसंख्यक राजपूतोंको दग्ध करता हुआ विचरने लगा॥

ततः शरमहाज्वालो वीर्योष्मा कर्णपावकः।
निर्दहन् पाण्डववनं वीरः पर्यचरद् रणे ॥ ३९ ॥

उस समय वीर कर्ण अग्निके समान हो रहा था। बाण ही उसकी ऊँचेतक उठती हुई ज्वालाओंके समान थे, पराक्रम ही उसका ताप था और वह पाण्डवरूपी वनको दग्ध करता हुआ रणभूमिमें विचर रहा था ॥ ३९ ॥

(ततस्तेषां महाराज पाण्डवानां महारथाः।
सृञ्जयानां च सर्वेषां शतशोऽथ सहस्रशः ॥
अस्त्रैः कर्णं महेष्वासं समन्तात् पर्यवारयन्।)

महाराज ! तब सम्पूर्ण संजयों और पाण्डवोंके सैकड़ों-हजारों महारथियोंने महाधनुर्धर कर्णपर बाणोंकी वर्षा करते हुए उसे चारों ओरसे घेर लिया ॥

स संधाय महास्त्राणि महेष्वासो महामनाः।
प्रहस्य पुरुषेन्द्रस्य शरैश्चिच्छेद कार्मुकम् ॥ ४० ॥

महाधनुर्धर महामना कर्णने हँसकर महान् अस्त्रोंका संधान किया और अपने बाणोंसे महाराज युधिष्ठिरका धनुष काट दिया ॥ ४० ॥

ततः संधाय नवतिं निमेषान्नतपर्वणाम्।
बिभेद कवचं राज्ञो रणे कर्णः शितैः शरैः ॥ ४१ ॥

तत्पश्चात् पलक मारते-मारते झुकी हुई गाँठवाले नब्बे बाणोंका संधान करके कर्णने उन पैने बाणोंद्वारा रणभूमिमें राजा युधिष्ठिरके कवचको छिन्न-भिन्न कर डाला ॥ ४१ ॥

तद् वर्म हेमविकृतं रत्नचित्रं बभौ पतत्।
सविद्युदभ्रं सवितुः श्लिष्टं वातहतं यथा ॥ ४२ ॥

उनका वह सुवर्णभूषित रत्नजटित कवच गिरते समय ऐसी शोभा पा रहा था, मानो सूर्यसे सटा हुआ बिजली-सहित बादल वायुका आघात पाकर नीचे गिर रहा हो ॥४२॥

तदङ्गात् पुरुषेन्द्रस्य भ्रष्टं वर्म व्यरोचत।
रत्नैरलंकृतं चित्रैर्व्यभ्रं निशि यथा नभः ॥ ४३ ॥
छिन्नवर्मा शरैः पार्थो रुधिरेण समुक्षितः।

जैसे रात्रिमें बिना बादलका आकाश नक्षत्रमण्डलसे विचित्र शोभा धारण करता है, उसी प्रकार नरेन्द्र युधिष्ठिरके शरीरसे गिरा हुआ वह कवच विचित्र रत्नोंसे अलंकृत होनेके कारण अद्भुत शोभा पा रहा था। बाणोंसे कवच कट जानेपर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर रक्तसे भीग गये ॥ ४३½ ॥

(बभासे पुरुषश्रेष्ठ उद्यन्निव दिवाकरः।
स शराचितसर्वाङ्गश्छिन्नवर्माथ संयुगे ॥
क्षत्रधर्मं समास्थाय सिंहनादमकुर्वत।)

उस समय युद्धस्थलमें पुरुषश्रेष्ठ युधिष्ठिर उगते हुए सूर्यके समान लाल दिखायी देते थे। उनके सारे अङ्गोंमें बाण धँसे हुए थे और कवच छिन्न-भिन्न हो गया था, तो भी वे क्षत्रिय-धर्मका आश्रय लेकर वहाँ सिंहके समान दहाड़ रहे थे॥

ततः सर्वायसीं शक्तिं चिक्षेपाधिरथिं प्रति ॥ ४४ ॥
तां ज्वलन्तीमिवाकाशे शरैश्चिच्छेद सप्तभिः।
सा छिन्ना भूमिमगमन्महेष्वासस्य सायकैः ॥ ४५॥

उन्होंने अधिरथपुत्र कर्णपर सम्पूर्णतः लोहेकी बनी हुई शक्ति चलायी, परंतु उसने सात बाणोंद्वारा उस प्रज्वलित शक्तिको आकाशमें ही काट डाला। महाधनुर्धर कर्णके सायकों-से कटी हुई वह शक्ति पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ४४-४५ ॥

ततो बाह्वोर्ललाटे च हृदि चैव युधिष्ठिरः।
चतुर्भिस्तोमरैः कर्णं ताडयित्वानदन्मुदा ॥ ४६ ॥

तत्पश्चात् युधिष्ठिरने कर्णकी दोनों भुजाओं, ललाट और छातीमें चार तोमरोंका प्रहार करके सानन्द सिंहनाद किया ॥

उद्भिन्नरुधिरः कर्णः क्रुद्धः सर्प इव श्वसन्।
ध्वजं चिच्छेद भल्लेन त्रिभिर्विव्याध पाण्डवम् ॥४७॥
इषुधी चास्य चिच्छेद रथं च तिलशोऽच्छिनत्।

कर्णके शरीरसे रक्त बहने लगा। फिर तो क्रोधमें भरे हुए सर्पके समान फुफकारते हुए कर्णने एक भल्लसे युधिष्ठिरकी ध्वजा काट डाली और तीन बाणोंसे उन पाण्डुपुत्रको भी घायल कर दिया। उनके दोनों तरकस काट दिये और रथके भी तिल-तिल करके टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ ४७½ ॥

(एतस्मिन्नन्तरे शूराः पाण्डवानां महारथाः ।
ववृषुः शरवर्षाणि राधेयं प्रति भारत ॥

भारत ! इसी बीचमें शूरवीर पाण्डव महारथी राधापुत्र कर्णपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥

सात्यकिः पञ्चविंशत्या शिखण्डी नवभिः शरैः ।
अवर्षतां महाराज राधेयं शत्रुकर्शनम् ॥

महाराज ! सात्यकिने शत्रुसूदन राधापुत्रपर पचीस और शिखण्डीने नौ बाणोंकी वर्षा की ॥

शैनेयं तु ततः क्रुद्धः कर्णः पञ्चभिरायसैः ।
विव्याध समरे राजंस्त्रिभिश्चान्यैः शिलीमुखैः॥

राजन् ! तब क्रोधमें भरे हुए कर्णने समराङ्गणमें सात्यकिको पहले लोहेके बने हुए पाँच बाणोंसे घायल करके फिर दूसरे तीन बाणोंद्वारा उन्हें बींध डाला ॥

दक्षिणं तु भुजं तस्य त्रिभिः कर्णोऽप्यविध्यत ।
सव्यं षोडशभिर्बाणैर्यन्तारं चास्य सप्तभिः ॥

इसके बाद कर्णने सात्यकिकी दाहिनी भुजाको तीन, बायीं भुजाको सोलह और सारथिको सात बाणोंसे क्षत-विक्षत कर दिया ॥

अथास्य चतुरो वाहांश्चतुर्भिर्निशितैः शरैः ।
सूतपुत्रोऽनयत् क्षिप्रं यमस्य सदनं प्रति ॥

तदनन्तर चार पैने बाणोंसे सूतपुत्रने सात्यकिके चारों घोड़ोंको भी तुरंत ही यमलोक पहुँचा दिया ॥

अपरेणाथ भल्लेन धनुश्छित्त्वा महारथः ।
सारथेः सशिरस्त्राणं शिरः कायादपाहरत् ॥

फिर दूसरे भल्लसे महारथी कर्णने उनका धनुष काटकर उनके सारथिके शिरस्त्राणसहित मस्तकको शरीरसे अलग कर दिया ॥

हताश्वसूते तु रथे स्थितः स शिनिपुङ्गवः ।
शक्तिं चिक्षेप कर्णाय वैडूर्यमणिभूषिताम् ॥

जिसके घोड़े और सारथि मारे गये थे, उसी रथपर खड़े हुए शिनिप्रवर सात्यकिने कर्णके ऊपर वैदूर्यमणिसे विभूषित शक्ति चलायी ॥

तामापतन्तीं सहसा द्विधा चिच्छेद भारत ।
कर्णो वै धन्विनां श्रेष्ठस्तांश्च सर्वानवारयत् ॥
ततस्तान् निशितैर्बाणैः पाण्डवानां महारथान् ।
न्यवारयदमेयात्मा शिक्षया च बलेन च ॥

भारत ! धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ कर्णने अपने ऊपर आती हुई उस शक्तिके सहसा दो टुकड़े कर डाले और उन सब महारथियोंको आगे बढ़नेसे रोक दिया, फिर अमेय आत्मबलसे सम्पन्न कर्णने अपनी शिक्षा और बलके प्रभावसे तीखे बाणोंद्वारा उन सभी पाण्डव-महारथियोंकी गति अवरुद्ध कर दी ॥

अर्दयित्वा शरैस्तांस्तु सिंहः क्षुद्रमृगानिव ।
पीडयन् धर्मराजानं शरैः संनतपर्वभिः ॥
अभ्यद्रवत राधेयो धर्मपुत्रं शितैः शरैः ।)

जैसे सिंह छोटे मृगोंको पीड़ा देता है, उसी प्रकार राधापुत्र कर्णने उन महारथियोंको बाणोंसे पीड़ित करके झुकी हुई गाँठवाले तीखे बाणोंसे चोट पहुँचाते हुए वहाँ धर्मराज धर्मपुत्र युधिष्ठिरपर पुनः आक्रमण किया ॥

कालवालास्तु ये पार्थं दन्तवर्णावहन् हयाः ॥ ४८
तैर्युक्तं रथमास्थाय प्रायाद् राजा पराङ्मुखः ।

उस समय दाँतोंके समान सफेद रंग और काली पूँछवाले जो घोड़े युधिष्ठिरकी सवारीमें थे, उन्हींसे जुते हुए दूसरे रथपर बैठकर राजा युधिष्ठिर रणभूमिसे विमुख हो शिविरकी ओर चल दिये ॥ ४८½ ॥

एवं पार्थोऽभ्यपायात् स निहतः पार्ष्णिसारथिः॥ ४९ ॥
अशक्नुवन् प्रमुखतः स्थातुं कर्णस्य दुर्मनाः ।

युधिष्ठिरका पृष्ठरक्षक पहले ही मार दिया गया था । उनका मन बहुत दुखी था, इसलिये वे कर्णके सामने ठहर न सके और युद्धस्थलसे हट गये ॥ ४९½ ॥

अभिद्रुत्य तु राधेयः पाण्डुपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ ५० ॥
वज्रच्छत्रांकुशैर्मत्स्यैर्ध्वजकूर्माम्बुजादिभिः ।
लक्षणैरुपपन्नेन पाण्डुना पाण्डुनन्दनम् ॥ ५१ ॥
पवित्रीकर्तुमात्मानं स्कन्धे संस्पृश्य पाणिना ।
ग्रहीतुमिच्छन् स बलात् कुन्तीवाक्यं च सोऽस्मरत् ॥

उस समय राधापुत्र कर्ण पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरका पीछा करके वज्र, छत्र, अङ्कुश, मत्स्य, ध्वज, कूर्म और कमल आदि शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न गोरे हाथसे उनका कंधा छूकर, मानो अपने आपको पवित्र करनेके लिये उन्हें बलपूर्वक पकड़नेकी इच्छा करने लगा । उसी समय उसे कुन्तीदेवीको दिये हुए अपने वचनका स्मरण हो आया ॥ ५०–५२ ॥

तं शल्यः प्राह मा कर्ण गृहीथाः पार्थिवोत्तमम् ।
गृहीतमात्रो हत्वा त्वां मा करिष्यति भस्मसात्॥५३॥

उस समय राजा शल्यने कहा—'कर्ण ! इन नृपश्रेष्ठ युधिष्ठिरको हाथ न लगाना, अन्यथा वे पकड़ते ही तुम्हारा वध करके अपनी क्रोधाग्निसे तुम्हें भस्म कर डालेंगे' ॥५३॥

अब्रवीत् प्रहसन् राजन् कुत्सयन्निव पाण्डवम् ।
कथं नाम कुले जातः क्षत्रधर्मे व्यवस्थितः ॥ ५४ ॥
प्रजह्यात् समरं भीतः प्राणान् रक्षन् महाहवे ।
न भवान् क्षत्रधर्मेषु कुशलो हीति मे मतिः ॥ ५५ ॥

राजन् ! तब कर्ण जोर-जोरसे हँस पड़ा और पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरकी निन्दा-सा करता हुआ बोला—'युधिष्ठिर ! जो क्षत्रिय-कुलमें उत्पन्न हो, क्षत्रिय-धर्ममें तत्पर रहता हो, वह महासमरमें प्राणोंकी रक्षाके लिये भयभीत हो युद्ध छोड़कर भाग कैसे सकता है ? मेरा तो ऐसा विश्वास है कि तुम क्षत्रिय-धर्ममें निपुण नहीं हो ॥ ५४-५५ ॥

ब्राह्मे बले भवान् युक्तः स्वाध्याये यज्ञकर्मणि ।
मा स्म युद्ध्यस्व कौन्तेय मा स्म वीरान् समासदः॥५६॥

'कुन्तीकुमार ! तुम ब्राह्मबल, स्वाध्याय एवं यज्ञ-कर्ममें ही कुशल हो; अतः न तो युद्ध किया करो और न वीरोंके सामने ही जाओ ॥ ५६ ॥

मा चैतानप्रियं ब्रूहि मा वै व्रज महारणम् ।
वक्तव्या मारिषान्ये तु न वक्तव्यास्तु मादृशाः ॥ ५७॥

'माननीय नरेश ! न इन वीरोंसे कभी अप्रिय वचन बोलो और न महान् युद्धमें पैर ही रक्खो । यदि अप्रिय वचन बोलना ही हो तो दूसरोंसे बोलना; मेरे-जैसे वीरोंसे नहीं ॥

मादृशान् विब्रुवन् युद्धे एतदन्यच्च लप्स्यसे ।
स्वगृहं गच्छ कौन्तेय यत्र तौ केशवार्जुनौ ॥ ५८ ॥
न हि त्वां समरे राजन् हन्यात् कर्णः कथञ्चन ।

'युद्धमें मेरे-जैसे लोगोंसे अप्रिय वचन बोलनेपर तुम्हें यही तथा दूसरा कुफल भी भोगना पड़ेगा । अतः कुन्तीनन्दन ! अपने घर चले जाओ अथवा जहाँ श्रीकृष्ण और अर्जुन हों वहीं पधारो । राजन् ! कर्ण समराङ्गणमें किसी तरह भी तुम्हारा वध नहीं करेगा' ॥ ५८½ ॥

एवमुक्त्वा ततः पार्थं विसृज्य च महाबलः ॥ ५९ ॥
न्यहनत् पाण्डवीं सेनां वज्रहस्त इवासुरीम् ।

महाबली कर्णने युधिष्ठिरसे ऐसा कहकर फिर उन्हें छोड़ दिया और जैसे वज्रधारी इन्द्र असुरसेनाका संहार करते हैं, उसी प्रकार पाण्डवसेनाका विनाश आरम्भ कर दिया ॥

ततोऽपायाद् द्रुतं राजन् व्रीडन्निव नरेश्वरः॥ ६०॥
अथापयातं राजानं मत्वान्वीयुस्तमच्युतम् ।
चेदिपाण्डवपाञ्चालाः सात्यकिश्च महारथः ॥ ६१ ॥
द्रौपदेयास्तथा शूरा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।

राजन् ! तब राजा युधिष्ठिर लजाते हुए-से तुरंत रण-भूमिसे भाग गये । राजाको रणक्षेत्रसे हटा हुआ जानकर चेदि, पाण्डव और पाञ्चाल वीर, महारथी सात्यकि, द्रौपदीके शूरवीर पुत्र तथा पाण्डुनन्दन माद्रीकुमार नकुल-सहदेव भी धर्म-मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले युधिष्ठिरके पीछे-पीछे चल दिये ॥ ६०-६१½ ॥

ततो युधिष्ठिरानीकं दृष्ट्वा कर्णः पराङ्मुखम् ॥ ६२ ॥
कुरुभिः सहितो वीरः प्रहृष्टः पृष्ठतोऽन्वगात् ।

तदनन्तर युधिष्ठिरकी सेनाको युद्धसे विमुख हुई देख हर्षमें भरे हुए वीर कर्णने कौरवसैनिकोंको साथ लेकर कुछ दूरतक उसका पीछा किया ॥ ६२½ ॥

भेरीशङ्खमृदङ्गानां कार्मुकाणां च निःस्वनः ॥ ६३ ॥
बभूव धार्तराष्ट्राणां सिंहनादरवस्तथा ।

उस समय भेरी, शङ्ख, मृदङ्ग और धनुषोंकी ध्वनि सब ओर फैल रही थी तथा दुर्योधनके सैनिक सिंहके समान दहाड़ रहे थे ॥ ६३½ ॥

युधिष्ठिरस्तु कौरव्य रथमारुह्य सत्वरम् ॥ ६४ ॥
श्रुतकीर्तेर्महाराज दृष्टवान् कर्णविक्रमम् ।

कुरुवंशी महाराज ! युधिष्ठिरके घोड़े थक गये थे; अतः उन्होंने तुरंत ही श्रुतकीर्तिके रथपर आरूढ़ हो कर्णके पराक्रम-को देखा ॥ ६४½ ॥

काल्यमानं बलं दृष्ट्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ६५ ॥
स्वान् योधानब्रवीत् क्रुद्धो निघ्नतैतान् किमासत ।

अपनी सेनाको खदेड़ी जाती हुई देख धर्मराज युधिष्ठिर-ने कुपित हो अपने पक्षके योद्धाओंसे कहा—'अरे ! क्यों चुप बैठे हो ? इन शत्रुओंको मार डालो' ॥ ६५½ ॥

ततो राज्ञाभ्यनुज्ञाताः पाण्डवानां महारथाः ॥ ६६ ॥
भीमसेनमुखाः सर्वे पुत्रांस्ते प्रत्युपाद्रवन् ।

राजाकी यह आज्ञा पाते ही भीमसेन आदि समस्त पाण्डव महारथी आपके पुत्रोंपर टूट पड़े ॥ ६६½ ॥

अभवत् तुमुलः शब्दो योधानां तत्र भारत ॥ ६७ ॥
रथहस्त्यश्वपत्तीनां शस्त्राणां च ततस्ततः ।

भारत ! फिर तो वहाँ इधर-उधर सब ओर रथी, हाथी-सवार, घुड़सवार और पैदल योद्धाओं एवं अस्त्र-शस्त्रोंका भयंकर शब्द गूँजने लगा ॥ ६७½ ॥

उत्तिष्ठत प्रहरत प्रैताभिपततेति च ॥ ६८ ॥
इति ब्रुवाणा ह्यन्योन्यं जघ्नुर्योधा महारणे ।

'उठो, मारो, आगे बढ़ो, टूट पड़ो' इत्यादि वाक्य बोलते हुए सब योद्धा उस महासमरमें एक दूसरेको मारने लगे ॥

अभ्रच्छायेव तत्रासीच्छरवृष्टिभिरम्बरे ॥ ६९ ॥
समावृतैर्नरवरैर्निघ्नद्भिरितरेतरम् ।

उस समय वहाँ अस्त्रोंसे आवृत हो परस्पर आघात करने-वाले नरश्रेष्ठ वीरोंके चलाये हुए बाणोंकी वृष्टिसे आकाशमें मेघोंकी छाया-सी छा रही थी ॥ ६९½ ॥

विपताकध्वजच्छत्रा व्यश्वसूतायुधा रणे ॥ ७० ॥
व्यङ्गाङ्गावयवाः पेतुः क्षितौ क्षीणाः क्षितीश्वराः।

कितने ही घायल नरेश पताका, ध्वज, छत्र, अश्व, सारथि, आयुध, शरीर तथा उसके अवयवोंसे रहित हो रणभूमिमें गिर पड़े ॥ ७०½ ॥

प्रवणादिव शैलानां शिखराणि द्विपोत्तमाः ॥ ७१ ॥
सारोहा निहताः पेतुर्वज्रभिन्ना इवाद्रयः ।

जैसे पर्वतोंके शिखर टूटकर निम्न देशसे लुढ़कते हुए नीचे गिर पड़ते हैं तथा जैसे वज्रसे विदीर्ण किये हुए पर्वत धराशायी हो जाते हैं, उसी प्रकार वहाँ मारे गये हाथी अपने सवारोंसहित पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ७१½ ॥

छिन्नभिन्नविपर्यस्तैर्वर्मालङ्कारभूषणैः ॥ ७२ ॥
सारोहास्तुरगाः पेतुर्हतवीराः सहस्रशः ।

टूटे-फूटे और अस्त-व्यस्त हुए कवच, अलंकार एवं आभूषणोंसहित सहस्रों घोड़े अपने बहादुर सवारोंके मारे जानेपर उनके साथ ही गिर पड़ते थे ॥ ७२½ ॥

विप्रविद्धायुधाङ्गाश्च द्विरदाश्वरथैर्हताः ॥ ७३ ॥
प्रतिवीरैश्च सम्मर्दे पत्तिसंघाः सहस्रशः ।

उस संघर्षमें विपक्षी वीरों, हाथियों, घोड़ों तथा रथोंद्वारा मारे गये सहस्रों पैदल योद्धाओंके समुदाय रणभूमिमें सो रहे थे। उनके अस्त्र-शस्त्र और शरीरके अवयव क्षत-विक्षत होकर बिखर गये थे ॥ ७३½ ॥

विशालायतताम्राक्षैः पद्मेन्दुसदृशाननैः ॥ ७४ ॥
शिरोभिर्युद्धशौण्डानां सर्वतः संवृता मही ।
यथा भुवि तथा व्योम्नि निःस्वनं शुश्रुवुर्जनाः ॥ ७५ ॥
विमानैरप्सरःसङ्घैर्गीतवादित्रनिःस्वनैः ।

युद्धकुशल वीरोंके विशाल, विस्तृत एवं लाल-लाल आँखों और कमल तथा चन्द्रमाके समान मुखवाले मस्तकोंसे सारी युद्धभूमि सब ओरसे ढक गयी थी। भूतलपर जैसा कोलाहल हो रहा था, वैसा ही आकाशमें भी लोगोंको सुनायी देता था। वहाँ विमानोंपर बैठी हुई झुंड-की-झुंड अप्सराएँ गीत और वाद्योंकी मधुर ध्वनि फैला रही थीं ॥ ७४-७५½ ॥

हतानभिमुखान् वीरान् वीरैः शतसहस्रशः ॥ ७६ ॥
आरोप्यारोप्य गच्छन्ति विमानेष्वप्सरोगणाः।

वीरोंके द्वारा सम्मुख लड़कर मारे गये लाखों वीरोंको अप्सराएँ विमानोंपर बिठा-बिठाकर स्वर्गलोकमें ले जाती थीं ॥

तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यं प्रत्यक्षं स्वर्गलिप्सया ॥ ७७ ॥
प्रहृष्टमनसः शूराः क्षिप्रं जघ्नुः परस्परम् ।

यह महान् आश्चर्यकी बात प्रत्यक्ष देखकर हर्ष और उत्साहमें भरे हुए शूरवीर स्वर्गकी लिप्सासे एक दूसरेको शीघ्रतापूर्वक मारने लगे ॥ ७७½ ॥

रथिनो रथिभिः सार्धं चित्रं युयुधुराहवे ॥ ७८ ॥
पत्तयः पत्तिभिर्नागाः सह नागैर्हयैर्हयाः ।

युद्धस्थलमें रथियोंके साथ रथी, पैदलोंके साथ पैदल, हाथियोंके साथ हाथी और घोड़ोंके साथ घोड़े विचित्र युद्ध करते थे ॥ ७८½ ॥

एवं प्रवृत्ते संग्रामे गजवाजिनरक्षये ॥ ७९ ॥
सैन्येन रजसा व्याप्ते स्वे स्वाञ्जघ्नुः परे परान्।

इस प्रकार हाथी, घोड़ों और मनुष्योंका संहार करनेवाले उस संग्रामके आरम्भ होनेपर सैनिकोंद्वारा उड़ायी हुई धूलसे वहाँका सारा प्रदेश आच्छादित हो जानेपर अपने और शत्रु-पक्षके योद्धा अपने ही पक्षवालोंका संहार करने लगे ॥७९½॥

कचाकचि युद्धमासीद् दन्तादन्ति नखानखि ॥ ८० ॥
मुष्टियुद्धं नियुद्धं च देहपाप्मासुनाशनम् ।

दोनों दलोंके सैनिक एक दूसरेके केश पकड़कर खींचते, दाँतोंसे काटते, नखोंसे बखोटते, मुक्कोंसे मारते और परस्पर मल्लयुद्ध करने लगते थे। इस प्रकार वह युद्ध सैनिकोंके शरीर, प्राण और पापोंका विनाश करनेवाला हो रहा था ॥

तथा वर्तति संग्रामे गजवाजिनरक्षये ॥ ८१ ॥
नराश्वनागदेहेभ्यः प्रसृता लोहितापगा ।
गजाश्वनरदेहान् सा व्युवाह पतितान् बहून्॥ ८२ ॥

हाथी, घोड़े और मनुष्योंका विनाश करनेवाला वह संग्राम उसी रूपमें चलने लगा। मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंके शरीरोंसे खूनकी नदी बह चली, जो अपने भीतर पड़े हुए हाथी, घोड़े और मनुष्योंकी बहुसंख्यक लाशोंको बहाये जा रही थी ॥ ८१-८२ ॥

नराश्वगजसम्बाधे नराश्वगजसादिनाम् ।
लोहितोदा महाघोरा मांसशोणितकर्दमा ॥ ८३ ॥
नराश्वगजदेहान् सा वहन्ती भीरुभीषणा ।

मनुष्य, घोड़े और हाथियोंसे भरे हुए युद्धस्थलमें मनुष्य, अश्व, हाथी और सवारोंके रक्त ही उस नदीके जल थे। उनका मांस और गाढ़ा खून उस नदीकी कीचड़के समान जान पड़ता था। मनुष्य, घोड़े और हाथियोंके शरीरोंको बहाती हुई वह महाभयंकर नदी भीरु मनुष्योंको भयभीत कर रही थी ॥ ८३½ ॥

तस्याः पारमपारं च व्रजन्ति विजयैषिणः ॥ ८४ ॥
गाधेन चाप्लुवन्तश्च निमज्ज्योन्मज्ज्य चापरे ।

विजयकी अभिलाषा रखनेवाले कितने ही वीर जहाँ थोड़ा रक्तमय जल था वहाँ तैरकर और जहाँ अथाह था, वहाँ गोते लगा-लगाकर उसके दूसरे पार पहुँच जाते थे ॥ ८४½ ॥

ते तु लोहितदिग्धाङ्गा रक्तवर्मायुधाम्बराः ॥ ८५ ॥
सस्नुस्तस्यां पपुश्चास्यां मम्लुश्च भरतर्षभ ।

उन सबके शरीर रक्तसे रँग गये थे। कवच, आयुध और वस्त्र भी रक्तरंजित हो गये थे। भरतश्रेष्ठ ! कितने ही योद्धा उसमें नहा लेते, कितनोंके मुँहमें रक्तकी घूँट चली जाती और कितने ही ग्लानिसे भर जाते थे ॥ ८५½ ॥

रथानश्वान् नरान् नागानायुधाभरणानि च ॥ ८६ ॥
वसनान्यथ वर्माणि वध्यमानान् हतानपि ।
भूमिं खं द्यां दिशश्चैव प्रायः पश्याम लोहिताः॥८७॥

मारे गये तथा मारे जाते हुए हाथी, घोड़े, रथ, मनुष्य, अस्त्र-शस्त्र, आभूषण, वस्त्र, कवच, पृथ्वी, आकाश, द्युलोक और सम्पूर्ण दिशाएँ—ये सब हमें प्रायः लाल-ही-लाल दिखायी देते थे ॥ ८६-८७ ॥

लोहितस्य तु गन्धेन स्पर्शेन च रसेन च ।
रूपेण चातिरिक्तेन शब्देन च विसर्पता ॥ ८८ ॥
विषादः सुमहानासीत् प्रायः सैन्यस्य भारत ।

भारत ! सब ओर फैली और बढ़ी हुई उस रक्त-राशिकी

गन्धसे, स्पर्शसे, रससे, रूपसे और शब्दसे भी प्रायः सारी सेनाके मनमें बड़ा विषाद हो रहा था ॥ ८८½ ॥

ततस्तु विप्रहतं सैन्यं भीमसेनमुखास्तदा ॥ ८९ ॥
भूयः समाद्रवन् वीराः सात्यकिप्रमुखास्तदा ।

भीमसेन तथा सात्यकि आदि वीरोंने विशेषरूपसे विनष्ट हुई उस कौरवसेनापर पुनः बड़े वेगसे आक्रमण किया ।८९½।

तेषामापततां वेगमविषह्यं निरीक्ष्य च ॥ ९० ॥
पुत्राणां ते महासैन्यमासीद् राजन् पराङ्मुखम् ।

राजन् ! उन आक्रमणकारी वीरोंके असह्य वेगको देखकर आपके पुत्रोंकी विशाल सेना युद्धसे विमुख होकर भाग चली ॥ ९०½ ॥

तत् प्रकीर्णरथाश्वेभं नरवाजिसमाकुलम् ॥ ९१ ॥
विध्वस्तवर्मकवचं प्रविद्धायुधकार्मुकम् ।
व्यद्रवत् तावकं सैन्यं लोड्यमानं समन्ततः ।
सिंहार्दितमिवारण्ये यथा गजकुलं तथा ॥ ९२ ॥

जैसे जंगलमें सिंहसे पीड़ित हुआ हाथियोंका यूथ व्याकुल होकर भागता है, उसी प्रकार शत्रुओंद्वारा सब ओरसे रौंदी जाती हुई मनुष्यों और घोड़ोंसे परिपूर्ण आपकी विशाल सेना भाग चली । उसके रथ, हाथी और घोड़े तितर-बितर हो गये, आवरण और कवच नष्ट हो गये तथा अस्त्र-शस्त्र और धनुष छिन्न-भिन्न होकर पृथ्वीपर पड़े थे॥९१-९२॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४९ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १९½ श्लोक मिलाकर कुल १११½ श्लोक हैं)

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कर्ण और भीमसेनका युद्ध तथा कर्णका पलायन

संजय उवाच

तानभिद्रवतो दृष्ट्वा पाण्डवांस्तावकं बलम् ।
दुर्योधनो महाराज वारयामास सर्वशः ॥ १ ॥
योधांश्च स्वबलं चैव समन्ताद् भरतर्षभ ।
क्रोशतस्तव पुत्रस्य न स्म राजन् न्यवर्तत ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! पाण्डवोंको आपकी सेनापर आक्रमण करते देख दुर्योधनने सब ओरसे सब प्रकार-के प्रयत्नोंद्वारा उन योद्धाओंको रोकने तथा अपनी सेनाको भी स्थिर करनेका प्रयत्न किया । भरतश्रेष्ठ ! नरेश्वर ! आपके पुत्रके बहुत चीखने-चिल्लानेपर भी भागती हुई सेना पीछे न लौटी ॥ १-२ ॥

ततः पक्षः प्रपक्षश्च शकुनिश्चापि सौबलः ।
तदा सशस्त्राः कुरवो भीममभ्यद्रवन् रणे ॥ ३ ॥

तदनन्तर व्यूहके पक्ष और प्रपक्षभागमें खड़े हुए सैनिक, सुबलपुत्र शकुनि तथा सशस्त्र कौरववीर उस समय रण-क्षेत्रमें भीमसेनपर टूट पड़े ॥ ३ ॥

कर्णोऽपि दृष्ट्वा द्रवतो धार्तराष्ट्रान् सराजकान् ।
मद्रराजमुवाचेदं याहि भीमरथं प्रति ॥ ४ ॥

उधर कर्णने भी राजा दुर्योधन और उसके सैनिकोंको भागते देख मद्रराज शल्यसे कहा—'भीमसेनके रथके समीप चलो' ॥ ४ ॥

एवमुक्तश्च कर्णेन शल्यो मद्राधिपस्तदा
हंसवर्णान् हयानग्र्यान् प्रैषीद् यत्र वृकोदरः ॥ ५ ॥

कर्णके ऐसा कहनेपर मद्रराज शल्यने हंसके समान श्वेत वर्णवाले श्रेष्ठ घोड़ोंको उधर ही हाँक दिया, जहाँ भीम-सेन खड़े थे ॥ ५ ॥

ते प्रेरिता महाराज शल्येनाहवशोभिना ।
भीमसेनरथं प्राप्य समसज्जन्त वाजिनः ॥ ६ ॥

महाराज ! संग्राममें शोभा पानेवाले शल्यसे संचालित हो वे घोड़े भीमसेनके रथके समीप जाकर पाण्डवसेनामें मिल गये ॥ ६ ॥

दृष्ट्वा कर्णं समायान्तं भीमः क्रोधसमन्वितः ।
मतिं चक्रे विनाशाय कर्णस्य भरतर्षभ ॥ ७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! कर्णको आते देख क्रोधमें भरे हुए भीमसेनने उसके विनाशका विचार किया ॥ ७ ॥

सोऽब्रवीत् सात्यकिं वीरं धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ।
यूयं रक्षत राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ॥ ८ ॥
संशयान्महतो मुक्तं कथंचित् प्रेक्षतो मम ।

उन्होंने वीर सात्यकि तथा द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्नसे कहा—'तुमलोग धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करो । वे अभी-अभी मेरे देखते-देखते किसी प्रकार महान् प्राण-संकटसे मुक्त हुए हैं ॥ ८½ ॥

अग्रतो मे कृतो राजा छिन्नसर्वपरिच्छदः ॥ ९ ॥
दुर्योधनस्य प्रीत्यर्थं राधेयेन दुरात्मना ।

'दुरात्मा राधापुत्र कर्णने दुर्योधनकी प्रसन्नताके लिये मेरे सामने ही धर्मराजकी समस्त युद्ध-सामग्रीको छिन्न-भिन्न कर डाला है ॥ ९½ ॥

अन्तमद्य गमिष्यामि तस्य दुःखस्य पार्षत ॥ १० ॥
हन्तास्म्यद्य रणे कर्णं स वा मां निहनिष्यति ।
संग्रामेण सुघोरेण सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ११ ॥

'द्रुपदकुमार ! इससे मुझे बड़ा दुःख हुआ है; अतः अब मैं उसका बदला लूँगा । आज रणभूमिमें अत्यन्त घोर संग्राम करके या तो मैं ही कर्णको मार डालूँगा या वही मेरा वध करेगा; यह मैं तुमसे सच्ची बात कहता हूँ ॥ १०-११ ॥

राजानमद्य भवतां न्यासभूतं ददानि वै।
तस्य संरक्षणे सर्वे यतध्वं विगतज्वराः ॥ १२॥

'इस समय राजाको धरोहरके रूपमें मैं तुम्हें सौंप रहा हूँ। तुम सब लोग निश्चिन्त होकर इनकी रक्षाके लिये पूर्ण प्रयत्न करना' ॥ १२ ॥

एवमुक्त्वा महाबाहुः प्रायादाधिरथिं प्रति।
सिंहनादेन महता सर्वाः संनादयन् दिशः ॥ १३ ॥

ऐसा कहकर महाबाहु भीमसेन अपने महान् सिंहनादसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करते हुए सूतपुत्र कर्णकी ओर बढ़े ॥ १३ ॥

दृष्ट्वा त्वरितमायान्तं भीमं युद्धाभिनन्दिनम्।
सूतपुत्रमथोवाच मद्राणामीश्वरो विभुः ॥ १४ ॥

युद्धका अभिनन्दन करनेवाले भीमसेनको बड़ी उतावली-के साथ आते देख मद्रदेशके स्वामी शक्तिशाली शल्यने सूत-पुत्र कर्णसे कहा ॥ १४ ॥

शल्य उवाच

पश्य कर्ण महाबाहुं संक्रुद्धं पाण्डुनन्दनम्।
दीर्घकालार्जितं क्रोधं मोक्तुकामं त्वयि ध्रुवम् ॥ १५॥

शल्य बोले—कर्ण ! क्रोधमें भरे हुए पाण्डुनन्दन महाबाहु भीमसेनको देखो; जो दीर्घकालसे संचित किये हुए क्रोधको आज तुम्हारे ऊपर छोड़नेका दृढ़ निश्चय किये हुए हैं॥

ईदृशं नास्य रूपं मे दृष्टपूर्वं कदाचन।
अभिमन्यौ हते कर्ण राक्षसे च घटोत्कचे ॥ १६ ॥

कर्ण ! अभिमन्यु तथा घटोत्कच राक्षसके मारे जानेपर भी पहले कभी मैंने इनका ऐसा रूप नहीं देखा था ॥ १६ ॥

त्रैलोक्यस्य समस्तस्य शक्तः क्रुद्धो निवारणे।
बिभर्ति सदृशं रूपं युगान्ताग्निसमप्रभम् ॥ १७ ॥

ये इस समय कुपित हो समस्त त्रिलोकीको रोक देनेमें समर्थ हैं; क्योंकि प्रलयकालके अग्निके समान तेजस्वी रूप धारण कर रहे हैं ॥ १७ ॥

संजय उवाच

इति ब्रुवति राधेयं मद्राणामीश्वरे नृप।
अभ्यवर्तत वै कर्णं क्रोधदीप्तो वृकोदरः ॥ १८ ॥

संजय कहते हैं—नरेश्वर ! मद्रराज शल्य राधापुत्र कर्णसे ऐसी बातें कह ही रहे थे कि क्रोधसे प्रज्वलित हुए भीमसेन उसके सामने आ पहुँचे ॥ १८ ॥

अथागतं तु सम्प्रेक्ष्य भीमं युद्धाभिनन्दिनम्।
अब्रवीद् वचनं शल्यं राधेयः प्रहसन्निव ॥ १९ ॥

युद्धका अभिनन्दन करनेवाले भीमसेनको सामने आया देख हँसते हुए-से राधापुत्र कर्णने शल्यसे इस प्रकार कहा—॥

यदुक्तं वचनं मेऽद्य त्वया मद्रजनेश्वर।
भीमसेनं प्रति विभो तत् सत्यं नात्र संशयः ॥ २० ॥

'मद्रराज ! प्रभो ! आज तुमने भीमसेनके विषयमें मेरे सामने जो बात कही है, वह सर्वथा सत्य है—इसमें संशय नहीं है ॥ २० ॥

एष शूरश्च वीरश्च क्रोधनश्च वृकोदरः।
निरपेक्षः शरीरे च प्राणतश्च बलाधिकः ॥ २१ ॥

'ये भीमसेन शूरवीर, क्रोधी, अपने शरीर और प्राणोंका मोह न करनेवाले तथा अधिक बलशाली हैं ॥ २१ ॥

अज्ञातवासं वसता विराटनगरे तदा।
द्रौपद्याः प्रियकामेन केवलं बाहुसंश्रयात् ॥ २२ ॥
गूढभावं समाश्रित्य कीचकः सगणो हतः।

'विराटनगरमें अज्ञातवास करते समय इन्होंने द्रौपदीका प्रिय करनेकी इच्छासे छिपे-छिपे जाकर केवल बाहुबलसे कीचकको उसके साथियोंसहित मार डाला था ॥ २२½ ॥

सोऽद्य संग्रामशिरसि संनद्धः क्रोधमूर्छितः ॥ २३ ॥
किं करोद्यतदण्डेन मृत्युनापि व्रजेद् रणम्।

'वे ही आज क्रोधसे आतुर हो कवच बाँधकर युद्धके मुहानेपर उपस्थित हैं; परंतु क्या ये दण्ड धारण किये यमराज-के साथ भी युद्धके लिये रणभूमिमें उतर सकते हैं ?॥ २३½ ॥

चिरकालाभिलषितो ममायं तु मनोरथः ॥ २४ ॥
अर्जुनं समरे हन्यां मां वा हन्याद् धनंजयः।
स मे कदाचिदद्यैव भवेद् भीमसमागमात् ॥ २५ ॥

'मेरे हृदयमें दीर्घकालसे यह अभिलाषा बनी हुई है कि समराङ्गणमें अर्जुनका वध करूँ अथवा वे ही मुझे मार डालें। कदाचित् भीमसेनके साथ समागम होनेसे मेरी वह इच्छा आज ही पूरी हो जाय ॥ २४-२५ ॥

निहते भीमसेने वा यदि वा विरथीकृते।
अभियास्यति मां पार्थस्तन्मे साधु भविष्यति ॥ २६ ॥
अत्र यन्मन्यसे प्राप्तं तच्छीघ्रं सम्प्रधारय।

'यदि भीमसेन मारे गये अथवा रथहीन कर दिये गये तो अर्जुन अवश्य मुझपर आक्रमण करेंगे, जो मेरे लिये अधिक अच्छा होगा। तुम जो यहाँ उचित समझते हो, वह शीघ्र निश्चय करके बताओ' ॥ २६½ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं राधेयस्यामितौजसः ॥ २७ ॥
उवाच वचनं शल्यः सूतपुत्रं तथागतम्।

अमित शक्तिशाली राधापुत्र कर्णका यह वचन सुनकर राजा शल्यने सूतपुत्रसे उस अवसरके लिये उपयुक्त वचन कहा—॥ २७½ ॥

अभियाहि महाबाहो भीमसेनं महाबलम् ॥ २८ ॥
निरस्य भीमसेनं तु ततः प्राप्स्यसि फाल्गुनम्।

'महाबाहो ! तुम महाबली भीमसेनपर चढ़ाई करो। भीमसेनको परास्त कर देनेपर निश्चय ही अर्जुनको अपने सामने पा जाओगे ॥ २८½ ॥

यस्ते कामोऽभिलषितश्चिरात् प्रभृति हृद्गतः ॥ २९ ॥
स वै सम्पत्स्यते कर्ण सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ।

'कर्ण ! तुम्हारे हृदयमें चिरकालसे जो अभीष्ट मनोरथ संचित है, वह निश्चय ही सफल होगा, यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ' ॥ २९½ ॥

एवमुक्ते ततः कर्णः शल्यं पुनरभाषत ॥ ३० ॥
हन्ताहमर्जुनं संख्ये मां वा हन्याद् धनंजयः ।
युद्धे मनः समाधाय याहि यत्र वृकोदरः ॥ ३१ ॥

उनके ऐसा कहनेपर कर्णने शल्यसे फिर कहा—'मद्रराज ! मैं युद्धमें अर्जुनको मारूँ या अर्जुन ही मुझे मार डालें । इस उद्देश्यसे युद्धमें मन लगाकर जहाँ भीमसेन हैं, उधर ही चलो' ॥ ३०-३१ ॥

संजय उवाच

ततः प्रायाद् रथेनाशु शल्यस्तत्र विशाम्पते ।
यत्र भीमो महेष्वासो व्यद्रावयत वाहिनीम् ॥ ३२ ॥

संजय कहते हैं—प्रजानाथ ! तदनन्तर शल्य रथके द्वारा तुरंत ही वहाँ जा पहुँचे, जहाँ महाधनुर्धर भीमसेन आपकी सेनाको खदेड़ रहे थे ॥ ३२ ॥

ततस्तूर्यनिनादश्च भेरीणां च महास्वनः ।
उदतिष्ठच्च राजेन्द्र कर्णभीमसमागमे ॥ ३३ ॥

राजेन्द्र ! कर्ण और भीमसेनका संघर्ष उपस्थित होनेपर फिर तूर्य और भेरियोंकी गम्भीर ध्वनि होने लगी ॥ ३३ ॥

भीमसेनोऽथ संक्रुद्धस्तस्य सैन्यं दुरासदम् ।
नाराचैर्विमलैस्तीक्ष्णैर्दिशः प्राद्रावयद् बली ॥ ३४ ॥

बलवान् भीमसेनने अत्यन्त कुपित होकर चमचमाते हुए तीखे नाराचोंसे आपकी दुर्जय सेनाको सम्पूर्ण दिशाओंमें खदेड़ दिया ॥ ३४ ॥

स संनिपातस्तुमुलो घोररूपो विशाम्पते ।
आसीद् रौद्रो महाराज कर्णपाण्डवयोर्मृधे ॥ ३५ ॥

प्रजानाथ ! महाराज ! कर्ण और भीमसेनके उस युद्धमें बड़ी भयङ्कर, भीषण और घोर मार-काट हुई ॥ ३५ ॥

ततो मुहूर्ताद् राजेन्द्र पाण्डवः कर्णमाद्रवत् ।
समापतन्तं सम्प्रेक्ष्य कर्णो वैकर्तनो वृषः ॥ ३६ ॥
आजघान सुसंक्रुद्धो नाराचेन स्तनान्तरे ।
पुनश्चैनममेयात्मा शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ३७ ॥

राजेन्द्र ! पाण्डुपुत्र भीमसेनने दो ही घड़ीमें कर्णपर आक्रमण कर दिया । उन्हें अपनी ओर आते देख अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए धर्मात्मा वैकर्तन कर्णने एक नाराचद्वारा उनकी छातीमें प्रहार किया । फिर अमेय आत्मबलसे सम्पन्न उस वीरने उन्हें अपने बाणोंकी वर्षासे ढक दिया ॥ ३६-३७ ॥

स विद्धः सूतपुत्रेण छादयामास पत्रिभिः ।
विव्याध निशितैः कर्णं नवभिर्नतपर्वभिः ॥ ३८ ॥

सूतपुत्रके द्वारा घायल होनेपर उन्होंने भी उसे बाणोंसे आच्छादित कर दिया और झुकी हुई गाँठवाले नौ तीखे बाणोंसे कर्णको बींध डाला ॥ ३८ ॥

तस्य कर्णो धनुर्मध्ये द्विधा चिच्छेद पत्रिभिः ।
अथैनं छिन्नधन्वानं प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ॥ ३९ ॥
नाराचेन सुतीक्ष्णेन सर्वावरणभेदिना ।

तब कर्णने कई बाण मारकर भीमसेनके धनुषके बीच-से ही दो टुकड़े कर दिये । धनुष कट जानेपर उनकी छातीमें समस्त आवरणोंका भेदन करनेवाले अत्यन्त तीखे नाराचसे गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३९½ ॥

सोऽन्यत् कार्मुकमादाय सूतपुत्रं वृकोदरः ॥ ४० ॥
राजन् मर्मसु मर्मज्ञो विव्याध निशितैः शरैः ।
ननाद बलवन्नादं कम्पयन्निव रोदसी ॥ ४१ ॥

राजन् ! मर्मज्ञ भीमसेनने दूसरा धनुष लेकर सूतपुत्रके मर्मस्थानोंमें पैने बाणोंद्वारा प्रहार किया और पृथ्वी तथा आकाशको कँपाते हुए-से उन्होंने बड़े जोरसे गर्जना की ॥

तं कर्णः पञ्चविंशत्या नाराचेन समार्पयत् ।
मदोत्कटं वने दृप्तमुल्काभिरिव कुञ्जरम् ॥ ४२ ॥

कर्णने भीमसेनको पचीस नाराच मारे, मानो किसी शिकारीने वनमें दर्पयुक्त मदोन्मत्त गजराजपर उल्काओंद्वारा प्रहार किया हो ॥ ४२ ॥

ततः सायकभिन्नाङ्गः पाण्डवः क्रोधमूर्छितः ।
संरम्भामर्षताम्राक्षः सूतपुत्रवधेप्सया ॥ ४३ ॥
स कार्मुके महावेगं भारसाधनमुत्तमम् ।
गिरीणामपि भेत्तारं सायकं समयोजयत् ॥ ४४ ॥

फिर कर्णके बाणोंसे सारा शरीर घायल हो जानेके कारण पाण्डुपुत्र भीमसेन क्रोधसे मूर्छित हो उठे । रोष और अमर्षसे उनकी आँखें लाल हो गयीं । उन्होंने सूतपुत्रके वधकी इच्छासे अपने धनुषपर एक अत्यन्त वेगशाली, भारसाधनमें समर्थ, उत्तम और पर्वतोंको भी विदीर्ण कर देनेवाले बाणका संधान किया ॥ ४३-४४ ॥

विकृष्य बलवच्चापमाकर्णादतिमारुतिः ।
तं मुमोच महेष्वासः क्रुद्धः कर्णजिघांसया ॥ ४५ ॥

फिर हनुमान्‌जीसे भी अधिक पराक्रम प्रकट करनेवाले महाधनुर्धर भीमसेनने धनुषको जोर-जोरसे कानतक खींचकर कर्णको मार डालनेकी इच्छासे उस बाणको क्रोधपूर्वक छोड़ दिया ॥ ४५ ॥

स विसृष्टो बलवता बाणो वज्राशनिस्वनः ।
अदारयद् रणे कर्णं वज्रवेगो यथाचलम् ॥ ४६ ॥

बलवान् भीमसेनके हाथसे छूटकर वज्र और विद्युत्‌के समान शब्द करनेवाले उस बाणने रणभूमिमें कर्णको चीर डाला, मानो वज्रके वेगने पर्वतको विदीर्ण कर दिया हो ॥

स भीमसेनाभिहतः सूतपुत्रः कुरूद्वह।
निषसाद रथोपस्थे विसंज्ञः पृतनापतिः ॥ ४७ ॥

कुरुश्रेष्ठ! भीमसेनकी गहरी चोट खाकर सेनापति सूतपुत्र कर्ण अचेत हो रथकी बैठकमें धम्मसे बैठ गया ॥

(रुधिरेणावसिक्ताङ्गो गतासुवदरिंदमः।
एतस्मिन्नन्तरे दृष्ट्वा मद्रराजो वृकोदरम् ॥
जिह्वां छेत्तुं समायान्तं सान्त्वयन्निदमब्रवीत्।

उसका सारा शरीर रक्तसे सिंच गया। शत्रुओंका दमन करनेवाला वह वीर प्राणहीन-सा हो गया था। इसी समय भीमसेनको कर्णकी जीभ काटनेके लिये आते देख मद्रराज शल्यने उन्हें सान्त्वना देते हुए इस प्रकार कहा ॥

शल्य उवाच

भीमसेन महाबाहो यत् त्वां वक्ष्यामि तच्छृणु।
वचनं हेतुसम्पन्नं श्रुत्वा चैतत् तथा कुरु ॥

शल्य बोले—महाबाहु भीमसेन! मैं तुमसे जो युक्तियुक्त वचन कह रहा हूँ, उसे सुनो और सुनकर उसका पालन करो ॥

अर्जुनेन प्रतिज्ञातो वधः कर्णस्य शुष्मिणः ॥
तां तथा कुरु भद्रं ते प्रतिज्ञां सव्यसाचिनः।

अर्जुनने पराक्रमी कर्णके वधकी प्रतिज्ञा की है। तुम्हारा कल्याण हो। तुम सव्यसाची अर्जुनके उस प्रतिज्ञाको सफल करो ॥

भीम उवाच

दृढव्रतत्वं पार्थस्य जानामि नृपसत्तम।
राज्ञस्तु धर्षणं पापः कृतवान् मम संनिधौ ॥
ततः कोपाभिभूतेन शेषं न गणितं मया।

भीमसेनने कहा—नृपश्रेष्ठ! मैं अर्जुनकी दृढ़प्रतिज्ञताको जानता हूँ; परंतु इस पापी कर्णने मेरे समीप ही राजा युधिष्ठिरका तिरस्कार किया है, अतः क्रोधके वशीभूत होकर मैंने और किसी बातकी परवा नहीं की है ॥

पतिते चापि राधेये न मे मन्युः शमं गतः ॥
जिह्वोद्धरणमेवास्य प्राप्तकालं मतं मम।

यद्यपि राधापुत्र कर्ण गिर गया है तो भी मेरा क्रोध अभी शान्त नहीं हुआ है। मैं तो इस समय इसकी जीभ खींच लेना ही उचित समझता हूँ ॥

अनेन सुनृशंसेन समवेतेषु राजसु ॥
अस्माकं शृण्वतां कृष्णा यानि वाक्यानि मातुल।
असह्यानि च नीचेन बहूनि श्राविताानि भोः ॥
नूनं चैतत् परिज्ञातं दूरस्थस्यापि पार्थिव।
छेदनं चास्य जिह्वायास्तदेवाकाङ्क्षितं मया ॥

मामाजी! इस नीच नृशंसने जहाँ बहुत-से राजा एकत्र हुए थे, वहाँ हमारे सुनते हुए द्रौपदीके प्रति बहुत-से असह्य कटुवचन सुनाये थे। राजन्! आप दूर होनेपर भी निश्चय ही यह समझ गये हैं कि मेरे द्वारा इसकी जीभ काटी जानेवाली है। वास्तवमें इस समय मैंने इसकी जीभ काटनेकी ही इच्छा की थी ॥

राज्ञस्तु प्रियकामेन कालोऽयं परिपालितः।
भवता तु यदुक्तोऽस्मि वाक्यं हेत्वर्थसंहितम् ॥
तद् गृहीतं महाराज कटुकस्थमिवौषधम्।

केवल राजा युधिष्ठिरका प्रिय करनेके लिये मैंने आज तक प्रतीक्षा की है। महाराज! आपने जो युक्तियुक्त बात मुझसे कही है, उसे कड़वी दवाके समान मैंने ग्रहण कर लिया है ॥

हीनप्रतिज्ञो बीभत्सुर्न हि जीवेत कर्हिचित् ॥
अस्मिन् विनष्टे नष्टाः स्मः सर्व एव सकेशवाः।

क्योंकि यदि अर्जुनकी प्रतिज्ञा भङ्ग हो जायगी तो वे कभी जीवित नहीं रह सकेंगे; उनके नष्ट होनेपर श्रीकृष्णसहित हम सब लोग भी नष्ट ही हो जायँगे ॥

अद्य चैव नृशंसात्मा पापः पापकृतां वरः ॥
गमिष्यति पराभावं दृष्टमात्रः किरीटिना।

आज किरीटधारी अर्जुनकी दृष्टि पड़ते ही यह पापाचारियोंमें श्रेष्ठ पापात्मा क्रूर कर्ण पराभवको प्राप्त हो जायगा ॥

युधिष्ठिरस्य कोपेन पूर्वं दग्धो नृशंसकृत् ॥
त्वया संरक्षितस्त्वस्य मत्समीपादुपायतः ॥)

यह नृशंस कर्ण महाराज युधिष्ठिरके क्रोधसे पहले ही दग्ध हो चुका था। आज आपने उचित उपायद्वारा मेरे निकटसे इसकी रक्षा कर ली है ॥

ततो मद्राधिपो दृष्ट्वा विसंज्ञं सूतनन्दनम्।
अपोवाह रथेनाजौ कर्णमाहवशोभिनम् ॥ ४८ ॥

तदनन्तर मद्रराज शल्य संग्राममें शोभा पानेवाले सूतपुत्र कर्णको अचेत हुआ देख रथके द्वारा युद्धस्थलसे दूर हटा ले गये ॥ ४८ ॥

ततः पराजिते कर्णे धार्तराष्ट्रीं महाचमूम्।
व्यद्रावयद् भीमसेनो यथेन्द्रो दानवान् पुरा ॥ ४९ ॥

कर्णके पराजित हो जानेपर भीमसेन दुर्योधनकी विशाल सेनाको पुनः खदेड़ने लगे। ठीक वैसे ही, जैसे पूर्वकालमें इन्द्रने दानवोंको मार भगाया था ॥ ४९ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णापयाने पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्णका पलायनविषयक पचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५० ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १३ श्लोक मिलाकर कुल ६२ श्लोक हैं)

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भीमसेनके द्वारा धृतराष्ट्रके छः पुत्रोंका वध, भीम और कर्णका युद्ध, भीमके द्वारा गजसेना, रथसेना और घुड़सवारोंका संहार तथा उभयपक्षकी सेनाओंका घोर युद्ध

धृतराष्ट्र उवाच

सुदुष्करमिदं कर्म कृतं भीमेन संजय।
येन कर्णो महाबाहू रथोपस्थे निपातितः॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! भीमसेनने तो यह अत्यन्त दुष्कर कर्म कर डाला कि महाबाहु कर्णको रथकी बैठकमें गिरा दिया ॥ १ ॥

कर्णो ह्येको रणे हन्ता पाण्डवान् सृञ्जयैः सह।
इति दुर्योधनः सूत प्राब्रवीन्मां मुहुर्मुहुः॥ २ ॥

सूत ! दुर्योधन मुझसे बारंबार कहा करता था कि 'कर्ण अकेला ही रणभूमिमें सृंजयोंसहित समस्त पाण्डवोंका वध कर सकता है' ॥ २ ॥

पराजितं तु राधेयं दृष्ट्वा भीमेन संयुगे।
ततः परं किमकरोत् पुत्रो दुर्योधनो मम॥ ३ ॥

परंतु उस दिन युद्धस्थलमें राधापुत्र कर्णको भीमसेनके द्वारा पराजित हुआ देखकर मेरे पुत्र दुर्योधनने क्या किया ?॥

संजय उवाच

विमुखं प्रेक्ष्य राधेयं सूतपुत्रं महाहवे।
पुत्रस्तव महाराज सोदर्यान् समभाषत॥ ४ ॥

संजयने कहा—महाराज ! सूतपुत्र राधाकुमार कर्णको महासमरमें पराङ्मुख हुआ देख आपका पुत्र अपने भाइयोंसे बोला—॥ ४ ॥

शीघ्रं गच्छत भद्रं वो राधेयं परिरक्षत।
भीमसेनभयागाधे मज्जन्तं व्यसनार्णवे॥ ५ ॥

'तुम्हारा कल्याण हो। तुमलोग शीघ्र जाओ और राधापुत्र कर्णकी रक्षा करो। वह भीमसेनके भयसे भरे हुए संकटके अगाध महासागरमें डूब रहा है' ॥ ५ ॥

ते तु राज्ञा समादिष्टा भीमसेनं जिघांसवः।
अभ्यवर्तन्त संक्रुद्धाः पतङ्गाः पावकं यथा॥ ६ ॥

राजा दुर्योधनकी आज्ञा पाकर आपके पुत्र अत्यन्त कुपित हो भीमसेनको मार डालनेकी इच्छासे उनके सामने गये, मानो पतंग आगके समीप जा पहुँचे हों ॥ ६ ॥

श्रुतर्वा दुर्धरः क्राथो विवित्सुर्विकटः समः।
निषङ्गी कवची पाशी तथा नन्दोपनन्दकौ॥ ७ ॥
दुष्प्रधर्षः सुबाहुश्च वातवेगसुवर्चसौ।
धनुर्ग्राहो दुर्मदश्च जलसंधः शलः सहः॥ ८ ॥
एते रथैः परिवृता वीर्यवन्तो महाबलाः।
भीमसेनं समासाद्य समन्तात् पर्यवारयन्॥ ९ ॥

श्रुतर्वा, दुर्धर, क्राथ (क्रथन), विवित्सु, विकट (विकटानन), सम, निषङ्गी, कवची, पाशी, नन्द, उपनन्द, दुष्प्रधर्ष, सुबाहु, वातवेग, सुवर्चा, धनुर्ग्राह, दुर्मद, जलसन्ध, शल और सह—ये महाबली और पराक्रमी आपके पुत्रगण, बहुसंख्यक रथोंसे घिरकर भीमसेनके पास जा पहुँचे और उन्हें सब ओरसे घेरकर खड़े हो गये ॥ ७-९ ॥

ते व्यमुञ्चञ्छरव्रातान् नानालिङ्गान् समन्ततः।
स तैरभ्यर्द्यमानस्तु भीमसेनो महाबलः॥ १० ॥
तेषामापततां क्षिप्रं सुतानां ते जनाधिप।
रथैः पञ्चाशता सार्धं पञ्चाशदहनद् रथान्॥ ११ ॥

वे चारों ओरसे नाना प्रकारके चिह्नोंसे युक्त बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगे। नरेश्वर ! उनसे पीड़ित होकर महाबली भीमसेनने पचास रथोंके साथ आये हुए आपके पुत्रोंके उन पचासों रथियोंको शीघ्र ही नष्ट कर दिया ॥ १०-११ ॥

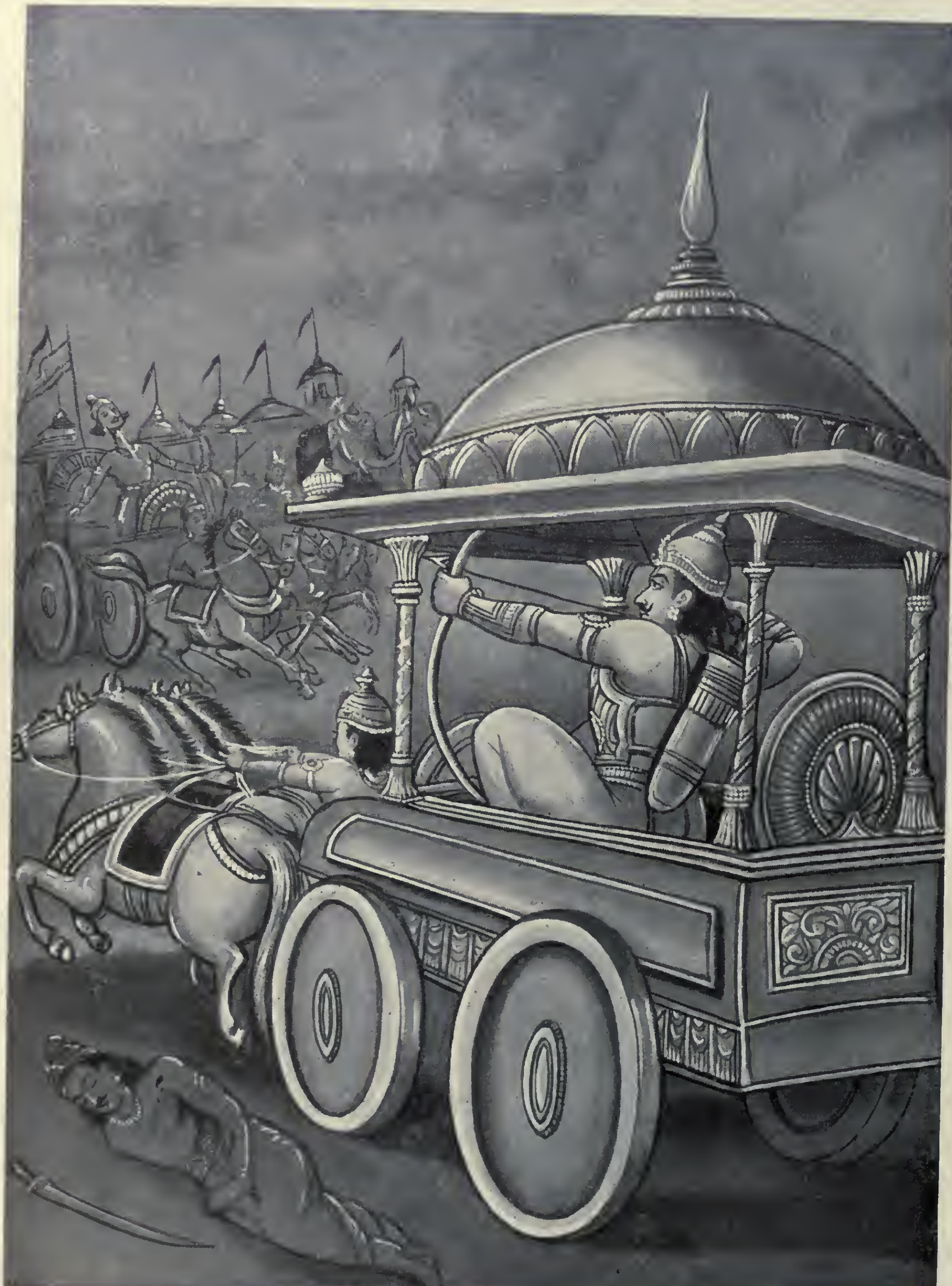
विवित्सोस्तु ततः क्रुद्धो भल्लेनापाहरच्छिरः।
भीमसेनो महाराज तत् पपात हतं भुवि॥ १२ ॥
सकुण्डलशिरस्त्राणं पूर्णचन्द्रोपमं तथा।

महाराज ! तत्पश्चात् कुपित हुए भीमसेनने एक भल्लसे



विवित्सुका सिर काट लिया। उसका वह कुण्डल और शिरस्त्राणसहित कटा हुआ मस्तक पूर्ण चन्द्रमाके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ १२½ ॥

तं दृष्ट्वा निहतं शूरं भ्रातरः सर्वतः प्रभो॥ १३ ॥
अभ्यद्रवन्त समरे भीमं भीमपराक्रमम्।



भीमसेनके द्वारा धृतराष्ट्रके कई पुत्रों एवं कौरवयोद्धाओंका संहार

प्रभो ! उस शूरवीरको मारा गया देख उसके भाई समरभूमिमें भयंकर पराक्रमी भीमसेनपर सब ओरसे टूट पड़े ॥ १३½ ॥

ततोऽपराभ्यां भल्लाभ्यां पुत्रयोस्ते महाहवे ॥ १४ ॥
जहार समरे प्राणान् भीमो भीमपराक्रमः ।

तब भयानक पराक्रमसे सम्पन्न भीमसेनने उस महायुद्धमें दूसरे दो भल्लोंद्वारा रणभूमिमें आपके दो पुत्रोंके प्राण हर लिये ॥ १४½ ॥

तौ धरामन्वपद्येतां वातरुग्णाविव द्रुमौ ॥ १५ ॥
विकटश्च समश्चोभौ देवपुत्रोपमौ नृप ।

नरेश्वर ! वे दोनों थे विकट (विकटानन) और सम । देवपुत्रोंके समान सुशोभित होनेवाले वे दोनों वीर आँधीके उखाड़े हुए दो वृक्षोंके समान पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १५½ ॥

ततस्तु त्वरितो भीमः क्राथं निन्ये यमक्षयम् ॥ १६ ॥
नाराचेन सुतीक्ष्णेन स हतो न्यपतद् भुवि ।

फिर लगे हाथ भीमसेनने क्राथ (क्रथन)को भी एक तीखे नाराचसे मारकर यमलोक पहुँचा दिया । वह राजकुमार प्राणशून्य होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ १६½ ॥

हाहाकारस्ततस्तीव्रः सम्बभूव जनेश्वर ॥ १७ ॥
वध्यमानेषु वीरेषु तव पुत्रेषु धन्विषु ।

जनेश्वर ! फिर आपके वीर धनुर्धर पुत्रोंके इस प्रकार वहाँ मारे जानेपर भयंकर हाहाकार मच गया ॥ १७½ ॥

तेषां सुलुलिते सैन्ये पुनर्भीमो महाबलः ॥ १८ ॥
नन्दोपनन्दौ समरे प्रैषयद् यमसादनम् ।

उनकी सेना चञ्चल हो उठी । फिर महाबली भीमसेनने समराङ्गणमें नन्द और उपनन्दको भी यमलोक भेज दिया १८½

ततस्ते प्राद्रवन् भीताः पुत्रास्ते विह्वलीकृताः ॥ १९ ॥
भीमसेनं रणे दृष्ट्वा कालान्तकयमोपमम् ।

तदनन्तर आपके शेष पुत्र रणभूमिमें काल, अन्तक और यमके समान भयानक भीमसेनको देखकर भयसे व्याकुल हो वहाँसे भाग गये ॥ १९½ ॥

पुत्रांस्ते निहतान् दृष्ट्वा सूतपुत्रः सुदुर्मनाः ॥ २० ॥
हंसवर्णान् हयान् भूयः प्रैषयद् यत्र पाण्डवः ।

आपके पुत्रोंको मारा गया देख सूतपुत्र कर्णके मनमें बड़ा दुःख हुआ । उसने हंसके समान अपने श्वेत घोड़ोंको पुनः वहीं हँकवाया, जहाँ पाण्डुपुत्र भीमसेन मौजूद थे २०½

ते प्रेषिता महाराज मद्रराजेन वाजिनः ॥ २१ ॥
भीमसेनरथं प्राप्य समसज्जन्त वेगिताः ।

महाराज ! मद्रराजके हाँके हुए वे घोड़े बड़े वेगसे भीमसेनके रथके पास जाकर उनसे सट गये ॥ २१½ ॥

स संनिपातस्तुमुलो घोररूपो विशाम्पते ॥ २२ ॥
आसीद् रौद्रो महाराज कर्णपाण्डवयोर्मृधे ।

प्रजानाथ ! महाराज ! युद्धस्थलमें कर्ण और भीमसेनका वह संघर्ष घोर, रौद्र और अत्यन्त भयंकर था ॥२२½॥

दृष्ट्वा मम महाराज तौ समेतौ महारथौ ॥ २३ ॥
आसीद् बुद्धिः कथं युद्धमेतदद्य भविष्यति ।

राजेन्द्र ! वे दोनों महारथी जब परस्पर भिड़ गये, उस समय वह देखकर मेरे मनमें यह विचार उठने लगा कि न जाने यह युद्ध कैसा होगा ? ॥ २३½ ॥

ततो भीमो रणश्लाघी छादयामास पत्रिभिः ॥२४॥
कर्णं रणे महाराज पुत्राणां तव पश्यताम् ।

महाराज ! तदनन्तर युद्धका हौसला रखनेवाले भीमसेनने अपने बाणोंसे आपके पुत्रोंके देखते-देखते कर्णको आच्छादित कर दिया ॥ २४½ ॥

ततः कर्णो भृशं क्रुद्धो भीमं नवभिरायसैः ॥ २५ ॥
विव्याध परमास्त्रज्ञो भल्लैः संनतपर्वभिः ।

तब उत्तम अस्त्रोंके ज्ञाता कर्णने अत्यन्त कुपित हो लोहेके बने हुए और झुकी हुई गाँठवाले नौ भल्लोंसे भीमसेनको घायल कर दिया ॥ २५½ ॥

आहतः स महाबाहुर्भीमो भीमपराक्रमः ॥ २६ ॥
आकर्णपूर्णैर्विशिखैः कर्णं विव्याध सप्तभिः ।

उन भल्लोंसे आहत हो भयंकर पराक्रमी महाबाहु भीमसेनने कर्णको भी कानतक खींचकर छोड़े गये सात बाणोंसे पीट दिया ॥ २६½ ॥

ततः कर्णो महाराज आशीविष इव श्वसन् ॥ २७ ॥
शरवर्षेण महता छादयामास पाण्डवम् ।

महाराज ! तब विषधर सर्पके समान फुफकारते हुए कर्णने बाणोंकी भारी वर्षा करके पाण्डुपुत्र भीमसेनको आच्छादित कर दिया ॥ २७½ ॥

भीमोऽपि तं शरव्रातैश्छादयित्वा महारथम् ॥ २८ ॥
पश्यतां कौरवेयाणां विननर्द महाबलः ।

महाबली भीमसेनने भी कौरववीरोंके देखते-देखते महारथी कर्णको बाणसमूहोंसे आच्छादित करके विकट गर्जना की ॥ २८½ ॥

ततः कर्णो भृशं क्रुद्धो दृढमादाय कार्मुकम् ॥ २९ ॥
भीमं विव्याध दशभिः कङ्कपत्रैः शिलाशितैः ।
कार्मुकं चास्य चिच्छेद भल्लेन निशितेन च ॥ ३० ॥

तब कर्णने अत्यन्त कुपित हो सुदृढ़ धनुष हाथमें लेकर सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए कङ्कपत्रयुक्त दस बाणोंद्वारा भीमसेनको घायल कर दिया । साथ ही एक तीखे भल्लसे उनके धनुषको भी काट डाला ॥ २९-३० ॥

ततो भीमो महाबाहुर्हेमपट्टविभूषितम् ।
परिघं घोरमादाय मृत्युदण्डमिवापरम् ॥ ३१ ॥
कर्णस्य निधनाकाङ्क्षी चिक्षेपातिबलो नदन् ।

तब अत्यन्त बलवान् महाबाहु भीमसेनने कर्णके वधकी इच्छासे द्वितीय मृत्युदण्डके समान एक भयंकर स्वर्णपत्र-जटित परिघ हाथमें ले उसे गरजकर कर्णपर दे मारा ॥३१½॥

तमापतन्तं परिघं वज्राशनिसमस्वनम् ॥ ३२ ॥
चिच्छेद बहुधा कर्णः शरैराशीविषोपमैः ।

वज्र और बिजलीके समान गड़गड़ाहट पैदा करनेवाले उस परिघको अपने ऊपर आते देख कर्णने विषधर सर्पके समान भयंकर बाणोंद्वारा उसके बहुत-से टुकड़े कर डाले३२½

ततः कार्मुकमादाय भीमो दृढतरं तदा ॥ ३३ ॥
छादयामास विशिखैः कर्णं परबलार्दनम् ।

तत्पश्चात् भीमसेनने अत्यन्त सुदृढ़ धनुष हाथमें लेकर अपने बाणोंद्वारा शत्रुसैन्यसंतापी कर्णको आच्छादित कर दिया ॥ ३३½ ॥

ततो युद्धमभूद् घोरं कर्णपाण्डवयोर्मृधे ॥ ३४ ॥
हरीन्द्रयोरिव मुहुः परस्परवधैषिणोः ।

फिर तो एक दूसरेके वधकी इच्छावाले दो सिंहोंके समान कर्ण और भीमसेनमें वहाँ अत्यन्त भयंकर युद्ध होने लगा३४½

ततः कर्णो महाराज भीमसेनं त्रिभिः शरैः ॥ ३५ ॥
आकर्णमूलं विव्याध दृढमायम्य कार्मुकम् ।

महाराज ! उस समय कर्णने अपने सुदृढ़ धनुषको कानके पासतक खींचकर तीन बाणोंसे भीमसेनको क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ३५½ ॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासः कर्णेन बलिनां वरः ॥ ३६ ॥
घोरमादत्त विशिखं कर्णकायावदारणम् ।

कर्णके द्वारा अत्यन्त घायल होकर बलवानोंमें श्रेष्ठ महा-धनुर्धर भीमसेनने एक भयंकर बाण हाथमें लिया, जो कर्णके शरीरको विदीर्ण करनेमें समर्थ था ॥ ३६½ ॥

तस्य भित्त्वा तनुत्राणं भित्त्वा कायं च सायकः ॥ ३७ ॥
प्राविशद् धरणीं राजन् वल्मीकमिव पन्नगः ।

राजन् ! जैसे साँप बाँबीमें घुस जाता है, उसी प्रकार वह बाण कर्णके कवच और शरीरको छेदकर धरतीमें समा गया ॥३७½ ॥

स तेनातिप्रहारेण व्यथितो विह्वलन्निव ॥ ३८ ॥
संचचाल रथे कर्णः क्षितिकम्पे यथाचलः ।

उस प्रबल प्रहारसे व्यथित और विह्वल-सा होकर कर्ण रथपर ही काँपने लगा । ठीक उसी तरह, जैसे भूकम्पके समय पर्वत हिलने लगता है ॥ ३८½ ॥

ततः कर्णो महाराज रोषामर्षसमन्वितः ॥ ३९ ॥
पाण्डवं पञ्चविंशत्या नाराचानां समार्पयत् ।
आजघ्ने बहुभिर्बाणैर्ध्वजमेकेषुणाहनत् ॥ ४० ॥

महाराज ! तब रोष और अमर्षमें भरे हुए कर्णने पाण्डु-पुत्र भीमसेनपर पचीस नाराचोंका प्रहार किया । साथ ही अन्य बहुत-से बाणोंद्वारा उन्हें घायल कर दिया और एक बाणसे उनकी ध्वजा काट डाली ॥ ३९-४० ॥

सारथिं चास्य भल्लेन प्रेषयामास मृत्यवे ।
छित्त्वा च कार्मुकं तूर्णं पाण्डवस्याशु पत्रिणा ॥ ४१ ॥
ततो मुहूर्ताद् राजेन्द्र नातिकृच्छ्राद्धसन्निव ।
विरथं भीमकर्माणं भीमं कर्णश्चकार ह ॥ ४२ ॥

राजेन्द्र ! फिर एक भल्लसे उनके सारथिको यमलोक भेज दिया और तुरंत ही एक बाणसे उनके धनुषको भी काटकर बिना विशेष कष्टके ही मुहूर्तभरमें हँसते हुए-से कर्णने भयंकर पराक्रमी भीमसेनको रथहीन कर दिया ४१-४२

विरथो भरतश्रेष्ठ प्रहसन्ननिलोपमः ।
गदां गृह्य महाबाहुरपतत् स्यन्दनोत्तमात् ॥ ४३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! रथहीन होनेपर वायुके समान बलशाली महाबाहु भीमसेन गदा हाथमें लेकर हँसते हुए उस उत्तम रथसे कूद पड़े ॥ ४३ ॥

अवप्लुत्य च वेगेन तव सैन्यं विशाम्पते ।
व्यधमद् गदया भीमः शरन्मेघानिवानिलः ॥ ४४ ॥

प्रजानाथ ! जैसे वायु शरत्कालके बादलोंको शीघ्र ही उड़ा देती है, उसी प्रकार भीमसेनने बड़े वेगसे कूदकर अपनी गदाकी चोटसे आपकी सेनाका विध्वंस आरम्भ किया ॥

नागान् सप्तशतान् राजन्नीषादन्तान् प्रहारिणः ।
व्यधमत् सहसा भीमः क्रुद्धरूपः परंतपः ॥ ४५ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले भीमसेनने क्रुद्ध होकर प्रहार करनेमें कुशल और ईषादण्डके समान दाँतोंवाले सात सौ हाथियोंका सहसा संहार कर डाला ॥ ४५ ॥

दन्तवेष्टेषु नेत्रेषु कुम्भेषु च कटेषु च ।
मर्मस्वपि च मर्मज्ञस्तान् नागानवधीद् बली ॥ ४६ ॥

मर्मस्थलोंको जाननेवाले बलवान् भीमसेनने उन गजराजों-के मर्मस्थानों, ओठों, नेत्रों, कुम्भस्थलों और कपोलोंपर भी गदासे चोट पहुँचायी ॥ ४६ ॥

ततस्ते प्राद्रवन् भीताः प्रतीपं प्रहिताः पुनः ।
महामात्रैस्तमावव्रुर्मेघा इव दिवाकरम् ॥ ४७ ॥

फिर तो वे हाथी भयभीत होकर भागने लगे । तत्पश्चात् महावतोंने जब उन्हें पीछे लौटाया, तब वे भीमसेनको घेरकर खड़े हो गये, मानो बादलोंने सूर्यदेवको ढक लिया हो ।४७।

तान् स सप्तशतान् नागान् सारोहायुधकेतनान् ।
भूमिष्ठो गदया जघ्ने वज्रेणेन्द्र इवाचलान् ॥ ४८ ॥

जैसे इन्द्र अपने वज्रके द्वारा पर्वतोंपर आघात करते हैं, उसी प्रकार पृथ्वीपर खड़े हुए भीमसेनने सवारों, आयुधों और ध्वजाओंसहित उन सात सौ गजराजोंको गदासे ही मार डाला ॥ ४८ ॥



ततः सुबलपुत्रस्य नागानतिबलान् पुनः ।
पोथयामास कौन्तेयो द्विपञ्चाशदरिंदमः ॥ ४९ ॥

तत्पश्चात् शत्रुओंका दमन करनेवाले कुन्तीकुमार भीमने सुबलपुत्र शकुनिके अत्यन्त बलवान् बावन हाथियोंको मार गिराया ॥ ४९ ॥

तथा रथशतं साग्रं पत्तींश्च शतशोऽपरान् ।
न्यहनत् पाण्डवो युद्धे तापयंस्तव वाहिनीम् ॥ ५० ॥

इसी प्रकार उस युद्धस्थलमें आपकी सेनाको संताप देते हुए पाण्डुकुमार भीमसेनने सौसे भी अधिक रथों और दूसरे सैकड़ों पैदल सैनिकोंका संहार कर डाला ॥ ५० ॥

प्रताप्यमानं सूर्येण भीमेन च महात्मना ।
तव सैन्यं संचुकोच चर्माग्नावाहितं यथा ॥ ५१ ॥

ऊपरसे सूर्य तपा रहे थे और नीचे महामनस्वी भीमसेन संतप्त कर रहे थे । उस अवस्थामें आपकी सेना आगपर रक्खे हुए चमड़ेके समान सिकुड़कर छोटी हो गयी ॥ ५१ ॥

ते भीमभयसंत्रस्तास्तावका भरतर्षभ ।
विहाय समरे भीमं दुद्रुवुर्वै दिशो दश ॥ ५२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! भीमके भयसे डरे हुए आपके समस्त सैनिक समराङ्गणमें उनका सामना करना छोड़कर दसों दिशाओंमें भागने लगे ॥ ५२ ॥

रथाः पञ्चशताश्चान्ये ह्रादिनश्चर्मवर्मिणः ।
भीममभ्यद्रवन् घ्नन्तः शरपूगैः समन्ततः ॥ ५३ ॥

तदनन्तर चर्ममय आवरणोंसे युक्त पाँच सौ रथ घर्घराहटकी आवाज फैलाते हुए चारों ओरसे भीमसेनपर चढ़ आये और बाणसमूहोंद्वारा उन्हें घायल करने लगे ॥ ५३ ॥

तान् स पञ्चशतान् वीरान् सपताकध्वजायुधान् ।
पोथयामास गदया भीमो विष्णुरिवासुरान् ॥ ५४ ॥

जैसे भगवान् विष्णु असुरोंका संहार करते हैं, उसी प्रकार भीमसेनने पताका, ध्वज और आयुधोंसहित उन पाँच सौ रथी वीरोंको गदाके आघातसे चूर-चूर कर डाला ॥

ततः शकुनिनिर्दिष्टाः सादिनः शूरसम्मताः ।
त्रिसाहस्राभ्ययुर्भीमं शक्त्यृष्टिप्रासपाणयः ॥ ५५ ॥

तदनन्तर शकुनिके आदेशसे शूर वीरोंद्वारा सम्मानित तीन हजार घुड़सवारोंने हाथोंमें शक्ति, ऋष्टि और प्रास लेकर भीमसेनपर धावा बोल दिया ॥ ५५ ॥

प्रत्युद्गम्य जवेनाशु साश्वारोहांस्तदारिहा ।
विविधान् विचरन् मार्गान् गदया समपोथयत् ॥ ५६ ॥

यह देख शत्रुओंका संहार करनेवाले भीमसेनने बड़े वेगसे आगे जाकर भाँति-भाँतिके पैंतरे बदलते हुए अपनी गदासे उन घोड़ों और घुड़सवारोंको मार गिराया ॥ ५६ ॥

तेषामासीन्महाञ्छब्दस्ताडितानां च सर्वशः ।
अश्मभिर्विध्यमानानां नगानामिव भारत ॥ ५७ ॥

भारत ! जैसे वृक्षोंपर पत्थरोंसे चोट की जाय, उसी प्रकार गदासे ताडित होनेवाले उन अश्वारोहियोंके शरीरसे सब ओर महान् शब्द प्रकट होता था ॥ ५७ ॥

एवं सुबलपुत्रस्य त्रिसाहस्रान् हयोत्तमान् ।
हत्वान्यं रथमास्थाय क्रुद्धो राधेयमभ्ययात् ॥ ५८ ॥

इस प्रकार शकुनिके तीन हजार घुड़सवारोंको मारकर क्रोधमें भरे हुए भीमसेन दूसरे रथपर आरूढ़ हो राधापुत्र कर्णके सामने आ पहुँचे ॥ ५८ ॥

कर्णोऽपि समरे राजन् धर्मपुत्रमरिंदमम् ।
स शरैश्छादयामास सारथिं चाप्यपातयत् ॥ ५९ ॥

राजन् ! कर्णने भी समराङ्गणमें शत्रुओंका दमन करनेवाले धर्मपुत्र युधिष्ठिरको बाणोंसे आच्छादित कर दिया और सारथिको भी मार गिराया ॥ ५९ ॥

ततः स प्रद्रुतं संख्ये रथं दृष्ट्वा महारथः ।
अन्वधावत् किरन् बाणैः कङ्कपत्रैरजिह्मगैः ॥ ६० ॥

फिर महारथी कर्ण युधिष्ठिरके सारथिरहित रथको रणभूमिमें इधर-उधर घूमते देख कङ्कपत्रयुक्त सीधे जानेवाले बाणोंकी वर्षा करता हुआ उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगा ॥६०॥

राजानमभिधावन्तं शरैरावृत्य रोदसी ।
क्रुद्धः प्रच्छादयामास शरजालेन मारुतिः ॥ ६१ ॥

कर्णको राजा युधिष्ठिरपर धावा करते देख वायुपुत्र भीमसेन कुपित हो उठे । उन्होंने बाणोंसे कर्णको ढककर पृथ्वी और आकाशको भी शरसमूहसे आच्छादित कर दिया ॥

संनिवृत्तस्ततस्तूर्णं राधेयः शत्रुकर्शनः ।
भीमं प्रच्छादयामास समन्तान्निशितैः शरैः ॥ ६२ ॥

तब शत्रुसूदन राधापुत्र कर्णने तुरंत ही लौटकर सब ओरसे पैने बाणोंकी वर्षा करके भीमसेनको ढक दिया।६२।

भीमसेनरथव्यग्रं कर्णं भारत सात्यकिः।
अभ्यर्दयदमेयात्मा पार्ष्णिग्रहणकारणात्॥ ६३॥

भारत! तत्पश्चात् अमेय आत्मबलसे सम्पन्न सात्यकिने भीमसेनके रथसे उलझे हुए कर्णको पीड़ा देना आरम्भ किया, क्योंकि वे भीमसेनके पृष्ठभागकी रक्षा कर रहे थे॥ ६३॥

अभ्यवर्तत कर्णस्तमर्दितोऽपि शरैर्भृशम्।
तावन्योन्यं समासाद्य वृषभौ सर्वधन्विनाम्॥ ६४॥
विसृजन्तौ शरान् दीप्तान् व्यभ्राजेतां मनस्विनौ।

कर्ण सात्यकिके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित होनेपर भी भीमसेनका सामना करनेके लिये डटा रहा। वे दोनों ही सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ एवं मनस्वी वीर थे और एक दूसरेसे भिड़कर चमकीले बाणोंकी वर्षा करते हुए बड़ी शोभा पा रहे थे॥ ६४½॥

ताभ्यां वियति राजेन्द्र विततं भीमदर्शनम्॥ ६५॥
क्रौञ्चपृष्ठारुणं रौद्रं बाणजालं व्यदृश्यत।

राजेन्द्र! उन दोनोंने आकाशमें बाणोंका भयंकर जाल-सा बिछा दिया, जो क्रौञ्च पक्षीके पृष्ठभागके समान लाल और भयानक दिखायी देता था॥ ६५½॥

नैव सूर्यप्रभा राजन् न दिशः प्रदिशस्तथा॥ ६६॥
प्राज्ञासिष्म वयं ते वा शरैर्मुक्तैः सहस्रशः।

राजन्! वहाँ छूटे हुए सहस्रों बाणोंसे न तो सूर्यकी प्रभा दिखायी देती थी, न दिशाएँ और न विदिशाएँ ही दृष्टिगोचर होती थीं। हम या हमारे शत्रु भी पहचाने नहीं जाते थे॥ ६६½॥

मध्याह्ने तपतो राजन् भास्करस्य महाप्रभाः॥ ६७॥
हृताः सर्वाः शरौघैस्तैः कर्णपाण्डवयोस्तदा।

नरेश्वर! कर्ण और भीमसेनके बाणसमूहोंसे मध्याह्न-कालमें तपते हुए सूर्यकी सारी प्रचण्ड किरणें भी फीकी पड़ गयी थीं॥ ६७½॥

सौबलं कृतवर्माणं द्रौणिमाधिरथिं कृपम्॥ ६८॥
संसक्तान् पाण्डवैर्दृष्ट्वा निवृत्ताः कुरवः पुनः।

उस समय शकुनि, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, कर्ण और कृपाचार्यको पाण्डवोंके साथ जूझते देख भागे हुए कौरव-सैनिक फिर लौट आये॥ ६८½॥

तेषामापततां शब्दस्तीव्र आसीद् विशाम्पते॥ ६९॥
उद्वृत्तानां यथा वृष्ट्या सागराणां भयावहः।

प्रजानाथ! उस समय उनके आनेसे बड़ा भारी कोलाहल होने लगा, मानो वर्षासे बढ़े हुए समुद्रोंकी भयानक गर्जना हो रही हो॥ ६९½॥

ते सेने भृशसंसक्ते दृष्ट्वान्योन्यं महाहवे॥ ७०॥
हर्षेण महता युक्ते परिगृह्य परस्परम्।

उस महासमरमें एक दूसरीसे उलझी हुई दोनों सेनाएँ परस्पर दृष्टिपात करके बड़े हर्ष और उत्साहके साथ युद्ध करने लगीं॥ ७०½॥

ततः प्रववृते युद्धं मध्यं प्राप्ते दिवाकरे॥ ७१॥
तादृशं न कदाचिद्धि दृष्टपूर्वं न च श्रुतम्।

तदनन्तर सूर्यके मध्याह्नकी वेलामें आ जानेपर अत्यन्त घोर युद्ध आरम्भ हुआ। वैसा न तो पहले कभी देखा गया था और न सुननेमें ही आया था॥ ७१½॥

बलौघस्तु समासाद्य बलौघं सहसा रणे॥ ७२॥
उपासर्पत वेगेन वार्योघ इव सागरम्।
आसीन्निनादः सुमहान् बाणौघानां परस्परम्॥ ७३॥
गर्जतां सागरौघाणां यथा स्यान्निःस्वनो महान्।

जैसे जलका प्रवाह वेगके साथ समुद्रमें जाकर मिलता है, उसी प्रकार रणभूमिमें एक सैन्यसमुदाय दूसरे सैन्यसमुदाय-से सहसा जा मिला और परस्पर टकरानेवाले बाणसमूहोंका महान् शब्द उसी प्रकार प्रकट होने लगा, जैसे गरजते हुए सागरसमुदायोंका गम्भीर नाद प्रकट हो रहा हो।७२-७३½।

ते तु सेने समासाद्य वेगवत्यौ परस्परम्॥ ७४॥
एकीभावमनुप्राप्ते नद्याविव समागमे।

जैसे दो नदियाँ परस्पर संगम होनेपर एक हो जाती हैं, उसी प्रकार वे वेगवती सेनाएँ परस्पर मिलकर एकीभावको प्राप्त हो गयीं॥ ७४½॥

ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं विशाम्पते॥ ७५॥
कुरूणां पाण्डवानां च लिप्सतां सुमहद् यशः।

प्रजानाथ! फिर महान् यश पानेकी इच्छावाले कौरवों और पाण्डवोंमें घोर युद्ध आरम्भ हो गया॥ ७५½॥

शूराणां गर्जतां तत्र ह्यविच्छेदकृता गिरः॥ ७६॥
श्रूयन्ते विविधा राजन् नामान्युद्दिश्य भारत।

भरतवंशी नरेश! उस समय नाम ले-लेकर गरजते हुए शूरवीरोंकी भाँति-भाँतिकी बातें अविच्छिन्नरूपसे सुनायी पड़ती थीं॥ ७६½॥

यस्य यद्धि रणे व्यङ्गं पितृतो मातृतोऽपि वा॥ ७७॥
कर्मतः शीलतो वापि स तच्छ्रावयते युधि।

रणभूमिमें जिसकी जो कुछ पिता-माता, कर्म अथवा शील-स्वभावके कारण विशेषता थी, वह युद्धस्थलमें उसको सुनाता था॥ ७७½॥

तान् दृष्ट्वा समरे शूरांस्तर्जमानान् परस्परम्॥ ७८॥
अभवन्मे मती राजन् नैषामस्तीति जीवितम्।

राजन्! समराङ्गणमें एक दूसरेको डाँट बताते हुए उन शूरवीरोंको देखकर मेरे मनमें यह विचार उठता था कि अब इनका जीवन नहीं रहेगा॥ ७८½॥

तेषां दृष्ट्वा तु क्रुद्धानां वपूंष्यमिततेजसाम्॥ ७९॥

अभवन्मे भयं तीव्रं कथमेतद् भविष्यति।

क्रोधमें भरे हुए उन अमिततेजस्वी वीरोंके शरीर देखकर मुझे बड़ा भारी भय होता था कि यह युद्ध कैसा होगा ?॥ ७९½॥

ततस्ते पाण्डवा राजन् कौरवाश्च महारथाः।
ततक्षुः सायकैस्तीक्ष्णैर्निघ्नन्तो हि परस्परम्॥ ८०॥

राजन्! तदनन्तर पाण्डव और कौरव महारथी तीखे बाणोंसे प्रहार करते हुए एक दूसरेको क्षत-विक्षत करने लगे॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक इक्यावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५१॥

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

दोनों सेनाओंका घोर युद्ध और कौरवसेनाका व्यथित होना

संजय उवाच

क्षत्रियास्ते महाराज परस्परवधैषिणः।
अन्योन्यं समरे जघ्नुः कृतवैराः परस्परम्॥ १॥

संजय कहते हैं—महाराज! एक दूसरेके वधकी इच्छावाले वे क्षत्रिय परस्पर वैरभाव रखकर समराङ्गणमें एक दूसरेको मारने लगे॥ १॥

रथौघाश्च हयौघाश्च नरौघाश्च समन्ततः।
गजौघाश्च महाराज संसक्ताश्च परस्परम्॥ २॥

राजेन्द्र! रथसमूह, अश्वसमूह, हाथियोंके झुंड और पैदल मनुष्योंके समुदाय सब ओर एक दूसरेसे उलझे हुए थे॥

गदानां परिघाणां च कणपानां च क्षिप्यताम्।
प्रासानां भिन्दिपालानां भुशुण्डीनां च सर्वशः॥ ३॥
सम्पातं चानुपश्याम संग्रामे भृशदारुणे।
शलभा इव सम्पेतुः समन्ताच्छरवृष्टयः॥ ४॥

उस अत्यन्त दारुण संग्राममें हमलोग निरन्तर चलाये जानेवाले परिघों, गदाओं, कणपों, प्रासों, भिन्दिपालों और भुशुण्डियोंकी धारा-सी गिरती देख रहे थे। सब ओर टिड्डी-दलोंके समान बाणोंकी वर्षा हो रही थी॥ ३-४॥

नागान् नागाः समासाद्य व्यधमन्त परस्परम्।
हया हयांश्च समरे रथिनो रथिनस्तथा॥ ५॥
पत्तयः पत्तिसंघांश्च हयसंघांश्च पत्तयः।
पत्तयो रथमातङ्गान् रथा हस्त्यश्वमेव च॥ ६॥
नागाश्च समरे त्र्यङ्गं ममृदुः शीघ्रगा नृप।

हाथी हाथियोंसे भिड़कर एक दूसरेको संताप देने लगे। उस समराङ्गणमें घोड़े घोड़ों, रथी रथियों एवं पैदल पैदल-समूहों, अश्वसमुदायों तथा रथों और हाथियोंका भी मर्दन कर रहे थे। नरेश्वर! इसी प्रकार रथी हाथी और घोड़ोंका तथा शीघ्रगामी हाथी उस युद्धस्थलमें हाथी सेनाके अन्य तीन अङ्गोंको रौंदने लगे॥ ५-६½॥

वध्यतां तत्र शूराणां क्रोशतां च परस्परम्॥ ७॥
घोरमायोधनं जज्ञे पशूनां वैशसं यथा।

वहाँ मारे जाते और एक दूसरेको कोसते हुए शूरवीरोंके आर्तनादसे वह युद्धस्थल वैसा ही भयंकर जान पड़ता था, मानो वहाँ पशुओंका वध किया जा रहा हो॥ ७½॥

रुधिरेण समास्तीर्णा भाति भारत मेदिनी॥ ८॥
शक्रगोपगणाकीर्णा प्रावृषीव यथा धरा।

भारत! खूनसे ढकी हुई यह पृथ्वी वर्षाकालमें वीरबहूटी नामक लाल रंगके कीड़ोंसे व्याप्त हुई भूमिके समान शोभा पाती थी॥ ८½॥

यथा वा वाससी शुक्ले महारजनरञ्जिते॥ ९॥
बिभृयाद् युवती श्यामा तद्वदासीद् वसुंधरा।
मांसशोणितचित्रेव शातकुम्भमयीव च॥ १०॥

अथवा जैसे कोई श्यामवर्णा युवती श्वेत रंगके वस्त्रोंको हल्दीके गाढ़े रंगमें रँगकर पहन ले, वैसी ही वह रणभूमि प्रतीत होती थी। मांस और रक्तसे चित्रित-सी जान पड़नेवाली वह भूमि सुवर्णमयी-सी प्रतीत होती थी॥ ९-१०॥

भिन्नानां चोत्तमाङ्गानां बाहूनां चोरुभिः सह।
कुण्डलानां प्रवृद्धानां भूषणानां च भारत॥ ११॥
निष्काणामथ शूराणां शरीराणां च धन्विनाम्।
चर्मणां सपताकानां संघास्तत्रापतन् भुवि॥ १२॥

भारत! वहाँ भूतलपर कटे हुए मस्तकों, भुजाओं, जाँघों, बड़े-बड़े कुण्डलों, अन्यान्य आभूषणों, निष्कों धनुर्धर शूरवीरोंके शरीरों, ढालों और पताकाओंके ढेर-के-ढेर पड़े थे॥

गजा गजान् समासाद्य विषाणैरार्दयन् नृप।
विषाणाभिहतास्तत्र भ्राजन्ते द्विरदास्तथा॥ १३॥
रुधिरेणावसिक्ताङ्गा गैरिकप्रस्रवा इव।
यथा भ्राजन्ति स्यन्दन्तः पर्वता धातुमण्डिताः॥१४॥

नरेश्वर! हाथी हाथियोंसे भिड़कर अपने दाँतोंसे परस्पर पीड़ा दे रहे थे। दाँतोंकी चोटसे घायल हो खूनसे भीगे शरीरवाले हाथी गेरूके रंगसे मिले हुए जलका स्रोत बहानेवाले झरनोंसे युक्त धातुमण्डित पर्वतोंके समान शोभा पाते थे॥

तोमरान् सादिभिर्मुक्तान् प्रतीपानास्थितान् बहून्।
हस्तैर्विचेरुस्ते नागा बभञ्जुश्चापरे तथा॥ १५॥

कितने ही हाथी घुड़सवारोंके छोड़े हुए तोमरों तथा अनेक विपक्षियोंको भी सूँड़ोंसे पकड़कर रणभूमिमें विचरते थे तथा दूसरे उनको टुकड़े-टुकड़े कर डालते थे॥ १५॥

नाराचैश्छिन्नवर्माणो भ्राजन्ति स्म गजोत्तमाः।
हिमागमे यथा राजन् व्यभ्रा इव महीधराः ॥ १६ ॥

राजन्! नाराचोंसे कवच छिन्न-भिन्न होनेके कारण गजराजोंकी वैसी ही शोभा हो रही थी, जैसे हेमन्त ऋतुमें बिना बादलोंके पर्वत शोभित होते हैं ॥ १६ ॥

शरैः कनकपुङ्खैश्च चित्रा रेजुर्गजोत्तमाः।
उल्काभिः सम्प्रदीप्ताग्राः पर्वता इव भारत ॥ १७ ॥

भरतनन्दन! विचित्र प्रकारसे सजे हुए उत्तम हाथी सुवर्णमय पंखवाले बाणोंके लगनेसे उल्काओंद्वारा उद्दीप्त शिखरोंवाले पर्वतोंके समान शोभा पा रहे थे ॥ १७ ॥

केचिदभ्याहता नागैर्नागा नगनिभोपमाः।
विनेशुः समरे तस्मिन् पक्षवन्त इवाद्रयः ॥ १८ ॥

उस संग्राममें पर्वतोंके समान प्रतीत होनेवाले कितने ही हाथी हाथियोंसे घायल हो पंखधारी शैलसमूहोंके समान नष्ट हो गये ॥ १८ ॥

अपरे प्राद्रवन् नागाः शल्यार्ता व्रणपीडिताः।
प्रतिमानैश्च कुम्भैश्च पेतुरुर्व्यां महाहवे ॥ १९ ॥

दूसरे बहुत-से हाथी बाणोंसे व्यथित और घावोंसे पीड़ित हो भाग चले और कितने ही उस महासमरमें दोनों दाँतों और कुम्भस्थलोंको धरतीपर टेककर धराशायी हो गये ॥ १९ ॥

विनेदुः सिंहवच्चान्ये नदन्तो भैरवान् रवान्।
बभ्रमुर्बहवो राजंश्चुकुशुश्चापरे गजाः ॥ २० ॥

राजन्! दूसरे अनेक गजराज भयंकर गर्जना करते हुए सिंहके समान दहाड़ रहे थे और दूसरे बहुतेरे हाथी इधर-उधर चक्कर काटते और चीखते-चिल्लाते थे ॥ २० ॥

हयाश्च निहता बाणैर्हेमभाण्डविभूषिताः।
निषेदुश्चैव मम्लुश्च बभ्रमुश्च दिशो दश ॥ २१ ॥

सोनेके आभूषणोंसे विभूषित बहुसंख्यक घोड़े बाणोंद्वारा घायल होकर बैठ जाते, मलिन हो जाते और दसों दिशाओंमें भागने लगते थे ॥ २१ ॥

अपरे कृष्यमाणाश्च विचेष्टन्तो महीतले।
भावान् बहुविधांश्चक्रुस्ताडिताः शरतोमरैः ॥ २२ ॥

बाणों और तोमरोंद्वारा ताड़ित होकर कितने ही अश्व धरतीपर लोट जाते और हाथियोंद्वारा खींचे जानेपर छटपटाते हुए नाना प्रकारके भाव व्यक्त करते थे ॥ २२ ॥

नरास्तु निहता भूमौ कूजन्तस्तत्र मारिष।
दृष्ट्वा च बान्धवानन्ये पितॄनन्ये पितामहान् ॥ २३ ॥

आर्य! वहाँ घायल होकर पृथ्वीपर पड़े हुए कितने ही मनुष्य अपने बान्धव-जनोंको देखकर कराह उठते थे। कितने ही अपने बाप-दादोंको देखकर कुछ अस्फुट स्वरमें बोलने लगते थे ॥ २३ ॥

धावमानान् परांश्चान्यान् दृष्ट्वान्ये तत्र भारत।
गोत्रनामानि ख्यातानि शशंसुरितरेतरम् ॥ २४ ॥

भरतनन्दन! दूसरे बहुत-से मनुष्य अन्यान्य लोगोंको दौड़ते देख एक-दूसरेसे अपने प्रसिद्ध नाम और गोत्र बताने लगते थे ॥ २४ ॥

तेषां छिन्ना महाराज भुजाः कनकभूषणाः।
उद्वेष्टन्ते विचेष्टन्ते पतन्ते चोत्पतन्ति च ॥ २५ ॥
निपतन्ति तथैवान्ये स्फुरन्ति च सहस्रशः।

महाराज! मनुष्योंकी कटी हुई सहस्रों सुवर्णभूषित भुजाएँ कभी टेढ़ी होकर किसी शरीरसे लिपट जातीं, कभी छटपटातीं, गिरतीं, ऊपरको उछलतीं, नीचे आ जातीं और तड़पने लगती थीं ॥ २५½ ॥

वेगांश्चान्ये रणे चक्रुः पञ्चास्या इव पन्नगाः ॥ २६ ॥
ते भुजा भोगिभोगाभाश्चन्दनाक्ता विशाम्पते।
लोहितार्द्रा भृशं रेजुस्तपनीयध्वजा इव ॥ २७ ॥

प्रजानाथ! सर्पोंके शरीरोंके समान प्रतीत होनेवाली कितनी ही चन्दनचर्चित भुजाएँ रणभूमिमें पाँच मुँहवाले सर्पोंके समान महान् वेग प्रकट करतीं तथा रक्तरंजित होनेके कारण सुवर्णमयी ध्वजाओंके समान अधिकाधिक शोभा पाती थीं ॥ २६-२७ ॥

वर्तमाने तथा घोरे संकुले सर्वतोदिशम्।
अविज्ञाताः स्म युध्यन्ते विनिघ्नन्तः परस्परम् ॥ २८ ॥

उस घोर घमासान युद्धके चालू होनेपर सम्पूर्ण योद्धा एक-दूसरेपर चोट करते हुए बिना जाने-पहचाने ही युद्ध करते थे ॥ २८ ॥

भौमेन रजसाऽऽकीर्णे शस्त्रसम्पातसंकुले।
नैव स्वे न परे राजन् व्यज्ञायन्त तमोवृताः ॥ २९ ॥

राजन्! शस्त्रोंकी धारावाहिक वृष्टिसे व्याप्त तथा धरतीकी धूलसे आच्छादित हुए उस प्रदेशमें अपने और शत्रुपक्षके सैनिक अन्धकारसे आच्छादित होनेके कारण पहचानमें नहीं आते थे ॥ २९ ॥

तथा तदभवद् युद्धं घोररूपं भयानकम्।
लोहितोदा महानद्यः प्रसस्रुस्तत्र चासकृत् ॥ ३० ॥

वह युद्ध ऐसा घोर एवं भयानक हो रहा था कि वहाँ बारंबार खूनकी बड़ी-बड़ी नदियाँ बह चलती थीं ॥ ३० ॥

शीर्षपाषाणसंछन्नाः केशशैवलशाद्वलाः।
अस्थिमीनसमाकीर्णा धनुःशरगदोडुपाः ॥ ३१ ॥

योद्धाओंके कटे हुए मस्तक शिलाखण्डोंके समान उन नदियोंको आच्छादित किये रहते थे। उनके केश ही सेवार और घासके समान प्रतीत होते थे, हड्डियाँ ही उनमें मछलियोंके समान व्याप्त हो रही थीं, धनुष, बाण और गदाएँ नौकाके समान जान पड़ती थीं ॥ ३१ ॥

मांसशोणितपङ्किन्यो घोररूपाः सुदारुणाः।
नदीः प्रवर्तयामासुः शोणितौघविवर्धिनीः ॥ ३२ ॥

उनके भीतर मांस और रक्तकी ही कीचड़ जमी थी। रक्तके प्रवाहको बढ़ानेवाली उन घोर एवं भयंकर नदियोंको वहाँ योद्धाओंने प्रवाहित किया था ॥ ३२ ॥

भीरुवित्रासकारिण्यः शूराणां हर्षवर्धनाः ।
ता नद्यो घोररूपास्तु नयन्त्यो यमसादनम् ॥ ३३ ॥

वे भयानक रूपवाली नदियाँ कायरोंको डराने और शूरवीरोंका हर्ष बढ़ानेवाली थीं तथा प्राणियोंको यमलोक पहुँचाती थीं ॥ ३३ ॥

अवगाढान् मज्जयन्त्यः क्षत्रस्याजनयन् भयम् ।
क्रव्यादानां नरव्याघ्र नर्दतां तत्र तत्र ह ॥ ३४ ॥
घोरमायोधनं जज्ञे प्रेतराजपुरोपमम् ।

जो उनमें प्रवेश करते, उन्हें वे डुबो देती थीं और क्षत्रियोंके मनमें भय उत्पन्न करती थीं। नरव्याघ्र ! वहाँ गरजते हुए मांसभक्षी जन्तुओंके शब्दसे वह युद्धस्थल प्रेतराजकी नगरीके समान भयानक जान पड़ता था ॥ ३४½ ॥

उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः ॥ ३५ ॥
नृत्यन्ति वै भूतगणाः सुतृप्ता मांसशोणितैः ।
पीत्वा च शोणितं तत्र वसां पीत्वा च भारत ॥ ३६ ॥

वहाँ चारों ओर उठे हुए अगणित कबन्ध और रक्तमांससे तृप्त हुए भूतगण नृत्य कर रहे थे। भारत ! ये सबके-सब रक्त तथा वसा पीकर छके हुए थे ॥ ३५-३६ ॥

मेदोमज्जावसामत्तास्तृप्ता मांसस्य चैव ह ।
धावमानाः स्म दृश्यन्ते काकगृध्रबकास्तथा ॥ ३७ ॥

मेदा, वसा, मज्जा और मांससे तृप्त एवं मतवाले कौए, गीध और बक सब ओर उड़ते दिखायी देते थे ॥ ३७ ॥

शूरास्तु समरे राजन् भयं त्यक्त्वा सुदुस्त्यजम् ।
योधव्रतसमाख्याताश्चक्रुः कर्माण्यभीतवत् ॥ ३८ ॥

राजन् ! उस समरमें योद्धाओंके व्रतका पालन करनेमें विख्यात शूरवीर जिसका त्याग करना अत्यन्त कठिन है, उस भयको छोड़कर निर्भयके समान पराक्रम प्रकट करते थे ॥

शरशक्तिसमाकीर्णे क्रव्यादगणसंकुले ।
व्यचरन्त रणे शूराः ख्यापयन्तः स्वपौरुषम् ॥ ३९ ॥

बाण और शक्तियोंसे व्याप्त तथा मांसभक्षी जन्तुओंसे भरे हुए उस रणक्षेत्रमें शूरवीर अपने पुरुषार्थकी ख्याति बढ़ाते हुए विचर रहे थे ॥ ३९ ॥

अन्योन्यं श्रावयन्ति स्म नामगोत्राणि भारत ।
पितृनामानि च रणे गोत्रनामानि वा विभो ॥ ४० ॥
श्रावयाणाश्च बहवस्तत्र योद्धा विशाम्पते ।
अन्योन्यमवमृद्नन्तः शक्तितोमरपट्टिशैः ॥ ४१ ॥

भारत ! प्रभो ! रणभूमिमें कितने ही योद्धा एक दूसरेको अपने और पिताके नाम तथा गोत्र सुनाते थे। प्रजानाथ ! नाम और गोत्र सुनाते हुए बहुतेरे योद्धा शक्ति, तोमर और पट्टिशोंद्वारा एक दूसरेको धूलमें मिला रहे थे ॥ ४०-४१ ॥

वर्तमाने तथा युद्धे घोररूपे सुदारुणे ।
व्यषीदत् कौरवी सेना भिन्ना नौरिव सागरे ॥ ४२ ॥

इस प्रकार वह दारुण एवं भयंकर युद्ध चल ही रहा था कि समुद्रमें टूटी हुई नौकाके समान कौरव-सेना छिन्न-भिन्न हो गयी और विषाद करने लगी ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक बावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अर्जुनद्वारा दस हजार संशप्तक योद्धाओं और उनकी सेनाका संहार

संजय उवाच

वर्तमाने तथा युद्धे क्षत्रियाणां निमज्जने ।
गाण्डीवस्य महाघोषः श्रूयते युधि मारिष ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—आर्य ! जब क्षत्रियोंका संहार करनेवाला वह भयानक युद्ध चल रहा था, उसी समय दूसरी ओर बड़े जोर-जोरसे गाण्डीव धनुषकी टंकार सुनायी देती थी ॥

संशप्तकानां कदनमकरोद् यत्र पाण्डवः ।
कोसलानां तथा राजन् नारायणबलस्य च ॥ २ ॥

राजन् ! वहाँ पाण्डुनन्दन अर्जुन संशप्तकोंका, कोसलदेशीय योद्धाओंका तथा नारायणी-सेनाका संहार कर रहे थे ॥

संशप्तकास्तु समरे शरवृष्टीः समन्ततः ।
अपातयन् पार्थमूर्ध्नि जयगृद्धाः प्रमन्यवः ॥ ३ ॥

समराङ्गणमें विजयकी इच्छा रखनेवाले संशप्तकोंने अत्यन्त कुपित होकर अर्जुनके मस्तकपर चारों ओरसे बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ३ ॥

ता वृष्टीः सहसा राजंस्तरसा धारयन् प्रभुः ।
व्यगाहत रणे पार्थो विनिघ्नन् रथिनां वरान् ॥ ४ ॥

राजन् ! उस बाण-वर्षाको सहसा वेगपूर्वक सहते और श्रेष्ठ रथियोंका संहार करते हुए शक्तिशाली अर्जुन रणभूमिमें विचरने लगे॥

विगाह्य तद् रथानीकं कङ्कपत्रैः शिलाशितैः ।
आससाद ततः पार्थः सुशर्माणं वरायुधम् ॥ ५ ॥

सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए कङ्कपत्रयुक्त बाणोंद्वारा प्रहार करते हुए कुन्तीपुत्र अर्जुन रथियोंकी सेनामें घुसकर श्रेष्ठ आयुध धारण करनेवाले सुशर्माके पास जा पहुँचे ॥ ५ ॥

स तस्य शरवर्षाणि ववर्ष रथिनां वरः।
तथा संशप्तकाश्चैव पार्थं बाणैः समार्पयन् ॥ ६ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ सुशर्मा उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगा तथा अन्य संशप्तकोंने भी अर्जुनको अनेक बाण मारे ॥

सुशर्मा तु ततः पार्थं विद्ध्वा दशभिराशुगैः।
जनार्दनं त्रिभिर्बाणैरहनद् दक्षिणे भुजे ॥ ७ ॥

सुशर्माने दस बाणोंसे अर्जुनको घायल करके श्रीकृष्णकी दाहिनी भुजापर तीन बाण मारे ॥ ७ ॥

ततोऽपरेण भल्लेन केतुं विव्याध मारिष।
स वानरवरो राजन् विश्वकर्मकृतो महान् ॥ ८ ॥
ननाद सुमहानादं भीषयाणो जगर्ज च।

मान्यवर! तदनन्तर दूसरे भल्लसे उनकी ध्वजाको बींध डाला। राजन्! उस समय विश्वकर्माका बनाया हुआ वह महान् वानर सबको भयभीत करता हुआ बड़े जोर-जोरसे गर्जना करने लगा ॥ ८½ ॥

कपेस्तु निनदं श्रुत्वा संत्रस्ता तव वाहिनी ॥ ९ ॥
भयं विपुलमाधाय निश्चेष्टा समपद्यत।

वानरकी वह गर्जना सुनकर आपकी सेना संत्रस्त हो उठी और मनमें महान् भय लेकर निश्चेष्ट हो गयी ॥ ९½ ॥

ततः सा शुशुभे सेना निश्चेष्टावस्थिता नृप ॥ १० ॥
नानापुष्पसमाकीर्णं यथा चैत्ररथं वनम्।

नरेश्वर! फिर वहाँ निश्चेष्ट खड़ी हुई आपकी वह सेना भाँति-भाँतिके पुष्पोंसे भरे हुए चैत्ररथ नामक वनके समान शोभा पाने लगी ॥ १०½ ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां योधास्ते कुरुसत्तम ॥ ११ ॥
अर्जुनं सिषिचुर्बाणैः पर्वतं जलदा इव।

कुरुश्रेष्ठ! तदनन्तर होशमें आकर आपके योद्धा अर्जुनपर उसी प्रकार बाणोंकी बौछार करने लगे, जैसे बादल पर्वतपर जलकी वर्षा करते हैं ॥ ११½ ॥

परिवव्रुस्ततः सर्वे पाण्डवस्य महारथम् ॥ १२ ॥
निगृह्य तं प्रचुक्रुशुर्वध्यमानाः शितैः शरैः।

उन सबने मिलकर पाण्डुपुत्र अर्जुनके उस विशाल रथको घेर लिया। यद्यपि उनपर तीखे बाणोंकी मार पड़ रही थी, तो भी वे उस रथको पकड़कर जोर-जोरसे चिल्लाने लगे ॥

ते हयान् रथचक्रे च रथेषां चापि मारिष ॥ १३ ॥
निग्रहीतुमुपाक्रामन् क्रोधाविष्टाः समन्ततः।

माननीय नरेश! क्रोधमें भरे हुए संशप्तकोंने सब ओरसे आक्रमण करके अर्जुनके रथके घोड़ों, दोनों पहियों तथा ईषादण्डको भी पकड़ना आरम्भ किया ॥ १३½ ॥

निगृह्य तं रथं तस्य योधास्ते तु सहस्रशः ॥ १४ ॥
निगृह्य बलवत् सर्वे सिंहनादमथानदन्।

इस प्रकार वे सब हजारों योद्धा रथको जबरदस्ती पकड़कर सिंहनाद करने लगे ॥ १४½ ॥

अपरे जगृहुश्चैव केशवस्य महाभुजौ ॥ १५ ॥
पार्थमन्ये महाराज रथस्थं जगृहुर्मुदा।

महाराज! कई योद्धाओंने भगवान् श्रीकृष्णकी दोनों विशाल भुजाएँ पकड़ लीं। दूसरोंने रथपर बैठे हुए अर्जुनको भी प्रसन्नतापूर्वक पकड़ लिया ॥ १५½ ॥

केशवस्तु ततो बाहू विधुन्वन् रणमूर्धनि ॥ १६ ॥
पातयामास तान् सर्वान् दुष्टहस्तीव हस्तिपान्।

तब जैसे दुष्ट हाथी महावतोंको नीचे गिरा देता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने अपनी दोनों बाँहें झटककर उन सब लोगोंको युद्धके मुहानेपर नीचे गिरा दिया ॥ १६½ ॥

ततः क्रुद्धो रणे पार्थः संवृतस्तैर्महारथैः ॥ १७ ॥
निगृहीतं रथं दृष्ट्वा केशवं चाप्यभिद्रुतम्।

फिर उन महारथियोंसे घिरे हुए अर्जुन अपने रथको पकड़ा गया और श्रीकृष्णपर भी आक्रमण हुआ देख रणभूमिमें कुपित हो उठे ॥ १७½ ॥

रथारूढांस्तु सुबहून् पदातींश्चाप्यपातयत् ॥ १८ ॥
आसन्नांश्च तथा योधान् शरैरासन्नयोधिभिः।
छादयामास समरे केशवं चेदमब्रवीत् ॥ १९ ॥

उन्होंने अपने रथपर चढ़े हुए बहुत-से पैदल सैनिकोंको धक्के देकर नीचे गिरा दिया और आसपास खड़े हुए संशप्तक-योद्धाओंको निकटसे युद्ध करनेमें उपयोगी बाणोंद्वारा ढक दिया एवं समराङ्गणमें भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा—॥

पश्य कृष्ण महाबाहो संशप्तकगणान् बहून्।
कुर्वाणान् दारुणं कर्म वध्यमानान् सहस्रशः ॥ २० ॥

'महाबाहु श्रीकृष्ण! देखिये, ये क्रूरतापूर्ण कर्म करनेवाले बहुसंख्यक संशप्तक योद्धा किस प्रकार सहस्रोंकी संख्यामें मारे जा रहे हैं ॥ २० ॥

रथबन्धमिमं घोरं पृथिव्यां नास्ति कश्चन।
यः सहेत पुमाँल्लोके मदन्यो यदुपुङ्गव ॥ २१ ॥

'यदुपुङ्गव! जगत्में इस भूतलपर मेरे सिवा दूसरा कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जो इस भयानक रथबन्ध (रथकी पकड़ अथवा रथोंके घेरे) का सामना कर सके' ॥ २१ ॥

इत्येवमुक्त्वा बीभत्सुर्देवदत्तमथाधमत्।
पाञ्चजन्यं च कृष्णोऽपि पूरयन्निव रोदसी ॥ २२ ॥

ऐसा कहकर अर्जुनने देवदत्त नामक शङ्ख बजाया। फिर भगवान् श्रीकृष्णने भी पृथ्वी और आकाशको गुँजाते हुए-से पाञ्चजन्य नामक शङ्खकी ध्वनि फैलायी ॥ २२ ॥

तं तु शङ्खस्वनं श्रुत्वा संशप्तकवरूथिनी।
संचचाल महाराज वित्रस्ता चाद्रवद् भृशम् ॥ २३ ॥

महाराज! उस शङ्खनादको सुनकर संशप्तकोंकी सेना काँप उठी और भयभीत होकर जोर-जोरसे भागने लगी ॥

पादबन्धं ततश्चक्रे पाण्डवः परवीरहा।

नागमस्त्रं महाराज सम्प्रकीर्य मुहुर्मुहुः ॥ २४ ॥

नरेश्वर ! तदनन्तर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले पाण्डुनन्दन अर्जुनने बारंबार नागास्त्रका प्रयोग करके उन सबके पैर बाँध लिये ॥ २४ ॥

ते बद्धाः पादबन्धेन पाण्डवेन महात्मना ।
निश्चेष्टाश्चाभवन् राजन्नश्मसारमया इव ॥ २५ ॥

राजन् ! उन महात्मा पाण्डुपुत्र अर्जुनके द्वारा पैर बाँध दिये जानेके कारण वे संशप्तक योद्धा लोहेके बने हुए पुतलोंके समान निश्चेष्ट हो गये ॥ २५ ॥

निश्चेष्टांस्तु ततो योधानवधीत् पाण्डुनन्दनः ।
यथेन्द्रः समरे दैत्यांस्तारकस्य वधे पुरा ॥ २६ ॥

फिर पूर्वकालमें इन्द्रने तारकासुरके वधके समय समराङ्गणमें जिस प्रकार दैत्योंका वध किया था, उसी प्रकार पाण्डुनन्दन अर्जुनने निश्चेष्ट हुए संशप्तक योद्धाओंका संहार आरम्भ किया ॥ २६ ॥

ते वध्यमानाः समरे मुमुचुस्तं रथोत्तमम् ।
आयुधानि च सर्वाणि विस्रष्टुमुपचक्रमुः ॥ २७ ॥

समराङ्गणमें बाणोंकी मार पड़नेपर उन्होंने अर्जुनके उस उत्तम रथको छोड़ दिया और उनके ऊपर अपने समस्त अस्त्र-शस्त्रोंको छोड़नेका प्रयास किया ॥ २७ ॥

ते बद्धाः पादबन्धेन न शेकुश्चेष्टितुं नृप ।
ततस्तानवधीत् पार्थः शरैः संनतपर्वभिः ॥ २८ ॥

नरेश्वर ! उस समय पैर बँधे होनेके कारण वे हिल भी न सके । तब अर्जुन झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा उनका वध करने लगे ॥ २८ ॥

सर्वयोधा हि समरे भुजगैर्वेष्टिताभवन् ।
यानुद्दिश्य रणे पार्थः पादबन्धं चकार ह ॥ २९ ॥

रणभूमिमें कुन्तीकुमार अर्जुनने जिन-जिन योद्धाओंको लक्ष्य करके पादबन्धास्त्रका प्रयोग किया, वे समस्त योद्धा समराङ्गणमें नागोंद्वारा जकड़ लिये गये थे ॥ २९ ॥

ततः सुशर्मा राजेन्द्र गृहीतां वीक्ष्य वाहिनीम् ।
सौपर्णमस्त्रं त्वरितः प्रादुश्चक्रे महारथः ॥ ३० ॥

राजेन्द्र ! महारथी सुशर्माने अपनी सेनाको नागोंद्वारा बँधी हुई देख तुरंत ही गारुडास्त्र प्रकट किया ॥ ३० ॥

ततः सुपर्णाः सम्पेतुर्भक्षयन्तो भुजङ्गमान् ।
ते वै विदुद्रुवुर्नागा दृष्ट्वा तान् खचरान् नृप ॥ ३१ ॥

फिर तो गरुड पक्षी प्रकट होकर उन नागोंपर टूट पड़े और उन्हें खाने लगे । नरेश्वर ! उन पक्षियोंको प्रकट हुआ देख वे सारे नाग भाग चले ॥ ३१ ॥

बभौ बलं तद्विमुक्तं पादबन्धाद् विशाम्पते ।
मेघवृन्दाद् यथा मुक्तो भास्करस्तापयन् प्रजाः॥ ३२ ॥

प्रजानाथ ! जैसे सूर्यदेव मेघोंकी घटासे मुक्त होकर सारी प्रजाको ताप देते हुए प्रकाशित हो उठते हैं, उसी प्रकार पैरोंके बन्धनसे छुटकारा पाकर वह सारी सेना बड़ी शोभा पाने लगी ॥ ३२ ॥

विप्रमुक्तास्तु ते योधाः फाल्गुनस्य रथं प्रति ।
ससृजुर्बाणसंघांश्च शस्त्रसंघांश्च मारिष ॥ ३३ ॥
विविधानि च शस्त्राणि प्रत्यविध्यन्त सर्वशः ।

आर्य ! बन्धनमुक्त होनेपर संशप्तक योद्धा अर्जुनके रथको लक्ष्य करके बाणों तथा शस्त्र-समूहोंकी वर्षा करने लगे तथा उनके नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंको सब ओरसे काटने लगे ॥ ३३½ ॥

तां महास्त्रमयीं वृष्टिं संछिद्य शरवृष्टिभिः ॥ ३४ ॥
न्यवधीच्च ततो योधान् वासविः परवीरहा ।

तदनन्तर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले इन्द्रपुत्र अर्जुनने अपने बाणोंकी वर्षासे उनकी भारी अस्त्र-वृष्टिका निवारण करके उन योद्धाओंका संहार आरम्भ कर दिया ॥ ३४½ ॥

सुशर्मा तु ततो राजन् बाणेनानतपर्वणा ॥ ३५ ॥
अर्जुनं हृदये विद्ध्वा विव्याधान्यैस्त्रिभिः शरैः ।

राजन् ! इसी समय सुशर्माने झुकी हुई गाँठवाले बाणसे अर्जुनकी छातीमें चोट पहुँचाकर अन्य तीन बाणोंद्वारा भी उन्हें घायल कर दिया ॥ ३५½ ॥

स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत् ॥ ३६ ॥
तत उच्चुक्रुशुः सर्वे हतः पार्थ इति स्म ह ।
ततः शङ्खनिनादाश्च भेरीशब्दाश्च पुष्कलाः ॥ ३७ ॥
नानावादित्रनिनदाः सिंहनादाश्च जज्ञिरे ।

उन बाणोंकी गहरी चोट खाकर अर्जुन व्यथित हो रथके पिछले भागमें बैठ गये। फिर तो सब लोग जोर-जोरसे चिल्लाकर कहने लगे कि 'अर्जुन मारे गये !' उस समय शङ्ख बजने लगे, भेरियोंकी गम्भीर ध्वनि फैलने लगी तथा नाना प्रकारके वाद्योंकी ध्वनिके साथ ही योद्धाओंकी सिंहगर्जना भी होने लगी॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ॥ ३८ ॥
ऐन्द्रमस्त्रममेयात्मा प्रादुश्चक्रे त्वरान्वितः ।

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण जिनके सारथि हैं, उन अमेय आत्मबलसे सम्पन्न श्वेतवाहन अर्जुनने होशमें आकर बड़ी उतावलीके साथ ऐन्द्रास्त्रका प्रयोग किया ॥ ३८½ ॥

ततो बाणसहस्राणि समुत्पन्नानि मारिष ॥ ३९ ॥
सर्वदिक्षु व्यदृश्यन्त निघ्नन्ति तव वाहिनीम् ।

मान्यवर ! उससे सम्पूर्ण दिशाओंमें सहस्रों बाण प्रकट हो-होकर आपकी सेनाका संहार करते दिखायी दिये ॥३९½॥

हयान् रथांश्च समरे शस्त्रैः शतसहस्रशः ॥ ४० ॥
वध्यमाने ततः सैन्ये भयं सुमहदाविशत् ।
संशप्तकगणानां च गोपालानां च भारत ॥ ४१ ॥

समराङ्गणमें शस्त्रोंद्वारा सैकड़ों और हजारों घोड़े तथा

रथ मारे जाने लगे । भारत ! इस प्रकार जब सेनाका संहार होने लगा; तब संशप्तकगणों और नारायणी सेनाके ग्वालोंको बड़ा भय हुआ ॥ ४०-४१ ॥

न हि तत्र पुमान् कश्चिद् योऽर्जुनं प्रत्यविध्यत ।
पश्यतां तत्र वीराणामहन्यत बलं तव ॥ ४२ ॥

उस समय वहाँ कोई भी ऐसा पुरुष नहीं था, जो अर्जुनपर चोट कर सके । वहाँ सब वीरोंके देखते-देखते आपकी सेनाका वध होने लगा ॥ ४२ ॥

हन्यमानमपश्यंश्च निश्चेष्टं स्म पराक्रमे ।
अयुतं तत्र योधानां हत्वा पाण्डुसुतो रणे ॥ ४३ ॥
व्यभ्राजत महाराज विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ।

सारी सेना स्वयं निश्चेष्ट हो गयी थी । उससे पराक्रम करते नहीं बनता था और उस अवस्थामें वह मारी जा रही थी । मैंने यह सब अपनी आँखों देखा था । महाराज ! पाण्डुपुत्र अर्जुन रणभूमिमें वहाँ दस हजार योद्धाओंका संहार करके धूमरहित अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ ४३½ ॥

चतुर्दश सहस्राणि यानि शिष्टानि भारत ॥ ४४ ॥
रथानामयुतं चैव त्रिसाहस्राश्च दन्तिनः ।

भारत ! उस समय संशप्तकोंके चौदह हजार पैदल, दस हजार रथ और तीन हजार हाथी शेष रह गये थे ॥ ४४½ ॥

ततः संशप्तका भूयः परिवव्रुर्धनंजयम् ॥ ४५ ॥
मर्तव्यमिति निश्चित्य जयं वाप्यनिवर्तनम् ।

संशप्तकोंने पुनः यह निश्चय करके कि 'मर जायँगे अथवा विजय प्राप्त करेंगे, किंतु युद्धसे पीछे नहीं हटेंगे' अर्जुनको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ४५½ ॥

तत्र युद्धं महच्चासीत् तावकानां विशाम्पते ।
शूरेण बलिना सार्धं पाण्डवेन किरीटिना ॥ ४६ ॥
(जित्वा तान् न्यहनत् पार्थः शत्रूञ्छक्र इवासुरान् ॥)

प्रजानाथ ! फिर तो वहाँ किरीटधारी बलवान् शूरवीर पाण्डुपुत्र अर्जुनके साथ आपके सैनिकोंका बड़ा भारी युद्ध हुआ । उसमें कुन्तीपुत्र अर्जुनने उन शत्रुओंको जीतकर उनका उसी प्रकार संहार कर डाला, जैसे देवराज इन्द्रने असुरोंका किया था ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक तिरपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५३ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ४६½ श्लोक हैं)

चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कृपाचार्यके द्वारा शिखण्डीकी पराजय और सुकेतुका वध तथा धृष्टद्युम्नके द्वारा कृतवर्माका परास्त होना

संजय उवाच

कृतवर्मा कृपो द्रौणिः सूतपुत्रश्च मारिष ।
उलूकः सौबलश्चैव राजा च सह सोदरैः ॥ १ ॥
सीदमानां चमूं दृष्ट्वा पाण्डुपुत्रभयार्दिताम् ।
समुज्जह्रुः स्म वेगेन भिन्नां नावमिवार्णवे ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—मान्यवर ! नरेश ! कृतवर्मा, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, सूतपुत्र कर्ण, उलूक, शकुनि तथा भाइयोंसहित राजा दुर्योधनने समुद्रमें टूटी हुई नावकी भाँति आपकी सेनाको पाण्डुपुत्र अर्जुनके भयसे पीड़ित और शिथिल होती देख बड़े वेगसे आकर उसका उद्धार किया ॥ १-२ ॥

ततो युद्धमतीवासीन्मुहूर्तमिव भारत ।
भीरूणां त्रासजननं शूराणां हर्षवर्धनम् ॥ ३ ॥

भारत ! तदनन्तर दो घड़ीतक वहाँ घोर युद्ध होता रहा, जो कायरोंके लिये त्रासजनक और शूरवीरोंका हर्ष बढ़ानेवाला था ॥ ३ ॥

कृपेण शरवर्षाणि प्रतिमुक्तानि संयुगे ।
सृञ्जयांश्छादयामासुः शलभानां व्रजा इव ॥ ४ ॥

कृपाचार्यने युद्धस्थलमें बाणोंकी बड़ी भारी वर्षा की । उन बाणोंने टिड्डीदलोंके समान सृञ्जयोंको आच्छादित कर दिया ॥ ४ ॥

शिखण्डी च ततः क्रुद्धो गौतमं त्वरितो ययौ ।
ववर्ष शरवर्षाणि समन्ताद् द्विजपुङ्गवम् ॥ ५ ॥

इससे शिखण्डीको बड़ा क्रोध हुआ । वह तुरंत ही विप्रवर गौतमगोत्रीय कृपाचार्यपर चढ़ आया और उनके ऊपर सब ओरसे बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ५ ॥

कृपस्तु शरवर्षं तद् विनिहत्य महास्त्रवित् ।
शिखण्डिनं रणे क्रुद्धो विव्याध दशभिः शरैः ॥ ६ ॥

महान् अस्त्रवेत्ता कृपाचार्यने शिखण्डीकी उस बाण-वर्षाका निवारण करके कुपित हो उसे दस बाणोंद्वारा घायल कर दिया ॥ ६ ॥

(महदासीत् तयोर्युद्धं मुहूर्तमिव दारुणम् ।
क्रुद्धयोः समरे राजन् रामरावणयोरिव ॥)

राजन् ! समर-भूमिमें कुपित हुए राम और रावणके समान उन दोनों वीरोंमें दो घड़ीतक बड़ा भयंकर युद्ध चलता रहा ॥ ७ ॥

ततः शिखण्डी कुपितः शरैः सप्तभिराहवे ।
कृपं विव्याध कुपितं कङ्कपत्रैरजिह्मगैः ॥ ७ ॥

तत्पश्चात् शिखण्डीने क्रोधमें भरकर युद्धस्थलमें कङ्क-पत्रयुक्त सात सीधे बाणोंद्वारा कुपित कृपाचार्यको क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ७ ॥

ततः कृपः शरैस्तीक्ष्णैः सोऽतिविद्धो महारथः।
व्यश्वसूतरथं चक्रे शिखण्डिनमथो द्विजः ॥ ८ ॥

उन तीखे बाणोंसे अत्यन्त घायल हुए महारथी विप्रवर कृपाचार्यने शिखण्डीको घोड़े, सारथि एवं रथसे रहित कर दिया ॥ ८ ॥

हताश्वात् तु ततो यानादवप्लुत्य महारथः।
खड्गं चर्म तथा गृह्य सत्वरं ब्राह्मणं ययौ ॥ ९ ॥

तब महारथी शिखण्डी उस अश्वहीन रथसे कूदकर हाथोंमें ढाल और तलवार ले तुरंत ही ब्राह्मण कृपाचार्यकी ओर चला॥



तमापतन्तं सहसा शरैः संनतपर्वभिः।
छादयामास समरे तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १० ॥

उसे अपने ऊपर सहसा आक्रमण करते देख कृपाचार्यने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा समराङ्गणमें शिखण्डीको ढक दिया, यह अद्भुत-सी बात हुई ॥ १० ॥

तत्राद्भुतमपश्याम शिलानां प्लवनं यथा।
निश्चेष्टस्तद् रणे राजञ्छिखण्डी समतिष्ठत ॥ ११ ॥

राजन्! रणक्षेत्रमें शिखण्डी निश्चेष्ट होकर खड़ा रहा, यह वहाँ पत्थरके तैरनेके समान हमलोगोंने अद्भुत बात देखी ॥

कृपेणच्छादितं दृष्ट्वा नृपोत्तम शिखण्डिनम्।
प्रत्युद्ययौ कृपं तूर्णं धृष्टद्युम्नो महारथः ॥ १२ ॥

नृपश्रेष्ठ! शिखण्डीको कृपाचार्यके बाणोंसे आच्छादित हुआ देख महारथी धृष्टद्युम्न तुरंत ही उनका सामना करनेके लिये आये ॥ १२ ॥

धृष्टद्युम्नं ततो यान्तं शारद्वतरथं प्रति।
प्रतिजग्राह वेगेन कृतवर्मा महारथः ॥ १३ ॥

धृष्टद्युम्नको कृपाचार्यके रथकी ओर जाते देख महारथी कृतवर्माने वेगपूर्वक उन्हें रोक दिया ॥ १३ ॥

युधिष्ठिरमथायान्तं शारद्वतरथं प्रति।
सपुत्रं सहसैन्यं च द्रोणपुत्रो न्यवारयत् ॥ १४ ॥

इसी प्रकार पुत्र और सेनासहित युधिष्ठिरको कृपाचार्यके रथपर चढ़ाई करते देख द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने रोका ॥१४॥

नकुलं सहदेवं च त्वरमाणौ महारथौ।
प्रतिजग्राह ते पुत्रः शरवर्षेण वारयन् ॥ १५ ॥

महारथी नकुल और सहदेव भी बड़ी उतावलीके साथ चढ़े आ रहे थे, उन्हें भी आपके पुत्रने बाण-वर्षासे रोक दिया॥

भीमसेनं करूषांश्च केकयान् सह सृंजयैः।
कर्णो वैकर्तनो युद्धे वारयामास भारत ॥ १६ ॥

भारत! भीमसेनको तथा करूष, केकय और सृञ्जय योद्धाओंको वैकर्तन कर्णने युद्धमें आगे बढ़नेसे रोका ॥१६॥

शिखण्डिनस्ततो बाणान् कृपः शारद्वतो युधि।
प्राहिणोत् त्वरया युक्तो दिधक्षुरिव मारिष ॥ १७ ॥

मान्यवर! शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्य युद्धस्थलमें, मानो वे शिखण्डीको दग्ध कर डालना चाहते हों, बड़ी उतावलीके साथ उसके ऊपर बाण चलाये ॥ १७ ॥

ताञ्छरान् प्रेषितांस्तेन समन्तात् स्वर्णभूषितान्।
चिच्छेद खड्गमाविध्य भ्रामयंश्च पुनः पुनः ॥ १८ ॥

उनके चलाये हुए उन सुवर्णभूषित बाणोंको शिखण्डीने बारंबार तलवार घुमाकर सब ओरसे काट डाला ॥ १८ ॥

शतचन्द्रं च तच्चर्म गौतमस्तस्य भारत।
व्यधमत् सायकैस्तूर्णं तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ १९ ॥

भरतनन्दन! तब कृपाचार्यने अपने बाणोंसे शिखण्डीकी सौ चन्द्राकार चिह्नोंसे युक्त ढालको तुरंत ही छिन्न-भिन्न कर डाला। इससे सब लोग कोलाहल करने लगे ॥ १९ ॥

स विचर्मा महाराज खड्गपाणिरुपाद्रवत्।
कृपस्य वशमापन्नो मृत्योरास्यमिवातुरः ॥ २० ॥

महाराज! जैसे रोगी मौतके मुँहमें पहुँच गया हो, उसी प्रकार कृपाचार्यके वशमें पड़ा हुआ शिखण्डी अपनी ढाल कट जानेपर केवल तलवार हाथमें लिये उनकी ओर दौड़ा॥

शारद्वतशरैर्ग्रस्तं क्लिश्यमानं महाबलः।
चित्रकेतुसुतो राजन् सुकेतुस्त्वरितो ययौ ॥ २१ ॥

राजन्! शिखण्डीको कृपाचार्यके बाणोंका ग्रास बनकर पीड़ित होते देख चित्रकेतुका पुत्र महाबली सुकेतु उसकी सहायताके लिये तुरंत आगे बढ़ा ॥ २१ ॥

विकिरन् ब्राह्मणं युद्धे बहुभिर्निशितैः शरैः।
अभ्यापतदमेयात्मा गौतमस्य रथं प्रति ॥ २२ ॥

सुकेतु अमेय आत्मबलसे सम्पन्न था। वह युद्धस्थलमें बहुसंख्यक पैने बाणोंद्वारा ब्राह्मण कृपाचार्यको आच्छादित

करता हुआ उनके रथके समीप आ पहुँचा ॥ २२ ॥

दृष्ट्वा च युक्तं तं युद्धे ब्राह्मणं चरितव्रतम् ।
अपयातस्ततस्तूर्णं शिखण्डी राजसत्तम ॥ २३ ॥

नृपश्रेष्ठ ! ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करनेवाले ब्राह्मण कृपाचार्यको सुकेतुके साथ युद्धमें तत्पर देख शिखण्डी तुरंत वहाँसे भाग निकला ॥ २३ ॥

सुकेतुस्तु ततो राजन् गौतमं नवभिः शरैः ।
विद्ध्वा विव्याध सप्तत्या पुनश्चैनं त्रिभिः शरैः॥२४॥

राजन् ! तदनन्तर सुकेतुने कृपाचार्यको पहले नौ बाणोंसे बींधकर फिर तिहत्तर तीरोंसे उन्हें घायल कर दिया ॥ २४ ॥

अथास्य सशरं चापं पुनश्चिच्छेद मारिष ।
सारथिं च शरेणास्य भृशं मर्मस्वताडयत् ॥ २५ ॥

आर्य ! तत्पश्चात् बाणसहित उनके धनुषको काट दिया और एक बाणद्वारा उनके सारथिके मर्मस्थानोंमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ २५ ॥

गौतमस्तु ततः क्रुद्धो धनुर्गृह्य नवं दृढम् ।
सुकेतुं त्रिंशता बाणैः सर्वमर्मस्वताडयत् ॥ २६ ॥

इससे कृपाचार्य अत्यन्त कुपित हो उठे । उन्होंने दूसरा नूतन सुदृढ़ धनुष लेकर सुकेतुके सम्पूर्ण मर्मस्थानोंमें तीस बाणोंद्वारा प्रहार किया ॥ २६ ॥

स विह्वलितसर्वाङ्गः प्रचचाल रथोत्तमे ।
भूमिकम्पे यथा वृक्षश्चचाल कम्पितो भृशम् ॥ २७ ॥

इससे सुकेतुका सारा शरीर विह्वल होकर उस उत्तम रथपर काँपने लगा; मानो भूकम्प आनेपर कोई वृक्ष जोर-जोरसे काँपने और झूमने लगा हो ॥ २७ ॥

चलतस्तस्य कायात् तु शिरो ज्वलितकुण्डलम् ।
सोष्णीषं सशिरस्त्राणं क्षुरप्रेण त्वपातयद् ॥ २८ ॥

उसी अवस्थामें कृपाचार्यने एक क्षुरप्रद्वारा सुकेतुके जगमगाते हुए कुण्डलोंसे युक्त पगड़ी और शिरस्त्राणसहित मस्तकको उसकी काँपती हुई कायासे काट गिराया ॥ २८ ॥

तच्छिरः प्रापतद् भूमौ श्येनाहृतमिवामिषम् ।
ततोऽस्य कायो वसुधां पश्चात् प्रापतदच्युत ॥२९॥

राजन् ! वह सिर बाजके लाये हुए मांसके टुकड़ेके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा । उसके बाद सुकेतुका धड़ भी धराशायी हो गया ॥ २९ ॥

तस्मिन् हते महाराज त्रस्तास्तस्य पुरोगमाः ।
गौतमं समरे त्यक्त्वा दुद्रुवुस्ते दिशो दश ॥ ३० ॥

महाराज ! सुकेतुके मारे जानेपर उसके अग्रगामी सैनिक भयभीत हो समराङ्गणमें कृपाचार्यको छोड़कर दसों दिशाओंकी ओर भाग निकले ॥ ३० ॥

धृष्टद्युम्नं तु समरे संनिवार्य महारथः ।
कृतवर्माब्रवीद्धृष्टस्तिष्ठ तिष्ठेति भारत ॥ ३१ ॥

भारत ! दूसरी ओर महारथी कृतवर्माने समराङ्गणमें धृष्टद्युम्नको रोककर बड़े हर्षके साथ कहा—'खड़ा रह, खड़ा रह'॥

तदभूत् तुमुलं युद्धं वृष्णिपार्षतयो रणे ।
आमिषार्थे यथा युद्धं श्येनयोः क्रुद्धयोर्नृप ॥ ३२ ॥

नरेश्वर ! जैसे मांसके टुकड़ेके लिये दो बाज क्रोधपूर्वक लड़ रहे हों, उसी प्रकार उस रणक्षेत्रमें कृतवर्मा और धृष्टद्युम्नका घोर युद्ध होने लगा ॥ ३२ ॥

धृष्टद्युम्नस्तु समरे हार्दिक्यं नवभिः शरैः ।
आजघानोरसि क्रुद्धः पीडयन् हृदिकात्मजम् ॥ ३३ ॥

धृष्टद्युम्नने कुपित होकर कृतवर्माको पीड़ा देते हुए उसकी छातीमें नौ बाण मारे ॥ ३३ ॥

कृतवर्मा तु समरे पार्षतेन दृढाहतः ।
पार्षतं सरथं साश्वं छादयामास सायकैः ॥ ३४ ॥

धृष्टद्युम्नका गहरा आघात पाकर समरभूमिमें कृतवर्माने बाणोंकी वर्षा करके घोड़ों और रथसहित धृष्टद्युम्नको आच्छादित कर दिया ॥ ३४ ॥

सरथश्छादितो राजन् धृष्टद्युम्नो न दृश्यते ।
मेघैरिव परिच्छन्नो भास्करो जलधारिभिः ॥ ३५ ॥

राजन् ! जैसे जलकी धारा गिरानेवाले मेघोंसे आच्छन्न हुए सूर्यका दर्शन नहीं होता, उसी प्रकार कृतवर्माके बाणोंसे रथसहित आच्छादित हुए धृष्टद्युम्न दिखायी नहीं देते थे ॥

विधूय तं बाणगणं शरैः कनकभूषणैः ।
व्यरोचत रणे राजन् धृष्टद्युम्नः कृतव्रणः ॥ ३६ ॥

महाराज ! यद्यपि धृष्टद्युम्न घायल हो गये थे तो भी अपने सुवर्ण-भूषित बाणोंद्वारा कृतवर्माके शरसमूहको छिन्न-भिन्न करके प्रकाशित होने लगे ॥ ३६ ॥

ततस्तु पार्षतः क्रुद्धः शस्त्रवृष्टिं सुदारुणाम् ।
कृतवर्माणमासाद्य व्यसृजत् पृतनापतिः ॥ ३७ ॥

फिर क्रोधमें भरे हुए सेनापति धृष्टद्युम्नने कृतवर्माके निकट जाकर उसके ऊपर अस्त्र-शस्त्रोंकी भयंकर वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ३७ ॥

तामापतन्तीं सहसा शस्त्रवृष्टिं सुदारुणाम् ।
शरैरनेकसाहस्रैर्हार्दिक्योऽवारयद् युधि ॥ ३८ ॥

अपने ऊपर सहसा आती हुई उस भयंकर बाणवर्षाको युद्धस्थलमें कृतवर्माने कई हजार बाण मारकर रोक दिया ॥

दृष्ट्वा तु वारितां युद्धे शस्त्रवृष्टिं दुरासदाम् ।
कृतवर्माणमासाद्य वारयामास पार्षतः ॥ ३९ ॥
सारथिं चास्य तरसा प्राहिणोद् यमसादनम् ।
भल्लेन शितधारेण स हतः प्रापतद् रथात् ॥ ४० ॥

रणभूमिमें उस दुर्जय शस्त्रवर्षाको रोकी गयी देख धृष्टद्युम्नने कृतवर्मापर आक्रमण करके उसे आगे बढ़नेसे रोक दिया और उसके सारथिको तीखी धारवाले भल्लसे वेगपूर्वक

मारकर यमलोक भेज दिया। मारा गया सारथि रथसे नीचे गिर पड़ा ॥ ३९-४० ॥

(कृतवर्मा तु संक्रुद्धो दिधक्षुरिव पावकः ।
धृष्टद्युम्नमुखान् सर्वान् पाण्डवान् पर्यवारयत् ॥

कृतवर्मा अत्यन्त क्रोधमें भरकर जलानेको उद्यत हुई आगके समान धृष्टद्युम्न आदि समस्त पाण्डवोंको रोकने लगा।

ततो राजन् महेष्वासं कृतवर्माणमाशु वै ।
गदां गृह्य पुनर्वेगात् कृतवर्माणमाहनत् ॥

राजन्! तब धृष्टद्युम्नने गदा हाथमें लेकर पुनः बड़े वेगसे महाधनुर्धर कृतवर्मापर शीघ्र ही आघात किया ॥

सोऽतिविद्धो बलवता न्यपतन्मूर्च्छया हतः।
श्रुतर्वा रथमारोप्य अपोवाह रणाजिरात् ॥)

उस बलवान् वीरके गहरे आघातसे अत्यन्त पीड़ित एवं मूर्छित हो कृतवर्मा गिर पड़ा। तब श्रुतर्वा उसे अपने रथपर बिठाकर रणभूमिसे दूर हटा ले गया॥

धृष्टद्युम्नस्तु बलवाञ्जित्वा शत्रुं महाबलम् ।
कौरवान् समरे तूर्णं वारयामास सायकैः ॥ ४१ ॥

इस प्रकार बलवान् धृष्टद्युम्नने उस महाबली शत्रुको जीतकर बाणोंकी वर्षा करके समराङ्गणमें समस्त कौरवोंको तुरंत आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ४१ ॥

ततस्ते तावका योधा धृष्टद्युम्नमुपाद्रवन् ।
सिंहनादरवं कृत्वा ततो युद्धमवर्तत ॥ ४२ ॥

तब आपके समस्त योद्धा सिंहनाद करके धृष्टद्युम्नपर टूट पड़े। फिर वहाँ घोर युद्ध होने लगा ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक चौवनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५४ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ४ श्लोक मिलाकर कुल ४६ श्लोक हैं)

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अश्वत्थामाका घोर युद्ध, सात्यकिके सारथिका वध एवं युधिष्ठिरका अश्वत्थामाको छोड़कर दूसरी ओर चले जाना

संजय उवाच

द्रौणिर्युधिष्ठिरं दृष्ट्वा शैनेयेनाभिरक्षितम् ।
द्रौपदेयैस्तथा शूरैरभ्यवर्तत हृष्टवत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! सात्यकि तथा शूरवीर द्रौपदी-पुत्रोंद्वारा सुरक्षित युधिष्ठिरको देखकर अश्वत्थामा बड़े हर्षके साथ उनका सामना करनेके लिये गया ॥ १ ॥

किरन्निषुगणान् घोरान् स्वर्णपुङ्खाञ्शिलाशितान् ।
दर्शयन् विविधान् मार्गान् शिक्षाश्च लघुहस्तवत् ।२।
ततः खं पूरयामास शरैर्दिव्यास्त्रमन्त्रितैः।
युधिष्ठिरं च समरे परिवार्य महास्त्रवित् ॥ ३ ॥

वह बड़े-बड़े अस्त्रोंका ज्ञाता था; इसलिये शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले योद्धाके समान सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखोंसे युक्त भयंकर शरसमूहोंकी वर्षा करता और नाना प्रकारके मार्ग एवं शिक्षाका प्रदर्शन करता हुआ दिव्यास्त्रोंसे अभिमन्त्रित बाणोंद्वारा समराङ्गणमें युधिष्ठिरको अवरुद्ध करके आकाशको उन बाणोंसे भरने लगा ॥ २-३ ॥

द्रौणायनिशरच्छन्नं न प्राज्ञायत किञ्चन ।
बाणभूतमभूत् सर्वमायोधनशिरो महत् ॥ ४ ॥

द्रोणपुत्रके बाणोंसे आच्छन्न हो जानेके कारण वहाँ कुछ भी ज्ञात नहीं होता था। युद्धका वह सारा विशाल मैदान बाणमय हो रहा था ॥ ४ ॥

बाणजालं दिविच्छन्नं स्वर्णजालविभूषितम् ।
शुशुभे भरतश्रेष्ठ वितानमिव धिष्ठितम् ॥ ५ ॥

भरतश्रेष्ठ! स्वर्णजाल-विभूषित वह बाणोंका जाल आकाशमें फैलकर वहाँ तने हुए वितान (चँदोवे) के समान सुशोभित होता था ॥ ५ ॥

तेनच्छन्नं नभो राजन् बाणजालेन भास्वता ।
अभ्रच्छायेव संजज्ञे बाणरुद्धे नभस्तले ॥ ६ ॥

राजन्! उन प्रकाशमान बाणसमूहोंसे सारा आकाश-मण्डल ढक गया था। बाणोंसे रुँधे हुए आकाशमें मेघोंकी छाया-सी बन गयी थी ॥ ६ ॥

तत्राश्चर्यमपश्याम बाणभूते तथाविधे ।
न स्म सम्पतते भूतं किंचिदेवान्तरिक्षगम् ॥ ७ ॥

इस प्रकार आकाशके बाणमय हो जानेपर हमलोगोंने वहाँ यह आश्चर्यकी बात देखी कि आकाशचारी कोई भी प्राणी उधरसे उड़कर नीचे नहीं आ सकता था ॥ ७ ॥

सात्यकिर्यतमानस्तु धर्मराजश्च पाण्डवः ।
तथेतराणि सैन्यानि न स्म चक्रुः पराक्रमम् ॥ ८ ॥

उस समय प्रयत्नशील सात्यकि, धर्मराज पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर यथा अन्यान्य सैनिक कोई पराक्रम न कर सके ॥

लाघवं द्रोणपुत्रस्य दृष्ट्वा तत्र महारथाः ।
व्यस्मयन्त महाराज नैनं प्रत्युदीक्षितुम् ॥ ९ ॥
शेकुस्ते सर्वराजानस्तपन्तमिव भास्करम् ।

महाराज! द्रोणपुत्रकी वह फुर्ती देखकर वहाँ खड़े हुए सभी महारथी नरेश आश्चर्यचकित हो उठे और तपते हुए सूर्यके समान तेजस्वी अश्वत्थामाकी ओर आँख उठाकर देख भी न सके ॥ ९½ ॥

वध्यमाने ततः सैन्ये द्रौपदेया महारथाः ॥ १० ॥

सात्यकिर्धर्मराजश्च पञ्चालाश्चापि संगताः ।
त्यक्त्वा मृत्युभयं घोरं द्रौणायनिमुपाद्रवन् ॥ ११ ॥

तदनन्तर जब पाण्डवसेना मारी जाने लगी, तब महारथी द्रौपदीपुत्र और सात्यकि तथा धर्मराज युधिष्ठिर और पाञ्चाल सैनिक संगठित हो घोर मृत्युभयको छोड़कर द्रोणकुमारपर टूट पड़े ॥ १०–११ ॥

सात्यकिः सप्तविंशत्या द्रौणिं विद्ध्वा शिलीमुखैः ।
पुनर्विव्याध नाराचैः सप्तभिः स्वर्णभूषितैः ॥ १२ ॥

सात्यकिने सत्ताईस बाणोंसे अश्वत्थामाको घायल करके पुनः सात स्वर्णभूषित नाराचोंद्वारा उसे बींध डाला ॥ १२ ॥

युधिष्ठिरस्त्रिसप्तत्या प्रतिविन्ध्यश्च सप्तभिः ।
श्रुतकर्मा त्रिभिर्बाणैः श्रुतकीर्तिश्च सप्तभिः ॥ १३ ॥
सुतसोमस्तु नवभिः शतानीकश्च सप्तभिः ।
अन्ये च बहवः शूरा विव्यधुस्तं समन्ततः ॥ १४ ॥

युधिष्ठिरने तिहत्तर, प्रतिविन्ध्यने सात, श्रुतकर्माने तीन, श्रुतकीर्तिने सात, सुतसोमने नौ और शतानीकने उसे सात बाण मारे तथा दूसरे बहुत-से शूरवीरोंने भी अश्वत्थामाको चारों ओरसे घायल कर दिया ॥ १३-१४ ॥

स तु क्रुद्धस्ततो राजन्नाशीविष इव श्वसन् ।
सात्यकिं पञ्चविंशत्या प्रत्यविध्यच्छिलीमुखैः ॥ १५ ॥

राजन् ! तब क्रोधमें भरकर विषधर सर्पके समान फुफकारते हुए अश्वत्थामाने सात्यकिको पचीस बाणोंसे घायल करके बदला चुकाया ॥ १५ ॥

श्रुतकीर्तिं च नवभिः सुतसोमं च पञ्चभिः ।
अष्टभिः श्रुतकर्माणं प्रतिविन्ध्यं त्रिभिः शरैः ॥ १६ ॥
शतानीकं च नवभिर्धर्मपुत्रं च पञ्चभिः ।
तथेतरांस्ततः शूरान् द्वाभ्यां द्वाभ्यामताडयत् ॥ १७ ॥
श्रुतकीर्तेस्तथा चापं चिच्छेद निशितैः शरैः ।

फिर श्रुतकीर्तिको नौ, सुतसोमको पाँच, श्रुतकर्माको आठ, प्रतिविन्ध्यको तीन, शतानीकको नौ, धर्मपुत्र युधिष्ठिरको पाँच तथा अन्य शूरवीरोंको दो-दो बाणोंसे पीट दिया । इसके सिवा उसने पैने बाणोंद्वारा श्रुतकीर्तिके धनुषको भी काट दिया॥ १६-१७½ ॥

अथान्यद् धनुरादाय श्रुतिकीर्तिर्महारथः ॥ १८ ॥
द्रौणायनिं त्रिभिर्विद्ध्वा विव्याधान्यैः शितैः शरैः ।

तब महारथी श्रुतकीर्तिने दूसरा धनुष लेकर द्रोणकुमारको पहले तीन बाणोंसे घायल करके फिर दूसरे-दूसरे पैने बाणोंद्वारा बींध डाला ॥ १८½ ॥

ततो द्रौणिर्महाराज शरवर्षेण मारिष ॥ १९ ॥
छादयामास तत् सैन्यं समन्ताद् भरतर्षभ ।

मान्यवर भरतभूषण महाराज ! तत्पश्चात् द्रोणकुमारने अपने बाणोंकी वर्षासे युधिष्ठिरकी उस सेनाको सब ओरसे ढक दिया ॥ १९½ ॥

ततः पुनरमेयात्मा धर्मराजस्य कार्मुकम् ॥ २० ॥
द्रौणिश्चिच्छेद विहसन् विव्याध च शरैस्त्रिभिः ।

उसके बाद अमेय आत्मबलसे सम्पन्न द्रोणकुमारने धर्मराजके धनुषको काट डाला और हँसते-हँसते तीन बाणोंद्वारा पुनः उन्हें घायल कर दिया ॥ २०½ ॥

ततो धर्मसुतो राजन् प्रगृह्यान्यन्महद् धनुः ॥ २१ ॥
द्रौणिं विव्याध सप्तत्या बाह्वोरुरसि चार्पयत् ।

राजन् ! तब धर्मपुत्र युधिष्ठिरने दूसरा विशाल धनुष हाथमें लेकर अश्वत्थामाको बींध दिया एवं उसकी दोनों भुजाओं और छातीमें सत्तर बाण मारे ॥ २१½ ॥

सात्यकिस्तु ततः क्रुद्धो द्रौणेः प्रहरतो रणे ॥ २२ ॥
अर्धचन्द्रेण तीक्ष्णेन धनुश्छित्त्वानदद् भृशम् ।

इसके बाद कुपित हुए सात्यकिने रणभूमिमें प्रहार करनेवाले अश्वत्थामाके धनुषको तीखे अर्धचन्द्रसे काटकर बड़े जोरसे गर्जना की ॥ २२½ ॥

छिन्नधन्वा ततो द्रौणिः शक्त्या शक्तिमतां वरः ॥ २३ ॥
सारथिं पातयामास शैनेयस्य रथाद् द्रुतम् ।

धनुष कट जानेपर शक्तिशालियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामाने शक्ति चलाकर शिनिपौत्र सात्यकिके सारथिको शीघ्र ही रथसे नीचे गिरा दिया ॥ २३½ ॥

अथान्यद् धनुरादाय द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ॥ २४ ॥
शैनेयं शरवर्षेणच्छादयामास भारत ।

भारत ! तत्पश्चात् प्रतापी द्रोणपुत्रने दूसरा धनुष लेकर सात्यकिको शरसमूहोंकी वर्षाद्वारा आच्छादित कर दिया २४½

तस्याश्वाः प्रद्रुताः संख्ये पतिते रथसारथौ ॥ २५ ॥
तत्र तत्रैव धावन्तः समदृश्यन्त भारत ।

भरतनन्दन ! उनके रथका सारथि धराशायी हो चुका था, इसलिये उनके घोड़े युद्धस्थलमें बेलगाम भागने लगे । वे विभिन्न स्थानोंमें भागते हुए ही दिखायी दे रहे थे । २५½।

युधिष्ठिरपुरोगास्तु द्रौणिं शस्त्रभृतां वरम् ॥ २६ ॥
अभ्यवर्षन्त वेगेन विसृजन्तः शिताञ्छरान् ।

युधिष्ठिर आदि पाण्डव महारथी शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामापर बड़े वेगसे पैने बाणोंकी वर्षा करने लगे २६½

आगच्छमानांस्तान् दृष्ट्वा क्रुद्धरूपान् परंतपः ॥ २७ ॥
प्रहसन् प्रतिजग्राह द्रोणपुत्रो महारणे ।

शत्रुओंको संताप देनेवाले द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने उस महासमरमें उन पाण्डव महारथियोंको क्रोधपूर्वक आक्रमण करते देख हँसते हुए उनका सामना किया ॥ २७½ ॥

ततः शरशतज्वालः सेनाकक्षं महारथः ॥ २८ ॥
द्रौणिर्ददाह समरे कक्षमग्निर्यथा वने ।

जैसे आग वनमें सूखे काठ और घास-फूँसको जला देती है, उसी प्रकार महारथी अश्वत्थामाने समराङ्गणमें सैकड़ों बाणरूपी ज्वालाओंसे प्रज्वलित हो पाण्डवसेनारूपी सूखे काठ एवं घास-फूँसको जलाना आरम्भ किया ॥ २८½ ॥

तद् बलं पाण्डुपुत्रस्य द्रोणपुत्रप्रतापितम् ॥ २९ ॥
चुक्षुभे भरतश्रेष्ठ तिमिनेव नदीमुखम् ।

भरतश्रेष्ठ ! जैसे तिमिनामक मत्स्य नदीके प्रवाहको विक्षुब्ध कर देता है, उसी प्रकार द्रोणपुत्रके द्वारा संतप्त की हुई पाण्डवसेनामें हलचल मच गयी ॥ २९½ ॥

दृष्ट्वा चैव महाराज द्रोणपुत्रपराक्रमम् ॥ ३० ॥
निहतान् मेनिरे सर्वान् पाण्डून् द्रोणसुतेन वै ।

महाराज ! द्रोणपुत्रका पराक्रम देखकर सब लोगोंने यही समझा कि द्रोणकुमार अश्वत्थामाके द्वारा सारे पाण्डव मार डाले जायँगे ॥ ३०½ ॥

युधिष्ठिरस्तु त्वरितो द्रोणशिष्यो महारथः ॥ ३१ ॥
अब्रवीद् द्रोणपुत्राय रोषामर्षसमन्वितः ।

तदनन्तर रोष और अमर्षमें भरे हुए द्रोणशिष्य महारथी युधिष्ठिरने द्रोणपुत्र अश्वत्थामासे कहा ॥ ३१½ ॥

(*युधिष्ठिर उवाच*

जानामि त्वां युधि श्रेष्ठं वीर्यवन्तं महाबलम् ।
कृतास्त्रं कृतिनं चैव तथा लघुपराक्रमम् ॥

युधिष्ठिर बोले—द्रोणकुमार ! मैं जानता हूँ कि तुम युद्धमें पराक्रमी, महाबली, अस्त्रवेत्ता, विद्वान् और शीघ्रतापूर्वक पुरुषार्थ प्रकट करनेवाले श्रेष्ठ वीर हो ॥

बलमेतद् भवान् सर्वं पार्षते यदि दर्शयेत् ।
ततस्त्वां बलवन्तं च कृतविद्यं च विद्महे ॥

परंतु यदि तुम अपना यह सारा बल द्रुपदपुत्रपर दिखा सको तो हम समझेंगे कि तुम बलवान् तथा अस्त्र-विद्याके विद्वान् हो ॥

न हि वै पार्षतं दृष्ट्वा समरे शत्रुसूदनम् ।
भवेत् तव बलं किंचिद् ब्रवीमि त्वा न तु द्विजम् ॥)

शत्रुसूदन धृष्टद्युम्नको समरभूमिमें देखकर तुम्हारा बल कुछ भी काम न करेगा । (तुम्हारे कर्मको देखते हुए) मैं तुम्हें ब्राह्मण नहीं कहूँगा ॥

नैव नाम तव प्रीतिर्नैव नाम कृतज्ञता ॥ ३२ ॥
यतस्त्वं पुरुषव्याघ्र मामेवाद्य जिघांससि ।

पुरुषसिंह ! तुम जो आज मुझे ही मार डालना चाहते हो, यह न तो तुम्हारा प्रेम है और न कृतज्ञता ॥ ३२½ ॥

ब्राह्मणेन तपः कार्यं दानमध्ययनं तथा ॥ ३३ ॥
क्षत्रियेण धनुर्नाम्यं स भवान् ब्राह्मणब्रुवः ।

ब्राह्मणको तप, दान और वेदाध्ययन करना चाहिये । धनुष झुकाना तो क्षत्रियका काम है; अतः तुम नाममात्रके ब्राह्मण हो ॥ ३३½ ॥

मिषतस्ते महाबाहो युधि जेष्यामि कौरवान् ॥ ३४ ॥
कुरुष्व समरे कर्म ब्रह्मबन्धुरसि ध्रुवम् ।

महाबाहो ! आज मैं तुम्हारे देखते-देखते युद्धमें कौरवोंको जीतूँगा । तुम समरमें पराक्रम प्रकट करो । निश्चय ही तुम एक स्वधर्मभ्रष्ट ब्राह्मण हो ॥ ३४½ ॥

एवमुक्तो महाराज द्रोणपुत्रः स्मयन्निव ॥ ३५ ॥
युक्तं तत्त्वं च संचिन्त्य नोत्तरं किंचिदब्रवीत् ।

महाराज ! उनके ऐसा कहनेपर द्रोणपुत्र मुस्कराने-सा लगा । इनका कथन युक्तियुक्त तथा यथार्थ है, ऐसा सोचकर उसने कुछ उत्तर नहीं दिया ॥ ३५½ ॥

अनुक्त्वा च ततः किंचिच्छरवर्षेण पाण्डवम् ॥ ३६ ॥
छादयामास समरे क्रुद्धोऽन्तक इव प्रजाः ।

उसने कोई जवाब न देकर समराङ्गणमें कुपित हो बाणोंकी वर्षासे पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको उसी प्रकार ढक दिया, जैसे प्रलयकालमें क्रुद्ध यमराज सारी प्रजाको अदृश्य कर देता है ॥

स च्छाद्यमानस्तु तदा द्रोणपुत्रेण मारिष ॥ ३७ ॥
पार्थोऽपयातः शीघ्रं वै विहाय महतीं चमूम् ।

आर्य ! द्रोणपुत्रके बाणोंसे आच्छादित हो कुन्तीकुमार युधिष्ठिर उस समय अपनी विशाल सेनाको छोड़कर शीघ्र ही वहाँसे पलायन कर गये ॥ ३७½ ॥

अपयाते ततस्तस्मिन् धर्मपुत्रे युधिष्ठिरे ॥ ३८ ॥
द्रोणपुत्रस्ततो राजन् प्रत्यगात् स महामनाः ।

राजन् ! तत्पश्चात् धर्मपुत्र युधिष्ठिरके हट जानेपर फिर महामना द्रोणपुत्र अश्वत्थामा दूसरी ओर चला गया ॥ ३८½ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजंस्त्यक्त्वा द्रौणिं महाहवे ।
प्रययौ तावकं सैन्यं युक्तः क्रूराय कर्मणे ॥ ३९ ॥

नरेश्वर ! फिर उस महायुद्धमें अश्वत्थामाको छोड़कर युधिष्ठिर पुनः क्रूरतापूर्ण कर्म करनेके लिये आपकी सेनाकी ओर बढ़े ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि पार्थापयाने पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें युधिष्ठिरका पलायनविषयक पचपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५५ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३ श्लोक मिलाकर कुल ४२ श्लोक हैं)

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

नकुल-सहदेवके साथ दुर्योधनका युद्ध, धृष्टद्युम्नसे दुर्योधनकी पराजय, कर्णद्वारा पाञ्चाल सेनासहित योद्धाओंका संहार, भीमसेनद्वारा कौरव योद्धाओंका सेनासहित विनाश, अर्जुनद्वारा संशप्तकोंका वध तथा अश्वत्थामाका अर्जुनके साथ घोर युद्ध करके पराजित होना

संजय उवाच

भीमसेनं सपाञ्चाल्यं चेदिकेकयसंवृतम् ।
वैकर्तनः स्वयं रुद्ध्वा वारयामास सायकैः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! पाञ्चालों, चेदियों और

केकयोंसे घिरे हुए भीमसेनको स्वयं वैकर्तन कर्णने बाणोंद्वारा अवरुद्ध करके उन्हें आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ १ ॥

ततस्तु चेदिकारूषान् सृञ्जयांश्च महारथान् ।
कर्णो जघान समरे भीमसेनस्य पश्यतः ॥ २ ॥

तदनन्तर समराङ्गणमें कर्णने भीमसेनके देखते-देखते चेदि, कारूष और संजय महारथियोंका संहार आरम्भ कर दिया ॥ २ ॥

भीमसेनस्ततः कर्णं विहाय रथसत्तमम् ।
प्रययौ कौरवं सैन्यं कक्षमग्निरिव ज्वलन् ॥ ३ ॥

तब भीमसेनने भी रथियोंमें श्रेष्ठ कर्णको छोड़कर जैसे आग घास-फूँसको जलाती है, उसी प्रकार कौरव-सेनाको दग्ध करनेके लिये उसपर आक्रमण किया ॥ ३ ॥

सूतपुत्रोऽपि समरे पञ्चालान् केकयांस्तथा ।
सृञ्जयांश्च महेष्वासान् निजघान सहस्रशः ॥ ४ ॥

सूतपुत्र कर्णने समराङ्गणमें सहस्रों पाञ्चाल, केकय तथा संजय योद्धाओंको, जो महाधनुर्धर थे, मार डाला ॥ ४ ॥

संशप्तकेषु पार्थश्च कौरवेषु वृकोदरः ।
पञ्चालेषु तथा कर्णः क्षयं चक्रुर्महारथाः ॥ ५ ॥

अर्जुन संशप्तकोंकी, भीमसेन कौरवोंकी तथा कर्ण पाञ्चालों-की सेनामें घुसकर युद्ध करते थे । इन तीनों महारथियोंने बहुत-से शत्रुओंका संहार कर डाला ॥ ५ ॥

ते क्षत्रिया दह्यमानास्त्रिभिस्तैः पावकोपमैः ।
जग्मुर्विनाशं समरे राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ ६ ॥

अग्निके समान तेजस्वी इन तीनों वीरोंद्वारा दग्ध होते हुए क्षत्रिय समराङ्गणमें विनाशको प्राप्त हो रहे थे । राजन् ! यह सब आपकी कुमन्त्रणाका फल है ॥ ६ ॥

ततो दुर्योधनः क्रुद्धो नकुलं नवभिः शरैः ।
विव्याध भरतश्रेष्ठ चतुरश्चास्य वाजिनः ॥ ७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तब दुर्योधनने कुपित होकर नौ बाणोंसे नकुल तथा उनके चारों घोड़ोंको घायल कर दिया ॥ ७ ॥

ततः पुनरमेयात्मा तव पुत्रो जनाधिप ।
क्षुरेण सहदेवस्य ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम् ॥ ८ ॥

जनेश्वर ! इसके बाद अमेय आत्मबलसे सम्पन्न आपके पुत्रने एक क्षुरके द्वारा सहदेवकी सुवर्णमयी ध्वजा काट डाली॥

नकुलस्तु ततः क्रुद्धस्तव पुत्रं च सप्तभिः ।
जघान समरे राजन् सहदेवश्च पञ्चभिः ॥ ९ ॥

राजन् ! तत्पश्चात् समर-भूमिमें आपके पुत्रको क्रोधमें भरे हुए नकुलने सात और सहदेवने पाँच बाण मारे ॥ ९ ॥

तावुभौ भरतश्रेष्ठौ ज्येष्ठौ सर्वधनुष्मताम् ।
विव्याधोरसि संक्रुद्धः पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ॥ १० ॥

वे दोनों श्रेष्ठ वीर समस्त धनुर्धारियोंमें प्रधान थे । दुर्योधनने कुपित होकर उन दोनोंकी छातीमें पाँच-पाँच बाण मारे ॥ १० ॥

ततोऽपराभ्यां भल्लाभ्यां धनुषी समकृन्तत ।
यमयोः सहसा राजन् विव्याध च त्रिसप्तभिः ॥ ११ ॥

राजन् ! फिर सहसा उसने दो भल्लोंसे नकुल और सहदेवके धनुष काट डाले तथा उन दोनोंको भी इक्कीस बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ११ ॥

तावन्ये धनुषी श्रेष्ठे शक्रचापनिभे शुभे ।
प्रगृह्य रेजतुः शूरौ देवपुत्रसमौ युधि ॥ १२ ॥

फिर वे दोनों वीर इन्द्रधनुषके समान सुन्दर दूसरे श्रेष्ठ धनुष लेकर युद्धस्थलमें देवकुमारोंके समान सुशोभित होने लगे ॥

ततस्तौ रभसौ युद्धे भ्रातरौ भ्रातरं युधि ।
शरैर्ववृषतुर्घोरैर्महामेघौ यथाचलम् ॥ १३ ॥

तत्पश्चात् जैसे दो महामेघ किसी पर्वतपर जलकी वर्षा करते हों, उसी प्रकार दोनों वेगशाली बन्धु नकुल और सहदेव भाई दुर्योधनपर युद्धमें भयंकर बाणोंकी वृष्टि करने लगे ॥ १३ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज तव पुत्रो महारथः ।
पाण्डुपुत्रौ महेष्वासौ वारयामास पत्रिभिः ॥ १४ ॥

महाराज ! तब आपके महारथी पुत्रने कुपित होकर उन दोनों महाधनुर्धर पाण्डुपुत्रोंको बाणोंद्वारा आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ १४ ॥

धनुर्मण्डलमेवास्य दृश्यते युधि भारत ।
सायकाश्चैव दृश्यन्ते निश्चरन्तः समन्ततः ॥ १५ ॥
आच्छादयन् दिशः सर्वाः सूर्यस्येवांशवो यथा ।

भारत ! उस समय केवल उसका मण्डलाकार धनुष ही दिखायी देता था और उससे चारों ओर छूटनेवाले बाण सूर्यकी किरणोंके समान सम्पूर्ण दिशाओंको ढके हुए दृष्टिगोचर होते थे ॥ १५½ ॥

बाणभूते ततस्तस्मिन् संछन्ने च नभस्तले ॥ १६ ॥
यमाभ्यां ददृशे रूपं कालान्तकयमोपमम् ।

उस समय जब आकाश आच्छादित होकर बाणमय हो रहा था, तब नकुल और सहदेवने आपके पुत्रका स्वरूप काल, अन्तक एवं यमराजके समान भयंकर देखा ॥ १६½ ॥

पराक्रमं तु तं दृष्ट्वा तव सूनोर्महारथाः ॥ १७ ॥
मृत्योरुपान्तिकं प्राप्तौ माद्रीपुत्रौ स्म मेनिरे ।

आपके पुत्रका वह पराक्रम देखकर सब महारथी ऐसा मानने लगे कि माद्रीके दोनों पुत्र मृत्युके निकट पहुँच गये॥

ततः सेनापती राजन् पाण्डवस्य महारथः ॥ १८ ॥
पार्षतः प्रययौ तत्र यत्र राजा सुयोधनः ।

राजन् ! तब पाण्डव-सेनापति द्रुपदपुत्र महारथी धृष्टद्युम्न जहाँ राजा दुर्योधन था, वहाँ जा पहुँचे ॥ १८½ ॥

माद्रीपुत्रौ ततः शूरौ व्यतिक्रम्य महारथौ ॥ १९ ॥
धृष्टद्युम्नस्तव सुतं वारयामास सायकैः ।

महारथी शूरवीर माद्रीकुमार नकुल-सहदेवको लाँघकर धृष्टद्युम्नने अपने बाणोंकी मारसे आपके पुत्रको रोक दिया ॥

तमविध्यदमेयात्मा तव पुत्रो ह्यमर्षणः ॥ २० ॥
पाञ्चाल्यं पञ्चविंशत्या प्रहसन् पुरुषर्षभः ।

तब अमेय आत्मबलसे सम्पन्न आपके अमर्षशील पुत्र पुरुष-रत्न दुर्योधनने हँसते हुए पचीस बाण मारकर धृष्टद्युम्न-को घायल कर दिया ॥ २०½ ॥

ततः पुनरमेयात्मा तव पुत्रो ह्यमर्षणः ॥ २१ ॥
विद्ध्वा ननाद पाञ्चाल्यं षष्ट्या पञ्चभिरेव च ।

तदनन्तर अमेय आत्मबलसे सम्पन्न आपके अमर्षशील पुत्रने पैंसठ बाणोंसे धृष्टद्युम्नको घायल करके बड़े जोरसे गर्जना की ॥ २१½ ॥

तथास्य सशरं चापं हस्तावापं च मारिष ॥ २२ ॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन राजा चिच्छेद संयुगे ।

आर्य ! फिर राजा दुर्योधनने युद्धस्थलमें एक तीखे क्षुरप्रसे धृष्टद्युम्नके बाणसहित धनुष और दस्तानेको भी काट दिया ॥ २२½ ॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं पाञ्चाल्यः शत्रुकर्शनः ॥ २३ ॥
अन्यदादत्त वेगेन धनुर्भारसहं नवम् ।

शत्रुसूदन धृष्टद्युम्नने उस कटे हुए धनुषको फेंककर वेगपूर्वक दूसरा धनुष हाथमें ले लिया, जो भार सहनेमें समर्थ और नवीन था ॥ २३½ ॥

प्रज्वलन्निव वेगेन संरम्भाद् रुधिरेक्षणः ॥ २४ ॥
अशोभत महेष्वासो धृष्टद्युम्नः कृतव्रणः ।

उस समय उनकी आँखें क्रोधसे लाल हो रही थीं। सारे शरीरमें घाव हो रहे थे; अतः वे महाधनुर्धर धृष्टद्युम्न वेगसे जलते हुए अग्निदेवके समान शोभा पा रहे थे ॥ २४½ ॥

स पञ्चदश नाराचाञ्श्वसतः पन्नगानिव ॥ २५ ॥
जिघांसुर्भरतश्रेष्ठं धृष्टद्युम्नो व्यपासृजत् ।

धृष्टद्युम्नने भरतश्रेष्ठ दुर्योधनको मार डालनेकी इच्छासे उसके ऊपर फुफकारते हुए सर्पोंके समान पंद्रह नाराच छोड़े॥

ते वर्म हेमविकृतं भित्त्वा राज्ञः शिलाशिताः ॥ २६ ॥
विविशुर्वसुधां वेगात् कङ्कबर्हिणवाससः ।

शिलापर तेज किये हुए कङ्क और मयूरके पंखोंसे युक्त वे बाण राजा दुर्योधनके सुवर्णमय कवचको छेदकर बड़े वेगसे पृथ्वीमें समा गये ॥ २६½ ॥

सोऽतिविद्धो महाराज पुत्रस्तेऽतिव्यराजत ॥ २७ ॥
वसन्तकाले सुमहान् प्रफुल्ल इव किंशुकः ।

महाराज ! उस समय अत्यन्त घायल हुआ आपका पुत्र वसन्त ऋतुमें खिले हुए महान् पलाश वृक्षके समान अत्यन्त सुशोभित हो रहा था ॥ २७½ ॥

सच्छिन्नवर्मा नाराचप्रहारैर्जर्जरीकृतः ॥ २८ ॥
धृष्टद्युम्नस्य भल्लेन क्रुद्धश्चिच्छेद कार्मुकम् ।

उसका कवच कट गया था और शरीर नाराचोंके प्रहारसे जर्जर कर दिया गया था। उस अवस्थामें उसने कुपित होकर एक भल्लसे धृष्टद्युम्नके धनुषको काट डाला ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं त्वरमाणो महीपतिः ॥ २९ ॥
सायकैर्दशभी राजन् भ्रुवोर्मध्ये समार्पयत् ।

राजन् ! धनुष कट जानेपर धृष्टद्युम्नकी दोनों भौहोंके मध्य-भागमें राजा दुर्योधनने तुरंत ही दस बाणोंका प्रहार किया ॥

तस्य तेऽशोभयन् वक्त्रं कर्मारपरिमार्जिताः ॥ ३० ॥
प्रफुल्लं पङ्कजं यद्वद् भ्रमरा मधुलिप्सवः ।

कारीगरके द्वारा साफ किये गये वे बाण धृष्टद्युम्नके मुखकी ऐसी शोभा बढ़ाने लगे, मानो मधुलोभी भ्रमर प्रफुल्ल कमल-पुष्पका रसास्वादन कर रहे हों ॥ ३०½ ॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं धृष्टद्युम्नो महामनाः ॥ ३१
अन्यदादत्त वेगेन धनुर्भल्लांश्च षोडश ।

महामना धृष्टद्युम्नने उस कटे हुए धनुषको फेंककर बड़े वेगसे दूसरा धनुष और सोलह भल्ल हाथमें ले लिये ॥ ३१½ ॥

ततो दुर्योधनस्याश्वान् हत्वा सूतं च पञ्चभिः ॥ ३२ ॥
धनुश्चिच्छेद भल्लेन जातरूपपरिष्कृतम् ।

उनमेंसे पाँच भल्लोंद्वारा दुर्योधनके सारथि और घोड़ों-को मारकर एक भल्लसे उसके सुवर्ण-भूषित धनुषको काट डाला ॥ ३२½ ॥

रथं सोपस्करं छत्रं शक्तिं खड्गं गदां ध्वजम् ॥ ३३ ॥
भल्लैश्चिच्छेद दशभिः पुत्रस्य तव पार्षतः ।

तत्पश्चात् दस भल्लोंसे द्रुपदकुमारने आपके पुत्रके सब सामग्रियोंसहित रथ, छत्र, शक्ति, खड्ग, गदा और ध्वज काट दिये ॥ ३३½ ॥

तपनीयाङ्गदं चित्रं नागं मणिमयं शुभम् ॥ ३४ ॥
ध्वजं कुरुपतेश्छिन्नं ददृशुः सर्वपार्थिवाः ।

समस्त राजाओंने देखा कि कुरुराज दुर्योधनका सोनेके अङ्गदोंसे विभूषित नाग-चिह्नयुक्त विचित्र, मणिमय एवं सुन्दर ध्वज कटकर धराशायी हो गया है ॥ ३४½ ॥

दुर्योधनं तु विरथं छिन्नवर्मायुधं रणे ॥ ३५ ॥
भ्रातरः पर्यरक्षन्त सोदरा भरतर्षभ ।

भरतश्रेष्ठ ! रणभूमिमें जिसके कवच और आयुध छिन्न-भिन्न हो गये थे, उस रथहीन दुर्योधनकी उसके सगे भाई सब ओरसे रक्षा करने लगे ॥ ३५½ ॥

तमारोप्य रथे राजन् दण्डधारो नराधिपम् ॥ ३६ ॥
अपाहरदसम्भ्रान्तो धृष्टद्युम्नस्य पश्यतः ।

राजन् ! इसी समय दण्डधार धृष्टद्युम्नके देखते-देखते राजा दुर्योधनको अपने रथपर बिठाकर बिना किसी घबराहटके रणभूमिसे दूर हटा ले गया ॥ ३६½ ॥

कर्णस्तु सात्यकिं जित्वा राजगृद्धी महाबलः ॥ ३७ ॥
द्रोणहन्तारमुग्रेषुं ससाराभिमुखो रणे ।

राजा दुर्योधनका हित चाहनेवाला महाबली कर्ण सात्यकिको परास्त करके रणभूमिमें भयंकर बाण धारण करनेवाले द्रोणहन्ता धृष्टद्युम्नके सामने गया ॥ ३७½ ॥

तं पृष्ठतोऽभ्ययात् तूर्णं शैनेयो वितुदञ्छरैः ॥ ३८ ॥
वारणं जघनोपान्ते विषाणाभ्यामिव द्विपः ।

उस समय शिनिपौत्र सात्यकि अपने बाणोंसे कर्णको पीड़ा देते हुए तुरंत उसके पीछे-पीछे गये, मानो कोई गजराज अपने दोनों दाँतोंसे दूसरे गजराजकी जाँघोंमें चोट पहुँचाता हुआ उसका पीछा कर रहा हो ॥ ३८½ ॥

स भारत महानासीद् योधानां सुमहात्मनाम् ॥ ३९ ॥
कर्णपार्षतयोर्मध्ये त्वदीयानां महारणः ।

भारत ! कर्ण और धृष्टद्युम्नके बीचमें खड़े हुए आपके महामनस्वी योद्धाओंका पाण्डव-सैनिकोंके साथ महान् संग्राम हुआ॥

न पाण्डवानां नास्माकं योधः कश्चित् पराङ्मुखः॥ ४० ॥
प्रत्यदृश्यत् ततः कर्णः पञ्चालांस्त्वरितो ययौ ।

उस समय पाण्डवों तथा हमलोगोंमेंसे कोई भी योद्धा युद्धसे मुँह फेरकर पीछे हटता नहीं दिखायी दिया। तब कर्णने तुरंत ही पाञ्चालोंपर आक्रमण किया ॥ ४०½ ॥

तस्मिन् क्षणे नरश्रेष्ठ गजवाजिजनक्षयः ॥ ४१ ॥
प्रादुरासीदुभयतो राजन् मध्यगतेऽहनि ।

नरश्रेष्ठ नरेश्वर ! मध्याह्नकी उस वेलामें दोनों पक्षोंके हाथी, घोड़ों और मनुष्योंका संहार होने लगा ॥ ४१½ ॥

पञ्चालास्तु महाराज त्वरिता विजिगीषवः ॥ ४२ ॥
ते सर्वेऽभ्यद्रवन् कर्णं पतत्रिण इव द्रुमम् ।

महाराज ! विजयकी इच्छा रखनेवाले समस्त पाञ्चाल योद्धा कर्णपर उसी प्रकार टूट पड़े, जैसे पक्षी वृक्षकी ओर उड़े जाते हैं ॥ ४२½ ॥

तांस्तथाधिरथिः क्रुद्धो यतमानान् मनस्विनः ॥ ४३ ॥
विचिन्वन्निव बाणौघैः समासादयदग्रगान् ।

अधिरथपुत्र कर्ण कुपित हो विजयके लिये प्रयत्नशील, मनस्वी एवं अग्रगामी वीरोंको मानो चुन-चुनकर बाण-समूहोंद्वारा मारने लगा ॥ ४३½ ॥

व्याघ्रकेतुं सुशर्माणं चित्रं चोग्रायुधं जयम् ॥ ४४ ॥
शुक्लं च रोचमानं च सिंहसेनं च दुर्जयम् ।

वह व्याघ्रकेतु, सुशर्मा[1], चित्र, उग्रायुध, जय, शुक्ल, रोचमान और दुर्जय वीर सिंहसेनपर जा चढ़ा ॥ ४४½ ॥

ते वीरा रथमार्गेण परिवव्रुर्नरोत्तमम् ॥ ४५ ॥
सृजन्तं सायकान् क्रुद्धं कर्णमाहवशोभिनम् ।

उन सभी वीरोंने रथ-मार्गसे आकर युद्धभूमिमें शोभा पाने तथा कुपित होकर बाणोंकी वर्षा करनेवाले नरश्रेष्ठ कर्णको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ४५½ ॥

युध्यमानांस्तु तान् दूरान्मनुजेन्द्र प्रतापवान् ॥ ४६ ॥
अष्टाभिरष्टौ राधेयोऽभ्यर्दयन्निशितैः शरैः ।

नरेन्द्र ! प्रतापी राधापुत्र कर्णने दूरसे युद्ध करनेवाले उन आठों वीरोंको आठ पैने बाणोंसे घायल कर दिया॥४६½॥

अथापरान् महाराज सूतपुत्रः प्रतापवान् ॥ ४७ ॥
जघान बहुसाहस्रान् योधान् युद्धविशारदान् ।

महाराज ! तदनन्तर प्रतापी सूतपुत्रने कई हजार युद्ध-कुशल योद्धाओंको मार डाला ॥ ४७½ ॥

जिष्णुं च जिष्णुकर्माणं देवापिं भद्रमेव च ॥ ४८ ॥
दण्डं च राजन् समरे चित्रं चित्रायुधं हरिम् ।
सिंहकेतुं रोचमानं शलभं च महारथम् ॥ ४९ ॥
निजघान सुसंक्रुद्धश्चेदीनां च महारथान् ।

राजन् ! तत्पश्चात् क्रोधमें भरे हुए कर्णने समराङ्गणमें जिष्णु, जिष्णुकर्मा, देवापि, भद्र, दण्ड, चित्र, चित्रायुध, हरि, सिंहकेतु, रोचमान तथा महारथी शलभ—इन चेदिदेशीय महारथियोंका संहार कर डाला ॥ ४८-४९½ ॥

तेषामाददतः प्राणानासीदाधिरथेर्वपुः ॥ ५० ॥
शोणिताभ्युक्षिताङ्गस्य रुद्रस्येवोर्जितं महत् ।

इन वीरोंके प्राण लेते समय रक्तसे भीगे अङ्गोंवाले सूतपुत्र कर्णका शरीर प्राणियोंका संहार करनेवाले भगवान् रुद्रके विशाल शरीरकी भाँति देदीप्यमान हो रहा था॥५०½॥

तत्र भारत कर्णेन मातङ्गास्ताडिताः शरैः ॥ ५१ ॥
सर्वतोऽभ्यद्रवन् भीताः कुर्वन्तो महदाकुलम् ।

भारत ! वहाँ कर्णके बाणोंसे घायल हुए हाथी विशाल सेनाको व्याकुल करते हुए भयभीत हो चारों ओर भागने लगे॥

निपेतुरुर्व्यां समरे कर्णसायकताडिताः ॥ ५२ ॥
कुर्वन्तो विविधान् नादान् वज्रनुन्ना इवाचलाः ।

कर्णके बाणोंसे आहत होकर समराङ्गणमें नाना प्रकारके आर्तनाद करते हुए वज्रके मारे हुए पर्वतोंके समान धराशायी हो रहे थे ॥ ५२½ ॥

गजवाजिमनुष्यैश्च निपतद्भिः समन्ततः ॥ ५३ ॥
रथैश्चाधिरथेर्मार्गे समास्तीर्यत मेदिनी ।

सूतपुत्र कर्णके रथके मार्गमें सब ओर गिरते हुए हाथियों, घोड़ों, मनुष्यों और रथोंके द्वारा वहाँ सारी पृथ्वी पट गयी थी॥

नैवं भीष्मो न च द्रोणो नान्ये युधि च तावकाः ॥ ५४ ॥
चक्रुः स्म तादृशं कर्म यादृशं वै कृतं रणे ।

कर्णने उस समय रणभूमिमें जैसा पराक्रम किया था, वैसा न तो भीष्म, न द्रोणाचार्य और न आपके दूसरे कोई योद्धा ही कर सके थे ॥ ५४½ ॥

---

१. संशप्तकोंके सेनापति त्रिगर्तराज सुशर्मा कौरवोंके पक्षमें था। यह सुशर्मा उससे भिन्न पाण्डव-पक्षका योद्धा था।

सूतपुत्रेण नागेषु हयेषु च रथेषु च ॥ ५५ ॥
नरेषु च महाराज कृतं स्म कदनं महत् ।

महाराज ! सूतपुत्रने हाथियों, घोड़ों, रथों और पैदल मनुष्योंके दलमें घुसकर बड़ा भारी संहार मचा दिया था ॥

मृगमध्ये यथा सिंहो दृश्यते निर्भयश्चरन् ॥ ५६ ॥
पञ्चालानां तथा मध्ये कर्णोऽचरदभीतवत् ।

जैसे सिंह मृगोंके झुंडमें निर्भय विचरता दिखायी देता है, उसी प्रकार कर्ण पाञ्चालोंकी सेनामें निर्भीकके समान विचरण करता था ॥ ५६½ ॥

यथा मृगगणांस्त्रस्तान् सिंहो द्रावयते दिशः ॥ ५७ ॥
पञ्चालानां रथव्रातान् कर्णो व्यद्रावयत् तथा ।

जैसे भयभीत हुए मृगसमूहोंको सिंह सब ओर खदेड़ता है, उसी प्रकार कर्ण पाञ्चालोंके रथसमूहोंको भगा रहा था ॥

सिंहास्यं च यथा प्राप्य न जीवन्ति मृगाः क्वचित् ॥ ५८ ॥
तथा कर्णमनुप्राप्य न जिजीवुर्महारथाः ।

जैसे मृग सिंहके मुखके समीप पहुँचकर जीवित नहीं बचते, उसी प्रकार पाञ्चाल महारथी कर्णके निकट पहुँचकर जीवित नहीं रह पाते थे ॥ ५८½ ॥

वैश्वानरं यथा प्राप्य प्रतिदह्यन्ति वै जनाः ॥ ५९ ॥
कर्णाग्निना रणे तद्वद् दग्धा भारत सृञ्जयाः ।

भरतनन्दन ! जैसे जलती आगमें पड़ जानेपर सभी मनुष्य दग्ध हो जाते हैं, उसी प्रकार सृंजय-सैनिक रणभूमिमें कर्णरूपी अग्निसे जलकर भस्म हो गये ॥ ५९½ ॥

कर्णेन चेदिकैकेयपाञ्चालेषु च भारत ॥ ६० ॥
विश्राव्य नाम निहता बहवः शूरसम्मताः ।

भारत ! कर्णने चेदि, केकय और पाञ्चाल योद्धाओंमेंसे बहुत-से शूरसम्मत रथियोंको नाम सुनाकर मार डाला ॥

मम चासीन्मती राजन् दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥ ६१ ॥
नैकोऽप्याधिरथेर्जीवन् पाञ्चाल्यो मोक्ष्यते युधि ।
पञ्चालान् व्यधमत् संख्ये सूतपुत्रः पुनः पुनः ॥ ६२ ॥

राजन् ! कर्णका पराक्रम देखकर मेरे मनमें यही निश्चय हुआ कि युद्धस्थलमें एक भी पाञ्चाल योद्धा सूतपुत्रके हाथसे जीवित नहीं छूट सकता; क्योंकि सूतपुत्र बारंबार युद्धस्थलमें पाञ्चालोंका ही विनाश कर रहा था ॥ ६१-६२ ॥

पञ्चालानथ निघ्नन्तं कर्णं दृष्ट्वा महारणे ।
अभ्यधावत् सुसंक्रुद्धो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ६३ ॥

उस महासमरमें कर्णको पाञ्चालोंका संहार करते देख धर्मराज युधिष्ठिरने अत्यन्त कुपित होकर उसपर धावा बोल दिया ॥ ६३ ॥

धृष्टद्युम्नश्च राधेयं द्रौपदेयाश्च मारिष ।
परिवव्रुरमित्रघ्नं शतशश्चापरे जनाः ॥ ६४ ॥

आर्य ! धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पुत्र तथा दूसरे सैकड़ों मनुष्य शत्रुनाशक राधापुत्र कर्णको चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये ॥

शिखण्डी सहदेवश्च नकुलो नाकुलिस्तथा ।
जनमेजयः शिनेर्नप्ता बहवश्च प्रभद्रकाः ॥ ६५ ॥
एते पुरोगमा भूत्वा धृष्टद्युम्नस्य संयुगे ।
कर्णमस्यन्तमिष्वस्त्रैर्विचेरुरमितौजसः ॥ ६६ ॥

शिखण्डी, सहदेव, नकुल, शतानीक, जनमेजय, सात्यकि तथा बहुत-से प्रभद्रकगण—ये सभी अमिततेजस्वी वीर युद्धस्थलमें धृष्टद्युम्नके आगे होकर बाण बरसानेवाले कर्णपर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करते हुए विचरने लगे ॥

तांस्तत्राधिरथिः संख्ये चेदिपाञ्चालपाण्डवान् ।
एको बहूनभ्यपतद् गरुत्मान् पन्नगानिव ॥ ६७ ॥

सूतपुत्रने समराङ्गणमें अकेला होनेपर भी जैसे गरुड़ अनेक सर्पोंपर एक साथ आक्रमण करते हैं, उसी प्रकार बहुसंख्यक चेदि, पाञ्चाल और पाण्डवोंपर आक्रमण किया ॥

तैः कर्णस्याभवद् युद्धं घोररूपं विशाम्पते ।
तादृग् यादृक् पुरा वृत्तं देवानां दानवैः सह ॥ ६८ ॥

प्रजानाथ ! उन सबके साथ कर्णका वैसा ही भयानक युद्ध हुआ, जैसा पूर्वकालमें देवताओंका दानवोंके साथ हुआ था ॥ ६८ ॥

तान् समेतान् महेष्वासाञ्शरवर्षौघवर्षिणः ।
एको व्यधमदव्यग्रस्तमांसीव दिवाकरः ॥ ६९ ॥

जैसे एक ही सूर्य सम्पूर्ण अन्धकार-राशिको नष्ट कर देते हैं, उसी प्रकार एक ही कर्णने ढेर-के-ढेर बाण-वर्षा करनेवाले उन समस्त महाधनुर्धरोंको बिना किसी व्यग्रताके नष्ट कर दिया ॥

भीमसेनस्तु संसक्ते राधेये पाण्डवैः सह ।
सर्वतोऽभ्यहनत् क्रुद्धो यमदण्डनिभैः शरैः ।
वाह्लीकान् केकयान् मत्स्यान् वासात्यान् मद्रसैन्धवान् ।
एकः संख्ये महेष्वासो योधयन् बह्वशोभत ।

जिस समय राधापुत्र कर्ण पाण्डवोंके साथ उलझा हुआ था, उसी समय महाधनुर्धर भीमसेन क्रोधमें भरकर यमदण्डके समान भयंकर बाणोंद्वारा बाह्लीक, केकय, मत्स्य, वसातीय, मद्र तथा सिंधुदेशीय सैनिकोंका सब ओरसे संहार कर रहे थे। वे युद्धभूमिमें अकेले ही इन सबके साथ युद्ध करते हुए बड़ी शोभा पा रहे थे ॥ ७०½ ॥

तत्र मर्मसु भीमेन नाराचैस्ताडिता गजाः ॥ ७१ ॥
प्रपतन्तो हतारोहाः कम्पयन्ति स्म मेदिनीम् ।

वहाँ भीमसेनके नाराचोंद्वारा मर्मस्थानोंमें घायल हुए हाथी सवारोंसहित धराशायी हो इस पृथ्वीको कम्पित कर देते थे ॥

वाजिनश्च हतारोहाः पत्तयश्च गतासवः ॥ ७२ ॥
शेरते युधि निर्भिन्ना वमन्तो रुधिरं बहु ।

जिनके सवार मारे गये थे, वे घोड़े और पैदल सैनिक भी युद्धस्थलमें छिन्न-भिन्न हो मुँहसे बहुत-सा रक्त वमन करते हुए प्राणशून्य होकर पड़े थे ॥ ७२½ ॥

सहस्रशश्च रथिनः पातिताः पतितायुधाः ॥ ७३ ॥
ते क्षताः समदृश्यन्त भीमभीता गतासवः ।

सहस्रों रथी रथसे नीचे गिरा दिये गये थे। उनके अस्त्र-शस्त्र भी गिर चुके थे। वे सब-के-सब क्षत-विक्षत हो भीमसेनके भयसे भीत एवं प्राणहीन दिखायी दे रहे थे॥ ७३½ ॥

रथिभिः सादिभिः सूतैः पादातैर्वाजिभिर्गजैः ॥ ७४ ॥
भीमसेनशरैश्छिन्नैराच्छन्ना वसुधाभवत्।

भीमसेनके बाणोंसे छिन्न-भिन्न हुए रथियों, घुड़सवारों, सारथियों, पैदलों, घोड़ों और हाथियोंकी लाशोंसे वहाँकी धरती आच्छादित हो गयी थी॥ ७४½ ॥

तत् स्तम्भितमिवातिष्ठद् भीमसेनभयार्दितम् ॥ ७५ ॥
दुर्योधनबलं सर्वं निरुत्साहं कृतव्रणम्।
निश्चेष्टं तुमुलं दीनं बभौ तस्मिन् महारणे ॥ ७६ ॥

उस महासमरमें दुर्योधनकी सारी सेना भीमसेनके भयसे पीड़ित हो स्तब्ध-सी खड़ी थी। उत्साह-शून्य, घायल, निश्चेष्ट, भयंकर और अत्यन्त दीन-सी प्रतीत होती थी॥ ७५-७६ ॥

प्रसन्नसलिले काले यथा स्यात् सागरो नृप।
तद्वत् तव बलं तद् वै निश्चलं समवस्थितम् ॥ ७७ ॥

नरेश्वर ! जिस समय ज्वार न उठनेसे जल स्वच्छ एवं शान्त हो, उस समय जैसे समुद्र निश्चल दिखायी देता है, उसी प्रकार आपकी सारी सेना निश्चेष्ट खड़ी थी॥ ७७ ॥

मन्युवीर्यबलोपेतं दर्पात् प्रत्यवरोपितम्।
अभवत् तव पुत्रस्य तत् सैन्यं निष्प्रभं तदा ॥ ७८ ॥

यद्यपि आपके सैनिकोंमें क्रोध, पराक्रम और बलकी कमी नहीं थी तो भी उनका घमंड चूर-चूर हो गया था; इसलिये उस समय आपके पुत्रकी वह सारी सेना तेजोहीन-सी प्रतीत होती थी॥ ७८ ॥

तद् बलं भरतश्रेष्ठ वध्यमानं परस्परम्।
रुधिरौघपरिक्लिन्नं रुधिरार्द्रं बभूव ह ॥ ७९ ॥
जगाम भरतश्रेष्ठ वध्यमानं परस्परम्।

भरतश्रेष्ठ ! परस्पर मार खाती हुई वह सेना रक्तके प्रवाहमें डूबकर खूनसे लथपथ हो गयी थी और एक दूसरेकी चोट खाकर विनाशको प्राप्त हो रही थी॥ ७९½ ॥

सूतपुत्रो रणे क्रुद्धः पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ ८० ॥
भीमसेनः कुरूंश्चापि द्रावयन्तौ विरेजतुः।

सूतपुत्र कर्ण रणभूमिमें कुपित हो पाण्डवसेनाको और भीमसेन कौरव-सैनिकोंको खदेड़ते हुए बड़ी शोभा पा रहे थे॥

वर्तमाने तथा रौद्रे संग्रामेऽद्भुतदर्शने ॥ ८१ ॥
निहत्य पृतनामध्ये संशप्तकगणान् बहून्।
अर्जुनो जयतां श्रेष्ठो वासुदेवमथाब्रवीत् ॥ ८२ ॥

जब इस प्रकार अद्भुत दिखायी देनेवाला वह भयंकर संग्राम चल ही रहा था, उस समय दूसरी ओर विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ अर्जुन सेनाके मध्यभागमें बहुत-से संशप्तकोंका संहार करके भगवान् श्रीकृष्णसे बोले—॥ ८१-८२ ॥

प्रभग्नं बलमेतद्धि योत्स्यमानं जनार्दन।
एते द्रवन्ति सगणाः संशप्तकमहारथाः ॥ ८३ ॥
अपारयन्तो मद्बाणान् सिंहशब्दं मृगा इव।

'जनार्दन ! युद्ध करती हुई इस संशप्तक-सेनाके पाँव उखड़ गये हैं। ये संशप्तक महारथी अपने-अपने दलके साथ भागे जा रहे हैं। जैसे मृग सिंहकी गर्जना सुनकर हतोत्साह हो जाते हैं, उसी प्रकार ये लोग मेरे बाणोंकी चोट सहन करनेमें असमर्थ हो गये हैं॥ ८३½ ॥

दीर्यते च महत् सैन्यं सृञ्जयानां महारणे ॥ ८४ ॥
हस्तिकक्षो ह्यसौ कृष्ण केतुः कर्णस्य धीमतः।
दृश्यते राजसैन्यस्य मध्ये विचरतो मुदा ॥ ८५ ॥

'उधर वह सृंजयोंकी विशाल सेना भी महासमरमें विदीर्ण हो रही है। श्रीकृष्ण ! वह हाथीकी रस्सीके चिह्नसे युक्त बुद्धिमान् कर्णका ध्वज दिखायी दे रहा है। वह राजाओंकी सेनाके बीच सानन्द विचरण कर रहा है॥ ८४-८५ ॥

न च कर्णं रणे शक्ता जेतुमन्ये महारथाः।
जानीते हि भवान् कर्णं वीर्यवन्तं पराक्रमे ॥ ८६ ॥

'जनार्दन ! आप तो जानते ही हैं कि कर्ण कितना बलवान् तथा पराक्रम प्रकट करनेमें समर्थ है। अतः रणभूमिमें दूसरे महारथी उसे जीत नहीं सकते हैं॥ ८६ ॥

तत्र याहि यतः कर्णो द्रावयत्येष नो बलम्।
वर्जयित्वा रणे याहि सूतपुत्रं महारथम् ॥ ८७ ॥
एतन्मे रोचते कृष्ण यथा वा तव रोचते।

'श्रीकृष्ण ! जहाँ यह कर्ण हमारी सेनाको खदेड़ रहा है, वहीं चलिये। रणभूमिमें संशप्तकोंको छोड़कर अब महारथी सूतपुत्रके ही पास रथ ले चलिये। 'मुझे यही ठीक जान पड़ता है अथवा आपको जैसा जँचे, वैसा कीजिये'॥ ८७½ ॥

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य गोविन्दः प्रहसन्निव ॥ ८८ ॥
अब्रवीदर्जुनं तूर्णं कौरवाञ्जहि पाण्डव।

अर्जुनकी यह बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने उनसे हँसते हुए-से कहा—'पाण्डुनन्दन ! तुम शीघ्र ही कौरव-सैनिकोंका संहार करो'॥ ८८½ ॥

ततस्तव महासैन्यं गोविन्दप्रेरिता हयाः ॥ ८९ ॥
हंसवर्णाः प्रविविशुर्वहन्तः कृष्णपाण्डवौ।

राजन् ! तदनन्तर श्रीकृष्णके द्वारा हाँके गये हंसके समान श्वेत रंगवाले घोड़े श्रीकृष्ण और अर्जुनको लेकर आपकी विशाल सेनामें घुस गये॥ ८९½ ॥

केशवप्रेरितैरश्वैः श्वेतैः काञ्चनभूषणैः ॥ ९० ॥
प्रविशद्भिस्तव बलं चतुर्दिशमभिद्यत।



अर्जुनके द्वारा संशप्तकोंका संहार

श्रीकृष्णद्वारा संचालित हुए उन सुवर्णभूषित श्वेत अश्वों-के प्रवेश करते ही आपकी सेनामें चारों ओर भगदड़ मच गयी ॥ ९०½ ॥

मेघस्तनितनिर्ह्रादः स रथो वानरध्वजः ॥ ९१ ॥
चलत्पताकस्तां सेनां विमानं द्यामिवाविशत्।

जैसे कोई विमान स्वर्गलोकमें प्रवेश कर रहा हो, उसी प्रकार चञ्चल पताकाओंसे युक्त वह कपिध्वज रथ मेघोंकी गर्जनाके समान गम्भीर घोष करता हुआ उस सेनामें जा घुसा ॥

तौ विदार्य महासेनां प्रविष्टौ केशवार्जुनौ ॥ ९२ ॥
क्रुद्धौ संरम्भरक्ताक्षौ व्यभ्राजेतां महाद्युती।

उस विशाल सेनाको विदीर्ण करके उसके भीतर प्रविष्ट हुए वे दोनों श्रीकृष्ण और अर्जुन अपने महान् तेजसे प्रकाशित हो रहे थे। उनके मनमें शत्रुओंके प्रति क्रोध भरा हुआ था और उनकी आँखें रोषसे लाल हो रही थीं ॥ ९२½ ॥

युद्धशौण्डौ समाहूतावागतौ तौ रणाध्वरम् ॥ ९३ ॥
यज्वभिर्विधिनाहूतौ मखे देवाविवाश्विनौ।

जैसे यज्ञमें ऋत्विजोंद्वारा विधिपूर्वक आवाहन किये जानेपर दोनों अश्विनीकुमार नामक देवता पदार्पण करते हैं, उसी प्रकार युद्धनिपुण वे श्रीकृष्ण और अर्जुन भी मानो आह्वान किये जानेपर उस रणयज्ञमें पधारे थे ॥ ९३½ ॥

क्रुद्धौ तौ तु नरव्याघ्रौ वेगवन्तौ बभूवतुः ॥ ९४ ॥
तलशब्देन रुषितौ यथा नागौ महावने।

जैसे विशाल वनमें तालीकी आवाजसे कुपित हुए दो हाथी दौड़े आ रहे हों, उसी प्रकार क्रोधमें भरे हुए वे दोनों पुरुषसिंह बड़े वेगसे बढ़े आ रहे थे ॥ ९४½ ॥

विगाह्य तु रथानीकमश्वसंघांश्च फाल्गुनः ॥ ९५ ॥
व्यचरत् पृतनामध्ये पाशहस्त इवान्तकः।

अर्जुन रथसेना और घुड़सवारोंके समूहमें घुसकर पाशधारी यमराजके समान कौरव-सेनाके मध्यभागमें विचरने लगे ॥

तं दृष्ट्वा युधि विक्रान्तं सेनायां तव भारत ॥ ९६ ॥
संशप्तकगणान् भूयः पुत्रस्ते समचूचुदत्।

भारत ! युद्धमें पराक्रम प्रकट करनेवाले अर्जुनको आपकी सेनामें घुसा हुआ देख आपके पुत्र दुर्योधनने पुनः संशप्तकगणोंको उनपर आक्रमण करनेके लिये प्रेरित किया ॥

ततो रथसहस्रेण द्विरदानां त्रिभिः शतैः ॥ ९७ ॥
चतुर्दशसहस्रैस्तु तुरगाणां महाहवे।
द्वाभ्यां शतसहस्राभ्यां पदातीनां च धन्विनाम् ॥ ९८ ॥
शूराणांलब्धलक्ष्याणां विदितानां समन्ततः।
अभ्यवर्तन्त कौन्तेयं छादयन्तो महारथाः ॥ ९९ ॥
शरवर्षैर्महाराज सर्वतः पाण्डुनन्दनम्।

महाराज ! तब एक हजार रथ, तीन सौ हाथी, चौदह हजार घोड़े और लक्ष्य वेधनेमें निपुण, सर्वत्र विख्यात एवं शौर्यसम्पन्न दो लाख पैदल सैनिक साथ लेकर संशप्तक महारथी कुन्तीकुमार पाण्डुनन्दन अर्जुनको अपने बाणोंकी वर्षासे आच्छादित करते हुए उनपर चढ़ आये ॥ ९७–९९½ ॥

स च्छाद्यमानः समरे शरैः परबलार्दनः ॥ १०० ॥
दर्शयन् रौद्रमात्मानं पाशहस्त इवान्तकः।
निघ्नन् संशप्तकान् पार्थः प्रेक्षणीयतरोऽभवत् ॥ १०१ ॥

उस समय समराङ्गणमें उनके बाणोंसे आच्छादित होते हुए शत्रुसैन्यसंहारक कुन्तीकुमार अर्जुन पाशधारी यमराजके समान अपना भयंकर रूप दिखाते और संशप्तकोंका वध करते हुए अत्यन्त दर्शनीय हो रहे थे ॥ १००-१०१ ॥

ततो विद्युत्प्रभैर्बाणैः कार्तस्वरविभूषितैः।
निरन्तरमिवाकाशमासीच्छन्नं किरीटिना ॥ १०२ ॥

तदनन्तर किरीटधारी अर्जुनके चलाये हुए विद्युत्के समान प्रकाशमान सुवर्णभूषित बाणोंद्वारा आच्छादित हो आकाश ठसाठस भर गया ॥ १०२ ॥

किरीटिभुजनिर्मुक्तैः सम्पतद्भिर्महाशरैः।
समाच्छन्नं बभौ सर्वं काद्रवेयैरिव प्रभो ॥ १०३ ॥

प्रभो ! किरीटधारी अर्जुनकी भुजाओंसे छूटकर सब ओर गिरनेवाले बड़े-बड़े बाणोंसे आवृत होकर वहाँका सारा प्रदेश सर्पोंसे व्याप्त-सा प्रतीत हो रहा था ॥ १०३ ॥

रुक्मपुङ्खान् प्रसन्नाग्राञ्छरान् संनतपर्वणः।
अवासृजदमेयात्मा दिक्षु सर्वासु पाण्डवः ॥ १०४ ॥

अमेय आत्मबलसे सम्पन्न पाण्डुनन्दन अर्जुन सम्पूर्ण दिशाओंमें सुवर्णमय पङ्ख, स्वच्छ धार और झुकी हुई गाँठ-वाले बाणोंकी वर्षा कर रहे थे ॥ १०४ ॥

मही वियद् दिशः सर्वाः समुद्रा गिरयोऽपि वा।
स्फुटन्तीति जना जज्ञुः पार्थस्य तलनिःस्वनात् ॥ १०५ ॥

वहाँ सब लोग यही समझने लगे कि 'अर्जुनके तल-शब्द (हथेलीकी आवाज) से पृथ्वी, आकाश, सम्पूर्ण दिशाएँ समुद्र और पर्वत भी फटे जा रहे हैं ॥ १०५ ॥

हत्वा दशसहस्राणि पार्थिवानां महारथः।
संशप्तकानां कौन्तेयः प्रत्यक्षं त्वरितोऽभ्ययात् ॥ १०६ ॥

महारथी कुन्तीकुमार अर्जुन सबके देखते-देखते दस हजार संशप्तक नरेशोंका वध करके तुरंत आगे बढ़ गये ॥

प्रत्यक्षं च समासाद्य पार्थः काम्बोजरक्षितम्।
प्रममाथ बलं बाणैर्दानवानिव वासवः ॥ १०७ ॥

जैसे इन्द्रने दानवोंका विनाश किया था, उसी प्रकार अर्जुनने हमारी आँखोंके सामने काम्बोजराजके द्वारा सुरक्षित सेनाके पास पहुँचकर अपने बाणोंद्वारा उसका संहार कर डाला ॥

प्रचिच्छेदाशु भल्लेन द्विषतामाततायिनाम्।
शस्त्रं पाणिं तथा बाहुं तथापि च शिरांस्युत ॥ १०८ ॥

वे अपने भल्लके द्वारा आततायी शत्रुओंके शस्त्र, हाथ,

भुजा तथा मस्तकोंको बड़ी फुर्तीसे काट रहे थे ॥ १०८ ॥

अङ्गाङ्गावयवैश्छिन्नैर्व्यायुधास्तेऽपतन् भुवि।
विष्वग्वाताभिसम्भग्ना बहुशाखा इव द्रुमाः ॥१०९॥

जैसे सब ओरसे उठी हुई आँधीके उखाड़े हुए अनेक शाखाओंवाले वृक्ष धराशायी हो जाते हैं, उसी प्रकार अपने शरीरका एक-एक अवयव कट जानेसे वे शस्त्रहीन शत्रु भूतलपर गिर पड़ते थे ॥ १०९ ॥

हस्त्यश्वरथपत्तीनां व्रातान् निघ्नन्तमर्जुनम्।
सुदक्षिणादवरजः शरवृष्ट्याभ्यवीवृषत् ॥११०॥

तब हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंके समूहोंका संहार करनेवाले अर्जुनपर काम्बोजराज सुदक्षिणका छोटा भाई अपने बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥११०॥

तस्यास्यतोऽर्धचन्द्राभ्यां बाहू परिघसंनिभौ ।
पूर्णचन्द्राभवक्त्रं च क्षुरेणाभ्यहरच्छिरः ॥१११॥

उस समय अर्जुनने बाण-वर्षा करनेवाले उस वीरकी परिघके समान मोटी और सुदृढ़ भुजाओंको दो अर्धचन्द्राकार बाणोंसे काट डाला और एक छुरेके द्वारा पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले उसके मस्तकको भी धड़से अलग कर दिया ॥ १११ ॥

स पपात ततो वाहात् सुलोहितपरिस्रवः ।
मनःशिलागिरेः शृङ्गं वज्रेणेवावदारितम् ॥११२॥

फिर तो वह रक्तका झरना-सा बहाता हुआ अपने वाहनसे नीचे गिर पड़ा, मानो मैनसिलके पहाड़का शिखर वज्रसे विदीर्ण होकर भूतलपर आ गिरा हो ॥ ११२ ॥

सुदक्षिणादवरजं काम्बोजं ददृशुर्हतम् ।
प्रांशुं कमलपत्राक्षमत्यर्थं प्रियदर्शनम् ॥११३॥
काञ्चनस्तम्भसदृशं भिन्नं हेमगिरिं यथा ।

उस समय सब लोगोंने देखा कि सुदक्षिणका छोटा भाई काम्बोजदेशीय वीर जो देखनेमें अत्यन्त प्रिय, कमल-दलके समान नेत्रोंसे सुशोभित तथा सोनेके खम्भेके समान ऊँचा कदका था, मारा जाकर विदीर्ण हुए सुवर्णमय पर्वतके समान धरतीपर पड़ा है ॥ ११३½ ॥

ततोऽभवत् पुनर्युद्धं घोरमत्यर्थमद्भुतम् ॥११४॥
नानावस्थाश्च योधानां बभूवुस्तत्र युद्ध्यताम्।

तदनन्तर पुनः अत्यन्त घोर एवं अद्भुत युद्ध होने लगा। वहाँ युद्ध करते हुए योद्धाओंकी विभिन्न अवस्थाएँ प्रकट होने लगीं ॥ ११४½ ॥

एकेषुनिहतैरश्वैः काम्बोजैर्यवनैः शकैः ॥११५॥
शोणिताक्तैस्तदा रक्तं सर्वमासीद् विशाम्पते ।

प्रजानाथ ! एक-एक बाणसे मारे गये रक्तरंजित काबुली घोड़ों, यवनों और शकोंके खूनसे वह सारा युद्धस्थल लाल हो गया था ॥ ११५½ ॥

रथैर्हताश्वसूतैश्च हतारोहैश्च वाजिभिः ॥११६॥
द्विरदैश्च हतारोहैर्महामात्रैर्हतद्विपैः ।
अन्योन्येन महाराज कृतो घोरो जनक्षयः ॥११७॥

रथोंके घोड़े और सारथि, घोड़ोंके सवार, हाथियोंके आरोही, महावत और स्वयं हाथी भी मारे गये थे। महाराज ! इन सबने परस्पर प्रहार करके घोर जनसंहार मचा दिया था॥

तस्मिन् प्रपक्षे पक्षे च निहते सव्यसाचिना ।
अर्जुनं जयतां श्रेष्ठं त्वरितो द्रौणिरभ्ययात् ॥११८॥
विधुन्वानो महच्चापं कार्तस्वरविभूषितम् ।
आददानः शरान् घोरान् स्वरश्मीनिव भास्करः॥११९॥

उस युद्धमें जब सव्यसाची अर्जुनने शत्रुओंके पक्ष और प्रपक्ष दोनोंको मार गिराया, तब द्रोणपुत्र अश्वत्थामा अपने सुवर्णभूषित विशाल धनुषको हिलाता और अपनी किरणोंको धारण करनेवाले सूर्यदेवके समान भयंकर बाण हाथमें लेता हुआ तुरंत विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ अर्जुनके सामने आ पहुँचा ॥ ११८-११९ ॥

क्रोधामर्षविवृत्तास्यो लोहिताक्षो बभौ बली ।
अन्तकाले यथा क्रुद्धो मृत्युः किङ्करदण्डभृत् ॥१२०॥

उस समय क्रोध और अमर्षसे उसका मुँह खुला हुआ था, नेत्र रक्तवर्ण हो रहे थे तथा वह बलवान् अश्वत्थामा अन्तकालमें किङ्कर नामक दण्ड धारण करनेवाले कुपित यमराजके समान जान पड़ता था ॥ १२० ॥

ततः प्रासृजदुग्राणि शरवर्षाणि संघशः ।
तैर्विसृष्टैर्महाराज व्यद्रवत् पाण्डवी चमूः ॥१२१॥

महाराज ! तत्पश्चात् वह समूह-के-समूह भयंकर बाणोंकी वर्षा करने लगा। उसके छोड़े हुए बाणोंसे व्यथित हो पाण्डव-सेना भागने लगी ॥ १२१ ॥

स दृष्ट्वैव तु दाशार्हं स्यन्दनस्थं विशाम्पते ।
पुनः प्रासृजदुग्राणि शरवर्षाणि मारिष ॥१२२॥

माननीय प्रजानाथ ! वह रथपर बैठे हुए श्रीकृष्णकी ओर देखकर ही पुनः उनके ऊपर भयानक बाणोंकी वृष्टि करने लगा ॥ १२२ ॥

तैः पतद्भिर्महाराज द्रौणिमुक्तैः समन्ततः ।
संछादितौ रथस्थौ तावुभौ कृष्णधनंजयौ ॥१२३॥

महाराज अश्वत्थामाके हाथोंसे छूटकर सब ओर गिरनेवाले उन बाणोंसे रथपर बैठे हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों ही ढक गये ॥ १२३ ॥

ततः शरशतैस्तीक्ष्णैरश्वत्थामा प्रतापवान् ।
निश्चेष्टौ तावुभौ युद्धे चक्रे माधवपाण्डवौ ॥१२४॥

तत्पश्चात् प्रतापी अश्वत्थामाने सैकड़ों तीखे बाणोंद्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंको युद्धस्थलमें निश्चेष्ट कर दिया ॥

हाहाकृतमभूत् सर्वं स्थावरं जङ्गमं तथा ।
चराचरस्य गोप्तारौ दृष्ट्वा संछादितौ शरैः ॥१२५॥

चराचर जगत्की रक्षा करनेवाले उन दोनों वीरोंको बाणोंसे आच्छादित हुआ देख स्थावर-जङ्गम समस्त प्राणी हाहाकार कर उठे ॥ १२५ ॥

सिद्धचारणसंघाश्च सम्पेतुस्ते समन्ततः।
चिन्तयन्तो भवेदद्य लोकानां स्वस्त्यपीति च ॥१२६॥

सिद्धों और चारणोंके समुदाय सब ओरसे वहाँ आ पहुँचे और यह चिन्तन करने लगे कि 'आज सम्पूर्ण जगत्का कल्याण हो' ॥ १२६ ॥

न मया तादृशो राजन् दृष्टपूर्वः पराक्रमः।
संग्रामे यादृशो द्रौणेः कृष्णौ संछादयिष्यतः॥१२७॥

राजन्! समराङ्गणमें श्रीकृष्ण और अर्जुनको बाणोंद्वारा आच्छादित करनेवाले अश्वत्थामाका जैसा पराक्रम उस दिन देखा गया, वैसा मैंने पहले कभी नहीं देखा था ॥ १२७ ॥

द्रौणेस्तु धनुषः शब्दमहितत्रासनं रणे।
अश्रौषं बहुशो राजन् सिंहस्य निनदो यथा ॥१२८॥

महाराज! मैंने रणभूमिमें अश्वत्थामाके धनुषकी शत्रुओं-को भयभीत कर देनेवाली टंकार बारंबार सुनी, मानो किसी सिंहके दहाड़नेकी आवाज हो रही हो ॥ १२८ ॥

ज्या चास्य चरतो युद्धे सव्यदक्षिणमस्यतः।
विद्युदम्बुदमध्यस्था भ्राजमानेव साभवत् ॥१२९॥

जैसे मेघोंकी घटाके बीचमें बिजली चमकती है, उसी प्रकार युद्धमें दायें-बायें बाणवर्षापूर्वक विचरते हुए अश्वत्थामा-के धनुषकी प्रत्यञ्चा भी प्रकाशित हो रही थी ॥ १२९ ॥

स तथा क्षिप्रकारी च दृढहस्तश्च पाण्डवः।
प्रमोहं परमं गत्वा प्रेक्ष्य तं द्रोणजं ततः ॥१३०॥
विक्रमं विहतं मेन आत्मनः स महायशाः।
तस्यास्य समरे राजन् वपुरासीत् सुदुर्दृशम् ॥१३१॥

युद्धमें फुर्ती करने और दृढ़तापूर्वक हाथ चलानेवाले महायशस्वी पाण्डुनन्दन अर्जुन द्रोणकुमारकी ओर देखकर भारी मोहमें पड़ गये और अपने पराक्रमको प्रतिहत हुआ मानने लगे। राजन्! उस समराङ्गणमें अश्वत्थामाके शरीरकी ओर देखना भी अत्यन्त कठिन हो रहा था ॥ १३०-१३१ ॥

द्रौणिपाण्डवयोरेवं वर्तमाने महारणे।
वर्धमाने च राजेन्द्र द्रोणपुत्रे महाबले ॥१३२॥
हीयमाने च कौन्तेये कृष्णे रोषः समाविशत्।

राजेन्द्र! इस प्रकार अश्वत्थामा और अर्जुनमें महान् युद्ध आरम्भ होनेपर जब महाबली द्रोणपुत्र बढ़ने लगा और कुन्तीकुमार अर्जुनका पराक्रम मन्द पड़ने लगा, तब भगवान् श्रीकृष्णको बड़ा क्रोध हुआ ॥ १३२½ ॥

स रोषान्निःश्वसन् राजन् निर्दहन्निव चक्षुषा ॥१३३॥
द्रौणिं ह्यपश्यत् संग्रामे फाल्गुनं च मुहुर्मुहुः।

राजन्! वे रोषसे लंबी साँस खींचते और अपने नेत्रोंद्वारा दग्ध-सा करते हुए युद्धस्थलमें अश्वत्थामा और अर्जुन-की ओर बारंबार देखने लगे ॥ १३३½ ॥

ततः क्रुद्धोऽब्रवीत् कृष्णः पार्थं सप्रणयं तदा ॥१३४॥
अत्यद्भुतमिदं पार्थ तव पश्यामि संयुगे।
अतिशेते हि यत्र त्वां द्रोणपुत्रोऽद्य भारत ॥१३५॥

तत्पश्चात् क्रोधमें भरे हुए श्रीकृष्ण उस समय अर्जुनसे प्रेमपूर्वक बोले—'पार्थ! युद्धस्थलमें तुम्हारा यह उपेक्षायुक्त अद्भुत बर्ताव देख रहा हूँ। भारत! आज द्रोणपुत्र अश्वत्थामा तुमसे सर्वथा बढ़ता जा रहा है ॥ १३४-१३५ ॥

कच्चिद् वीर्यं यथापूर्वं भुजयोर्वा बलं तव।
कच्चित् ते गाण्डिवं हस्ते रथे तिष्ठसि चार्जुन ॥१३६॥

'अर्जुन! तुम्हारी शारीरिक शक्ति पहलेके समान ही ठीक है न? अथवा तुम्हारी भुजाओंमें पूर्ववत् बल तो है न? तुम्हारे हाथमें गाण्डीव धनुष तो है न? और तुम रथपर ही खड़े हो न? १३६ ॥

कच्चित् कुशलिनौ बाहू मुष्टिर्वा न व्यशीर्यत।
उदीर्यमाणं हि रणे पश्यामि द्रौणिमाहवे ॥१३७॥

'क्या तुम्हारी दोनों भुजाएँ सकुशल हैं? तुम्हारी मुट्ठी तो ढीली नहीं हो गयी है? अर्जुन! मैं देखता हूँ कि युद्ध-स्थलमें अश्वत्थामा तुमसे बढ़ा जा रहा है ॥ १३७ ॥

गुरुपुत्र इति ह्येनं मानयन् भरतर्षभ।
उपेक्षां कुरु मा पार्थ नायं काल उपेक्षितुम् ॥१३८॥

'भरतश्रेष्ठ! कुन्तीनन्दन! यह मेरे गुरुका पुत्र है, ऐसा मानकर तुम इसके प्रति उपेक्षा-भाव न करो। यह समय उपेक्षा करनेका नहीं है' ॥ १३८ ॥

एवमुक्तस्तु कृष्णेन गृह्य भल्लांश्चतुर्दश।
त्वरमाणस्त्वराकाले द्रौणेर्धनुरथाच्छिनत् ॥१३९॥
ध्वजं छत्रं पताकाश्च खड्गं शक्तिं गदां तथा।
जत्रुदेशे च सुभृशं वत्सदन्तैरताडयत् ॥१४०॥

भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर अर्जुनने चौदह भल्ल हाथमें लेकर शीघ्रता करनेके अवसरपर फुर्ती दिखायी और अश्वत्थामाके धनुषको काट डाला। साथ ही उसके ध्वज, छत्र, पताका, खड्ग, शक्ति और गदाके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये। तदनन्तर अश्वत्थामाके गलेकी हँसलीपर 'वत्सदन्त' नामक बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी ॥ १३९-१४० ॥

स मूर्च्छां परमां गत्वा ध्वजयष्टिं समाश्रितः।
तं विसंज्ञं महाराज शत्रुणा भृशपीडितम् ॥१४१॥
अपोवाह रणात् सूतो रक्षमाणो धनंजयात्।

महाराज! उस आघातसे भारी मूर्छामें पड़कर अश्वत्थामा ध्वजदण्डके सहारे लुढ़क गया। शत्रुसे अत्यन्त पीड़ित एवं अचेत हुए अश्वत्थामाको उसका सारथि अर्जुनसे उसकी रक्षा करता हुआ रणभूमिसे दूर हटा ले गया ॥ १४१½ ॥

एतस्मिन्नेव काले च विजयः शत्रुतापनः ॥१४२॥
व्यहनत् तावकं सैन्यं शतशोऽथ सहस्रशः ।
पश्यतस्तस्य वीरस्य तव पुत्रस्य भारत ॥१४३॥

भारत ! इसी समय शत्रुओंको संताप देनेवाले अर्जुनने आपकी सेनाके सैकड़ों और हजारों योद्धाओंको आपके वीर पुत्रके देखते-देखते मार डाला ॥ १४२-१४३ ॥

एवमेष क्षयो वृत्तस्तावकानां परैः सह ।
क्रूरो विशसनो घोरो राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥१४४॥

राजन् ! इस प्रकार आपकी कुमन्त्रणाके फलस्वरूप शत्रुओंके साथ आपके योद्धाओंका यह विनाशकारी, भयंकर एवं क्रूरतापूर्ण संग्राम हुआ ॥ १४४ ॥

संशप्तकांश्च कौन्तेयः कुरूंश्चापि वृकोदरः ।
वसुषेणश्च पञ्चालान् क्षणेन व्यधमद् रणे ॥१४५॥

उस समय रणभूमिमें कुन्तीकुमार अर्जुनने संशप्तकोंका, भीमसेनने कौरवोंका और कर्णने पाञ्चालसैनिकोंका क्षणभरमें संहार कर डाला ॥ १४५ ॥

वर्तमाने तथा रौद्रे राजन् वीरवरक्षये ।
उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः ॥१४६॥

राजन् ! जब बड़े-बड़े वीरोंका विनाश करनेवाला वह भीषण संग्राम हो रहा था, उस समय चारों ओर असंख्य कबन्ध खड़े दिखायी देते थे ॥ १४६ ॥

युधिष्ठिरोऽपि संग्रामे प्रहारैर्गाढवेदनः ।
क्रोशमात्रमपक्रम्य तस्थौ भरतसत्तम ॥१४७॥

भरतश्रेष्ठ ! संग्राममें युधिष्ठिरपर बहुत अधिक प्रहार किये गये थे, जिससे उन्हें गहरी वेदना हो रही थी । वे रणभूमिसे एक कोस दूर हटकर खड़े थे ॥ १४७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक छप्पनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

दुर्योधनका सैनिकोंको प्रोत्साहन देना और अश्वत्थामाकी प्रतिज्ञा

संजय उवाच

दुर्योधनस्ततः कर्णमुपेत्य भरतर्षभ ।
अब्रवीन्मद्रराजं च तथैवान्यांश्च पार्थिवान् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं— भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर दुर्योधन कर्णके पास जाकर मद्रराज शल्य तथा अन्य राजाओंसे बोला—।

यदृच्छयैतत् सम्प्राप्तं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः कर्ण लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥ २ ॥

'कर्ण ! यह स्वर्गका खुला हुआ द्वाररूप युद्ध बिना इच्छाके अपने आप प्राप्त हुआ है। ऐसे युद्धको सुखी क्षत्रिय-गण ही पाते हैं ॥ २ ॥

सदृशैः क्षत्रियैः शूरैः शूराणां युद्ध्यतां युधि ।
इष्टं भवति राधेय तदिदं समुपस्थितम् ॥ ३ ॥

'राधानन्दन ! अपने समान बलवाले शूरवीर क्षत्रियोंके साथ रणभूमिमें जूझनेवाले शूरवीरोंको जो अभीष्ट होता है, वही यह संग्राम हमारे सामने उपस्थित है ॥ ३ ॥

हत्वा च पाण्डवान् युद्धे स्फीतामुर्वीमवाप्स्यथ ।
निहता वा परैर्युद्धे वीरलोकमवाप्स्यथ ॥ ४ ॥

'तुम सब लोग युद्धस्थलमें पाण्डवोंका वध करके भूतल-का समृद्धिशाली राज्य प्राप्त करोगे अथवा शत्रुओंद्वारा युद्धमें मारे जाकर वीरगति पाओगे' ॥ ४ ॥

दुर्योधनस्य तच्छ्रुत्वा वचनं क्षत्रियर्षभाः ।
हृष्टा नादानुदक्रोशन् वादित्राणि च सर्वशः ॥ ५ ॥

दुर्योधनकी वह बात सुनकर क्षत्रियशिरोमणि वीर हर्षमें भरकर सिंहनाद करने और सब प्रकारके बाजे बजाने लगे ॥

ततः प्रमुदिते तस्मिन् दुर्योधनबले तदा ।
हर्षयंस्तावकान् योधान् द्रौणिर्वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥

तदनन्तर आनन्दमग्न हुई दुर्योधनकी उस सेनामें अश्वत्थामाने आपके योद्धाओंका हर्ष बढ़ाते हुए कहा—॥६॥

प्रत्यक्षं सर्वसैन्यानां भवतां चापि पश्यताम् ।
न्यस्तशस्त्रो मम पिता धृष्टद्युम्नेन पातितः ॥ ७ ॥

'समस्त सैनिकोंके सामने आपलोगोंके देखते-देखते जिन्होंने हथियार डाल दिया था, उन मेरे पिताको धृष्टद्युम्नने मार गिराया था ॥ ७ ॥

स तेनाहममर्षेण मित्रार्थे चापि पार्थिवाः ।
सत्यं वः प्रतिजानामि तद् वाक्यं मे निबोधत ॥ ८ ॥

'राजाओ ! उससे होनेवाले अमर्षके कारण तथा मित्र दुर्योधनके कार्यकी सिद्धिके लिये मैं आपलोगोंसे सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, आपलोग मेरी यह बात सुनिये ॥ ८ ॥

धृष्टद्युम्नमहत्वाहं न विमोक्ष्यामि दंशनम् ।
अनृतायां प्रतिज्ञायां नाहं स्वर्गमवाप्नुयाम् ॥ ९ ॥

'मैं धृष्टद्युम्नको मारे बिना अपना कवच नहीं उतारूँगा ।' यदि यह मेरी प्रतिज्ञा झूठी हो जाय तो मुझे स्वर्गलोककी प्राप्ति न हो ॥ ९ ॥

अर्जुनो भीमसेनश्च योधो यो रक्षिता रणे ।
धृष्टद्युम्नस्य तं संख्ये निहनिष्यामि सायकैः ॥ १० ॥

'अर्जुन और भीमसेन आदि जो योद्धा रणभूमिमें धृष्टद्युम्नकी रक्षा करेगा, उसे मैं युद्धस्थलमें अपने बाणोंद्वारा मार डालूँगा' ॥ १० ॥

एवमुक्ते ततः सर्वा सहिता भारतीचमूः।
अभ्यद्रवत कौन्तेयांस्तथा ते चापि पाण्डवाः॥ ११॥

अश्वत्थामाके ऐसा कहनेपर सारी कौरवसेना एक साथ होकर कुन्तीपुत्रोंके सैनिकोंपर टूट पड़ी तथा पाण्डवोंने भी कौरवोंपर धावा बोल दिया॥ ११॥

स संनिपातो रथयूथपानां
बभूव राजन्नतिभीमरूपः।
जनक्षयः कालयुगान्तकल्पः
प्रावर्तताग्रे कुरुसृञ्जयानाम्॥ १२॥

राजन्! रथयूथपतियोंका वह संघर्ष बड़ा भयंकर था। कौरवों और सृंजयोंके आगे प्रलयकालके समान जनसंहार आरम्भ हो गया था॥ १२॥

ततः प्रवृत्ते युधि सम्प्रहारे
भूतानि सर्वाणि सदैवतानि।
आसन् समेतानि सहाप्सरोभि-
र्दिदृक्षमाणानि नरप्रवीरान्॥ १३॥

तदनन्तर युद्धस्थलमें जब भीषण मार-काट होने लगी, उस समय देवताओं तथा अप्सराओंसहित समस्त प्राणी उन नरवीरोंको देखनेकी इच्छासे एकत्र हो गये थे॥ १३॥

दिव्यैश्च माल्यैर्विविधैश्च गन्धै-
र्दिव्यैश्च रत्नैर्विविधैर्नराग्र्यान्।
रणे स्वकर्मोद्वहतः प्रवीरा-
नवाकिरन्नप्सरसः प्रहृष्टाः॥ १४॥

रणभूमिमें अपने कर्मका ठीक-ठीक भार वहन करनेवाले मनुष्योंमें श्रेष्ठ प्रमुख वीरोंपर हर्षमें भरी हुई अप्सराएँ दिव्य हारों, भाँति-भाँतिके सुगन्धित पदार्थों एवं नाना प्रकारके दिव्य रत्नोंकी वर्षा करती थीं॥ १४॥

समीरणस्तांश्च निषेव्य गन्धान्
सिषेव सर्वानपि योधमुख्यान्।
निषेव्यमाणास्त्वनिलेन योधाः
परस्परघ्ना धरणीं निपेतुः॥ १५॥

वायु उन सुगन्धोंको ग्रहण करके समस्त श्रेष्ठ योद्धाओंकी सेवामें लग जाती थी और उस वायुसे सेवित योद्धा एक दूसरेको मारकर धराशायी हो जाते थे॥ १५॥

सा दिव्यमाल्यैरवकीर्यमाणा
सुवर्णपुङ्खैश्च शरैर्विचित्रैः।
नक्षत्रसंघैरिव चित्रिता द्यौः
क्षितिर्बभौ योधवरैर्विचित्रा॥ १६॥

दिव्य मालाओं तथा सुवर्णमय पंखवाले विचित्र बाणोंसे आच्छादित और श्रेष्ठ योद्धाओंसे विचित्र शोभाको प्राप्त हुई वह रणभूमि नक्षत्रसमूहोंसे चित्रित आकाशके समान सुशोभित हो रही थी॥ १६॥

ततोऽन्तरिक्षादपि साधुवादै-
र्वादित्रघोषैः समुदीर्यमाणः।
ज्याघोषनेमिस्वननादचित्रः
समाकुलः सोऽभवत् सम्प्रहारः॥ १७॥

तत्पश्चात् आकाशसे भी साधुवाद एवं वाद्योंकी ध्वनि आने लगी, जिससे प्रत्यञ्चाकी टंकारों और रथोंके पहियोंके घर्घर शब्दोंसे युक्त वह संग्राम अधिक कोलाहलपूर्ण हो उठा था॥ १७॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अश्वत्थामप्रतिज्ञायां सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें अश्वत्थामाकी प्रतिज्ञाविषयक सत्तावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५७॥

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अर्जुनका श्रीकृष्णसे युधिष्ठिरके पास चलनेका आग्रह तथा श्रीकृष्णका उन्हें युद्धभूमि दिखाते और वहाँका समाचार बताते हुए रथको आगे बढ़ाना

संजय उवाच

एवमेष महानासीत् संग्रामः पृथिवीक्षिताम्।
क्रुद्धेऽर्जुने तथा कर्णे भीमसेने च पाण्डवे॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! इस प्रकार अर्जुन, कर्ण एवं पाण्डुपुत्र भीमसेनके कुपित होनेपर राजाओंका वह संग्राम उत्तरोत्तर बढ़ने लगा॥ १॥

द्रोणपुत्रं पराजित्य जित्वा चान्यान् महारथान्।
अब्रवीदर्जुनो राजन् वासुदेवमिदं वचः॥ २॥

नरेश्वर! द्रोणपुत्र तथा अन्यान्य महारथियोंको हराकर और उनपर विजय पाकर अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा—॥ २॥

पश्य कृष्ण महाबाहो द्रवन्तीं पाण्डवीं चमूम्।
कर्णं पश्य च संग्रामे कालयन्तं महारथान्॥ ३॥

'महाबाहु श्रीकृष्ण! देखिये, वह पाण्डवसेना भागी जा रही है तथा कर्ण समराङ्गणमें बड़े-बड़े महारथियोंको कालके गालमें भेज रहा है॥ ३॥

न च पश्यामि दाशार्ह धर्मराजं युधिष्ठिरम्।
नापि केतुर्युधां श्रेष्ठ धर्मराजस्य दृश्यते॥ ४॥

'दाशार्ह! इस समय मुझे धर्मराज युधिष्ठिर नहीं दिखायी दे रहे हैं। योद्धाओंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण! धर्मराजके ध्वजका भी दर्शन नहीं हो रहा है॥ ४॥

त्रिभागश्चावशिष्टोऽयं दिवसस्य जनार्दन।

न च मां धार्तराष्ट्रेषु कश्चिद् युध्यति संयुगे ॥ ५ ॥

'जनार्दन ! इस सम्पूर्ण दिनके ये तीन भाग ही शेष रह गये हैं। दुर्योधनकी सेनाओंमेंसे कोई भी मेरे साथ युद्ध नहीं कर रहा है ॥ ५ ॥

तस्मात् त्वं मत्प्रियं कुर्वन् याहि यत्र युधिष्ठिरः।
दृष्ट्वा कुशलिनं युद्धे धर्मपुत्रं सहानुजम् ॥ ६ ॥
पुनर्योद्धास्मि वार्ष्णेय शत्रुभिः सह संयुगे।

'अतः आप मेरा प्रिय करनेके लिये वहीं चलिये, जहाँ राजा युधिष्ठिर हैं। वार्ष्णेय ! भाइयोंसहित धर्मपुत्र युधिष्ठिरको युद्धमें सकुशल देखकर मैं पुनः समराङ्गणमें शत्रुओंके साथ युद्ध करूँगा' ॥ ६½ ॥

ततः प्रायाद् रथेनाशु बीभत्सोर्वचनाद्धरिः ॥ ७ ॥
यतो युधिष्ठिरो राजा सृञ्जयाश्च महारथाः।

तदनन्तर अर्जुनके कथनानुसार श्रीकृष्ण तुरंत ही रथके द्वारा उसी ओर चल दिये, जहाँ राजा युधिष्ठिर और सृंजय महारथी मौजूद थे ॥ ७½ ॥

अयुध्यंस्तावकैः सार्धं मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ८ ॥
ततः संग्रामभूमिं तां वर्तमाने जनक्षये।
अवेक्षमाणो गोविन्दः सव्यसाचिनमब्रवीत् ॥ ९ ॥

वे मृत्युको ही युद्धसे निवृत्त होनेका निमित्त बनाकर आपके योद्धाओंके साथ युद्ध कर रहे थे। तदनन्तर जहाँ वह भारी जनसंहार हो रहा था, उस संग्रामभूमिको देखते हुए भगवान् श्रीकृष्ण सव्यसाची अर्जुनसे इस प्रकार बोले—॥ ८-९॥

पश्य पार्थ महारौद्रो वर्तते भरतक्षयः।
पृथिव्यां क्षत्रियाणां वै दुर्योधनकृते महान् ॥ १० ॥

'कुन्तीनन्दन ! देखो, दुर्योधनके कारण भरतवंशियोंका तथा भूमण्डलके अन्य क्षत्रियोंका महाभयंकर विनाश हो रहा है ॥ १० ॥

पश्य भारत चापानि रुक्मपृष्ठानि धन्विनाम्।
मृतानामपविद्धानि कलापांश्च महाधनान् ॥ ११ ॥

'भरतनन्दन ! देखो, मरे हुए धनुर्धरोंके ये सोनेके पृष्ठभागवाले धनुष और बहुमूल्य तरकस फेंके पड़े हैं ॥ ११॥

जातरूपमयैः पुङ्खैः शरांश्चानतपर्वणः।
तैलधौतांश्च नाराचान् निर्मुक्तान् पन्नगानिव ॥ १२ ॥

'सुवर्णमय पंखोंसे युक्त झुकी हुई गाँठवाले बाण तथा तेलमें धोये हुए नाराच केंचुल छोड़कर निकले हुए सर्पोंके समान दिखायी दे रहे हैं ॥ १२ ॥

हस्तिदन्तत्सरून् खड्गान् जातरूपपरिष्कृतान्।
वर्माणि चापविद्धानि रुक्मगर्भाणि भारत ॥ १३ ॥

'भारत ! हाथीके दाँतकी बनी हुई मूँठवाले सुवर्णजटित खड्ग तथा स्वर्णभूषित कवच भी फेंके पड़े हैं ॥ १३॥

सुवर्णविकृतान् प्रासाञ्शक्तीः कनकभूषणाः।
जाम्बूनदमयैः पट्टैर्बद्धाश्च विपुला गदाः ॥ १४ ॥

'देखो, ये सुवर्णमय प्रास, स्वर्ण-भूषित शक्तियाँ तथा सोनेके बने हुए पत्रोंसे मढ़ी हुई विशाल गदाएँ पड़ी हैं॥ १४॥

जातरूपमयीश्चर्ष्टीः पट्टिशान् हेमभूषणान्।
दण्डैः कनकचित्रैश्च विप्रविद्धान् परश्वधान् ॥ १५ ॥

'स्वर्णमयी ऋष्टि, हेमभूषित पट्टिश तथा सुवर्णजटित दण्डोंसे युक्त फरसे फेंके हुए हैं ॥ १५ ॥

अयःकुन्तांश्च पतितान् मुसलानि गुरूणि च।
शतघ्नीः पश्य चित्राश्च विपुलान् परिघांस्तथा ॥ १६ ॥

'लोहेके कुन्त (भाले), भारी मुसल, विचित्र शतघ्नियाँ और विशाल परिघ इधर-उधर पड़े हैं ॥ १६ ॥

चक्राणि चापविद्धानि तोमरांश्च महारणे।
नानाविधानि शस्त्राणि प्रगृह्य जयगृद्धिनः ॥ १७ ॥
जीवन्त इव दृश्यन्ते गतसत्त्वास्तरस्विनः।

'इस महासमरमें फेंके गये इन चक्रों और तोमरोंको भी देखो। विजयकी अभिलाषा रखनेवाले वेगशाली योद्धा नाना प्रकारके शस्त्रोंको हाथमें लिये हुए ही अपने प्राण खो बैठे हैं; तथापि जीवित-से दिखायी देते हैं ॥ १७½ ॥

गदाविमथितैर्गात्रैर्मुसलैर्भिन्नमस्तकान् ॥ १८ ॥
गजवाजिरथक्षुण्णान् पश्य योधान् सहस्रशः।

'देखो, सहस्रों योद्धाओंके शरीर गदाओंके आघातसे चूर-चूर हो रहे हैं। मुसलोंकी मारसे उनके मस्तक फट गये हैं तथा हाथी, घोड़े एवं रथोंसे वे कुचल दिये गये हैं॥ १८½॥

मनुष्यहयनागानां शरशक्त्यृष्टिपट्टिशैः ॥ १९ ॥
परिघैरायसैर्घोरैरयःकुन्तैः परश्वधैः।
शरीरैर्बहुभिश्छिन्नैः शोणितौघपरिप्लुतैः ॥ २० ॥
गतासुभिरमित्रघ्न संवृता रणभूमयः।

'शत्रुसूदन ! बाण, शक्ति, ऋष्टि, पट्टिश, लोहमय परिघ, भयंकर लोहनिर्मित कुन्त और फरसोंसे मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंके बहु-संख्यक शरीर छिन्न-भिन्न होकर खूनसे लथपथ और प्राणशून्य हो गये हैं और उनके द्वारा रणभूमि आच्छादित दिखायी देती है ॥ १९-२०½ ॥

बाहुभिश्चन्दनादिग्धैः साङ्गदैर्हेमभूषितैः ॥ २१ ॥
सतलत्रैः सकेयूरैर्भाति भारत मेदिनी।

'भारत ! चन्दनचर्चित, अङ्गदों और केयूरोंसे अलंकृत, सोनेके अन्य आभूषणोंसे विभूषित तथा दस्तानोंसे युक्त वीरोंकी कटी हुई भुजाओंसे युद्धभूमिकी अद्भुत शोभा हो रही है॥

साङ्गुलित्रैर्भुजाग्रैश्च विप्रविद्धैरलंकृतैः ॥ २२ ॥
हस्तिहस्तोपमैश्छिन्नैरूरुभिश्च तरस्विनाम्।
बद्धचूडामणिवरैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः ॥ २३ ॥
पतितैर्ऋषभाक्षाणां विराजति वसुंधरा।

'साँडके समान विशाल नेत्रोंवाले वेगशाली वीरोंके दस्तानों-

सहित आभूषण-भूषित हाथ कटकर गिरे हैं। हाथियोंके शुण्ड-दण्डोंके समान मोटी जाँघें खण्डित होकर पड़ी हैं तथा श्रेष्ठ चूड़ामणि धारण किये कुण्डल-मण्डित मस्तक भी धड़से अलग होकर पड़े हैं। इन सबके द्वारा रणभूमिकी अपूर्व शोभा हो रही है ॥ २२-२३½ ॥

कबन्धैः शोणितादिग्धैश्छिन्नगात्रशिरोधरैः ॥ २४ ॥
भूर्भाति भरतश्रेष्ठ शान्तार्चिर्भिरिवाग्निभिः।

'भरतश्रेष्ठ ! जिनकी गर्दन कट गयी है, विभिन्न अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गये हैं तथा जो खूनसे लथपथ होकर लाल दिखायी देते हैं, उन कबन्धों (धड़ों) से रणभूमि ऐसी जान पड़ती है, मानो वहाँ जगह-जगह बुझी हुई लपटोंवाले आगके अङ्गारे पड़े हों ॥ २४½ ॥

रथांश्च बहुधा भग्नान् हेमकिङ्किणिनः शुभान् ॥ २५ ॥
वाजिनश्च हतान् पश्य निष्कीर्णान्त्राञ्शराहतान्।

'देखो, जिनमें सोनेकी छोटी-छोटी घंटियाँ लगी हैं, ऐसे बहुत-से सुन्दर रथ टुकड़े-टुकड़े होकर पड़े हैं। वे बाणोंसे घायल हुए घोड़े मरे पड़े हैं और उनकी आँतें बाहर निकल आयी हैं ॥ २५½ ॥

अनुकर्षानुपासंगान् पताका विविधध्वजान् ॥ २६ ॥
रथिनां च महाशङ्खान् पाण्डुरांश्च प्रकीर्णकान्।

'अनुकर्ष, उपासङ्ग, पताका, नाना प्रकारके ध्वज तथा रथियोंके बड़े-बड़े श्वेत शङ्ख बिखरे पड़े हैं ॥ २६½ ॥

निरस्तजिह्वान् मातङ्गाञ्शयानान् पर्वतोपमान् ॥२७॥
वैजयन्तीर्विचित्राश्च हतांश्च गजवाजिनः।

'जिनकी जीभें बाहर निकल आयी हैं, ऐसे अगणित पर्वताकार हाथी धरतीपर सदाके लिये सो गये हैं। विचित्र वैजयन्ती पताकाएँ खण्डित होकर पड़ी हैं तथा हाथी और घोड़े मारे गये हैं ॥ २७½ ॥

वारणानां परिस्तोमांस्तथैवाजिनकम्बलान् ॥ २८ ॥
विपाटितविचित्रांश्च रूप्यचित्रान् कुथाङ्कुशान्।
भिन्नाश्च बहुधा घण्टा महद्भिः पतितैर्गजैः ॥ २९ ॥

'हाथियोंके विचित्र झूल, मृगचर्म और कम्बल चिथड़े-चिथड़े होकर गिरे हैं। चाँदीके तारोंसे चित्रित झूल, अङ्कुश और अनेक टुकड़ोंमें बँटे हुए बहुत-से घंटे महान् गजराजों-के साथ ही धरतीपर गिरे पड़े हैं ॥ २८-२९ ॥

वैदूर्यदण्डांश्च शुभान् पतितानङ्कुशान् भुवि।
बद्धाः सादिभुजाग्रेषु सुवर्णविकृताः कशाः ॥ ३० ॥

'जिनमें वैदूर्यमणिके डंडे लगे हुए हैं, ऐसे बहुत-से सुन्दर अङ्कुश पृथ्वीपर पड़े हैं। सवारोंके हाथोंमें सटे हुए कितने ही सुवर्णनिर्मित कोड़े कटकर गिरे हैं ॥ ३० ॥

विचित्रमणिचित्रांश्च जातरूपपरिष्कृतान्।
अश्वास्तरपरिस्तोमान् राङ्कवान् पतितान् भुवि॥ ३१ ॥

'विचित्र मणियोंसे जटित और सोनेके तारोंसे विभूषित रङ्कुमृगके चमड़ेके बने हुए, घोड़ोंकी पीठपर बिछाये जाने-वाले बहुत-से झूल भूमिपर पड़े हैं ॥ ३१ ॥

चूडामणीन् नरेन्द्राणां विचित्राः काञ्चनस्रजः।
छत्राणि चापविद्धानि चामरव्यजनानि च ॥ ३२ ॥

'नरपतियोंके मणिमय मुकुट, विचित्र स्वर्णमय हार, छत्र, चँवर और व्यजन फेंके पड़े हैं ॥ ३२ ॥

चन्द्रनक्षत्रभासैश्च वदनैश्चारुकुण्डलैः।
क्लृप्तश्मश्रुभिरत्यर्थं वीराणां समलंकृतैः ॥ ३३ ॥
वदनैः पश्य संछन्नां महीं शोणितकर्दमाम्।

'देखो, चन्द्रमा और नक्षत्रोंके समान कान्तिमान्, मनोहर कुण्डलोंसे विभूषित तथा दाढ़ी-मूँछसे युक्त वीरोंके आभूषण-भूषित मुखोंसे रणभूमि अत्यन्त आच्छादित हो गयी है और इसपर रक्तकी कीच जम गयी है ॥ ३३½ ॥

सजीवांश्चापरान् पश्य कूजमानान् समन्ततः ॥ ३४ ॥
उपास्यमानान् बहुशो न्यस्तशस्त्रैर्विशाम्पते।
ज्ञातिभिः सहितांस्तत्र रोदमानैर्मुहुर्मुहुः ॥ ३५ ॥

'प्रजापालक अर्जुन ! उन दूसरे योद्धाओंपर दृष्टिपात करो, जिनके प्राण अभीतक शेष हैं और जो चारों ओर कराह रहे हैं। उनके बहुसंख्यक कुटुम्बी जन हथियार डालकर उनके निकट आ बैठे हैं और बारंबार रो रहे हैं ॥

व्युत्क्रान्तानपरान् योधांश्छादयित्वा तरस्विनः।
पुनर्युद्धाय गच्छन्ति जयगृद्धाः प्रमन्यवः ॥ ३६ ॥

'जिनके प्राण निकल गये हैं, उन योद्धाओंको वस्त्र आदिसे ढककर विजयाभिलाषी वेगशाली वीर पुनः अत्यन्त क्रोधपूर्वक युद्धके लिये जा रहे हैं ॥ ३६ ॥

अपरे तत्र तत्रैव परिधावन्ति मानवाः।
ज्ञातिभिः पतितैः शूरैर्याच्यमानास्तथोदकम् ॥ ३७ ॥

'दूसरे बहुत-से सैनिक रणभूमिमें गिरे हुए अपने शूरवीर कुटुम्बी जनोंके पानी माँगनेपर वहीं इधर-उधर दौड़ रहे हैं ॥

जलार्थं च गताः केचिन्निष्प्राणा बहवोऽर्जुन।
संनिवृत्ताश्च ते शूरास्तान् वै दृष्ट्वा विचेतसः ॥ ३८॥
जलं त्यक्त्वा प्रधावन्ति क्रोशमानाः परस्परम्।

'अर्जुन ! कितने ही योद्धा पानी लानेके लिये गये, इसी बीचमें पानी चाहनेवाले बहुत-से वीरोंके प्राण निकल गये। वे शूरवीर जब पानी लेकर लौटे हैं, तब अपने उन सम्बन्धियोंको चेतनारहित देखकर पानीको वहीं फेंक परस्पर चीखते-चिल्लाते हुए चारों ओर दौड़ रहे हैं ॥ ३८½ ॥

जलं पीत्वा मृतान् पश्य पिबतोऽन्यांश्च मारिष॥ ३९ ॥
परित्यज्य प्रियानन्ये बान्धवान् बान्धवप्रियाः।
व्युत्क्रान्ताः समदृश्यन्त तत्र तत्र महारणे ॥ ४० ॥

'श्रेष्ठ वीर अर्जुन ! उधर देखो, कुछ लोग पानी पीकर

मर गये और कुछ लोग पीते-पीते ही अपने प्राण खो बैठे। कितने ही बान्धवजनोंके प्रेमी सैनिक अपने प्रिय बान्धवोंको छोड़कर उस महासमरमें जहाँ-तहाँ प्राण-शून्य हुए दिखायी देते हैं ॥ ३९-४० ॥

तथापरान् नरश्रेष्ठ संदष्टौष्ठपुटान् पुनः।
भ्रुकुटीकुटिलैर्वक्त्रैः प्रेक्षमाणान् समन्ततः ॥ ४१ ॥

'नरश्रेष्ठ ! उन दूसरे योद्धाओंको देखो, जो दाँतोंसे ओठ चबाते हुए टेढ़ी भौंहोंसे युक्त मुखोंद्वारा चारों ओर दृष्टिपात कर रहे हैं' ॥ ४१ ॥

एवं ब्रुवंस्तदा कृष्णो ययौ यत्र युधिष्ठिरः।
अर्जुनश्चापि नृपतेर्दर्शनार्थं महारणे ॥ ४२ ॥

इस प्रकार बातें करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन उस महासमरमें राजाका दर्शन करनेके लिये उस स्थानकी ओर चल दिये, जहाँ राजा युधिष्ठिर विद्यमान थे ॥ ४२ ॥

याहि याहीति गोविन्दं मुहुर्मुहुरचोदयत्।
तां युद्धभूमिं पार्थस्य दर्शयित्वा च माधवः ॥ ४३ ॥
त्वरमाणस्ततः कृष्णः पार्थमाह शनैरिदम्।
पश्य पाण्डव राजानमुपयातांश्च पार्थिवान् ॥ ४४ ॥

अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णसे बारंबार कहते थे, 'चलिये, चलिये'। भगवान् श्रीकृष्ण बड़ी उतावलीके साथ अर्जुनको युद्धभूमिका दर्शन कराते हुए आगे बढ़े और धीरे-धीरे उनसे इस प्रकार बोले—'पाण्डुनन्दन ! देखो, राजाके पास बहुत-से भूपाल जा पहुँचे हैं ॥ ४३-४४ ॥

कर्णं पश्य महारङ्गे ज्वलन्तमिव पावकम्।
असौ भीमो महेष्वासः संनिवृत्तो रणं प्रति ॥ ४५ ॥

'उधर दृष्टिपात करो। कर्ण युद्धके महान् रङ्गमञ्चपर प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित हो रहा है और महाधनुर्धर भीमसेन युद्धस्थलकी ओर लौट पड़े हैं ॥ ४५ ॥

तमेते विनिवर्तन्ते धृष्टद्युम्नपुरोगमाः।
पाञ्चालसृञ्जयानां च पाण्डवानां च ये मुखम् ॥ ४६ ॥

'पाञ्चालों, सृञ्जयों और पाण्डवोंके जो धृष्टद्युम्न आदि प्रमुख वीर हैं, वे भी भीमसेनके साथ ही युद्धके लिये लौट रहे हैं ॥ ४६ ॥

निवृत्तैश्च पुनः पार्थैर्भग्नं शत्रुबलं महत्।
कौरवान् द्रवतो ह्येष कर्णो रोधयतेऽर्जुन ॥ ४७ ॥

'अर्जुन! वह देखो, लौटे हुए पाण्डव योद्धाओंने शत्रुओं-की विशाल वाहिनीके पाँव उखाड़ दिये। भागते हुए कौरव-वीरोंको यह कर्ण रोक रहा है ॥ ४७ ॥

अन्तकप्रतिमो वेगे शक्रतुल्यपराक्रमः।
असौ गच्छति कौरव्य द्रौणिः शस्त्रभृतां वरः ॥ ४८ ॥

'कुरुनन्दन ! जो वेगमें यमराज और पराक्रममें इन्द्रके समान है, वह शस्त्र-धारियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामा उधर ही जा रहा है ॥ ४८ ॥

तमेव प्रद्रुतं संख्ये धृष्टद्युम्नो महारथः।
अनुप्रयाति संग्रामे हतान् पश्य च सृञ्जयान् ॥ ४९ ॥

'महारथी धृष्टद्युम्न युद्धस्थलमें बड़े वेगसे जाते हुए अश्वत्थामाका ही पीछा कर रहे हैं। वह देखो, संग्राममें बहुत-से सृंजय वीर मार डाले गये' ॥ ४९ ॥

सर्वमाह सुदुर्धर्षो वासुदेवः किरीटिने।
ततो राजन् महाघोरः प्रादुरासीन्महारणः ॥ ५० ॥

राजन् ! अत्यन्त दुर्जय वीर भगवान् श्रीकृष्णने किरीट-धारी अर्जुनसे ये सारी बातें बतायीं। तत्पश्चात् वहाँ अत्यन्त भयंकर महायुद्ध होने लगा ॥ ५० ॥

सिंहनादरवाश्चैव प्रादुरासन् समागमे।
उभयोः सेनयो राजन् मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ५१ ॥

नरेश्वर ! दोनों सेनाओंमें मृत्युको ही युद्धसे निवृत्त होनेकी अवधि नियत करके संघर्ष छिड़ गया और वीरोंके सिंहनाद होने लगे ॥ ५१ ॥

एवमेष क्षयो वृत्तः पृथिव्यां पृथिवीपते।
तावकानां परेषां च राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ ५२ ॥

पृथ्वीनाथ ! इस प्रकार इस भूतलपर आपकी और शत्रुओंकी सेनाओंका महान् संहार हुआ है। राजन् ! यह सब आपकी कुमन्त्रणाका ही फल है ॥ ५२ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि वासुदेववाक्ये अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें भगवान् श्रीकृष्णका वाक्यविषयक अट्ठावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

धृष्टद्युम्न और कर्णका युद्ध, अश्वत्थामाका धृष्टद्युम्नपर आक्रमण तथा अर्जुनके द्वारा धृष्टद्युम्नकी रक्षा और अश्वत्थामाकी पराजय

संजय उवाच

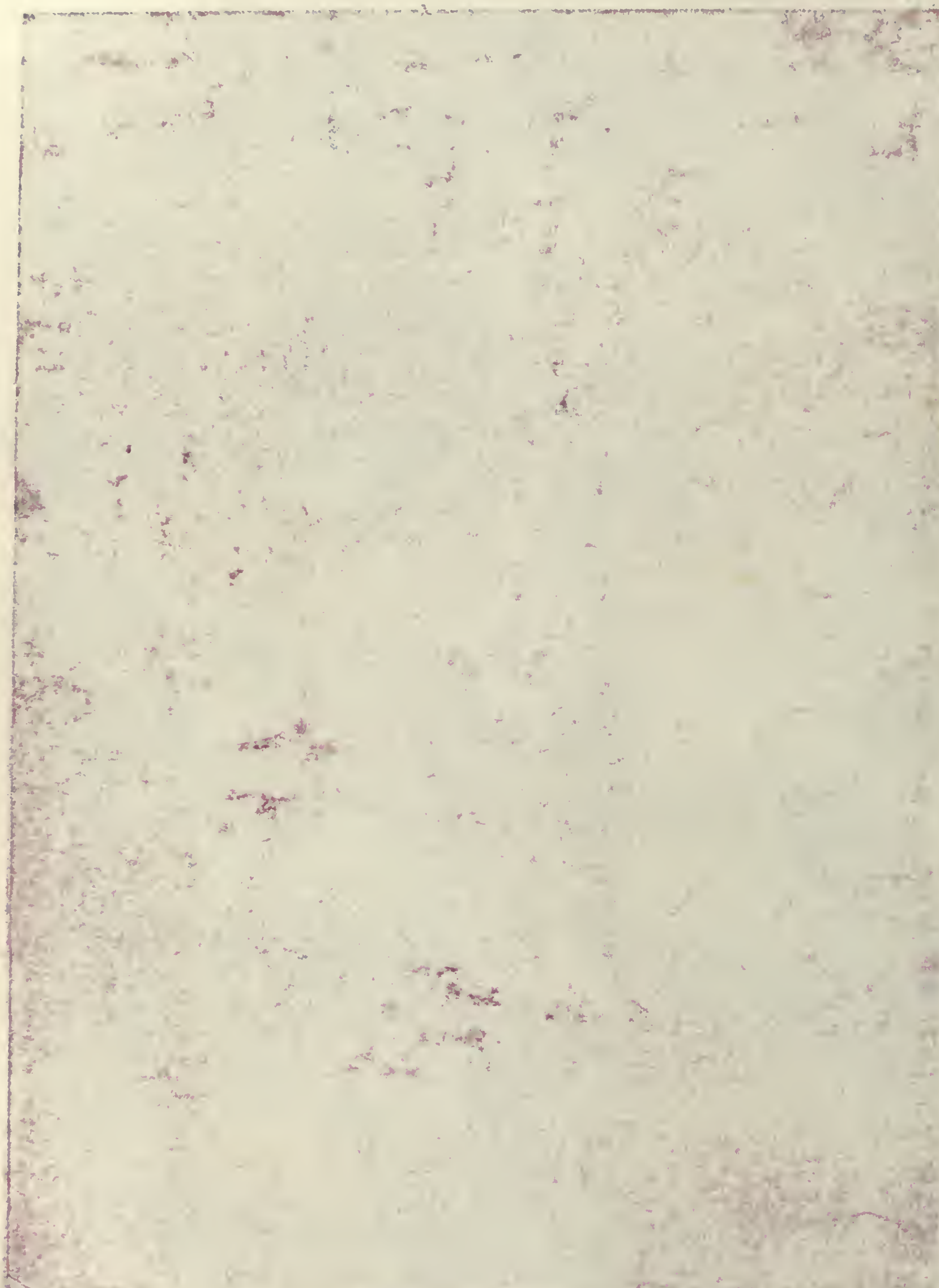
ततः पुनः समाजग्मुरभीताः कुरुसृञ्जयाः।
युधिष्ठिरमुखाः पार्थाः सूतपुत्रमुखा वयम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर पुनः कौरव और सृंजय योद्धा निर्भय होकर एक दूसरेसे भिड़ गये। एक ओर युधिष्ठिर आदि पाण्डव-दलके लोग थे और दूसरी ओर कर्ण आदि हमलोग ॥ १ ॥

ततः प्रववृते भीमः संग्रामो लोमहर्षणः।



श्रीकृष्ण आगे जाते हुए युधिष्ठिरको देखनेके लिये अर्जुनसे कह रहे हैं



कर्णस्य पाण्डवानां च यमराष्ट्रविवर्धनः ॥ २ ॥

उस समय कर्ण और पाण्डवोंका बड़ा भयंकर और रोमाञ्चकारी संग्राम आरम्भ हुआ, जो यमराजके राज्यकी वृद्धि करनेवाला था ॥ २ ॥

तस्मिन् प्रवृत्ते संग्रामे तुमुले शोणितोदके।
संशप्तकेषु शूरेषु किंचिच्छिष्टेषु भारत ॥ ३ ॥
धृष्टद्युम्नो महाराज सहितः सर्वराजभिः।
कर्णमेवाभिदुद्राव पाण्डवाश्च महारथाः ॥ ४ ॥

भारत ! जहाँ खून पानीके समान बहाया जाता था, उस भयंकर संग्रामके छिड़ जानेपर तथा थोड़े-से ही संशप्तक वीरोंके शेष रह जानेपर समस्त राजाओंसहित धृष्टद्युम्नने कर्णपर ही आक्रमण किया। महाराज ! अन्य पाण्डव महारथियोंने भी उन्हींका साथ दिया ॥ ३-४ ॥

आगच्छमानांस्तान् संख्ये प्रहृष्टान् विजयैषिणः।
दधारैको रणे कर्णो जलौघानिव पर्वतः ॥ ५ ॥

युद्धस्थलमें विजयकी अभिलाषा लेकर हर्ष और उल्लासके साथ आते हुए उन वीरोंको रणभूमिमें अकेले कर्णने उसी प्रकार रोक दिया, जैसे जलके प्रवाहोंको पर्वत रोक देता है ॥

समासाद्य तु ते कर्णं व्यशीर्यन्त महारथाः।
यथाचलं समासाद्य वार्योघाः सर्वतोदिशम् ॥ ६ ॥

कर्णके पास पहुँचकर वे सब महारथी बिखर गये, ठीक वैसे ही, जैसे जलके प्रवाह किसी पर्वतके पास पहुँचकर सम्पूर्ण दिशाओंमें फैल जाते हैं ॥ ६ ॥

तयोरासीन्महाराज संग्रामो लोमहर्षणः।
धृष्टद्युम्नस्तु राधेयं शरेणानतपर्वणा ॥ ७ ॥
ताडयामास समरे तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्।

महाराज ! उस समय उन दोनोंमें रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा। धृष्टद्युम्नने समराङ्गणमें झुकी हुई गाँठवाले बाणसे राधापुत्र कर्णको चोट पहुँचायी और कहा—'खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ ७½ ॥

विजयं च धनुःश्रेष्ठं विधुन्वानो महारथः ॥ ८ ॥
पार्षतस्य धनुश्छित्त्वा शरांश्चाशीविषोपमान्।
ताडयामास संक्रुद्धः पार्षतं नवभिः शरैः ॥ ९ ॥

तब महारथी कर्णने अपने विजय नामक श्रेष्ठ धनुषको कम्पित करके धृष्टद्युम्नके धनुष और विषधर सर्पके समान विषैले बाणोंको भी काट डाला। फिर क्रोधमें भरकर नौ बाणोंसे धृष्टद्युम्नको भी घायल कर दिया ॥ ८-९ ॥

ते वर्म हेमविकृतं भित्त्वा तस्य महात्मनः।
शोणिताक्ता व्यराजन्त शक्रगोपा इवानघ ॥ १० ॥

निष्पाप नरेश ! वे बाण महामना धृष्टद्युम्नके सुवर्णनिर्मित कवचको छेदकर उनके रक्तसे रञ्जित हो इन्द्रगोप (वीरबहूटी) नामक कीड़ोंके समान सुशोभित होने लगे ॥ १० ॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं धृष्टद्युम्नो महारथः।
अथान्यद् धनुरादाय शरांश्चाशीविषोपमान् ॥ ११ ॥
कर्णं विव्याध सप्तत्या शरैः संनतपर्वभिः।

महारथी धृष्टद्युम्नने उस कटे हुए धनुषको फेंककर दूसरा धनुष और विषधर सर्पके समान विषैले बाण हाथमें लेकर झुकी हुई गाँठवाले सत्तर बाणोंसे कर्णको बींध डाला ॥

तथैव राजन् कर्णोऽपि पार्षतं शत्रुतापनम् ॥ १२ ॥
छादयामास समरे शरैराशीविषोपमैः।
द्रोणशत्रुर्महेष्वासो विव्याध निशितैः शरैः ॥ १३ ॥

राजन् ! इसी प्रकार कर्णने भी समराङ्गणमें विषधर सर्पोंके समान विषैले बाणोंद्वारा शत्रुओंको संताप देनेवाले धृष्टद्युम्नको आच्छादित कर दिया। फिर द्रोणशत्रु महाधनुर्धर धृष्टद्युम्नने भी कर्णको पैने बाणोंसे घायल कर दिया ॥ १२-१३ ॥

तस्य कर्णो महाराज शरं कनकभूषणम्।
प्रेषयामास संक्रुद्धो मृत्युदण्डमिवापरम् ॥ १४ ॥

महाराज ! तब कर्णने अत्यन्त कुपित हो धृष्टद्युम्नपर द्वितीय मृत्युदण्डके समान एक सुवर्णभूषित बाण चलाया ॥

तमापतन्तं सहसा घोररूपं विशाम्पते।
चिच्छेद शतधा राजञ्शैनेयः कृतहस्तवत् ॥ १५ ॥

प्रजानाथ ! नरेश ! सहसा आते हुए उस भयंकर बाणके सात्यकिने सिद्धहस्त योद्धाकी भाँति सौ टुकड़े कर डाले॥

दृष्ट्वा विनिहतं बाणं शरैः कर्णो विशाम्पते।
सात्यकिं शरवर्षेण समन्तात् पर्यवारयत् ॥ १६ ॥

प्रजापालक नरेश ! सात्यकिके बाणोंसे अपने बाणको नष्ट हुआ देख कर्णने चारों ओरसे बाण बरसाकर सात्यकिको ढक दिया ॥ १६ ॥

विव्याध चैनं समरे नाराचैस्तत्र सप्तभिः।
तं प्रत्यविध्यच्छैनेयः शरैर्हेमपरिष्कृतैः ॥ १७ ॥

साथ ही समराङ्गणमें सात नाराचोंद्वारा उन्हें घायल कर दिया। तब सात्यकिने भी सुवर्णभूषित बाणोंसे कर्णको घायल करके बदला चुकाया ॥ १७ ॥

ततो युद्धं महाराज चक्षुःश्रोत्रभयानकम्।
आसीद् घोरं च चित्रं च प्रेक्षणीयं समन्ततः॥ १८ ॥

महाराज ! तब नेत्रोंसे देखने और कानोंसे सुननेपर भी भय उत्पन्न करनेवाला घोर एवं विचित्र युद्ध छिड़ गया, जो सब ओरसे देखने ही योग्य था ॥ १८ ॥

सर्वेषां तत्र भूतानां लोमहर्षोऽभ्यजायत।
तद् दृष्ट्वा समरे कर्म कर्णशैनेययोर्नृप ॥ १९ ॥

नरेश्वर ! समरभूमिमें कर्ण और सात्यकिका वह कर्म देखकर समस्त प्राणियोंके रोंगटे खड़े हो गये ॥ १९ ॥

एतस्मिन्नन्तरे द्रौणिरभ्ययात् सुमहाबलम्।
पार्षतं शत्रुदमनं शत्रुवीर्यासुनाशनम् ॥ २० ॥

इसी समय शत्रुओंके बल और प्राणोंका नाश करनेवाले शत्रुसूदन महाबली धृष्टद्युम्नके पास द्रोणकुमार अश्वत्थामा आ पहुँचा ॥ २० ॥

अभ्यभाषत संक्रुद्धो द्रौणिः परपुरंजयः।
तिष्ठ तिष्ठाद्य ब्रह्मघ्न न मे जीवन् विमोक्ष्यसे ॥ २१ ॥

शत्रुओंकी राजधानीपर विजय पानेवाला द्रोणपुत्र अश्वत्थामा वहाँ पहुँचते ही अत्यन्त कुपित होकर बोला—'ब्रह्महत्या करनेवाले पापी ! खड़ा रह, खड़ा रह, आज तू मेरे हाथसे जीवित नहीं छूट सकेगा' ॥ २१ ॥

इत्युक्त्वा सुभृशं वीरं शीघ्रकृन्निशितैः शरैः।
पार्षतं छादयामास घोररूपैः सुतेजनैः ॥ २२ ॥
यतमानं परं शक्त्या यतमानो महारथः।

ऐसा कहकर शीघ्रता करनेवाले प्रयत्नशील महारथी अश्वत्थामाने अत्यन्त तेज, घोर एवं पैने बाणोंद्वारा यथाशक्ति विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले वीर धृष्टद्युम्नको ढक दिया ॥

यथा हि समरे द्रोणः पार्षतं वीक्ष्य मारिष ॥ २३ ॥
तथा द्रौणिं रणे दृष्ट्वा पार्षतः परवीरहा।
नातिहृष्टमना भूत्वा मन्यते मृत्युमात्मनः ॥ २४ ॥

आर्य ! जैसे द्रोणाचार्य समरभूमिमें धृष्टद्युम्नको देखकर मन-ही-मन खिन्न हो उसे अपनी मृत्यु मानते थे, उसी प्रकार शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले धृष्टद्युम्न भी रणक्षेत्रमें अश्वत्थामाको देखकर अप्रसन्न हो उसे अपनी मृत्यु समझते थे॥

स ज्ञात्वा समरेऽऽत्मानं शस्त्रेणावध्यमेव तु।
जवेनाभ्याययौ द्रौणिं कालः कालमिव क्षये ॥ २५ ॥

वे अपने आपको समरभूमिमें शस्त्रद्वारा अवध्य मानकर बड़े वेगसे अश्वत्थामाके सामने आये, मानो प्रलयके समय काल ही कालपर टूट पड़ा हो ॥ २५ ॥

द्रौणिस्तु दृष्ट्वा राजेन्द्र धृष्टद्युम्नमवस्थितम्।
क्रोधेन निःश्वसन् वीरः पार्षतं समुपाद्रवत् ॥ २६ ॥

राजेन्द्र ! वीर अश्वत्थामाने द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्नको सामने खड़ा देख क्रोधसे लंबी साँस खींचते हुए उनपर आक्रमण किया ॥ २६ ॥

तावन्योन्यं तु दृष्ट्वैव संरम्भं जग्मतुः परम्।
अथाब्रवीन्महाराज द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ॥ २७ ॥
धृष्टद्युम्नं समीपस्थं त्वरमाणो विशाम्पते।

महाराज ! वे दोनों एक दूसरेको देखते ही अत्यन्त क्रोधमें भर गये। प्रजानाथ ! फिर प्रतापी द्रोणपुत्रने बड़ी उतावलीके साथ अपने पास ही खड़े हुए धृष्टद्युम्नसे कहा—॥

पाञ्चालापसदाद्य त्वां प्रेषयिष्यामि मृत्यवे ॥ २८ ॥
पापं हि यत् त्वया कर्म घ्नता द्रोणं पुरा कृतम्।
अद्य त्वां तप्स्यते तद् वै यथा न कुशलं तथा ॥ २९ ॥

'पाञ्चालकुल-कलङ्क ! आज मैं तुझे मौतके मुँहमें भेज दूँगा। तुमने पूर्वकालमें द्रोणाचार्यका वध करके जो पापकर्म किया है, वह एक अमङ्गलकारी कर्मकी भाँति आज तुझे संताप देगा ॥ २८-२९ ॥

अरक्ष्यमाणः पार्थेन यदि तिष्ठसि संयुगे।
नापक्रामसि वा मूढ सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ३० ॥

'ओ मूर्ख ! यदि तू अर्जुनसे अरक्षित रहकर युद्धभूमिमें खड़ा रहेगा, भाग नहीं जायगा तो अवश्य तुझे मार डालूँगा, यह मैं तुझसे सत्य कहता हूँ' ॥ ३० ॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच धृष्टद्युम्नः प्रतापवान्।
प्रतिवाक्यं स एवासिर्मामको दास्यते तव ॥ ३१ ॥
येनैव ते पितुर्दत्तं यतमानस्य संयुगे।

अश्वत्थामाके ऐसा कहनेपर प्रतापी धृष्टद्युम्नने उससे इस प्रकार उत्तर दिया—'अरे ! तेरी इस बातका जवाब तुझे मेरी वही तलवार देगी, जिसने युद्धस्थलमें विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले तेरे पिताको दिया था ॥ ३१½ ॥

यदि तावन्मया द्रोणो निहतो ब्राह्मणब्रुवः ॥ ३२ ॥
त्वामिदानीं कथं युद्धे न हनिष्यामि विक्रमात्।

'यदि मैंने नाममात्रके ब्राह्मण द्रोणाचार्यको पहले मार डाला था, तो इस समय पराक्रम करके तुझे भी मैं कैसे नहीं मार डालूँगा' ॥ ३२½ ॥

एवमुक्त्वा महाराज सेनापतिरमर्षणः ॥ ३३ ॥
निशितेनातिबाणेन द्रौणिं विव्याध पार्षतः।

महाराज ! ऐसा कहकर अमर्षशील सेनापति द्रुपदकुमारने अत्यन्त तीखे बाणसे द्रोणपुत्रको बींध डाला ॥ ३३½ ॥

ततो द्रौणिः सुसंक्रुद्धः शरैः संनतपर्वभिः ॥ ३४ ॥
आच्छादयद् दिशो राजन् धृष्टद्युम्नस्य संयुगे।

इससे अश्वत्थामाका क्रोध बहुत बढ़ गया। राजन् ! उसने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे युद्धस्थलमें धृष्टद्युम्नकी सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित कर दिया ॥ ३४½ ॥

नैवान्तरिक्षं न दिशो नापि योधाः समन्ततः ॥ ३५ ॥
दृश्यन्ते वै महाराज शरैश्छन्नाः सहस्रशः।

महाराज ! उस समय सब ओरसे बाणोंद्वारा आच्छादित होनेके कारण न तो आकाश दिखायी देता था, न दिशाएँ दीखती थीं और न सहस्रों योद्धा ही दृष्टिगोचर होते थे॥ ३५½॥

तथैव पार्षतो राजन् द्रौणिमाहवशोभिनम् ॥ ३६ ॥
शरैः संछादयामास सूतपुत्रस्य पश्यतः।

राजन् ! उसी प्रकार युद्धमें शोभा पानेवाले अश्वत्थामाको धृष्टद्युम्नने भी कर्णके देखते-देखते बाणोंसे ढक दिया ॥

राधेयोऽपि महाराज पञ्चालान् सह पाण्डवैः ॥ ३७ ॥
द्रौपदेयान् युधामन्युं सात्यकिं च महारथम्।
एकः संवारयामास प्रेक्षणीयः समन्ततः ॥ ३८ ॥

महाराज ! सब ओरसे दर्शनीय राधापुत्र कर्णने भी

पाण्डवोंसहित पाञ्चालों, द्रौपदीके पाँचों पुत्रों, युधामन्यु और महारथी सात्यकिको अकेले ही आगे बढ़नेसे रोक दिया था ॥

धृष्टद्युम्नस्तु समरे द्रौणेश्चिच्छेद कार्मुकम् ।
तदपास्य धनुर्द्रौणिरन्यदादाय कार्मुकम् ॥ ३९ ॥
वेगवान् समरे घोरे शरांश्चाशीविषोपमान् ।
स पार्षतस्य राजेन्द्र धनुः शक्तिं गदां ध्वजम् ॥ ४० ॥
हयान् सूतं रथं चैव निमेषाद् व्यधमच्छरैः ।

धृष्टद्युम्नने समराङ्गणमें अश्वत्थामाके धनुषको काट डाला । राजेन्द्र ! तब वेगवान् अश्वत्थामाने उस कटे हुए धनुषको फेंककर दूसरा धनुष और विषधर सर्पोंके समान भयंकर बाण हाथमें लेकर उनके द्वारा पलक मारते-मारते धृष्टद्युम्नके धनुष, शक्ति, गदा, ध्वज, अश्व, सारथि एवं रथको तहस-नहस कर दिया ॥ ३९-४०½ ॥

स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ॥ ४१ ॥
खड्गमादत्त विपुलं शतचन्द्रं च भानुमत् ।

धनुष कट जाने और घोड़ों तथा सारथिके मारे जानेपर रथहीन हुए धृष्टद्युम्नने विशाल खड्ग और सौ चन्द्राकार चिह्नोंसे युक्त चमकती हुई ढाल हाथमें ले ली ॥ ४१½ ॥

द्रौणिस्तदपि राजेन्द्र भल्लैः क्षिप्रं महारथः ॥ ४२ ॥
चिच्छेद समरे वीरः क्षिप्रहस्तो दृढायुधः ।
रथादनवरूढस्य तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४३ ॥

राजेन्द्र ! शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले सुदृढ़ आयुधधारी वीर महारथी अश्वत्थामाने समराङ्गणमें अनेक भल्लोंद्वारा रथसे उतरनेके पहले ही धृष्टद्युम्नकी उस ढाल-तलवारको भी काट दिया । वह एक अद्भुत-सी बात हुई ॥ ४२-४३ ॥



धृष्टद्युम्नं हि विरथं हताश्वं छिन्नकार्मुकम् ।
शरैश्च बहुधा विद्धमस्त्रैश्च शकलीकृतम् ॥ ४४ ॥
नाशकद् भरतश्रेष्ठ यतमानो महारथः ।

भरतश्रेष्ठ ! यद्यपि धृष्टद्युम्न रथहीन हो गये थे, उनके घोड़े मारे जा चुके थे, धनुष कट गया था तथा वे बाणोंसे बारंबार घायल और अस्त्र-शस्त्रोंसे जर्जर हो गये थे तो भी महारथी अश्वत्थामा लाख प्रयत्न करनेपर भी उन्हें मार न सका ॥ ४४½ ॥

तस्यान्तमिषुभी राजन् यदा द्रौणिर्न जग्मिवान् ॥ ४५ ॥
अथ त्यक्त्वा धनुर्वीरः पार्षतं त्वरितोऽन्वगात् ।

राजन् ! जब वीर द्रोणकुमार बाणोंद्वारा उनका वध न कर सका, तब वह धनुष फेंककर तुरंत ही धृष्टद्युम्नकी ओर दौड़ा ॥ ४५½ ॥

आसीदाप्लवतो वेगस्तस्य राजन् महात्मनः ॥ ४६ ॥
गरुडस्येव पततो जिघृक्षोः पन्नगोत्तमम् ।

नरेश्वर ! रथसे उछलकर दौड़ते हुए महामना अश्वत्थामाका वेग बहुत बड़े सर्पको पकड़नेके लिये झपटे हुए गरुड़के समान प्रतीत हुआ ॥ ४६½ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु माधवोऽर्जुनमब्रवीत् ॥ ४७ ॥
पश्य पार्थ यथा द्रौणिः पार्षतस्य वधं प्रति ।
यत्नं करोति विपुलं हन्याच्चैनं न संशयः ॥ ४८ ॥

इसी समय श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'पार्थ ! वह देखो, द्रोणकुमार अश्वत्थामा धृष्टद्युम्नके वधके लिये कैसा महान् प्रयत्न कर रहा है ? वह इन्हें मार सकता है, इसमें संशय नहीं है ॥ ४७-४८ ॥

तं मोचय महाबाहो पार्षतं शत्रुकर्शन ।
द्रौणेरास्यमनुप्राप्तं मृत्योरास्यगतं यथा ॥ ४९ ॥

'महाबाहो ! शत्रुसूदन ! जैसे कोई मौतके मुखमें पड़ गया हो, उसी प्रकार अश्वत्थामाके मुखमें पहुँचे हुए धृष्टद्युम्नको छुड़ाओ' ॥ ४९ ॥

एवमुक्त्वा महाराज वासुदेवः प्रतापवान् ।
प्रैषयत् तुरगांस्तत्र यत्र द्रौणिर्व्यवस्थितः ॥ ५० ॥

महाराज ! ऐसा कहकर प्रतापी वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णने अपने घोड़ोंको उसी ओर हाँका, जहाँ द्रोणकुमार अश्वत्थामा खड़ा था ॥ ५० ॥

ते हयाश्चन्द्रसंकाशाः केशवेन प्रचोदिताः ।
आपिबन्त इव व्योम जग्मुर्द्रौणिरथं प्रति ॥ ५१ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा हाँके गये वे चन्द्रमाके समान श्वेत रंगवाले घोड़े अश्वत्थामाके रथकी ओर इस प्रकार दौड़े, मानो आकाशको पीते जा रहे हों ॥ ५१ ॥

दृष्ट्वाऽऽयातौ महावीर्यावुभौ कृष्णधनंजयौ ।
धृष्टद्युम्नवधे यत्नं चक्रे राजन् महाबलः ॥ ५२ ॥

राजन् ! महापराक्रमी श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंको आते देख महाबली अश्वत्थामा धृष्टद्युम्नके वधके लिये विशेष प्रयत्न करने लगा ॥ ५२ ॥

विकृष्यमाणं दृष्ट्वैव धृष्टद्युम्नं नरेश्वर।
शरांश्चिक्षेप वै पार्थो द्रौणिं प्रति महाबलः ॥ ५३ ॥

नरेश्वर ! धृष्टद्युम्नको खींचे जाते देख महाबली अर्जुनने अश्वत्थामापर बहुत-से बाण चलाये ॥ ५३ ॥

ते शरा हेमविकृता गाण्डीवप्रेषिता भृशम्।
द्रौणिमासाद्य विविशुर्वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ ५४ ॥

गाण्डीव धनुषसे वेगपूर्वक छूटे हुए वे सुवर्ण-निर्मित बाण अश्वत्थामाके पास पहुँचकर उसके शरीरमें उसी प्रकार घुस गये, जैसे सर्प बाँबीमें प्रवेश करते हैं ॥ ५४ ॥

स विद्धस्तैः शरैर्घोरैर्द्रोणपुत्रः प्रतापवान्।
उत्सृज्य समरे राजन् पाञ्चाल्यममितौजसम् ॥ ५५ ॥
रथमारुरुहे वीरो धनंजयशरार्दितः।
प्रगृह्य च धनुः श्रेष्ठं पार्थं विव्याध सायकैः ॥ ५६ ॥

राजन् ! उन भयंकर बाणोंसे घायल हुआ प्रतापी वीर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा समराङ्गणमें अमित बलशाली धृष्टद्युम्नको छोड़कर अपने रथपर जा चढ़ा। वह धनंजयके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित हो चुका था; इसलिये उसने भी श्रेष्ठ धनुष हाथमें लेकर बाणोंद्वारा अर्जुनको घायल कर दिया ॥५५-५६॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरः सहदेवो जनाधिप।
अपोवाह रथेनाजौ पार्षतं शत्रुतापनम् ॥ ५७ ॥

नरेश्वर ! इसी बीचमें वीर सहदेव शत्रुओंको संताप देनेवाले धृष्टद्युम्नको अपने रथके द्वारा रणभूमिमें अन्यत्र हटा ले गये॥

अर्जुनोऽपि महाराज द्रौणिं विव्याध पत्रिभिः।
तं द्रोणपुत्रः संक्रुद्धो बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ५८ ॥

महाराज ! अर्जुनने भी अपने बाणोंसे अश्वत्थामाको घायल कर दिया। तब द्रोणपुत्रने अत्यन्त कुपित हो अर्जुनकी छाती और दोनों भुजाओंमें प्रहार किया ॥ ५८ ॥

क्रोधितस्तु रणे पार्थो नाराचं कालसम्मितम्।
द्रोणपुत्राय चिक्षेप कालदण्डमिवापरम् ॥ ५९ ॥

रणमें कुपित हुए कुन्तीकुमारने द्रोणपुत्रपर द्वितीय कालदण्डके समान साक्षात् कालस्वरूप नाराच चलाया ॥५९॥

ब्राह्मणस्यांसदेशे स निपपात महाद्युतिः।
स विह्वलो महाराज शरवेगेन संयुगे ॥ ६० ॥
निषसाद रथोपस्थे वैक्लव्यं च परं ययौ।

महाराज ! वह महातेजस्वी नाराच उस ब्राह्मणके कंधेपर जा लगा। अश्वत्थामा युद्धस्थलमें उस बाणके वेगसे व्याकुल हो रथकी बैठकमें धम्म-से बैठ गया और अत्यन्त मूर्छित हो गया ॥ ६०½ ॥

ततः कर्णो महाराज व्याक्षिपद् विजयं धनुः ॥ ६१ ॥
अर्जुनं समरे क्रुद्धः प्रेक्षमाणो मुहुर्मुहुः।
द्वैरथं चापि पार्थेन कामयानो महारणे ॥ ६२ ॥

राजराजेश्वर ! तत्पश्चात् कर्णने समराङ्गणमें कुपित हो अर्जुनकी ओर बारंबार देखते हुए विजयनामक धनुषकी टङ्कार की। वह महासमरमें अर्जुनके साथ द्वैरथ युद्धकी अभिलाषा करता था ॥ ६१-६२ ॥

विह्वलं तं तु वीक्ष्याथ द्रोणपुत्रं च सारथिः।
अपोवाह रथेनाजौ त्वरमाणो रणाजिरात् ॥ ६३ ॥

द्रोणकुमारको विह्वल देखकर उसका सारथि बड़ी उतावलीके साथ उसे रथके द्वारा समराङ्गणसे दूर हटा ले गया ॥ ६३ ॥

अथोत्क्रुष्टं महाराज पञ्चालैर्जितकाशिभिः।
मोक्षितं पार्षतं दृष्ट्वा द्रोणपुत्रं च पीडितम् ॥ ६४ ॥

महाराज ! धृष्टद्युम्नको संकटसे मुक्त और द्रोणपुत्रको पीड़ित देख विजयसे उल्लसित होनेवाले पाञ्चालोंने बड़े जोरसे गर्जना की ॥ ६४ ॥

वादित्राणि च दिव्यानि प्रावाद्यन्त सहस्रशः।
सिंहनादांश्च चक्रुस्ते दृष्ट्वा संख्ये तदद्भुतम् ॥ ६५ ॥

उस समय सहस्रों दिव्य वाद्य बजने लगे। वे पाञ्चाल-सैनिक युद्धस्थलमें वह अद्भुत कार्य देखकर सिंहनाद करने लगे॥

एवं कृत्वाब्रवीत् पार्थो वासुदेवं धनंजयः।
याहि संशप्तकान् कृष्ण कार्यमेतत् परं मम ॥ ६६ ॥

ऐसा पराक्रम करके कुन्तीपुत्र धनंजयने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'श्रीकृष्ण ! अब संशप्तकोंकी ओर चलिये। इस समय यही मेरा सबसे प्रधान कार्य है' ॥ ६६ ॥

ततः प्रयातो दाशार्हः श्रुत्वा पाण्डवभाषितम्।
रथेनातिपताकेन मनोमारुतरंहसा ॥ ६७ ॥

श्रीकृष्ण अर्जुनका वह कथन सुनकर मन और वायुके समान वेगशाली तथा अत्यन्त ऊँची पताकावाले रथके द्वारा वहाँसे चल दिये ॥ ६७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि द्रौण्यपयाने एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें अश्वत्थामाका पलायनविषयक उनसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५९ ॥

षष्टितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका अर्जुनसे दुर्योधन और कर्णके पराक्रमका वर्णन करके कर्णको मारनेके लिये अर्जुनको उत्साहित करना तथा भीमसेनके दुष्कर पराक्रमका वर्णन करना

संजय उवाच

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णः पार्थं वचनमब्रवीत्।
दर्शयन्निव कौन्तेयं धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इसी समय भगवान्

श्रीकृष्णने अर्जुनको धर्मराज युधिष्ठिरका दर्शन कराते हुए-से इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

एष पाण्डव ते भ्राता धार्तराष्ट्रैर्महाबलैः ।
जिघांसुभिर्महेष्वासैर्द्रुतं पार्थोऽनुसार्यते ॥ २ ॥

'पाण्डुनन्दन ! ये तुम्हारे भाई कुन्तीकुमार युधिष्ठिर हैं, जिन्हें मार डालनेकी इच्छासे महाबली महाधनुर्धर धृतराष्ट्र-पुत्र शीघ्रतापूर्वक इनका पीछा कर रहे हैं ॥ २ ॥

तं चानुयान्ति संरब्धाः पञ्चाला युद्धदुर्मदाः ।
युधिष्ठिरं महात्मानं परीप्सन्तो महाबलाः ॥ ३ ॥

'रणदुर्मद महाबली पाञ्चाल-सैनिक महात्मा युधिष्ठिरकी रक्षा करते हुए बड़े रोष और आवेशमें भरकर उनके साथ जा रहे हैं ॥ ३ ॥

एष दुर्योधनः पार्थ रथानीकेन दंशितः ।
राजा सर्वस्य लोकस्य राजानमनुधावति ॥ ४ ॥

'पार्थ ! यह सम्पूर्ण जगत्का राजा दुर्योधन कवच धारण करके रथसेनाके साथ राजा युधिष्ठिरका पीछा कर रहा है ॥

जिघांसुः पुरुषव्याघ्र भ्रातृभिः सहितो बली ।
आशीविषसमस्पर्शैः सर्वयुद्धविशारदैः ॥ ५ ॥

'पुरुषसिंह ! जिनका स्पर्श विषधर सर्पोंके समान भयंकर है तथा जो सम्पूर्ण युद्ध-कलाओंमें निपुण हैं, उन भाइयोंके साथ बली दुर्योधन राजा युधिष्ठिरको मार डालनेकी इच्छासे उनके पीछे लगा हुआ है ॥ ५ ॥

एते जिघृक्षवो यान्ति द्विपाश्वरथपत्तयः ।
युधिष्ठिरं धार्तराष्ट्रा नरोत्तममिवार्थिनः ॥ ६ ॥

'जैसे याचक किसी श्रेष्ठ पुरुषको पाना चाहते हैं, उसी प्रकार हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंसहित ये दुर्योधनके सैनिक युधिष्ठिरको पकड़नेके लिये उनपर चढ़ाई करते हैं ॥ ६ ॥

पश्य सात्वतभीमाभ्यां निरुद्धाधिष्ठिताः पुनः ।
जिहीर्षवोऽमृतं दैत्याः शक्राग्निभ्यामिवासकृत्॥ ७ ॥

'देखो, जैसे अमृतका अपहरण करनेकी इच्छावाले दैत्योंको इन्द्र और अग्निने बारंबार रोका था, उसी प्रकार ये दुर्योधनके सैनिक सात्यकि और भीमसेनके द्वारा अवरुद्ध होकर पुनः खड़े हो गये हैं ॥ ७ ॥

एते बहुत्वात्त्वरिताः पुनर्गच्छन्ति पाण्डवम् ।
समुद्रमिव वार्योघाः प्रावृट्काले महारथाः ॥ ८ ॥

'जैसे वर्षाकालमें जलके प्रवाह अधिक होनेके कारण समुद्र-तक चले जाते हैं, उसी प्रकार ये कौरव महारथी बहुसंख्यक होनेके कारण पुनः बड़ी उतावलीके साथ पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरपर चढ़े जा रहे हैं ॥ ८ ॥

नदन्तः सिंहनादांश्च धमन्तश्चापि वारिजान् ।
बलवन्तो महेष्वासा विधुन्वन्तो धनूंषि च ॥ ९ ॥

'वे बलवान् और महाधनुर्धर कौरव सिंहनाद करते, शङ्ख बजाते और अपने धनुषोंको कँपाते हुए आगे बढ़ रहे हैं ॥

मृत्योर्मुखगतं मन्ये कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
हुतमग्नौ च कौन्तेयं दुर्योधनवशं गतम् ॥ १० ॥

'मैं तो समझता हूँ कि इस समय कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर दुर्योधनके अधीन हो मृत्युके मुखमें चले गये हैं अथवा प्रज्वलित अग्निकी आहुति बन गये हैं ॥ १० ॥

यथाविधमनीकं तु धार्तराष्ट्रस्य पाण्डव ।
नास्य शक्रोऽपि मुच्येत सम्प्राप्तो बाणगोचरम् ॥ ११ ॥

'पाण्डुनन्दन ! दुर्योधनकी सेनाका जैसा व्यूह दिखायी दे रहा है, उससे यह जान पड़ता है कि उसके बाणोंके मार्गमें आ जानेपर इन्द्र भी जीवित नहीं छूट सकते ॥ ११ ॥

दुर्योधनस्य वीरस्य शरौघाञ्शीघ्रमस्यतः ।
संक्रुद्धस्यान्तकस्येव को वेगं संसहेद् रणे ॥ १२ ॥

'क्रोधमें भरे हुए यमराजके समान शीघ्रतापूर्वक बाण-समूहोंकी वर्षा करनेवाले वीर दुर्योधनका वेग इस युद्धमें कौन सह सकता है ? ॥ १२ ॥

दुर्योधनस्य वीरस्य द्रौणेः शारद्वतस्य च ।
कर्णस्य चेषुवेगो वै पर्वतानपि शातयेत् ॥ १३ ॥

'वीर दुर्योधन, अश्वत्थामा, कृपाचार्य तथा कर्णके बाणोंका वेग पर्वतोंको भी विदीर्ण कर सकता है ॥ १३ ॥

कर्णेन च कृतो राजा विमुखः शत्रुतापनः ।
बलवाँल्लघुहस्तश्च कृती युद्धविशारदः ॥ १४ ॥

'कर्णने शत्रुओंको संताप देनेवाले, शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले, बलवान्, विद्वान् और युद्धकुशल राजा युधिष्ठिर-को युद्धसे विमुख कर दिया है ॥ १४ ॥

राधेयः पाण्डवश्रेष्ठं शक्तः पीडयितुं रणे ।
सहितो धृतराष्ट्रस्य पुत्रैः शूरैर्महाबलैः ॥ १५ ॥

'धृतराष्ट्रके महाबली शूरवीर पुत्रोंके साथ रहकर राधा-पुत्र कर्ण रणभूमिमें पाण्डवश्रेष्ठ युधिष्ठिरको अवश्य पीड़ा दे सकता है ॥ १५ ॥

तस्यैभिर्युध्यमानस्य संग्रामे संयतात्मनः ।
अन्यैरपि च पार्थस्य हृतं वर्म महारथैः ॥ १६ ॥

'संग्राममें जूझते हुए संयतचित्त कुन्तीकुमार युधिष्ठिरके कवचको इन दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र-पुत्रों तथा अन्य महारथियोंने नष्ट कर दिया है ॥ १६ ॥

उपवासकृशो राजा भृशं भरतसत्तमः ।
ब्राह्मे बले स्थितो ह्येष न क्षात्रे हि बले विभुः ॥ १७ ॥

'भरतकुलशिरोमणि राजा युधिष्ठिर उपवास करनेसे अत्यन्त दुर्बल हो गये हैं। ये ब्राह्मबलमें स्थित हैं, क्षात्रबल प्रकट करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ १७ ॥

कर्णेन चाभियुक्तोऽयं भूपतिः शत्रुतापनः ।
संशयं समनुप्राप्तः पाण्डवो वै युधिष्ठिरः ॥ १८ ॥

'शत्रुओंको तपानेवाले ये पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर कर्णके साथ युद्ध करके प्राणसंकटकी अवस्थामें पहुँच गये हैं ॥१८॥

न जीवति महाराजो मन्ये पार्थ युधिष्ठिरः ।
यद् भीमसेनः सहते सिंहनादममर्षणः ॥ १९ ॥
नदतां धार्तराष्ट्राणां पुनः पुनररिंदमः ।
धमतां च महाशङ्खान् संग्रामे जितकाशिनाम् ॥ २० ॥

'पार्थ ! मुझे जान पड़ता है कि महाराज युधिष्ठिर जीवित नहीं हैं; क्योंकि अमर्षशील शत्रुदमन भीमसेन संग्राममें विजयसे उल्लसित हो बड़े-बड़े शङ्ख बजाते और बारंबार गर्जते हुए धृतराष्ट्रपुत्रोंका सिंहनाद चुपचाप सहन करते हैं ॥ १९-२० ॥

युधिष्ठिरं पाण्डवेयं हतेति भरतर्षभ ।
संचोदयत्यसौ कर्णो धार्तराष्ट्रान् महाबलान् ॥ २१ ॥

'भरतश्रेष्ठ ! वह कर्ण महाबली धृतराष्ट्रपुत्रोंको यह प्रेरणा दे रहा है कि तुम सब लोग मिलकर पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको मार डालो ॥ २१ ॥

स्थूणाकर्णेन्द्रजालेन पार्थ पाशुपतेन च ।
प्रच्छादयन्ति राजानं शस्त्रजालैर्महारथाः ॥ २२ ॥

'पार्थ ! कौरव महारथी स्थूणाकर्ण, इन्द्रजाल, पाशुपत तथा अन्य प्रकारके शस्त्रसमूहोंसे राजा युधिष्ठिरको आच्छादित कर रहे हैं ॥ २२ ॥

आतुरो हि कृतो राजा संनिषेव्यश्च भारत ।
यथैनमनुवर्तन्ते पञ्चालाः सह पाण्डवैः ॥ २३ ॥

'भारत ! राजा युधिष्ठिर आतुर एवं सेवाके योग्य कर दिये गये हैं; जैसा कि पाण्डवोंसहित पाञ्चाल उनके पीछे-पीछे सेवाके लिये जा रहे हैं ॥ २३ ॥

त्वरमाणास्त्वराकाले सर्वशस्त्रभृतां वराः ।
मज्जन्तमिव पाताले बलिनोऽप्युज्जिहीर्षवः ॥ २४ ॥

'शीघ्रताके अवसरपर शीघ्रता करनेवाले सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ बलवान् पाण्डव-योद्धा युधिष्ठिरका ऐसी अवस्थामें उद्धार करनेके लिये उत्सुक दिखायी देते हैं, मानो वे पातालमें डूब रहे हों ॥ २४ ॥

न केतुर्दृश्यते राज्ञः कर्णेन निहतः शरैः ।
पश्यतोर्यमयोः पार्थ सात्यकेश्च शिखण्डिनः ॥ २५ ॥
धृष्टद्युम्नस्य भीमस्य शतानीकस्य वा विभो ।
पञ्चालानां च सर्वेषां चेदीनां चैव भारत ॥ २६ ॥

'पार्थ ! राजाका ध्वज नहीं दिखायी देता है । कर्णने अपने बाणोंद्वारा उसे काट डाला है । भरतनन्दन ! प्रभो ! यह कार्य उसने नकुल-सहदेव, सात्यकि, शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, भीमसेन, शतानीक, समस्त पाञ्चाल-सैनिक तथा चेदिदेशीय योद्धाओंके देखते-देखते किया है ॥ २५-२६ ॥

एष कर्णो रणे पार्थ पाण्डवानामनीकिनीम् ।
शरैर्विध्वंसयति वै नलिनीमिव कुञ्जरः ॥ २७ ॥

'कुन्तीनन्दन ! जैसे हाथी कमलोंसे भरी हुई पुष्करिणीको मथ डालता है, उसी प्रकार यह कर्ण रणभूमिमें अपने बाणोंद्वारा पाण्डवसेनाका विध्वंस कर रहा है ॥ २७ ॥

एते द्रवन्ति रथिनस्त्वदीयाः पाण्डुनन्दन ।
पश्य पश्य यथा पार्थ गच्छन्त्येते महारथाः ॥ २८ ॥

'पाण्डुनन्दन ! ये तुम्हारे रथी भागे जा रहे हैं । पार्थ ! देखो, देखो, ये महारथी भी कैसे खिसके जा रहे हैं ॥२८॥

एते भारत मातङ्गाः कर्णेनाभिहताः शरैः ।
आर्तनादान् विकुर्वाणा विद्रवन्ति दिशो दश ॥ २९ ॥

'भारत ! कर्णके बाणोंसे मारे गये ये मतवाले हाथी आर्तनाद करते हुए दसों दिशाओंमें भाग रहे हैं ॥ २९ ॥

रथानां द्रवते वृन्दमेतच्चैव समन्ततः ।
द्राव्यमाणं रणे पार्थ कर्णेनामित्रकर्षिणा ॥ ३० ॥

'कुन्तीकुमार ! रणभूमिमें शत्रुसूदन कर्णके द्वारा खदेड़ा हुआ यह रथियोंका समूह सब ओर पलायन कर रहा है ॥३०॥

हस्तिकक्ष्यां रणे पश्य चरन्तीं तत्र तत्र ह ।
रथस्थं सूतपुत्रस्य केतुं केतुमतां वर ॥ ३१ ॥

'ध्वज धारण करनेवाले रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन ! देखो, सूतपुत्रके रथपर कैसी ध्वजा फहरा रही है ? हाथीकी रस्सीके चिह्नसे युक्त उसकी पताका रणभूमिमें यत्र-तत्र कैसे विचरण कर रही है ॥ ३१ ॥

असौ धावति राधेयो भीमसेनरथं प्रति ।
किरञ्शरशतान्येव विनिघ्नंस्तव वाहिनीम् ॥ ३२ ॥

'वह राधापुत्र कर्ण सैकड़ों बाणोंकी वर्षा करके तुम्हारी सेनाका संहार करता हुआ भीमसेनके रथपर धावा कर रहा है ॥ ३२ ॥

एतान् पश्य च पञ्चालान् द्राव्यमाणान् महारथान् ।
शक्रेणेव यथा दैत्यान् हन्यमानान् महाहवे ॥ ३३ ॥

'जैसे देवराज इन्द्र दैत्योंको खदेड़ते और मारते हैं, उसी प्रकार महासमरमें कर्णके द्वारा खदेड़े और मारे जानेवाले इन पाञ्चाल महारथियोंको देखो ॥ ३३॥

एष कर्णो रणे जित्वा पञ्चालान् पाण्डुसृञ्जयान् ।
दिशो विप्रेक्षते सर्वास्त्वदर्थमिति मे मतिः ॥ ३४ ॥

'यह कर्ण रणभूमिमें पाञ्चालों, पाण्डवों और सृंजयोंको जीतकर अब तुम्हें परास्त करनेके लिये सारी दिशाओंमें दृष्टिपात कर रहा है; ऐसा मेरा मत है ॥ ३४ ॥

पश्य पार्थ धनुः श्रेष्ठं विकर्षन् साधु शोभते ।
शत्रुं जित्वा यथा शक्रो देवसंघैः समावृतः ॥ ३५ ॥

'अर्जुन ! देखो, जैसे देवराज इन्द्र शत्रुपर विजय पाकर देवसमूहोंसे घिरे हुए शोभा पाते हैं, उसी प्रकार यह कर्ण कौरवोंके बीचमें अपने श्रेष्ठ धनुषको खींचता हुआ सुशोभित हो रहा है ॥ ३५ ॥

एते नर्दन्ति कौरव्या दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम्।
त्रासयन्तो रणे पाण्डून् सृञ्जयांश्च समन्ततः ॥ ३६ ॥

'कर्णका पराक्रम देखकर ये कौरवयोद्धा रणभूमिमें पाण्डवों और सृंजयोंको सब ओरसे डराते हुए जोर-जोरसे गर्जना करते हैं ॥ ३६ ॥

एष सर्वात्मना पाण्डूंस्त्रासयित्वा महारणे।
अभिभाषति राधेयः सर्वसैन्यानि मानद ॥ ३७ ॥

'मानद ! यह राधापुत्र कर्ण महासमरमें पाण्डवसैनिकोंको सर्वथा भयभीत करके अपनी सम्पूर्ण सेनाओंसे इस प्रकार कह रहा है ॥ ३७ ॥

अभिद्रवत भद्रं वो द्रुतं द्रवत कौरवाः।
यथा जीवन्न वः कश्चिन्मुच्येत युधि सृञ्जयः ॥ ३८ ॥
तथा कुरुत संयत्ता वयं यास्याम पृष्ठतः।

'कौरवो ! तुम्हारा कल्याण हो। दौड़ो और वेगपूर्वक धावा करो। आज युद्धस्थलमें कोई सृंजय तुम्हारे हाथसे जिस प्रकार भी जीवित न छूटने पावे, सावधान होकर वैसा ही प्रयत्न करो। हम सब लोग तुम्हारे पीछे-पीछे चलेंगे' ३८½

एवमुक्त्वा गतो ह्येष पृष्ठतो विकिरञ्छरान् ॥ ३९ ॥
पश्य कर्णं रणे पार्थ श्वेतच्छत्रविराजितम्।
उदयं पर्वतं यद्वच्छशाङ्केनाभिशोभितम् ॥ ४० ॥

'ऐसा कहकर यह कर्ण पीछेसे बाण-वर्षा करता हुआ गया है। पार्थ ! रणभूमिमें श्वेतच्छत्रसे विराजमान कर्णको देखो। वह चन्द्रमासे सुशोभित उदयाचलके समान जान पड़ता है ॥ ३९-४० ॥

पूर्णचन्द्रनिकाशेन मूर्ध्निच्छत्रेण भारत।
ध्रियमाणेन समरे श्रीमच्छतशलाकिना ॥ ४१ ॥
एष त्वां प्रेक्षते कर्णः सकटाक्षं विशाम्पते।
उत्तमं जवमास्थाय ध्रुवमेष्यति संयुगे ॥ ४२ ॥

'भारत ! प्रजानाथ ! समराङ्गणमें जिसके मस्तकपर सौ तेजस्वी शलाकाओंसे युक्त और पूर्ण चन्द्रमाके समान प्रकाशमान श्वेत छत्र तना हुआ है, वही यह कर्ण तुम्हारी ओर कटाक्षपूर्वक देख रहा है। निश्चय ही यह युद्धस्थलमें उत्तम वेगका आश्रय लेकर तुम्हारे सामने आयेगा ॥ ४१-४२ ॥

पश्य ह्येनं महाबाहो विधुन्वानं महद् धनुः।
शरांश्चाशीविषाकारान् विसृजन्तं महारणे ॥ ४३ ॥

'महाबाहो ! इसे देखो, यह अपना विशाल धनुष हिलाता हुआ महासमरमें विषधर सर्पोंके समान विषैले बाणोंकी वृष्टि कर रहा है ॥ ४३ ॥

असौ निवृत्तो राधेयो दृष्ट्वा ते वानरध्वजम्।
प्रार्थयन् समरे पार्थ त्वया सह परंतप ॥ ४४ ॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले कुन्तीकुमार ! वह देखो, तुम्हारे वानरध्वजको देखकर समरमें तुम्हारे साथ द्वैरथ युद्ध चाहता हुआ राधापुत्र कर्ण इधर लौट पड़ा है ॥ ४४ ॥

वधाय चात्मनोऽभ्येति दीप्तास्यं शलभो यथा।
कर्णमेकाकिनं दृष्ट्वा रथानीकेन भारत ॥ ४५ ॥
रिरक्षिषुः सुसंवृत्तो धार्तराष्ट्रो निवर्तते।

'जैसे पतङ्ग प्रज्वलित आगके मुखमें आ पड़ता है, उसी प्रकार यह कर्ण अपने वधके लिये ही तुम्हारे पास आ रहा है। भारत ! कर्णको अकेला देख उसकी रक्षाके लिये धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन भी रथसेनासे घिरा हुआ इधर ही लौट रहा है ॥ ४५½ ॥

सर्वैः सहैभिर्दुष्टात्मा वध्यतां च प्रयत्नतः ॥ ४६ ॥
त्वया यशश्च राज्यं च सुखं चोत्तममिच्छता।

'तुम यश, राज्य और उत्तम सुखकी अभिलाषा रखकर इन सबके साथ दुष्टात्मा कर्णका प्रयत्नपूर्वक वध कर डालो४६½

अदीनयोर्विश्रुतयोर्युवयोर्योत्स्यमानयोः ॥ ४७ ॥
देवासुरे पार्थ मृधे देवदानवयोरिव।
पश्यन्तु कौरवाः सर्वे तव पार्थ पराक्रमम् ॥ ४८ ॥

'पार्थ ! जैसे देवासुरसंग्राममें देवताओं और दानवोंका युद्ध हुआ था, उसी प्रकार जब तुम दोनों विश्वविख्यात वीरोंमें सोत्साह युद्ध होने लगे, उस समय समस्त कौरव तुम्हारा पराक्रम देखें ॥ ४७-४८ ॥

त्वां च दृष्ट्वातिसंरब्धं कर्णं च भरतर्षभ।
असौ दुर्योधनः क्रुद्धो नोत्तरं प्रतिपद्यते ॥ ४९ ॥

'भरतश्रेष्ठ ! अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए तुमको और कर्णको देखकर उस क्रोधी दुर्योधनको कोई उत्तर नहीं सूझ पड़ेगा ॥ ४९ ॥

आत्मानं च कृतात्मानं समीक्ष्य भरतर्षभ।
कृतागसं च राधेयं धर्मात्मनि युधिष्ठिरे।
प्रतिपद्यस्व कौन्तेय प्राप्तकालमनन्तरम् ॥ ५० ॥

'भरतभूषण कुन्तीकुमार ! तुम अपनेको पुण्यात्मा तथा राधापुत्र कर्णको धर्मात्मा युधिष्ठिरका अपराधी समझकर अब समयोचित कर्तव्यका पालन करो ॥ ५० ॥

आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा प्रत्येहि रथयूथपम्।
पञ्च ह्येतानि मुख्यानि रथानां रथसत्तम ॥ ५१ ॥
शतान्यायान्ति समरे बलिनां तिग्मतेजसाम्।
पञ्च नागसहस्राणि द्विगुणा वाजिनस्तथा ॥ ५२ ॥
अभिसंहत्य कौन्तेय पदातिप्रयुतानि च।

'युद्धविषयक श्रेष्ठ बुद्धिका आश्रय लेकर तुम रथयूथपति कर्णपर चढ़ाई करो। रथियोंमें श्रेष्ठ वीर ! देखो, समरभूमिमें ये प्रचण्ड तेजस्वी, महाबली एवं मुख्य-मुख्य पाँच सौ रथी आ रहे हैं। इनके साथ ही पाँच हजार हाथी और दस हजार घोड़े हैं। कुन्तीनन्दन ! ये सब-के-सब संगठित हो दस लाख पैदल योद्धाओंको साथ ले आ रहे हैं।५१-५२½।

अन्योन्यरक्षितं वीर बलं त्वामभिवर्तते ॥ ५३ ॥
द्रोणपुत्रं पुरस्कृत्य तच्छीघ्रं संनिषूदय ।

'वीर ! द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको आगे करके एक दूसरेके द्वारा सुरक्षित यह सेना तुमपर आक्रमण कर रही है। तुम शीघ्र ही इसका संहार कर डालो ॥ ५३½ ॥

निकृत्यैतद्रथानीकं बलिनं लोकविश्रुतम् ॥ ५४ ॥
सूतपुत्रं महेष्वासं दर्शयात्मानमात्मना ।

'इस रथसेनाका संहार करके विश्वविख्यात महाधनुर्धर बलवान् सूतपुत्र कर्णके सामने स्वयं ही अपने आपको प्रकट करो ॥ ५४½ ॥

उत्तमं जवमास्थाय प्रत्येहि भरतर्षभ ॥ ५५ ॥
असौ कर्णः सुसंरब्धः पञ्चालानभिधावति ।
केतुमस्य हि पश्यामि धृष्टद्युम्नरथं प्रति ॥ ५६ ॥

'भरतभूषण ! तुम उत्तम वेगका आश्रय लेकर शत्रुदल-पर आक्रमण करो। वह क्रोधमें भरा हुआ कर्ण पाञ्चालोंपर धावा बोल रहा है। मैं उसकी ध्वजाको धृष्टद्युम्नके रथके पास देख रहा हूँ ॥ ५५-५६ ॥

समुपैष्यति पञ्चालानिति मन्ये परंतप ।
आचक्षे च प्रियं पार्थ तवेदं भरतर्षभ ॥ ५७ ॥
राजासौ कुशली श्रीमान् धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
असौ भीमो महाबाहुः संनिवृत्तश्चमूमुखे ॥ ५८ ॥

'परंतप ! मैं समझता हूँ, कर्ण पाञ्चालोंपर अवश्य ही आक्रमण करेगा। भरतश्रेष्ठ पार्थ ! मैं तुमसे एक प्रिय समाचार कह रहा हूँ—धर्मपुत्र श्रीमान् राजा युधिष्ठिर सकुशल हैं ; क्योंकि वे महाबाहु भीमसेन सेनाके मुहानेपर लौट रहे हैं ॥ ५७-५८ ॥

वृतः सृञ्जयसैन्येन शैनेयेन च भारत ।
वध्यन्त एते समरे कौरवा निशितैः शरैः ॥ ५९ ॥
भीमसेनेन कौन्तेय पञ्चालैश्च महात्मभिः ।

'भारत ! उनके साथ सृंजयोंकी सेना और सात्यकि भी हैं। कुन्तीकुमार ! भीमसेन तथा महामनस्वी पाञ्चाल वीर समराङ्गणमें अपने तीखे बाणोंद्वारा इन कौरवोंका वध कर रहे हैं ॥ ५९½ ॥

सेना हि धार्तराष्ट्रस्य विमुखा विक्षरद्व्रणा ॥ ६० ॥
विप्रधावति वेगेन भीमस्याभिहता शरैः ।

'भीमके बाणोंसे घायल हो दुर्योधनकी सेना युद्धसे मुँह फेरकर बड़े वेगसे भाग रही है। उसके घावोंसे रक्तकी धारा बह रही है ॥ ६०½ ॥

विपन्नसस्येव मही रुधिरेण समुक्षिता ॥ ६१ ॥
भारती भरतश्रेष्ठ सेना कृपणदर्शना ।

'भरतश्रेष्ठ ! खूनसे लथपथ हुई कौरव-सेना, जहाँकी खेती नष्ट हो गयी है उस भूमिके समान अत्यन्त दयनीय दिखायी देती है ॥ ६१½ ॥

निवृत्तं पश्य कौन्तेय भीमसेनं युधां पतिम् ॥ ६२ ॥
आशीविषमिव क्रुद्धं द्रावयन्तं वरूथिनीम् ।

'कुन्तीनन्दन ! देखो, योद्धाओंके अधिपति भीमसेन लौटकर विषधर सर्पके समान कुपित हो कौरवसेनाको खदेड़ रहे हैं ॥ ६२½ ॥

पीतरक्तासितसितास्ताराचन्द्रार्कमण्डिताः ॥ ६३ ॥
पताका विप्रकीर्यन्ते छत्राण्येतानि चार्जुन ।

'अर्जुन ! तारों और सूर्य-चन्द्रमाके चिह्नोंसे अलंकृत ये लाल, पीली, काली और सफेद पताकाएँ तथा ये श्वेत छत्र बिखरे पड़े हैं ॥ ६३½ ॥

सौवर्णा राजताश्चैव तैजसाश्च पृथग्विधाः ॥ ६४ ॥
केतवोऽभिनिपात्यन्ते हस्त्यश्वं च प्रकीर्यते ।

'सोने, चाँदी तथा पीतल आदि तैजस द्रव्योंके बने हुए नाना प्रकारके ध्वज काट-काटकर गिराये जा रहे हैं। हाथी और घोड़े तितर-बितर हो गये हैं ॥ ६४½ ॥

रथेभ्यः प्रपतन्त्येते रथिनो विगतासवः ॥ ६५ ॥
नानावर्णैर्हता बाणैः पञ्चालैरपलायिभिः ।

'युद्धसे पीठ न दिखानेवाले पाञ्चाल-वीरोंके विभिन्न रंगोंवाले बाणोंसे मारे जाकर ये प्राणशून्य रथी रथोंसे नीचे गिर रहे हैं ॥ ६५½ ॥

निर्मनुष्यान् गजानश्वान् रथांश्चैव धनंजय ॥ ६६ ॥
समाद्रवन्ति पञ्चाला धार्तराष्ट्रांस्तरस्विनः ।
विमृद्नन्ति नरव्याघ्रा भीमसेनबलाश्रयात् ॥ ६७ ॥

'धनंजय ! ये वेगशाली पुरुषसिंह पाञ्चालयोद्धा भीमसेन-के बलका आश्रय लेकर मनुष्योंसे रहित हाथियों, घोड़ों, रथों और वेगशाली धृतराष्ट्र-सैनिकोंपर आक्रमण करते और उन्हें धूलमें मिलाते जा रहे हैं ॥ ६६-६७ ॥

बलं परेषां दुर्धर्षास्त्यक्त्वा प्राणानरिंदम ।
एते नर्दन्ति पञ्चाला ध्मापयन्ति च वारिजान् ॥ ६८ ॥

'शत्रुदमन वीर ! दुर्जय पाञ्चाल सैनिक प्राणोंका मोह छोड़कर शत्रुओंकी सेनाको नष्ट करते हुए गरजते और शङ्ख बजाते हैं ॥ ६८ ॥

अभिद्रवन्ति च रणे मृद्नन्तः सायकैः परान् ।
पश्यस्वैषां च माहात्म्यं पञ्चाला हि पराक्रमात् ॥ ६९ ॥
धार्तराष्ट्रान् विनिघ्नन्ति क्रुद्धाः सिंहा इव द्विपान् ।

'अर्जुन ! देखो, इन वीरोंकी कैसी महिमा है ? जैसे क्रोधमें भरे हुए सिंह हाथियोंको मार डालते हैं, उसी प्रकार ये पाञ्चाल-योद्धा पराक्रम करके अपने बाणोंद्वारा शत्रुओंको रौंदते हुए रणभूमिमें सब ओर दौड़ रहे हैं ॥ ६९½ ॥

शस्त्रमाच्छिद्य शत्रूणां सायुधानां निरायुधाः ॥ ७० ॥
तेनैवैतानमोघास्त्रा निघ्नन्ति च नदन्ति च ।

'वे स्वयं अस्त्र-शस्त्रोंसे रहित होनेपर भी आयुधधारी

शत्रुओंके शस्त्र छीनकर उसीसे उन्हें मार डालते और गर्जना करते हैं; उनके अस्त्रोंका निशाना कभी खाली नहीं जाता ७०½

शिरांस्येतानि पात्यन्ते शत्रूणां बाहवोऽपि च ॥ ७१ ॥
रथनागहया वीरा यशस्याः सर्व एव च ।

'ये शत्रुओंके मस्तक, भुजाएँ, रथ, हाथी, घोड़े और समस्त यशस्वी वीर धरतीपर गिराये जा रहे हैं ॥ ७१½ ॥

सर्वतश्चाभिपन्नैषा धार्तराष्ट्री महाचमूः ॥ ७२॥
पञ्चालैर्मानसादेत्य हंसैर्गङ्गेव वेगितैः ।

'जैसे वेगशाली हंस मानसरोवरसे निकलकर गङ्गाजीपर सब ओरसे छा जाते हैं, उसी प्रकार पाञ्चाल-सैनिकोंद्वारा दुर्योधनकी यह विशाल सेना चारों ओरसे आक्रान्त हो रही है ॥ ७२½ ॥

सुभृशं च पराक्रान्ताः पञ्चालानां निवारणे ॥ ७३ ॥
कृपकर्णादयो वीरा ऋषभाणामिवर्षभाः ।

'कृपाचार्य और कर्ण आदि वीर इन पाञ्चालोंको रोकनेके लिये अत्यन्त पराक्रम दिखा रहे हैं। ठीक उसी तरह, जैसे साँड़ दूसरे साँड़ोंको दबानेकी चेष्टा करते हैं ॥ ७३½ ॥

भीमास्त्रेण सुनिर्भग्नान् धार्तराष्ट्रान् महारथान् ॥७४॥
धृष्टद्युम्नमुखा वीरा घ्नन्ति शत्रून् सहस्रशः ।

'भीमसेनके बाणोंसे हतोत्साह होकर भागनेवाले कौरव-महारथियों तथा सहस्रों शत्रुओंको धृष्टद्युम्न आदि वीर मार रहे हैं ॥ ७४½ ॥

पञ्चालेष्वभिभूतेषु द्विषद्भिरपभीर्नदन् ॥ ७५ ॥
शत्रुपक्षमवस्कन्द्य शरानस्यति मारुतिः ।

'शत्रुओंद्वारा पाञ्चालोंके पराजित होनेपर ये वायुपुत्र भीमसेन निर्भय गर्जना करते हुए शत्रुदलपर आक्रमण करके बाणोंकी वर्षा कर रहे हैं ॥७५½॥

विषण्णभूयिष्ठतरा धार्तराष्ट्री महाचमूः ॥ ७६ ॥
रथाश्चैते सुवित्रस्ता भीमसेनभयार्दिताः ।

'दुर्योधनकी विशाल सेनाके अधिकांश वीर अत्यन्त खिन्न हो उठे हैं और ये रथी भीमसेनके भयसे पीड़ित हो संत्रस्त हो गये हैं ॥ ७६½ ॥

पश्य भीमेन नाराचैर्भिन्ना नागाः पतन्त्यमी ॥ ७७ ॥
वज्रिवज्रहतानीव शिखराणि धराभृताम् ।

'देखो, इन्द्रके वज्रसे आहत होकर गिरनेवाले पर्वत-शिखरोंके समान ये बड़े-बड़े हाथी भीमसेनके चलाये हुए नाराचोंसे विदीर्ण होकर पृथ्वीपर गिर रहे हैं ॥ ७७½ ॥

भीमसेनस्य निर्विद्धा बाणैः संनतपर्वभिः ॥ ७८ ॥
स्वान्यनीकानि मृद्नन्तो द्रवन्त्येते महागजाः ।

'भीमसेनके झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे अत्यन्त घायल हुए ये विशालकाय हाथी अपनी ही सेनाओंको कुचलते हुए भागते हैं ॥ ७८½ ॥

(एते द्रवन्ति कुरवो भीमसेनभयार्दिताः ।
त्यक्त्वा गजान् हयांश्चैव रथांश्चैव सहस्रशः॥
हस्त्यश्वरथपत्तीनां द्रवतां निःस्वनं शृणु ।
भीमसेनस्य निनदं द्रावयाणस्य कौरवान् ॥)

'ये भीमसेनके भयसे पीड़ित हुए कौरव-योद्धा अपने सहस्रों हाथियों, रथों और घोड़ोंको छोड़-छोड़कर भाग रहे हैं। भागते हुए हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंका वह आर्तनाद तथा कौरवोंको खदेड़ते हुए भीमसेनकी यह गर्जना सुन लो ॥

अभिजानीहि भीमस्य सिंहनादं सुदुःसहम् ॥ ७९ ॥
नदतोऽर्जुन संग्रामे वीरस्य जितकाशिनः ।

'अर्जुन ! विजयश्रीसे सुशोभित हो गर्जना करनेवाले वीर भीमसेनका संग्राममें जो अत्यन्त दुःसह सिंहनाद हो रहा है, उसे पहचानो ॥ ७९½ ॥

एष नैषादिरभ्येति द्विपमुख्येन पाण्डवम् ॥ ८० ॥
जिघांसुस्तोमरैः क्रुद्धो दण्डपाणिरिवान्तकः ।

'यह निषादपुत्र श्रेष्ठ गजराजपर आरूढ़ हो तोमरोंद्वारा भीमसेनको मार डालनेकी इच्छासे क्रोधमें भरे हुए दण्डपाणि यमराजके समान उनपर आक्रमण कर रहा है ॥ ८०½ ॥

सतोमरावस्य भुजौ छिन्नौ भीमेन गर्जतः ॥ ८१ ॥
तीक्ष्णैरग्निरविप्रख्यैर्नाराचैर्दशभिर्हतः ।

'देखो, भीमसेनने गरजते हुए निषादपुत्रकी तोमरसहित दोनों भुजाओंको काट दिया और अग्नि एवं सूर्यके समान तेजस्वी दस तीखे नाराचोंद्वारा उसे मार डाला ॥ ८१½ ॥

हत्वैनं पुनरायाति नागानन्यान् प्रहारिणः ॥ ८२ ॥
पश्य नीलाम्बुदनिभान् महामात्रैरधिष्ठितान् ।
शक्तितोमरसंघातैर्विनिघ्नन्तं वृकोदरम् ॥ ८३ ॥

'इस निषादपुत्रका वध करके वे पुनः प्रहार करनेवाले दूसरे-दूसरे हाथियोंपर आक्रमण कर रहे हैं। देखो, भीमसेन शक्ति और तोमरोंके समूहोंसे काले मेघोंकी घटाके समान हाथियोंको, जिनके कंधोंपर महावत बैठे हैं, मार रहे हैं ॥ ८२-८३ ॥

सप्तसप्त च नागांस्तान् वैजयन्तीश्च सध्वजाः ।
निहत्य निशितैर्बाणैश्छिन्नाः पार्थाग्रजेन ते ॥ ८४ ॥

'पार्थ ! तुम्हारे बड़े भाई भीमसेनने अपने पैने बाणोंसे ध्वजसहित वैजयन्ती पताकाओंको नष्ट करके उनचास हाथियोंको काट गिराया है ॥ ८४ ॥

दशभिर्दशभिश्चैको नाराचैर्निहतो गजः ।
न चासौ धार्तराष्ट्राणां श्रूयते निनदस्तथा ॥ ८५ ॥
पुरंदरसमे क्रुद्धे निवृत्ते भरतर्षभ ।

'उन्होंने दस-दस नाराचोंसे एक-एक हाथीका वध किया है। भरतभूषण ! इन्द्रके समान पराक्रमी भीमसेनके

क्रोधपूर्वक लौटनेपर धृतराष्ट्रपुत्रोंका वह सिंहनाद अब नहीं सुनायी दे रहा है ॥ ८५½ ॥

अक्षौहिण्यस्तथा तिस्रो धार्तराष्ट्रस्य संहताः ।
क्रुद्धेन भीमसेनेन नरसिंहेन वारिताः ॥ ८६ ॥

'कुपित हुए पुरुषसिंह भीमसेनने दुर्योधनकी संगठित हुई तीन अक्षौहिणी सेनाओंको आगे बढ़नेसे रोक दिया है ॥ ८६ ॥

न शक्नुवन्ति वै पार्थं पार्थिवाः समुदीक्षितुम् ।
मध्यंदिनगतं सूर्यं यथा दुर्बलचक्षुषः ॥ ८७ ॥

'जैसे दुर्बल नेत्रोंवाले प्राणी दोपहरके सूर्यकी ओर नहीं देख सकते, उसी प्रकार राजा लोग कुन्तीकुमार भीमसेनकी ओर आँख उठाकर देख नहीं पा रहे हैं ॥ ८७ ॥

एते भीमस्य संत्रस्ताः सिंहस्येवेतरे मृगाः ।
शरैः संत्रासिताः संख्ये न लभन्ते सुखं क्वचित् ॥ ८८ ॥

'जैसे सिंहसे डरे हुए दूसरे मृग चैन नहीं पाते हैं, उसी प्रकार ये भीमसेनके बाणोंसे भयभीत हुए कौरवसैनिक युद्ध-स्थलमें कहीं सुख नहीं पा रहे हैं ॥ ८८ ॥

(राजानं च महाबाहुं पीडयन्त्यात्तमन्यवः ।
राधेयो बहुभिः सार्धमसौ गच्छति वेगतः ॥
वर्जयित्वा तु भीमं तं पार्श्वतो ह्यानयन् धनुः ।
तं पालयन् महाराजं धार्तराष्ट्रं बलान्वितः ॥)

'पाण्डव-सैनिक क्रोधमें भरकर महाबाहु दुर्योधनको पीड़ा दे रहे हैं। बलशाली राधापुत्र कर्ण भीमसेनको छोड़कर बगलमें धनुष लिये महाराज दुर्योधनकी रक्षाके लिये बहुतेरे सैनिकोंके साथ वेगपूर्वक उसके पास जा रहा है ॥'

संजय उवाच

एतच्छ्रुत्वा महाबाहुर्वासुदेवाद् धनंजयः ।
भीमसेनेन तत् कर्म कृतं दृष्ट्वा सुदुष्करम् ॥ ८९ ॥
अर्जुनो व्यधमच्छिष्टानहितान् निशितैः शरैः ।

संजय कहते हैं—राजन् ! वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णके मुखसे यह सब सुनकर और भीमसेनके द्वारा किये हुए उस अत्यन्त दुष्कर कर्मको अपनी आँखों देखकर महाबाहु अर्जुनने अपने पैने बाणोंद्वारा शेष शत्रुओंको मार भगाया ८९½

ते वध्यमानाः समरे संशप्तकगणाः प्रभो ॥ ९० ॥
प्रभग्नाः समरे भीता दिशो दश महाबलाः ।
शक्रस्यातिथितां गत्वा विशोका ह्यभवंस्तदा ॥ ९१ ॥

प्रभो ! समराङ्गणमें मारे जाते हुए महाबली संशप्तकगण हतोत्साह एवं भयभीत हो दसों दिशाओंमें भाग गये और कितने ही वीर इन्द्रके अतिथि बनकर तत्काल शोकसे छुटकारा पा गये ॥ ९०-९१ ॥

पार्थश्च पुरुषव्याघ्रः शरैः संनतपर्वभिः ।
जघान धार्तराष्ट्रस्य चतुर्विधबलां चमूम् ॥ ९२ ॥

पुरुषसिंह पार्थने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा दुर्योधनकी चतुरङ्गिणी सेनाका संहार कर डाला ॥ ९२ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कृष्णार्जुनसंवादे षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें श्रीकृष्ण और अर्जुनका संवादविषयक साठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६० ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ४ श्लोक मिलाकर कुल ९६ श्लोक हैं)

एकषष्टितमोऽध्यायः

कर्णद्वारा शिखण्डीकी पराजय, धृष्टद्युम्न और दुःशासनका तथा वृषसेन और नकुलका युद्ध, सहदेवद्वारा उलूककी तथा सात्यकिद्वारा शकुनिकी पराजय, कृपाचार्यद्वारा युधामन्युकी एवं कृतवर्माद्वारा उत्तमौजाकी पराजय तथा भीमसेनद्वारा दुर्योधनकी पराजय, गजसेनाका संहार और पलायन

धृतराष्ट्र उवाच

निवृत्ते भीमसेने च पाण्डवे च युधिष्ठिरे ।
वध्यमाने बले चापि मामके पाण्डुसृञ्जयैः ॥ १ ॥
द्रवमाणे बलौघे च निरानन्दे मुहुर्मुहुः ।
किमकुर्वन्त कुरवस्तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ २ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! जब भीमसेन और पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर लौट आये, पाण्डव और संजय मेरी सेनाका वध करने लगे और मेरा सैन्यसमुदाय आनन्दशून्य होकर बारंबार भागने लगा, उस समय कौरवोंने क्या किया ? यह मुझे बताओ ॥ १-२ ॥

संजय उवाच

(क्षयस्तेषां महाज्ञानो राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥)
दृष्ट्वा भीमं महाबाहुं सूतपुत्रः प्रतापवान् ।
क्रोधरक्तेक्षणो राजन् भीमसेनमुपाद्रवत् ॥ ३ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! आपकी कुमन्त्रणाके फलस्वरूप उन कौरवोंका महान् संहार हुआ है। महाराज !

प्रतापी सूतपुत्र महाबाहु भीमसेनको देखकर क्रोधसे लाल आँखें किये उनपर टूट पड़ा ॥ ३ ॥

तावकं तु बलं दृष्ट्वा भीमसेनात् पराङ्मुखम् ।
यत्नेन महता राजन् पर्यवस्थापयद् बली ॥ ४ ॥

राजन् ! आपकी सेनाको भीमसेनके भयसे विमुख हुई देख बलवान् कर्णने बड़े यत्नसे उसे स्थिर किया ॥ ४ ॥

व्यवस्थाप्य महाबाहुस्तव पुत्रस्य वाहिनीम् ।
प्रत्युद्ययौ तदा कर्णः पाण्डवान् युद्धदुर्मदान् ॥ ५ ॥

महाबाहु कर्ण आपके पुत्रकी सेनाको स्थिर करके रणदुर्मद पाण्डवोंकी ओर बढ़ा ॥ ५ ॥

प्रत्युद्ययुस्तु राधेयं पाण्डवानां महारथाः ।
धुन्वानाः कार्मुकाण्याजौ विक्षिपन्तश्च सायकान् ॥ ६ ॥

उस समय पाण्डव-महारथी भी राधापुत्र कर्णका सामना करनेके लिये अपने धनुष हिलाते और बाणोंकी वर्षा करते हुए रणभूमिमें आगे बढ़े ॥ ६ ॥

भीमसेनः शिनेर्नप्ता शिखण्डी जनमेजयः ।
धृष्टद्युम्नश्च बलवान् सर्वे चापि प्रभद्रकाः ॥ ७ ॥
जिघांसन्तो नरव्याघ्राः समन्तात् तव वाहिनीम् ।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धाः समरे जितकाशिनः ॥ ८ ॥

भीमसेन, सात्यकि, शिखण्डी, जनमेजय, बलवान् धृष्टद्युम्न और समस्त प्रभद्रकगण—ये सभी पुरुषसिंह वीर समराङ्गणमें विजयसे उल्लसित होते हुए क्रोधमें भरकर आपकी सेनाको मार डालनेकी इच्छासे चारों ओरसे उसके ऊपर टूट पड़े ॥ ७-८ ॥

तथैव तावका राजन् पाण्डवानामनीकिनीम् ।
अभ्यद्रवन्त त्वरिता जिघांसन्तो महारथाः ॥ ९ ॥

राजन् ! इसी प्रकार आपके महारथी वीर भी पाण्डव-सेनाका वध करनेके लिये बड़े वेगसे उसकी ओर दौड़े ॥९॥

रथनागाश्वकलिलं पत्तिध्वजसमाकुलम् ।
बभूव पुरुषव्याघ्र सैन्यमद्भुतदर्शनम् ॥ १० ॥

पुरुषसिंह ! रथ, हाथी, घोड़े, पैदल योद्धा और ध्वजोंसे व्याप्त हुई वह सारी सेना अद्भुत दिखायी दे रही थी ॥१०॥

शिखण्डी च ययौ कर्णं धृष्टद्युम्नः सुतं तव ।
दुःशासनं महाराज महत्या सेनया वृतम् ॥ ११ ॥

महाराज ! शिखण्डीने कर्णपर और धृष्टद्युम्नने विशाल सेनासे घिरे हुए आपके पुत्र दुःशासनपर आक्रमण किया ॥

नकुलो वृषसेनं तु चित्रसेनं युधिष्ठिरः ।
उलूकं समरे राजन् सहदेवः समभ्ययात् ॥ १२ ॥

राजन्! नकुलने वृषसेनपर, युधिष्ठिरने चित्रसेनपर तथा सहदेवने समराङ्गणमें उलूकपर चढ़ाई की ॥ १२ ॥

सात्यकिः शकुनिं चापि द्रौपदेयाश्च कौरवान् ।
अर्जुनं च रणे यत्तो द्रोणपुत्रो महारथः ॥ १३ ॥

सात्यकिने शकुनिपर, द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंने अन्य कौरवोंपर तथा युद्धमें सावधान रहनेवाले महारथी अश्वत्थामाने अर्जुनपर धावा किया ॥ १३ ॥

युधामन्युं महेष्वासं गौतमोऽभ्यपतद्रणे ।
कृतवर्मा च बलवानुत्तमौजसमाद्रवत् ॥ १४ ॥

कृपाचार्य युद्धस्थलमें महाधनुर्धर युधामन्युपर टूट पड़े और बलवान् कृतवर्माने उत्तमौजापर आक्रमण किया ॥१४॥

भीमसेनः कुरून् सर्वान् पुत्रांश्च तव मारिष ।
सहानीकान् महाबाहुरेक एव न्यवारयत् ॥ १५ ॥

आर्य ! महाबाहु भीमसेनने अकेले ही सेनासहित समस्त कौरवों और आपके पुत्रोंको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥१५॥

शिखण्डी तु ततः कर्णं विचरन्तमभीतवत् ।
भीष्महन्ता महाराज वारयामास पत्रिभिः ॥ १६ ॥

महाराज ! तदनन्तर भीष्महन्ता शिखण्डीने निर्भय-से विचरते हुए कर्णको अपने बाणोंके प्रहारसे रोका ॥ १६ ॥

प्रतिरुद्धस्ततः कर्णो रोषात् प्रस्फुरिताधरः ।
शिखण्डिनं त्रिभिर्बाणैर्भ्रुवोर्मध्येऽभ्यताडयत् ॥ १७ ॥

अपनी गति अवरुद्ध हो जानेपर रोषके मारे कर्णके ओठ फड़कने लगे । उसने तीन बाणोंद्वारा शिखण्डीको उसकी दोनों भौंहोंके मध्यभागमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ १७ ॥

धारयंस्तु स तान् बाणाञ्छिखण्डी बह्वशोभत ।
राजतः पर्वतो यद्वत् त्रिभिः शृङ्गैरिवोत्थितैः ॥ १८ ॥

उन बाणोंको ललाटमें धारण किये शिखण्डी तीन उठे हुए शिखरोंसे संयुक्त रजतमय पर्वतके समान बड़ी शोभा पाने लगा ॥ १८ ॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासः सूतपुत्रेण संयुगे ।
कर्णं विव्याध समरे नवत्या निशितैः शरैः ॥ १९ ॥

युद्धस्थलमें सूतपुत्रके द्वारा अत्यन्त घायल किये हुए महाधनुर्धर शिखण्डीने नब्बे पैने बाणोंद्वारा कर्णको भी समर-भूमिमें घायल कर दिया ॥ १९ ॥

तस्य कर्णो हयान् हत्वा सारथिं च त्रिभिः शरैः ।
उन्ममाथ ध्वजं चास्य क्षुरप्रेण महारथः ॥ २० ॥

महारथी कर्णने शिखण्डीके घोड़ोंको मारकर तीन बाणोंद्वारा इसके सारथिको भी नष्ट कर दिया । फिर एक क्षुरप्रद्वारा उसकी ध्वजाको काट गिराया ॥ २० ॥

हताश्वात्तु ततो यानादवप्लुत्य महारथः ।
शक्तिं चिक्षेप कर्णाय संक्रुद्धः शत्रुतापनः ॥ २१ ॥

उस अश्वहीन रथसे कूदकर कुपित हुए शत्रुसंतापी महारथी शिखण्डीने कर्णपर शक्ति चलायी ॥ २१ ॥

तां छित्त्वा समरे कर्णस्त्रिभिर्भारत सायकैः ।
शिखण्डिनमथाविध्यन्नवभिर्निशितैः शरैः ॥ २२ ॥

भारत ! समराङ्गणमें तीन बाणोंद्वारा उस शक्तिको काट-कर कर्णने नौ तीखे बाणोंसे शिखण्डीको भी घायल कर दिया॥

कर्णचापच्युतान् बाणान् वर्जयंस्तु नरोत्तमः ।
अपयातस्ततस्तूर्णं शिखण्डी भृशविक्षतः ॥ २३ ॥

तब अत्यन्त घायल हुआ नरश्रेष्ठ शिखण्डी कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे बचनेके लिये तुरंत वहाँसे भाग निकला ॥ २३ ॥

ततः कर्णो महाराज पाण्डुसैन्यान्यशातयत् ।
तूलराशिं समासाद्य यथा वायुर्महाबलः ॥ २४ ॥

महाराज ! तदनन्तर महाबली कर्ण रूईके ढेरको वायुकी भाँति पाण्डव-सेनाओंको तहस-नहस करने लगा ॥ २४ ॥

धृष्टद्युम्नो महाराज तव पुत्रेण पीडितः ।
दुःशासनं त्रिभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ॥ २५ ॥

राजेन्द्र ! आपके पुत्र दुःशासनसे पीड़ित हो धृष्टद्युम्नने तीन बाणोंसे उसकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ २५ ॥

तस्य दुःशासनो बाहुं सव्यं विव्याध मारिष ।
स तेन रुक्मपुङ्खेन भल्लेनानतपर्वणा ॥ २६ ॥
धृष्टद्युम्नस्तु निर्विद्धः शरं घोरममर्षणः ।
दुःशासनाय संक्रुद्धः प्रेषयामास भारत ॥ २७ ॥

आर्य ! दुःशासनने भी उसकी बायीं भुजाको बींध डाला। भारत ! सुनहरे पंख और झुकी हुई गाँठवाले भल्लसे घायल हुए अमर्षशील धृष्टद्युम्नने अत्यन्त कुपित हो दुःशासनपर एक भयंकर बाण चलाया ॥ २६-२७ ॥

आपतन्तं महावेगं धृष्टद्युम्नसमीरितम् ।
शरैश्चिच्छेद पुत्रस्ते त्रिभिरेव विशाम्पते ॥ २८ ॥

प्रजानाथ ! धृष्टद्युम्नके चलाये हुए उस भयंकर वेग-शाली बाणको अपनी ओर आते देख आपके पुत्रने तीन ही बाणोंद्वारा उसे काट डाला ॥ २८ ॥

अथान्यैः सप्तदशभिर्भल्लैः कनकभूषणैः ।
धृष्टद्युम्नं समासाद्य बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ २९ ॥

तत्पश्चात् धृष्टद्युम्नके पास पहुँचकर उसने सुवर्ण-भूषित दूसरे सत्रह भल्लोंसे उसकी दोनों भुजाओं और छातीमें प्रहार किया ॥ २९ ॥

ततः स पार्षतः क्रुद्धो धनुश्चिच्छेद मारिष ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ ३० ॥

आर्य ! तब कुपित हुए द्रुपदकुमारने अत्यन्त तीखे क्षुरप्रसे दुःशासनके धनुषको काट दिया। यह देख सब लोग कोलाहल कर उठे ॥ ३० ॥

अथान्यद् धनुरादाय पुत्रस्ते प्रहसन्निव ।
धृष्टद्युम्नं शरव्रातैः समन्तात् पर्यवारयत् ॥ ३१ ॥

तदनन्तर आपके पुत्रने हँसते हुए-से दूसरा धनुष हाथ-में लेकर अपने बाणसमूहोंद्वारा धृष्टद्युम्नको सब ओरसे अवरुद्ध कर दिया ॥ ३१ ॥

तव पुत्रस्य ते दृष्ट्वा विक्रमं सुमहात्मनः ।
व्यस्मयन्त रणे योधाः सिद्धाश्चाप्सरसां गणाः ॥ ३२ ॥

आपके महामनस्वी पुत्रका वह पराक्रम देखकर रण-भूमिमें सब योद्धा विस्मित हो गये तथा आकाशमें सिद्धों और अप्सराओंके समूह भी आश्चर्य करने लगे ॥ ३२ ॥

धृष्टद्युम्नं न पश्याम घटमानं महाबलम् ।
दुःशासनेन संरुद्धं सिंहेनेव महागजम् ॥ ३३ ॥

जैसे सिंह किसी महान् गजराजको काबूमें कर ले, उसी प्रकार दुःशासनसे अवरुद्ध हो यथाशक्ति छूटनेकी चेष्टा करनेवाले महाबली धृष्टद्युम्नको हम देख नहीं पाते थे ॥ ३३ ॥

ततः सरथनागाश्वाः पञ्चालाः पाण्डुपूर्वज ।
सेनापतिं परीप्सन्तो रुरुधुस्तनयं तव ॥ ३४ ॥

पाण्डुके ज्येष्ठ भ्राता राजन् ! तब सेनापति धृष्टद्युम्नकी रक्षाके लिये रथों, हाथियों और घोड़ोंसहित पाञ्चालोंने आपके पुत्रको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ३४ ॥

ततः प्रववृते युद्धं तावकानां परैः सह ।
घोरं प्राणभृतां काले भीमरूपं परंतप ॥ ३५ ॥

परंतप ! फिर तो उस समय शत्रुओंके साथ आपके सैनिकोंका घोर युद्ध होने लगा, जो समस्त प्राणियोंके लिये भयंकर था ॥ ३५ ॥

नकुलं वृषसेनस्तु भित्त्वा पञ्चभिरायसैः ।
पितुः समीपे तिष्ठन् वै त्रिभिरन्यैरविध्यत ॥ ३६ ॥

अपने पिताके पास खड़े हुए वृषसेनने लोहेके पाँच बाणोंसे नकुलको घायल करके दूसरे तीन बाणोंद्वारा पुनः बींध डाला ॥ ३६ ॥

नकुलस्तु ततः शूरो वृषसेनं हसन्निव ।
नाराचेन सुतीक्ष्णेन विव्याध हृदये भृशम् ॥ ३७ ॥

तब शूरवीर नकुलने हँसते हुए-से अत्यन्त तीखे नाराच-द्वारा वृषसेनकी छातीमें गहरा आघात किया ॥ ३७ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुकर्षण ।
शत्रुं विव्याध विंशत्या स च तं पञ्चभिः शरैः ॥ ३८ ॥

शत्रुसूदन ! बलवान् शत्रुके द्वारा अत्यन्त घायल हुए वृषसेनने अपने वैरी नकुलको बीस बाणोंसे बींध डाला। फिर नकुलने भी उसे पाँच बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ३८ ॥

ततः शरसहस्रेण तावुभौ पुरुषर्षभौ ।
अन्योन्यमाच्छादयतामथोऽभज्यत वाहिनी ॥ ३९ ॥

तदनन्तर उन दोनों नरश्रेष्ठ वीरोंने सहस्रों बाणोंद्वारा एक दूसरेको आच्छादित कर दिया। इसी समय कौरव-सेनामें भगदड़ मच गयी ॥ ३९ ॥

स दृष्ट्वा प्रद्रुतां सेनां धार्तराष्ट्रस्य सूतजः ।
निवारयामास बलादनुसृत्य विशाम्पते ॥ ४० ॥

प्रजानाथ ! दुर्योधनकी सेनाको भागती देख सूतपुत्र कर्णने बलपूर्वक पीछा करके उसे रोका ॥ ४० ॥

निवृत्ते तु ततः कर्णे नकुलः कौरवान् ययौ ।
कर्णपुत्रस्तु समरे हित्वा नकुलमेव तु ॥ ४१ ॥
जुगोप चक्रं त्वरितो राधेयस्यैव मारिष ।

आर्य ! कर्णके लौट जानेपर नकुल कौरव-सैनिकोंकी ओर बढ़ चले और कर्णका पुत्र नकुलको छोड़कर समरभूमिमें शीघ्रतापूर्वक राधापुत्र कर्णके पहियोंकी ही रक्षा करने लगा ॥

उलूकस्तु रणे क्रुद्धः सहदेवेन वारितः ॥ ४२ ॥
तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा सहदेवः प्रतापवान् ।
सारथिं प्रेषयामास यमस्य सदनं प्रति ॥ ४३ ॥

उसी प्रकार रणभूमिमें कुपित हुए उलूकको सहदेवने रोक दिया । प्रतापी सहदेवने उलूकके चारों घोड़ोंको मारकर उसके सारथिको भी यमलोक भेज दिया ॥ ४२-४३ ॥

उलूकस्तु ततो यानादवप्लुत्य विशाम्पते ।
त्रिगर्तानां बलं तूर्णं जगाम पितृनन्दनः ॥ ४४ ॥

प्रजानाथ ! तदनन्तर पिताको आनन्द देनेवाला उलूक उस रथसे कूदकर तुरंत ही त्रिगर्तोंकी सेनामें चला गया ॥

सात्यकिः शकुनिं विद्ध्वा विंशत्या निशितैः शरैः ।
ध्वजं चिच्छेद भल्लेन सौबलस्य हसन्निव ॥ ४५ ॥

सात्यकिने बीस पैने बाणोंसे शकुनिको घायल करके हँसते हुए-से एक भल्लद्वारा सुबलपुत्रके ध्वजको भी काट दिया ॥ ४५ ॥

सौबलस्तस्य समरे क्रुद्धो राजन् प्रतापवान् ।
विदार्य कवचं भूयो ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम् ॥ ४६ ॥

राजन् ! समराङ्गणमें कुपित हुए प्रतापी सुबलपुत्रने सात्यकिके कवचको छिन्न-भिन्न करके उनके सुवर्णमय ध्वजको भी काट दिया ॥ ४६ ॥

तथैनं निशितैर्बाणैः सात्यकिः प्रत्यविध्यत ।
सारथिं च महाराज त्रिभिरेव समार्पयत् ॥ ४७ ॥

महाराज ! इसी प्रकार सात्यकिने भी उसे पैने बाणोंद्वारा घायल कर दिया और उसके सारथिपर भी तीन बाणोंका प्रहार किया ॥ ४७ ॥

अथास्य वाहांस्त्वरितः शरैर्निन्ये यमक्षयम् ।
ततोऽवप्लुत्य सहसा शकुनिर्भरतर्षभ ॥ ४८ ॥
आरुरोह रथं तूर्णमुलूकस्य महात्मनः ।

तत्पश्चात् उन्होंने शीघ्रतापूर्वक बाण मारकर शकुनिके घोड़ोंको यमलोक पहुँचा दिया । भरतश्रेष्ठ ! तब शकुनि भी सहसा अपने रथसे कूदकर महामनस्वी उलूकके रथपर तुरंत जा चढ़ा ॥ ४८½ ॥

अपोवाहाथ शीघ्रं स शैनेयाद् युद्धशालिनः ॥ ४९ ॥
सात्यकिस्तु रणे राजंस्तावकानामनीकिनीम् ।
अभिदुद्राव वेगेन ततोऽनीकमभज्यत ॥ ५० ॥

उलूक युद्धमें शोभा पानेवाले सात्यकिके निकटसे अपने रथको शीघ्र दूर हटा ले गया । राजन् ! तदनन्तर सात्यकिने रणभूमिमें आपके पुत्रोंकी सेनापर बड़े वेगसे आक्रमण किया । इससे उस सेनामें भगदड़ मच गयी ॥ ४९-५० ॥

शैनेयशरसंछन्नं तव सैन्यं विशाम्पते ।
भेजे दश दिशस्तूर्णं न्यपतच्च गतासुवत् ॥ ५१ ॥

प्रजानाथ ! सात्यकिके बाणोंसे ढकी हुई आपकी सेना शीघ्र ही दसों दिशाओंकी ओर भाग चली और प्राणहीन-सी होकर पृथ्वीपर गिरने लगी ॥ ५१ ॥

भीमसेनं तव सुतो वारयामास संयुगे ।
तं तु भीमो मुहूर्तेन व्यश्वसूतरथध्वजम् ॥ ५२ ॥
चक्रे लोकेश्वरं तत्र तेनातुष्यन्त वै जनाः ।

आपके पुत्र दुर्योधनने युद्धस्थलमें भीमसेनको रोका । भीमसेनने दो ही घड़ीमें इस जगत्‌के स्वामी दुर्योधनको घोड़े, सारथि, रथ और ध्वजसे वञ्चित कर दिया; इससे सब लोग बड़े प्रसन्न हुए ॥ ५२½ ॥

ततोऽपायान्नृपस्तत्र भीमसेनस्य गोचरात् ॥ ५३ ॥
कुरुसैन्यं ततः सर्वं भीमसेनमुपाद्रवत् ।
तत्र नादो महानासीद् भीमसेनं जिघांसताम् ॥ ५४ ॥

तब राजा दुर्योधन वहाँ भीमसेनके रास्तेसे दूर हट गया । फिर तो सारी कौरव-सेना भीमसेनपर टूट पड़ी । भीमसेनको मारनेकी इच्छासे आये हुए कौरवोंका महान् सिंहनाद सब ओर गूँज उठा ॥ ५३-५४ ॥

युधामन्युः कृपं विद्ध्वा धनुरस्याशु चिच्छिदे ।
अथान्यद् धनुरादाय कृपः शस्त्रभृतां वरः ॥ ५५ ॥
युधामन्योर्ध्वजं सूतं छत्रं चापातयत् क्षितौ ।
ततोऽपायाद् रथेनैव युधामन्युर्महारथः ॥ ५६ ॥

दूसरी ओर युधामन्युने कृपाचार्यको घायल करके तुरंत ही उनके धनुषको काट दिया । तदनन्तर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ कृपाचार्यने दूसरा धनुष हाथमें लेकर युधामन्युके ध्वज, सारथि और छत्रको धराशायी कर दिया । फिर तो महारथी युधामन्यु रथके द्वारा ही वहाँसे पलायन कर गया ॥५५-५६॥

उत्तमौजाश्च हार्दिक्यं भीमं भीमपराक्रमम् ।
छादयामास सहसा मेघो वृष्ट्येव पर्वतम् ॥ ५७ ॥

दूसरी ओर उत्तमौजाने भयंकर पराक्रमी और भयानक रूपवाले कृतवर्माको अपने बाणोंद्वारा सहसा उसी प्रकार आच्छादित कर दिया, जैसे मेघ जलकी वर्षाद्वारा पर्वतको ढक देता है ॥ ५७ ॥

तद् युद्धमासीत् सुमहद् घोररूपं परंतप ।
यादृशं न मया युद्धं दृष्टपूर्वं विशाम्पते ॥ ५८ ॥

परंतप ! उन दोनोंका वह महान् युद्ध बड़ा भयंकर

था। प्रजानाथ ! वैसा युद्ध मैंने पहले कभी नहीं देखा था ॥

कृतवर्मा ततो राजन्नुत्तमौजसमाहवे।
हृदि विव्याध सहसा रथोपस्थ उपाविशत् ॥ ५९ ॥

राजन् ! तदनन्तर कृतवर्माने युद्धस्थलमें सहसा उत्तमौजाकी छातीमें गहरा आघात किया। उत्तमौजा अचेत-सा होकर रथके पिछले भागमें बैठ गया ॥ ५९ ॥

सारथिस्तमपोवाह रथेन रथिनां वरम्।
कुरुसैन्यं ततः सर्वं भीमसेनमुपाद्रवत् ॥ ६० ॥

तब उसका सारथि रथियोंमें श्रेष्ठ उत्तमौजाको रथके द्वारा वहाँसे दूर हटा ले गया। फिर तो सारी कौरव सेना भीमसेनपर टूट पड़ी ॥ ६० ॥

दुःशासनः सौबलश्च गजानीकेन पाण्डवम्।
महता परिवार्यैव क्षुद्रकैरभ्यताडयत् ॥ ६१ ॥

दुःशासन और शकुनिने विशाल गजसेनाके द्वारा पाण्डुपुत्र भीमसेनको चारों ओरसे घेरकर उनपर बाणोंका प्रहार आरम्भ कर दिया ॥ ६१ ॥

ततो भीमः शरशतैर्दुर्योधनममर्षणम्।
विमुखीकृत्य तरसा गजानीकमुपाद्रवत् ॥ ६२ ॥

उस समय भीमसेनने सैकड़ों बाणोंकी मारसे अमर्षशील दुर्योधनको युद्धसे विमुख करके हाथियोंकी उस सेनापर वेगपूर्वक आक्रमण किया ॥ ६२ ॥

तमापतन्तं सहसा गजानीकं वृकोदरः।
दृष्ट्वैव सुभृशं क्रुद्धो दिव्यमस्त्रमुदैरयत् ॥ ६३ ॥

सहसा अपनी ओर आती हुई उस गजसेनाको देखते ही भीमसेन अत्यन्त कुपित हो उठे और दिव्यास्त्रोंका प्रयोग करने लगे ॥ ६३ ॥

गजैर्गजानभ्यहनद् वज्रेणेन्द्र इवासुरान्।
ततोऽन्तरिक्षं बाणौघैः शलभैरिव पादपम् ॥ ६४ ॥
छादयामास समरे गजान् निघ्नन् वृकोदरः।

जैसे इन्द्र वज्रके द्वारा असुरोंका संहार करते हैं, उसी प्रकार भीमसेनने हाथियोंसे ही हाथियोंको मार डाला। तत्पश्चात् हाथियोंका संहार करते हुए भीमसेनने समरभूमिमें अपने बाणसमूहोंद्वारा सारे आकाशको उसी प्रकार ढक दिया, जैसे टिड्डियोंके दलोंसे वृक्ष आच्छादित हो जाता है ॥६४½॥

ततः कुञ्जरयूथानि समेतानि सहस्रशः ॥ ६५ ॥
व्यधमत् तरसा भीमो मेघसङ्घानिवानिलः।

इसके बाद भीमसेनने जैसे वायु मेघोंकी घटाको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार वहाँ एकत्र हुए हाथियोंके सहस्रों समूहोंको वेगपूर्वक नष्ट कर दिया ॥ ६५½ ॥

सुवर्णजालापिहिता मणिजालैश्च कुञ्जराः ॥ ६६ ॥
रेजुरभ्यधिकं संख्ये विद्युत्वन्त इवाम्बुदाः।

सोने और मणियोंकी जालियोंसे ढके हुए वे हाथी युद्धस्थलमें बिजलियोंसहित मेघोंके समान अधिक प्रकाशित हो रहे थे ॥ ६६½ ॥

ते वध्यमाना भीमेन गजा राजन् विदुद्रुवुः ॥ ६७ ॥
केचिद् विभिन्नहृदयाः कुञ्जरा न्यपतन् भुवि।

राजन् ! भीमसेनकी मार खाकर सारे हाथी भाग चले। कितने ही गजराज हृदय फट जानेके कारण पृथ्वीपर गिर पड़े॥

पतितैर्निपतद्भिश्च गजैर्हेमविभूषितैः ॥ ६८ ॥
अशोभत मही तत्र विशीर्णैरिव पर्वतैः।

गिरे और गिरते हुए सुवर्णभूषित हाथियोंसे ढकी हुई रणभूमि ऐसी शोभा पा रही थी, मानो वहाँ ढेर-के-ढेर पर्वत-खण्ड बिखरे पड़े हों ॥ ६८½ ॥

दीप्ताभै रत्नवद्भिश्च पतितैर्गजयोधिभिः ॥ ६९ ॥
रराज भूमिः पतितैः क्षीणपुण्यैरिव ग्रहैः।

दीप्तिमती प्रभा तथा रत्नोंके आभूषण धारण करके गिरे हुए हाथीसवारोंसे वह भूमि वैसी ही शोभा पा रही थी, मानो पुण्य क्षीण हो जानेपर स्वर्गलोकके ग्रह वहाँ भूतलपर गिर पड़े हों ॥ ६९½ ॥

ततो भिन्नकटा नागा भिन्नकुम्भकरास्तथा ॥ ७० ॥
दुद्रुवुः शतशः संख्ये भीमसेनशराहताः।

तदनन्तर भीमसेनके बाणोंसे आहत हो फूटे गण्डस्थल, विदीर्ण कुम्भस्थल और छिन्न-भिन्न शुण्डदण्डवाले सैकड़ों हाथी युद्धस्थलमें भागने लगे ॥ ७०½ ॥

केचिद् वमन्तो रुधिरं भयार्ताः पर्वतोपमाः ॥ ७१ ॥
व्यद्रवञ्छरविद्धाङ्गा धातुचित्रा इवाचलाः।

भयसे पीड़ित हुए कितने ही पर्वताकार हाथी अपने सारे अङ्गोंमें बाणोंसे विद्ध होकर भयसे पीड़ित हो रक्त वमन करते हुए भागे जा रहे थे। उस समय विभिन्न धातुओंके कारण विचित्र दिखायी देनेवाले पर्वतोंके समान उनकी शोभा हो रही थी ॥ ७१½ ॥

महाभुजगसंकाशौ चन्दनागुरुरूषितौ ॥ ७२ ॥
अपश्यं भीमसेनस्य धनुर्विक्षिपतो भुजौ।

धनुष खींचते हुए भीमसेनकी चन्दन और अगुरुसे चर्चित भुजाएँ मुझे दो बड़े सर्पोंके समान दिखायी देती थीं॥

तस्य ज्यातलनिर्घोषं श्रुत्वाशनिसमस्वनम् ॥ ७३ ॥
विमुञ्चन्तः शकृन्मूत्रं गजाः प्राद्रुद्रुवुर्भृशम्।

बिजलीकी गड़गड़ाहटके समान उनकी प्रत्यञ्चाकी भयंकर टङ्कार सुनकर बहुत-से हाथी मल-मूत्र करते हुए बड़े जोरसे भाग रहे थे ॥ ७३½ ॥

भीमसेनस्य तत् कर्म राजन्नेकस्य धीमतः।
निघ्नतः सर्वभूतानि रुद्रस्येव च निर्बभौ ॥ ७४ ॥

राजन्! अकेले बुद्धिमान् भीमसेनका वह कर्म समस्त प्राणियोंका संहार करते हुए रुद्रके समान जान पड़ता था ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक इकसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६१ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ½ श्लोक मिलाकर कुल ७४½ श्लोक हैं)

द्विषष्टितमोऽध्यायः

युधिष्ठिरपर कौरवसैनिकोंका आक्रमण

संजय उवाच

ततः श्वेताश्वसंयुक्ते नारायणसमाहिते।
तिष्ठन् रथवरे श्रीमानर्जुनः समपद्यत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णद्वारा सावधानीसे संचालित और श्वेत घोड़ोंसे युक्त उत्तमरथपर खड़े हुए श्रीमान् अर्जुन वहाँ आ पहुँचे ॥ १ ॥

तद् बलं नृपतिश्रेष्ठ तावकं विजयो रणे।
व्यक्षोभयदुदीर्णाश्वं महोदधिमिवानिलः ॥ २ ॥

नृपश्रेष्ठ! जैसे प्रचण्ड वायु महासागरको विक्षुब्ध कर देती है, उसी प्रकार रणभूमिमें स्थित प्रचण्ड अश्वोंसे युक्त आपकी सेनामें अर्जुनने हलचल मचा दी ॥ २ ॥

दुर्योधनस्तव सुतः प्रमत्ते श्वेतवाहने।
अभ्येत्य सहसा क्रुद्धः सैन्यार्धेनाभिसंवृतः ॥ ३ ॥
पर्यवारयदायान्तं युधिष्ठिरममर्षणम्।
क्षुरप्राणां त्रिसप्तत्या ततोऽविध्यत पाण्डवम् ॥ ४ ॥

जब श्वेतवाहन अर्जुन असावधान थे, उसी समय क्रोधमें भरे हुए दुर्योधनने सहसा आधी सेनाके साथ आकर अपनी ओर आते हुए अमर्षशील पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको चारों ओरसे घेर लिया। साथ ही तिहत्तर क्षुरप्रोंद्वारा उन्हें घायल कर दिया ॥ ३-४ ॥

अक्रुध्यत भृशं तत्र कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
स भल्लांस्त्रिंशतस्तूर्णं तव पुत्रे न्यवेशयत् ॥ ५ ॥

तब वहाँ कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर अत्यन्त कुपित हो उठे। उन्होंने आपके पुत्रपर तीस भल्लोंका प्रहार किया ॥ ५ ॥

ततोऽधावन्त कौरव्या जिघृक्षन्तो युधिष्ठिरम्।
दुष्टभावान् परान् ज्ञात्वा समवेता महारथाः ॥ ६ ॥
आजग्मुस्तं परीप्सन्तः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्।

तदनन्तर कौरव-सैनिक युधिष्ठिरको पकड़नेके लिये दौड़े। शत्रुओंकी यह दुर्भावना जानकर एकत्र हुए पाण्डव-महारथी कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये वहाँ आ पहुँचे ६½

नकुलः सहदेवश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ७ ॥
अक्षौहिण्या परिवृतास्तेऽभ्यधावन् युधिष्ठिरम्।

नकुल, सहदेव और द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न—ये एक अक्षौहिणी सेना साथ लेकर युधिष्ठिरके पास दौड़े आये ॥ ७½ ॥

भीमसेनश्च समरे मृद्नंस्तव महारथान् ॥ ८ ॥
अभ्यधावदभिप्रेप्सू राजानं शत्रुभिर्वृतम्।

भीमसेन भी शत्रुओंसे घिरे हुए राजा युधिष्ठिरको बचानेके लिये समराङ्गणमें आपके महारथियोंको रौंदते हुए उनके पास दौड़े आये ॥ ८½ ॥

तांस्तु सर्वान् महेष्वासान् कर्णो वैकर्तनो नृप ॥ ९ ॥
शरवर्षेण महता प्रत्यवारयदागतान्।

नरेश्वर! वैकर्तन कर्णने वहाँ आये हुए सम्पूर्ण महाधनुर्धरोंको अपने बाणोंकी भारी वर्षासे रोक दिया ॥ ९½ ॥

शरौघान् विसृजन्तस्ते प्रेरयन्तश्च तोमरान् ॥ १० ॥
न शेकुर्यत्नवन्तोऽपि राधेयं प्रतिवीक्षितुम्।

वे सब महारथी प्रयत्नपूर्वक बाणसमूहोंकी वर्षा और तोमरोंका प्रहार करते हुए भी राधापुत्रको देख न सके १०½

तांश्च सर्वान् महेष्वासान् सर्वशस्त्रास्त्रपारगः ॥ ११ ॥
महता शरवर्षेण राधेयः प्रत्यवारयत्।

सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंके पारंगत विद्वान् राधापुत्र कर्णने बड़ी भारी बाणवर्षा करके उन समस्त धनुर्धरोंको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ११½ ॥

दुर्योधनं च विंशत्या शीघ्रमस्त्रमुदीरयन् ॥ १२ ॥
अविध्यत् तूर्णमभ्येत्य सहदेवः प्रतापवान्।

इसी समय प्रतापी सहदेवने आकर शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलाते हुए तुरंत ही बीस बाणोंसे दुर्योधनको बींध डाला १२½

स विद्धः सहदेवेन रराजाचलसंनिभः ॥ १३ ॥
प्रभिन्न इव मातङ्गो रुधिरेण परिप्लुतः।

सहदेवके बाणोंसे विद्ध होकर दुर्योधन अनेक शिखरोंवाले पर्वतके समान सुशोभित हुआ। खूनसे लथपथ होकर वह मदकी धारा बहानेवाले मदमत्त हाथीके समान जान पड़ता था ॥ १३½ ॥

दृष्ट्वा तव सुतं तत्र गाढविद्धं सुतेजनैः ॥ १४ ॥
अभ्यधावद् दृढं क्रुद्धो राधेयो रथिनां वरः।

रथियोंमें श्रेष्ठ राधापुत्र कर्ण आपके पुत्रको तेज बाणोंसे अत्यन्त घायल हुआ देख कुपित होकर दौड़ा ॥ १४½ ॥

दुर्योधनं तथा दृष्ट्वा शीघ्रमस्त्रमुदैरयत् ॥ १५ ॥
तेन यौधिष्ठिरं सैन्यमवधीत् पार्षतं तथा ।

दुर्योधनकी वैसी अवस्था देख उसने शीघ्र अपना अस्त्र प्रकट किया और उसीके द्वारा युधिष्ठिरकी सेना एवं द्रुपदपुत्रको घायल कर दिया ॥ १५½ ॥

ततो यौधिष्ठिरं सैन्यं वध्यमानं महात्मना ॥ १६ ॥
सहसा प्राद्रवद् राजन् सूतपुत्रशरार्दितम् ।

राजन् ! महामना सूतपुत्र कर्णकी मार खाकर उसके बाणोंसे पीड़ित हो युधिष्ठिरकी सेना सहसा भाग चली ।१६½।

विविधा विशिखास्तत्र सम्पतन्तः परस्परम् ॥ १७ ॥
फलैः पुङ्खान् समाजग्मुः सूतपुत्रधनुश्च्युताः ।

सूतपुत्र कर्णके धनुषसे छूटकर परस्पर गिरते हुए नाना प्रकारके बाण अपने फलोंद्वारा पहलेके गिरे हुए बाणोंके पंखोंमें जुड़ जाते थे ॥ १७½ ॥

अन्तरिक्षे शरौघाणां पततां च परस्परम् ॥ १८ ॥
संघर्षेण महाराज पावकः समजायत ।

महाराज ! आकाशमें परस्पर टकराते हुए बाणसमूहोंकी रगड़से आग प्रकट हो जाती थी ॥ १८½ ॥

ततो दश दिशः कर्णः शलभैरिव यायिभिः ॥ १९ ॥
अभ्यहंस्तरसा राजञ्शरैः परशरीरगैः ।

राजन् ! तदनन्तर कर्णने पतङ्गोंकी तरह चलकर शत्रुओंके शरीरोंमें घुस जानेवाले बाणोंद्वारा वेगपूर्वक दसों दिशाओंमें प्रहार आरम्भ किया ॥ १९½ ॥

रक्तचन्दनसंदिग्धौ मणिहेमविभूषितौ ॥ २० ॥
बाहू व्यत्यक्षिपत् कर्णः परमास्त्रं विदर्शयन् ।

दिव्यास्त्रोंका प्रदर्शन करता हुआ कर्ण मणि एवं सुवर्णके आभूषणोंसे विभूषित तथा लाल चन्दनसे चर्चित दोनों भुजाओंको बारंबार हिला रहा था ॥ २०½ ॥

ततः सर्वा दिशो राजन् सायकैर्विप्रमोहयन् ॥ २१ ॥
अपीडयद् भृशं कर्णो धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।

राजन् ! तत्पश्चात् अपने बाणोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको मोहित करते हुए कर्णने धर्मराज युधिष्ठिरको अत्यन्त पीड़ित कर दिया ॥ २१½ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ २२ ॥
निशितैरिषुभिः कर्णं पञ्चाशद्भिः समार्पयत् ।

महाराज ! इससे कुपित हुए धर्मपुत्र युधिष्ठिरने कर्णपर पचास पैने बाणोंका प्रहार किया ॥ २२½ ॥

बाणान्धकारमभवत्तद् युद्धं घोरदर्शनम् ॥ २३ ॥
हाहाकारो महानासीत्तावकानां विशाम्पते ।
वध्यमाने तदा सैन्ये धर्मपुत्रेण मारिष ॥ २४ ॥

उस समय भयंकर दिखायी देनेवाला वह युद्ध बाणोंके अन्धकारसे व्याप्त हो गया । माननीय प्रजानाथ ! जब धर्मपुत्र युधिष्ठिर कौरवसेनाका वध करने लगे, उस समय आपके योद्धाओंका महान् हाहाकार सब ओर गूँज उठा ॥ २३-२४ ॥

सायकैर्विविधैस्तीक्ष्णैः कङ्कपत्रैः शिलाशितैः ।
भल्लैरनेकैर्विविधैः शक्त्यृष्टिमुसलैरपि ॥ २५ ॥
यत्र यत्र स धर्मात्मा दुष्टां दृष्टिं व्यसर्जयत् ।
तत्र तत्र व्यशीर्यन्त तावका भरतर्षभ ॥ २६ ॥

भरतश्रेष्ठ ! धर्मात्मा युधिष्ठिर शिलापर तेज किये हुए कङ्कपत्रयुक्त एवं नाना प्रकारके पैने बाणों, भाँति-भाँतिके बहुसंख्यक भल्लों तथा शक्ति, ऋष्टि एवं मुसलोंद्वारा प्रहार करते हुए जहाँ-जहाँ क्रोधरूपी दोषसे पूर्ण दृष्टि डालते थे, वहीं-वहीं आपके सैनिक छिन्न-भिन्न होकर बिखर जाते थे ॥ २५–२६ ॥

कर्णोऽपि भृशसंक्रुद्धो धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।
नाराचैरर्धचन्द्रैश्च वत्सदन्तैश्च संयुगे ॥ २७ ॥
अमर्षी क्रोधनश्चैव रोषप्रस्फुरिताननः ।
सायकैरप्रमेयात्मा युधिष्ठिरमभिद्रवत् ॥ २८ ॥

कर्ण भी अत्यन्त क्रोधमें भरा हुआ था । वह अमर्षशील और क्रोधी तो था ही, रोषसे उसका मुख फड़क रहा था । अप्रमेय आत्मबलसे सम्पन्न उस वीरने युद्धस्थलमें नाराचों, अर्धचन्द्रों तथा वत्सदन्तोंद्वारा धर्मराज युधिष्ठिरपर धावा किया ॥ २७–२८ ॥

युधिष्ठिरश्चापि स तं स्वर्णपुङ्खैः शितैः शरैः ।
प्रहसन्निव तं कर्णः कङ्कपत्रैः शिलाशितैः ॥ २९ ॥
उरस्यविध्यद् राजानं त्रिभिर्भल्लैश्च पाण्डवम् ।

इसी प्रकार युधिष्ठिरने भी कर्णको सोनेकी पाँखवाले पैने बाणोंद्वारा घायल कर दिया । तब कर्णने हँसते हुए-से शिलापर तेज किये गये कङ्कपत्रयुक्त तीन भल्लोंद्वारा पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ २९½ ॥

स पीडितो भृशं तेन धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ३० ॥
उपविश्य रथोपस्थे सूतं याहीत्यचोदयत् ।

उस प्रहारसे अत्यन्त पीड़ित हो धर्मराज युधिष्ठिर रथके पिछले भागमें बैठ गये और सारथिको आदेश देते हुए बोले—'यहाँसे अन्यत्र रथ ले चलो' ॥ ३०½ ॥

अक्रोशन्त ततः सर्वे धार्तराष्ट्राः सराजकाः ॥ ३१ ॥
गृह्णीध्वमिति राजानमभ्यधावन्त सर्वशः ।

उस समय राजा दुर्योधनसहित आपके सभी पुत्र इस प्रकार कोलाहल करने लगे—'राजा युधिष्ठिरको पकड़ लो' ऐसा कहकर वे सभी ओरसे उनकी ओर दौड़ पड़े ॥३१½॥

ततः शताः सप्तदश केकयानां प्रहारिणाम् ॥ ३२ ॥
पञ्चालैः सहिता राजन् धार्तराष्ट्रान् न्यवारयन् ।

राजन्! तब प्रहारकुशल सत्रह सौ केकय योद्धा पाञ्चालों-के साथ आकर आपके पुत्रोंको रोकने लगे ॥ ३२½ ॥

तस्मिन् सुतुमुले युद्धे वर्तमाने जनक्षये ॥ ३३ ॥
दुर्योधनश्च भीमश्च समेयातां महाबलौ ॥ ३४ ॥

जिस समय वह जनसंहारकारी भयंकर युद्ध चल रहा था, उस समय महाबली दुर्योधन और भीमसेन एक दूसरेसे जूझने लगे ॥ ३३-३४ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक बासठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

कर्णद्वारा नकुल-सहदेवसहित युधिष्ठिरकी पराजय एवं पीड़ित होकर युधिष्ठिरका अपनी छावनीमें जाकर विश्राम करना

संजय उवाच

कर्णोऽपि शरजालेन केकयानां महारथान्।
व्यधमत् परमेष्वासानग्रतः पर्यवस्थितान् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! कर्ण भी अपने बाण-समूहसे सामने खड़े हुए महाधनुर्धर केकय-महारथियोंका विनाश करने लगा ॥ १ ॥

तेषां प्रयतमानानां राधेयस्य निवारणे।
रथान् पञ्चशतान् कर्णः प्राहिणोद् यमसादनम् ॥ २ ॥

राधापुत्र कर्णको रोकनेके लिये प्रयत्न करनेवाले पाँच सौ रथियोंको उसने यमलोक पहुँचा दिया ॥ २ ॥

अविषह्यं ततो दृष्ट्वा राधेयं युधि योधिनः।
भीमसेनमुपागच्छन् कर्णबाणप्रपीडिताः ॥ ३ ॥

कर्णके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित हुए पाण्डव-योद्धा युद्ध-स्थलमें राधापुत्र कर्णको असह्य देखकर भीमसेनके पास चले आये ॥ ३ ॥

रथानीकं विदार्यैव शरजालैरनेकधा।
कर्ण एकरथेनैव युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ४ ॥

तदनन्तर कर्णने अपने बाणोंके समूहसे पाण्डवोंकी रथ-सेनाको अनेक भागोंमें विदीर्ण करके एकमात्र रथके द्वारा ही युधिष्ठिरपर धावा किया ॥ ४ ॥

सेनानिवेशमार्च्छन्तं मार्गणैः क्षतविक्षतम्।
यमयोर्मध्यगं वीरं शनैर्यान्तं विचेतसम् ॥ ५ ॥
समासाद्य तु राजानं दुर्योधनहितेप्सया।
सूतपुत्रस्त्रिभिस्तीक्ष्णैर्विव्याध परमेषुभिः ॥ ६ ॥

उस समय वीर युधिष्ठिर बाणोंसे क्षत-विक्षत होकर अचेत-से हो रहे थे और नकुल-सहदेवके बीचमें होकर धीरे-धीरे छावनीकी ओर जा रहे थे। उस अवस्थामें राजा युधिष्ठिरके पास पहुँचकर सूतपुत्र कर्णने दुर्योधनके हितकी इच्छासे परम उत्तम तीन तीखे बाणोंद्वारा उन्हें पुनः घायल कर दिया ॥ ५-६ ॥

तथैव राजा राधेयं प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे।
शरैस्त्रिभिश्च यन्तारं चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ ७ ॥

इसी प्रकार राजा युधिष्ठिरने भी राधापुत्र कर्णकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी। फिर तीन बाणोंसे सारथिको और चारसे चारों घोड़ोंको घायल कर दिया ॥ ७ ॥

चक्ररक्षौ तु पार्थस्य माद्रीपुत्रौ परंतपौ।
तावप्यधावतां कर्णं राजानं मा वधीरिति ॥ ८ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले माद्रीकुमार नकुल और सहदेव राजा युधिष्ठिरके चक्ररक्षक थे। वे दोनों भी यह सोचकर कर्णकी ओर दौड़े कि यह राजा युधिष्ठिरका वध न कर डाले ॥

तौ पृथक् शरवर्षाभ्यां राधेयमभ्यवर्षताम्।
नकुलः सहदेवश्च परमं यत्नमास्थितौ ॥ ९ ॥

नकुल और सहदेव दोनों भाई उत्तम प्रयत्नका सहारा लेकर राधापुत्र कर्णपर पृथक्-पृथक् बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥

तथैव तौ प्रत्यविध्यत् सूतपुत्रः प्रतापवान्।
भल्लाभ्यां शितधाराभ्यां महात्मानावरिंदमौ ॥ १० ॥

इसी प्रकार प्रतापी सूतपुत्रने भी तेज धारवाले दो भल्लों-द्वारा शत्रुओंका दमन करनेवाले उन दोनों महामनस्वी वीरों-को घायल कर दिया ॥ १० ॥

दन्तवर्णांस्तु राधेयो निजघान मनोजवान्।
युधिष्ठिरस्य संग्रामे कालवालान् हयोत्तमान् ॥ ११ ॥

जिनकी पूँछ और गर्दनके बाल काले तथा शरीरका रंग श्वेत था और जो मनके समान तीव्र वेगसे चलनेवाले थे, युधिष्ठिरके उन उत्तम घोड़ोंको संग्रामभूमिमें राधापुत्र कर्णने मार डाला ॥ ११ ॥

ततोऽपरेण भल्लेन शिरस्त्राणमपातयत्।
कौन्तेयस्य महेष्वासः प्रहसन्निव सूतजः ॥ १२ ॥

तत्पश्चात् महाधनुर्धर सूतपुत्रने हँसते हुए-से एक दूसरे भल्लके द्वारा कुन्तीकुमारके शिरस्त्राणको नीचे गिरा दिया ॥

तथैव नकुलस्यापि हयान् हत्वा प्रतापवान् ।
ईषां धनुश्च चिच्छेद माद्रीपुत्रस्य धीमतः ॥ १३ ॥

इसी प्रकार प्रतापी कर्णने बुद्धिमान् माद्रीकुमार नकुलके भी घोड़ोंको मारकर ईषादण्ड और धनुषको भी काट दिया ॥

तौ हताश्वौ हतरथौ पाण्डवौ भृशविक्षतौ ।
भ्रातरावारुरुहतुः सहदेवरथं तदा ॥ १४ ॥

घोड़ों एवं रथोंके नष्ट हो जानेपर अत्यन्त घायल हुए वे दोनों भाई पाण्डव उस समय सहदेवके रथपर जा चढ़े ॥

तौ दृष्ट्वा मातुलस्तत्र विरथौ परवीरहा ।
अभ्यभाषत राधेयं मद्रराजोऽनुकम्पया ॥ १५ ॥

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले मामा मद्रराज शल्यने उन दोनों भाइयोंको रथहीन हुआ देख कृपापूर्वक राधापुत्र कर्णसे कहा—॥ १५ ॥

योद्धव्यमद्य पार्थेन फाल्गुनेन त्वया सह ।
किमर्थं धर्मराजेन युध्यसे भृशरोषितः ॥ १६ ॥

'कर्ण ! आज तुम्हें कुन्तीकुमार अर्जुनके साथ युद्ध करना है । फिर अत्यन्त रोषमें भरकर धर्मराजके साथ किस लिये जूझ रहे हो ? ॥ १६ ॥

क्षीणशस्त्रास्त्रकवचः क्षीणबाणो विबाणधिः ।
श्रान्तसारथिवाहश्च च्छन्नोऽस्त्रैररिभिस्तथा ॥ १७ ॥
पार्थमासाद्य राधेय उपहास्यो भविष्यसि ।

'इनके अस्त्र-शस्त्र और कवच नष्ट हो गये हैं। तीर और तरकस भी कट गये हैं । सारथि और घोड़े भी थके हुए हैं तथा शत्रुओंने इन्हें अस्त्रोंद्वारा आच्छादित कर दिया है । राधानन्दन ! अर्जुनके सामने पहुँचकर तुम उपहासके पात्र बन जाओगे' ॥ १७½ ॥

एवमुक्तोऽपि कर्णस्तु मद्रराजेन संयुगे ॥ १८ ॥
तथैव कर्णः संरब्धो युधिष्ठिरमताडयत् ।
शरैस्तीक्ष्णैः पराविध्य माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ १९ ॥
प्रहस्य समरे कर्णश्चकार विमुखं शरैः ।

युद्धस्थलमें मद्रराज शल्यके ऐसा कहनेपर भी कर्ण पूर्ववत् रोषमें भरकर युधिष्ठिरको बाणोंद्वारा पीड़ित करता रहा। माद्रीकुमार पाण्डुपुत्र नकुल-सहदेवको तीखे बाणोंसे घायल करके कर्णने हँसकर समराङ्गणमें बाणोंके प्रहारसे] युधिष्ठिरको युद्धसे विमुख कर दिया ॥ १८-१९½ ॥

ततः शल्यः प्रहस्येदं कर्णं पुनरुवाच ह ॥ २० ॥
रथस्थमतिसंरब्धं युधिष्ठिरवधे धृतम् ।

तब शल्यने हँसकर युधिष्ठिरके वधका दृढ़ निश्चय किये अत्यन्त क्रोधमें भरकर रथपर बैठे हुए कर्णसे पुनः इस प्रकार कहा—॥ २०½ ॥

यदर्थं धार्तराष्ट्रेण सततं मानितो भवान् ॥ २१ ॥
तं पार्थं जहि राधेय किं ते हत्वा युधिष्ठिरम् ।

'राधापुत्र ! दुर्योधनने जिनसे जूझनेके लिये तुम्हारा सदा सम्मान किया है, उन कुन्तीकुमार अर्जुनको मारो । युधिष्ठिरका वध करनेसे तुम्हें क्या मिलेगा ? ॥ २१½ ॥

(हते ह्यस्मिन् ध्रुवं पार्थः सर्वाञ्जेष्यति नो रथान् ।
तस्मिन् हि धार्तराष्ट्रस्य निहते तु ध्रुवो जयः ॥

'इनके मारे जानेपर अर्जुन निश्चय ही हमारे सारे महारथियोंको जीत लेंगे । परंतु अर्जुनके मारे जानेपर धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनकी विजय अवश्यम्भावी है ॥

ध्वजोऽसौ दृश्यते तस्य रोचमानोंऽशुमानिव ।
एनं जहि महाबाहो किं ते हत्वा युधिष्ठिरम् ॥)

'महाबाहो ! अर्जुनका यह सूर्यके समान प्रकाशमान ध्वज दिखायी देता है । तुम इन्हींको मारो, युधिष्ठिरका वध करनेसे तुम्हारा क्या लाभ है ? ॥

शङ्खयोर्ध्मायतोः शब्दः सुमहानेष कृष्णयोः ॥ २२ ॥
श्रूयते चापघोषोऽयं प्रावृषीवाम्बुदस्य ह ।

'श्रीकृष्ण और अर्जुन शङ्ख बजा रहे हैं, जिनका यह महान् शब्द सुनायी पड़ता है । वर्षाकालके मेघकी गर्जनाके समान उनके धनुषका यह गम्भीर घोष कानोंमें पड़ रहा है ॥ २२½ ॥

असौ निघ्नन् रथोदारानर्जुनः शरवृष्टिभिः ॥ २३ ॥
सर्वां ग्रसति नः सेनां कर्ण पश्यैनमाहवे ।

'कर्ण ! ये अर्जुन अपने बाणोंकी वर्षासे बड़े-बड़े रथियोंका संहार करते हुए हमारी सारी सेनाको कालका ग्रास बना रहे हैं । युद्धस्थलमें इनकी ओर तो देखो ॥ २३½ ॥

पृष्ठरक्षौ च शूरस्य युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ २४ ॥
उत्तरं चास्य वै शूरश्चक्रं रक्षति सात्यकिः ।
धृष्टद्युम्नस्तथा चास्य चक्रं रक्षति दक्षिणम् ॥ २५ ॥

'शूरवीर अर्जुनके पृष्ठभागकी रक्षा युधामन्यु और उत्तमौजा कर रहे हैं । शौर्यसम्पन्न सात्यकि उनके उत्तर (बायें) चक्रकी रक्षा करते हैं और धृष्टद्युम्न दाहिने चक्रकी ॥ २४-२५ ॥

भीमसेनश्च वै राज्ञा धार्तराष्ट्रेण युध्यते ।
यथा न हन्यात्तं भीमः सर्वेषां नोऽद्य पश्यताम् ॥ २६ ॥
तथा राधेय क्रियतां राजा मुच्येत नो यथा ।

'भीमसेन राजा दुर्योधनके साथ युद्ध करते हैं । राधानन्दन ! हम सब लोगोंके देखते-देखते आज भीमसेन जिस प्रकार उसे मार न डालें, वैसा प्रयत्न करो । जैसे भी सम्भव हो, हमारे राजाको भीमसेनसे छुटकारा मिलना ही चाहिये२६½

पश्यैनं भीमसेनेन ग्रस्तमाहवशोभिनम् ॥ २७ ॥
यदि त्वासाद्य मुच्येत विस्मयः सुमहान् भवेत् ।

'देखो, युद्धमें शोभा पानेवाले दुर्योधनको भीमसेनने ग्रस लिया है । यदि तुम्हें पाकर वह संकटसे छूट जाय तो

यह महान् आश्चर्यकी घटना होगी ॥ २७½ ॥

परित्राह्येनमभ्येत्य संशयं परमं गतम् ॥ २८ ॥
किं तु माद्रीसुतौ हत्वा राजानं च युधिष्ठिरम् ।

'तुम चलकर जीवनके भारी संशयमें पड़े हुए राजा दुर्योधनको बचाओ। आज माद्रीकुमार नकुल-सहदेव तथा राजा युधिष्ठिरका वध करके क्या होगा?' ॥ २८½ ॥

इति शल्यवचः श्रुत्वा राधेयः पृथिवीपते ॥ २९ ॥
दृष्ट्वा दुर्योधनं चैव भीमग्रस्तं महाहवे ।
राजगृद्धी भृशं चैव शल्यवाक्यप्रचोदितः ॥ ३० ॥
अजातशत्रुमुत्सृज्य माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
तव पुत्रं परित्रातुमभ्यधावत वीर्यवान् ॥ ३१ ॥

पृथ्वीनाथ! शल्यकी यह बात सुनकर तथा महासमरमें दुर्योधनको भीमसेनसे ग्रस्त हुआ देखकर शल्यके वचनोंसे प्रेरित हो राजाको अधिक चाहनेवाला पराक्रमी कर्ण अजातशत्रु युधिष्ठिर और माद्रीकुमार पाण्डुपुत्र नकुल-सहदेवको छोड़कर आपके पुत्रकी रक्षा करनेके लिये दौड़ा ॥२९-३१॥

मद्रराजप्रणुदितैरश्वैराकाशगैरिव ।
गते कर्णे तु कौन्तेयः पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३२ ॥
अपायाज्जवनैरश्वैः सहदेवश्च मारिष ।

माननीय नरेश! मद्रराज शल्यके हाँके हुए घोड़े ऐसे भाग रहे थे, मानो आकाशमें उड़ रहे हों। कर्णके चले जानेपर कुन्तीकुमार पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर और सहदेव तीव्रगामी घोड़ोंद्वारा वहाँसे भाग गये ॥ ३२½ ॥

ताभ्यां स सहितस्तूर्णं व्रीडन्निव नरेश्वरः ॥ ३३ ॥
प्राप्य सेनानिवेशं च मार्गणैः क्षतविक्षतः ।
अवतीर्णो रथात्तूर्णमाविशच्छयनं शुभम् ॥ ३४ ॥

नकुल और सहदेवके साथ वे नरेश लज्जित होते हुए-से तुरंत छावनीमें पहुँचकर रथसे उतर पड़े और सुन्दर शय्यापर लेट गये। उस समय उनका सारा शरीर बाणोंसे क्षत-विक्षत हो रहा था ॥ ३३-३४ ॥

अपनीतशल्यः सुभृशं हृच्छल्याभिनिपीडितः ।
सोऽब्रवीद्भ्रातरौ राजा माद्रीपुत्रौ महारथौ ॥ ३५ ॥

वहाँ उनके शरीरसे बाण निकाल दिये गये तो भी हृदयमें जो अपमानका काँटा गड़ गया था, उससे वे अत्यन्त पीड़ित हो रहे थे। उस समय राजा दोनों भाई माद्रीकुमार महारथी नकुल-सहदेवसे इस प्रकार बोले ॥ ३५ ॥



(युधिष्ठिर उवाच
गच्छतां त्वरितौ वीरौ यत्र भीमो व्यवस्थितः ॥)
अनीकं भीमसेनस्य पाण्डवावाशु गच्छताम् ।
जीमूत इव नर्दंस्तु युध्यते स वृकोदरः ॥ ३६ ॥

युधिष्ठिरने कहा—वीर पाण्डुकुमारो! तुम दोनों शीघ्रतापूर्वक जहाँ भीमसेन खड़े हैं, वहाँ उनकी सेनामें जाओ। वहाँ भीमसेन मेघके समान गम्भीर गर्जना करते हुए युद्ध कर रहे हैं ॥ ३६ ॥

ततोऽन्यं रथमास्थाय नकुलो रथपुङ्गवः ।
सहदेवश्च तेजस्वी भ्रातरौ शत्रुकर्षणौ ॥ ३७ ॥
तुरगैरग्र्यरंहोभिर्यात्वा भीमस्य शुष्मिणौ ।
अनीकैः सहितौ तत्र भ्रातरौ समवस्थितौ ॥ ३८ ॥

तदनन्तर दूसरे रथपर बैठकर रथियोंमें श्रेष्ठ नकुल और तेजस्वी सहदेव वे दोनों शत्रुसूदन बन्धु तीव्र वेगवाले घोड़ोंद्वारा भीमसेनके पास जा पहुँचे। फिर वे दोनों बलवान् भाई भीमसेनके सैनिकोंके साथ खड़े होकर युद्ध करने लगे ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि धर्मापयाने त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें युधिष्ठिरका पलायन विषयक तिरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६३ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २½ श्लोक मिलाकर कुल ४०½ श्लोक हैं)

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

अर्जुनद्वारा अश्वत्थामाकी पराजय, कौरवसेनामें भगदड़ एवं दुर्योधनसे प्रेरित कर्णद्वारा भार्गवास्त्रसे पाञ्चालोंका संहार

संजय उवाच

द्रौणिस्तु रथवंशेन महता परिवारितः ।
अपतत्सहसा राजन् यत्र पार्थो व्यवस्थितः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! द्रोणपुत्र अश्वत्थामा विशाल

रथसेनासे घिरा सहसा वहाँ आ पहुँचा, जहाँ अर्जुन खड़े थे॥

तमापतन्तं सहसा शूरः शौरिसहायवान्।
दधार सहसा पार्थो वेलेव मकरालयम्॥ २॥

भगवान् श्रीकृष्ण जिनके सहायक थे, उन शूरवीर कुन्तीकुमार अर्जुनने सहसा अपनी ओर आते हुए अश्वत्थामाको तत्काल उसी तरह रोक दिया, जैसे तटभूमि समुद्रको आगे बढ़नेसे रोकती है॥ २॥

ततः क्रुद्धो महाराज द्रोणपुत्रः प्रतापवान्।
अर्जुनं वासुदेवं च छादयामास सायकैः॥ ३॥

महाराज! तब क्रोधमें भरे हुए प्रतापी द्रोणपुत्रने अर्जुन और श्रीकृष्णको अपने बाणोंसे ढक दिया॥ ३॥

अवच्छन्नौ ततः कृष्णौ दृष्ट्वा तत्र महारथाः।
विस्मयं परमं गत्वा प्रैक्षन्त कुरवस्तदा॥ ४॥

उस समय उन दोनोंको बाणोंद्वारा आच्छादित हुआ देख समस्त कौरव महारथी महान् आश्चर्यमें पड़कर उधर ही देखने लगे॥ ४॥

अर्जुनस्तु ततो दिव्यमस्त्रं चक्रे हसन्निव।
तदस्त्रं वारयामास ब्राह्मणो युधि भारत॥ ५॥

भारत! तब अर्जुनने हँसते हुए-से दिव्यास्त्र प्रकट किया; परंतु ब्राह्मण अश्वत्थामाने युद्धस्थलमें उनके उस दिव्यास्त्रका निवारण कर दिया॥ ५॥

यद् यद्धि व्याक्षिपद् युद्धे पाण्डवोऽस्त्रजिघांसया।
तत् तदस्त्रं महेष्वासो द्रोणपुत्रो व्यशातयत्॥ ६॥

रणभूमिमें पाण्डुकुमार अर्जुन अश्वत्थामाके अस्त्रोंको नष्ट करनेके लिये जो-जो अस्त्र चलाते थे, महाधनुर्धर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा उनके उस-उस अस्त्रको काट गिराता था॥ ६॥

अस्त्रयुद्धे ततो राजन् वर्तमाने महाभये।
अपश्याम रणे द्रौणिं व्यात्ताननमिवान्तकम्॥ ७॥

राजन्! इस प्रकार महाभयंकर अस्त्र-युद्ध आरम्भ होनेपर हमलोगोंने रणक्षेत्रमें द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको मुँह बाये हुए यमराजके समान देखा था॥ ७॥

स दिशः प्रदिशश्चैव च्छादयित्वा ह्यजिह्मगैः।
वासुदेवं त्रिभिर्बाणैरविध्यद् दक्षिणे भुजे॥ ८॥

उसने सीधे जानेवाले बाणोंके द्वारा सम्पूर्ण दिशाओं और कोणोंको आच्छादित करके श्रीकृष्णकी दाहिनी भुजामें तीन बाण मारे॥ ८॥

ततोऽर्जुनो हयान् हत्वा सर्वांस्तस्य महात्मनः।
चकार समरे भूमिं शोणितौघतरङ्गिणीम्॥ ९॥

तब अर्जुनने उस महामनस्वी वीरके समस्त घोड़ोंको मारकर समरभूमिमें खूनकी नदी-सी बहा दी॥ ९॥

सर्वलोकवहां रौद्रां परलोकवहां नदीम्।
सरथान् रथिनः सर्वान् पार्थचापच्युतैः शरैः॥ १०॥

द्रौणेरपहतान् संख्ये ददृशुः स च तां तथा।
प्रावर्तयन्महाघोरां नदीं परवहां तदा॥ ११॥

वह रक्तमयी भयंकर सरिता परलोकवाहिनी थी और सब लोगोंको अपने प्रवाहमें बहाये लिये जाती थी। वहाँ खड़े हुए सब लोगोंने देखा कि अश्वत्थामाके सारे रथी अर्जुनके धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा युद्धभूमिमें मारे गये। स्वयं अश्वत्थामाने भी उनकी वह अवस्था देखी। उस समय उसने भी महाभयंकर परलोकवाहिनी नदी बहा दी॥ १०-११॥

तयोस्तु व्याकुले युद्धे द्रौणेः पार्थस्य दारुणे।
अमर्यादं योधयन्तः पर्यधावन्त पृष्ठतः॥ १२॥

अश्वत्थामा और अर्जुनके उस भयंकर एवं घमासान युद्धमें सब योद्धा मर्यादारहित होकर युद्ध करते हुए आगे-पीछे सब ओर भागने लगे॥ १२॥

रथैर्हताश्वसूतैश्च हतारोहैश्च वाजिभिः।
द्विरदैश्च हतारोहैर्महामात्रैर्हतद्विपैः॥ १३॥
पार्थेन समरे राजन् कृतो घोरो जनक्षयः।
विहता रथिनः पेतुः पार्थचापच्युतैः शरैः॥ १४॥

रथोंके घोड़े और सारथि मार दिये गये। घोड़ोंके सवार नष्ट हो गये। गजारोही मार डाले गये और हाथी बचे रहे एवं कहीं हाथी ही मार डाले गये तथा महावत बचे रहे। राजन्! इस प्रकार समराङ्गणमें अर्जुनने घोर जनसंहार मचा दिया। उनके धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा मारे जाकर बहुत-से रथी धराशायी हो गये॥ १३-१४॥

हयाश्च पर्यधावन्त मुक्तयोक्त्रास्ततस्ततः।
तद् दृष्ट्वा कर्म पार्थस्य द्रौणिराहवशोभिनः॥ १५॥
अर्जुनं जयतां श्रेष्ठं त्वरितोऽभ्येत्य वीर्यवान्।
विधुन्वानो महच्चापं कार्तस्वरविभूषितम्॥ १६॥
अवाकिरत्ततो द्रौणिः समन्तान्निशितैः शरैः।

घोड़ोंके बन्धन खुल गये और वे चारों ओर दौड़ लगाने लगे। युद्धमें शोभा पानेवाले अर्जुनका वह पराक्रम देखकर पराक्रमी द्रोणकुमार अश्वत्थामा तुरंत उनके पास आ गया और अपने सुवर्णभूषित विशाल धनुषको हिलाते हुए उसने विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ अर्जुनको पैने बाणोंद्वारा सब ओरसे ढक दिया॥ १५-१६½॥

भूयोऽर्जुनं महाराज द्रौणिरायम्य पत्रिणा॥ १७॥
वक्षोदेशे भृशं पार्थं ताडयामास निर्दयम्।

महाराज! तदनन्तर द्रोणकुमारने धनुष खींचकर छोड़े हुए पंखयुक्त बाणसे कुन्तीकुमार अर्जुनकी छातीपर पुनः बड़े जोरसे निर्दयतापूर्वक प्रहार किया॥ १७½॥

सोऽतिविद्धो रणे तेन द्रोणपुत्रेण भारत॥ १८॥
गाण्डीवधन्वा प्रसभं शरवर्षैरुदारधीः।
संछाद्य समरे द्रौणिं चिच्छेदास्य च कार्मुकम्॥ १९॥

भारत ! रणभूमिमें द्रोणपुत्रके द्वारा अत्यन्त घायल किये गये उदारबुद्धि गाण्डीवधारी अर्जुनने समराङ्गणमें बलपूर्वक बाणोंकी वर्षा करके अश्वत्थामाको ढक दिया और उसके धनुषको भी काट डाला ॥ १८-१९ ॥

स छिन्नधन्वा परिघं वज्रस्पर्शसमं युधि ।
आदाय चिक्षेप तदा द्रोणपुत्रः किरीटिने ॥ २० ॥

धनुष कट जानेपर द्रोणपुत्रने युद्धस्थलमें एक ऐसा परिघ हाथमें लिया, जिसका स्पर्श वज्रके समान कठोर था। उसने उस परिघको तत्काल ही किरीटधारी अर्जुनपर दे मारा॥

तमापतन्तं परिघं जाम्बूनदपरिष्कृतम् ।
चिच्छेद सहसा राजन् प्रहसन्निव पाण्डवः ॥ २१ ॥

राजन् ! उस सुवर्णभूषित परिघको सहसा अपने ऊपर आते देख पाण्डुपुत्र अर्जुनने हँसते हुए-से उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये ॥ २१ ॥

स पपात तदा भूमौ निकृत्तः पार्थसायकैः ।
विकीर्णः पर्वतो राजन् यथा वज्रेण ताडितः ॥ २२ ॥

नरेश्वर ! जैसे वज्रका मारा हुआ पर्वत टूट-फूटकर सब ओर बिखर जाता है, उसी प्रकार अर्जुनके बाणोंसे कटा हुआ वह परिघ उस समय पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २२ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज द्रोणपुत्रो महारथः ।
ऐन्द्रेण चास्त्रवेगेन बीभत्सुं समवाकिरत् ॥ २३ ॥

महाराज ! तब महारथी द्रोणपुत्रने कुपित होकर अर्जुनपर ऐन्द्रास्त्रद्वारा वेगपूर्वक बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥

तस्येन्द्रजालावततं समीक्ष्य
पार्थो राजन् गाण्डिवमाददे सः ।
ऐन्द्रं जालं प्रत्यहरत् तरस्वी
वरास्त्रमादाय महेन्द्रसृष्टम् ॥ २४ ॥

राजन् ! अर्जुनने अश्वत्थामाद्वारा किये हुए इन्द्रजालका विस्तार देखकर बड़े वेगसे गाण्डीव धनुष हाथमें लिया और महेन्द्रद्वारा निर्मित उत्तम अस्त्रका आश्रय लेकर उस इन्द्रजालका संहार कर दिया ॥ २४ ॥

विदार्य तज्जालमथेन्द्रमुक्तं
पार्थस्ततो द्रौणिरथं क्षणेन ।
प्रच्छादयामास ततोऽभ्युपेत्य
द्रौणिस्तदा पार्थशराभिभूतः ॥ २५ ॥

इस प्रकार इन्द्रास्त्रद्वारा छोड़े गये उस बाण-जालको विदीर्ण करके अर्जुनने निकटवर्ती होकर क्षणभरमें अश्वत्थामाके रथको ढक दिया। उस समय अश्वत्थामा अर्जुनके बाणोंसे अभिभूत हो गया था ॥ २५ ॥

विगाह्य तां पाण्डवबाणवृष्टिं
शरैः परं नाम ततः प्रकाश्य ।
शतेन कृष्णं सहसाभ्यविद्ध्यत्
त्रिभिः शतैरर्जुनं क्षुद्रकाणाम् ॥ २६ ॥

तदनन्तर अश्वत्थामाने अपने बाणोंद्वारा अर्जुनकी उस बाण-वर्षाका निवारण करके अपना नाम प्रकाशित करते हुए सहसा सौ बाणोंसे श्रीकृष्णको घायल कर दिया और अर्जुनपर भी तीन सौ बाणोंका प्रहार किया ॥ २६ ॥

ततोऽर्जुनः सायकानां शतेन
गुरोः सुतं मर्मसु निर्बिभेद ।
अश्वांश्च सूतं च तथा धनुर्ज्या-
मवाकिरत् पश्यतां तावकानाम् ॥ २७ ॥

इसके बाद अर्जुनने सौ बाणोंसे गुरुपुत्रके मर्मस्थानोंको विदीर्ण कर दिया तथा आपके पुत्रोंके देखते-देखते उसके घोड़ों, सारथि, धनुष और प्रत्यञ्चापर बाणोंकी झड़ी लगा दी॥

स विद्ध्वा मर्मसु द्रौणिं पाण्डवः परवीरहा ।
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ २८ ॥

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले पाण्डुपुत्र अर्जुनने अश्वत्थामाके मर्मस्थानोंमें चोट पहुँचाकर एक भल्लसे उसके सारथिको रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया ॥ २८ ॥

स संगृह्य स्वयं वाहान् कृष्णौ प्राच्छादयच्छरैः ।
तत्राद्भुतमपश्याम द्रौणेराशु पराक्रमम् ॥ २९ ॥
प्रायच्छत्तुरगान् यच्च फाल्गुनं चाप्ययोधयत् ।
यदस्य समरे राजन् सर्वे योधा अपूजयन् ॥ ३० ॥

तब उसने स्वयं ही घोड़ोंकी बागडोर हाथमें लेकर श्रीकृष्ण और अर्जुनको बाणोंसे ढक दिया। वहाँ हमने द्रोणपुत्रका शीघ्र प्रकट होनेवाला वह अद्भुत पराक्रम देखा कि वह घोड़ोंको भी काबूमें रखता था और अर्जुनके साथ युद्ध भी करता था। राजन् ! समराङ्गणमें सभी योद्धाओंने उसके इस कार्यकी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ २९-३० ॥

ततः प्रहस्य बीभत्सुर्द्रोणपुत्रस्य संयुगे ।
क्षिप्रं रश्मीनथाश्वानां क्षुरप्रैश्चिच्छिदे जयः ॥ ३१ ॥

तदनन्तर विजयी अर्जुनने हँसकर युद्धस्थलमें द्रोणपुत्रके घोड़ोंकी बागडोरोंको क्षुरप्रोंद्वारा शीघ्रतापूर्वक काट दिया॥

प्राद्रवंस्तुरगास्ते तु शरवेगप्रपीडिताः ।
ततोऽभून्निनदो घोरस्तव सैन्यस्य भारत ॥ ३२ ॥

भारत ! इसके बाद बाणोंके वेगसे अत्यन्त पीड़ित हुए उसके घोड़े वहाँसे भाग चले। उस समय वहाँ आपकी सेनामें भयंकर कोलाहल मच गया ॥ ३२ ॥

पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा तव सैन्यं समाद्रवन् ।
समन्तान्निशितान् बाणान् विमुञ्चन्तो जयैषिणः ॥ ३३ ॥

पाण्डव विजय पाकर आपकी सेनापर टूट पड़े और पुनः विजयकी अभिलाषा ले चारों ओरसे पैने बाणोंका प्रहार करने लगे ॥ ३३ ॥

पाण्डवैस्तु महाराज धार्तराष्ट्री महाचमूः ।
पुनः पुनरथो वीरैरभज्जि जितकाशिभिः ॥ ३४ ॥

महाराज ! विजयसे उल्लसित होनेवाले पाण्डवोंने दुर्योधनकी विशाल सेनामें बारंबार भगदड़ मचा दी ॥ ३४ ॥

पश्यतां ते महाराज पुत्राणां चित्रयोधिनाम् ।
शकुनेः सौबलेयस्य कर्णस्य च विशाम्पते ॥ ३५ ॥

नरेश्वर ! प्रजानाथ ! विचित्रयुद्ध करनेवाले आपके पुत्रोंके, सुबलपुत्र शकुनिके तथा कर्णके देखते-देखते यह सब हो रहा था॥

वार्यमाणा महासेना पुत्रैस्तव जनेश्वर ।
न चातिष्ठत संग्रामे पीड्यमाना समन्ततः ॥ ३६ ॥

जनेश्वर ! सब ओरसे पीड़ित हुई आपकी विशाल सेना आपके पुत्रोंके बहुत रोकनेपर भी युद्धभूमिमें खड़ी न रह सकी ॥ ३६ ॥

ततो योधैर्महाराज पलायद्भिः समन्ततः ।
अभवद् व्याकुलं भीतं पुत्राणां ते महद् बलम् ॥ ३७ ॥

महाराज ! सब ओर भागनेवाले योद्धाओंके कारण आपके पुत्रोंकी वह विशाल सेना भयभीत और व्याकुल हो उठी ॥ ३७ ॥

तिष्ठ तिष्ठेति च ततः सूतपुत्रस्य जल्पतः ।
नावतिष्ठति सा सेना वध्यमाना महात्मभिः ॥ ३८ ॥

सूतपुत्र कर्ण 'ठहरो, ठहरो' की पुकार करता ही रह गया; परंतु महामनस्वी पाण्डवोंकी मार खाती हुई वह सेना किसी तरह ठहर न सकी ॥ ३८ ॥

अथोत्क्रुष्टं महाराज पाण्डवैर्जितकाशिभिः ।
धार्तराष्ट्रबलं दृष्ट्वा विद्रुतं वै समन्ततः ॥ ३९ ॥

महाराज ! दुर्योधनकी सेनाको सब ओर भागती देख विजयसे उल्लसित होनेवाले पाण्डव जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे ॥ ३९ ॥

ततो दुर्योधनः कर्णमब्रवीत् प्रणयादिव ।
पश्य कर्ण महासेना पञ्चालैरर्दिता भृशम् ॥ ४० ॥

उस समय दुर्योधनने कर्णसे प्रेमपूर्वक कहा—'कर्ण ! देखो, पाञ्चालोंने मेरी इस विशाल सेनाको अत्यन्त पीड़ित कर दिया है ॥ ४० ॥

त्वयि तिष्ठति संत्रासात् पलायनपरायणा ।
एतज्ज्ञात्वा महाबाहो कुरु प्राप्तमरिंदम ॥ ४१ ॥

'शत्रुदमन महाबाहु वीर ! तुम्हारे रहते हुए भयके कारण मेरी सेना भाग रही है; यह जानकर इस समय जो कर्तव्य प्राप्त हो उसे करो ॥ ४१ ॥

सहस्राणि च योधानां त्वामेव पुरुषोत्तम ।
क्रोशन्ति समरे वीर द्राव्यमाणानि पाण्डवैः ॥ ४२ ॥

'पुरुषोत्तम ! वीर ! पाण्डवोंद्वारा खदेड़े जानेवाले सहस्रों कौरव सैनिक समराङ्गणमें तुम्हें ही पुकार रहे हैं' ॥ ४२ ॥

एतच्छ्रुत्वापि राधेयो दुर्योधनवचो महान् ।
मद्रराजमिदं वाक्यमब्रवीत् प्रहसन्निव ॥ ४३ ॥

महावीर राधापुत्र कर्णने दुर्योधनकी यह बात सुनकर मद्रराज शल्यसे हँसते हुए-से इस प्रकार कहा—॥ ४३ ॥

पश्य मे भुजयोर्वीर्यमस्त्राणां च जनेश्वर ।
अद्य हन्मि रणे सर्वान् पञ्चालान् पाण्डुभिः सह ॥ ४४ ॥
वाहयाश्वान् नरव्याघ्र भद्रेणैव न संशयः ।

'नरेश्वर ! आज तुम मेरी दोनों भुजाओं और अस्त्रोंका बल देखो । मैं रणभूमिमें पाण्डवोंसहित समस्त पाञ्चालोंका वध किये देता हूँ, इसमें संशय नहीं है। पुरुषसिंह ! आप कल्याण-चिन्तनपूर्वक ही इन घोड़ोंको आगे बढ़ाइये' ॥४४½॥

एवमुक्त्वा महाराज सूतपुत्रः प्रतापवान् ॥ ४५ ॥
प्रगृह्य विजयं वीरो धनुः श्रेष्ठं पुरातनम् ।
सज्यं कृत्वा महाराज संगृह्य च पुनः पुनः ॥ ४६ ॥
संनिवार्य च योधान् स सत्येन शपथेन च ।
प्रायोजयदमेयात्मा भार्गवास्त्रं महाबलः ॥ ४७ ॥

महाराज ! ऐसा कहकर प्रतापी वीर सूतपुत्र कर्णने अपने विजय नामक श्रेष्ठ एवं पुरातन धनुषको लेकर उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी; फिर उसे बारंबार हाथमें लेकर सत्यकी शपथ दिलाते हुए समस्त योद्धाओंको रोका । इसके बाद अमेय आत्मबलसे सम्पन्न उस महाबली वीरने भार्गवास्त्रका प्रयोग किया ॥

ततो राजन् सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
कोटिशश्च शरास्तीक्ष्णा निरगच्छन् महामृधे ॥ ४८ ॥

राजन् ! फिर तो उस महासमरमें सहस्रों, लाखों, करोड़ों और अरबों तीखे बाण उस अस्त्रसे प्रकट होने लगे ॥ ४८ ॥

ज्वलितैस्तैः शरैर्घोरैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ।
संछन्ना पाण्डवी सेना न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ४९ ॥

कङ्क और मोरकी पाँखवाले उन प्रज्वलित एवं भयंकर बाणोंद्वारा पाण्डव-सेना आच्छादित हो गयी । कुछ भी सूझ नहीं पड़ता था ॥ ४९ ॥

हाहाकारो महानासीत् पञ्चालानां विशाम्पते ।
पीडितानां बलवता भार्गवास्त्रेण संयुगे ॥ ५० ॥

प्रजानाथ ! प्रबल भार्गवास्त्रसे समराङ्गणमें पीड़ित होनेवाले पाञ्चालोंका महान् हाहाकार सब ओर गूँजने लगा॥५०॥

निपतद्भिर्गजै राजन्नश्वैश्चापि सहस्रशः ।
रथैश्चापि नरव्याघ्र नरैश्चैव समन्ततः ॥ ५१ ॥
प्राकम्पत मही राजन् निहतैस्तैः समन्ततः ।
व्याकुलं सर्वमभवत् पाण्डवानां महद् बलम् ॥ ५२ ॥

राजन् ! गिरते हुए हाथियों, सहस्रों घोड़ों, रथों और मारे गये पैदल मनुष्योंके गिरनेसे सारी पृथ्वी सब ओर कम्पित होने लगी । पाण्डवोंकी सारी विशाल सेना व्याकुल हो गयी ॥ ५१–५२ ॥

कर्णस्त्वेको युधां श्रेष्ठो विधूम इव पावकः ।
दहञ्शत्रून् नरव्याघ्र शुशुभे स परंतपः ॥ ५३ ॥

नरव्याघ्र ! शत्रुओंको तपानेवाला योद्धाओंमें श्रेष्ठ एक-

मात्र कर्ण ही धूमरहित अग्निके समान शत्रुओंको दग्ध करता हुआ शोभा पा रहा था ॥ ५३ ॥

ते वध्यमानाः कर्णेन पञ्चालाश्चेदिभिः सह ।
तत्र तत्र व्यमुह्यन्त वनदाहे यथा द्विपाः ॥ ५४ ॥

जैसे वनमें आग लगनेपर उसमें रहनेवाले हाथी जहाँ-तहाँ दग्ध होकर मूर्छित हो जाते हैं, उसी प्रकार कर्णके द्वारा मारे जानेवाले पाञ्चाल और चेदि योद्धा यत्र-तत्र मूर्छित होकर पड़े थे ॥ ५४ ॥

चुक्रुशुश्च नरव्याघ्र यथा व्याघ्रा नरोत्तमाः ।
तेषां तु क्रोशतामासीद् भीतानां रणमूर्धनि ॥ ५५ ॥
धावतां च ततो राजंस्त्रस्तानां च समन्ततः ।
आर्तनादो महांस्तत्र भूतानामिव सम्प्लवे ॥ ५६ ॥

पुरुषसिंह ! वे श्रेष्ठ योद्धा व्याघ्रोंके समान चीत्कार करते थे । राजन् ! युद्धके मुहानेपर भयभीत हो चिल्लाते और डरकर सब ओर भागते हुए उन सैनिकोंका महान् आर्तनाद प्रलयकालमें समस्त प्राणियोंके चीत्कारके समान जान पड़ता था ॥ ५५-५६ ॥

वध्यमानांस्तु तान् दृष्ट्वा सूतपुत्रेण मारिष ।
वित्रेसुः सर्वभूतानि तिर्यग्योनिगतान्यपि ॥ ५७ ॥

आर्य ! सूतपुत्रके द्वारा मारे जाते हुए उन योद्धाओंको देखकर समस्त प्राणी पशु-पक्षी भी भयसे थर्रा उठे ॥ ५७ ॥

ते वध्यमानाः समरे सूतपुत्रेण सृंजयाः ।
अर्जुनं वासुदेवं च क्रोशन्ति च मुहुर्मुहुः ॥ ५८ ॥
प्रेतराजपुरे यद्वत् प्रेतराजं विचेतसः ।

सूतपुत्रद्वारा समराङ्गणमें मारे जाते हुए सृंजय बारंबार अर्जुन और श्रीकृष्णको पुकारते थे । ठीक उसी तरह, जैसे प्रेतराजके नगरमें क्लेशसे अचेत हुए प्राणी प्रेतराजको ही पुकारते हैं ॥ ५८½ ॥

श्रुत्वा तु निनदं तेषां वध्यतां कर्णसायकैः ॥ ५९ ॥
अथाब्रवीद् वासुदेवं कुन्तीपुत्रो धनंजयः ।
भार्गवास्त्रं महाघोरं दृष्ट्वा तत्र समीरितम् ॥ ६० ॥

कर्णके बाणोंद्वारा मारे जाते हुए उन सैनिकोंका आर्तनाद सुनकर तथा वहाँ महाभयंकर भार्गवास्त्रका प्रयोग हुआ देखकर कुन्तीपुत्र अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—॥

पश्य कृष्ण महाबाहो भार्गवास्त्रस्य विक्रमम् ।
नैतदस्त्रं हि समरे शक्यं हन्तुं कथञ्चन ॥ ६१ ॥

'महाबाहु श्रीकृष्ण ! यह भार्गवास्त्रका पराक्रम देखिये । समराङ्गणमें किसी तरह इस अस्त्रको नष्ट नहीं किया जा सकता॥

सूतपुत्रं च संरब्धं पश्य कृष्ण महारणे ।
अन्तकप्रतिमं वीर्ये कुर्वाणं कर्म दारुणम् ॥ ६२ ॥

'श्रीकृष्ण ! देखिये, क्रोधमें भरा हुआ सूतपुत्र, जो पराक्रममें यमराजके समान है, महासमरमें कैसा दारुण कर्म कर रहा है ॥ ६२ ॥

अभीक्ष्णं चोदयन्नश्वान् प्रेक्षते मां मुहुर्मुहुः ।
न च पश्यामि समरे कर्णं प्रति पलायितुम् ॥ ६३ ॥

'वह निरन्तर घोड़ोंको हाँकता हुआ बारंबार मेरी ही ओर देख रहा है । समरभूमिमें कर्णके सामनेसे पलायन करना मैं उचित नहीं समझता ॥ ६३ ॥

जीवन् प्राप्नोति पुरुषः संख्ये जयपराजयौ ।
मृतस्य तु हृषीकेश भङ्ग एव कुतो जयः ॥ ६४ ॥

'मनुष्य जीवित रहे तो वह युद्धमें विजय और पराजय दोनों पाता है । हृषीकेश ! मरे हुए मनुष्यका तो नाश ही हो जाता है; फिर उसकी विजय कहाँसे हो सकती है' ॥६४॥

एवमुक्तस्तु पार्थेन कृष्णो मतिमतां वरम् ।
धनंजयमुवाचेदं प्राप्तकालमरिंदमम् ॥ ६५ ॥

अर्जुनके ऐसा कहनेपर श्रीकृष्णने बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ शत्रुदमन अर्जुनसे यह समयोचित बात कही—॥ ६५ ॥

कर्णेन हि दृढं राजा कुन्तीपुत्रः परिक्षितः ।
तं दृष्ट्वाऽऽश्वास्य च पुनः कर्णं पार्थ वधिष्यसि॥ ६६ ॥

'पार्थ ! कर्णने राजा युधिष्ठिरको अत्यन्त क्षत-विक्षत कर दिया है । उनसे मिलकर उन्हें धीरज बँधाकर फिर तुम कर्णका वध करना' ॥ ६६ ॥

एवमुक्त्वा पुनः प्रायाद् द्रष्टुमिच्छन् युधिष्ठिरम् ।
श्रमेण ग्राहयिष्यंश्च युद्धे कर्णं विशाम्पते ॥ ६७ ॥

प्रजानाथ ! ऐसा कहकर वे पुनः युधिष्ठिरसे मिलनेकी इच्छासे तथा कर्णको युद्धमें अधिक थकावट प्राप्त करानेके लिये वहाँसे चल दिये ॥ ६७ ॥

ततो धनंजयो द्रष्टुं राजानं बाणपीडितम् ।
रथेन प्रययौ क्षिप्रं संग्रामात् केशवाज्ञया ॥ ६८ ॥

तत्पश्चात् अर्जुन श्रीकृष्णकी आज्ञासे बाणपीड़ित राजा युधिष्ठिरको देखनेके लिये रथके द्वारा युद्धस्थलसे शीघ्रतापूर्वक गये ॥ ६८ ॥

गच्छन्नेव तु कौन्तेयो धर्मराजदिदृक्षया ।
सैन्यमालोकयामास नापश्यत् तत्र चाग्रजम् ॥ ६९ ॥
युद्धं कृत्वा तु कौन्तेयो द्रोणपुत्रेण भारत ।
दुःसहं वज्रिणा संख्ये पराजित्य गुरोः सुतम् ॥ ७० ॥

भारत ! कुन्तीकुमार अर्जुनने द्रोणपुत्रके साथ युद्ध करके रणभूमिमें वज्रधारी इन्द्रके लिये भी दुःसह उस गुरुपुत्रको पराजित करनेके पश्चात् जाते समय धर्मराजको देखनेकी इच्छासे सारी सेनापर दृष्टिपात किया । परंतु वहाँ कहीं भी अपने बड़े भाईको नहीं देखा ॥ ६९-७० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि धर्मराजशोधने चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें युधिष्ठिरकी खोजविषयक चौसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

भीमसेनको युद्धका भार सौंपकर श्रीकृष्ण और अर्जुनका युधिष्ठिरके पास जाना

संजय उवाच

द्रौणिं पराजित्य ततोऽग्रधन्वा
कृत्वा महद् दुष्करं शूरकर्म ।
आलोकयामास ततः स्वसैन्यं
धनंजयः शत्रुभिरप्रधृष्यः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! तदनन्तर उत्तम धनुष धारण करनेवाले तथा शत्रुओंके लिये अजेय अर्जुनने दूसरोंके लिये दुष्कर वीरोचित कर्म करके अश्वत्थामाको हराकर फिर अपनी सेनाका निरीक्षण किया ॥ १ ॥

स युध्यमानान् पृतनामुखस्थान्
शूरः शूरान् हर्षयन् सव्यसाची ।
पूर्वप्रहारैर्मथितान् प्रशंसन्
स्थिरांश्चकाराप्तमरथाननीके ॥ २ ॥

सव्यसाची शूरवीर अर्जुन युद्धके मुहानेपर खड़े होकर युद्ध करनेवाले अपने शूरवीर सैनिकोंका हर्ष बढ़ाते हुए तथा पहलेके प्रहारोंसे क्षत-विक्षत हुए अपने रथियोंकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए उन सबको अपनी सेनामें स्थिरतापूर्वक स्थापित किया ॥ २ ॥

अपश्यमानस्तु किरीटमाली
युधिष्ठिरं भ्रातरमाजमीढम् ।
उवाच भीमं तरसाभ्युपेत्य
राज्ञः प्रवृत्तिं त्विह कुत्र राजा ॥ ३ ॥

परंतु वहाँ अपने भाई अजमीढकुलनन्दन युधिष्ठिरको न देखकर किरीटधारी अर्जुनने बड़े वेगसे भीमसेनके पास जा उनसे राजाका समाचार पूछते हुए कहा—'भैया ! इस समय हमारे महाराज कहाँ हैं ?' ॥ ३ ॥

भीमसेन उवाच

अपयात इतो राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
कर्णबाणाभितप्ताङ्गो यदि जीवेत् कथञ्चन ॥ ४ ॥

भीमसेनने कहा—धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर यहाँसे हट गये हैं । कर्णके बाणोंसे उनके सारे अङ्ग संतप्त हो रहे हैं । सम्भव है, वे किसी प्रकार जी रहे हों ॥ ४ ॥

अर्जुन उवाच

तस्माद् भवाञ्शीघ्रमितः प्रयातु
राज्ञः प्रवृत्त्यै कुरुसत्तमस्य ।
नूनं स विद्धोऽतिभृशं पृषत्कैः
कर्णेन राजा शिबिरं गतोऽसौ ॥ ५ ॥

अर्जुन बोले—यदि ऐसी बात है तो आप कुरुश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरका समाचार लानेके लिये शीघ्र ही यहाँसे जायँ । निश्चय ही कर्णके बाणोंसे अत्यन्त घायल होकर राजा शिविरमें चले गये हैं ॥ ५ ॥

यः सम्प्रहारैर्निशितैः पृषत्कै-
र्द्रोणेन विद्धोऽतिभृशं तरस्वी ।
तस्थौ स तत्रापि जयप्रतीक्षो
द्रोणोऽपि यावन्न हतः किलासीत् ॥ ६ ॥

स संशयं गमितः पाण्डवाग्र्यः
संख्येऽद्य कर्णेन महानुभावः ।
ज्ञातुं प्रयाह्याशु तमद्य भीम
स्थास्याम्यहं शत्रुगणान् निरुद्ध्य ॥ ७ ॥

भैया भीमसेन ! जो वेगशाली वीर युधिष्ठिर द्रोणाचार्यके द्वारा किये गये प्रहारों तथा अत्यन्त तीखे बाणोंसे अच्छी तरह घायल किये जानेपर भी विजयकी प्रतीक्षामें तबतक युद्धस्थलमें डटे रहे, जबतक कि आचार्य द्रोण मारे नहीं गये । वे महानुभाव पाण्डव-शिरोमणि आज कर्णके द्वारा संग्राममें संशयापन्न अवस्थामें डाल दिये गये हैं; अतः आप शीघ्र ही उनका समाचार जाननेके लिये जाइये, मैं यहाँ शत्रुओंको रोके रहूँगा ॥ ६-७ ॥

भीमसेन उवाच

त्वमेव जानीहि महानुभाव
राज्ञः प्रवृत्तिं भरतर्षभस्य ।
अहं हि यद्यर्जुन यास्यमित्रा
वदन्ति मां भीत इति प्रवीराः ॥ ८ ॥

भीमसेनने कहा—महानुभाव ! तुम्हीं जाकर भरत-कुल-भूषण नरेशका समाचार जानो । अर्जुन ! यदि मैं यहाँसे जाऊँगा तो मेरे वीर शत्रु मुझे डरपोक कहेंगे ॥ ८ ॥

ततोऽब्रवीदर्जुनो भीमसेनं
संशप्तकाः प्रत्यनीकं स्थिता मे ।
एतानहत्वाद्य मया न शक्य-
मितोऽपयातुं रिपुसङ्घगोष्ठात् ॥ ९ ॥

तब अर्जुनने भीमसेनसे कहा—'भैया ! संशप्तकगण मेरे विपक्षमें खड़े हैं । इन्हें मारे बिना आज मैं इस शत्रु-समुदायरूपी गोष्ठसे बाहर नहीं जा सकता' ॥ ९ ॥

अथाब्रवीदर्जुनं भीमसेनः
स्ववीर्यमासाद्य कुरुप्रवीर ।
संशप्तकान् प्रतियोत्स्यामि संख्ये
सर्वानहं याहि धनंजय त्वम् ॥ १० ॥

यह सुनकर भीमसेनने अर्जुनसे कहा—'कुरुकुलके श्रेष्ठ वीर धनंजय ! मैं अपने ही बलका भरोसा करके संग्राम-भूमिमें सम्पूर्ण संशप्तकोंके साथ युद्ध करूँगा, तुम जाओ' ॥ १० ॥



धर्मराजके चरणोंमें श्रीकृष्ण एवं अर्जुन प्रणाम कर रहे हैं

संजय उवाच

तद् भीमसेनस्य वचो निशम्य
सुदुष्करं भ्रातुरमित्रमध्ये ।
संशप्तकानीकमसह्यमेकः
सुदुष्करं धारयामीति पार्थः ॥ ११ ॥
उवाच नारायणमप्रमेयं
कपिध्वजः सत्यपराक्रमस्य ।
श्रुत्वा वचो भ्रातुरदीनसत्त्व-
स्तदाहवे सत्यवचो महात्मा ।
द्रष्टुं कुरुश्रेष्ठमभिप्रयास्यन्
प्रोवाच वृष्णिप्रवरं तदानीम् ॥ १२ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! शत्रुओंकी मण्डलीमें अपने भाई भीमसेनका यह अत्यन्त दुष्कर वचन सुनकर कि 'मैं अकेला ही असह्य संशप्तक सेनाका सामना करूँगा' उदार हृदय-वाले महात्मा कपिध्वज अर्जुनने सत्यपराक्रमी भाई भीमके उस सत्य वचनको श्रवणगोचर करके उसे अप्रमेय, वृष्णिवंशा-वतंस नारायणावतार भगवान् श्रीकृष्णको बताया और उस समय कुरुश्रेष्ठ युधिष्ठिरका दर्शन करनेकी इच्छासे जानेको उद्यत हो इस प्रकार कहा ॥ ११-१२ ॥

अर्जुन उवाच

चोदयाश्वान् हृषीकेश विहायैतद् बलार्णवम् ।
अजातशत्रुं राजानं द्रष्टुमिच्छामि केशव ॥ १३ ॥

अर्जुन बोले—हृषीकेश ! अब आप इस शत्रुसेनारूपी समुद्रको छोड़कर घोड़ोंको यहाँसे हाँक ले चलें । केशव ! मैं अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरका दर्शन करना चाहता हूँ ॥ १३ ॥

संजय उवाच

ततो हयान् सर्वदाशार्हमुख्यः
प्रचोदयन् भीममुवाच चेदम् ।
नैतच्चित्रं तव कर्माद्य भीम
यास्याम्यहं जहि पार्थारिसंघान् ॥ १४ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर सम्पूर्ण दाशार्ह-वंशियोंमें प्रधान भगवान् श्रीकृष्ण अपने घोड़े हाँकते हुए वहाँ भीमसेनसे इस प्रकार बोले 'कुन्तीनन्दन भीम ! आज यह पराक्रम तुम्हारे लिये कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । मैं जा रहा हूँ । तुम शत्रु-समूहोंका संहार करो' ॥ १४ ॥

ततो ययौ हृषीकेशो यत्र राजा युधिष्ठिरः ।
शीघ्राच्छीघ्रतरं राजन् वाजिभिर्गरुडोपमैः ॥ १५ ॥

राजन् ! यह कहकर भगवान् हृषीकेश गरुड़के समान वेगशाली घोड़ोंद्वारा शीघ्र-से-शीघ्र वहाँ जा पहुँचे, जहाँ राजा युधिष्ठिर विश्राम कर रहे थे ॥ १५ ॥

प्रत्यनीके व्यवस्थाप्य भीमसेनमरिंदमम् ।
संदिश्य चैतं राजेन्द्र युद्धं प्रति वृकोदरम् ॥ १६ ॥

ततस्तु गत्वा पुरुषप्रवीरौ
राजानमासाद्य शयानमेकम् ।
रथादुभौ प्रत्यवरुह्य तस्माद्
ववन्दतुर्धर्मराजस्य पादौ ॥ १७ ॥

राजेन्द्र ! शत्रुओंका सामना करनेके लिये शत्रुदमन वृकोदर भीमसेनको स्थापित करके और युद्धके विषयमें उन्हें पूर्वोक्त संदेश देकर वे दोनों पुरुष-शिरोमणि अकेले सोये हुए राजा युधिष्ठिरके पास जा रथसे नीचे उतरे और उन्होंने धर्मराजके चरणोंमें प्रणाम किया ॥ १६-१७ ॥

तं दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रं क्षेमिणं पुरुषर्षभम् ।
मुदाभ्युपगतौ कृष्णावश्विनाविव वासवम् ॥ १८ ॥
तावभ्यनन्दद् राजापि विवस्वानश्विनाविव ।
हते महासुरे जम्भे शक्रविष्णू यथा गुरुः ॥ १९ ॥

पुरुषसिंह पुरुषप्रवर श्रीकृष्ण एवं अर्जुनको सकुशल देखकर तथा दोनों कृष्णोंको इन्द्रके पास गये हुए अश्विनी-कुमारोंके समान प्रसन्नतापूर्वक अपने समीप आया जान राजा युधिष्ठिरने उनका उसी तरह अभिनन्दन किया, जैसे सूर्य दोनों अश्विनीकुमारोंका स्वागत करते हैं । अथवा जैसे महान् असुर जम्भके मारे जानेपर बृहस्पतिने इन्द्र और विष्णुका अभिनन्दन किया था ॥ १८-१९ ॥

मन्यमानो हतं कर्णं धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
हर्षगद्गदया वाचा प्रीतः प्राह परंतपः ॥ २० ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले धर्मराज युधिष्ठिरने कर्णको मारा गया मानकर हर्षगद्गद वाणीसे प्रसन्नतापूर्वक वार्तालाप आरम्भ किया ॥ २० ॥

अथोपयातौ पृथुलोहिताक्षौ
शराचिताङ्गौ रुधिरप्रदिग्धौ ।
समीक्ष्य सेनाग्रनरप्रवीरौ
युधिष्ठिरो वाक्यमिदं बभाषे ॥ २१ ॥

सेनाके अग्रभागमें युद्ध करनेवाले पुरुषोंमें प्रमुख वीर विशाल एवं लाल नेत्रोंवाले श्रीकृष्ण और अर्जुन जब समीप आये, तब उनके सारे अङ्गोंमें बाण धँसे हुए थे । वे खूनसे लथपथ हो रहे थे; उन्हें देखकर युधिष्ठिरने निम्नाङ्कित रूपसे बातचीत आरम्भ की ॥ २१ ॥

महासत्त्वौ हि तौ दृष्ट्वा सहितौ केशवार्जुनौ ।
हतमाधिरथिं मेने संख्ये गाण्डीवधन्वना ॥ २२ ॥

एक साथ आये हुए महान् शक्तिशाली श्रीकृष्ण और अर्जुनको देखकर उन्हें यह पक्का विश्वास हो गया था कि गाण्डीवधारी अर्जुनने युद्धस्थलमें अधिरथपुत्र कर्णको मार डाला है ॥ २२ ॥

तावभ्यनन्दत् कौन्तेयः साम्ना परमवल्गुना ।
स्मितपूर्वममित्रघ्नं पूजयन् भरतर्षभ ॥ २३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! यही सोचकर कुन्तीकुमार युधिष्ठिरने मुस्कराकर शत्रुसूदन श्रीकृष्ण और अर्जुनकी प्रशंसा करते हुए परम मधुर और सान्त्वनापूर्ण वचनोंद्वारा उन दोनोंका अभिनन्दन किया ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि युधिष्ठिरं प्रति श्रीकृष्णार्जुनागमे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें युधिष्ठिरके पास श्रीकृष्ण और अर्जुनका आगमनविषयक पैंसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमोऽध्यायः

युधिष्ठिरका अर्जुनसे भ्रमवश कर्णके मारे जानेका वृत्तान्त पूछना

युधिष्ठिर उवाच

स्वागतं देवकीमातः स्वागतं ते धनंजय।
प्रियं मे दर्शनं गाढं युवयोरच्युतार्जुनौ ॥ १ ॥
अक्षताभ्यामरिष्टाभ्यां हतः कर्णो महारथः।

युधिष्ठिर बोले—देवकीनन्दन ! तुम्हारा स्वागत हो। धनंजय ! तुम्हारा भी स्वागत है। श्रीकृष्ण और अर्जुन ! इस समय तुम दोनोंका दर्शन मुझे अत्यन्त प्रिय लगा है; क्योंकि तुम दोनोंने स्वयं किसी प्रकारकी क्षति न उठाकर सकुशल रहते हुए महारथी कर्णको मार डाला है ॥ १½ ॥

आशीविषसमं युद्धे सर्वशस्त्रविशारदम् ॥ २ ॥
अग्रगं धार्तराष्ट्राणां सर्वेषां शर्म वर्म च।
रक्षितं वृषसेनेन सुषेणेन च धन्विना ॥ ३ ॥

कर्ण युद्धमें विषधर सर्पके समान भयंकर, सम्पूर्ण शस्त्र-विधाओंमें निपुण तथा कौरवोंका अगुआ था। वह शत्रुपक्षमें सबका कल्याण-साधक और कवच बना हुआ था। वृषसेन और सुषेण-जैसे धनुर्धर उसकी रक्षा करते थे ॥ २-३ ॥

अनुज्ञातं महावीर्यं रामेणास्त्रे सुदुर्जयम्।
अग्र्यं सर्वस्य लोकस्य रथिनं लोकविश्रुतम् ॥ ४ ॥

परशुरामजीसे अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करके वह महान् शक्तिशाली और अत्यन्त दुर्जय हो गया था। समस्त संसारका सर्वश्रेष्ठ रथी एवं विश्वविख्यात वीर था ॥ ४ ॥

त्रातारं धार्तराष्ट्राणां गन्तारं वाहिनीमुखे।
हन्तारं परसैन्यानाममित्रगणमर्दनम् ॥ ५ ॥

धृतराष्ट्र-पुत्रोंका रक्षक, सेनाके मुहानेपर जाकर युद्ध करनेवाला, शत्रु-सैनिकोंका संहार करनेमें समर्थ तथा विरोधियोंका मान मर्दन करनेवाला था ॥ ५ ॥

दुर्योधनहिते युक्तमस्मद्दुःखाय चोद्यतम्।
अप्रधृष्यं महायुद्धे देवैरपि सवासवैः ॥ ६ ॥

वह सदा दुर्योधनके हितमें संलग्न रहकर हमलोगोंको दुःख देनेके लिये उद्यत रहता था। महायुद्धमें इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी उसे परास्त नहीं कर सकते थे ॥ ६ ॥

अनलानिलयोस्तुल्यं तेजसा च बलेन च।
पातालमिव गम्भीरं सुहृदां नन्दिवर्धनम् ॥ ७ ॥
अन्तकं मम मित्राणां हत्वा कर्णं महामृधे।
दिष्ट्या युवामनुप्राप्तौ जित्वासुरमिवामरौ ॥ ८ ॥

वह तेजमें अग्नि, बलमें वायु और गम्भीरतामें पातालके समान था। अपने मित्रोंका आनन्द बढ़ानेवाला और मेरे मित्रोंके लिये यमराजके समान था। किसी असुरको जीतकर आये हुए दो देवताओंके समान तुम दोनों मित्र महासमरमें कर्णको मारकर यहाँ आ गये, यह बड़े सौभाग्यकी बात है ॥

घोरं युद्धमदीनेन मया ह्यद्याच्युतार्जुनौ।
कृतं तेनान्तकेनेव प्रजाः सर्वा जिघांसता ॥ ९ ॥

श्रीकृष्ण और अर्जुन ! सम्पूर्ण प्रजाका संहार करनेकी इच्छा रखनेवाले कालके समान उस कर्णने आज मेरे साथ घोर युद्ध किया था। फिर भी मैंने उसमें दीनता नहीं दिखायी॥

तेन केतुश्च मे छिन्नो हतौ च पार्ष्णिसारथी।
हतवाहस्ततश्चास्मि युयुधानस्य पश्यतः ॥ १० ॥
धृष्टद्युम्नस्य यमयोर्वीरस्य च शिखण्डिनः।
पश्यतां द्रौपदेयानां पञ्चालानां च सर्वशः ॥ ११ ॥

उसने सात्यकि, धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव, वीर शिखण्डी, द्रौपदीपुत्र तथा पाञ्चालोंके देखते-देखते मेरी ध्वजा काट डाली, पार्श्वरक्षकोंको मार डाला और मेरे घोड़ोंका भी संहार कर डाला था ॥ १०-११ ॥

एताञ्जित्वा महावीर्यः कर्णः शत्रुगणान् बहून्।
जितवान् मां महाबाहो यतमानो महारणे ॥ १२ ॥

महाबाहो ! महायुद्धमें विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले महापराक्रमी कर्णने इन बहुसंख्यक शत्रुगणोंको परास्त करके मुझपर विजय पायी थी ॥ १२ ॥

अभिसृत्य च मां युद्धे परुषाण्युक्तवान् बहु।
तत्र तत्र युधां श्रेष्ठ परिभूय न संशयः ॥ १३ ॥
भीमसेनप्रभावात्तु यज्जीवामि धनंजय।
बहुनात्र किमुक्तेन नाहं तत् सोढुमुत्सहे ॥ १४ ॥

योद्धाओंमें श्रेष्ठ वीर ! उसने युद्धमें मेरा पीछा करके जहाँ-तहाँ मुझे अपमानित करते हुए बहुत-से कटुवचन सुनाये हैं—इसमें संशय नहीं है। धनंजय ! मैं इस समय भीमसेनके प्रभावसे ही जीवित हूँ। यहाँ अधिक कहनेसे क्या लाभ ? मैं उस अपमानको किसी प्रकार सह नहीं सकता ॥१३-१४॥

त्रयोदशाहं वर्षाणि यस्माद् भीतो धनंजय।
न स्म निद्रां लभे रात्रौ न चाहनि सुखं क्वचित् ॥ १५ ॥

अर्जुन ! मैं जिससे भयभीत होकर तेरह वर्षोंतक न

तो रातमें अच्छी तरह नींद ले सका और न दिनमें ही कहीं सुख पा सका ॥ १५ ॥

तस्य द्वेषेण संयुक्तः परिदह्ये धनंजय।
आत्मनो मरणे यातो वाध्रीणस इव द्विपः ॥ १६ ॥

धनंजय ! मैं उसके द्वेषसे निरन्तर जलता रहा। जैसे वाध्रीणस नामक पशु अपनी मौतके लिये ही वधस्थानमें पहुँच जाय, उसी प्रकार मैं भी अपनी मृत्युके लिये कर्णका सामना करने चला गया था ॥ १६ ॥

तस्यायमगमत् कालश्चिन्तयानस्य मे चिरम्।
कथं कर्णो मया शक्यो युद्धे क्षपयितुं भवेत् ॥ १७ ॥

मैं कर्णको युद्धमें कैसे मार सकता हूँ, यही सोचते हुए मेरा यह दीर्घकाल व्यतीत हुआ है ॥ १७ ॥

जाग्रत्स्वपंश्च कौन्तेय कर्णमेव सदा ह्यहम्।
पश्यामि तत्र तत्रैव कर्णभूतमिदं जगत् ॥ १८ ॥

कुन्तीनन्दन ! मैं जागते और सोते समय सदा कर्णको ही देखा करता था। यह सारा जगत् मेरे लिये जहाँ-तहाँ कर्णमय हो रहा था ॥ १८ ॥

यत्र यत्र हि गच्छामि कर्णाद् भीतो धनंजय।
तत्र तत्र हि पश्यामि कर्णमेवाग्रतः स्थितम् ॥ १९ ॥

धनंजय ! मैं जहाँ-जहाँ भी जाता, कर्णसे भयभीत होनेके कारण सदा उसीको अपने सामने खड़ा देखता था ॥ १९ ॥

सोऽहं तेनैव वीरेण समरेष्वपलायिना।
सहयः सरथः पार्थ जित्वा जीवन् विसर्जितः ॥ २० ॥

पार्थ ! मैं समरभूमिमें कभी पीठ न दिखानेवाले उसी वीर कर्णके द्वारा रथ और घोड़ोंसहित परास्त करके केवल जीवित छोड़ दिया गया हूँ ॥ २० ॥

को नु मे जीवितेनार्थो राज्येनार्थो भवेत् पुनः।
ममैवं विक्षतस्याद्य कर्णेनाहवशोभिना ॥ २१ ॥

अब मुझे इस जीवनसे तथा राज्यसे क्या प्रयोजन है ? जब कि आज युद्धमें शोभा पानेवाले कर्णने मुझे इस प्रकार क्षत-विक्षत कर डाला है ॥ २१ ॥

न प्राप्तपूर्वं यद् भीष्मात् कृपद्रोणाच्च संयुगे।
तत् प्राप्तमद्य मे युद्धे सूतपुत्रान्महारथात् ॥ २२ ॥

पहले कभी भीष्म, द्रोण और कृपाचार्यसे भी मुझे युद्ध-स्थलमें जो अपमान नहीं प्राप्त हुआ था, वही आज महारथी सूत-पुत्रसे युद्धमें प्राप्त हो गया है ॥ २२ ॥

स त्वां पृच्छामि कौन्तेय यथाद्य कुशलं तथा।
तन्ममाचक्ष्व कात्स्न्येन यथा कर्णो हतस्त्वया ॥ २३ ॥

कुन्तीनन्दन ! इसीलिये मैं तुमसे पूछता हूँ कि आज जिस प्रकार सकुशल रहकर तुमने कर्णको मारा है, वह सारा समाचार मुझे पूर्णरूपसे बताओ ॥ २३ ॥

शक्रतुल्यबलो युद्धे यमतुल्यः पराक्रमे।
रामतुल्यस्तथास्त्रेण स कथं वै निषूदितः ॥ २४ ॥

जो युद्धमें इन्द्रके समान बलवान्, यमराजके समान पराक्रमी और परशुरामजीके समान अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञाता था, वह कर्ण कैसे मारा गया ॥ २४ ॥

महारथः समाख्यातः सर्वयुद्धविशारदः।
धनुर्धराणां प्रवरः सर्वेषामेकपूरुषः ॥ २५ ॥
पूजितो धृतराष्ट्रेण सपुत्रेण महाबलः।
त्वदर्थमेव राधेयः स कथं निहतस्त्वया ॥ २६ ॥

जो सम्पूर्ण युद्धकी कलामें कुशल, विख्यात महारथी, धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ तथा सब शत्रुओंमें प्रधान पुरुष था, जिसे पुत्रसहित धृतराष्ट्रने तुम्हारा सामना करनेके लिये ही सम्मान-पूर्वक रक्खा था, वह महाबली राधापुत्र कर्ण तुम्हारे द्वारा कैसे मारा गया ? ॥ २५-२६ ॥

धार्तराष्ट्रो हि योधेषु सर्वेष्वेव सदार्जुन।
तव मृत्युं रणे कर्णं मन्यते पुरुषर्षभ ॥ २७ ॥

पुरुषप्रवर अर्जुन ! दुर्योधन रणक्षेत्रमें सम्पूर्ण योद्धाओं-मेंसे कर्णको ही तुम्हारी मृत्यु मानता था ॥ २७ ॥

स त्वया पुरुषव्याघ्र कथं युद्धे निषूदितः।
तन्ममाचक्ष्व कौन्तेय यथा कर्णो हतस्त्वया ॥ २८ ॥

कुन्तीपुत्र ! पुरुषसिंह ! तुमने कैसे युद्धमें उस कर्णको मारा है ? कर्ण जिस प्रकार तुम्हारे द्वारा मारा गया है, वह सब समाचार मुझे बताओ ॥ २८ ॥

युध्यमानस्य च शिरः पश्यतां सुहृदां हृतम्।
त्वया पुरुषशार्दूल सिंहेनेव यथा रुरोः ॥ २९ ॥

पुरुषसिंह ! जैसे सिंह रुरु नामक मृगका मस्तक काट लेता है, उसी प्रकार तुमने समस्त सुहृदोंके देखते-देखते जो जूझते हुए कर्णका सिर धड़से अलग कर दिया है, वह किस प्रकार सम्भव हुआ ॥ २९ ॥

यः पर्युपासीत् प्रदिशो दिशश्च
त्वां सूतपुत्रः समरे परीप्सन्।
दित्सुः कर्णः समरे हस्तिषड्गवं
स हीदानीं कङ्कपत्रैः सुतीक्ष्णैः ॥ ३० ॥
त्वया रणे निहतः सूतपुत्रः
कच्चिच्छेते भूमितले दुरात्मा।
प्रियश्च मे परमो वै कृतोऽयं
त्वया रणे सूतपुत्रं निहत्य ॥ ३१ ॥

अर्जुन ! समराङ्गणमें जो सूतपुत्र कर्ण सम्पूर्ण दिशाओं और विदिशाओंमें तुम्हें पानेके लिये चक्कर लगाता था और तुम्हारा पता बतानेवालेको हाथीके समान छः बैल देना चाहता था, वही दुरात्मा सूतपुत्र क्या इस समय रणभूमिमें तुम्हारे द्वारा कङ्कपत्रयुक्त तीखे बाणोंसे मारा जाकर पृथ्वीपर सो रहा है ? आज रणक्षेत्रमें सूतपुत्रको मारकर तुमने मेरा यह परम प्रिय कार्य पूर्ण किया है ? ॥ ३०-३१ ॥

यः सर्वतः पर्यपतत्त्वदर्थे
सदार्चितो गर्वितः सूतपुत्रः ।
स शूरमानी समरे समेत्य
कच्चित्त्वया निहतः संयुगेऽसौ ॥ ३२ ॥

जो सदा सम्मानित होकर घमंडमें भरा हुआ सूतपुत्र तुम्हारे लिये सब ओर धावा किया करता था, अपनेको शूर-वीर माननेवाले उस कर्णको समराङ्गणमें उसके साथ युद्ध करके क्या तुमने मार डाला है ? ॥ ३२ ॥

रौक्मं वरं हस्तिगजाश्वयुक्तं
रथं प्रदित्सुर्यः परेभ्यस्त्वदर्थे ।
सदा रणे स्पर्धते यः स पापः
कच्चित्त्वया निहतस्तात युद्धे ॥ ३३ ॥

तात ! जो रणक्षेत्रमें तुम्हारा पता बतानेके लिये दूसरोंको हाथी-घोड़ोंसे युक्त सोनेका बना हुआ सुन्दर रथ देनेका हौसला रखता और सदा तुमसे होड़ लगाता था, वह पापी क्या युद्ध-स्थलमें तुम्हारे द्वारा मार डाला गया ? ॥ ३३ ॥

योऽसौ सदा शूरमदेन मत्तो
विकत्थते संसदि कौरवाणाम् ।
प्रियोऽत्यर्थं तस्य सुयोधनस्य
कच्चित् सपापो निहतस्त्वयाद्य ॥ ३४ ॥

जो शौर्यके मदसे उन्मत्त हो कौरवोंकी सभामें सदा बढ़-बढ़कर बातें बनाया करता था और दुर्योधनको अत्यन्त प्रिय था, क्या उस पापी कर्णको तुमने आज मार डाला ? ॥ ३४ ॥

कच्चित् समागम्य धनुःप्रयुक्तै-
स्त्वत्प्रेषितैर्लोहिताङ्गैर्विहङ्गैः ।
शेते स पापः सुविभिन्नगात्रः
कच्चिद् भग्नौ धार्तराष्ट्रस्य बाहू ॥ ३५ ॥

क्या आज युद्धमें तुमसे भिड़कर तुम्हारे द्वारा धनुषसे छोड़े गये लाल अङ्गोंवाले आकाशचारी बाणोंसे सारा शरीर छिन्न-भिन्न हो जानेके कारण वह पापी कर्ण आज पृथ्वीपर पड़ा है ? क्या उसके मरनेसे दुर्योधनकी दोनों बाँहें टूट गयीं ? ॥

योऽसौ सदा श्लाघते राजमध्ये
दुर्योधनं हर्षयन् दर्पपूर्णः ।
अहं हन्ता फाल्गुनस्येति मोहात्
कच्चिद्वचस्तस्य न वै तथा तत् ॥ ३६ ॥

जो राजाओंके बीचमें दुर्योधनका हर्ष बढ़ाता हुआ घमंडमें भरकर सदा मोहवश यह डींग हाँकता था कि मैं अर्जुनका वध कर सकता हूँ । क्या उसकी वह बात आज निष्फल हो गयी ? ॥ ३६ ॥

नाहं पादौ धावयिष्ये कदाचित्
यावत् स्थितः पार्थ इत्यल्पबुद्धेः ।
व्रतं तस्यैतत् सर्वदा शक्रसूनो
कच्चित् त्वया निहतः सोऽद्य कर्णः ॥ ३७ ॥

इन्द्रकुमार ! उस मन्दबुद्धि कर्णने सदाके लिये यह व्रत ले रक्खा था कि जबतक कुन्तीकुमार अर्जुन जीवित हैं, तब-तक मैं दूसरोंसे पैर नहीं धुलाऊँगा । क्या उस कर्णको तुमने आज मार डाला ? ॥ ३७ ॥

योऽसौ कृष्णामब्रवीद् दुष्टबुद्धिः
कर्णः सभायां कुरुवीरमध्ये ।
किं पाण्डवांस्त्वं न जहासि कृष्णे
सुदुर्बलान् पतितान् हीनसत्त्वान् ॥ ३८ ॥

जिस दुष्टबुद्धिवाले कर्णने कौरव-वीरोंके बीच भरी सभामें द्रौपदीसे कहा था कि 'कृष्णे ! तू इन अत्यन्त दुर्बल, पतित और शक्तिहीन पाण्डवोंको छोड़ क्यों नहीं देती ?' ॥ ३८ ॥

योऽसौ कर्णः प्रत्यजानात्त्वदर्थे
नाहं हत्वा सह कृष्णेन पार्थम् ।
इहोपयातेति स पापबुद्धिः
कच्चिच्छेते शरसम्भिन्नगात्रः ॥ ३९ ॥

'जिस कर्णने तुम्हारे लिये यह प्रतिज्ञा की थी कि 'आज मैं श्रीकृष्णसहित अर्जुनको मारे बिना यहाँ नहीं लौटूँगा' क्या वह पापात्मा तुम्हारे बाणोंसे छिन्न-भिन्न होकर धरतीपर पड़ा है ? ॥ ३९ ॥

कच्चित् संग्रामो विदितो वै तवायं
समागमे सृञ्जयकौरवाणाम् ।
यत्रावस्थामीदृशीं प्रापितोऽहं
कच्चित् त्वया सोऽद्य हतो दुरात्मा ॥ ४० ॥

क्या तुम्हें आजके संघर्षमें सृंजयों और कौरवोंका जो यह संग्राम हुआ था, उसका समाचार ज्ञात हुआ है, जिसमें मैं ऐसी दुर्दशाको पहुँचा दिया गया । क्या तुमने आज उस दुरात्मा कर्णको मार डाला ? ॥ ४० ॥

कच्चित्त्वया तस्य सुमन्दबुद्धे-
र्गाण्डीवमुक्तैर्विशिखैर्ज्वलद्भिः ।
सकुण्डलं भानुमदुत्तमाङ्गं
कायात् प्रकृत्तं युधि सव्यसाचिन् ॥ ४१ ॥

सव्यसाची अर्जुन ! क्या तुमने युद्धस्थलमें गाण्डीव धनुषसे छोड़े गये प्रज्वलित बाणोंद्वारा उस मन्दबुद्धि कर्णके कुण्डलमण्डित तेजस्वी मस्तकको धड़से काट गिराया ? ॥ ४१ ॥

यत्तन्मया बाणसमर्पितेन
ध्यातोऽसि कर्णस्य वधाय वीर ।
तन्मे त्वया कच्चिदमोघमद्य
ध्यानं कृतं कर्णनिपातनेन ॥ ४२ ॥

वीर ! जिस समय मैं बाणोंसे घायल कर दिया गया, उस समय कर्णके वधके लिये मैंने तुम्हारा चिन्तन किया था । क्या तुमने कर्णको धराशायी करके मेरे उस चिन्तनको आज सफल बना दिया ? ॥ ४२ ॥

यद् दर्पपूर्णः स सुयोधनोऽस्मा-
नुदीक्षते कर्णसमाश्रयेण ।
कच्चित् त्वया सोऽद्य समाश्रयोऽस्य
भग्नः पराक्रम्य सुयोधनस्य ॥ ४३ ॥

कर्णका आश्रय लेकर दुर्योधन जो बड़े घमंडमें भरकर हमलोगोंकी ओर देखा करता था। क्या तुमने दुर्योधनके उस महान् आश्रयको आज पराक्रम करके नष्ट कर दिया ?॥

यो नः पुरा षण्ढतिलानवोचत्
सभामध्ये कौरवाणां समक्षम् ।
स दुर्मतिः कच्चिदुपेत्य संख्ये
त्वया हतः सूतपुत्रो ह्यमर्षी ॥ ४४ ॥

जिसने पूर्वकालमें सभा-भवनके भीतर कौरवोंकी आँखोंके सामने हमें थोथे तिलोंके समान नपुंसक बताया था वह अमर्षशील दुर्बुद्धि सूतपुत्र क्या आज युद्धमें आकर तुम्हारे हाथसे मारा गया ? ॥ ४४ ॥

यः सूतपुत्रः प्रहसन् दुरात्मा
पुराब्रवीन्निर्जितां सौबलेन ।
स्वयं प्रसह्यानय याज्ञसेनी-
मपीह कच्चित् स हतस्त्वयाद्य ॥ ४५ ॥

जिस दुरात्मा सूतपुत्र कर्णने हँसते-हँसते पहले दुःशासनसे यह बात कही थी कि 'सुबलपुत्रके द्वारा जीती हुई द्रुपदकुमारीको तुम स्वयं जाकर बलपूर्वक यहाँ ले आओ', क्या तुमने आज उसे मार डाला ? ॥४५॥

यः शस्त्रभृच्छ्रेष्ठतमः पृथिव्यां
पितामहं व्याक्षिपदल्पचेताः ।
संख्यायमानोऽर्धरथः स कच्चित्
त्वया हतोऽद्याधिरथिर्महात्मन् ॥ ४६ ॥

महात्मन् ! जो पृथ्वीपर समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठतम समझा जाता था तथा जिस मूर्खने अर्धरथी गिना जानेपर पितामह भीष्मके ऊपर महान् आक्षेप किया था, उस अधिरथपुत्रको क्या तुमने आज मार डाला ?॥४६॥

अमर्षजं निकृतिसमीरणेरितं
हृदि स्थितं ज्वलनमिमं सदा मम ।
हतो मया सोऽद्य समेत्य कर्ण
इति ब्रुवन् प्रशमयसेऽद्य फाल्गुन ॥४७॥

फाल्गुन ! मेरे हृदयमें जिस कर्णकी शठतारूपी वायुसे प्रेरित हो अमर्षकी आग सदा प्रज्वलित रहती है 'उस कर्णको आज युद्धमें पाकर मैंने मार डाला' ऐसा कहते हुए क्या तुम आज मेरी उस आगको बुझा दोगे ? ॥ ४७ ॥

ब्रवीहि मे दुर्लभमेतदद्य
कथं त्वया निहतः सूतपुत्रः ।
अनुध्याये त्वां सततं प्रवीर
वृत्रे हतेऽसौ भगवानिवेन्द्रः ॥ ४८ ॥

बोलो, मेरे लिये यह समाचार अत्यन्त दुर्लभ है। वीरवर ! तुमने सूतपुत्रको कैसे मारा ? मैं वृत्रासुरके मारे जानेपर भगवान् इन्द्रके समान सदा तुम्हारे विजयी स्वरूपका चिन्तन करता हूँ ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि युधिष्ठिरवाक्ये षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें युधिष्ठिरवाक्यविषयक छाछठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

अर्जुनका युधिष्ठिरसे अबतक कर्णको न मार सकनेका कारण बताते हुए उसे मारनेके लिये प्रतिज्ञा करना

संजय उवाच

तद् धर्मशीलस्य वचो निशम्य
राज्ञः क्रुद्धस्यातिरथो महात्मा ।
उवाच दुर्धर्षमदीनसत्त्वं
युधिष्ठिरं जिष्णुरनन्तवीर्यः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! क्रोधमें भरे हुए धर्मात्मा नरेशकी वह बात सुनकर अनन्त पराक्रमी अतिरथी महात्मा विजयशील अर्जुनने उदारचित्त एवं दुर्जय राजा युधिष्ठिरसे इस प्रकार कहा ॥ १ ॥

अर्जुन उवाच

संशप्तकैर्युध्यमानस्य मेऽद्य
सेनाग्रयायी कुरुसैन्येषु राजन् ।
आशीविषाभान् खगमान् प्रमुञ्चन्
द्रौणिः पुरस्तात् सहसाभ्यतिष्ठत् ॥ २ ॥

राजन् ! आज जब मैं संशप्तकोंके साथ युद्ध कर रहा था, उस समय कौरवसेनाका अगुआ द्रोणपुत्र अश्वत्थामा विषधर सर्पके समान भयंकर बाणोंका प्रहार करता हुआ सहसा मेरे सामने आकर खड़ा हो गया ॥ २ ॥

दृष्ट्वा रथं मेघरवं ममैव
समस्तसेना च रणेऽभ्यतिष्ठत् ।
तेषामहं पञ्च शतानि हत्वा
ततो द्रौणिमगमं पार्थिवाग्र्य ॥ ३ ॥

भूपालशिरोमणे ! इधर कौरवोंकी सारी सेना मेघके समान गम्भीर घर्घर ध्वनि करनेवाले मेरे रथको देखकर युद्ध-

के लिये डटकर खड़ी हो गयी; तब मैंने उस सेनामेंसे पाँच सौ वीरोंका वध करके आचार्यपुत्रपर आक्रमण किया ॥ ३॥

स मां समासाद्य नरेन्द्र यत्तः
समभ्ययात् सिंहमिव द्विपेन्द्रः ।
अकार्षीच्च रथिनामुज्जिहीर्षां
महाराज वध्यतां कौरवाणाम् ॥ ४ ॥

नरेन्द्र ! जैसे गजराज सिंहकी ओर दौड़े, उसी प्रकार अश्वत्थामाने मुझे सामने पाकर विजयके लिये प्रयत्नशील हो मुझपर आक्रमण किया । महाराज ! उसने मारे जाते हुए कौरव रथियोंका उद्धार करनेकी इच्छा की ॥ ४ ॥

ततो रणे भारत दुष्प्रकम्प्य
आचार्यपुत्रः प्रवरः कुरूणाम् ।
मामर्दयामास शितैः पृषत्कै-
र्जनार्दनं चैव विषाग्निकल्पैः ॥ ५ ॥

भारत ! तदनन्तर कौरवोंके प्रधान वीर दुर्धर्ष आचार्यपुत्रने रणक्षेत्रमें विष और अग्निके समान भयंकर तीखे बाणोंद्वारा मुझे और श्रीकृष्णको पीड़ित करना प्रारम्भ किया ।५।

अष्टागवामष्ट शतानि बाणान्
मया प्रयुद्धस्य वहन्ति तस्य ।
तांस्तेन मुक्तानहमस्य बाणै-
र्व्यनाशयं वायुरिवाभ्रजालम् ॥ ६ ॥

मेरे साथ युद्ध करते समय अश्वत्थामाके लिये आठ-आठ बैलोंसे जुते हुए आठ छकड़े सैकड़ों-हजारों बाण ढोते रहते थे । उसके चलाये हुए उन सभी बाणोंको मैंने अपने बाणोंसे मारकर उसी तरह नष्ट कर दिया, जैसे वायु मेघोंके समूहको छिन्न-भिन्न कर देती है ॥ ६ ॥

ततोऽपरान् बाणसंघाननेका-
नाकर्णपूर्णायतविप्रमुक्तान् ।
ससर्ज शिक्षास्त्रबलप्रयत्नै-
स्तथा यथा प्रावृषि कालमेघः ॥ ७ ॥

तत्पश्चात् जैसे वर्षाकालमें मेघोंकी काली घटा जलकी वर्षा करती है, उसी प्रकार शिक्षा, अस्त्र, बल और प्रयत्नोंद्वारा धनुषको कानतक खींचकर छोड़े गये बहुत-से बाणसमूह उसने बरसाये ॥ ७ ॥

नैवाददानं न च संदधानं
जानीमहे कतरेणास्यतीति ।
वामेन वा यदि वा दक्षिणेन
स द्रोणपुत्रः समरे पर्यवर्तत् ॥ ८ ॥

द्रोणपुत्र अश्वत्थामा समरभूमिमें चारों ओर चक्कर लगाने लगा । वह कब बाण लेता, कब उसे धनुषपर रखता और कब किस हाथसे बायें अथवा दायेंसे छोड़ता था, यह हमलोग नहीं जान पाते थे ॥ ८ ॥

तस्याततं मण्डलमेव सज्यं
प्रदृश्यते कार्मुकं द्रोणसूनोः ।
सोऽविध्यन्मां पञ्चभिर्द्रोणपुत्रः
शितैः शरैः पञ्चभिर्वासुदेवम् ॥ ९ ॥

केवल प्रत्यञ्चासहित तना हुआ उस द्रोणपुत्रका मण्डलाकार धनुष ही दिखायी देता था । उसने पाँच तीखे बाणोंसे मुझको और पाँचसे श्रीकृष्णको भी घायल कर दिया ॥ ९ ॥

अहं हि तं त्रिंशता वज्रकल्पैः
समार्दयं निमिषस्यान्तरेण ।
क्षणाच्छ्वावित्समरूपो बभूव
समार्दितो मद्विसृष्टैः पृषत्कैः ॥ १० ॥

तब मैंने पलक मारते-मारते वज्रके समान तीस सुदृढ़ बाणोंद्वारा उसे क्षणभरमें पीड़ित कर दिया । मेरे छोड़े हुए बाणोंसे घायल होनेपर उसका स्वरूप काँटोंसे भरे साहीके समान दिखायी देने लगा ॥ १० ॥

स विक्षरन् रुधिरं सर्वगात्रै
रथानीकं सूतसूनोर्विवेश ।
मयाभिभूतान् सैनिकानां प्रबर्हा-
नसौ प्रपश्यन् रुधिरप्रदिग्धान् ॥ ११ ॥

तब वह सारे शरीरसे खूनकी धारा बहाता हुआ मेरेद्वारा पीड़ित हुए समस्त सैनिक शिरोमणियोंको खूनसे लथपथ देखकर सूतपुत्र कर्णकी रथसेनामें घुस गया ॥ ११ ॥

ततोऽभिभूतं युधि वीक्ष्य सैन्यं
वित्रस्तयोधं द्रुतवाजिनागम् ।
पञ्चाशता रथमुख्यैः समेत्य
कर्णस्त्वरन् मामुपायात् प्रमाथी ॥ १२ ॥

तत्पश्चात् युद्धस्थलमें अपनी सेनाके योद्धाओंको भयसे आक्रान्त और हाथी-घोड़ोंको भागते देख पचास मुख्य-मुख्य रथियोंको साथ ले शत्रुओंको मथ डालनेवाला कर्ण बड़ी उतावलीके साथ मेरे पास आया ॥ १२ ॥

तान् सूदयित्वाहमपास्य कर्णं
द्रष्टुं भवन्तं त्वरयाभियातः ।
सर्वे पञ्चाला ह्युद्विजन्ते स्म कर्णं
दृष्ट्वा गावः केसरिणं यथैव ॥ १३ ॥

उन पचासों रथियोंका संहार करके कर्णको छोड़कर मैं बड़ी उतावलीके साथ आपका दर्शन करनेके लिये चला आया हूँ । जैसे गौएँ सिंहको देखकर डर जाती हैं, उसी प्रकार सारे पाञ्चालसैनिक कर्णको देखकर उद्विग्न हो उठते हैं ॥ १३ ॥

मृत्योरास्यं व्यात्तमिवाभिपद्य
प्रभद्रकाः कर्णमासाद्य राजन् ।
रथांस्तु तान् सप्तशतान् निमग्नां-
स्तदा कर्णः प्राहिणोन्मृत्युसद्म ॥ १४ ॥

राजन् ! मृत्युके फैले हुए मुँहके समान कर्णके पास पहुँचकर प्रभद्रकगण भारी संकटमें पड़ गये। कर्णने युद्धके समुद्रमें डूबे हुए उन सात सौ रथियोंको तत्काल मृत्युके लोकमें भेज दिया था ॥ १४ ॥

न चाप्यभूत् क्लान्तमनाः स राजन्
यावन्नास्मान् दृष्टवान् सूतपुत्रः ।
श्रुत्वा तु त्वां तेन दृष्टं समेत-
मश्वत्थाम्ना पूर्वतरं क्षतं च ॥ १५ ॥
मन्ये कालमपयानस्य राजन्
क्रूरात् कर्णात् तेऽहमचिन्त्यकर्मन् ।

अचिन्त्यकर्मा नरेश्वर ! जबतक सूतपुत्रने हमलोगोंको नहीं देखा था, तबतक उसके मनमें उद्वेग या खेद नहीं हुआ था। मैंने जब सुना कि उसने पहले आपपर दृष्टिपात किया था और आपसे उसका युद्ध भी हुआ था, साथ ही उससे भी पहले अश्वत्थामाने आपको क्षत-विक्षत कर दिया था, तब क्रूरकर्मा कर्णके सामनेसे आपका यहाँ चला आना ही मुझे समयोचित प्रतीत हुआ ॥ १५½ ॥

मया कर्णस्यास्त्रमिदं पुरस्ताद्
युद्धे दृष्टं पाण्डव चित्ररूपम् ॥ १६ ॥
न ह्यन्ययोद्धा विद्यते सृञ्जयानां
महारथं योऽद्य सहेत कर्णम् ।

पाण्डुनन्दन ! मैंने युद्धमें अपने सामने कर्णके इस विचित्र अस्त्रको देखा था। सृंजयोंमें दूसरा कोई ऐसा योद्धा नहीं है, जो आज महारथी कर्णका सामना कर सके ॥ १६½ ॥

शैनेयो मे सात्यकिश्चक्ररक्षौ
धृष्टद्युम्नश्चापि तथैव राजन् ॥ १७ ॥
युधामन्युश्चोत्तमौजाश्च शूरौ
पृष्ठतो मां रक्षतां राजपुत्रौ ।

राजन् ! शिनिपौत्र सात्यकि और धृष्टद्युम्न मेरे चक्ररक्षक हों; युधामन्यु और उत्तमौजा, ये दोनों शूरवीर राजकुमार मेरे पृष्ठभागकी रक्षा करें ॥ १७½ ॥

रथप्रवीरेण महानुभाव
द्विषत्सैन्ये वर्तता दुस्तरेण ॥ १८ ॥
समेत्याहं सूतपुत्रेण संख्ये
वृत्रेण वज्रीव नरेन्द्रमुख्य ।
योत्स्याम्यहं भारत सूतपुत्र-
मस्मिन् संग्रामे यदि वै दृश्यतेऽद्य ॥ १९ ॥

महानुभाव ! भरतवंशी नृपश्रेष्ठ ! शत्रुसेनामें विद्यमान रथियोंमें प्रमुख वीर दुर्जय सूतपुत्र कर्णके साथ, यदि इस संग्राममें आज वह मुझे दीख जाय तो युद्धस्थलमें मिलकर मैं उसी तरह युद्ध करूँगा, जैसे वज्रधारी इन्द्रने वृत्रासुरके साथ किया था ॥ १८-१९ ॥

आयाहि पश्याद्य युयुत्समानं
मां सूतपुत्रस्य रणे जयाय ।
महोरगस्येव मुखं प्रपन्नाः
प्रभद्रकाः कर्णमभिद्रवन्ति ॥ २० ॥

आइये, देखिये, आज मैं रणभूमिमें सूतपुत्रपर विजय पानेके लिये युद्ध करना चाहता हूँ। प्रभद्रकगण कर्णपर धावा कर रहे हैं, ऐसा करके वे मानो अजगरके मुखमें पड़ गये हैं ॥ २० ॥

षट्साहस्रा भारत राजपुत्राः
स्वर्गाय लोकाय रणे निमग्नाः ।
कर्णं न चेदद्य निहन्मि राजन्
सबान्धवं युध्यमानं प्रसह्य ॥ २१ ॥
प्रतिश्रुत्याकुर्वतो वै गतिर्या
कष्टा याता तामहं राजसिंह ।

भारत ! छः हजार राजकुमार स्वर्गलोकमें जानेके लिये युद्धके सागरमें मग्न हो गये हैं। राजन् ! राजसिंह ! यदि आज मैं बन्धुओंसहित युद्धमें तत्पर हुए कर्णको हठपूर्वक न मार डालूँ तो प्रतिज्ञा करके उसका पालन न करनेवालेको जो दुःखदायी गति प्राप्त होती है, उसीको मैं भी पाऊँगा ॥ २१½ ॥

आमन्त्रये त्वां ब्रूहि जयं रणे मे
पुरा भीमं धार्तराष्ट्रा ग्रसन्ते ॥ २२ ॥
सौतिं हनिष्यामि नरेन्द्रसिंह
सैन्यं तथा शत्रुगणांश्च सर्वान् ॥ २३ ॥

मैं आपसे आज्ञा चाहता हूँ। आप रणभूमिमें मेरी विजयका आशीर्वाद दीजिये। नरेन्द्रसिंह ! धृतराष्ट्रके पुत्र भीमसेनको ग्रस लेनेकी चेष्टा कर रहे हैं। मैं इसके पहले ही सूतपुत्र कर्णको, उसकी सेनाको तथा सम्पूर्ण शत्रुओंको मार डालूँगा ॥ २२-२३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अर्जुनवाक्ये सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें अर्जुनवाक्यविषयक सरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

युधिष्ठिरका अर्जुनके प्रति अपमानजनक क्रोधपूर्ण वचन

संजय उवाच

श्रुत्वा कर्णं कल्यमुदारवीर्यं
क्रुद्धः पार्थः फाल्गुनस्यामितौजाः ।
धनंजयं वाक्यमुवाच चेदं
युधिष्ठिरः कर्णशराभितप्तः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! कर्णके बाणोंसे संतप्त हुए अमित

तेजस्वी कुन्तीकुमार राजा युधिष्ठिर अधिक बलशाली कर्णको सकुशल सुनकर अर्जुनपर कुपित हो उनसे इस प्रकार बोले—॥

विप्रद्रुता तात चमूस्त्वदीया
तिरस्कृता चाद्य यथा न साधु।
भीतो भीमं त्यज्य चायास्तथा त्वं
यन्नाशकः कर्णमथो निहन्तुम्॥ २॥

'तात! तुम्हारी सारी सेना भाग चली है। तुमने आज उसकी ऐसी उपेक्षा की है, जो किसी प्रकार अच्छी नहीं कही जा सकती। जब तुम कर्णको जीत नहीं सके तो भयभीत हो भीमसेनको वहीं छोड़कर यहाँ चले आये॥ २॥

स्नेहस्त्वया पार्थ कृतः पृथाया
गर्भं समाविश्य यथा न साधु।
त्यक्त्वा रणे यदपायाः स भीमं
यन्नाशकः सूतपुत्रं निहन्तुम्॥ ३॥

'पार्थ! तुमने कुन्तीके गर्भमें निवास करके भी अपने सगे भाईके प्रति ऐसा स्नेह निभाया, जिसे कोई अच्छा नहीं कह सकता; क्योंकि जब तुम सूतपुत्र कर्णके मारनेमें समर्थ न हो सके, तब भीमसेनको अकेले रणभूमिमें छोड़कर स्वयं वहाँसे चले आये॥ ३॥

यत् तद् वाक्यं द्वैतवने त्वयोक्तं
कर्णं हन्तास्म्येकरथेन सत्यम्।
त्यक्त्वा तं वै कथमद्यापयातः
कर्णाद् भीतो भीमसेनं विहाय॥ ४॥

'तुमने द्वैतवनमें जो यह सत्य वचन कहा था कि 'मैं एकमात्र रथके द्वारा युद्ध करके कर्णको मार डालूँगा' उस प्रतिज्ञाको तोड़कर कर्णसे भयभीत हो भीमसेनको छोड़कर आज तुम रणभूमिसे लौट कैसे आये?॥ ४॥

इदं यदि द्वैतवनेऽप्यचक्षः
कर्णं योद्धुं न प्रशक्ष्ये नृपेति।
वयं ततः प्राप्तकालं च सर्वे
कृत्यान्युपैष्याम तथैव पार्थ॥ ५॥

'पार्थ! यदि तुमने द्वैतवनमें यह कह दिया होता कि 'राजन्! मैं कर्णके साथ युद्ध नहीं कर सकूँगा' तो हम सब लोग समयोचित कर्तव्यका निश्चय करके उसीके अनुसार कार्य करते॥ ५॥

मयि प्रतिश्रुत्य वधं हि तस्य
न वै कृतं तच्च तथैव वीर।
आनीय नः शत्रुमध्यं स कस्मात्
समुत्क्षिप्य स्थण्डिले प्रत्यपिंष्ठाः॥ ६॥

'वीर! तुमने मुझसे कर्णके वधकी प्रतिज्ञा करके उसका उसी रूपमें पालन नहीं किया। यदि ऐसा ही करना था तो हमें शत्रुओंके बीचमें लाकर पत्थरकी वेदीपर पटककर पीस क्यों डाला?॥ ६॥

अप्याशिष्म वयमर्जुन त्वयि
यियासवो बहु कल्याणमिष्टम्।
तन्नः सर्वं विफलं राजपुत्र
फलार्थिनां विफल इवातिपुष्पः॥ ७॥

'राजकुमार अर्जुन! हमने बहुत-से मङ्गलमय अभीष्ट पदार्थ प्राप्त करनेकी इच्छा रखकर तुमपर आशा लगा रक्खी थी; परंतु फल चाहनेवाले मनुष्योंको अधिक फूलोंवाला फलहीन वृक्ष जैसे निराश कर देता है, उसी प्रकार तुमसे हमारी सारी आशा निष्फल हो गयी॥ ७॥

प्रच्छादितं बडिशमिवामिषेण
संछादितं गरलमिवाशनेन।
अनर्थकं मे दर्शितवानसि त्वं
राज्यार्थिनो राज्यरूपं विनाशम्॥ ८॥

'मैं राज्य पाना चाहता था; किंतु तुमने मांससे ढके हुए वंशीके काँटे और भोजनसामग्रीसे आच्छादित हुए विषके समान मुझे राज्यके रूपमें अनर्थकारी विनाशका ही दर्शन कराया है॥ ८॥

त्रयोदशेमा हि समाः सदा वयं
त्वामन्वजीविष्म धनंजयाशया।
काले वर्षं देवमिवोप्तबीजं
तन्नः सर्वान् नरके त्वं न्यमज्जः॥ ९॥

'धनंजय! जैसे बोया हुआ बीज समयपर मेघद्वारा की हुई वर्षाकी प्रतीक्षामें जीवित रहता है, उसी प्रकार हमने तेरह वर्षोंतक सदा तुमपर ही आशा लगाकर जीवन धारण किया था; परंतु तुमने हम सब लोगोंको नरकमें डुबो दिया (भारी संकटमें डाल दिया)॥ ९॥

यत्तत् पृथां वागुवाचान्तरिक्षे
सप्ताहजाते त्वयि मन्दबुद्धे।
जातः पुत्रो वासवविक्रमोऽयं
सर्वाञ्शूराञ्शात्रवाञ्जेष्यतीति॥ १०॥

मन्दबुद्धि अर्जुन! तुम्हारे जन्म लिये अभी सात ही दिन बीते थे कि माता कुन्तीसे आकाशवाणीने इस प्रकार कहना आरम्भ किया—'देवि! तुम्हारा यह पुत्र इन्द्रके समान पराक्रमी पैदा हुआ है। यह अपने समस्त शूरवीर शत्रुओंको जीत लेगा॥ १०॥

अयं जेता खाण्डवे देवसंघान्
सर्वाणि भूतान्यपि चोत्तमौजाः।
अयं जेता मद्रकलिङ्गकेकया-
नयं कुरून् राजमध्ये निहन्ता॥ ११॥

''यह उत्तम शक्तिसे सम्पन्न बालक खाण्डववनमें देवताओंके समूहों तथा सम्पूर्ण प्राणियोंपर भी विजय प्राप्त करेगा। यह मद्र, कलिंग और केकयोंको जीतेगा तथा राजाओंकी मण्डलीमें कौरवोंका भी विनाश कर डालेगा॥ ११॥

अस्मात् परो नो भविता धनुर्धरो
नैनं भूतं किंचन जातु जेता ।
इच्छन्नयं सर्वभूतानि कुर्याद्
वशे वशी सर्वसमाप्तविद्यः ॥ १२ ॥

'इससे बढ़कर दूसरा कोई धनुर्धर नहीं होगा । कोई भी प्राणी कभी भी इसे जीत नहीं सकेगा । यह अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें रखता हुआ सम्पूर्ण विद्याओंको प्राप्त कर लेगा और इच्छा करते ही सभी प्राणियोंको अपने अधीन कर सकेगा ॥ १२ ॥

कान्त्या शशाङ्कस्य जवेन वायोः
स्थैर्येण मेरोः क्षमया पृथिव्याः ।
सूर्यस्य भासा धनदस्य लक्ष्म्या
शौर्येण शक्रस्य बलेन विष्णोः ॥ १३ ॥

'यह चन्द्रमाकी कान्ति, वायुके वेग, मेरुकी स्थिरता, पृथ्वीकी क्षमा, सूर्यकी प्रभा, कुबेरकी लक्ष्मी, इन्द्रके शौर्य और भगवान् विष्णुके बलसे सम्पन्न होगा ॥ १३ ॥

तुल्यो महात्मा तव कुन्ति पुत्रो
जातोऽदितेर्विष्णुरिवारिहन्ता ।
स्वेषां जयाय द्विषतां वधाय
ख्यातोऽमितौजाः कुलतन्तुकर्ता ॥ १४ ॥

'कुन्ति ! तुम्हारा यह महामनापुत्र अदितिके गर्भसे प्रकट हुए शत्रुहन्ता भगवान् विष्णुके समान उत्पन्न हुआ है। यह अमितबलशाली बालक स्वजनोंकी विजय और शत्रुओंके बधके लिये प्रसिद्ध एवं अपनी कुलपरम्पराका प्रवर्तक होगा' ॥ १४ ॥

इत्यन्तरिक्षे शतशृङ्गमूर्ध्नि
तपस्विनां शृण्वतां वागुवाच ।
एवंविधं तच्च नाभूत् तथा च
देवापि नूनमनृतं वदन्ति ॥ १५ ॥

'शतशृङ्ग पर्वतके शिखरपर तपस्वी महात्माओंके सुनते हुए आकाशवाणीने ये बातें कही थीं; परंतु उसका यह कथन सफल नहीं हुआ । निश्चय ही देवतालोग भी झूठ बोलते हैं ॥ १५ ॥

तथा परेषामृषिसत्तमानां
श्रुत्वा गिरः पूजयतां सदा त्वाम् ।
न संनतिं प्रैमि सुयोधनस्य
न त्वां जानाम्याधिरथेर्भयार्तम् ॥ १६ ॥

'इसी प्रकार दूसरे महर्षि भी सदा तुम्हारी प्रशंसा करते हुए ऐसी ही बातें कहा करते थे । उनकी बातें सुनकर ही मैं दुर्योधनके सामने कभी नतमस्तक न हो सका; परंतु मैं यह नहीं जानता था कि तुम अधिरथपुत्र कर्णके भयसे पीड़ित हो जाओगे ॥ १६ ॥

पूर्वं यदुक्तं हि सुयोधनेन
न फाल्गुनः प्रमुखे स्थास्यतीति ।
कर्णस्य युद्धे हि महाबलस्य
मौर्ख्यात् तु तन्नावबुद्धं मयाऽऽसीत् ।१७।

'दुर्योधनने पहले ही जो यह बात कह दी थी कि 'अर्जुन युद्धमें महाबली कर्णके सामने नहीं खड़े हो सकेंगे' उसके इस कथनपर मैंने मूर्खतावश विश्वास नहीं किया था ॥१७॥

तेनाद्य तप्स्ये भृशमप्रमेयं
यच्छत्रुवर्गं नरकं प्रविष्टः ।
तदैव वाच्योऽस्मि ननु त्वयाहं
न योत्स्येऽहं सूतपुत्रं कथंचित् ॥ १८ ॥
ततो नाहं सृञ्जयान् केकयांश्च
समानयेयं सुहृदो रणाय ।

'इसीलिये आज संतप्त हो रहा हूँ । शत्रुओंके समुदायमें फँसकर अत्यन्त असीम नरक-तुल्य सङ्कटमें पड़ गया हूँ । अर्जुन ! तुम्हें पहले ही यह कह देना चाहिये था कि 'मैं सूतपुत्र कर्णके साथ किसी प्रकार युद्ध नहीं करूँगा' । वैसी दशामें मैं सृंजयों, केकयों तथा अन्यान्य सुहृदोंको युद्धके लिये आमन्त्रित नहीं करता ॥ १८½ ॥

एवं गते किंच मयाद्य शक्यं
कार्यं कर्तुं विग्रहे सूतजस्य ॥ १९ ॥
तथैव राज्ञश्च सुयोधनस्य
ये वापि मां योद्धुकामाः समेताः ।

'आज जब ऐसी परिस्थिति है, तब सूतपुत्र कर्ण, राजा दुर्योधन तथा अन्य जो लोग मेरे साथ युद्धकी इच्छासे एकत्र हुए हैं, उन सबके साथ छिड़े हुए इस संग्राममें मैं कौन-सा कार्य कर सकता हूँ ? ॥ १९½ ॥

धिगस्तु मज्जीवितमद्य कृष्ण
योऽहं वशं सूतपुत्रस्य यातः ॥ २० ॥
मध्ये कुरूणां सुहृदां च मध्ये
ये चाप्यन्ये योद्धुकामाः समेताः ।

'श्रीकृष्ण ! मैं कौरवों, सुहृदों तथा अन्य जो लोग युद्धकी इच्छासे एकत्र हुए हैं, उन सबके बीचमें आज सूतपुत्र कर्णके अधीन हो गया । मेरे जीवनको धिक्कार है ॥

(एकस्तु मे भीमसेनोऽद्य नाथो
येनाभिपन्नोऽस्मि रणे महाभये ।
विमोच्य मां चापि कृपान्वितस्ततः
शरेण तीक्ष्णेन बिभेद कर्णम् ॥

'आज एकमात्र भीमसेन ही मेरे रक्षक हैं, जिन्होंने महान् भयदायक संग्राममें सब ओरसे मेरी रक्षा की है । उन्होंने मुझे संकटसे मुक्त करके अपने पैने बाणसे कर्णको बींध डाला था ।

त्यक्त्वा प्राणान् समरे भीमसेन-
श्चक्रे युद्धं कुरुभिः समेतैः ।
गदाग्रहस्तो रुधिरोक्षिताङ्ग-
श्चरन् रणे काल इवान्तकाले ॥
असौ हि भीमस्य महान् निनादी
मुहुर्मुहुः श्रूयते धार्तराष्ट्रैः ॥)

'भीमसेनका शरीर खूनसे नहा उठा था। फिर भी वे हाथमें गदा लेकर प्रलयकालके यमराजकी भाँति रणभूमिमें विचरते थे और प्राणोंका मोह छोड़कर समराङ्गणमें एकत्र हुए कौरवोंके साथ युद्ध करते थे। धृतराष्ट्रके पुत्रोंके साथ युद्ध करते हुए भीमसेनका वह महान् सिंहनाद बारंबार सुनायी दे रहा है ॥

यदि स्म जीवेत् स भवेन्निहन्ता
महारथानां प्रवरो रथोत्तमः ।
तवाभिमन्युस्तनयोऽद्य पार्थ
न चास्मि गन्ता समरे पराभवम् ॥ २१ ॥
अथापि जीवेत् समरे घटोत्कच-
स्तथापि नाहं समरे पराङ्मुखः ।

'पार्थ ! यदि महारथियोंमें श्रेष्ठ और उत्तम रथी तुम्हारा पुत्र अभिमन्यु जीवित होता तो वह शत्रुओंका वध अवश्य करता। फिर तो समरभूमिमें मुझे ऐसा अपमान नहीं उठाना पड़ता। यदि समराङ्गणमें घटोत्कच भी जीवित होता तो भी मुझे वहाँसे मुँह फेरकर भागना नहीं पड़ता ॥ २१½ ॥

(भीमस्य पुत्रः समराग्रयायी
महास्त्रविच्चापि तवानुरूपः ।
यत्नं समासाद्य रिपोर्बलं नो
निमीलिताक्षं भयविप्लुतं भवेत् ॥

'भीमसेनका वह पुत्र समरभूमिमें आगे चलनेवाला, महान् अस्त्रवेत्ता और तुम्हारे समान ही पराक्रमी था। उसके होनेपर हमारे शत्रुओंकी सेना यत्न करके भी सफल न होती और भयसे व्याकुल होकर आँखें बंद कर लेती ॥

चकार योऽसौ निशि युद्धमेक-
स्त्यक्त्वा रणं यस्य भयाद् द्रवन्ते ।
स चेत् समासाद्य महानुभावः
कर्णं रणे बाणगणैः प्रमोह्य ।
धैर्ये स्थितेनापि च सूतजेन
शक्त्या हतो वासवदत्तया तया ॥)

'उस महानुभाव वीरने अकेले ही रात्रिमें युद्ध किया था, जिससे शत्रुसैनिक भयके मारे रणभूमि छोड़कर भागने लगे थे। उसने कर्णपर आक्रमण करके रणभूमिमें अपने बाण-समूहोंद्वारा सबको मोहमें डाल दिया था; परंतु धैर्यमें स्थित हुए सूतपुत्र कर्णने इन्द्रकी दी हुई उस शक्तिके द्वारा उसे मार डाला ॥

मम ह्यभाग्यानि पुरा कृतानि
पापानि नूनं बलवन्ति युद्धे ॥ २२ ॥
तृणं च कृत्वा समरे भवन्तं
ततोऽहमेवं निकृतो दुरात्मना ।
वैकर्तनेनैव तथा कृतोऽहं
यथा ह्यशक्तः क्रियते ह्यबान्धवः ॥ २३ ॥

'निश्चय ही मेरे अभाग्य और पूर्वकृत पाप इस युद्धमें प्रबल हो रहे हैं। दुरात्मा कर्णने संग्राममें तुम्हें तिनकेके समान समझकर मेरा ऐसा अपमान किया है। किसी शक्तिहीन तथा बन्धु-बान्धवोंसे रहित असहाय मनुष्यके साथ जैसा बर्ताव किया जाता है, कर्णने वैसा ही मेरे साथ किया है ॥

आपद्गतं कश्चन यो विमोक्षेत्
स बान्धवः स्नेहयुक्तः सुहृच्च ।
एवं पुराणा मुनयो वदन्ति
धर्मः सदा सद्भिरनुष्ठितश्च ॥ २४ ॥

'जो कोई पुरुष आपत्तिमें पड़े हुए मनुष्यको संकटसे छुड़ा देता है, वही बन्धु है और वही स्नेही सुहृद् । प्राचीन महर्षि ऐसा ही कहते हैं। यही सत्पुरुषोंद्वारा सदासे पालित होनेवाला धर्म है ॥ २४ ॥

त्वष्ट्रा कृतं वाहमकूजनाक्षं
शुभं समास्थाय कपिध्वजं तम् ।
खड्गं गृहीत्वा हेमपट्टानुबद्धं
धनुश्चेदं गाण्डिवं तालमात्रम् ॥ २५ ॥
स केशवेनोह्यमानः कथं त्वं
कर्णाद् भीतो ह्यपयातोऽसि पार्थ ।

'कुन्तीनन्दन ! तुम्हारा रथ साक्षात् विश्वकर्माका बनाया हुआ है, उसके धुरेसे कोई आवाज नहीं होती। उसपर वानरध्वजा फहराती रहती है, ऐसे शुभलक्षण रथपर आरूढ़ हो सुवर्णजटित खड्ग और चार हाथके श्रेष्ठ धनुष गाण्डीव-को लेकर तथा भगवान् श्रीकृष्ण-जैसे सारथिके द्वारा संचालित होकर भी तुम कर्णसे भयभीत होकर कैसे भाग आये ! ॥

धनुश्च तत् केशवाय प्रयच्छ
यन्ता भविष्यस्त्वं रणे केशवस्य ॥ २६ ॥
तदाहनिष्यत् केशवः कर्णमुग्रं
मरुत्पतिर्वृत्रमिवात्तवज्रः ।

'तुम अपना गाण्डीव धनुष भगवान् श्रीकृष्णको दे दो तथा रणभूमिमें स्वयं इनके सारथि बन जाओ। फिर जैसे इन्द्रने हाथमें वज्र लेकर वृत्रासुरका वध किया था, उसी प्रकार ये श्रीकृष्ण भयंकर वीर कर्णको मार डालेंगे ॥२६½॥

राधेयमेतं यदि नाद्य शक्त-
श्चरन्तमुग्रं प्रतिबाधनाय ॥ २७ ॥
प्रयच्छाम्यस्मै गाण्डिवमेतदद्य
त्वत्तो योऽस्त्रैरभ्यधिको वा नरेन्द्रः ।

'यदि तुम आज रणभूमिमें विचरते हुए इस भयानक वीर राधापुत्र कर्णका सामना करनेकी शक्ति नहीं रखते तो अब यह गाण्डीव धनुष दूसरे किसी ऐसे राजाको दे दो, जो अस्त्र-बलमें तुमसे बढ़कर हो ॥ २७½ ॥

अस्मान् नैवं पुत्रदारैर्विहीनान्
सुखाद्भ्रष्टान् राज्यनाशाच्च भूयः॥ २८ ॥
द्रष्टा लोकः पतितानप्यगाधे
पापैर्जुष्टे नरके पाण्डवेय ।

'पाण्डुनन्दन ! ऐसा हो जानेपर संसारके मनुष्य हमें फिर इस प्रकार स्त्री-पुत्रोंके संयोगसे रहित, राज्य नष्ट होनेके कारण सुखसे वञ्चित तथा पापियोंद्वारा सेवित अगाध नरक-तुल्य कष्टमें गिरा हुआ नहीं देखेंगे ॥ २८½ ॥

मासेऽपतिष्यः पञ्चमे त्वं सुकृच्छ्रे
न वा गर्भे आभविष्यः पृथायाः ॥ २९ ॥
तत् ते श्रेयो राजपुत्राभविष्य-
न्न चेत् संग्रामादपयानं दुरात्मन् ।

'दुरात्मा राजपुत्र ! यदि तुम पाँचवें महीनेमें माताके गर्भसे गिर गये होते अथवा माता कुन्तीके अत्यन्त कष्टदायक गर्भमें आये ही नहीं होते तो वह तुम्हारे लिये अच्छा होता; क्योंकि उस दशामें तुम्हें युद्धसे भाग आनेका कलङ्क तो नहीं प्राप्त होता ॥ २९½ ॥

धिग्गाण्डीवं धिक् च ते बाहुवीर्य-
मसंख्येयान् बाणगणांश्च धिक् ते।
धिक् ते केतुं केसरिणः सुतस्य
कृशानुदत्तं च रथं च धिक् ते ॥ ३० ॥

'धिक्कार है तुम्हारे इस गाण्डीव धनुषको, धिक्कार है तुम्हारी भुजाओंके पराक्रमको, धिक्कार है तुम्हारे इन असंख्य बाणोंको, धिक्कार है हनुमान्‌जीके द्वारा उपलक्षित तुम्हारी इस ध्वजाको तथा धिक्कार है अग्निदेवके दिये हुए इस रथको' ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि युधिष्ठिरक्रोधवाक्येऽष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें युधिष्ठिरका क्रोधपूर्ण वचनविषयक अड़सठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ५ श्लोक मिलाकर कुल ३५ श्लोक हैं)

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

युधिष्ठिरका वध करनेके लिये उद्यत हुए अर्जुनको भगवान् श्रीकृष्णका बलाकव्याध और कौशिक मुनिकी कथा सुनाते हुए धर्मका तत्त्व बताकर समझाना

संजय उवाच

युधिष्ठिरेणैवमुक्तः कौन्तेयः श्वेतवाहनः ।
असिं जग्राह संक्रुद्धो जिघांसुर्भरतर्षभम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर श्वेतवाहन कुन्तीकुमार अर्जुनको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने भरतश्रेष्ठ युधिष्ठिरको मार डालनेकी इच्छासे तलवार उठा ली ॥

तस्य कोपं समुद्वीक्ष्य चित्तज्ञः केशवस्तदा ।
उवाच किमिदं पार्थ गृहीतः खड्ग इत्युत ॥ २ ॥

उस समय उनका क्रोध देखकर सबके मनकी बात जाननेवाले भगवान् श्रीकृष्णने पूछा—'पार्थ ! यह क्या ! तुमने तलवार कैसे उठा ली ! ॥ २ ॥

न हि पश्यामि योद्धव्यं त्वया किञ्चिद् धनंजय ।
ते ग्रस्ता धार्तराष्ट्रा हि भीमसेनेन धीमता ॥ ३ ॥

'धनंजय ! यहाँ तुम्हें किसीके साथ युद्ध करना हो, ऐसा तो नहीं दिखायी देता; क्योंकि धृतराष्ट्रके पुत्रोंको बुद्धिमान् भीमसेनने कालका ग्रास बना रक्खा है ॥ ३ ॥

अपयातोऽसि कौन्तेय राजा द्रष्टव्य इत्यपि ।
स राजा भवता दृष्टः कुशली च युधिष्ठिरः ॥ ४ ॥

'कुन्तीनन्दन ! तुम तो यह सोचकर युद्धसे हट आये थे कि राजा युधिष्ठिरका दर्शन कर लूँ। सो तुमने राजाका दर्शन कर लिया। राजा युधिष्ठिर सब प्रकारसे सकुशल हैं ॥

स दृष्ट्वा नृपशार्दूलं शार्दूलसमविक्रमम् ।
हर्षकाले च सम्प्राप्ते किमिदं मोहकारितम् ॥ ५ ॥

'सिंहके समान पराक्रमी नृपश्रेष्ठ युधिष्ठिरको स्वस्थ देखकर जब तुम्हारे लिये हर्षका अवसर आया है, ऐसे समय-में यह मोहकारित कौन-सा कृत्य होने जा रहा है ? ॥ ५ ॥

न तं पश्यामि कौन्तेय यस्ते वध्यो भविष्यति ।
प्रहर्तुमिच्छसे कस्मात् किं वा ते चित्तविभ्रमः ॥ ६ ॥

'कुन्तीनन्दन ! मैं किसी ऐसे मनुष्यको भी यहाँ नहीं देखता, जो तुम्हारेद्वारा वध करनेके योग्य हो। फिर तुम प्रहार क्यों करना चाहते हो ? तुम्हारे चित्तमें भ्रम तो नहीं हो गया है ? ॥ ६ ॥

कस्माद् भवान् महाखड्गं परिगृह्णाति सत्वरः ।
तत् त्वां पृच्छामि कौन्तेय किमिदं ते चिकीर्षितम् ॥ ७ ॥
परामृशसि यत् क्रुद्धः खड्गमद्भुतविक्रम ।

'पार्थ ! तुम क्यों इतने उतावले होकर विशाल खड्ग हाथमें ले रहे हो। अद्भुत पराक्रमी वीर ! मैं तुमसे पूछता हूँ, बताओ, इस समय तुम्हें यह क्या करनेकी इच्छा हुई है, जिससे कुपित होकर तलवार उठा रहे हो ?' ॥ ७½ ॥

एवमुक्तस्तु कृष्णेन प्रेक्षमाणो युधिष्ठिरम् ॥ ८ ॥
अर्जुनः प्राह गोविन्दं क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् ।

भगवान् श्रीकृष्णके इस प्रकार पूछनेपर अर्जुनने क्रोधमें भरकर फुफकारते हुए सर्पके समान युधिष्ठिरकी ओर देखकर श्रीकृष्णसे कहा—॥ ८½ ॥

अन्यस्मै देहि गाण्डीवमिति मां योऽभिचोदयेत् ॥ ९॥
भिन्द्यामहं तस्य शिर इत्युपांशुव्रतं मम ।
तदुक्तं मम चानेन राज्ञामितपराक्रम ॥ १० ॥
समक्षं तव गोविन्द न तत् क्षन्तुमिहोत्सहे ।
तस्मादेनं वधिष्यामि राजानं धर्मभीरुकम् ॥ ११ ॥

''जो मुझसे यह कह दे कि तुम अपना गाण्डीव धनुष दूसरेको दे दो, उसका मैं सिर काट लूँगा ।' मैंने मन-ही-मन यह प्रतिज्ञा कर रक्खी है। अनन्त पराक्रमी गोविन्द! आपके सामने ही इन महाराजने मुझसे वह बात कही है, अतः मैं इन्हें क्षमा नहीं कर सकता; इन धर्मभीरु नरेशका वध करूँगा॥

प्रतिज्ञां पालयिष्यामि हत्वैनं नरसत्तमम् ।
एतदर्थं मया खड्गो गृहीतो यदुनन्दन ॥ १२ ॥

'यदुनन्दन ! इन नरश्रेष्ठका वध करके मैं अपनी प्रतिज्ञाका पालन करूँगा; इसीलिये मैंने यह खड्ग हाथमें लिया है॥

सोऽहं युधिष्ठिरं हत्वा सत्यस्यानृण्यतां गतः ।
विशोको विज्वरश्चापि भविष्यामि जनार्दन ॥ १३ ॥

'जनार्दन ! मैं युधिष्ठिरका वध करके उस सच्ची प्रतिज्ञाके भारसे उऋण हो शोक और चिन्तासे मुक्त हो जाऊँगा ॥

किं वा त्वं मन्यसे प्राप्तमस्मिन् काल उपस्थिते ।
त्वमस्य जगतस्तात वेत्थ सर्वं गतागतम् ॥ १४ ॥
तत् तथा प्रकरिष्यामि यथा मां वक्ष्यते भवान् ।

'तात ! आप इस अवसरपर क्या करना उचित समझते हैं ? आप ही इस जगत्के भूत और भविष्यको जानते हैं, अतः आप मुझे जैसी आज्ञा देंगे, वैसा ही करूँगा' ॥१४½॥

संजय उवाच

धिग् धिगित्येव गोविन्दः पार्थमुक्त्वाब्रवीत् पुनः॥ १५॥

संजय कहते हैं—राजन् ! यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे 'धिक्कार है ! धिक्कार है !!' ऐसा कहकर पुनः इस प्रकार बोले ॥ १५ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

इदानीं पार्थ जानामि न वृद्धाः सेवितास्त्वया ।
काले न पुरुषव्याघ्र संरम्भं यद् भवानगात् ॥ १६ ॥

श्रीकृष्णने कहा—पार्थ ! इस समय मैं समझता हूँ कि तुमने वृद्ध पुरुषोंकी सेवा नहीं की है । पुरुषसिंह ! इसीलिये तुम्हें बिना अवसरके ही क्रोध आ गया है ॥ १६ ॥

न हि धर्मविभागज्ञः कुर्यादेवं धनंजय ।
यथा त्वं पाण्डवाद्येह धर्मभीरुरपण्डितः ॥ १७ ॥

पाण्डुपुत्र धनंजय ! जो धर्मके विभागको जाननेवाला है, वह कभी ऐसा नहीं कर सकता, जैसा कि यहाँ आज तुम करना चाहते हो । वास्तवमें तुम धर्मभीरु होनेके साथ ही बुद्धिहीन भी हो ॥ १७ ॥

अकार्याणां क्रियाणां च संयोगं यः करोति वै ।
कार्याणामक्रियाणां च स पार्थ पुरुषाधमः ॥ १८ ॥

पार्थ ! जो करने योग्य होनेपर भी असाध्य हों तथा जो साध्य होनेपर भी निषिद्ध हों ऐसे कर्मोंसे जो सम्बन्ध जोड़ता है, वह पुरुषोंमें अधम माना गया है ॥ १८ ॥

अनुसृत्य तु ये धर्मं कथयेयुरुपस्थिताः ।
समासविस्तरविदां न तेषां वेत्सि निश्चयम् ॥ १९ ॥

जो स्वयं धर्मका अनुसरण एवं आचरण करके शिष्योंद्वारा उपासित होकर उन्हें धर्मका उपदेश देते हैं; धर्मके संक्षेप एवं विस्तारको जाननेवाले उन गुरुजनोंका इस विषयमें क्या निर्णय है, इसे तुम नहीं जानते ॥ १९ ॥

अनिश्चयज्ञो हि नरः कार्याकार्यविनिश्चये ।
अवशो मुह्यते पार्थ यथा त्वं मूढ एव तु ॥ २० ॥

पार्थ ! उस निर्णयको न जाननेवाला मनुष्य कर्तव्य और अकर्तव्यके निश्चयमें तुम्हारे ही समान असमर्थ, विवेकशून्य एवं मोहित हो जाता है ॥ २० ॥

न हि कार्यमकार्यं वा सुखं ज्ञातुं कथंचन ।
श्रुतेन ज्ञायते सर्वं तच्च त्वं नावबुध्यसे ॥ २१ ॥

कर्तव्य और अकर्तव्यका ज्ञान किसी तरह भी अनायास ही नहीं हो जाता है । वह सब शास्त्रसे जाना जाता है और शास्त्रका तुम्हें पता ही नहीं है ॥ २१ ॥

अविज्ञानाद् भवान् यच्च धर्मं रक्षति धर्मवित् ।
प्राणिनां त्वं वधं पार्थ धार्मिको नावबुध्यसे॥ २२ ॥

कुन्तीनन्दन ! तुम अज्ञानवश अपनेको धर्मज्ञ मानकर जो धर्मकी रक्षा करने चले हो, उसमें प्राणिहिंसाका पाप है, यह बात तुम्हारे-जैसे धार्मिककी समझमें नहीं आती है ॥२२॥

प्राणिनामवधस्तात सर्वज्यायान् मतो मम ।
अनृतां वा वदेद् वाचं न तु हिंस्यात् कथंचन॥ २३ ॥

तात ! मेरे विचारसे प्राणियोंकी हिंसा न करना ही सबसे श्रेष्ठ धर्म है । किसीकी प्राणरक्षाके लिये झूठ बोलना पड़े तो बोल दे, किंतु उसकी हिंसा किसी तरह न होने दे ॥२३॥

स कथं भ्रातरं ज्येष्ठं राजानं धर्मकोविदम् ।
हन्याद् भवान् नरश्रेष्ठ प्राकृतोऽन्यः पुमानिव॥ २४ ॥

नरश्रेष्ठ ! तुम दूसरे गवाँर मनुष्यके समान अपने बड़े भाई धर्मज्ञ नरेशका वध कैसे करोगे ? ॥ २४ ॥

अयुध्यमानस्य वधस्तथाशत्रोश्च मानद ।
पराङ्मुखस्य द्रवतः शरणं चापि गच्छतः ॥ २५ ॥
कृताञ्जलेः प्रपन्नस्य प्रमत्तस्य तथैव च ।
न वधः पूज्यते सद्भिस्तच्च सर्वं गुरौ तव ॥ २६ ॥

मानद ! जो युद्ध न करता हो, शत्रुता न रखता हो,

संग्रामसे विमुख होकर भागा जा रहा हो, शरणमें आता हो, हाथ जोड़कर आश्रयमें आ पड़ा हो तथा असावधान हो, ऐसे मनुष्यका वध करना श्रेष्ठ पुरुष अच्छा नहीं समझते हैं। तुम्हारे बड़े भाईमें उपर्युक्त सभी बातें हैं ॥ २५-२६ ॥

त्वया चैवं व्रतं पार्थ बालेनेव कृतं पुरा।
तस्मादधर्मसंयुक्तं मौर्ख्यात् कर्म व्यवस्यसि ॥ २७ ॥

पार्थ ! तुमने नासमझ बालकके समान पहले कोई प्रतिज्ञा कर ली थी, इसीलिये तुम मूर्खतावश अधर्मयुक्त कार्य करनेको तैयार हो गये हो ॥ २७ ॥

स गुरुं पार्थ कस्मात् त्वं हन्तुकामोऽभिधावसि।
असम्प्रधार्य धर्माणां गतिं सूक्ष्मां दुरत्ययाम् ॥ २८ ॥

कुन्तीकुमार ! बताओ तो तुम धर्मके सूक्ष्म एवं दुर्बोध स्वरूपका अच्छी तरह विचार किये बिना ही अपने ज्येष्ठ भ्राताका वध करनेके लिये कैसे दौड़ पड़े ? ॥ २८ ॥

इदं धर्मरहस्यं च तव वक्ष्यामि पाण्डव।
यद् ब्रूयात् तव भीष्मो हि पाण्डवो वा युधिष्ठिरः॥२९॥
विदुरो वा तथा क्षत्ता कुन्ती वापि यशस्विनी।
तत् ते वक्ष्यामि तत्त्वेन निबोधैतद् धनंजय ॥ ३० ॥

पाण्डुनन्दन ! मैं तुम्हें यह धर्मका रहस्य बता रहा हूँ। धनंजय ! पितामह भीष्म, पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर, विदुरजी अथवा यशस्विनी कुन्तीदेवी—ये लोग तुम्हें धर्मके जिस तत्त्वका उपदेश कर सकते हैं, उसीको मैं ठीक-ठीक बता रहा हूँ। इसे ध्यान देकर सुनो ॥ २९-३० ॥

सत्यस्य वचनं साधु न सत्याद् विद्यते परम्।
तत्त्वेनैव सुदुर्ज्ञेयं पश्य सत्यमनुष्ठितम् ॥ ३१ ॥

सत्य बोलना उत्तम है। सत्यसे बढ़कर दूसरा कुछ नहीं है; परंतु यह समझ लो कि सत्पुरुषोंद्वारा आचरणमें लाये हुए सत्यके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान अत्यन्त कठिन होता है ॥ ३१ ॥

भवेत् सत्यमवक्तव्यं वक्तव्यमनृतं भवेत्।
यत्रानृतं भवेत् सत्यं सत्यं चाप्यनृतं भवेत् ॥ ३२ ॥

जहाँ मिथ्या बोलनेका परिणाम सत्य बोलनेके समान मङ्गलकारक हो अथवा जहाँ सत्य बोलनेका परिणाम असत्य-भाषणके समान अनिष्टकारी हो, वहाँ सत्य नहीं बोलना चाहिये। वहाँ असत्य बोलना ही उचित होगा ॥ ३२ ॥

विवाहकाले रतिसम्प्रयोगे
प्राणात्यये सर्वधनापहारे।
विप्रस्य चार्थे ह्यनृतं वदेत
पञ्चानृतान्याहुरपातकानि ॥ ३३ ॥

विवाहकालमें, स्त्रीप्रसङ्गके समय, किसीके प्राणोंपर सङ्कट आनेपर, सर्वस्वका अपहरण होते समय तथा ब्राह्मणकी भलाईके लिये आवश्यकता हो तो असत्य बोल दे; इन पाँच अवसरोंपर झूठ बोलनेसे पाप नहीं होता ॥ ३३ ॥

सर्वस्वस्यापहारे तु वक्तव्यमनृतं भवेत्।
तत्रानृतं भवेत् सत्यं सत्यं चाप्यनृतं भवेत् ॥ ३४ ॥
तादृशं पश्यते बालो यस्य सत्यमनुष्ठितम्।

जब किसीका सर्वस्व छीना जा रहा हो तो उसे बचानेके लिये झूठ बोलना कर्तव्य है। वहाँ असत्य ही सत्य और सत्य ही असत्य हो जाता है। जो मूर्ख है, वही यथाकथञ्चित् व्यवहारमें लाये हुए एक-जैसे सत्यको सर्वत्र आवश्यक समझता है ॥ ३४½ ॥

भवेत् सत्यमवक्तव्यं न वक्तव्यमनुष्ठितम्।
सत्यानृते विनिश्चित्य ततो भवति धर्मवित् ॥ ३५ ॥

केवल अनुष्ठानमें लाया गया असत्यरूप सत्य बोलने योग्य नहीं होता, अतः वैसा सत्य न बोले। पहले सत्य और असत्यका अच्छी तरह निर्णय करके जो परिणाममें सत्य हो उसका पालन करे। जो ऐसा करता है, वही धर्मका ज्ञाता है ॥ ३५ ॥

किमाश्चर्यं कृतप्रज्ञः पुरुषोऽपि सुदारुणः।
सुमहत् प्राप्नुयात् पुण्यं बलाकोऽन्धवधादिव ॥ ३६ ॥

जिसकी बुद्धि शुद्ध (निष्काम) है, वह पुरुष यदि अत्यन्त कठोर होकर भी, जैसे अंधे पशुको मार देनेसे बलाक नामक व्याध पुण्यका भागी हुआ था, उसी प्रकार महान् पुण्य प्राप्त कर ले तो क्या आश्चर्य है ? ॥ ३६ ॥

किमाश्चर्यं पुनर्मूढो धर्मकामो ह्यपण्डितः।
सुमहत् प्राप्नुयात् पापमापगास्विव कौशिकः॥ ३७ ॥

इसी तरह जो धर्मकी इच्छा तो रखता है, पर है मूर्ख और अज्ञानी, वह नदियोंके संगमपर बसे हुए कौशिक मुनिकी भाँति यदि अज्ञानपूर्वक धर्म करके भी महान् पापका भागी हो जाय तो क्या आश्चर्य है ? ॥ ३७ ॥

अर्जुन उवाच

आचक्ष्व भगवन्नेतद् यथा विन्दाम्यहं तथा।
बलाकस्यानुसम्बन्धं नदीनां कौशिकस्य च ॥ ३८ ॥

अर्जुन बोले—भगवन् ! बलाक नामक व्याध और नदियोंके संगमपर रहनेवाले कौशिक मुनिकी कथा कहिये, जिससे मैं इस विषयको अच्छी तरह समझ सकूँ ॥ ३८ ॥

वासुदेव उवाच

पुरा व्याधोऽभवत् कश्चिद् बलाको नाम भारत।
यात्रार्थं पुत्रदारस्य मृगान् हन्ति न कामतः ॥ ३९ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—भारत ! प्राचीनकालमें बलाक नामसे प्रसिद्ध एक व्याध रहता था, जो अपनी स्त्री और पुत्रोंकी जीवनरक्षाके लिये ही हिंसक पशुओंको मारा करता था, कामनावश नहीं ॥ ३९ ॥

वृद्धौ च मातापितरौ बिभर्त्यन्यांश्च संश्रितान्।
स्वधर्मनिरतो नित्यं सत्यवागनसूयकः ॥ ४० ॥

वह बूढ़े माता-पिता तथा अन्य आश्रित जनोंका पालन-पोषण किया करता था। सदा अपने धर्ममें लगा रहता, सत्य बोलता और किसीकी निन्दा नहीं करता था ॥ ४० ॥

स कदाचिन्मृगं लिप्सुर्नाभ्यविन्दन्मृगं क्वचित्।
अपः पिबन्तं ददृशे श्वापदं घ्राणचक्षुषम् ॥ ४१ ॥

एक दिन वह पशुको मार लानेके लिये वनमें गया; किंतु कहीं किसी हिंसक पशुको न पा सका। इतनेहीमें उसे एक पानी पीता हुआ हिंसक जानवर दिखायी दिया, जो अंधा था, नाकसे सूँघकर ही आँखका काम निकाला करता था ॥ ४१ ॥

अदृष्टपूर्वमपि तत् सत्त्वं तेन हतं तदा।
अन्धे हते ततो व्योम्नः पुष्पवर्षं पपात च ॥ ४२ ॥

यद्यपि वैसे जानवरको व्याधने पहले कभी नहीं देखा था, तो भी उस समय उसने मार डाला। उस अंधे पशुके मारे जाते ही आकाशसे व्याधपर फूलोंकी वर्षा होने लगी॥४२॥

अप्सरोगीतवादित्रैर्नादितं च मनोरमम्।
विमानमगमत् स्वर्गान्मृगव्याधनिनीषया ॥ ४३ ॥

साथ ही उस हिंसक पशुओंको मारनेवाले व्याधको ले जानेके लिये स्वर्गसे एक सुन्दर विमान उतर आया, जो अप्सराओंके गीतों और वाद्योंकी मधुर ध्वनिसे मुखरित होनेके कारण बड़ा मनोरम जान पड़ता था ॥ ४३ ॥

तद् भूतं सर्वभूतानामभावाय किलार्जुन।
तपस्तप्त्वा वरं प्राप्तं कृतमन्धं स्वयम्भुवा ॥ ४४ ॥

अर्जुन! लोग कहते हैं कि उस जन्तुने पूर्वजन्ममें तप करके सम्पूर्ण प्राणियोंका संहार कर डालनेके लिये वर प्राप्त किया था; इसीलिये ब्रह्माजीने उसे अन्धा बना दिया था॥

तद्धत्वा सर्वभूतानामभावकृतनिश्चयम्।
ततो बलाकः स्वरगादेवं धर्मः सुदुर्विदः ॥ ४५ ॥

इस प्रकार समस्त प्राणियोंका अन्त कर देनेके निश्चयसे युक्त उस जन्तुको मारकर बलाक स्वर्गलोकमें चला गया; अतः धर्मका स्वरूप अत्यन्त दुर्ज्ञेय है ॥ ४५ ॥

कौशिकोऽप्यभवद् विप्रस्तपस्वी नो बहुश्रुतः।
नदीनां संगमे ग्रामाददूरात् स किलावसत् ॥ ४६ ॥

इसी तरह कौशिक नामका एक तपस्वी ब्राह्मण था, जो बहुत पढ़ा-लिखा या शास्त्रज्ञ नहीं था। वह गाँवके पास ही नदियोंके संगमपर निवास करता था ॥ ४६ ॥

सत्यं मया सदा वाच्यमिति तस्याभवद् व्रतम्।
सत्यवादीति विख्यातः स तदाऽऽसीद् धनंजय॥४७॥

धनंजय! उसने यह नियम ले लिया था कि मैं सदा सत्य ही बोलूँगा। इसलिये उन दिनों वह सत्यवादीके नामसे विख्यात हो गया था ॥ ४७ ॥

अथ दस्युभयात् केचित् तदा तद् वनमाविशन्।
तत्रापि दस्यवः क्रुद्धास्तानमार्गन्त यत्नतः ॥ ४८ ॥

एक दिनकी बात है, कुछ लोग लुटेरोंके भयसे छिपनेके लिये उस वनमें घुस गये; परंतु वे लुटेरे कुपित हो वहाँ भी उन लोगोंका यत्नपूर्वक अनुसंधान करने लगे ॥ ४८ ॥

अथ कौशिकमभ्येत्य प्राहुस्ते सत्यवादिनम्।
कतमेन पथा याता भगवन् बहवो जनाः ॥ ४९ ॥
सत्येन पृष्टः प्रब्रूहि यदि तान् वेत्थ शंस नः।

उन्होंने सत्यवादी कौशिक मुनिके पास आकर पूछा—'भगवन्! बहुत-से लोग जो इधर ही आये हैं, किस रास्तेसे गये हैं? मैं सत्यकी साक्षीसे पूछता हूँ। यदि आप उन्हें जानते हों तो बताइये' ॥ ४९½ ॥

स पृष्टः कौशिकः सत्यं वचनं तानुवाच ह ॥ ५० ॥
बहुवृक्षलतागुल्ममेतद् वनमुपाश्रिताः।
इति तान् ख्यापयामास तेभ्यस्तत्त्वं स कौशिकः ॥५१॥

उनके इस प्रकार पूछनेपर कौशिक मुनिने उन्हें सच्ची बात बता दी—'इस वनमें जहाँ बहुत-से वृक्ष, लताएँ और झाड़ियाँ हैं, वहीं वे गये हैं।' इस प्रकार कौशिकने उन दस्युओंको यथार्थ बात बता दी ॥ ५०-५१ ॥

ततस्ते तान् समासाद्य क्रूरा जघ्नुरिति श्रुतिः।
तेनाधर्मेण महता वाग्दुरुक्तेन कौशिकः ॥ ५२ ॥
गतः स कष्टं नरकं सूक्ष्मधर्मेष्वकोविदः।

तब उन निर्दयी डाकुओंने उन सबका पता पाकर उन्हें मार डाला, ऐसा सुना गया है। इस तरह वाणीका दुरुपयोग करनेसे कौशिकको महान् पाप लगा, जिससे उसे नरकका कष्ट भोगना पड़ा; क्योंकि वह धर्मके सूक्ष्म स्वरूपको समझनेमें कुशल नहीं था ॥ ५२½ ॥

यथा चाल्पश्रुतो मूढो धर्माणामविभागवित् ॥ ५३ ॥
वृद्धानपृष्ट्वा संदेहं महच्छ्वभ्रमिवार्हति।

जिसे शास्त्रोंका बहुत थोड़ा ज्ञान है, जो विवेकशून्य होनेके कारण धर्मोंके विभागको ठीक-ठीक नहीं जानता, वह मनुष्य यदि वृद्ध पुरुषोंसे अपने संदेह नहीं पूछता तो अनुचित कर्म कर बैठनेके कारण वह महान् नरकके सदृश कष्ट भोगनेके योग्य हो जाता है ॥ ५३½ ॥

तत्र ते लक्षणोद्देशः कश्चिदेवं भविष्यति ॥ ५४ ॥
दुष्करं परमं ज्ञानं तर्केणानुव्यवस्यति।
श्रुतेर्धर्म इति ह्येके वदन्ति बहवो जनाः ॥ ५५ ॥

धर्माधर्मके निर्णयके लिये तुम्हें संक्षेपसे कोई संकेत बताना पड़ेगा, जो इस प्रकार होगा। कुछ लोग परम ज्ञानरूप दुष्कर धर्मको तर्कके द्वारा जाननेका प्रयत्न करते हैं; परंतु एक श्रेणीके बहुसंख्यक मनुष्य ऐसा कहते हैं कि धर्मका ज्ञान वेदोंसे होता है ॥ ५४-५५ ॥

तत् ते न प्रत्यसूयामि न च सर्वं विधीयते।
प्रभवार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम् ॥ ५६ ॥

किंतु मैं तुम्हारे निकट इन दोनों मतोंके ऊपर कोई दोषारोपण नहीं करता; परंतु केवल वेदोंके द्वारा सभी धर्म-कर्मोंका विधान नहीं होता; इसीलिये धर्मज्ञ महर्षियोंने समस्त

प्राणियोंके अभ्युदय और निःश्रेयसके लिये उत्तम धर्मका प्रतिपादन किया है ॥ ५६ ॥

यत् स्यादहिंसासंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः।
अहिंसार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम् ॥ ५७ ॥

सिद्धान्त यह है कि जिस कार्यमें हिंसा न हो, वही धर्म है। महर्षियोंने प्राणियोंकी हिंसा न होने देनेके लिये ही उत्तम धर्मका प्रवचन किया है ॥ ५७ ॥

धारणाद् धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।
यत् स्याद् धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः ॥ ५८ ॥

धर्म ही प्रजाको धारण करता है और धारण करनेके कारण ही उसे धर्म कहते हैं। इसलिये जो धारण—प्राण-रक्षासे युक्त हो—जिसमें किसी भी जीवकी हिंसा न की जाती हो, वही धर्म है। ऐसा ही धर्म-शास्त्रोंका सिद्धान्त है ॥ ५८ ॥

येऽन्यायेन जिहीर्षन्तो धर्ममिच्छन्ति कर्हिचित्।
अकूजनेन मोक्षं वा नानुकूजेत् कथंचन ॥ ५९ ॥

जो लोग अन्यायपूर्वक दूसरोंके धन आदिका अपहरण कर लेना चाहते हैं, वे कभी अपने स्वार्थकी सिद्धिके लिये दूसरोंसे सत्यभाषणरूप धर्मका पालन कराना चाहते हों तो वहाँ उनके समक्ष मौन रहकर उनसे पिण्ड छुड़ानेकी चेष्टा करे, किसी तरह कुछ बोले ही नहीं ॥ ५९ ॥

अवश्यं कूजितव्ये वा शङ्केरन्नप्यकूजतः।
श्रेयस्तत्रानृतं वक्तुं तत् सत्यमविचारितम् ॥ ६० ॥

किंतु यदि बोलना अनिवार्य हो जाय अथवा न बोलनेसे लुटेरोंको संदेह होने लगे तो वहाँ असत्य बोलना ही ठीक है। ऐसे अवसरपर उस असत्यको ही बिना विचारे सत्य समझो ॥

यः कार्येभ्यो व्रतं कृत्वा तस्य नानोपपादयेत्।
न तत्फलमवाप्नोति एवमाहुर्मनीषिणः ॥ ६१ ॥

जो मनुष्य किसी कार्यके लिये प्रतिज्ञा करके उसका प्रकारान्तरसे उपपादन करता है, वह दम्भी होनेके कारण उसका फल नहीं पाता, ऐसा मनीषी पुरुषोंका कथन है ॥ ६१ ॥

प्राणात्यये विवाहे वा सर्वज्ञातिवधात्यये।
नर्मण्यभिप्रवृत्ते वा न च प्रोक्तं मृषा भवेत् ॥ ६२ ॥
अधर्मं नात्र पश्यन्ति धर्मतत्त्वार्थदर्शिनः।

प्राणसङ्कटकालमें, विवाहमें, समस्त कुटुम्बियोंके प्राणान्त-का समय उपस्थित होनेपर तथा हँसी-परिहास आरम्भ होनेपर यदि असत्य बोला गया हो तो वह असत्य नहीं माना जाता। धर्मके तत्त्वको जाननेवाले विद्वान् उक्त अवसरोंपर मिथ्या बोलनेमें पाप नहीं समझते ॥ ६२½ ॥

यः स्तेनैः सह सम्बन्धान्मुच्यते शपथैरपि ॥ ६३ ॥
श्रेयस्तत्रानृतं वक्तुं तत् सत्यमविचारितम्।

जो झूठी शपथ खानेपर भी लुटेरोंके साथ बन्धनमें पड़नेसे छुटकारा पा सके, उसके लिये वहाँ असत्य बोलना ही ठीक है। उसे बिना विचारे सत्य समझना चाहिये ॥

न च तेभ्यो धनं देयं शक्ये सति कथंचन ॥ ६४ ॥
पापेभ्यो हि धनं दत्तं दातारमपि पीडयेत्।

जहाँतक वश चले, किसी तरह उन लुटेरोंको धन नहीं देना चाहिये; क्योंकि पापियोंको दिया हुआ धन दाताको भी दुःख देता है ॥ ६४½ ॥

तस्माद् धर्मार्थमनृतमुक्त्वा नानृतभाग् भवेत् ॥ ६५ ॥
एष ते लक्षणोद्देशो मयोद्दिष्टो यथाविधि।
यथाधर्मं यथाबुद्धि मयाद्य वै हितार्थिना ॥ ६६ ॥
एतच्छ्रुत्वा ब्रूहि पार्थ यदि वध्यो युधिष्ठिरः।

अतः धर्मके लिये झूठ बोलनेपर मनुष्य असत्यभाषणके दोषका भागी नहीं होता। अर्जुन! मैं तुम्हारा हित चाहता हूँ, इसलिये आज मैंने अपनी बुद्धि और धर्मके अनुसार संक्षेपसे तुम्हारे लिये यह विधिपूर्वक धर्माधर्मके निर्णयका संकेत बताया है। यह सुनकर अब तुम्हीं बताओ, क्या अब भी राजा युधिष्ठिर तुम्हारे वध्य हैं ॥ ६५-६६½ ॥

अर्जुन उवाच

यथा ब्रूयान्महाप्राज्ञो यथा ब्रूयान्महामतिः ॥ ६७ ॥
हितं चैव यथास्माकं तथैतद् वचनं तव।

अर्जुन बोले—प्रभो! कोई बहुत बड़ा विद्वान् और परम बुद्धिमान् मनुष्य जैसा उपदेश दे सकता है तथा जिसके अनुसार आचरण करनेसे हमलोगोंका हित हो सकता है, वैसा ही आपका यह भाषण हुआ है ॥ ६७½ ॥

भवान् मातृसमोऽस्माकं तथा पितृसमोऽपि च ॥ ६८ ॥
गतिश्च परमा कृष्ण त्वमेव च परायणम्।

श्रीकृष्ण! आप हमारे माता-पिताके तुल्य हैं। आप ही परमगति और परम आश्रय हैं ॥ ६८½ ॥

न हि ते त्रिषु लोकेषु विद्यतेऽविदितं क्वचित् ॥ ६९ ॥
तस्माद् भवान् परं धर्मं वेद सर्वं यथातथम्।

तीनों लोकोंमें कहीं कोई भी ऐसी बात नहीं है, जो आपको विदित न हो; अतः आप ही परम धर्मको सम्पूर्ण और यथार्थरूपसे जानते हैं ॥ ६९½ ॥

अवध्यं पाण्डवं मन्ये धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ ७० ॥
अस्मिंस्तु मम संकल्पे ब्रूहि किंचिदनुग्रहम्।
इदं वा परमत्रैव शृणु हृत्स्थं विवक्षितम् ॥ ७१ ॥

अब मैं पाण्डुनन्दन धर्मराज युधिष्ठिरको वधके योग्य नहीं मानता। मेरी इस मानसिक प्रतिज्ञाके विषयमें आप ही कोई अनुग्रह (भाईका वध किये बिना ही प्रतिज्ञाकी रक्षाका उपाय) बताइये। मेरे मनमें जो यहाँ कहनेयोग्य उत्तम बात है, इसे पुनः सुन लीजिये ॥ ७०-७१ ॥

जानासि दाशार्ह मम व्रतं त्वं
यो मां ब्रूयात् कश्चन मानुषेषु।
अन्यस्मै त्वं गाण्डिवं देहि पार्थ
त्वत्तोऽस्त्रैर्वा वीर्यतो वा विशिष्टः ॥ ७२ ॥

हन्यामहं केशव तं प्रसह्य
भीमो हन्यात् तूबरकेति चोक्तः।
तन्मे राजा प्रोक्तवांस्ते समक्षं
धनुर्देहीत्यसकृद् वृष्णिवीर ॥ ७३ ॥

दशार्हकुलनन्दन ! आप तो यह जानते ही हैं कि मेरा व्रत क्या है ? मनुष्योंमेंसे जो कोई भी मुझसे यह कह दे कि 'पार्थ ! तुम अपना गाण्डीव धनुष किसी दूसरे ऐसे पुरुषको दे दो, जो अस्त्रोंके ज्ञान अथवा बलमें तुमसे बढ़कर हो तो केशव ! मैं उसे बलपूर्वक मार डालूँ ।' इसी प्रकार भीमसेनको कोई 'मूँछ-दाढ़ीरहित' कह दे तो वे उसे मार डालेंगे, वृष्णिवीर ! राजा युधिष्ठिरने आपके सामने ही बारंबार मुझसे कहा है कि 'तुम अपना धनुष दूसरेको दे दो' ॥ ७२-७३ ॥

तं हन्यां चेत् केशव जीवलोके
स्थाता नाहं कालमप्यल्पमात्रम् ।
ध्यात्वा नूनं ह्येनसा चापि मुक्तो
वधं राज्ञो भ्रष्टवीर्यो विचेताः ॥ ७४ ॥

केशव ! यदि मैं युधिष्ठिरको मार डालूँ तो इस जीव-जगत्‌में थोड़ी देर भी मैं जीवित नहीं रह सकता । यदि किसी तरह पापसे छूट जाऊँ तो भी राजा युधिष्ठिरके वधका चिन्तन करके जी नहीं सकता । निश्चय ही इस समय मैं किंकर्तव्यविमूढ़ होकर पराक्रमशून्य और अचेत-सा हो गया हूँ ॥

यथा प्रतिज्ञा मम लोकबुद्धौ
भवेत् सत्या धर्मभृतां वरिष्ठ ।
यथा जीवेत् पाण्डवोऽहं च कृष्ण
तथा बुद्धिं दातुमप्यर्हसि त्वम् ॥ ७५ ॥

धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण ! संसारके लोगोंकी समझमें जिस प्रकार मेरी प्रतिज्ञा सच्ची हो जाय और जिस प्रकार पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर और मैं दोनों जीवित रह सकें, वैसी कोई सलाह आप मुझे देनेकी कृपा करें ॥ ७५ ॥

वासुदेव उवाच

राजा श्रान्तो विक्षतो दुःखितश्च
कर्णेन संख्ये निशितैर्बाणसंघैः ।
यश्चानिशं सूतपुत्रेण वीर
शरैर्भृशं ताडितोऽयुध्यमानः ॥ ७६ ॥

श्रीकृष्णने कहा—वीर ! राजा युधिष्ठिर थक गये हैं । कर्णने युद्धस्थलमें अपने तीखे बाणसमूहोंद्वारा इन्हें क्षत-विक्षत कर दिया है, इसलिये ये बहुत दुखी हैं । इतना ही नहीं, जब ये युद्ध नहीं कर रहे थे, उस समय भी सूतपुत्रने इनके ऊपर लगातार बाणोंकी वर्षा करके इन्हें अत्यन्त घायल कर दिया था ॥ ७६ ॥

अतस्त्वमेतेन सरोषमुक्तो
दुःखान्वितेनेदमयुक्तरूपम् ।
अकोपितो ह्येष यदि स्म संख्ये
कर्णं न हन्यादिति चाब्रवीत् सः ॥ ७७ ॥

इसीलिये दुखी होनेके कारण इन्होंने तुम्हारे प्रति रोषपूर्वक ये अनुचित बातें कही हैं । इन्होंने यह भी सोचा है कि यदि अर्जुनको क्रोध न दिलाया गया तो ये युद्धमें कर्णको नहीं मार सकेंगे, इस कारणसे भी वैसी बातें कह दी हैं ॥ ७७ ॥

जानाति तं पाण्डव एष चापि
पापं लोके कर्णमसह्यमन्यैः ।
ततस्त्वमुक्तो भृशरोषितेन
राज्ञा समक्षं परुषाणि पार्थ ॥ ७८ ॥

ये पाण्डुनन्दन राजा युधिष्ठिर जानते हैं कि संसारमें पापी कर्णका सामना करना तुम्हारे सिवा दूसरोंके लिये असम्भव है । पार्थ ! इसीलिये अत्यन्त रोषमें भरे हुए राजाने मेरे सामने तुम्हें कटु वचन सुनाये हैं ॥ ७८ ॥

नित्योद्युक्ते सततं चाप्रसह्ये
कर्णे द्यूतं ह्यद्य रणे निबद्धम् ।
तस्मिन् हते कुरवो निर्जिताः स्यु-
रेवं बुद्धिः पार्थिवे धर्मपुत्रे ॥ ७९ ॥

कर्ण नित्य-निरन्तर युद्धके लिये उद्यत और शत्रुओंके लिये असह्य है । आज रणभूमिमें हार-जीतका जूआ कर्णपर ही अवलम्बित है । कर्णके मारे जानेपर अन्य कौरव शीघ्र ही परास्त हो सकते हैं । धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरके मनमें ऐसा ही विचार काम कर रहा था ॥ ७९ ॥

ततो वधं नार्हति धर्मपुत्र-
स्त्वया प्रतिज्ञार्जुन पालनीया ।
जीवन्नयं येन मृतो भवेद्धि
तन्मे निबोधेह तवानुरूपम् ॥ ८० ॥

अर्जुन ! इसलिये धर्मपुत्र युधिष्ठिर वधके योग्य नहीं हैं । इधर तुम्हें अपनी प्रतिज्ञाका पालन भी करना है । अतः जिस उपायसे ये जीवित रहते हुए भी मरेके समान हो जायँ, वही तुम्हारे अनुरूप होगा । उसे बताता हूँ, सुनो ॥ ८० ॥

यदा मानं लभते माननार्ह-
स्तदा स वै जीवति जीवलोके ।
यदावमानं लभते महान्तं
तदा जीवन्मृत इत्युच्यते सः ॥ ८१ ॥

इस जीवजगत्‌में माननीय पुरुष जबतक सम्मान पाता है, तभीतक वह वास्तवमें जीवित है । जब वह महान् अपमान पाने लगता है, तब वह जीते-जी मरा हुआ कहलाता है ॥

सम्मानितः पार्थिवोऽयं सदैव
त्वया च भीमेन तथा यमाभ्याम् ।
वृद्धैश्च लोके पुरुषैश्च शूरै-
स्तस्यापमानं कलया प्रयुङ्क्ष्व ॥ ८२ ॥

तुमने, भीमसेनने, नकुल-सहदेवने तथा अन्य वृद्ध पुरुषों एवं शूरवीरोंने जगत्‌में राजा युधिष्ठिरका सदा सम्मान किया है; किंतु इस समय तुम उनका थोड़ा-सा अपमान कर दो ॥ ८२ ॥

त्वमित्यत्रभवन्तं हि ब्रूहि पार्थ युधिष्ठिरम् ।
त्वमित्युक्तो हि निहतो गुरुर्भवति भारत ॥ ८३ ॥

पार्थ ! तुम युधिष्ठिरको सदा आप कहते आये हो, आज उन्हें 'तू' कह दो । भारत ! यदि किसी गुरुजनको 'तू' कह दिया जाय तो यह साधु पुरुषोंकी दृष्टिमें उसका वध ही हो जाता है ॥ ८३ ॥

एवमाचर कौन्तेय धर्मराजे युधिष्ठिरे ।
अधर्मयुक्तं संयोगं कुरुष्वैनं कुरूद्वह ॥ ८४ ॥

कुन्तीनन्दन ! तुम धर्मराज युधिष्ठिरके प्रति ऐसा ही बर्ताव करो । कुरुश्रेष्ठ ! उनके लिये इस समय अधर्मयुक्त वाक्यका प्रयोग करो ॥ ८४ ॥

अथर्वाङ्गिरसी ह्येषा श्रुतीनामुत्तमा श्रुतिः ।
अविचार्यैव कार्यैषा श्रेयस्कामैर्नरैः सदा ॥ ८५ ॥

जिसके देवता अथर्वा और अङ्गिरा हैं, ऐसी एक श्रुति है, जो सब श्रुतियोंमें उत्तम है । अपनी भलाई चाहनेवाले मनुष्योंको सदा बिना विचारे ही इस श्रुतिके अनुसार बर्ताव करना चाहिये ॥ ८५ ॥

अवधेन वधः प्रोक्तो यद् गुरुस्त्वमिति प्रभुः ।
तद् ब्रूहि त्वं यन्मयोक्तं धर्मराजस्य धर्मवित् ॥ ८६ ॥

उस श्रुतिका भाव यह है--'गुरुको तू कह देना उसे बिना मारे ही मार डालना है ।' तुम धर्मज्ञ हो तो भी जैसा मैंने बताया है, उसके अनुसार धर्मराजके लिये 'तू' शब्दका प्रयोग करो ॥ ८६ ॥

वधं ह्ययं पाण्डव धर्मराज-
स्त्वत्तोऽयुक्तं वेत्स्यते चैवमेषः ।
ततोऽस्य पादावभिवाद्य पश्चात्
समं ब्रूयाः सान्त्वयित्वा च पार्थम् ॥ ८७ ॥

पाण्डुनन्दन ! तुम्हारे द्वारा किये गये इस अनुचित शब्दके प्रयोगको सुनकर ये धर्मराज अपना वध हुआ ही समझेंगे । इसके बाद तुम इनके चरणोंमें प्रणाम करके इन्हें सान्त्वना देते हुए क्षमा माँग लेना और इनके प्रति न्यायोचित वचन बोलना ॥ ८७ ॥

भ्राता प्राज्ञस्तव कोपं न जातु
कुर्याद् राजा धर्ममवेक्ष्य चापि ।
मुक्तोऽनृताद् भ्रातृवधाच्च पार्थ
हृष्टः कर्णं त्वं जहि सूतपुत्रम् ॥ ८८ ॥

कुन्तीनन्दन ! तुम्हारे भाई राजा युधिष्ठिर समझदार हैं । ये धर्मका ख्याल करके भी तुमपर कभी क्रोध नहीं करेंगे । इस प्रकार तुम मिथ्याभाषण और भ्रातृ-वधके पापसे मुक्त हो बड़े हर्षके साथ सूतपुत्र कर्णका वध करना ॥ ८८ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कृष्णार्जुनसंवादे एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें श्रीकृष्ण और अर्जुनका संवादविषयक उनहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६९ ॥

सप्ततितमोऽध्यायः

भगवान् श्रीकृष्णका अर्जुनको प्रतिज्ञा-भङ्ग, भ्रातृवध तथा आत्मघातसे बचाना और युधिष्ठिरको सान्त्वना देकर संतुष्ट करना

संजय उवाच

इत्येवमुक्तस्तु जनार्दनेन
पार्थः प्रशस्याथ सुहृद्वचस्तत् ।
ततोऽब्रवीदर्जुनो धर्मराज-
मनुक्तपूर्वं परुषं प्रसह्य ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर कुन्तीकुमार अर्जुनने हितैषी सखाके उस वचनकी बड़ी प्रशंसा की । फिर वे हठपूर्वक धर्मराजके प्रति ऐसे कठोर वचन कहने लगे, जैसे उन्होंने पहले कभी नहीं कहे थे ॥ १ ॥

अर्जुन उवाच

मा त्वं राजन् व्याहर व्याहरस्व
यस्तिष्ठसे क्रोशमात्रे रणाद् वै ।
भीमस्तु मामर्हति गर्हणाय
यो युध्यते सर्वलोकप्रवीरैः ॥ २ ॥

अर्जुन बोले—राजन् ! तू तो स्वयं ही युद्धसे भागकर एक कोस दूर आ बैठा है, अतः तू मुझसे न बोल, न बोल । हाँ, भीमसेनको मेरी निन्दा करनेका अधिकार है, जो कि समस्त संसारके प्रमुख वीरोंके साथ अकेले ही जूझ रहे हैं ॥ २ ॥

काले हि शत्रून् परिपीड्य संख्ये
हत्वा च शूरान् पृथिवीपतींस्तान् ।
रथप्रधानोत्तमनागमुख्यान्
सादिप्रवेकानमितांश्च वीरान् ॥ ३ ॥
यः कुञ्जराणामधिकं सहस्रं
हत्वा नदंस्तुमुलं सिंहनादम् ।
काम्बोजानामयुतं पर्वतीयान्
मृगान् सिंहो विनिहत्येव चाजौ ॥ ४ ॥
सुदुष्करं कर्म करोति वीरः
कर्तुं यथा नार्हसि त्वं कदाचित् ।

रथादवप्लुत्य गदां परामृशं-
स्तया निहन्त्यश्वरथद्विपान् रणे ॥ ५ ॥
वरासिना चापि नराश्वकुञ्जरां-
स्तथा रथाङ्गैर्धनुषा दहत्यरीन् ।
प्रमृद्य पद्भ्यामहितान् निहन्ति
पुनस्तु दोर्भ्यां शतमन्युविक्रमः ॥ ६ ॥
महाबलो वैश्रवणान्तकोपमः
प्रसह्य हन्ता द्विषतामनीकिनीम् ।
स भीमसेनोऽर्हति गर्हणां मे
न त्वं नित्यं रक्ष्यसे यः सुहृद्भिः ॥ ७ ॥

जो यथासमय शत्रुओंको पीड़ा देते हुए युद्धस्थलमें उन समस्त शौर्यसम्पन्न भूपतियों, प्रधान-प्रधान रथियों, श्रेष्ठ गजराजों, प्रमुख अश्वारोहियों, असंख्य वीरों, सहस्रसे भी अधिक हाथियों, दस हजार काम्बोजदेशीय अश्वों तथा पर्वतीय वीरोंका वध करके जैसे मृगोंको मारकर सिंह दहाड़ रहा हो, उसी प्रकार भयंकर सिंहनाद करते हैं, जो वीर भीमसेन हाथमें गदा ले रथसे कूदकर उसके द्वारा रणभूमिमें हाथी, घोड़ों एवं रथोंका संहार करते हैं तथा ऐसा अत्यन्त दुष्कर पराक्रम प्रकट कर रहे हैं जैसा कि तू कभी नहीं कर सकता, जिनका पराक्रम इन्द्रके समान है, जो उत्तम खड्ग, चक्र और धनुषके द्वारा हाथी, घोड़ों, पैदल-योद्धाओं तथा अन्यान्य शत्रुओंको दग्ध किये देते हैं और जो पैरोंसे कुचलकर दोनों हाथोंसे वैरियोंका विनाश करते हैं, वे महाबली, कुबेर और यमराजके समान पराक्रमी एवं शत्रुओंकी सेनाका बलपूर्वक संहार करनेमें समर्थ भीमसेन ही मेरी निन्दा करनेके अधिकारी हैं । तू मेरी निन्दा नहीं कर सकता; क्योंकि तू अपने पराक्रमसे नहीं, हितैषी सुहृदोंद्वारा सदा सुरक्षित होता है ॥ ३—७ ॥

महारथान् नागवरान् हयांश्च
पदातिमुख्यानपि च प्रमथ्य ।
एको भीमो धार्तराष्ट्रेषु मग्नः
स मामुपालब्धुमरिंदमोऽर्हति ॥ ८ ॥

जो शत्रुपक्षके महारथियों, गजराजों, घोड़ों और प्रधान-प्रधान पैदल योद्धाओंको भी रौंदकर दुर्योधनकी सेनाओंमें घुस गये हैं, वे एकमात्र शत्रुदमन भीमसेन ही मुझे उलाहना देनेके अधिकारी हैं ॥ ८ ॥

कलिङ्गवङ्गाङ्गनिषादमागधान्
सदामदानीलबलाहकोपमान् ।
निहन्ति यः शत्रुगजाननेकान्
स मामुपालब्धुमरिंदमोऽर्हति ॥ ९ ॥

जो कलिङ्ग, वङ्ग, अङ्ग, निषाद और मगध देशोंमें उत्पन्न सदा मदमत्त रहनेवाले तथा काले मेघोंकी घटाके समान दिखायी देनेवाले शत्रुपक्षीय अनेकानेक हाथियोंका संहार करते हैं, वे शत्रुदमन भीमसेन ही मुझे उलाहना देनेके अधिकारी हैं ॥ ९ ॥

स युक्तमास्थाय रथं हि काले
धनुर्विधुन्वञ्शरपूर्णमुष्टिः ।
सृजत्यसौ शरवर्षाणि वीरो
महाहवे मेघ इवाम्बुधाराः ॥ १० ॥

वीरवर भीमसेन यथासमय जुते हुए रथपर आरूढ़ हो धनुष हिलाते हुए मुट्ठीभर बाण निकालते और जैसे मेघ जलकी धारा गिराते हैं, उसी प्रकार महासमरमें बाणोंकी वर्षा करते हैं ॥ १० ॥

शतान्यष्टौ वारणानामपश्यं
विशातितैः कुम्भकराग्रहस्तैः ।
भीमेनाजौ निहतान्यद्य बाणैः
स मां क्रूरं वक्तुमर्हत्यरिघ्नः ॥ ११ ॥

मैंने देखा है आज भीमसेनने युद्धस्थलमें अपने बाणोंद्वारा शत्रुपक्षके आठ सौ हाथियोंको उनके कुम्भस्थल, शुण्ड और शुण्डाग्रभाग काटकर मार डाला है, वे शत्रुहन्ता भीमसेन ही मुझसे कठोर वचन कहनेके अधिकारी हैं ॥ ११ ॥

(नकुलेन राजन् गजवाजियोधा
हताश्च शूराः सहसा समेत्य ।
त्यक्त्वा प्राणान् समरे युद्धकाङ्क्षी
स मामुपालब्धुमरिंदमोऽर्हति ॥

राजन्! नकुलने समरभूमिमें प्राणोंका मोह छोड़कर सहसा आगे बढ़-बढ़कर बहुतसे हाथी, घोड़े और शूरवीर योद्धाओंका वध किया है। युद्धकी अभिलाषा रखनेवाला वह शत्रुदमन वीर भी मुझे उलाहना दे सकता है ॥

कृतं कर्म सहदेवेन दुष्करं
यो युध्यते परसैन्यावमर्दी ।
न चाब्रवीत् किंचिदिहागतो बली
पश्यान्तरं तस्य चैवात्मनश्च ॥

सहदेवने भी दुष्कर कर्म किया है। शत्रुसेनाका मर्दन करनेवाला वह बलवान् वीर निरन्तर युद्धमें लगा रहता है। वह भी यहाँ आया था, किंतु कुछ भी न बोला। देख ले, तुझमें और उसमें कितना अन्तर है ॥

धृष्टद्युम्नः सात्यकिर्द्रौपदेया
युधामन्युश्चोत्तमौजाः शिखण्डी।
एते च सर्वे युधि सम्प्रपीडिता-
स्ते मामुपालब्धुमर्हन्ति न त्वम् ॥)

धृष्टद्युम्न, सात्यकि, द्रौपदीके पुत्र, युधामन्यु, उत्तमौजा और शिखण्डी—ये सभी वीर युद्धमें अत्यन्त पीड़ा सहन करते आये हैं ; अतः ये ही मुझे उपालम्भ दे सकते हैं, तू नहीं ।

बलं तु वाचि द्विजसत्तमानां
क्षात्रं बुधा बाहुबलं वदन्ति ।

त्वं वाग्बलो भारत निष्ठुरश्च
त्वमेव मां वेत्थ यथाबलोऽहम् ॥ १२ ॥

भरतनन्दन ! ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका बल उनकी वाणीमें होता है और क्षत्रियका बल उनकी दोनों भुजाओंमें; परंतु तेरा बल केवल वाणीमें है, तू निष्ठुर है; मैं जैसा बलवान् हूँ, उसे तू ही अच्छी तरह जानता है ॥

यते हि नित्यं तव कर्तुमिष्टं
दारैः सुतैर्जीवितेनात्मना च ।
एवं यन्मां वाग्विशिखेन हंसि
त्वत्तः सुखं न वयं विद्म किंचित् ॥ १३ ॥

मैं सदा स्त्री, पुत्र, जीवन और यह शरीर लगाकर तेरा प्रिय कार्य सिद्ध करनेके लिये प्रयत्नशील रहता हूँ । ऐसी दशामें भी तू मुझे अपने वाग्बाणोंसे मार रहा है; हमलोग तुझसे थोड़ा-सा भी सुख न पा सके ॥ १३ ॥

मां मावमंस्था द्रौपदीतल्पसंस्थो
महारथान् प्रतिहन्मि त्वदर्थे ।
तेनातिशङ्की भारत निष्ठुरोऽसि
त्वत्तः सुखं नाभिजानामि किंचित् ॥ १४ ॥

तू द्रौपदीकी शय्यापर बैठा-बैठा मेरा अपमान न कर। मैं तेरे ही लिये बड़े-बड़े महारथियोंका संहार कर रहा हूँ । इसीसे तू मेरे प्रति अधिक संदेह करके निष्ठुर हो गया है । तुझसे कोई सुख मिला हो, इसका मुझे स्मरण नहीं है ॥

प्रोक्तः स्वयं सत्यसंधेन मृत्यु-
स्तव प्रियार्थं नरदेव युद्धे ।
वीरः शिखण्डी द्रौपदोऽसौ महात्मा
मयाभिगुप्तेन हतश्च तेन ॥ १५ ॥

नरदेव ! तेरा प्रिय करनेके लिये सत्यप्रतिज्ञ भीष्मजीने युद्धमें महामनस्वी वीर द्रुपदकुमार शिखण्डीको अपनी मृत्यु बताया था । मेरे ही द्वारा सुरक्षित होकर शिखण्डीने उन्हें मारा है ॥ १५ ॥

न चाभिनन्दामि तवाधिराज्यं
यतस्त्वमक्षेष्वहिताय सक्तः ।
स्वयं कृत्वा पापमनार्यजुष्ट-
मस्माभिर्वा तर्तुमिच्छस्यरींस्त्वम् ॥ १६ ॥

मैं तेरे राज्यका अभिनन्दन नहीं करता; क्योंकि तू अपना ही अहित करनेके लिये जूएमें आसक्त है । स्वयं नीच पुरुषोंद्वारा सेवित पापकर्म करके अब तू हमलोगोंके द्वारा शत्रुसेनारूपी समुद्रको पार करना चाहता है ॥ १६ ॥

अक्षेषु दोषा बहवो विधर्माः
श्रुतास्त्वया सहदेवोऽब्रवीद् यान् ।
तान् नैषि त्वं त्यक्तुमसाधुजुष्टां-
स्तेन स्म सर्वे निरयं प्रपन्नाः ॥ १७ ॥

जूआ खेलनेमें बहुत-से पापमय दोष बताये गये हैं, जिन्हें सहदेवने तुझसे कहा था और तूने सुना भी था, तो भी तू उन दुर्जनसेवित दोषोंका परित्याग न कर सका; इसीसे हम सब लोग नरकतुल्य कष्टमें पड़ गये ॥ १७ ॥

सुखं त्वत्तो नाभिजानीम किंचिद्
यतस्त्वमक्षैर्देवितुं सम्प्रवृत्तः ।
स्वयं कृत्वा व्यसनं पाण्डव त्व-
मस्मांस्तीव्राः श्रावयस्यद्य वाचः ॥ १८ ॥

पाण्डुकुमार ! तुझसे थोड़ा-सा भी सुख मिला हो—यह हम नहीं जानते हैं; क्योंकि तू जूआ खेलनेके व्यसनमें पड़ा हुआ है । स्वयं यह दुर्व्यसन करके अब तू हमें कठोर बातें सुना रहा है ॥ १८ ॥

शेतेऽस्माभिर्निहता शत्रुसेना
छिन्नैर्गात्रैर्भूमितले नदन्ती ।
त्वया हि तत् कर्म कृतं नृशंसं
यस्माद् दोषः कौरवाणां वधश्च ॥ १९ ॥

हमारे द्वारा मारी गयी शत्रुओंकी सेना अपने कटे हुए अङ्गोंके साथ पृथ्वीपर पड़ी-पड़ी कराह रही है । तूने वह क्रूरतापूर्ण कर्म कर डाला है, जिससे पाप तो होगा ही; कौरव-वंशका विनाश भी हो जायगा ॥ १९ ॥

हता उदीच्या निहताः प्रतीच्या
नष्टाः प्राच्या दाक्षिणात्या विशस्ताः ।
कृतं कर्माप्रतिरूपं महद्भि-
स्तेषां योधैरस्मदीयैश्च युद्धे ॥ २० ॥

उत्तर दिशाके वीर मारे गये, पश्चिमके योद्धाओंका संहार हो गया, पूर्वदेशके क्षत्रिय नष्ट हो गये और दक्षिण-देशीय योद्धा काट डाले गये । शत्रुओंके और हमारे पक्षके बड़े-बड़े योद्धाओंने युद्धमें ऐसा पराक्रम किया है, जिसकी कहीं तुलना नहीं है ॥ २० ॥

त्वं देविता त्वत्कृते राज्यनाश-
स्त्वत्सम्भवं नो व्यसनं नरेन्द्र ।
मास्मान् क्रूरैर्वाक्प्रतोदैस्तुदंस्त्वं
भूयो राजन् कोपयेस्त्वल्पभाग्यः ॥ २१ ॥

नरेन्द्र ! तू भाग्यहीन जुआरी है । तेरे ही कारण हमारे राज्यका नाश हुआ और तुझसे ही हमें घोर सङ्कटकी प्राप्ति हुई । राजन् ! अब तू अपने वचनरूपी चाबुकोंसे हमें पीड़ा देते हुए फिर कुपित न कर ॥ २१ ॥

संजय उवाच

एता वाचः परुषाः सव्यसाची
स्थिरप्रज्ञः श्रावयित्वा तु रूक्षाः ।
बभूवासौ विमना धर्मभीरुः
कृत्वा प्राज्ञः पातकं किंचिदेवम् ॥ २२ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! सव्यसाची अर्जुन धर्मभीरु हैं । उनकी बुद्धि स्थिर है तथा वे उत्तम ज्ञानसे सम्पन्न हैं ।

उस समय राजा युधिष्ठिरको वैसी रूखी और कठोर बातें सुनाकर वे ऐसे अनमने और उदास हो गये, मानो कोई पातक करके इस प्रकार पछता रहे हों ॥ २२ ॥

तदानुतेपे सुरराजपुत्रो
विनिःश्वसंश्चासिमथोद्बबर्ह ।
तमाह कृष्णः किमिदं पुनर्भवान्
विकोशमाकाशनिभं करोत्यसिम्॥ २३ ॥
ब्रवीहि मां त्वं पुनरुत्तरं वच-
स्तथा प्रवक्ष्याम्यहमर्थसिद्धये ।

देवराजकुमार अर्जुनको उस समय बड़ा पश्चात्ताप हुआ । उन्होंने लंबी साँस खींचते हुए फिरसे तलवार खींच ली । यह देख भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'अर्जुन ! यह क्या ? तुम आकाशके समान निर्मल इस तलवारको पुनः क्यों म्यानसे बाहर निकाल रहे हो ? तुम मुझे मेरी बातका उत्तर दो । मैं तुम्हारा अभीष्ट अर्थ सिद्ध करनेके लिये पुनः कोई योग्य उपाय बताऊँगा' ॥ २३½ ॥

इत्येवमुक्तः पुरुषोत्तमेन
सुदुःखितः केशवमर्जुनोऽब्रवीत्॥ २४ ॥
अहं हनिष्ये स्वशरीरमेव
प्रसह्य येनाहितमाचरं वै ।

पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके इस प्रकार पूछनेपर अर्जुन अत्यन्त दुखी हो उनसे इस प्रकार बोले—'भगवन् ! मैंने जिसके द्वारा हठपूर्वक भाईका अपमानरूप अहितकर कार्य कर डाला है, अपने उस शरीरको ही अब नष्ट कर डालूँगा' ॥ २४½ ॥

निशम्य तत् पार्थवचोऽब्रवीदिदं
धनंजयं धर्मभृतां वरिष्ठः ॥ २५ ॥
राजानमेनं त्वमितीदमुक्त्वा
किं कश्मलं प्राविशः पार्थ घोरम्।
त्वं चात्मानं हन्तुमिच्छस्यरिघ्न
नेदं सद्भिः सेवितं वै किरीटिन्॥ २६ ॥

अर्जुनका यह वचन सुनकर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णने उनसे कहा—'पार्थ ! राजा युधिष्ठिरको 'तू' ऐसा कहकर तुम इतने घोर दुःखमें क्यों डूब गये ! शत्रुसूदन ! क्या तुम आत्मघात करना चाहते हो ? किरीटधारी वीर ! साधुपुरुषोंने कभी ऐसा कार्य नहीं किया है ॥ २५-२६ ॥

धर्मात्मानं भ्रातरं ज्येष्ठमद्य
खड्गेन चैनं यदि हन्या नृवीर ।
धर्माद् भीतस्तत् कथं नाम ते स्यात्
किंचोत्तरं वाकरिष्यस्त्वमेव ॥ २७ ॥

'नरवीर ! यदि आज धर्मसे डरकर तुमने अपने बड़े भाई इन धर्मात्मा युधिष्ठिरको तलवारसे मार डाला होता तो तुम्हारी कैसी दशा होती और इसके बाद तुम क्या करते ? ॥

सूक्ष्मो धर्मो दुर्विदश्चापि पार्थ
विशेषतोऽज्ञैः प्रोच्यमानं निबोध।
हत्वाऽऽत्मानमात्मना प्राप्नुयास्त्वं
वधाद् भ्रातुर्नरकं चातिघोरम् ॥ २८ ॥

'कुन्तीनन्दन ! धर्मका स्वरूप सूक्ष्म है । उसको जानना या समझना बहुत कठिन है । विशेषतः अज्ञानी पुरुषोंके लिये तो उसका जानना और भी मुश्किल है । अब मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे ध्यान देकर सुनो, भाईका वध करनेसे जिस अत्यन्त घोर नरककी प्राप्ति होती है, उससे भी भयानक नरक तुम्हें स्वयं ही अपनी हत्या करनेसे प्राप्त हो सकता है ॥

ब्रवीहि वाचाद्य गुणानिहात्मन-
स्तथा हतात्मा भवितासि पार्थ ।
तथास्तु कृष्णेत्यभिनन्द्य तद्वचो
धनंजयः प्राह धनुर्विनाम्य ॥ २९ ॥
युधिष्ठिरं धर्मभृतां वरिष्ठं
शृणुष्व राजन्निति शक्रसूनुः ।

'अतः पार्थ ! अब तुम यहाँ अपनी ही वाणीद्वारा अपने गुणोंका वर्णन करो । ऐसा करनेसे यह मान लिया जायगा कि तुमने अपने ही हाथों अपना वध कर लिया ।' यह सुनकर अर्जुनने उनकी बातका अभिनन्दन करते हुए कहा—'श्रीकृष्ण ! ऐसा ही हो' । फिर इन्द्रकुमार अर्जुन अपने धनुषको नवाकर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिरसे इस प्रकार बोले—'राजन् ! सुनिये ॥ २९½ ॥

न मादृशोऽन्यो नरदेव विद्यते
धनुर्धरो देवमृते पिनाकिनम् ॥ ३० ॥
अहं हि तेनानुमतो महात्मना
क्षणेन हन्यां सचराचरं जगत् ।

'नरदेव ! पिनाकधारी भगवान् शङ्करको छोड़कर दूसरा कोई भी मेरे समान धनुर्धर नहीं है । उन महात्मा महेश्वरने मेरी वीरताका अनुमोदन किया है । मैं चाहूँ तो क्षणभरमें चराचर प्राणियोंसहित सम्पूर्ण जगत्‌को नष्ट कर डालूँ॥३०½॥

मया हि राजन् सदिगीश्वरा दिशो
विजित्य सर्वा भवतः कृता वशे॥ ३१ ॥
स राजसूयश्च समाप्तदक्षिणः
सभा च दिव्या भवतो ममौजसा।

'राजन् ! मैंने सम्पूर्ण दिशाओं और दिक्पालोंको जीतकर आपके अधीन कर दिया था। पर्याप्त दक्षिणाओंसे युक्त राजसूय यज्ञका अनुष्ठान तथा आपकी दिव्य सभाका निर्माण मेरे ही बलसे सम्भव हुआ है ॥ ३१½ ॥

पाणौ पृषत्का निशिता ममैव
धनुश्च सज्यं विततं सबाणम् ॥ ३२ ॥
पादौ च मे सरथौ सध्वजौ च
न मादृशं युद्धगतं जयन्ति ।

'मेरे ही हाथमें तीखे तीर और बाण तथा प्रत्यञ्चासहित विशाल धनुष हैं। मेरे चरणोंमें रथ और ध्वजाके चिह्न हैं। मेरे-जैसा वीर यदि युद्धभूमिमें पहुँच जाय तो उसे शत्रु जीत नहीं सकते ॥ ३२½ ॥

हता उदीच्या निहताः प्रतीच्याः
प्राच्या निरस्ता दाक्षिणात्या विशस्ताः॥३३॥
संशप्तकानां किंचिदेवास्ति शिष्टं
सर्वस्य सैन्यस्य हतं मयार्धम्।
शेते मया निहता भारतीयं
चमू राजन् देवचमूप्रकाशा ॥ ३४ ॥

'मेरेद्वारा उत्तर दिशाके वीर मारे गये, पश्चिमके योद्धाओंका संहार हो गया, पूर्वदेशके क्षत्रिय नष्ट हो गये और दक्षिणदेशीय योद्धा काट डाले गये। संशप्तकोंका भी थोड़ा-सा ही भाग शेष रह गया है। मैंने सारी कौरव-सेनाके आधे भागको स्वयं ही नष्ट किया है। राजन्! देवताओं-की सेनाके समान प्रकाशित होनेवाली भरतवंशियोंकी यह विशाल वाहिनी मेरे ही हाथों मारी जाकर रणभूमिमें सो रही है ॥ ३३-३४ ॥

ये चास्त्रज्ञास्तानहं हन्मि चास्त्रै-
स्तस्माल्लोकान्नेह करोमि भस्मसात्।
जैत्रं रथं भीममास्थाय कृष्ण
यावः शीघ्रं सूतपुत्रं निहन्तुम् ॥ ३५ ॥

'जो अस्त्रविद्याके ज्ञाता हैं, उन्हींको मैं अस्त्रोंद्वारा मारता हूँ; इसीलिये मैं यहाँ सम्पूर्ण लोकोंको भस्म नहीं करता हूँ। श्रीकृष्ण! अब हम दोनों विजयशाली एवं भयंकर रथपर बैठकर सूतपुत्रका वध करनेके लिये शीघ्र ही चल दें ॥

राजा भवत्वद्य सुनिर्वृतोऽयं
कर्णं रणे नाशयितास्मि बाणैः।
इत्येवमुक्त्वा पुनराह पार्थो
युधिष्ठिरं धर्मभृतां वरिष्ठम् ॥ ३६ ॥

'आज ये राजा युधिष्ठिर संतुष्ट हों। मैं रणभूमिमें अपने बाणोंद्वारा कर्णका नाश कर डालूँगा।' यों कहकर अर्जुन पुनः धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिरसे बोले—॥ ३६ ॥

अद्यापुत्रा सूतमाता भवित्री
कुन्ती वाथो वा मया तेन वापि।
सत्यं वदाम्यद्य न कर्णमाजौ
शरैरहत्वा कवचं विमोक्ष्ये ॥ ३७ ॥

'आज मेरेद्वारा सूतपुत्रकी माता पुत्रहीन हो जायगी अथवा मेरी माता कुन्ती ही कर्णके द्वारा मुझ एक पुत्रसे हीन हो जायगी। मैं सत्य कहता हूँ, आज युद्धस्थलमें अपने बाणोंद्वारा कर्णको मारे बिना मैं कवच नहीं उतारूँगा ॥ ३७ ॥

संजय उवाच

इत्येवमुक्त्वा पुनरेव पार्थो
युधिष्ठिरं धर्मभृतां वरिष्ठम्।
विमुच्य शस्त्राणि धनुर्विसृज्य
कोशे च खड्गं विनिधाय तूर्णम् ॥ ३८ ॥
स व्रीडया नम्रशिराः किरीटी
युधिष्ठिरं प्राञ्जलिरभ्युवाच।
प्रसीद राजन् क्षम यन्मयोक्तं
काले भवान् वेत्स्यति तन्नमस्ते॥ ३९ ॥

संजय कहते हैं—महाराज! किरीटधारी कुन्तीकुमार अर्जुन धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिरसे पुनः ऐसा कहकर शस्त्र खोल, धनुष नीचे डाल और तलवारको तुरंत ही म्यानमें रखकर लज्जासे नतमस्तक हो हाथ जोड़ पुनः उनसे इस प्रकार बोले—'राजन्! आप प्रसन्न हों। मैंने जो कुछ कहा है, उसके लिये क्षमा करें। समयपर आपको सब कुछ मालूम हो जायगा। इसलिये आपको मेरा नमस्कार है' ॥ ३८-३९ ॥

प्रसाद्य राजानममित्रसाहं
स्थितोऽब्रवीच्चैव पुनः प्रवीरः।
नेदं चिरात् क्षिप्रमिदं भविष्य-
त्यावर्ततेऽसावभियामि चैनम् ॥ ४० ॥

इस प्रकार शत्रुओंका सामना करनेमें समर्थ राजा युधिष्ठिरको प्रसन्न करके प्रमुख वीर अर्जुन खड़े होकर फिर बोले—'महाराज! अब कर्णके वधमें देर नहीं है। यह कार्य शीघ्र ही होगा। वह इधर ही आ रहा है; अतः मैं भी उसीपर चढ़ाई कर रहा हूँ ॥ ४० ॥

याम्येष भीमं समरात् प्रमोक्तुं
सर्वात्मना सूतपुत्रं च हन्तुम्।
तव प्रियार्थं मम जीवितं हि
ब्रवीमि सत्यं तदवेहि राजन् ॥ ४१ ॥

'राजन्! मैं अभी भीमसेनको संग्रामसे छुटकारा दिलाने और सब प्रकारसे सूतपुत्र कर्णका वध करनेके लिये जा रहा हूँ। मेरा जीवन आपका प्रिय करनेके लिये ही है। यह मैं सत्य कहता हूँ। आप इसे अच्छी तरह समझ लें' ॥ ४१ ॥

इति प्रयास्यन्नुपगृह्य पादौ
समुत्थितो दीप्ततेजाः किरीटी।
एतच्छ्रुत्वा पाण्डवो धर्मराजो
भ्रातुर्वाक्यं परुषं फाल्गुनस्य ॥ ४२ ॥
उत्थाय तस्माच्छयनादुवाच
पार्थं ततो दुःखपरीतचेताः।

इस प्रकार जानेके लिये उद्यत हो राजा युधिष्ठिरके चरण छूकर उद्दीप्त तेजवाले किरीटधारी अर्जुन उठ खड़े हुए। इधर अपने भाई अर्जुनका पूर्वोक्तरूपसे कठोर वचन सुनकर पाण्डुपुत्र धर्मराज युधिष्ठिर दुःखसे व्याकुलचित्त होकर उस शय्यासे उठ गये और अर्जुनसे इस प्रकार बोले—॥

कृतं मया पार्थ यथा न साधु
येन प्राप्तं व्यसनं वः सुघोरम् ॥ ४३ ॥

तस्माच्छिरश्छिन्धि ममेदमद्य
कुलान्तकस्याधमपूरुषस्य ।
पापस्य पापव्यसनान्वितस्य
विमूढबुद्धेरलसस्य भीरोः ॥ ४४ ॥

'कुन्तीनन्दन ! अवश्य ही मैंने अच्छा कर्म नहीं किया है, जिससे तुमलोगोंपर अत्यन्त भयङ्कर सङ्कट आ पड़ा है। मैं कुलान्तकारी नराधम पापी, पापमय दुर्व्यसनमें आसक्त, मूढ़बुद्धि, आलसी और डरपोक हूँ; इसलिये आज तुम मेरा यह मस्तक काट डालो ॥ ४३-४४ ॥

वृद्धावमन्तुः परुषस्य चैव
किं ते चिरं मे ह्यनुसृत्य रूक्षम्।
गच्छाम्यहं वनमेवाद्य पापः
सुखं भवान् वर्ततां मद्विहीनः॥ ४५॥

'मैं बड़े बूढ़ोंका अनादर करनेवाला और कठोर हूँ। तुम्हें मेरी रूखी बातोंका दीर्घकालतक अनुसरण करनेकी क्या आवश्यकता है। मैं पापी आज वनमें ही चला जा रहा हूँ। तुम मुझसे अलग होकर सुखसे रहो ॥ ४५ ॥

योग्यो राजा भीमसेनो महात्मा
क्लीबस्य वा मम किं राज्यकृत्यम्।
न चापि शक्तः परुषाणि सोढुं
पुनस्तवेमानि रुषान्वितस्य ॥ ४६ ॥

'महामनस्वी भीमसेन सुयोग्य राजा होंगे। मुझ कायरको राज्य लेनेसे क्या काम है ? अब पुनः मुझमें तुम्हारे रोषपूर्वक कहे हुए इन कठोर वचनोंको सहनेकी शक्ति नहीं है ॥४६॥

भीमोऽस्तु राजा मम जीवितेन
न कार्यमद्यावमतस्य वीर ।
इत्येवमुक्त्वा सहसोत्पपात
राजा ततस्तच्छयनं विहाय ॥ ४७ ॥
इयेष निर्गन्तुमथो वनाय
तं वासुदेवः प्रणतोऽभ्युवाच ॥ ४८ ॥

'वीर ! भीमसेन राजा हों। आज इतना अपमान हो जानेपर मुझे जीवित रहनेकी आवश्यकता नहीं है।' ऐसा कहकर राजा युधिष्ठिर सहसा पलंग छोड़कर वहाँसे नीचे कूद पड़े और वनमें जानेकी इच्छा करने लगे। तब भगवान् श्रीकृष्णने उनके चरणोंमें प्रणाम करके इस प्रकार कहा—॥४७-४८॥

राजन् विदितमेतद् वै यथा गाण्डीवधन्वनः।
प्रतिज्ञा सत्यसंधस्य गाण्डीवं प्रति विश्रुता ॥ ४९ ॥

'राजन् ! आपको तो यह विदित ही है कि गाण्डीवधारी सत्यप्रतिज्ञ अर्जुनने गाण्डीव धनुषके विषयमें कैसी प्रतिज्ञा कर रक्खी है ? उनकी वह प्रतिज्ञा प्रसिद्ध है ॥ ४९ ॥

ब्रूयाद् य एवं गाण्डीवमन्यस्मै देयमित्युत।
वध्योऽस्य स पुमाँल्लोके त्वया चोक्तोऽयमीदृशम् ॥

'जो अर्जुनसे यह कह दे कि 'तुम्हें अपना गाण्डीवधनुष दूसरेको दे देना चाहिये' वह मनुष्य इस जगत्में उनका वध्य है।' आपने आज अर्जुनसे ऐसी ही बात कह दी है ॥५०॥

ततः सत्यां प्रतिज्ञां तां पार्थेन प्रतिरक्षता।
मच्छन्दादवमानोऽयं कृतस्तव महीपते ॥ ५१ ॥
गुरूणामवमानो हि वध इत्यभिधीयते ।

'अतः भूपाल ! अर्जुनने अपनी उस सच्ची प्रतिज्ञाकी रक्षा करते हुए मेरी आज्ञासे आपका यह अपमान किया; क्योंकि गुरुजनोंका अपमान ही उनका वध कहा जाता है ॥

तस्मात् त्वं वै महाबाहो मम पार्थस्य चोभयोः॥ ५२ ॥
व्यतिक्रममिमं राजन् सत्यसंरक्षणं प्रति ।

'इसलिये महाबाहो ! राजन् ! मेरे और अर्जुन दोनोंके सत्यकी रक्षाके लिये किये गये इस अपराधको आप क्षमा करें ॥ ५२½ ॥

शरणं त्वां महाराज प्रपन्नौ स्व उभावपि ॥ ५३ ॥
क्षन्तुमर्हसि मे राजन् प्रणतस्याभियाचतः।

'महाराज ! हम दोनों आपकी शरणमें आये हैं और मैं चरणोंमें गिरकर आपसे क्षमा-याचना करता हूँ; आप मेरे अपराधको क्षमा करें ॥ ५३½ ॥

राधेयस्याद्य पापस्य भूमिः पास्यति शोणितम् ॥ ५४ ॥
सत्यं ते प्रतिजानामि हतं विद्ध्यद्य सूतजम्।
यस्येच्छसि वधं तस्य गतमप्यस्य जीवितम् ॥ ५५ ॥

'आज पृथ्वी पापी राधापुत्र कर्णके रक्तका पान करेगी। मैं आपसे सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, समझ लीजिये कि अब सूतपुत्र कर्ण मार दिया गया। आप जिसका वध चाहते हैं, उसका जीवन समाप्त हो गया' ॥ ५४-५५ ॥

इति कृष्णवचः श्रुत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः।
ससम्भ्रमं हृषीकेशमुत्थाप्य प्रणतं तदा ॥ ५६ ॥
कृताञ्जलिस्ततो वाक्यमुवाचानन्तरं वचः।

भगवान् श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने अपने चरणोंमें पड़े हुए हृषीकेशको वेगपूर्वक उठाकर फिर दोनों हाथ जोड़कर यह बात कही—॥ ५६½ ॥

एवमेव यथाऽऽत्थ त्वमस्त्येषोऽतिक्रमो मम॥ ५७ ॥
अनुनीतोऽस्मि गोविन्द तारितश्चास्मि माधव।
मोचिता व्यसनाद् घोराद् वयमद्य त्वयाच्युत॥ ५८ ॥

'गोविन्द ! आप जैसा कहते हैं, वह ठीक है। वास्तवमें मुझसे यह नियमका उल्लङ्घन हो गया है। माधव ! आपने अनुनयद्वारा मुझे संतुष्ट कर दिया और सङ्कटके समुद्रमें डूबनेसे बचा लिया। अच्युत ! आज आपके द्वारा हमलोग घोर विपत्तिसे बच गये ॥ ५७-५८ ॥

भवन्तं नाथमासाद्य ह्यावां व्यसनसागरात्।
घोरादद्य समुत्तीर्णावुभावज्ञानमोहितौ ॥ ५९ ॥
त्वद्बुद्धिप्लवमासाद्य दुःखशोकार्णवाद् वयम्।

समुत्तीर्णाः सहामात्याः सनाथाः स्म त्वयाच्युत ॥ ६० ॥

'आज आपको अपना रक्षक पाकर हम दोनों सङ्कटके भयानक समुद्रसे पार हो गये। हम दोनों ही अज्ञानसे मोहित हो रहे थे; परंतु आपकी बुद्धिरूपी नौकाका आश्रय लेकर दुःख-शोकके समुद्रसे मन्त्रियोंसहित पार हो गये। अच्युत! हम आपसे ही सनाथ हैं' ॥ ५९-६० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि युधिष्ठिरसमाश्वासने सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें युधिष्ठिरको आश्वासनविषयक सत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७० ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३ श्लोक मिलाकर कुल ६३ श्लोक हैं)

एकसप्ततितमोऽध्यायः

अर्जुनसे भगवान् श्रीकृष्णका उपदेश, अर्जुन और युधिष्ठिरका प्रसन्नतापूर्वक मिलन एवं अर्जुनद्वारा कर्णवधकी प्रतिज्ञा, युधिष्ठिरका आशीर्वाद

संजय उवाच

धर्मराजस्य तच्छ्रुत्वा प्रीतियुक्तं वचस्ततः ।
पार्थं प्रोवाच धर्मात्मा गोविन्दो यदुनन्दनः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज! धर्मराजके मुखसे यह प्रेमपूर्ण वचन सुनकर यदुकुलको आनन्दित करनेवाले धर्मात्मा गोविन्द अर्जुनसे कुछ कहने लगे ॥ १ ॥

इति स्म कृष्णवचनात् प्रत्युच्चार्य युधिष्ठिरम् ।
बभूव विमनाः पार्थः किंचित् कृत्वेव पातकम् ॥ २ ॥

अर्जुन श्रीकृष्णके कहनेसे युधिष्ठिरके प्रति जो तिरस्कारपूर्ण वचन बोले थे, इसके कारण वे मन-ही-मन ऐसे उदास हो गये थे, मानो कोई पाप कर बैठे हों ॥ २ ॥

ततोऽब्रवीद् वासुदेवः प्रहसन्निव पाण्डवम् ।
कथं नाम भवेदेतद् यदि त्वं पार्थ धर्मजम् ॥ ३ ॥
असिना तीक्ष्णधारेण हन्या धर्मे व्यवस्थितम् ।
त्वमित्युक्त्वाथ राजानमेवं कश्मलमाविशः॥ ४ ॥

उनकी यह अवस्था देख भगवान् श्रीकृष्ण हँसते हुए-से उन पाण्डुकुमारसे बोले—'पार्थ! तुम तो राजाके प्रति केवल 'तू' कह देने मात्रसे ही इस प्रकार शोकमें डूब गये हो। फिर यदि धर्ममें स्थित रहनेवाले धर्मकुमार युधिष्ठिरको तीखी धारवाले तलवारसे मार डालते, तब तुम्हारी दशा कैसी हो जाती? ॥ ३-४ ॥

हत्वा तु नृपतिं पार्थ अकरिष्यः किमुत्तरम् ।
एवं हि दुर्विदो धर्मो मन्दप्रज्ञैर्विशेषतः ॥ ५ ॥

'कुन्तीनन्दन! तुम राजाका वध करनेके पश्चात् क्या करते? इस तरह धर्मका स्वरूप सभीके लिये दुर्विज्ञेय है। विशेषतः उन लोगोंके लिये, जिनकी बुद्धि मन्द है, उसके सूक्ष्म स्वरूपको समझना अत्यन्त कठिन है॥ ५ ॥

स भवान् धर्मभीरुत्वाद् ध्रुवमैष्यन्महत्तमः ।
नरकं घोररूपं च भ्रातुर्ज्येष्ठस्य वै वधात् ॥ ६ ॥

'अतः तुम धर्मभीरु होनेके कारण अपने ज्येष्ठ भाईके वधसे निश्चय ही घोर नरकरूप महान् अन्धकार (दुःख) में डूब जाते ॥ ६ ॥

स त्वं धर्मभृतां श्रेष्ठं राजानं धर्मसंहितम् ।
प्रसादय कुरुश्रेष्ठमेतदत्र मतं मम ॥ ७ ॥

'इसलिये इस विषयमें मेरा विचार यह है कि तुम धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ धर्मपरायण कुरुश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरको प्रसन्न करो॥

प्रसाद्य भक्त्या राजानं प्रीते चैव युधिष्ठिरे ।
प्रयावस्त्वरितौ योद्धुं सूतपुत्ररथं प्रति ॥ ८ ॥

'राजा युधिष्ठिरको भक्तिभावसे प्रसन्न कर लो। जब वे प्रसन्न हो जायँ, तब हमलोग तुरंत ही युद्धके लिये सूतपुत्रके रथपर चढ़ाई करेंगे ॥ ८ ॥

हत्वा तु समरे कर्णं त्वमद्य निशितैः शरैः ।
विपुलां प्रीतिमाधत्स्व धर्मपुत्रस्य मानद ॥ ९ ॥

'मानद! आज तुम तीखे बाणोंसे समरभूमिमें कर्णका वध करके धर्मपुत्र युधिष्ठिरके हृदयमें अत्यन्त हर्षोल्लास भर दो॥

एतदत्र महाबाहो प्राप्तकालं मतं मम ।
एवं कृते कृतं चैव तव कार्यं भविष्यति ॥ १० ॥

'महाबाहो! मुझे तो इस समय यहाँ यही करना उचित जान पड़ता है। ऐसा कर लेनेपर तुम्हारा सारा कार्य सम्पन्न हो जायगा' ॥ १० ॥

ततोऽर्जुनो महाराज लज्जया वै समन्वितः ।
धर्मराजस्य चरणौ प्रपद्य शिरसा नतः ॥ ११ ॥
उवाच भरतश्रेष्ठं प्रसीदेति पुनः पुनः ।
क्षमस्व राजन् यत् प्रोक्तं धर्मकामेन भीरुणा ॥ १२ ॥

'महाराज! तब अर्जुन लज्जित हो धर्मराजके चरणोंमें गिरकर मस्तक नवाकर उन भरतश्रेष्ठ नरेशसे बारंबार बोले—'राजन्! प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये। मैंने धर्मपालनकी इच्छासे भयभीत होकर जो अनुचित वचन कहा है, उसके लिये क्षमा कीजिये' ॥ ११-१२ ॥

दृष्ट्वा तु पतितं पद्भ्यां धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
धनंजयममित्रघ्नं रुदन्तं भरतर्षभ ॥ १३ ॥
उत्थाय भ्रातरं राजा धर्मराजो धनंजयम् ।
समाश्लिष्य च सस्नेहं प्ररुरोद महीपतिः ॥ १४ ॥

भरतश्रेष्ठ! धर्मराज युधिष्ठिरने शत्रुसूदन, भाई धनंजयको अपने चरणोंपर गिरकर रोते देख बड़े स्नेहसे उठाकर हृदयसे लगा लिया। फिर वे भूपाल धर्मराज भी फूट-फूटकर रोने लगे ॥ १३-१४ ॥

रुदित्वा सुचिरं कालं भ्रातरौ सुमहाद्युती ।

कृतशौचौ महाराज प्रीतिमन्तौ बभूवतुः ॥ १५ ॥

महाराज ! वे दोनों महातेजस्वी भाई दीर्घकालतक रोते रहे । इससे उनके मनकी मैल धुल गयी और वे दोनों भाई परस्पर प्रेमसे भर गये ॥ १५ ॥

तत आश्लिष्य तं प्रेम्णा मूर्ध्नि चाघ्राय पाण्डवः।
प्रीत्या परमया युक्तो विस्मयंश्च पुनः पुनः ॥१६॥
अब्रवीत् तं महेष्वासं धर्मराजो धनंजयम् ।

तदनन्तर अत्यन्त प्रसन्न हो बारंबार मुस्कराते हुए पाण्डुकुमार धर्मराज युधिष्ठिरने महाधनुर्धर धनंजयको बड़े प्रेमसे हृदयसे लगाकर उनका मस्तक सूँघा और उनसे इस प्रकार कहा–॥ १६½ ॥

कर्णेन मे महाबाहो सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥१७॥
कवचं च ध्वजं चैव धनुः शक्तिर्हयाः शराः ।
शरैः कृत्ता महेष्वास यतमानस्य संयुगे ॥१८॥

'महाधनुर्धर ! महाबाहो ! मैं युद्धमें यत्नपूर्वक लगा हुआ था, किंतु कर्णने सारी सेनाके देखते-देखते अपने बाणोंद्वारा मेरे कवच, ध्वज, धनुष, शक्ति,घोड़े और बाणोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले हैं ॥ १७-१८ ॥

सोऽहं ज्ञात्वा रणे तस्य कर्म दृष्ट्वा च फाल्गुन।
व्यवसीदामि दुःखेन न च मे जीवितं प्रियम् ॥१९॥

'फाल्गुन ! रणभूमिमें उसके इस कर्मको देख और समझकर मैं दुःखसे पीड़ित हो रहा हूँ । मुझे अपना जीवन प्रिय नहीं रह गया है ॥ १९ ॥

न चेदद्य हि तं वीरं निहनिष्यसि संयुगे ।
प्राणानेव परित्यक्ष्ये जीवितार्थो हि को मम ॥ २० ॥

'यदि आज युद्धस्थलमें तुम वीर कर्णका वध नहीं करोगे, तो मैं अपने प्राणोंका ही परित्याग कर दूँगा । फिर मेरे जीवनका प्रयोजन ही क्या है ?' ॥ २० ॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच विजयो भरतर्षभ ।
सत्येन ते शपे राजन् प्रसादेन तथैव च ।
भीमेन च नरश्रेष्ठ यमाभ्यां च महीपते ॥ २१ ॥
यथाद्य समरे कर्णं हनिष्यामि हतोऽपि वा ।
महीतले पतिष्यामि सत्येनायुधमालभे ॥ २२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उनके ऐसा कहनेपर अर्जुनने उत्तर दिया–'राजन् ! नरश्रेष्ठ महीपाल ! मैं आपसे सत्यकी, आपके कृपापूर्ण प्रसादकी, भीमसेनकी तथा नकुल और सहदेवकी शपथ खाकर सत्यके द्वारा अपने धनुषको छूकर कहता हूँ कि आज समरमें या तो कर्णको मार डालूँगा या स्वयं ही मारा जाकर पृथ्वीपर गिर जाऊँगा' ॥ २१-२२ ॥

एवमाभाष्य राजानमब्रवीन्माधवं वचः ।
अद्य कर्णं रणे कृष्ण सूदयिष्ये न संशयः ॥ २३ ॥
तव बुद्ध्या हि भद्रं ते वधस्तस्य दुरात्मनः ।

राजा युधिष्ठिरसे ऐसा कहकर अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णसे बोले–'श्रीकृष्ण ! आज रणभूमिमें मैं कर्णका वध करूँगा, इसमें संशय नहीं है । आपका कल्याण हो । आपकी बुद्धिसे ही उस दुरात्माका वध होगा' ॥ २३½ ॥

एवमुक्तोऽब्रवीत् पार्थं केशवो राजसत्तम ॥ २४ ॥
शक्तोऽसि भरतश्रेष्ठ हन्तुं कर्णं महाबलम् ।
एष चापि हि मे कामो नित्यमेव महारथ ॥ २५ ॥
कथं भवान् रणे कर्णं निहन्यादिति सत्तम ।

नृपश्रेष्ठ ! उनके ऐसा कहनेपर श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा–'भरतश्रेष्ठ ! तुम महाबली कर्णका वध करनेमें समर्थ हो । सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ महारथी वीर ! मेरे मनमें भी सदा यही इच्छा बनी रहती है कि तुम रणभूमिमें कर्णको किसी तरह मार डालो' ॥ २४-२५½ ॥

भूयश्चोवाच मतिमान् माधवो धर्मनन्दनम् ॥ २६ ॥
युधिष्ठिरेमं बीभत्सुं त्वं सान्त्वयितुमर्हसि ।
अनुज्ञातुं च कर्णस्य वधायाद्य दुरात्मनः ॥ २७ ॥

फिर बुद्धिमान् भगवान् माधवने धर्मनन्दन युधिष्ठिरसे इस प्रकार कहा–'महाराज ! आप अर्जुनको सान्त्वना और दुरात्मा कर्णके वधके लिये आज्ञा प्रदान करें ॥ २६-२७ ॥

श्रुत्वा ह्यहमयं चैव त्वां कर्णशरपीडितम् ।
प्रवृत्तिं ज्ञातुमायाताविहावां पाण्डुनन्दन ॥ २८ ॥

'पाण्डुनन्दन ! राजन् ! आप कर्णके बाणोंसे बहुत पीड़ित हो गये हैं–यह सुनकर मैं और ये अर्जुन दोनों आपका समाचार जाननेके लिये यहाँ आये थे ॥ २८ ॥

दिष्ट्यासि राजन् न हतो दिष्ट्या न ग्रहणं गतः।
परिसान्त्वय बीभत्सुं जयमाशाधि चानघ ॥ २९ ॥

'निष्पाप नरेश ! सौभाग्यकी बात है कि (कर्णकेद्वारा) न तो आप मारे गये और न पकड़े ही गये । अब आप अर्जुनको सान्त्वना दें और उन्हें विजयके लिये आशीर्वाद प्रदान करें' ॥ २९ ॥

युधिष्ठिर उवाच

एह्येहि पार्थ बीभत्सो मां परिष्वज पाण्डव ।
वक्तव्यमुक्तोऽस्मि हितं त्वया क्षान्तं च तन्मया ॥ ३० ॥

युधिष्ठिर बोले–कुन्तीनन्दन ! बीभत्सो ! आओ, आओ ! पाण्डुकुमार ! मेरे हृदयसे लग जाओ । तुमने तो मेरे प्रति कहने योग्य और हितकी ही बात कही है तथा मैंने उसके लिये क्षमा भी कर दी ॥ ३० ॥

अहं त्वामनुजानामि जहि कर्णं धनंजय ।
मन्युं च मा कृथाः पार्थ यन्मयोक्तोऽसि दारुणम् ॥३१॥

धनंजय ! मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ, कर्णका वध करो । पार्थ ! मैंने जो तुमसे कठोर वचन कहा है, उसके लिये खेद न करना ॥

संजय उवाच

ततो धनंजयो राजञ्शिरसा प्रणतस्तदा ।
पादौ जग्राह पाणिभ्यां भ्रातुर्ज्येष्ठस्य मारिष ॥ ३२ ॥

संजय कहते हैं–माननीय नरेश ! तब धनंजयने

मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और दोनों हाथोंसे बड़े भाईके पैर पकड़ लिये ॥ ३२ ॥

तमुत्थाप्य ततो राजा परिष्वज्य च पीडितम् ।
मूर्ध्न्युपाघ्राय चैवैनमिदं पुनरुवाच ह ॥ ३३ ॥

तत्पश्चात् राजाने मन-ही-मन पीड़ाका अनुभव करनेवाले अर्जुनको उठाकर छातीसे लगा लिया और उनका मस्तक सूँघकर पुनः उनसे इस प्रकार कहा—॥ ३३ ॥

धनंजय महाबाहो मानितोऽस्मि दृढं त्वया ।
माहात्म्यं विजयं चैव भूयः प्राप्नुहि शाश्वतम् ॥ ३४ ॥

'महाबाहु धनंजय ! तुमने मेरा बड़ा सम्मान किया है; अतः तुम्हारी महिमा बढ़े और तुम्हें पुनः सनातन विजय प्राप्त हो' ॥ ३४ ॥

अर्जुन उवाच

अद्य तं पापकर्माणं सानुबन्धं रणे शरैः ।
नयाम्यन्तं समासाद्य राधेयं बलगर्वितम् ॥ ३५ ॥

अर्जुन बोले—महाराज ! आज मैं अपने बलका घमंड रखनेवाले उस पापाचारी राधापुत्र कर्णको रणभूमिमें पाकर उसके सगे-सम्बन्धियोंसहित मृत्युके समीप भेज दूँगा ॥

येन त्वं पीडितो बाणैर्दृढमायम्य कार्मुकम् ।
तस्याद्य कर्मणः कर्णः फलमाप्स्यति दारुणम् ॥ ३६ ॥

राजन् ! जिसने धनुषको दृढ़तापूर्वक खींचकर अपने बाणोंद्वारा आपको पीड़ित किया है, वह कर्ण आज अपने उस पापकर्मका अत्यन्त भयंकर फल पायेगा ॥ ३६ ॥

अद्य त्वामनुपश्यामि कर्णं हत्वा महीपते ।
सभाजयितुमाक्रन्दादिति सत्यं ब्रवीमि ते ॥ ३७ ॥

भूपाल ! आज मैं कर्णको मारकर ही आपका दर्शन करूँगा और युद्धस्थलसे आपका अभिनन्दन करनेके लिये आऊँगा । यह मैं आपसे सत्य कहता हूँ ॥ ३७ ॥

नाहत्वा विनिवर्तिष्ये कर्णमद्य रणाजिरात् ।
इति सत्येन ते पादौ स्पृशामि जगतीपते ॥ ३८ ॥

पृथ्वीपते ! आज मैं कर्णको मारे बिना समराङ्गणसे नहीं लौटूँगा । इस सत्यके द्वारा मैं आपके दोनों चरण छूता हूँ ॥ ३८ ॥

संजय उवाच

इति ब्रुवाणं सुमनाः किरीटिनं
युधिष्ठिरः प्राह वचो बृहत्तरम् ।
यशोऽक्षयं जीवितमीप्सितं ते
जयं सदा वीर्यमरिक्षयं तदा ॥ ३९ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! ऐसी बातें कहनेवाले किरीटधारी अर्जुनसे युधिष्ठिरने प्रसन्नचित्त होकर यह महत्त्वपूर्ण बात कही—'वीर ! तुम्हें अक्षय यश, पूर्ण आयु, मनोवाञ्छित कामना, विजय तथा शत्रुनाशक पराक्रम—ये सदा प्राप्त होते रहें ॥ ३९ ॥

प्रयाहि वृद्धिं च दिशन्तु देवता
यथाहमिच्छामि तवास्तु तत् तथा ।
प्रयाहि शीघ्रं जहि कर्णमाहवे
पुरंदरो वृत्रमिवात्मवृद्धये ॥ ४० ॥

'जाओ, देवता तुम्हें अभ्युदय प्रदान करें । मैं तुम्हारे लिये जैसा चाहता हूँ, वैसा ही सब कुछ तुम्हें प्राप्त हो । आगे बढ़ो और युद्धस्थलमें शीघ्र ही कर्णको मार डालो । ठीक उसी तरह, जैसे देवराज इन्द्रने अपने ही ऐश्वर्यकी वृद्धिके लिये वृत्रासुरका नाश किया था ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अर्जुनप्रतिज्ञायामेकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें अर्जुनकी प्रतिज्ञाविषयक ~~एक सौ~~ इकहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण और अर्जुनकी रणयात्रा, मार्गमें शुभ शकुन तथा श्रीकृष्णका अर्जुनको प्रोत्साहन देना

संजय उवाच

प्रसाद्य धर्मराजानं प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
पार्थः प्रोवाच गोविन्दं सूतपुत्रवधोद्यतः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार धर्मराज युधिष्ठिरको प्रसन्न करके अर्जुन सूतपुत्र कर्णका वध करनेके लिये उद्यत हो प्रसन्नचित्त होकर श्रीकृष्णसे बोले—॥ १ ॥

कल्पतां मे रथो भूयो युज्यन्तां च हयोत्तमाः ।
आयुधानि च सर्वाणि सज्जन्तां मे महारथे ॥ २ ॥
उपावृत्ताश्च तुरगाः शिक्षिताश्चाश्वसादिभिः ।
रथोपकरणैः सज्जा उपायान्तु त्वरान्विताः ॥ ३ ॥
प्रयाहि शीघ्रं गोविन्द सूतपुत्रजिघांसया ।

'गोविन्द ! अब मेरा रथ तैयार हो । उसमें पुनः उत्तम घोड़े जोते जायँ और मेरे उस विशाल रथमें सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र सजाकर रख दिये जायँ । अश्वारोहियोंद्वारा सिखलाये और टहलाये गये घोड़े रथ-सम्बन्धी उपकरणोंसे सुसज्जित हो शीघ्र यहाँ आवें और आप सूतपुत्रके वधकी इच्छासे जल्दी ही यहाँसे प्रस्थान कीजिये' ॥ २-३½ ॥

एवमुक्तो महाराज फाल्गुनेन महात्मना ॥ ४ ॥
उवाच दारुकं कृष्णः कुरु सर्वं यथाब्रवीत् ।
अर्जुनो भरतश्रेष्ठः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ ५ ॥

महाराज ! महात्मा अर्जुनके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने दारुकसे कहा—'सारथे ! समस्त धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ भरतभूषण अर्जुनने जैसा कहा है, उसके अनुसार सारी तैयारी करो' ॥ ४-५ ॥

आज्ञप्तस्त्वथ कृष्णेन दारुको राजसत्तम।
योजयामास स रथं वैयाघ्रं शत्रुतापनम्॥ ६॥
सज्जं निवेदयामास पाण्डवस्य महात्मनः।

नृपश्रेष्ठ ! श्रीकृष्णके इस प्रकार आदेश देनेपर दारुकने व्याघ्र-चर्मसे आच्छादित तथा शत्रुओंको तपानेवाले रथको जोतकर तैयार कर दिया और महामना पाण्डुकुमार अर्जुनके पास आकर निवेदन किया कि 'आपका रथ सब सामग्रियोंसे सुसज्जित है' ॥ ६½ ॥

युक्तं तु तं रथं दृष्ट्वा दारुकेण महात्मना॥ ७॥
आपृच्छ्य धर्मराजानं ब्राह्मणान् स्वस्ति वाच्य च।
सुमङ्गलस्वस्त्ययनमारुरोह रथोत्तमम्॥ ८॥

महामना दारुकके द्वारा जोतकर लाये हुए उस रथको देखकर अर्जुन धर्मराजसे आज्ञा ले ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर कल्याणके आश्रयभूत उस परम मङ्गलमय उत्तम रथपर आरूढ हुए ॥ ७-८ ॥

तस्य राजा महाप्राज्ञो धर्मराजो युधिष्ठिरः।
आशिषोऽयुङ्क्त स ततः प्रायात् कर्णरथं प्रति॥ ९॥

उस समय महाबुद्धिमान् धर्मराज राजा युधिष्ठिरने अर्जुनको आशीर्वाद दिये। तत्पश्चात् उन्होंने कर्णके रथकी ओर प्रस्थान किया ॥ ९ ॥

तमायान्तं महेष्वासं दृष्ट्वा भूतानि भारत।
निहतं मेनिरे कर्णं पाण्डवेन महात्मना॥ १०॥

भारत ! महाधनुर्धर अर्जुनको आते देख समस्त प्राणियोंको यह विश्वास हो गया कि अब कर्ण महामनस्वी पाण्डुपुत्र अर्जुनके हाथसे अवश्य मारा जायगा ॥ १० ॥

बभूवुर्विमलाः सर्वा दिशो राजन् समन्ततः।
चाषाश्च शतपत्राश्च क्रौञ्चाश्चैव जनेश्वर॥ ११॥
प्रदक्षिणमकुर्वन्त तदा वै पाण्डुनन्दनम्।

राजन् ! सम्पूर्ण दिशाएँ सब ओरसे निर्मल हो गयी थीं। नरेश्वर ! नीलकण्ठ, सारस और क्रौञ्च पक्षी पाण्डुनन्दन अर्जुनको दाहिने रखते हुए जाने लगे ॥ ११½ ॥

बहवः पक्षिणो राजन् पुंनामानः शुभाः शिवाः॥१२॥
त्वरयन्तोऽर्जुनं युद्धे हृष्टरूपा ववाशिरे।

राजन् ! पुरुष जातिवाले बहुत-से शुभकारक मङ्गलदायक पक्षी अर्जुनको युद्धके लिये उतावले करते हुए बड़े हर्षमें भरकर चहचहा रहे थे ॥ १२½ ॥

कङ्का गृध्रा बकाः श्येना वायसाश्च विशाम्पते॥ १३॥
अग्रतस्तस्य गच्छन्ति मांसहेतोर्भयानकाः।

प्रजानाथ ! कङ्क, गृध्र, बक, बाज और कौए आदि भयानक पक्षी मांसके लिये उनके आगे-आगे जा रहे थे ॥

निमित्तानि च धन्यानि पाण्डवस्य शशंसिरे॥ १४॥
विनाशमरिसैन्यानां कर्णस्य च वधं प्रति।

इस प्रकार बहुत-से शुभ शकुन पाण्डुपुत्र अर्जुनको उनके शत्रुओंके विनाश तथा कर्णके वधकी सूचना दे रहे थे॥

प्रयातस्याथ पार्थस्य महान् स्वेदो व्यजायत॥ १५॥
चिन्ता च विपुला जज्ञे कथं चेदं भविष्यति।

युद्धके लिये प्रस्थान करनेपर कुन्तीकुमार अर्जुनके शरीरमें बड़े जोरसे पसीना छूटने लगा तथा मन-ही-मन भारी चिन्ता होने लगी कि 'यह सब कैसे होगा ?' ॥ १५½ ॥

ततो गाण्डीवधन्वानमब्रवीन्मधुसूदनः॥ १६॥
दृष्ट्वा पार्थं तथा यान्तं चिन्तापरिगतं तदा।

रथमें बैठकर चलते समय गाण्डीवधारी अर्जुनको चिन्तामग्न देख भगवान् श्रीकृष्णने उनसे इस प्रकार कहा ॥

वासुदेव उवाच

गाण्डीवधन्वन् संग्रामे ये त्वया धनुषा जिताः॥१७॥
न तेषां मानुषो जेता त्वदन्य इह विद्यते।

श्रीकृष्ण बोले—गाण्डीवधारी अर्जुन ! तुमने अपने धनुषसे जिन-जिन वीरोंपर विजय पायी है, उन्हें जीतनेवाला इस संसारमें तुम्हारे सिवा दूसरा कोई मनुष्य नहीं है ॥ १७½ ॥

दृष्टा हि बहवः शूराः शक्रतुल्यपराक्रमाः॥ १८॥
त्वां प्राप्य समरे शूरं ते गताः परमां गतिम्।

मैंने देखा है इन्द्रके समान पराक्रमी बहुत-से शूरवीर समराङ्गणमें तुझ शौर्यसम्पन्न वीरके पास आकर परम गतिको प्राप्त हो गये ॥ १८½ ॥

को हि द्रोणं च भीष्मं च भगदत्तं च मारिष॥ १९॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजं च सुदक्षिणम्।
श्रुतायुषं महावीर्यमच्युतायुषमेव च।
प्रत्युद्गम्य भवेत् क्षेमी यो न स्यात् त्वमिव प्रभो॥२०॥

प्रभो ! आर्य ! जो तुम्हारे-जैसा वीर न हो, ऐसा कौन पुरुष द्रोणाचार्य, भीष्म, भगदत्त, अवन्तीके राजकुमार विन्द और अनुविन्द, काम्बोजराज सुदक्षिण, महापराक्रमी श्रुतायु तथा अच्युतायुका सामना करके सकुशल रह सकता था ॥ १९-२० ॥

तव ह्यस्त्राणि दिव्यानि लाघवं बलमेव च।
असम्मोहश्च युद्धेषु विज्ञानस्य च संततिः॥ २१॥
वेधः पातश्च लक्ष्येषु योगश्चैव तथार्जुन।
भवान् देवान् सगन्धर्वान् हन्यात् सह चराचरान्।२२।

तुम्हारे पास दिव्य अस्त्र हैं, तुममें फुर्ती है, बल है, युद्धके समय तुम्हें घबराहट नहीं होती, तुम्हें अस्त्र-शस्त्रोंका विस्तृत ज्ञान है तथा लक्ष्यको वेधने तथा गिरानेकी कला ज्ञात है । अर्जुन ! लक्ष्यको वेधते समय तुम्हारा चित्त एकाग्र रहता है । गन्धर्वोंसहित सम्पूर्ण देवताओं तथा चराचर प्राणियोंको तुम एक साथ मार सकते हो॥२१-२२॥

पृथिव्यां तु रणे पार्थ न योद्धा त्वत्समः पुमान्।
धनुर्ग्राहा हि ये केचित् क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः॥ २३॥
आ देवात् त्वत्समं तेषां न पश्यामि शृणोमि च।

कुन्तीकुमार ! इस भूमण्डलपर दूसरा कोई पुरुष तुम्हारे समान योद्धा नहीं है। यहाँसे देवलोकतक धनुष धारण करनेवाले जो कोई भी रणदुर्मद क्षत्रिय हैं, उनमेंसे किसीको भी मैं तुम्हारे समान न तो देखता हूँ और न सुनता ही हूँ ॥

ब्रह्मणा च प्रजाः सृष्टा गाण्डीवं च महद् धनुः ॥२४॥
येन त्वं युध्यसे पार्थ तस्मान्नास्ति त्वया समः।

पार्थ ! ब्रह्माजीने सम्पूर्ण प्रजाकी सृष्टि की है और उन्हींने ही उस विशाल धनुष गाण्डीवकी भी रचना की है, जिसके द्वारा तुम युद्ध करते हो; अतः तुम्हारी समानता करनेवाला कोई नहीं है ॥ २४½ ॥

अवश्यं तु मया वाच्यं यत् पथ्यं तव पाण्डव॥ २५ ॥
मावमंस्था महाबाहो कर्णमाहवशोभिनम्।

पाण्डुनन्दन ! तो भी जो बात तुम्हारे लिये हितकर हो, उसे बता देना मैं आवश्यक समझता हूँ। महाबाहो ! संग्राममें शोभा पानेवाले कर्णकी अवहेलना न करना ॥ २५½ ॥

कर्णो हि बलवान् दृप्तः कृतास्त्रश्च महारथः ॥ २६ ॥
कृती च चित्रयोधी च देशकालस्य कोविदः।

क्योंकि कर्ण बलवान्, अभिमानी, अस्त्रविद्याका विद्वान्, महारथी, युद्धकुशल, विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाला तथा देशकालको समझनेवाला है ॥ २६½ ॥

बहुनात्र किमुक्तेन संक्षेपाच्छृणु पाण्डव ॥ २७ ॥
त्वत्समं त्वद्विशिष्टं वा कर्णं मन्ये महारथम्।
परमं यत्नमास्थाय त्वया वध्यो महाहवे ॥ २८ ॥

पाण्डुनन्दन ! इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या लाभ, संक्षेपसे ही सुन लो। मैं महारथी कर्णको तुम्हारे समान या तुमसे भी बढ़कर मानता हूँ। अतः महासमरमें महान् प्रयत्न करके तुम्हें उसका वध करना होगा ॥ २७-२८ ॥

तेजसा वह्निसदृशो वायुवेगसमो जवे।
अन्तकप्रतिमः क्रोधे सिंहसंहननो बली ॥ २९ ॥

कर्ण तेजमें अग्निके सदृश, वेगमें वायुके समान, क्रोधमें यमराजके तुल्य, सुदृढ़ शरीरमें सिंहके सदृश तथा बलवान् है ॥ २९ ॥

अष्टरत्निर्महाबाहुर्व्यूढोरस्कः सुदुर्जयः।
अभिमानी च शूरश्च प्रवीरः प्रियदर्शनः॥ ३० ॥

उसके शरीरकी ऊँचाई आठ रत्नि[1] (एक सौ अड़सठ अंगुल) है। उसकी भुजाएँ बड़ी-बड़ी और छाती चौड़ी हैं। उसे जीतना अत्यन्त कठिन है। वह अभिमानी, शौर्यसम्पन्न, प्रमुख वीर और प्रियदर्शन (सुन्दर) है॥ ३० ॥

सर्वयोधगुणैर्युक्तो मित्राणामभयंकरः।
सततं पाण्डवद्वेषी धार्तराष्ट्रहिते रतः ॥ ३१ ॥

उसमें योद्धाओंके सभी गुण हैं। वह अपने मित्रोंको अभय देनेवाला है तथा दुर्योधनके हितमें तत्पर रहकर पाण्डवोंसे सदा द्वेष रखता है ॥ ३१ ॥

सर्वैरवध्यो राधेयो देवैरपि सवासवैः।
ऋते त्वामिति मे बुद्धिस्तदद्य जहि सूतजम् ॥ ३२ ॥

मेरा तो ऐसा विचार है कि राधापुत्र कर्ण तुम्हें छोड़कर इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंके लिये भी अवध्य है; अतः तुम आज सूतपुत्रका वध करो ॥ ३२ ॥

देवैरपि हि संयत्तैर्बिभ्रद्भिर्मांसशोणितम्।
अशक्यः स रथो जेतुं सर्वैरपि युयुत्सुभिः ॥ ३३ ॥

समस्त देवता भी यदि रक्त-मांसयुक्त शरीरको धारण करके युद्धकी अभिलाषा लेकर विजयके लिये प्रयत्नशील हो रणभूमिमें आ जायँ तो उनके लिये रथसहित कर्णको जीतना असम्भव है ॥ ३३ ॥

दुरात्मानं पापवृत्तं नृशंसं
दुष्टप्रज्ञं पाण्डवेयेषु नित्यम्।
हीनस्वार्थं पाण्डवेयैर्विरोधे
हत्वा कर्णं निश्चितार्थो भवाद्य ॥ ३४ ॥

अतः आज तुम दुरात्मा, पापाचारी, क्रूर, पाण्डवोंके प्रति सदा दुर्भावना रखनेवाले और किसी स्वार्थके बिना ही पाण्डव-विरोधमें तत्पर हुए कर्णका वध करके सफलमनोरथ हो जाओ ॥ ३४ ॥

तं सूतपुत्रं रथिनां वरिष्ठं
निष्कालिकं कालवशं नयाद्य।
तं सूतपुत्रं रथिनां वरिष्ठं
हत्वा प्रीतिं धर्मराजे कुरुष्व ॥ ३५ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ सूतपुत्र अपनेको कालके वशमें नहीं समझता है। तुम उसे आज ही कालके अधीन कर दो। रथियोंमें श्रेष्ठ सूतपुत्र कर्णको मारकर धर्मराज युधिष्ठिरको प्रसन्न करो ॥ ३५ ॥

जानामि ते पार्थ वीर्यं यथावद्
दुर्वारणीयं च सुरासुरैश्च।
सदावजानाति हि पाण्डुपुत्रा-
नसौ दर्पात् सूतपुत्रो दुरात्मा ॥ ३६ ॥

पार्थ ! मैं तुम्हारे उस बल-पराक्रमको अच्छी तरह जानता हूँ, जिसका निवारण करना देवताओं और असुरोंके लिये भी कठिन है। दुरात्मा सूतपुत्र कर्ण घमंडमें आकर सदा पाण्डवोंका अपमान करता है ॥ ३६ ॥

आत्मानं मन्यते वीरं येन पापः सुयोधनः।
तमद्य मूलं पापानां जहि सौतिं धनंजय ॥ ३७ ॥

धनंजय ! जिसके साथ होनेसे पापी दुर्योधन अपनेको वीर मानता है, वह सूतपुत्र कर्ण ही सारे पापोंकी जड़ है; अतः आज तुम उसे मार डालो ॥ ३७ ॥

खड्गजिह्वं धनुरास्यं शरदंष्ट्रं तरस्विनम्।
दृप्तं पुरुषशार्दूलं जहि कर्णं धनंजय ॥ ३८ ॥

[1] मुट्ठी बंधे हुए हाथके मापको रत्नि कहते हैं।

अर्जुन ! कर्ण पुरुषोंमें सिंहके समान है, तलवार ही उसकी जिह्वा है, धनुष ही उसका फैला हुआ मुख है, बाण उसकी दाढ़ें हैं, वह अत्यन्त वेगशाली और अभिमानी है। तुम उसका वध करो ॥ ३८ ॥

अहं त्वामनुजानामि वीर्येण च बलेन च।
जहि कर्णं रणे शूर मातङ्गमिव केसरी ॥ ३९ ॥

जैसे सिंह मतवाले हाथीको मार डालता है, उसी प्रकार तुम भी अपने बल और पराक्रमसे रणभूमिमें शूरवीर कर्णको मार डालो। इसके लिये मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ ॥ ३९ ॥

यस्य वीर्येण वीर्यं ते धार्तराष्ट्रोऽवमन्यते।
तमद्य पार्थ संग्रामे कर्णं वैकर्तनं जहि ॥ ४० ॥

पार्थ ! जिसके बलसे दुर्योधन तुम्हारे बल-पराक्रमकी अवहेलना करता है, उस वैकर्तन कर्णको आज तुम युद्धमें मार डालो ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कृष्णार्जुनसंवादे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें श्रीकृष्ण और अर्जुनका संवादविषयक बहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

भीष्म और द्रोणके पराक्रमका वर्णन करते हुए अर्जुनके बलकी प्रशंसा करके श्रीकृष्णका कर्ण और दुर्योधनके अन्यायकी याद दिलाकर अर्जुनको कर्णवधके लिये उत्तेजित करना

संजय उवाच

ततः पुनरमेयात्मा केशवोऽर्जुनमब्रवीत्।
कृतसंकल्पमायान्तं वधे कर्णस्य भारत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—भरतनन्दन ! तदनन्तर कर्णका वध करनेके लिये कृतसंकल्प होकर जाते हुए अर्जुनसे अप्रमेयस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णने पुनः इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

अद्य सप्तदशाहानि वर्तमानस्य भारत।
विनाशस्यातिघोरस्य नरवारणवाजिनाम् ॥ २ ॥

'भारत ! मनुष्यों, हाथियों और घोड़ोंका जो यह अत्यन्त भयंकर विनाश चल रहा है, इसे आज सत्रह दिन हो गये ॥ २ ॥

भूत्वा हि विपुला सेना तावकानां परैः सह।
अन्योन्यं समरं प्राप्य किंचिच्छेषा विशाम्पते ॥ ३ ॥

'प्रजानाथ ! शत्रुओंके साथ-साथ तुमलोगोंके पास भी विशाल सेना जुट गयी थी; परंतु परस्पर युद्ध करके प्रायः नष्ट हो गयी, अब थोड़ी-सी ही शेष रह गयी है ॥ ३ ॥

भूत्वा वै कौरवाः पार्थ प्रभूतगजवाजिनः।
त्वां वै शत्रुं समासाद्य विनष्टा रणमूर्धनि ॥ ४ ॥

'पार्थ ! कौरवपक्षके योद्धा बहुसंख्यक हाथी-घोड़ोंसे सम्पन्न थे, परंतु तुम-जैसे वीर शत्रुको पाकर युद्धके मुहानेपर नष्ट हो गये ॥ ४ ॥

एते ते पृथिवीपालाः सृञ्जयाश्च समागताः।
त्वां समासाद्य दुर्धर्षं पाण्डवाश्च व्यवस्थिताः ॥ ५ ॥

'तुम शत्रुओंके लिये दुर्जय हो, तुम्हारे ही आश्रयमें रहकर ये तुम्हारे पक्षके भूमिपाल सृञ्जय और पाण्डव योद्धा युद्धस्थलमें डटे हुए हैं ॥ ५ ॥

पाञ्चालैः पाण्डवैर्मत्स्यैः कारूषैश्चेदिभिः सह।
त्वया गुप्तैरमित्रघ्नैः कृतः शत्रुगणक्षयः ॥ ६ ॥

'तुमसे सुरक्षित हुए इन पाण्डव, पाञ्चाल, मत्स्य, करूष तथा चेदिदेशीय शत्रुनाशक वीरोंने शत्रुसमूहोंका संहार कर डाला है ॥ ६ ॥

को हि शक्तो रणे जेतुं कौरवांस्तात संयुगे।
अन्यत्र पाण्डवान् युद्धे त्वया गुप्तान् महारथान् ॥ ७ ॥

'तात ! तुम्हारे द्वारा सुरक्षित पाण्डव महारथियोंको छोड़कर दूसरा कौन नरेश युद्धमें कौरवोंको परास्त कर सकता है ॥ ७ ॥

शक्तस्त्वं हि रणे जेतुं ससुरासुरमानुषान्।
त्रीँल्लोकान् समरे युक्तान् किं पुनः कौरवं बलम् ॥ ८ ॥

'तुम तो युद्धके लिये तैयार होकर आये हुए देवता, असुर और मनुष्योंसहित तीनों लोकोंको समरभूमिमें जीत सकते हो, फिर कौरव-सेनाकी तो बात ही क्या है ? ॥ ८ ॥

भगदत्तं च राजानं कोऽन्यः शक्तस्त्वया विना।
जेतुं पुरुषशार्दूल योऽपि स्याद् वासवोपमः ॥ ९ ॥

'पुरुषसिंह ! कोई इन्द्रके समान भी पराक्रमी क्यों न हो, तुम्हारे सिवा दूसरा कौन वीर राजा भगदत्तको जीत सकता था ? ॥ ९ ॥

तथेमां विपुलां सेनां गुप्तां पार्थ त्वयानघ।
न शेकुः पार्थिवाः सर्वे चक्षुर्भिरपि वीक्षितुम् ॥ १० ॥

'निष्पाप कुन्तीकुमार ! तुम जिसकी रक्षा करते हो, उस विशाल सेनाकी ओर सारे राजा आँख उठाकर देख भी नहीं सके हैं ॥ १० ॥

तथैव सततं पार्थ रक्षिताभ्यां त्वया रणे।
धृष्टद्युम्नशिखण्डिभ्यां भीष्मद्रोणौ निपातितौ ॥ ११ ॥

'पार्थ ! इसी प्रकार रणक्षेत्रमें सदा तुमसे सुरक्षित रहकर ही धृष्टद्युम्न और शिखण्डीने द्रोणाचार्य और भीष्मको मार गिराया है ॥ ११ ॥

को हि शक्तो रणे पार्थ भारतानां महारथौ।
भीष्मद्रोणौ युधा जेतुं शक्रतुल्यपराक्रमौ ॥ १२ ॥

'कुन्तीनन्दन ! भरतवंशियोंकी सेनाके दो महारथी इन्द्रतुल्य पराक्रमी भीष्म और द्रोणको रणभूमिमें युद्ध करते समय कौन जीत सकता था ? ॥ १२ ॥

को हि शान्तनवं भीष्मं द्रोणं वैकर्तनं कृपम्।
द्रौणिं च सौमदत्तिं च कृतवर्माणमेव च ॥ १३ ॥
सैन्धवं मद्रराजानं राजानं च सुयोधनम्।
वीरान् कृतास्त्रान् समरे सर्वानेवानिवर्तिनः ॥ १४ ॥
अक्षौहिणीपतीनुग्रान् संहतान् युद्धदुर्मदान्।
त्वामृते पुरुषव्याघ्र जेतुं शक्तः पुमानिह ॥ १५ ॥

'नरव्याघ्र ! अक्षौहिणी सेनाके अधिपति, वीर, अस्त्रवेत्ता, भयंकर पराक्रमी, संगठित, रणोन्मत्त तथा कभी पीछे न हटनेवाले भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, वैकर्तन कर्ण, अश्वत्थामा, भूरिश्रवा, कृतवर्मा, जयद्रथ, शल्य तथा राजा दुर्योधन-जैसे समस्त महारथियोंपर इस जगत्में तुम्हारे सिवा, दूसरा कौन पुरुष विजय पा सकता है ? ॥ १३-१५ ॥

श्रेण्यश्च बहुलाः क्षीणाः प्रदीर्णाश्वरथद्विपाः।
नानाजनपदाश्चोग्राः क्षत्रियाणाममर्षिणाम् ॥ १६ ॥

'अमर्षशील क्षत्रियोंके बहुत-से दल थे, जो बड़े भयंकर और अनेक जनपदोंके निवासी थे, वे सब-के-सब नष्ट हो गये, उनके घोड़े, रथ और हाथी भी धूलमें मिल गये ॥१६॥

गोवासदासमीयानां वसातीनां च भारत।
प्राच्यानां वाटधानानां भोजानां चाभिमानिनाम् ॥१७॥
उदीर्णाश्वगजा सेना सर्वक्षत्रस्य भारत।
त्वां समासाद्य निधनं गता भीमं च भारत ॥ १८ ॥

'भारत ! गोवास, दासमीय, वसाति, प्राच्य, वाटधान और भोजदेशनिवासी अभिमानी वीरोंकी तथा सम्पूर्ण क्षत्रियोंकी सेना, जिसमें उद्दण्ड घोड़ों और उन्मत्त हाथियोंकी संख्या अधिक थी, तुम्हारे और भीमसेनके पास पहुँचकर नष्ट हो गयी ॥ १७-१८ ॥

उग्राश्च भीमकर्माणस्तुषारा यवनाः खशाः।
दार्वाभिसारा दरदाः शका माठरतङ्गणाः ॥ १९ ॥
आन्ध्रकाश्च पुलिन्दाश्च किराताश्चोग्रविक्रमाः।
म्लेच्छाश्च पर्वतीयाश्च सागरानूपवासिनः ॥ २० ॥
संरम्भिणो युद्धशौण्डा बलिनो दण्डपाणयः।
एते सुयोधनस्यार्थे संरब्धाः कुरुभिः सह ॥ २१ ॥
न शक्या युधि निर्जेतुं त्वदन्येन परंतप।

'उग्रस्वभाव, भीषण पराक्रमी एवं भयंकर कर्म करनेवाले तुषार, यवन, खश, दार्वाभिसार, दरद, शक, माठर, तङ्गण, आन्ध्र, पुलिन्द, किरात, म्लेच्छ, पर्वतीय तथा समुद्रतटवर्ती योद्धा, जो युद्धकुशल, रोषावेशसे युक्त, बलवान् एवं हाथोंमें डंडे लिये हुए हैं, क्रोधमें भरकर कौरव-सैनिकोंके साथ दुर्योधनकी सहायताके लिये आये हैं; शत्रुओंको संताप देने-वाले वीर ! तुम्हारे सिवा दूसरा कोई इन्हें नहीं जीत सकता ॥ १९–२१½ ॥

धार्तराष्ट्रमुदग्रं हि व्यूढं दृष्ट्वा महद् बलम् ॥ २२ ॥
यदि त्वं न भवेस्त्राता प्रतीयात् को नु मानवः।

'यदि तुम रक्षक न होते तो व्यूहाकारमें खड़ी हुई धृतराष्ट्रपुत्रोंकी प्रचण्ड एवं विशाल सेनाको सामने देखकर कौन मनुष्य उसपर चढ़ाई कर सकता था ? ॥२२½॥

तत् सागरमिवोद्धूतं रजसा संवृतं बलम् ॥ २३ ॥
विदार्य पाण्डवैः क्रुद्धैस्त्वया गुप्तैर्हतं विभो।

'प्रभो ! तुमसे सुरक्षित रहकर ही क्रोधभरे पाण्डव योद्धाओंने धूलसे आच्छादित और समुद्रके समान उमड़ी हुई कौरवसेनाको छिन्न-भिन्न करके मार डाला है ॥ २३½ ॥

मगधानामधिपतिर्जयत्सेनो महाबलः ॥ २४ ॥
अद्य सप्तैव चाहानि हतः संख्येऽभिमन्युना।

'अभी सात दिन ही हुए हैं, अभिमन्युने मगधदेशके राजा महाबली जयत्सेनको युद्धमें मार डाला था ॥ २४½ ॥

ततो दशसहस्राणि गजानां भीमकर्मणाम् ॥ २५ ॥
जघान गदया भीमस्तस्य राज्ञः परिच्छदम्।
ततोऽन्येऽभिहता नागा रथाश्च शतशो बलात् ॥ २६ ॥

'तत्पश्चात् भीमसेनने राजा जयत्सेनके भयानक कर्म करनेवाले दस हजार हाथियोंको, जो उन्हें सब ओरसे घेरकर खड़े थे, गदाके आघातसे नष्ट कर दिया। तदनन्तर और भी बहुत-से हाथी तथा सैकड़ों रथ उनके द्वारा बलपूर्वक नष्ट किये गये ॥ २५-२६ ॥

तदेवं समरे पार्थ वर्तमाने महाभये।
भीमसेनं समासाद्य त्वां च पाण्डव कौरवाः ॥ २७ ॥
सवाजिरथमातङ्गा मृत्युलोकमितो गताः।

'पाण्डुनन्दन ! पार्थ ! इस प्रकार महाभयंकर युद्ध आरम्भ होनेपर तुम्हारे और भीमसेनके सामने आकर बहुत-से कौरव-सैनिक घोड़े, रथ और हाथियोंसहित यहाँसे यमलोक पधार गये ॥ २७½ ॥

तथा सेनामुखे तत्र निहते पार्थ पाण्डवैः ॥ २८ ॥
भीष्मः प्रासृजदुग्राणि शरजालानि मारिष।

'माननीय कुन्तीनन्दन ! पाण्डव वीरोंने जब वहाँ सेनाके प्रमुख भागका विनाश कर डाला, तब भीष्मजी भयंकर बाण-समूहोंकी वृष्टि करने लगे ॥ २८½ ॥

स चेदिकाशिपाञ्चालान् करूषान् मत्स्यकेकयान् ॥ २९ ॥
शरैः प्रच्छाद्य निधनमनयत् परमास्त्रवित्।

'वे उत्तम अस्त्रोंके ज्ञाता तो थे ही, उन्होंने पाण्डवपक्षके चेदि, काशी, पाञ्चाल, करूष, मत्स्य और केकयदेशीय योद्धाओंको अपने बाणोंसे आच्छादित करके मौतके मुखमें डाल दिया ॥ २९½ ॥

तस्य चापच्युतैर्बाणैः परदेहविदारणैः ॥ ३० ॥
पूर्णमाकाशमभवद् रुक्मपुङ्खैरजिह्मगैः।

'उनके धनुषसे छूटे हुए बाण शत्रुओंकी कायाको विदीर्ण कर देनेवाले थे, उनमें सोनेके पंख लगे थे और वे लक्ष्यकी ओर सीधे पहुँचते थे। उन बाणोंसे सम्पूर्ण आकाश भर गया ॥ ३०½ ॥

हन्याद् रथसहस्राणि एकैकेनैव मुष्टिना ॥ ३१ ॥
लक्षं नरद्विपान् हत्वा समेतान् समहाबलान् ।

'वे एक-एक मुट्ठी बाणसे ही युद्धस्थलमें एकत्र हुए लाखों महाबली पैदल मनुष्यों और हाथियोंका संहार करके सहस्रों रथियोंको मार सकते थे ॥ ३१½ ॥

गत्या दशम्या ते गत्वा जघ्नुर्वाजिरथद्विपान् ॥ ३२ ॥
हित्वा नवगतीर्दुष्टाः स बाणानाहवेऽत्यजत् ।

'भीष्मजी युद्धस्थलमें दोषयुक्त आविद्ध आदि नौ गतियोंको छोड़कर केवल दशवीं गतिसे बाण छोड़ते थे । वे बाण पाण्डवपक्षके घोड़ों, रथों और हाथियोंका संहार करने लगे ३२½

दिनानि दश भीष्मेण निघ्नता तावकं बलम् ॥ ३३ ॥
शून्याः कृता रथोपस्था हताश्च गजवाजिनः ।

'लगातार दस दिनोंतक तुम्हारी सेनाका विनाश करते हुए भीष्मजीने असंख्य रथोंकी बैठकें सूनी कर दीं, बहुत-से हाथी और घोड़े मार डाले ॥ ३३½ ॥

दर्शयित्वाऽऽत्मनो रूपं रुद्रोपेन्द्रसमं युधि ॥ ३४ ॥
पाण्डवानामनीकानि प्रगृह्यासौ व्यशातयत् ।

'उन्होंने रणभूमिमें भगवान् रुद्र और विष्णुके समान अपना भयंकर रूप दिखाकर पाण्डव-सेनाओंका बलपूर्वक विनाश कर डाला ॥ ३४½ ॥

विनिघ्नन् पृथिवीपालांश्चेदि पाञ्चालकेकयान् ॥ ३५ ॥
अदहत् पाण्डवीं सेनां रथाश्वगजसंकुलाम् ।
मज्जन्तमप्लवे मन्दमुज्जिहीर्षुः सुयोधनम् ॥ ३६ ॥

'मूर्ख दुर्योधन नौकारहित विपत्तिके सागरमें डूब रहा था; अतः भीष्मजी उसका उद्धार करना चाहते थे, उन्होंने चेदि, पाञ्चाल तथा केकयनरेशोंका वध करते हुए, रथ, घोड़ों और रथियोंसे भरी हुई पाण्डवसेनाको भस्म कर डाला ॥ ३५-३६ ॥

तथा चरन्तं समरे तपन्तमिव भास्करम् ।
पदातिकोटिसाहस्राः प्रवरायुधपाणयः ॥ ३७ ॥
न शेकुः सृंजया द्रष्टुं तथैवान्ये महीक्षितः ।
विचरन्तं तथा तं तु संग्रामे जितकाशिनम् ॥ ३८ ॥
सर्वोद्यमेन महता पाण्डवाः समभिद्रवन् ।

'कोटि सहस्र पैदल तथा हाथोंमें उत्तम आयुध धारण किये हुए संजय सैनिक और दूसरे नरेश सूर्यदेवके समान ताप देते और समराङ्गणमें विचरते हुए भीष्मकी ओर आँख उठाकर देखनेमें भी समर्थ न हो सके । उस समय संग्रामभूमिमें विचरते तथा विजयसे उल्लसित होते हुए भीष्मजीपर पाण्डवयोद्धा अपनी सारी शक्ति लगाकर बड़े वेगसे टूट पड़े ॥ ३७-३८½ ॥

स तु विद्राव्य समरे पाण्डवान् सृंजयानपि ॥ ३९ ॥
एक एव रणे भीष्म एकवीरत्वमागतः ।

'किंतु समराङ्गणमें भीष्मजी अकेले ही पाण्डवों और सृंजयोंको खदेड़कर युद्धमें अद्वितीय वीरके रूपमें विख्यात हुए ॥ ३९½ ॥

तं शिखण्डी समासाद्य त्वया गुप्तो महाव्रतम् ॥ ४० ॥
जघान पुरुषव्याघ्रं शरैः संनतपर्वभिः
स एष पतितः शेते शरतल्पे पितामहः ॥ ४१ ॥
त्वां प्राप्य पुरुषव्याघ्रं वृत्रः प्राप्येव वासवम् ।

'अर्जुन ! तुमसे सुरक्षित हुए शिखण्डीने महान् व्रतधारी पुरुषसिंह भीष्मजीपर चढ़ाई करके झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा उन्हें मार गिराया, वे ही ये पितामह भीष्म तुम-जैसे पुरुषसिंहको विपक्षमें पाकर धराशायी हो शरशय्यापर सो रहे हैं । ठीक उसी तरह, जैसे वृत्रासुर इन्द्रसे टक्कर लेकर रणशय्यापर सो गया था ॥ ४०-४१½ ॥

द्रोणः पञ्चदिनान्युग्रो विधम्य रिपुवाहिनीम् ॥ ४२ ॥
कृत्वा व्यूहमभेद्यं च पातयित्वा महारथान् ।
जयद्रथस्य समरे कृत्वा रक्षां महारथः ॥ ४३ ॥
अन्तकप्रतिमश्चोग्रो रात्रियुद्धेऽदहत् प्रजाः ।

'तत्पश्चात् उग्रमूर्ति महारथी द्रोणाचार्य पाँच दिनोंतक अभेद्यव्यूहका निर्माण, शत्रुसेनाका विध्वंस, महारथियोंका विनाश तथा समराङ्गणमें जयद्रथकी रक्षा करनेके अनन्तर रात्रियुद्धमें यमराजके समान प्रजाको दग्ध करने लगे ४२-४३½

दग्ध्वा योधाञ्छरैर्वीरो भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ४४ ॥
धृष्टद्युम्नं समासाद्य स गतः परमां गतिम् ।

'प्रतापी भरद्वाजनन्दन वीर द्रोणाचार्य अपने बाणोंद्वारा शत्रुयोद्धाओंको दग्ध करके धृष्टद्युम्नसे भिड़कर परमगतिको प्राप्त हो गये ॥ ४४½ ॥

यदि वाद्य भवान् युद्धे सूतपुत्रमुखान् रथान् ॥ ४५ ॥
नावारयिष्यः संग्रामे न स्म द्रोणो व्यनङ्क्ष्यत ।

'उस समय यदि तुम युद्धस्थलमें सूतपुत्र आदि रथियोंको न रोकते तो रणभूमिमें द्रोणाचार्यका नाश नहीं होता ॥ ४५½ ॥

भवता तु बलं सर्वं धार्तराष्ट्रस्य वारितम् ॥ ४६ ॥
ततो द्रोणो हतो युद्धे पार्षतेन धनंजय ।

'धनंजय ! तुमने दुर्योधनकी सारी सेनाको रोक रक्खा था; इसीलिये धृष्टद्युम्न संग्राममें द्रोणाचार्यका वध कर सके ॥ ४६½ ॥

एवं वा को रणे कुर्यात् त्वदन्यः क्षत्रियो युधि ॥ ४७ ॥
यादृशं ते कृतं पार्थ जयद्रथवधं प्रति ।

'पार्थ ! जयद्रथका वध करते समय युद्धमें तुमने जैसा पराक्रम किया था, वैसा तुम्हारे सिवा दूसरा कौन क्षत्रिय कर सकता है ? ॥ ४७½ ॥

निवार्य सेनां महतीं हत्वा शूरांश्च पार्थिवान् ॥ ४८ ॥
निहतः सैन्धवो राजा त्वयास्त्रबलतेजसा ।

'तुमने अपने अस्त्रोंके बल और तेजसे शूरवीर राजाओंका वध करके दुर्योधनकी विशाल सेनाको रोककर सिन्धुराज जयद्रथको मार गिराया ॥ ४८½ ॥

आश्चर्यं सिन्धुराजस्य वधं जानन्ति पार्थिवाः ॥ ४९ ॥
अनाश्चर्यं हि तत् त्वत्तस्त्वं हि पार्थ महारथः ।

'पार्थ ! सब राजा जानते हैं कि सिंधुराज जयद्रथका वध एक आश्चर्यभरी घटना है, किंतु तुमसे ऐसा होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि तुम असाधारण महारथी हो ॥ ४९½ ॥

त्वां हि प्राप्य रणे क्षत्रमेकाहादिति भारत ॥ ५० ॥
नश्यमानमहं युक्तं मन्येयमिति मे मतिः ।

'रणभूमिमें तुम्हें पाकर सारा क्षत्रियसमाज एक दिनमें नष्ट हो सकता है, ऐसा कहना मैं युक्तिसंगत मानता हूँ । मेरी तो ऐसी ही धारणा है ॥ ५०½ ॥

सेयं पार्थ चमूर्घोरा धार्तराष्ट्रस्य संयुगे ॥ ५१ ॥
हतसर्वस्ववीरा हि भीष्मद्रोणौ यदा हतौ ।

'कुन्तीनन्दन ! जब भीष्म और द्रोणाचार्य युद्धमें मार डाले गये, तभीसे मानो दुर्योधनकी इस भयंकर सेनाके सारे वीर मारे गये—इसका सर्वस्व नष्ट हो गया ॥ ५१½ ॥

शीर्णप्रवरयोधाद्य हतवाजिरथद्विपा ॥ ५२ ॥
हीना सूर्येन्दुनक्षत्रैर्द्यौरिवाभाति भारती ।

'इसके प्रधान-प्रधान योद्धा नष्ट हो गये । घोड़े, रथ और हाथी भी मार डाले गये । अब यह कौरवसेना सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्रोंसे रहित आकाशके समान श्रीहीन जान पड़ती है ॥ ५२½ ॥

विध्वस्ता हि रणे पार्थ सेनेयं भीमविक्रम ॥ ५३ ॥
आसुरीव पुरा सेना शक्रस्येव पराक्रमैः ।

'भयंकर पराक्रमी पार्थ ! रणभूमिमें विध्वंसको प्राप्त हुई यह कौरवसेना पूर्वकालमें इन्द्रके पराक्रमसे नष्ट हुई असुरोंकी सेनाके समान प्रतीत होती है ॥ ५३½ ॥

तेषां हतावशिष्टास्तु सन्ति पञ्च महारथाः ॥ ५४ ॥
अश्वत्थामा कृतवर्मा कर्णो मद्राधिपः कृपः ।

'इन कौरवसैनिकोंमेंसे अश्वत्थामा, कृतवर्मा, कर्ण, शल्य और कृपाचार्य—ये पाँच प्रमुख महारथी मरनेसे बच गये हैं ॥ ५४½ ॥

तांस्त्वमद्य नरव्याघ्र हत्वा पञ्च महारथान् ॥ ५५ ॥
हतामित्रः प्रयच्छोर्वीं राज्ञे सद्वीपपत्तनाम् ।

'नरव्याघ्र ! आज इन पाँचों महारथियोंको मारकर तुम शत्रुहीन हो द्वीपों और नगरोंसहित यह सारी पृथ्वी राजा युधिष्ठिरको दे दो ॥ ५५½ ॥

साकाशजलपातालां सपर्वतमहावनाम् ॥ ५६ ॥
प्राप्नोत्वमितवीर्यश्रीरद्य पार्थो वसुन्धराम् ।

'अमित पराक्रम और कान्तिसे सम्पन्न कुन्तीकुमार युधिष्ठिर आज आकाश, जल, पाताल, पर्वत और बड़े-बड़े वनोंसहित इस वसुधाको प्राप्त कर लें ॥ ५६½ ॥

एतां पुरा विष्णुरिव हत्वा दैतेयदानवान् ॥ ५७ ॥
प्रयच्छ मेदिनीं राज्ञे शक्रायेव हरिर्यथा ।

'जैसे पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने दैत्यों और दानवोंको मारकर यह त्रिलोकी इन्द्रको दे दी थी, उसी प्रकार तुम यह पृथ्वी राजा युधिष्ठिरको सौंप दो ॥ ५७½ ॥

अद्य मोदन्तु पञ्चाला निहतेष्वरिषु त्वया ।
विष्णुना निहतेष्वेव दानवेयेषु देवताः ॥ ५८ ॥

'जैसे भगवान् विष्णुके द्वारा दानवोंके मारे जानेपर देवता प्रसन्न होते हैं, उसी प्रकार आज तुम्हारे द्वारा शत्रुओंका संहार हो जानेपर समस्त पाञ्चाल आनन्दित हो उठें ॥

यदि वा द्विपदां श्रेष्ठं द्रोणं मानयतो गुरुम् ।
अश्वत्थाम्नि कृपा तेऽस्ति कृपे वाचार्यगौरवात् ॥ ५९ ॥
अत्यन्तापचितान् बन्धून् मानयन् मातृबान्धवान् ।
कृतवर्माणमासाद्य न नेष्यसि यमक्षयम् ॥ ६० ॥
भ्रातरं मातुरासाद्य शल्यं मद्रजनाधिपम् ।
यदि त्वमरविन्दाक्ष दयावान् न जिघांससि ॥ ६१ ॥
इमं पापमतिं क्षुद्रमत्यन्तं पाण्डवान् प्रति ।
कर्णमद्य नरश्रेष्ठ जह्याः सुनिशितैः शरैः ॥ ६२ ॥

'कमलनयन नरश्रेष्ठ अर्जुन ! मनुष्योंमें श्रेष्ठ गुरु द्रोणाचार्यका सम्मान करते हुए तुम्हारे हृदयमें यदि अश्वत्थामाके प्रति दया है, अथवा आचार्योचित गौरवके कारण कृपाचार्यके प्रति कृपाभाव है, यदि माता कुन्तीके अत्यन्त पूजनीय बन्धु-बान्धवोंके प्रति आदरका भाव रखते हुए तुम कृतवर्मापर आक्रमण करके उसे यमलोक भेजना नहीं चाहते तथा माता माद्रीके भाई, मद्रदेशीय जनताके अधिपति, राजा शल्यको भी तुम दयावश मारनेकी इच्छा नहीं रखते तो न सही, किंतु पाण्डवोंके प्रति सदा पापबुद्धि रखनेवाले इस अत्यन्त नीच कर्णको तो आज अपने पैने बाणोंसे मार ही डालो ॥ ५९-६२ ॥

एतत् ते सुकृतं कर्म नात्र किंचन युज्यते ।
वयमप्यनुजानीमो नात्र दोषोऽस्ति कश्चन ॥ ६३ ॥

'यह तुम्हारे लिये पुण्य कर्म होगा । इस विषयमें कोई विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है । मैं भी तुम्हें इसके लिये आज्ञा देता हूँ, अतः इसमें कोई दोष नहीं है ॥ ६३ ॥

दहने यत् सपुत्राया निशि मातुस्तवानघ ।
द्यूतार्थे यच्च युष्मासु प्रावर्तत सुयोधनः ॥ ६४ ॥
तस्य सर्वस्य दुष्टात्मा कर्णो वै मूलमित्युत ।

'निष्पाप अर्जुन ! रात्रिके समय पुत्रसहित तुम्हारी माता कुन्तीको जला देने और तुम सब लोगोंके साथ जूआ खेलनेके कार्यमें जो दुर्योधनकी प्रवृत्ति हुई थी, उन सब षड्यन्त्रोंका मूल कारण यह दुष्टात्मा कर्ण ही था ॥ ६४½ ॥

कर्णाद्धि मन्यते त्राणं नित्यमेव सुयोधनः ॥ ६५ ॥
ततो मामपि संरब्धो निग्रहीतुं प्रचक्रमे ।

'दुर्योधनको सदासे ही यह विश्वास बना हुआ है कि कर्ण मेरी रक्षा कर लेगा; इसीलिये वह आवेशमें आकर मुझे भी कैद करनेकी तैयारी करने लगा था ॥ ६५½ ॥

स्थिरा बुद्धिर्नरेन्द्रस्य धार्तराष्ट्रस्य मानद ॥ ६६ ॥
कर्णः पार्थान् रणे सर्वान् विजेष्यति न संशयः ।

'मानद ! धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधनका यह दृढ़ विचार है कि कर्ण रणभूमिमें कुन्तीके सभी पुत्रोंको निःसंदेह जीत लेगा ॥ ६६½ ॥

कर्णमाश्रित्य कौन्तेय धार्तराष्ट्रेण विग्रहः ॥ ६७ ॥
रोचितो भवता सार्धं जानतापि बलं तव ।

'कुन्तीनन्दन ! तुम्हारे बलको जानते हुए भी दुर्योधनने कर्णका भरोसा करके ही तुम्हारे साथ युद्ध छेड़ना पसंद किया है ॥ ६७½ ॥

कर्णो हि भाषते नित्यमहं पार्थान् समागतान् ॥ ६८ ॥
वासुदेवं च दाशार्हं विजेष्यामि महारथम् ।

'कर्ण सदा ही यह कहता रहता है कि 'मैं युद्धमें एक साथ आये हुए समस्त कुन्तीपुत्रों तथा वसुदेवनन्दन महारथी श्रीकृष्णको भी जीत लूँगा' ॥ ६८½ ॥

प्रोत्साहयन् दुरात्मानं धार्तराष्ट्रं सुदुर्मतिम् ॥ ६९ ॥
समितौ गर्जते कर्णस्तमद्य जहि भारत ।

'भारत ! अत्यन्त खोटी बुद्धिवाले दुरात्मा दुर्योधनका उत्साह बढ़ाता हुआ कर्ण राजसभामें उपर्युक्त बातें कहकर गर्जता रहता है; इसलिये आज तुम उसे मार डालो ॥ ६९½ ॥

यच्च युष्मासु पापं वै धार्तराष्ट्रः प्रयुक्तवान् ॥ ७० ॥
तत्र सर्वत्र दुष्टात्मा कर्णः पापमतिर्मुखम् ।

'दुर्योधनने तुमलोगोंके साथ जो-जो पापपूर्ण बर्ताव किया है, उन सबमें पापबुद्धि दुष्टात्मा कर्ण ही प्रधान कारण है ॥ ७०½ ॥

यच्च तद् धार्तराष्ट्रस्य क्रूरैः षड्भिर्महारथैः ॥ ७१ ॥
अपश्यं निहतं वीरं सौभद्रमृषभेक्षणम् ।
द्रोणद्रौणिकृपान् वीरान् कर्षयन्तं नरर्षभान् ॥ ७२ ॥
निर्मनुष्यांश्च मातङ्गान् विरथांश्च महारथान् ।
व्यश्वारोहांश्च तुरगान् पत्तीन् व्यायुधजीविनः ॥ ७३ ॥
कुर्वन्तमृषभस्कन्धं कुरुवृष्णियशस्करम् ।
विधमन्तमनीकानि व्यथयन्तं महारथान् ॥ ७४ ॥
मनुष्यवाजिमातङ्गान् प्रहिण्वन्तं यमक्षयम् ।
शरैः सौभद्रमायान्तं दहन्तमिव वाहिनीम् ॥ ७५ ॥
तन्मे दहति गात्राणि सखे सत्येन ते शपे ।
यत् तत्रापि च दुष्टात्मा कर्णोऽभ्यद्रुह्यत प्रभो॥ ७६ ॥

'सखे ! सुभद्राका वीरपुत्र अभिमन्यु साँड़के समान बड़े-बड़े नेत्रोंसे सुशोभित तथा कुरुकुल एवं वृष्णिवंशके यशको बढ़ानेवाला था । उसके कंधे साँड़के कंधोंके समान मांसल थे। वह द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और कृपाचार्य आदि नरश्रेष्ठ वीरोंको पीड़ा दे रहा था। हाथियोंको महावतों और सवारोंसे, महारथियोंको रथोंसे, घोड़ोंको सवारोंसे तथा पैदल सैनिकोंको अस्त्र-शस्त्र एवं जीवनसे वञ्चित कर रहा था। सेनाओंका विध्वंस और महारथियोंको व्यथित करके वह मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंको यमलोक भेज रहा था। बाणोंद्वारा शत्रुसेनाको दग्ध-सी करके आते हुए सुभद्राकुमारको जो दुर्योधनके छः क्रूर महारथियोंने मार डाला और उस अवस्थामें मारे गये अभिमन्युको जो मैंने अपनी आँखोंसे देखा, वह सब मेरे अङ्गोंको दग्ध किये देता है । प्रभो ! मैं तुमसे सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ कि उसमें भी दुष्टात्मा कर्णका ही द्रोह काम कर रहा था ॥ ७१—७६ ॥

अशक्नुवंश्चाभिमन्योः कर्णः स्थातुं रणेऽग्रतः ।
सौभद्रशरनिर्भिन्नो विसंज्ञः शोणितोक्षितः ॥ ७७ ॥

'रणभूमिमें अभिमन्युके सामने खड़े होनेकी शक्ति कर्णमें नहीं रह गयी थी । वह सुभद्राकुमारके बाणोंसे छिन्न-भिन्न हो खूनसे लथपथ एवं अचेत हो गया था ॥ ७७ ॥

निःश्वसन् क्रोधसंदीप्तो विमुखः सायकार्दितः।
अपयानकृतोत्साहो निराशश्चापि जीविते ॥ ७८ ॥

'वह क्रोधसे जलकर लंबी साँस खींचता हुआ अभिमन्युके बाणोंसे पीड़ित हो युद्धसे मुँह मोड़ चुका था । अब उसके मनमें भाग जानेका ही उत्साह था । वह जीवनसे निराश हो चुका था ॥ ७८ ॥

तस्थौ सुविह्वलः संख्ये प्रहारजनितश्रमः ।
अथ द्रोणस्य समरे तत्कालसदृशं तदा ॥ ७९ ॥
श्रुत्वा कर्णो वचः क्रूरं ततश्चिच्छेद कार्मुकम् ।

'युद्धस्थलमें प्रहारोंके कारण अधिक क्लान्त हो जानेसे वह व्याकुल होकर खड़ा रहा । तदनन्तर समराङ्गणमें द्रोणाचार्यका समयोचित क्रूर वचन सुनकर कर्णने अभिमन्युके धनुषको काट डाला ॥ ७९½ ॥

ततश्छिन्नायुधं तेन रणे पञ्च महारथाः ॥ ८० ॥
तं चैव निकृतिप्रज्ञाः प्राहरञ्छरवृष्टिभिः ।

'उसके द्वारा धनुष कट जानेपर रणभूमिमें शेष पाँच महारथी, जो शठतापूर्ण बर्ताव करनेमें प्रवीण थे, बाणोंकी वर्षाद्वारा अभिमन्युको घायल करने लगे ॥ ८०½ ॥

तस्मिन् विनिहते वीरे सर्वेषां दुःखमाविशत् ॥ ८१ ॥
प्राहसत् स तु दुष्टात्मा कर्णः स च सुयोधनः ।

'उस वीरके इस तरह मारे जानेपर प्रायः सभीको बड़ा दुःख हुआ । केवल दुष्टात्मा कर्ण और दुर्योधन ही जोर-जोरसे हँसे थे ॥ ८१½ ॥

यच्च कर्णोऽब्रवीत् कृष्णां सभायां परुषं वचः॥ ८२ ॥
प्रमुखे पाण्डवेयानां कुरूणां च नृशंसवत् ।

'इसके सिवा, कर्णने भरी सभामें पाण्डवों और कौरवोंके सामने एक क्रूर मनुष्यकी भाँति द्रौपदीके प्रति इस तरह कठोर वचन कहे थे ॥ ८२½ ॥

विनष्टाः पाण्डवाः कृष्णे शाश्वतं नरकं गताः ॥ ८३ ॥
पतिमन्यं पृथुश्रोणि वृणीष्व मृदुभाषिणि ।
एषा त्वं धृतराष्ट्रस्य दासीभूता निवेशनम् ॥ ८४ ॥
प्रविशारालपक्ष्माक्षि न सन्ति पतयस्तव ।
न पाण्डवाः प्रभवन्ति तव कृष्णे कथञ्चन ॥ ८५ ॥

''कृष्णे ! पाण्डव तो नष्ट होकर सदाके लिये नरकमें पड़ गये। पृथुश्रोणि ! अब तू दूसरा पति वरण कर ले। मृदुभाषिणि ! आजसे तू राजा धृतराष्ट्रकी दासी हुई; अतः राजमहलमें प्रवेश कर। टेढ़ी बरौनियोंवाली कृष्णे ! पाण्डव अब तेरे पति नहीं रहे। वे तुझपर किसी तरह कोई अधिकार नहीं रखते ॥ ८३-८५ ॥

दासभार्या च पाञ्चालि स्वयं दासी च शोभने।
अद्य दुर्योधनो ह्येकः पृथिव्यां नृपतिः स्मृतः ॥ ८६ ॥

''सुन्दरी पाञ्चालराजकुमारी ! अब तू दासोंकी भार्या और स्वयं भी दासी है। आज एकमात्र राजा दुर्योधन समस्त भूमण्डलके स्वामी मान लिये गये हैं ॥ ८६ ॥

सर्वे चास्य महीपाला योगक्षेममुपासते।
पश्येदानीं यथा भद्रे विनष्टाः पाण्डवाः समम्॥ ८७ ॥
अन्योन्यं समुदीक्षन्ते धार्तराष्ट्रस्य तेजसा।

''अन्य सब नरेश इन्हींके योग-क्षेममें लगे हुए हैं। भद्रे ! देख, इस समय पाण्डव दुर्योधनके तेजसे एक साथ ही नष्टप्राय होकर एक दूसरेका मुँह देख रहे हैं ॥ ८७½ ॥

व्यक्तं षण्ढतिला ह्येते निरये च निमज्जिताः ॥ ८८ ॥
प्रेष्यवच्चापि राजानमुपस्थास्यन्ति कौरवम्।

''निश्चय ही ये थोथे तिलोंके समान नपुंसक हैं और नरकमें डूब गये हैं। आजसे ये दासोंके समान कौरव-नरेशकी सेवामें उपस्थित होंगे' ॥ ८८½ ॥

इत्युक्तवानधर्मज्ञस्तदा परमदुर्मतिः ॥ ८९ ॥
पापः पापवचः कर्णः शृण्वतस्तव भारत।

'भारत ! उस समय अधर्मका ही ज्ञान रखनेवाले परम दुर्बुद्धि पापी कर्णने तुम्हारे सुनते हुए ऐसे-ऐसे पापपूर्ण वचन कहे थे ॥ ८९½ ॥

अद्य पापस्य तद् वाक्यं सुवर्णविकृताः शराः ॥ ९० ॥
शमयन्तु शिलाधौतास्त्वयास्ता जीवितच्छिदः।

'आज तुम्हारे छोड़े हुए एवं शिलापर स्वच्छ किये हुए सुवर्णनिर्मित प्राणान्तकारी बाण पापी कर्णके उन वचनोंका उत्तर देते हुए उसे सदाके लिये शान्त कर दें ॥ ९०½ ॥

यानि चान्यानि दुष्टात्मा पापानि कृतवांस्त्वयि॥ ९१ ॥
तान्यद्य जीवितं चास्य शमयन्तु शरास्तव।

'दुष्टात्मा कर्णने तुम्हारे प्रति और भी जो-जो पापपूर्ण बर्ताव किये हैं, उन सबको और इसके जीवनको भी आज तुम्हारे बाण नष्ट कर दें ॥ ९१½ ॥

गाण्डीवप्रहितान् घोरानद्य गात्रैः स्पृशञ्छरान्॥९२॥
कर्णः स्मरतु दुष्टात्मा वचनं द्रोणभीष्मयोः।

'आज दुष्टात्मा कर्ण अपने अङ्गोंपर गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए भयङ्कर बाणोंकी चोट सहता हुआ द्रोणाचार्य और भीष्मके वचनोंको याद करे ॥ ९२½ ॥

सुवर्णपुङ्खा नाराचाः शत्रुघ्ना वैद्युतप्रभाः ॥ ९३ ॥
त्वयास्तास्तस्य वर्माणि भित्त्वा पास्यन्ति शोणितम्।

'बिजलीकी-सी प्रभा और सोनेके पङ्ख धारण करनेवाले तुम्हारे चलाये हुए शत्रुनाशक नाराच कवच छेदकर कर्णका रक्त पान करेंगे ॥ ९३½ ॥

उग्रास्त्वद्भुजनिर्मुक्ता मर्म भित्त्वा महाशराः ॥ ९४ ॥
अद्य कर्णं महावेगाः प्रेषयन्तु यमक्षयम्।

'आज तुम्हारे हाथोंसे छूटे हुए महान् वेगशाली, भयङ्कर एवं विशाल बाण कर्णका मर्मस्थल विदीर्ण करके उसे यमलोक भेज दें ॥ ९४½ ॥

अद्य हाहाकृता दीना विषण्णास्त्वच्छरार्दिताः॥ ९५ ॥
प्रपतन्तं रथात् कर्णं पश्यन्तु वसुधाधिपाः।

'आज तुम्हारे बाणोंसे पीड़ित हुए भूमिपाल दीन और विषादयुक्त होकर हाहाकार मचाते हुए कर्णको रथसे नीचे गिरता देखें ॥ ९५½ ॥

अद्य शोणितसम्मग्नं शयानं पतितं भुवि ॥ ९६ ॥
अपविद्धायुधं कर्णं दीनाः पश्यन्तु बान्धवाः।

'आज कर्ण रक्तमें डूबकर पृथ्वीपर पड़ा सो रहा हो और उसके आयुध इधर-उधर फेंके पड़े हों। इस अवस्थामें उसके बन्धु-बान्धव दीन-दुखी होकर उसे देखें ॥ ९६½ ॥

हस्तिकक्षो महानस्य भल्लेनोन्मथितस्त्वया।
प्रकम्पमानः पततु भूमावाधिरथेर्ध्वजः ॥ ९७ ॥

'आज हाथीके रस्सेके चिह्नसे युक्त अधिरथपुत्र कर्णका विशाल ध्वज तुम्हारे भल्लसे कटकर काँपता हुआ इस पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ९७ ॥

त्वया शरशतैश्छिन्नं रथं हेमविभूषितम्।
हतयोधाश्वमुत्सृज्य भीतः शल्यः पलायताम्॥ ९८ ॥

'आज राजा शल्य भी तुम्हारे सैकड़ों बाणोंसे छिन्न-भिन्न उस सुवर्णविभूषित रथको, जिसके रथी और घोड़े मार डाले गये हों, छोड़कर भयभीत हो भाग जायँ ॥ ९८ ॥

त्वं चेत् कर्णसुतं पार्थ सूतपुत्रस्य पश्यतः।
प्रतिज्ञावारणार्थाय निहनिष्यसि सायकैः ॥ ९९ ॥
हतं कर्णस्तु तं दृष्ट्वा प्रियं पुत्रं दुरात्मवान्।
स्मरतां द्रोणभीष्माभ्यां वचः क्षत्तुश्च मानद ॥१००॥

'माननीय पुरुषोंको मान देनेवाले पार्थ! यदि तुम सूतपुत्र कर्णके देखते-देखते अपनी प्रतिज्ञाकी पूर्तिके लिये उसके पुत्र वृषसेनको बाणोंद्वारा मार डालो तो अपने प्रिय पुत्रको मारा गया देख वह दुरात्मा कर्ण द्रोणाचार्य, भीष्म और विदुरजीकी कही हुई बातोंको याद करे ॥ ९९-१०० ॥

ततः सुयोधनो दृष्ट्वा हतमाधिरथिं त्वया।
निराशो जीविते त्वद्य राज्ये चैव भवत्वरिः ॥१०१॥

'तत्पश्चात् आज तुम्हारे द्वारा अधिरथपुत्र कर्णको मारा गया देख तुम्हारा शत्रु दुर्योधन अपने जीवन और राज्य दोनोंसे निराश हो जाय ॥ १०१ ॥

एते द्रवन्ति पञ्चाला वध्यमानाः शितैः शरैः।
कर्णेन भरतश्रेष्ठ पाण्डवानुज्जिहीर्षवः ॥१०२॥

'भरतश्रेष्ठ ! कर्णके तीखे बाणोंकी मार खाते हुए भी ये पाञ्चालवीर पाण्डव-सैनिकोंका उद्धार करनेकी इच्छासे (कर्णकी ओर ही) दौड़े जा रहे हैं ॥ १०२ ॥

पञ्चालान् द्रौपदेयांश्च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ।
धृष्टद्युम्नतनूजांश्च शतानीकं च नाकुलिम् ॥१०३॥
नकुलं सहदेवं च दुर्मुखं जनमेजयम् ।
सुधर्माणं सात्यकिं च विद्धि कर्णवशं गतान् ॥ १०४॥

'अर्जुन ! तुम्हें ज्ञात होना चाहिये कि पाञ्चालयोद्धा, द्रौपदीके पुत्र, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, धृष्टद्युम्नके पुत्रगण, नकुलकुमार शतानीक, नकुल-सहदेव, दुर्मुख, जनमेजय, सुधर्मा और सात्यकि—ये सब-के-सब कर्णके वशमें पड़ गये हैं ॥ १०३-१०४ ॥

अभ्याहतानां कर्णेन पञ्चालानामसौ रणे ।
श्रूयते निनदो घोरस्त्वद्वन्धूनां परंतप ॥१०५॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले अर्जुन ! देखो, कर्णके द्वारा घायल हुए तुम्हारे बान्धव पाञ्चालोंका वह घोर आर्तनाद रणभूमिमें स्पष्ट सुनायी दे रहा है ॥ १०५ ॥

न त्वेव भीताः पञ्चालाः कथंचित् स्युः पराङ्मुखाः ।
न हि मृत्युं महेष्वासा गणयन्ति महारणे ॥१०६॥

'पाञ्चाल योद्धा किसी तरह भयभीत होकर युद्धसे विमुख नहीं हो सकते । वे महाधनुर्धर वीर महासमरमें मृत्युको कुछ नहीं गिनते हैं ॥ १०६ ॥

य एकः पाण्डवीं सेनां शरौघैः समवेष्टयत् ।
तं समासाद्य पञ्चाला भीष्मं नासन् पराङ्मुखाः ॥१०७॥
ते कथं कर्णमासाद्य विद्रवेयुर्महारथाः ।

'जो सारी पाण्डवसेनाको अकेले ही अपने बाणसमूहों-द्वारा लपेट लेते थे, उन भीष्मजीका सामना करके भी पाञ्चालयोद्धा कभी युद्धसे मुँह मोड़कर नहीं भागे । वे ही महारथी वीर कर्णको सामने पाकर कैसे भाग सकते हैं ? ॥

यस्त्वेकः सर्वपञ्चालानहन्यहनि नाशयन् ॥१०८॥
कालवच्चरते वीरः पञ्चालानां रथव्रजे ।
तमप्यासाद्य समरे मित्रार्थे मित्रवत्सल ॥१०९॥
तथा ज्वलन्तमस्त्राग्निं गुरुं सर्वधनुष्मताम् ।
निर्दहन्तं च समरे दुर्धर्षं द्रोणमोजसा ॥११०॥
ते नित्यमुदिता जेतुं मृधे शत्रूनरिंदम ।
न जात्वाधिरथेर्भीताः पञ्चालाः स्युः पराङ्मुखाः॥१११॥

'मित्रवत्सल ! जो वीर द्रोणाचार्य प्रतिदिन अकेले ही सम्पूर्ण पाञ्चालोंका विनाश करते हुए पाञ्चालोंकी रथसेनामें कालके समान विचरते थे, अस्त्रोंकी आगसे प्रज्वलित होते थे, सम्पूर्ण धनुर्धरोंके गुरु थे और समराङ्गणमें शत्रुसेनाको दग्ध किये देते थे, अपने बल और पराक्रमसे दुर्धर्ष उन द्रोणाचार्यको भी संग्राममें सामने पाकर वे पाञ्चाल अपने मित्र पाण्डवोंके लिये सदा डटकर युद्ध करते रहे । शत्रुदमन अर्जुन ! पाञ्चाल सैनिक युद्धमें सदा शत्रुओंको जीतनेके लिये उद्यत रहते हैं । वे सूतपुत्र कर्णसे भयभीत हो कभी युद्धसे मुँह नहीं मोड़ सकते ॥ १०८—१११ ॥

तेषामापततां शूरः पञ्चालानां तरस्विनाम् ।
आदत्तासूञ्शरैः कर्णः पतङ्गानामिवानलः ॥११२॥

'जैसे आग अपने पास आये हुए पतङ्गोंके प्राण ले लेती है, उसी प्रकार शूरवीर कर्ण बाणोंद्वारा अपने ऊपर आक्रमण करनेवाले वेगशाली पाञ्चालोंके प्राण ले रहा है ॥ ११२ ॥

एते द्रवन्ति पञ्चाला द्राव्यन्ते योधिभिर्ध्रुवम् ।
कर्णेन भरतश्रेष्ठ पश्य पश्य तथाकृतान् ॥११३॥

'भरतश्रेष्ठ ! देखो, ये पाञ्चालयोद्धा दौड़ रहे हैं । निश्चय ही कर्ण और दूसरे-दूसरे योद्धा उन्हें दौड़ा रहे हैं । देखो, वे कैसी बुरी अवस्थामें पड़ गये हैं ! ॥ ११३ ॥

तांस्तथाभिमुखान् वीरान् मित्रार्थे त्यक्तजीवितान् ।
क्षयं नयति राधेयः पञ्चालाञ्छतशो रणे ॥११४॥

'जो अपने मित्रके लिये प्राणोंका मोह छोड़कर शत्रुके सामने खड़े होकर जूझ रहे हैं, उन सैकड़ों पाञ्चालवीरोंको कर्ण रणभूमिमें नष्ट कर रहा है ॥ ११४ ॥

तद् भारत महेष्वासानगाधे मज्जतोऽप्लवे ।
कर्णार्णवे प्लवो भूत्वा पञ्चालांस्त्रातुमर्हसि ॥११५॥

'भारत ! कर्णरूपी अगाध महासागरमें महाधनुर्धर पाञ्चाल बिना नावके डूब रहे हैं । तुम नौका बनकर उनका उद्धार करो ॥ ११५ ॥

अस्त्रं हि रामात् कर्णेन भार्गवादृषिसत्तमात् ।
यदुपात्तं महाघोरं तस्य रूपमुदीर्यते ॥११६॥

'कर्णने मुनिश्रेष्ठ भृगुनन्दन परशुरामजीसे जो महाघोर अस्त्र प्राप्त किया है, उसीका रूप इस समय प्रकट हो रहा है ॥

तापनं सर्वसैन्यानां घोररूपं सुदारुणम् ।
समावृत्य महासेनां ज्वलन्तं स्वेन तेजसा ॥११७॥

'यह अत्यन्त भयंकर एवं घोर भार्गवास्त्र पाण्डवोंकी विशाल सेनाको आच्छादित करके अपने तेजसे प्रज्वलित हो सम्पूर्ण सैनिकोंको संतप्त कर रहा है ॥ ११७ ॥

एते चरन्ति संग्रामे कर्णचापच्युताः शराः ।
भ्रमराणामिव व्रातास्तापयन्ति स्म तावकान् ॥११८॥

'ये संग्राममें कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाण भ्रमरोंके समूहोंकी भाँति चलते और तुम्हारे योद्धाओंको संतप्त करते हैं ॥ ११८ ॥

एते द्रवन्ति पञ्चाला दिक्षु सर्वासु भारत ।
कर्णास्त्रं समरे प्राप्य दुर्निवार्यमनात्मभिः ॥११९॥

'भरतनन्दन ! जिन्होंने अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें नहीं कर रक्खा है, उनके लिये कर्णके अस्त्रको रोकना अत्यन्त कठिन है । समराङ्गणमें इसकी चोट खाकर ये पाञ्चालसैनिक सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग रहे हैं ॥ ११९ ॥

एष भीमो दृढक्रोधो वृतः पार्थ समन्ततः ।
सृञ्जयैर्योधयन् कर्णं पीड्यते निशितैः शरैः ॥१२०॥

'पार्थ ! दृढ़तापूर्वक क्रोधको धारण करनेवाले ये भीमसेन सब ओरसे सृञ्जयोंद्वारा घिरकर कर्णके साथ युद्ध करते हुए उसके पैने बाणोंसे पीड़ित हो रहे हैं ॥ १२० ॥

पाण्डवान् सृञ्जयांश्चैव पञ्चालांश्चैव भारत ।
हन्यादुपेक्षितः कर्णो रोगो देहमिवागतः ॥१२१॥

'भारत ! जैसे प्राप्त हुए रोगकी चिकित्सा न की गयी तो वह शरीरको नष्ट कर देता है, उसी प्रकार यदि कर्णकी उपेक्षा की गयी तो वह पाण्डवों, सृञ्जयों और पाञ्चालोंका भी नाश कर सकता है ॥ १२१ ॥

नान्यं त्वत्तो हि पश्यामि योधं यौधिष्ठिरे बले ।
यः समासाद्य राधेयं स्वस्तिमानाव्रजेद् गृहम् ॥१२२॥

'युधिष्ठिरकी सेनामें मैं तुम्हारे सिवा दूसरे किसी योद्धाको ऐसा नहीं देखता, जो राधापुत्र कर्णका सामना करके कुशलपूर्वक घर लौट सके ॥ १२२ ॥

तमद्य निशितैर्बाणैर्विनिहत्य नरर्षभ ।
यथाप्रतिज्ञं पार्थ त्वं कृत्वा कीर्तिमवाप्नुहि ॥१२३॥

'नरश्रेष्ठ ! पार्थ ! आज तुम अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार तीखे बाणोंसे कर्णका वध करके उज्ज्वल कीर्ति प्राप्त करो ॥

त्वं हि शक्तो रणे जेतुं सकर्णानपि कौरवान् ।
नान्यो युधि युधां श्रेष्ठ सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ १२४॥

'योद्धाओंमें श्रेष्ठ ! केवल तुम्हीं संग्राममें कर्णसहित सम्पूर्ण कौरवोंको जीत सकते हो, दूसरा कोई नहीं । यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ ॥ १२४ ॥

एतत् कृत्वा महत् कर्म हत्वा कर्णं महारथम् ।
कृतार्थः सफलः पार्थ सुखी भव नरोत्तम ॥१२५॥

'पुरुषोत्तम पार्थ ! अतः महारथी कर्णको मारकर यह महान् कार्य सम्पन्न करनेके पश्चात् तुम कृतकृत्य, सफल-मनोरथ एवं सुखी हो जाओ' ॥ १२५ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि श्रीकृष्णवाक्ये त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें श्रीकृष्णवाक्यविषयक तिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

अर्जुनके वीरोचित उद्गार

संजय उवाच

स केशवस्य बीभत्सुः श्रुत्वा भारत भाषितम् ।
विशोकः सम्प्रहृष्टश्च क्षणेन समपद्यत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं— भरतनन्दन ! भगवान् श्रीकृष्णका यह भाषण सुनकर अर्जुन एक ही क्षणमें शोकरहित एवं हर्ष और उत्साहसे सम्पन्न हो गये ॥ १ ॥

ततो ज्यामभिमृज्याशु व्याक्षिपद् गाण्डिवं धनुः ।
दध्रे कर्णविनाशाय केशवं चाभ्यभाषत ॥ २ ॥

तत्पश्चात् धनुषकी प्रत्यञ्चाको साफ करके उन्होंने शीघ्र ही गाण्डीवधनुषकी टङ्कार की और कर्णके विनाशका दृढ़ निश्चय कर लिया । फिर वे भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार बोले—॥ २ ॥

त्वया नाथेन गोविन्द ध्रुव एव जयो मम ।
प्रसन्नो यस्य मेऽद्य त्वं लोके भूतभविष्यकृत् ॥ ३ ॥

'गोविन्द ! जब आप मेरे स्वामी और संरक्षक हैं, तब युद्धमें मेरी विजय निश्चित ही है । संसारके भूत और भविष्यका निर्माण करनेवाले आप ही हैं । जिसके ऊपर आप प्रसन्न हैं, उसकी (अर्थात् मेरी) विजयमें आज क्या संदेह है ॥

त्वत्सहायो ह्यहं कृष्ण त्रीँल्लोकान् वै समागतान् ।
प्रापयेयं परं लोकं किमु कर्णं महाहवे ॥ ४ ॥

'श्रीकृष्ण ! आपकी सहायता मिलनेपर तो मैं युद्धके लिये सामने आये हुए तीनों लोकोंको भी परलोकका पथिक बना सकता हूँ, फिर इस महासमरमें कर्णको जीतना कौन बड़ी बात है ? ॥ ४॥

पश्यामि द्रवतीं सेनां पञ्चालानां जनार्दन ।
पश्यामि कर्णं समरे विचरन्तमभीतवत् ॥ ५ ॥

'जनार्दन ! मैं समरभूमिमें निर्भयसे विचरते हुए कर्णको और भागती हुई पाञ्चालोंकी सेनाको भी देख रहा हूँ ॥ ५ ॥

भार्गवास्त्रं च पश्यामि ज्वलन्तं कृष्ण सर्वशः ।
सृष्टं कर्णेन वार्ष्णेय शक्रेणेव यथाशनिम् ॥ ६ ॥

'श्रीकृष्ण ! वार्ष्णेय ! सब ओरसे प्रज्वलित होनेवाले भार्गवास्त्रपर भी मेरी दृष्टि है, जिसे कर्णने उसी तरह प्रकट किया है, जैसे इन्द्र वज्रका प्रयोग करते हैं ॥ ६ ॥

अयं खलु स संग्रामो यत्र कर्णं मया हतम् ।
कथयिष्यन्ति भूतानि यावद् भूमिर्धरिष्यति ॥ ७ ॥

'निश्चय ही यह वह संग्राम है, जहाँ कर्ण मेरे हाथसे मारा जायगा और जबतक यह पृथ्वी विद्यमान रहेगी, तबतक समस्त प्राणी इसकी चर्चा करेंगे ॥ ७ ॥

अद्य कृष्ण विकर्णा मे कर्णं नेष्यन्ति मृत्यवे ।
गाण्डीवमुक्ताः क्षिण्वन्तो मम हस्तप्रचोदिताः ॥ ८ ॥

'श्रीकृष्ण ! आज मेरे हाथसे प्रेरित और गाण्डीव धनुषसे मुक्त हुए विकर्ण नामक बाण कर्णको क्षत-विक्षत करते हुए उसे यमलोक पहुँचा देंगे ॥ ८ ॥

अद्य राजा धृतराष्ट्रः स्वां बुद्धिमवमंस्यते ।
दुर्योधनमराज्यार्हं यया राज्येऽभ्यषेचयत् ॥ ९ ॥

'आज राजा धृतराष्ट्र अपनी उस बुद्धिका अनादर करेंगे, जिसके द्वारा उन्होंने राज्यके अनधिकारी दुर्योधनको राजाके पदपर अभिषिक्त कर दिया था ॥ ९ ॥

अद्य राज्यात् सुखाच्चैव श्रियो राष्ट्रात् तथा पुरात् ।
पुत्रेभ्यश्च महाबाहो धृतराष्ट्रो विमोक्ष्यति ॥ १० ॥

'महाबाहो ! आज धृतराष्ट्र अपने राज्यसे, सुखसे, लक्ष्मीसे, राष्ट्रसे, नगरसे और अपने पुत्रोंसे भी बिछुड़ जायँगे ॥

गुणवन्तं हि यो द्वेष्टि निर्गुणं कुरुते प्रभुम् ।
स शोचति नृपः कृष्ण क्षिप्रमेवागते क्षये ॥ ११ ॥

'श्रीकृष्ण ! जो गुणवान्‌से द्वेष करता और गुणहीन-को राजा बनाता है, वह नरेश विनाशकाल उपस्थित होनेपर शोकमग्न हो पश्चात्ताप करता है ॥ ११ ॥

यथा च पुरुषः कश्चिच्छित्त्वा चाम्रवणं महत् ।
फलं दृष्ट्वा भृशं दुःखी भविष्यति जनार्दन ।
सूतपुत्रे हते त्वद्य निराशो भविता प्रभुः ॥ १२ ॥

'जनार्दन ! जैसे कोई पुरुष आमके विशाल वनको काटकर उसके दुष्परिणामको उपस्थित देख अत्यन्त दुखी हो जाता है, उसी प्रकार आज सूतपुत्रके मारे जानेपर राजा दुर्योधन निराश हो जायगा ॥ १२ ॥

अद्य दुर्योधनो राज्याज्जीविताच्च निराशकः ।
भविष्यति हते कर्णे कृष्ण सत्यं ब्रवीमि ते ॥ १३ ॥

'श्रीकृष्ण ! मैं आपसे सच्ची बात कहता हूँ। आज कर्णका वध हो जानेपर दुर्योधन अपने राज्य और जीवन दोनोंसे निराश हो जायगा ॥ १३ ॥

अद्य दृष्ट्वा मया कर्णं शरैर्विशकलीकृतम् ।
स्मरतां तव वाक्यानि शमं प्रति जनेश्वरः ॥ १४ ॥

'आज मेरे बाणोंसे कर्णके शरीरको टूक-टूक हुआ देखकर राजा दुर्योधन सन्धिके लिये कहे हुए आपके वचनोंका स्मरण करे ॥ १४ ॥

अद्यासौ सौबलः कृष्ण ग्लहाञ्जानातु वै शरान् ।
दुरोदरं च गाण्डीवं मण्डलं च रथं प्रति ॥ १५ ॥

'श्रीकृष्ण ! आज सुबलपुत्र जुआरी शकुनिको यह मालूम हो जाय कि मेरे बाण ही दाँव हैं, गाण्डीव धनुष ही पासा है और मेरा रथ ही मण्डल (चौपड़के खाने) है ॥

अद्य कुन्तीसुतस्याहं दृढं राज्ञः प्रजागरम् ।
व्यपनेष्यामि गोविन्द हत्वा कर्णं शितैः शरैः ॥ १६ ॥

'गोविन्द ! आज मैं अपने पैने बाणोंसे कर्णको मारकर कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरके चिन्ताजनित जागरणके स्थायी रोगको दूर कर दूँगा ॥ १६ ॥

अद्य कुन्तीसुतो राजा हते सूतसुते मया ।
सुप्रहृष्टमनाः प्रीतश्चिरं सुखमवाप्स्यति ॥ १७ ॥

'आज कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर मेरेद्वारा सूतपुत्र कर्णके मारे जानेपर प्रसन्नचित्त हो दीर्घकालके लिये संतुष्ट एवं सुखी हो जायँगे ॥ १७ ॥

अद्य चाहमनाधृष्यं केशवाप्रतिमं शरम् ।
उत्स्रक्ष्यामीह यः कर्णं जीविताद् भ्रंशयिष्यति ॥ १८ ॥

'आज मैं ऐसा अनुपम और अजेय बाण छोड़ूँगा, जो कर्णको उसके प्राणोंसे वञ्चित कर देगा ॥ १८ ॥

यस्य चैतद् व्रतं मह्यं वधे किल दुरात्मनः ।
पादौ नधावये तावद् यावद्धन्यां न फाल्गुनम् ॥ १९ ॥
मृषा कृत्वा व्रतं तस्य पापस्य मधुसूदन ।
पातयिष्ये रथात् कायं शरैः संनतपर्वभिः ॥ २० ॥

'मधुसूदन ! जिस दुरात्माने मेरे वधके लिये यह व्रत लिया है कि जबतक अर्जुनको मार न दूँगा, तबतक दूसरों-से पैर न धुलाऊँगा। उस पापीके इस व्रतको मिथ्या करके झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा उसके इस शरीरको रथसे नीचे गिरा दूँगा ॥ १९-२० ॥

योऽसौ रणे नरं नान्यं पृथिव्यामनुमन्यते ।
तस्याद्य सूतपुत्रस्य भूमिः पास्यति शोणितम् ॥ २१ ॥

'जो भूमण्डलमें दूसरे किसी पुरुषको रणभूमिमें अपने समान नहीं मानता है, आज यह पृथ्वी उस सूतपुत्रके रक्त-का पान करेगी ॥ २१ ॥

अपतिर्ह्यसि कृष्णेति सूतपुत्रो यदब्रवीत् ।
धृतराष्ट्रमते कर्णः श्लाघमानः स्वकान् गुणान् ॥ २२ ॥
अनृतं तत् करिष्यन्ति मामका निशिताः शराः ।
आशीविषा इव क्रुद्धास्तस्य पास्यन्ति शोणितम् ॥ २३ ॥

'सूतपुत्र कर्णने धृतराष्ट्रके मतमें होकर अपने गुणोंकी प्रशंसा करते हुए जो द्रौपदीसे यह कहा था कि 'कृष्णे ! तू पतिहीन है' उसके इस कथनको मेरे तीखे बाण असत्य कर दिखायेंगे और क्रोधमें भरे हुए विषधर सर्पोंके समान उसके रक्तका पान करेंगे ॥ २२-२३ ॥

मया हस्तवता मुक्ता नाराचा वैद्युतत्विषः ।
गाण्डीवसृष्टा दास्यन्ति कर्णस्य परमां गतिम् ॥ २४ ॥

'मैं बाण चलानेमें सिद्धहस्त हूँ। मेरेद्वारा गाण्डीव धनुषसे छोड़े गये बिजलीके समान चमकते हुए नाराच कर्णको परम गति प्रदान करेंगे ॥ २४ ॥

अद्य तप्स्यति राधेयः पाञ्चालीं यत्तदाब्रवीत् ।
सभामध्ये वचः क्रूरं कुत्सयन् पाण्डवान् प्रति ॥ २५ ॥

'राधापुत्र कर्णने भरी सभामें पाण्डवोंकी निन्दा करते हुए द्रौपदीसे जो क्रूरतापूर्ण वचन कहा था, उसके लिये उसे बड़ा पश्चात्ताप होगा ॥ २५ ॥

ये वै षण्ढतिलास्तत्र भवितारोऽद्य ते तिलाः ।
हते वैकर्तने कर्णे सूतपुत्रे दुरात्मनि ॥ २६ ॥

'जो पाण्डव वहाँ थोथे तिलोंके समान नपुंसक कहे गये थे, वे दुरात्मा सूतपुत्र वैकर्तन कर्णके मारे जानेपर आज अच्छे तिल और शूरवीर सिद्ध होंगे ॥ २६ ॥

अहं वः पाण्डुपुत्रेभ्यस्त्रास्यामीति यदब्रवीत्।
धृतराष्ट्रसुतान् कर्णः श्लाघमानोऽऽत्मनो गुणान्॥ २७॥
अनृतं तत् करिष्यन्ति मामका निशिताः शराः।
उद्योगः पाण्डुपुत्राणां समाप्तिमुपयास्यति ॥ २८॥

'अपने गुणोंकी प्रशंसा करते हुए सूतपुत्र कर्णने धृतराष्ट्रके पुत्रोंसे जो यह कहा था कि 'मैं पाण्डवोंसे तुम्हारी रक्षा करूँगा' उसके 'इस कथनको मेरे तीखे बाण असत्य कर देंगे और पाण्डवोंका युद्धविषयक उद्योग समाप्त हो जायगा ॥ २७-२८ ॥

हन्ताहं पाण्डवान् सर्वान् सपुत्रानिति योऽब्रवीत्।
तमद्य कर्ण हन्तास्मि मिषतां सर्वधन्विनाम् ॥ २९॥

'जिसने यह कहा था कि मैं 'पुत्रोंसहित समस्त पाण्डवोंको मार डालूँगा' उस कर्णको आज समस्त धनुर्धरोंके देखते-देखते मैं नष्ट कर दूँगा ॥ २९ ॥

यस्य वीर्यं समाश्रित्य धार्तराष्ट्रो महामनाः।
अवामन्यत दुर्बुद्धिर्नित्यमस्मान् दुरात्मवान् ॥ ३०॥
हत्वाहं कर्णमाजौ हि तोषयिष्यामि भ्रातरम्।

'जिसके बल-पराक्रमका भरोसा करके महामनस्वी दुर्बुद्धि एवं दुरात्मा दुर्योधन सदा हमलोगोंका अपमान करता आया है, उस कर्णका आज युद्धस्थलमें वध करके मैं अपने भाई युधिष्ठिरको संतुष्ट करूँगा ॥ ३०½ ॥

शरान् नानाविधान् मुक्त्वा त्रासयिष्यामि शात्रवान्।
आकर्णमुक्तैरिषुभिर्यमराष्ट्रविवर्धनैः ॥ ३१॥
भूमिशोभां करिष्यामि पातितै रथकुञ्जरैः।

'नाना प्रकारके बाणोंका प्रहार करके मैं शत्रुसैनिकोंको भयभीत कर दूँगा। धनुषको कानतक खींचकर छोड़े गये यमराष्ट्रवर्धक बाणोंद्वारा धराशायी किये गये रथों और हाथियोंसे रणभूमिकी शोभा बढ़ाऊँगा ॥ ३१½ ॥

तत्राहं वै महासंख्ये संपन्नं युद्धदुर्मदम् ॥ ३२॥
अद्य कर्णमहं घोरं सूदयिष्यामि सायकैः।

'मैं महासमरमें शक्तिसम्पन्न रणदुर्मद एवं भयंकर कर्णको आज अपने बाणोंद्वारा मार डालूँगा ॥ ३२½ ॥

अद्य कर्णे हते कृष्ण धार्तराष्ट्राः सराजकाः ॥ ३३॥
विद्रवन्तु दिशो भीताः सिंहत्रस्ता मृगा इव।

'श्रीकृष्ण ! आज कर्णके मारे जानेपर राजासहित धृतराष्ट्रके सभी पुत्र सिंहसे डरे हुए मृगोंके समान भयभीत हो सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग जायँ ॥ ३३½ ॥

अद्य दुर्योधनो राजा आत्मानं चानुशोचताम्॥ ३४॥
हते कर्णे मया संख्ये सपुत्रे ससुहृज्जने।

'आज युद्धस्थलमें पुत्रों और सुहृदोंसहित कर्णके मेरे द्वारा मारे जानेपर राजा दुर्योधन अपने लिये निरन्तर शोक करे॥

अद्य कर्णं हतं दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रोऽत्यमर्षणः ॥ ३५॥
जानातु मां रणे कृष्ण प्रवरं सर्वधन्विनाम्।

'श्रीकृष्ण ! अमर्षशील दुर्योधन आज कर्णको रणभूमिमें मारा गया देख मुझे सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ समझ ले ॥

सपुत्रपौत्रं सामात्यं सभृत्यं च निराशिषम्॥३६॥
अद्य राज्ये करिष्यामि धृतराष्ट्रं जनेश्वरम्।

'मैं आज ही पुत्र, पौत्र, मन्त्री और सेवकोंसहित राजा धृतराष्ट्रको राज्यकी ओरसे निराश कर दूँगा ॥ ३६½ ॥

अद्य कर्णस्य चक्राङ्गाः क्रव्यादाश्च पृथग्विधाः॥ ३७॥
शरैश्छिन्नानि गात्राणि विहरिष्यन्ति केशव।

'केशव ! आज चक्रवाक तथा भिन्न-भिन्न मांसभोजी पक्षी बाणोंसे कटे हुए कर्णके अङ्गोंको उठा ले जायँगे॥

अद्य राधासुतस्याहं संग्रामे मधुसूदन ॥ ३८॥
शिरश्छेत्स्यामि कर्णस्य मिषतां सर्वधन्विनाम्।

'मधुसूदन ! आज संग्राममें समस्त धनुर्धरोंके देखते-देखते मैं राधापुत्र कर्णका मस्तक काट डालूँगा ॥ ३८½ ॥

अद्य तीक्ष्णैर्विपाठैश्च क्षुरैश्च मधुसूदन ॥ ३९॥
रणे छेत्स्यामि गात्राणि राधेयस्य दुरात्मनः।

'श्रीकृष्ण ! आज तीखे विपाठों और क्षुरोंसे रणभूमिमें दुरात्मा राधापुत्रके अङ्गोंको काट डालूँगा ॥ ३९½ ॥

अद्य राजा महत् कृच्छ्रं संत्यक्ष्यति युधिष्ठिरः॥ ४०॥
संतापं मानसं वीरश्चिरसम्भृतमात्मनः।

'आज वीर राजा युधिष्ठिर महान् कष्ट और अपने चिर-संचित मानसिक संतापसे छुटकारा पा जायँगे ॥ ४०½ ॥

अद्य केशव राधेयमहं हत्वा सबान्धवम् ॥ ४१॥
नन्दयिष्यामि राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम्।

'केशव ! आज मैं बन्धु-बान्धवोंसहित राधापुत्रको मारकर धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरको आनन्दित करूँगा॥४१½॥

अद्याहमनुगान् कृष्ण कर्णस्य कृपणान् युधि ॥ ४२॥
हन्ता ज्वलनसंकाशैः शरैः सर्पविषोपमैः।

'श्रीकृष्ण ! आज मैं युद्धस्थलमें कर्णके पीछे चलनेवाले दीन-हीन सैनिकोंको सर्पविष और अग्निके समान बाणोंद्वारा भस्म कर डालूँगा ॥ ४२½ ॥

अद्याहं हेमकवचैराबद्धमणिकुण्डलैः ॥ ४३॥
संस्तरिष्यामि गोविन्द वसुधां वसुधाधिपैः।

'गोविन्द ! आज मैं सुवर्णमय कवच और मणिमय कुण्डल धारण करनेवाले भूपतियोंकी लाशोंसे रणभूमिको पाट दूँगा॥ ४३½ ॥

अद्याभिमन्योः शत्रूणां सर्वेषां मधुसूदन ॥ ४४॥
प्रमथिष्यामि गात्राणि शिरांसि च शितैः शरैः।

'मधुसूदन ! आज पैने बाणोंसे मैं अभिमन्युके समस्त शत्रुओंके शरीरों और मस्तकोंको मथ डालूँगा ॥ ४४½ ॥

अद्य निर्धार्तराष्ट्रां च भ्रात्रे दास्यामि मेदिनीम् ॥४५॥
निरर्जुनां वा पृथिवीं केशवानुचरिष्यसि।

'केशव ! या तो आज इस पृथ्वीको धृतराष्ट्रपुत्रोंसे

सूनी करके अपने भाईके अधिकारमें दे दूँगा या आप अर्जुनरहित पृथ्वीपर विचरेंगे ॥ ४५½ ॥

अद्याहमनृणः कृष्ण भविष्यामि धनुर्भृताम् ॥ ४६ ॥
कोपस्य च कुरूणां च शराणां गाण्डिवस्य च ।

'श्रीकृष्ण ! आज मैं सम्पूर्ण धनुर्धरोंके, क्रोधके, कौरवोंके, बाणोंके तथा गाण्डीव धनुषके भी ऋणसे मुक्त हो जाऊँगा ॥

अद्य दुःखमहं मोक्ष्ये त्रयोदशसमार्जितम् ॥ ४७ ॥
हत्वा कर्णं रणे कृष्ण शम्बरं मघवानिव ।

'श्रीकृष्ण ! जैसे इन्द्रने शम्बरासुरका वध किया था, उसी प्रकार मैं रणभूमिमें कर्णको मारकर आज तेरह वर्षोंसे संचित किये हुए दुःखका परित्याग कर दूँगा ॥ ४७½ ॥

अद्य कर्णे हते युद्धे सोमकानां महारथाः ॥ ४८ ॥
कृतं कार्यं च मन्यन्तां मित्रकार्येप्सवो युधि ।

'आज युद्धमें कर्णके मारे जानेपर मित्रके कार्यकी सिद्धि चाहनेवाले सोमकवंशी महारथी अपनेको कृतकार्य समझ लें ॥

न जाने च कथं प्रीतिः शैनेयस्याद्य माधव ॥ ४९ ॥
भविष्यति हते कर्णे मयि चापि जयाधिके ।

'माधव ! आज कर्णके मारे जाने और विजयके कारण मेरी प्रतिष्ठा बढ़ जानेपर न जाने शिनिपौत्र सात्यकिको कितनी प्रसन्नता होगी ? ॥ ४९½ ॥

अहं हत्वा रणे कर्णं पुत्रं चास्य महारथम् ॥ ५० ॥
प्रीतिं दास्यामि भीमस्य यमयोः सात्यकस्य च ।

'मैं रणभूमिमें कर्ण और उसके महारथी पुत्रको मारकर भीमसेन, नकुल, सहदेव तथा सात्यकिको प्रसन्न करूँगा ॥

धृष्टद्युम्नशिखण्डिभ्यां पञ्चालानां च माधव ॥ ५१ ॥
अद्यानृण्यं गमिष्यामि हत्वा कर्णं महाहवे ।

'माधव ! आज महासमरमें कर्णका वध करके मैं धृष्टद्युम्न, शिखण्डी तथा पाञ्चालोंके ऋणसे छुटकारा पा जाऊँगा ॥

अद्य पश्यन्तु संग्रामे धनंजयममर्षणम् ॥ ५२ ॥
युध्यन्तं कौरवान् संख्ये घातयन्तं च सूतजम् ।

'आज समस्त सैनिक देखें कि संग्रामभूमिमें अमर्षशील धनंजय किस प्रकार कौरवोंसे युद्ध करता और सूतपुत्र कर्णको मारता है ॥ ५२½ ॥

भवत्सकाशे वक्ष्ये च पुनरेवात्मसंस्तवम् ॥ ५३ ॥
धनुर्वेदे मत्समो नास्ति लोके
पराक्रमे वा मम कोऽस्ति तुल्यः ।
को वाप्यन्यो मत्समोऽस्ति क्षमायां-
स्तथा क्रोधे सदृशोऽन्यो न मेऽस्ति ॥५४॥

'मैं आपके निकट पुनः अपनी प्रशंसासे भरी हुई बात कहता हूँ, धनुर्वेदमें मेरी समानता करनेवाला इस संसारमें दूसरा कोई नहीं है । फिर पराक्रममें मेरे-जैसा कौन है ? मेरे समान क्षमाशील भी दूसरा कौन है तथा क्रोधमें भी मेरे-जैसा दूसरा कोई नहीं है ॥ ५३-५४ ॥

अहं धनुष्मान् ससुरासुरांश्च
सर्वाणि भूतानि च सङ्गतानि ।
स्वबाहुवीर्याद् गमये पराभवं
मत्पौरुषं विद्धि परं परेभ्यः ॥ ५५ ॥

'मैं धनुष लेकर अपने बाहुबलसे एक साथ आये हुए देवताओं, असुरों तथा सम्पूर्ण प्राणियोंको परास्त कर सकता हूँ । मेरे पुरुषार्थको उत्कृष्टसे भी उत्कृष्ट समझो ॥ ५५ ॥

शरार्चिषा गाण्डिवेनाहमेकः
सर्वान् कुरून् बाह्लिकांश्चाभिहत्य ।
हिमात्यये कक्षगतो यथाग्नि-
स्तथा दहेयं सगणान् प्रसह्य ॥ ५६ ॥

'मैं अकेला ही बाणोंकी ज्वालासे युक्त गाण्डीव धनुषके द्वारा समस्त कौरवों और बाह्लिकोंको दल-बलसहित मारकर ग्रीष्मऋतुमें सूखे काठमें लगी हुई आगके समान सबको भस्म कर डालूँगा ॥ ५६ ॥

पाणौ पृषत्का लिखिता ममैते
धनुश्च दिव्यं विततं सबाणम् ।
पादौ च मे सरथौ सध्वजौ च
न मादृशं युद्धगतं जयन्ति ॥ ५७ ॥

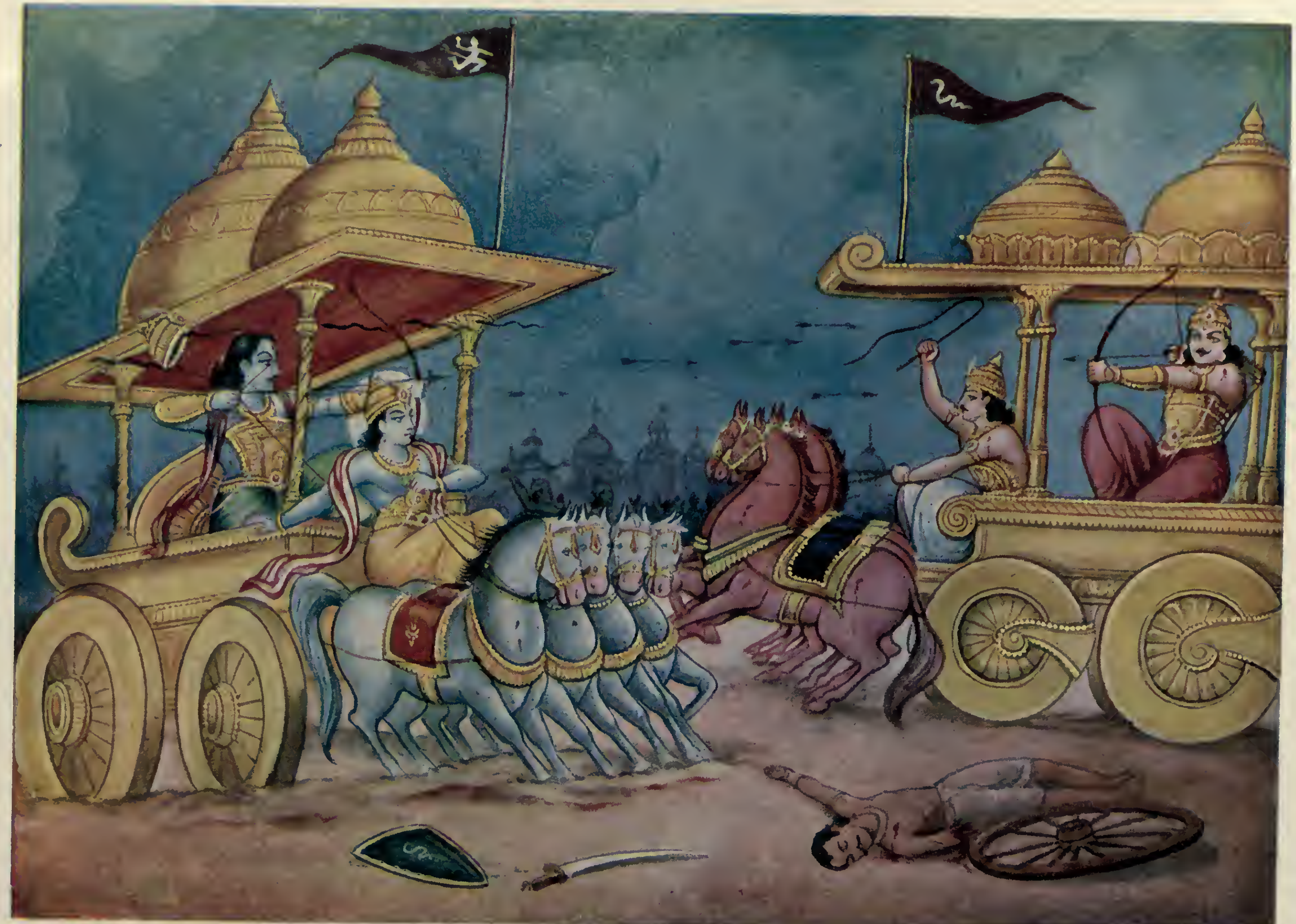
'मेरे एक हाथमें बाणके चिह्न हैं और दूसरेमें फैले हुए बाणसहित दिव्य धनुषकी रेखा है । इसी प्रकार मेरे पैरोंमें भी रथ और ध्वजाके चिह्न हैं । मेरे-जैसे लक्षणोंवाला योद्धा जब युद्धमें उपस्थित होता है, तब उसे शत्रु जीत नहीं सकते हैं' ॥ ५७ ॥

इत्येवमुक्त्वार्जुन एकवीरः
क्षिप्रं रिपुघ्नः क्षतजोपमाक्षः ।
भीमं मुमुक्षुः समरे प्रयातः
कर्णस्य कायाच्च शिरो जिहीर्षुः ॥ ५८ ॥

भगवान्‌से ऐसा कहकर अद्वितीय वीर शत्रुसूदन अर्जुन क्रोधसे लाल आँखें किये समरभूमिमें भीमसेनको संकटसे छुड़ाने और कर्णके मस्तकको धड़से अलग करनेके लिये शीघ्रतापूर्वक वहाँसे चल दिये ॥ ५८ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अर्जुनवाक्ये चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें अर्जुनवाक्यविषयक चौहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७४ ॥



भगवान्के द्वारा अर्जुनकी सर्पमुख बाणसे रक्षा

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

दोनों पक्षोंकी सेनाओंमें द्वन्द्वयुद्ध तथा सुषेणका वध

धृतराष्ट्र उवाच

समागमे पाण्डवसृंजयानां
महाभये मामकानामगाधे ।
धनंजये तात रणाय याते
कर्णेन तद् युद्धमथोऽत्र कीदृक् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—तात संजय ! मेरे पुत्रों तथा पाण्डवों और सृञ्जयोंमें पहलेसे ही अगाध एवं महाभयंकर संग्राम छिड़ा हुआ था। फिर जब धनंजय भी वहाँ कर्णके साथ युद्धके लिये जा पहुँचे, तब उस युद्धका स्वरूप कैसा हो गया ? ॥ १ ॥

संजय उवाच

तेषामनीकानि बृहद्ध्वजानि
रणे समृद्धानि समागतानि ।
गर्जन्ति भेरीनिनदोन्मुखानि
नादैर्यथा मेघगणास्तपान्ते ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! ग्रीष्म ऋतु बीत जानेपर जैसे मेघसमूह गर्जना करने लगते हैं, उसी प्रकार दोनों पक्षोंकी सेनाएँ एकत्र हो रणभूमिमें गर्जना करने लगीं। उनके भीतर बड़े-बड़े ध्वज फहरा रहे थे और सभी सैनिक अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न थे। रणभेरियोंकी ध्वनि उन्हें युद्धके लिये उत्सुक किये हुए थी ॥ २ ॥

महागजाभ्राकुलमस्त्रतोयं
वादित्रनेमीतलशब्दवच्च ।
हिरण्यचित्रायुधविद्युतं च
शरासिनाराचमहास्त्रधारम् ॥ ३ ॥
तद् भीमवेगं रुधिरौघवाहि
खड्गाकुलं क्षत्रियजीवघाति ।
अनार्तवं क्रूरमनिष्टवर्षं
बभूव तत् संहरणं प्रजानाम् ॥ ४ ॥

क्रमशः वह क्रूरतापूर्ण युद्ध बिना ऋतुकी अनिष्टकारी वर्षाके समान प्रजाजनोंका संहार करने लगा। बड़े-बड़े हाथियोंका समूह मेघोंकी घटा बनकर वहाँ छाया हुआ था। अस्त्र ही जल थे, वाद्यों और पहियोंकी घर्घराहटका शब्द ही मेघ-गर्जनके समान प्रतीत होता था। सुवर्णजटित विचित्र आयुध विद्युत्‌के समान प्रकाशित होते थे। बाण, खड्ग और नाराच आदि बड़े-बड़े अस्त्रोंकी धारावाहिक वृष्टि हो रही थी। धीरे-धीरे उस युद्धका वेग बड़ा भयंकर हो उठा, रक्तका स्रोत बह चला। तलवारोंकी खचाखच मार होने लगी, जिससे क्षत्रियोंके प्राणोंका संहार होने लगा ॥ ३-४ ॥

एकं रथं सम्परिवार्य मृत्युं
नयन्त्यनेके च रथाः समेताः ।
एकस्तथैकं रथिनं रथाग्र्यां-
स्तथा रथश्चापि रथाननेकान् ॥ ५ ॥

बहुत-से रथी एक साथ मिलकर किसी एक रथीको घेर लेते और उसे यमलोक पहुँचा देते थे। इसी प्रकार एक रथी एक रथीको और अनेक श्रेष्ठ रथियोंको भी यमलोकका पथिक बना देता था ॥ ५ ॥

रथं ससूतं सहयं च कश्चित्
कश्चिद्रथी मृत्युवशं निनाय ।
निनाय चाप्येकगजेन कश्चिद्
रथान् बहून् मृत्युवशे तथाश्वान् ॥ ६ ॥

किसी रथीने किसी एक रथीको घोड़ों और सारथिसहित मौतके हवाले कर दिया तथा किसी दूसरे वीरने एकमात्र हाथीके द्वारा बहुत-से रथियों और घोड़ोंको मौतका ग्रास बना दिया ॥ ६ ॥

रथान् ससूतान् सहयान् गजांश्च
सर्वानरीन् मृत्युवशं शरौघैः ।
निन्ये हयांश्चैव तथा ससादीन्
पदातिसङ्घांश्च तथैव पार्थः ॥ ७ ॥

उस समय अर्जुनने सारथिसहित रथों, घोड़ोंसहित हाथियों, समस्त शत्रुओं, सवारोंसहित घोड़ों तथा पैदलसमूहोंको भी अपने बाणसमूहोंद्वारा मृत्युके अधीन कर दिया ॥

कृपः शिखण्डी च रणे समेतौ
दुर्योधनं सात्यकिरभ्यगच्छत् ।
श्रुतश्रवा द्रोणपुत्रेण सार्धं
युधामन्युश्चित्रसेनेन सार्धम् ॥ ८ ॥

उस रणभूमिमें कृपाचार्य और शिखण्डी एक दूसरेसे भिड़े थे, सात्यकिने दुर्योधनपर धावा किया था, श्रुतश्रवा द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके साथ जूझ रहा था और युधामन्यु चित्रसेनके साथ युद्ध कर रहे थे ॥ ८ ॥

कर्णस्य पुत्रं तु रथी सुषेणं
समागतं संजयश्चोत्तमौजाः ।
गान्धारराजं सहदेवः क्षुधार्तो
महर्षभं सिंह इवाभ्यधावत् ॥ ९ ॥

संजयवंशी रथी उत्तमौजाने अपने सामने आये हुए कर्णपुत्र सुषेणपर आक्रमण किया था। जैसे भूखसे पीड़ित हुआ सिंह किसी साँड़पर धावा करता है, उसी प्रकार सहदेव गान्धारराज शकुनिपर टूट पड़े थे ॥ ९ ॥

शतानीको नाकुलिः कर्णपुत्रं
युवा युवानं वृषसेनं शरौघैः ।
समार्पयत् कर्णपुत्रश्च शूरः
पाञ्चालेयं शरवर्षैरनेकैः ॥ १० ॥

नकुलपुत्र नवयुवक शतानीकने कर्णके नौजवान बेटे वृषसेनको अपने बाणसमूहोंसे घायल कर दिया तथा शूरवीर कर्णपुत्र वृषसेनने भी अनेक बाणोंकी वर्षा करके पाञ्चाली-कुमार शतानीकको गहरी चोट पहुँचायी ॥ १० ॥

रथर्षभः कृतवर्माणमार्छ-
न्माद्रीपुत्रो नकुलश्चित्रयोधी।
पञ्चालानामधिपो याज्ञसेनिः
सेनापतिः कर्णमार्छत् ससैन्यम् ॥ ११ ॥

विचित्र युद्ध करनेवाले, रथियोंमें श्रेष्ठ माद्रीकुमार नकुलने कृतवर्मापर चढ़ाई की। द्रुपदकुमार पाञ्चालराज सेनापति धृष्टद्युम्नने सेनासहित कर्णपर आक्रमण किया ॥११॥

दुःशासनो भारत भारती च
संशप्तकानां पृतना समृद्धा।
भीमं रणे शस्त्रभृतां वरिष्ठं
भीमं समार्छत्तमसह्यवेगम् ॥ १२ ॥

भारत ! दुःशासन, कौरवसेना और संशप्तकोंकी समृद्धि-शालिनी वाहिनीने असह्य वेगशाली, शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ तथा युद्धमें भयंकर प्रतीत होनेवाले भीमसेनपर चढ़ाई की ॥१२॥

कर्णात्मजं तत्र जघान वीर-
स्तथाच्छिनच्चोत्तमौजाः प्रसह्य।
तस्योत्तमाङ्गं निपपात भूमौ
निनादयद् गां निनदेन खं च ॥ १३ ॥

वीर उत्तमौजाने हठपूर्वक वहाँ कर्णपुत्र सुषेणपर घातक प्रहार किया और उसका मस्तक काट डाला। सुषेणका वह मस्तक अपने आर्तनादसे आकाश और पृथ्वीको प्रतिध्वनित करता हुआ भूमिपर गिर पड़ा ॥ १३ ॥

सुषेणशीर्षं पतितं पृथिव्यां
विलोक्य कर्णोऽथ तदार्तरूपः।
क्रोधाद्धयांस्तस्य रथं ध्वजं च
बाणैः सुधारैर्निशितैरकृन्तत् ॥ १४ ॥

सुषेणके मस्तकको पृथ्वीपर पड़ा देख कर्ण शोकसे आतुर हो उठा। उसने कुपित हो उत्तम धारवाले पैने बाणों-से उत्तमौजाके रथ, ध्वज और घोड़ोंको काट डाला ॥ १४॥

स तूत्तमौजा निशितैः पृषत्कै-
र्विव्याध खड्गेन च भास्वरेण।
पार्ष्णिं हयांश्चैव कृपस्य हत्वा
शिखण्डिवाहं स ततोऽध्यरोहत् ॥ १५ ॥

तब उत्तमौजाने तीखे बाणोंसे कर्णको बींध डाला और (जब कृपाचार्यने बाधा दी तब) चमचमाती हुई तलवारसे कृपाचार्यके पृष्ठरक्षकों और घोड़ोंको मारकर वह शिखण्डीके रथपर आरूढ़ हो गया ॥ १५ ॥

कृपं तु दृष्ट्वा विरथं रथस्थो
नैच्छच्छरैस्ताडयितुं शिखण्डी।
तं द्रौणिरावार्य रथं कृपस्य
समुज्जह्रे पङ्कगतां यथा गाम् ॥ १६ ॥

कृपाचार्यको रथहीन देख रथपर बैठे हुए शिखण्डीने उनपर बाणोंसे आघात करनेकी इच्छा नहीं की। तब अश्वत्थामाने शिखण्डीको रोककर कीचड़में फँसी हुई गायके समान कृपाचार्यके रथका उद्धार किया ॥ १६ ॥

हिरण्यवर्मा निशितैः पृषत्कै-
स्तवात्मजानामनिलात्मजो वै।
अतापयत् सैन्यमतीव भीमः
काले शुचौ मध्यगतो यथार्कः ॥ १७ ॥

जैसे आषाढ़मासमें दोपहरका सूर्य अत्यन्त ताप प्रदान करता है, उसी प्रकार सुवर्णकवचधारी वायुपुत्र भीमसेन आपके पुत्रोंकी सेनाको तीखे बाणोंद्वारा अधिक संताप देने लगे ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलद्वन्द्वयुद्धे पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलद्वन्द्वयुद्धविषयक पचहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमोऽध्यायः

भीमसेनका अपने सारथि विशोकसे संवाद

संजय उवाच

अथ त्विदानीं तुमुले विमर्दे
द्विषद्भिरेको बहुभिः समावृतः।
महारणे सारथिमित्युवाच
भीमश्चमूं वाहय धार्तराष्ट्रीम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! उस समय उस घमासान युद्धमें बहुत-से शत्रुओंद्वारा अकेले घिरे हुए भीमसेन महासमर-में अपने सारथिसे बोले—'सारथे ! अब तुम रथको धृतराष्ट्र-पुत्रोंकी सेनाकी ओर ले चलो ॥ १ ॥

त्वं सारथे याहि जवेन वाहै-
र्नयाम्येतान् धार्तराष्ट्रान् यमाय।
संचोदितो भीमसेनेन चैवं
स सारथिः पुत्रबलं त्वदीयम् ॥ २ ॥
प्रायात् ततः सत्वरमुग्रवेगो
यतो भीमस्तद् बलं गन्तुमैच्छत्।
ततोऽपरे नागरथाश्वपत्तिभिः
प्रत्युद्ययुस्तं कुरवः समन्तात् ॥ ३ ॥

'सूत ! तुम अपने वाहनोंद्वारा वेगपूर्वक आगे बढ़ो। जिससे इन धृतराष्ट्रपुत्रोंको मैं यमलोक भेज सकूँ।' भीमसेन-के इस प्रकार आदेश देनेपर सारथि तुरंत ही भयंकर वेगसे युक्त हो आपके पुत्रोंकी सेनाकी ओर, जिधर भीमसेन जाना चाहते थे, चल दिया। तब अन्यान्य कौरवोंने हाथी, घोड़े,

रथ और पैदलोंकी विशाल सेना साथ ले सब ओरसे उनपर आक्रमण किया ॥ २-३ ॥

भीमस्य वाहाग्र्यमुदारवेगं
समन्ततो बाणगणैर्निजघ्नुः ।
ततः शरानापततो महात्मा
चिच्छेद बाणैस्तपनीयपुङ्खैः ॥ ४ ॥

वे भीमसेनके अत्यन्त वेगशाली श्रेष्ठ रथपर चारों ओरसे बाणसमूहोंद्वारा प्रहार करने लगे; परंतु महामनस्वी भीमसेनने अपने ऊपर आते हुए उन बाणोंको सुवर्णमय पंखवाले बाणोंद्वारा काट डाला ॥ ४ ॥

ते वै निपेतुस्तपनीयपुङ्खा
द्विधा त्रिधा भीमशरैर्निकृत्ताः ।
ततो राजन् नागरथाश्वयूनां
भीमाहतानां वरराजमध्ये ॥ ५ ॥
घोरो निनादः प्रबभौ नरेन्द्र
वज्राहतानामिव पर्वतानाम् ।

वे सोनेकी पाँखवाले बाण भीमसेनके बाणोंसे दो-दो तीन-तीन टुकड़ोंमें कटकर गिर गये । राजन् ! नरेन्द्र ! तत्पश्चात् श्रेष्ठ राजाओंकी मण्डलीमें भीमसेनके द्वारा मारे गये हाथियों, रथों, घोड़ों और पैदल युवकोंका भयंकर आर्तनाद प्रकट होने लगा, मानो वज्रके मारे हुए पहाड़ फट पड़े हों ॥५½ ॥

ते वध्यमानाश्च नरेन्द्रमुख्या
निर्भिद्यन्तो भीमशरप्रवेकैः ॥ ६ ॥
भीमं समन्तात् समरेऽभ्यरोहन्
वृक्षं शकुन्ता इव जातपक्षाः ।

जैसे जिनके पंख निकल आये हैं, वे पक्षी सब ओरसे उड़कर किसी वृक्षपर चढ़ बैठते हैं, उसी प्रकार भीमसेनके उत्तम बाणोंसे आहत और विदीर्ण होनेवाले प्रधान-प्रधान नरेश समराङ्गणमें सब ओरसे भीमसेनपर ही चढ़ आये ॥६½॥

ततोऽभियाते तव सैन्ये स भीमः
प्रादुश्चक्रे वेगमनन्तवेगः ॥ ७ ॥
यथान्तकाले क्षपयन् दिधक्षु-
र्भूतान्तकृत् काल इवात्तदण्डः ।

आपकी सेनाके आक्रमण करनेपर अनन्त वेगशाली भीमसेनने अपना महान् वेग प्रकट किया । ठीक उसी तरह, जैसे प्रलयकालमें समस्त प्राणियोंका संहार करनेवाला काल हाथमें दण्ड लिये सबको नष्ट और दग्ध करनेकी इच्छासे असीम वेग प्रकट करता है ॥ ७½ ॥

तस्यातिवेगस्य रणेऽतिवेगं
नाशक्नुवन् वारयितुं त्वदीयाः ॥ ८ ॥
व्यात्ताननस्यापततो यथैव
कालस्य काले हरतः प्रजा वै ।

अत्यन्त वेगशाली भीमसेनके महान् वेगको आपके सैनिक रणभूमिमें रोक न सके । जैसे प्रलयकालमें मुँह बाकर आक्रमण करनेवाले प्रजासंहारकारी कालके वेगको कोई नहीं रोक सकता ॥ ८½ ॥

ततो बलं भारत भारतानां
प्रदह्यमानं समरे महात्मना ॥ ९ ॥
भीतं दिशोऽकीर्यत भीमनुन्नं
महानिलेनाभ्रगणा यथैव ।

भारत ! तदनन्तर समराङ्गणमें महामना भीमसेनके द्वारा दग्ध होती हुई कौरवसेना भयभीत हो सम्पूर्ण दिशाओंमें बिखर गयी । जैसे आँधी बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार भीमसेनने आपके सैनिकोंको मार भगाया था ॥ ९½ ॥

ततो धीमान् सारथिमब्रवीद् बली
स भीमसेनः पुनरेव हृष्टः ॥ १० ॥
सूताभिजानीहि स्वकान् परान् वा
रथान् ध्वजांश्चापततः समेतान् ।
युद्ध्यन् ह्यहं नाभिजानामि किंचि-
न्मा सैन्यं स्वं छादयिष्ये पृषत्कैः ॥ ११ ॥

तत्पश्चात् बलवान् और बुद्धिमान् भीमसेन हर्षसे उल्लसित हो अपने सारथिसे पुनः इस प्रकार बोले—'सूत ! ये जो बहुत-से रथ और ध्वज एक साथ इधर बढ़े आ रहे हैं, उन्हें पहचानो तो सही ! ये अपने पक्षके हैं या शत्रुपक्षके ? क्योंकि युद्ध करते समय मुझे अपने-परायेका ज्ञान नहीं रहता, कहीं ऐसा न हो कि अपनी ही सेनाको बाणोंसे आच्छादित कर डालूँ ॥ १०-११ ॥

अरीन् विशोकाभिनिरीक्ष्य सर्वतो
मनस्तु चिन्ता प्रदुनोति मे भृशम् ।
राजाऽऽतुरो नागमद् यत् किरीटी
बहूनि दुःखान्यभियातोऽस्मि सूत ॥ १२ ॥

'विशोक ! सम्पूर्ण दिशाओंमें शत्रुओंको देखकर उठी हुई चिन्ता मेरे हृदयको अत्यन्त संतप्त कर रही है; क्योंकि राजा युधिष्ठिर बाणोंके आघातसे पीड़ित हैं और किरीटधारी अर्जुन अभीतक उनका समाचार लेकर लौटे नहीं । सूत ! इन सब कारणोंसे मुझे बहुत दुःख हो रहा है ॥ १२ ॥

एतद् दुःखं सारथे धर्मराजो
यन्मां हित्वा यातवाञ्शत्रुमध्ये ।
नैनं जीवं नाद्य जानाम्यजीवं
बीभत्सुं वा तन्ममाद्यातिदुःखम् ॥ १३ ॥

'सारथे ! पहले तो इस बातका दुःख हो रहा है कि धर्मराज मुझे छोड़कर स्वयं ही शत्रुओंके बीचमें चले गये । पता नहीं, वे अबतक जीवित हैं या नहीं ? अर्जुनका भी कोई समाचार नहीं मिला; इससे आज मुझे अधिक दुःख है ।

सोऽहं द्विषत्सैन्यमुदग्रकल्पं
विनाशयिष्ये परमप्रतीतः ।

पतन्निहत्याजिमध्ये समेतं
प्रीतो भविष्यामि सह त्वयाद्य ॥ १४ ॥

'अच्छा, अब मैं अत्यन्त विश्वस्त होकर शत्रुओंकी प्रचण्ड सेनाका विनाश करूँगा। यहाँ एकत्र हुई इस सेनाको युद्धस्थलमें नष्ट करके मैं तुम्हारे साथ ही आज प्रसन्नताका अनुभव करूँगा ॥ १४ ॥

सर्वास्तूणान् सायकानामवेक्ष्य
किं शिष्टं स्यात् सायकानां रथे मे।
का वा जातिः किं प्रमाणं च तेषां
ज्ञात्वा व्यक्तं तत् समाचक्ष्व सूत॥ १५ ॥
(कति वा सहस्राणि कति वा शतानि
ह्याचक्ष्व मे सारथे क्षिप्रमेव ॥

'सूत ! तुम मेरे रथपर रक्खे हुए बाणोंके सारे तरकसोंकी देख-भाल करके ठीक-ठीक समझकर मुझे स्पष्टरूपसे बताओ कि अब उनमें कितने बाण अवशिष्ट रह गये हैं ? किस-किस जातिके बाण बचे हैं और उनकी संख्या कितनी है ? सारथे ! शीघ्र बताओ, कौन बाण कितने हजार और कितने सौ शेष हैं ?' ॥ १५ ॥

विशोक उवाच

सर्वं विदित्वैवमहं वदामि
तवार्थसिद्धिप्रदमद्य वीर ॥
कैकेयकाम्बोजसुराष्ट्रबाह्लिका
म्लेच्छाश्च सुह्माः परतङ्गणाश्च।
मद्राश्च वङ्गा मगधाः कुलिन्दा
आनर्तकावर्तकाः पर्वतीयाः ॥
सर्वे गृहीतप्रवरायुधास्त्वां
संख्ये समावेष्ट्य ततो विनेदुः ॥)

विशोकने कहा--वीर ! मैं आज सब कुछ पता लगाकर आपके मनोरथकी सिद्धि करनेवाली बात बता रहा हूँ, कैकेय, काम्बोज, सौराष्ट्र, बाह्लिक, म्लेच्छ, सुह्म, परतङ्गण, मद्र, वङ्ग, मगध, कुलिन्द, आनर्त, आवर्त और पर्वतीय सभी योद्धा हाथोंमें श्रेष्ठ आयुध लिये आपको चारों ओरसे घेरकर युद्धस्थलमें शत्रुओंका सामना करनेके लिये गरज रहे हैं ॥

षण्मार्गणानामयुतानि वीर
क्षुराश्च भल्लाश्च तथायुताख्याः।
नाराचानां द्वे सहस्रे च वीर
त्रीण्येव च प्रदराणां स्म पार्थ ॥ १६ ॥

वीरवर ! अभी अपने पास साठ हजार मार्गण हैं, दस-दस हजार क्षुर और भल्ल हैं, दो हजार नाराच शेष हैं तथा पार्थ ! तीन हजार प्रदर बाकी रह गये हैं ॥ १६ ॥

अस्त्यायुधं पाण्डवेयावशिष्टं
न यद् वहेच्छकटं षड्गवीयम्।
एतद् विद्वन् मुञ्च सहस्रशोऽपि
गदासिबाहुद्रविणं च तेऽस्ति ॥ १७ ॥

प्रासाश्च मुद्गराः शक्तयस्तोमराश्च
मा भैषीस्त्वं सङ्क्षयादायुधानाम् ॥ १८ ॥

पाण्डुनन्दन ! अभी इतने आयुध शेष हैं कि छः बैलोंसे जुता हुआ छकड़ा भी उन्हें नहीं खींच सकता। विद्वन् ! इन सहस्रों अस्त्रोंका आप प्रयोग कीजिये। अभी तो आपके पास बहुत-सी गदाएँ, तलवारें और बाहुबलकी सम्पत्ति हैं। इसी प्रकार बहुतेरे प्रास, मुद्गर, शक्ति और तोमर बाकी बचे हैं। आप इन आयुधोंके समाप्त हो जानेके डरमें न रहिये १७-१८

भीमसेन उवाच

सूताद्यैनं पश्य भीमप्रयुक्तैः
संछिन्दद्भिः पार्थिवानां सुवेगैः।
छन्नं बाणैराहवं घोररूपं
नष्टादित्यं मृत्युलोकेन तुल्यम् ॥ १९ ॥

भीमसेन बोले— सूत ! आज इस युद्धस्थलकी ओर दृष्टिपात करो। भीमसेनके छोड़े हुए अत्यन्त वेगशाली बाणोंने राजाओंका विनाश करते हुए सारे रणक्षेत्रको आच्छादित कर दिया है, जिससे सूर्य भी अदृश्य हो गये हैं और यह भूमि यमलोकके समान भयंकर प्रतीत होती है ॥१९॥

अद्यैतद् वै विदितं पार्थिवानां
भविष्यति ह्याकुमारं च सूत।
निमग्नो वा समरे भीमसेन
एकः कुरून् वा समरे व्यजैषीत्॥ २० ॥

सूत ! आज बच्चोंसे लेकर बूढ़ोंतक समस्त भूपालोंको यह विदित हो जायगा कि भीमसेन समरसागरमें डूब गये अथवा उन्होंने अकेले ही समस्त कौरवोंको युद्धमें जीत लिया ॥२०॥

सर्वे संख्ये कुरवो निष्पतन्तु
मां वा लोकाः कीर्तयन्त्वाकुमारम्।
सर्वानेकस्तानहं पातयिष्ये
ते वा सर्वे भीमसेनं तुदन्तु ॥ २१ ॥

आज युद्धस्थलमें समस्त कौरव धराशायी हो जायँ अथवा बालकोंसे लेकर वृद्धोंतक सब लोग मुझ भीमसेनको ही रणभूमिमें गिरा हुआ बतावें ! मैं अकेला ही उन समस्त कौरवोंको मार गिराऊँगा अथवा वे ही सब लोग मुझ भीमसेनको पीड़ित करें ॥ २१ ॥

आशास्तारः कर्म चाप्युत्तमं ये
तन्मे देवाः केवलं साधयन्तु।
आयात्विहाद्यार्जुनः शत्रुघाती
शक्रस्तूर्णं यज्ञ इवोपहूतः ॥ २२ ॥

जो उत्तम कर्मोंका उपदेश देनेवाले हैं, वे देवता लोग मेरा केवल एक कार्य सिद्ध कर दें। जैसे यज्ञमें आवाहन करनेपर इन्द्रदेव तुरंत पदार्पण करते हैं, उसी प्रकार शत्रुघाती अर्जुन यहाँ शीघ्र ही आ पहुँचे ॥ २२ ॥

(पश्यस्व पश्यस्व विशोक मे त्वं
बलं परेषामभिघातभिन्नम्।

नानास्वरान् पश्य विमुच्य सर्वे
तथा द्रवन्ते बलिनो धार्तराष्ट्राः॥)

विशोक ! देखो, देखो, मेरा बल। मेरे आघातोंसे शत्रुओंकी सेना विदीर्ण हो उठी है। देखो, धृतराष्ट्रके सभी बलवान् पुत्र नाना प्रकारके आर्तनाद करते हुए भागने लगे हैं ॥

ईक्षस्वैतां भारतीं दीर्यमाणा-
मेते कस्माद् विद्रवन्ते नरेन्द्राः।
व्यक्तं धीमान् सव्यसाची नराग्र्यः
सैन्यं ह्येतच्छादयत्याशु बाणैः ॥ २३ ॥

सारथे ! इस कौरवसेनापर तो दृष्टिपात करो। इसमें भी दरार पड़ती जा रही है। ये राजालोग क्यों भाग रहे हैं ? इससे तो स्पष्ट जान पड़ता है कि बुद्धिमान् नरश्रेष्ठ अर्जुन आ गये। वे ही अपने बाणोंद्वारा शीघ्रतापूर्वक इस सेनाको आच्छादित कर रहे हैं ॥ २३ ॥

पश्य ध्वजांश्च द्रवतो विशोक
नागान् हयान् पत्तिसंघांश्च संख्ये।
रथान् विकीर्णाञ्शरशक्तिताडितान्
पश्यस्वैतान् रथिनश्चैव सूत ॥ २४ ॥

विशोक ! युद्धस्थलमें भागते हुए रथोंकी ध्वजाओं, हाथियों, घोड़ों और पैदलसमूहोंको देखो। सूत ! बाणों और शक्तियोंसे प्रताड़ित होकर बिखरे पड़े हुए इन रथों और रथियोंपर भी दृष्टिपात करो ॥ २४ ॥

आपूर्यते कौरवी चाप्यभीक्ष्णं
सेना ह्यसौ सुभृशं हन्यमाना।
धनंजयस्याशनितुल्यवेगै-
र्ग्रस्ता शरैः काञ्चनबर्हिवाजैः ॥ २५ ॥

अर्जुनके बाण वज्रके समान वेगशाली हैं। उनमें सोने और मयूरपिच्छके पंख लगे हैं। उन बाणोंद्वारा आक्रान्त हुई यह कौरवसेना अत्यन्त मार पड़नेके कारण बारंबार आर्तनाद कर रही है ॥ २५ ॥

एते द्रवन्ति स्म रथाश्वनागाः
पदातिसङ्घानतिमर्दयन्तः।
सम्मुह्यमानाः कौरवाः सर्व एव
द्रवन्ति नागा इव दाहभीताः ॥ २६ ॥

ये रथ, घोड़े और हाथी पैदलसमूहोंको कुचलते हुए भागे जा रहे हैं। प्रायः सभी कौरव अचेत-से होकर दावानलके दाहसे डरे हुए हाथियोंके समान पलायन कर रहे हैं २६

हाहाकृताश्चैव रणे विशोक
मुञ्चन्ति नादान् विपुलान् गजेन्द्राः ॥ २७ ॥

विशोक ! रणभूमिमें सब ओर हाहाकार मचा हुआ है। बहुसंख्यक गजराज बड़े जोर-जोरसे चीत्कार कर रहे हैं ॥२७॥

विशोक उवाच

किं भीम नैनं त्वमिहाश्रृणोषि
विस्फारितं गाण्डिवस्यातिघोरम्।
क्रुद्धेन पार्थेन विकृष्यतोऽद्य
कच्चिन्नेमौ तव कर्णौ विनष्टौ ॥ २८ ॥

विशोकने कहा--भीमसेन ! क्रोधमें भरे हुए अर्जुनके द्वारा खींचे जाते हुए गाण्डीव धनुषकी यह अत्यन्त भयंकर टंकार क्या आज आपको सुनायी नहीं दे रही है ? आपके ये दोनों कान बहरे तो नहीं हो गये हैं ? ॥ २८ ॥

सर्वे कामाः पाण्डव ते समृद्धाः
कपिर्ह्यसौ दृश्यते हस्तिसैन्ये।
नीलाद् घनाद् विद्युतमुच्चरन्तीं
तथा पश्य विस्फुरन्तीं धनुर्ज्याम्॥ २९ ॥

पाण्डुनन्दन ! आपकी सारी कामनाएँ सफल हुईं। हाथियोंकी सेनामें अर्जुनके रथकी ध्वजाका वह वानर दिखायी दे रहा है। काले मेघसे प्रकट होनेवाली बिजलीके समान चमकती हुई गाण्डीव धनुषकी प्रत्यञ्चाको देखिये ॥ २९ ॥

कपिर्ह्यसौ वीक्षते सर्वतो वै
ध्वजाग्रमारुह्य धनंजयस्य।
वित्रासयन् रिपुसंघान् विमर्दे
बिभेम्यस्मादात्मनैवाभिवीक्ष्य ॥ ३० ॥

अर्जुनकी ध्वजाके अग्रभागपर आरूढ़ हो वह वानर सब ओर देखता और युद्धस्थलमें शत्रुसमूहोंको भयभीत करता है। मैं स्वयं भी देखकर उससे डर रहा हूँ ॥ ३० ॥

विभ्राजते चातिमात्रं किरीटं
विचित्रमेतच्च धनंजयस्य।
दिवाकराभो मणिरेष दिव्यो
विभ्राजते चैव किरीटसंस्थः ॥ ३१ ॥

धनंजयका यह विचित्र मुकुट अत्यन्त प्रकाशित हो रहा है। इस मुकुटमें लगी हुई यह दिव्य मणि दिवाकरके समान देदीप्यमान होती है ॥ ३१ ॥

पार्श्वे भीमं पाण्डुराभ्रप्रकाशं
पश्यस्व शङ्खं देवदत्तं सुघोषम्।
अभीषुहस्तस्य जनार्दनस्य
विगाहमानस्य चमूं परेषाम् ॥ ३२ ॥
रविप्रभं वज्रनाभं क्षुरान्तं
पार्श्वे स्थितं पश्य जनार्दनस्य।
चक्रं यशोवर्धनं केशवस्य
सदार्चितं यदुभिः पश्य वीर ॥ ३३ ॥

वीर ! अर्जुनके पार्श्वभागमें श्वेत बादलके समान प्रकाशित होनेवाला और गम्भीर घोष करनेवाला देवदत्त नामक भयानक शङ्ख रक्खा हुआ है, उसपर दृष्टिपात कीजिये। साथ ही हाथोंमें घोड़ोंकी बागडोर लिये शत्रुओंकी सेनामें घुसे जाते हुए भगवान् श्रीकृष्णकी बगलमें सूर्यके समान प्रकाशमान चक्र विद्यमान है, जिसकी नाभिमें वज्र और किनारेके भागोंमें छुरे लगे हुए हैं। भगवान् केशवका वह

चक्र उनका यश बढ़ानेवाला है। सम्पूर्ण यदुवंशी सदा उसकी पूजा करते हैं। आप उस चक्रको भी देखिये ॥ ३२-३३ ॥

महाद्विपानां सरलद्रुमोपमाः
करा निकृत्ताः प्रपतन्त्यमी क्षुरैः।
किरीटिना तेन पुनः ससादिनः
शरैर्निकृत्ताः कुलिशैरिवाद्रयः॥ ३४ ॥

अर्जुनके छुरनामक बाणोंसे कटे हुए ये बड़े-बड़े हाथियोंके शुण्डदण्ड देवदारुके समान गिर रहे हैं। फिर उन्हीं किरीटीके बाणोंसे छिन्न-भिन्न हो वज्रके मारे हुए पर्वतोंके समान वे हाथी सवारोंसहित धराशायी हो रहे हैं ॥ ३४ ॥

तथैव कृष्णस्य च पाञ्चजन्यं
महार्हमेतं द्विजराजवर्णम्।
कौन्तेय पश्योरसि कौस्तुभं च
जाज्वल्यमानं विजयां स्रजं च ॥ ३५ ॥

कुन्तीनन्दन ! भगवान् श्रीकृष्णके इस बहुमूल्य पाञ्चजन्य शङ्खको, जो चन्द्रमाके समान श्वेतवर्ण है, देखिये। साथ ही उनके वक्षःस्थलपर अपनी प्रभासे प्रज्वलित होनेवाली कौस्तुभमणि तथा वैजयन्ती मालापर भी दृष्टिपात कीजिये ॥ ३५ ॥

ध्रुवं रथाग्र्यः समुपैति पार्थो
विद्रावयन् सैन्यमिदं परेषाम्।
सिताभ्रवर्णैरसितप्रयुक्तै-
र्हयैर्महार्हैं रथिनां वरिष्ठः ॥ ३६ ॥

निश्चय ही रथियोंमें श्रेष्ठ कुन्तीनन्दन अर्जुन शत्रुओंकी सेनाको खदेड़ते हुए इधर ही आ रहे हैं। सफेद बादलोंके समान श्वेत कान्तिवाले उनके महामूल्यवान् अश्व श्यामसुन्दर श्रीकृष्णद्वारा संचालित हो रहे हैं ॥ ३६ ॥

रथान् हयान् पत्तिगणांश्च सायकै-
र्विदारितान् पश्य पतन्त्यमी यथा।
तवानुजेनामरराजतेजसा
महावनानीव सुपर्णवायुना ॥ ३७ ॥

देखिये, जैसे गरुड़के पंखसे उठी हुई वायुके द्वारा बड़े-बड़े जंगल धराशायी हो जाते हैं, उसी प्रकार देवराज इन्द्रके तुल्य तेजस्वी आपके छोटे भाई अर्जुन बाणोंद्वारा शत्रुओंके रथों, घोड़ों और पैदलसमूहोंको विदीर्ण कर रहे हैं और वे सब-के-सब पृथ्वीपर गिरते जा रहे हैं ॥ ३७ ॥

चतुःशतान् पश्य रथानिमान् हतान्
सवाजिसूतान् समरे किरीटिना।
महेषुभिः सप्तशतानि दन्तिनां
पदातिसादींश्च रथाननेकशः ॥ ३८ ॥

वह देखिये, किरीटधारी अर्जुनने समराङ्गणमें सारथि और घोड़ोंसहित इन चार सौ रथियोंको मार डाला तथा अपने विशाल बाणोंद्वारा सात सौ हाथियों, बहुत-से पैदलों, घुड़सवारों और अनेकानेक रथोंका संहार कर डाला ॥ ३८ ॥

अयं समभ्येति तवान्तिकं बली
निघ्नन् कुरूंश्चित्र इव ग्रहोऽर्जुनः।
समृद्धकामोऽसि हतास्तवाहिता
बलं तवायुश्च चिराय वर्धताम् ॥ ३९ ॥

विचित्र ग्रहके समान ये बलवान् अर्जुन कौरवोंका संहार करते हुए आपके निकट आ रहे हैं। अब आपकी कामना सफल हुई। आपके शत्रु मारे गये। इस समय चिरकालके लिये आपका बल और आयु बढ़े ॥ ३९ ॥

भीमसेन उवाच

ददानि ते ग्रामवरांश्चतुर्दश
प्रियाख्याने सारथे सुप्रसन्नः।
दासीशतं चापि रथांश्च विंशतिं
यदर्जुनं वेदयसे विशोक ॥ ४० ॥

भीमसेनने कहा—विशोक ! तुम अर्जुनके आनेका समाचार सुना रहे हो। सारथे ! इस प्रिय संवादसे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है; अतः मैं तुम्हें चौदह बड़े-बड़े गाँवकी जागीर देता हूँ। साथ ही सौ दासियाँ तथा बीस रथ तुम्हें पारितोषिकके रूपमें प्राप्त होंगे ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि भीमसेनविशोकसंवादे षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें भीमसेन और विशोकका संवादविषयक छिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७६ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३½ श्लोक मिलाकर कुल ४३½ श्लोक हैं)

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

अर्जुन और भीमसेनके द्वारा कौरवसेनाका संहार तथा भीमसेनसे शकुनिकी पराजय एवं दुर्योधनादि धृतराष्ट्रपुत्रोंका सेनासहित भागकर कर्णका आश्रय लेना

संजय उवाच

श्रुत्वा तु रथनिर्घोषं सिंहनादं च संयुगे।
अर्जुनः प्राह गोविन्दं शीघ्रं नोदय वाजिनः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! उधर युद्धस्थलमें शत्रुओंके रथोंकी घर्घराहट और सिंहनाद सुनकर अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा—'प्रभो ! घोड़ोंको जल्दी-जल्दी हाँकिये' ॥ १ ॥

अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा गोविन्दोऽर्जुनमब्रवीत्।
एष गच्छामि सुक्षिप्रं यत्र भीमो व्यवस्थितः ॥ २ ॥

अर्जुनकी बात सुनकर श्रीकृष्णने उनसे कहा—'यह लो, मैं बहुत जल्दी उस स्थानपर जा पहुँचता हूँ, जहाँ भीमसेन खड़े हैं' ॥ २ ॥

तं यान्तमश्वैर्हिमशङ्खवर्णैः
सुवर्णमुक्तामणिजालनद्धैः ।
जम्भं जिघांसुं प्रगृहीतवज्रं
जयाय देवेन्द्रमिवोग्रमन्युम् ॥ ३ ॥
रथाश्वमातङ्गपदातिसंघा
बाणस्वनैर्नेमिखुरस्वनैश्च ।
संनादयन्तो वसुधां दिशश्च
क्रुद्धा नृसिंहा जयमभ्युदीयुः ॥ ४ ॥

जैसे देवराज इन्द्र हाथमें वज्र लेकर जम्भासुरको मार डालनेकी इच्छासे मनमें भयानक क्रोध भरकर चले थे, उसी प्रकार अर्जुन भी शत्रुओंको जीतनेके लिये भयंकर क्रोधसे युक्त हो सुवर्ण, मुक्ता और मणियोंके जालसे आबद्ध हुए हिम और शङ्खके समान श्वेत कान्तिवाले अश्वोंद्वारा यात्रा कर रहे थे। उस समय क्रोधमें भरे हुए शत्रुपक्षके पुरुषसिंह वीर, रथी, घुड़सवार, हाथीसवार और पैदलों-के समूह अपने बाणोंकी सनसनाहट, पहियोंकी घर्घराहट तथा टापोंके टप-टपकी आवाजसे सम्पूर्ण दिशाओं और पृथ्वीको प्रतिध्वनित करते हुए अर्जुनका सामना करने-के लिये आगे बढ़े ॥ ३–४ ॥

तेषां च पार्थस्य च मारिषासीद्
देहासुपापक्षपणं सुयुद्धम् ।
त्रैलोक्यहेतोरसुरैर्यथाऽऽसीद्
देवस्य विष्णोर्जयतां वरस्य ॥ ५ ॥

मान्यवर ! फिर तो त्रिलोकीके राज्यके लिये जैसे असुरोंके साथ भगवान् विष्णुका युद्ध हुआ था, उसी प्रकार विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ कुन्तीकुमार अर्जुनका उन योद्धाओं-के साथ घोर संग्राम होने लगा, जो उनके शरीर, प्राण और पापोंका विनाश करनेवाला था ॥ ५ ॥

तैरस्तमुच्चावचमायुधं त-
देकः प्रचिच्छेद किरीटमाली ।
क्षुरार्धचन्द्रैर्निशितैश्च भल्लैः
शिरांसि तेषां बहुधा च बाहून् ॥ ६ ॥
छत्राणि वालव्यजनानि केतू-
नश्वान् रथान् पत्तिगणान् द्विपांश्च ।
ते पेतुरुर्व्यां बहुधा विरूपा
वातप्रणुन्नानि यथा वनानि ॥ ७ ॥

उनके चलाये हुए छोटे-बड़े सभी अस्त्र-शस्त्रोंको अकेले किरीटमाली अर्जुनने छुर, अर्धचन्द्र तथा तीखे भल्लोंसे काट डाला। साथ ही उनके मस्तकों, भुजाओं, छत्रों, चवरों, ध्वजाओं, अश्वों, रथों, पैदलसमूहों तथा हाथियोंके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले। वे सब अनेक टुकड़ोंमें बँटकर विरूप हो आँधीके उखाड़े हुए वनोंके समान पृथ्वीपर गिर पड़े ॥

सुवर्णजालावतता महागजाः
सवैजयन्तीध्वजयोधकल्पिताः ।
सुवर्णपुङ्खैरिषुभिः समाचिता-
श्चकाशिरे प्रज्वलिता यथाचलाः ॥ ८ ॥

सोनेकी जालियोंसे आच्छादित, वैजयन्ती ध्वजासे सुशोभित तथा योद्धाओंद्वारा सुसज्जित किये हुए बड़े-बड़े हाथी सुवर्णमय पंखवाले बाणोंसे व्याप्त हो प्रज्वलित पर्वतोंके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ ८ ॥

विदार्य नागाश्वरथान् धनंजयः
शरोत्तमैर्वासववज्रसंनिभैः ।
द्रुतं ययौ कर्णजिघांसया तथा
यथा मरुत्वान् बलभेदने पुरा ॥ ९ ॥

जैसे पूर्वकालमें इन्द्रने बलासुरका विनाश करनेके लिये बड़े वेगसे यात्रा की थी, उसी प्रकार अर्जुन कर्णको मार डालनेकी इच्छासे इन्द्रके वज्रसदृश उत्तम बाणोंद्वारा शत्रुओं-के हाथी, घोड़ों और रथोंको विदीर्ण करते हुए शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़े ॥ ९ ॥

ततः स पुरुषव्याघ्रस्तव सैन्यमरिंदमः ।
प्रविवेश महाबाहुर्मकरः सागरं यथा ॥ १० ॥

तदनन्तर जैसे मगर समुद्रमें घुस जाता है, उसी प्रकार शत्रुओंका दमन करनेवाले पुरुषसिंह महाबाहु अर्जुनने आप-की सेनाके भीतर प्रवेश किया ॥ १० ॥

तं दृष्ट्वास्तावका राजन् रथपत्तिसमन्विताः ।
गजाश्वसादिबहुलाः पाण्डवं समुपाद्रवन् ॥ ११ ॥

राजन् ! उस समय हर्षमें भरे हुए आपके रथियों और पैदलोंसहित हाथीसवार तथा घुड़सवार सैनिक जिनकी संख्या बहुत अधिक थी, पाण्डुपुत्र अर्जुनपर टूट पड़े ॥ ११ ॥

तेषामापततां पार्थमारावः सुमहानभूत् ।
सागरस्येव क्षुब्धस्य यथा स्यात् सलिलस्वनः ॥ १२ ॥

पार्थपर आक्रमण करते हुए उन सैनिकोंका महान् कोलाहल विक्षुब्ध समुद्रके जलकी गम्भीर ध्वनिके समान सब ओर गूँज उठा ॥ १२ ॥

ते तु तं पुरुषव्याघ्रं व्याघ्रा इव महारथाः ।
अभ्यद्रवन्त संग्रामे त्यक्त्वा प्राणकृतं भयम् ॥ १३ ॥

वे महारथी संग्राममें प्राणोंका भय छोड़कर बाघके समान पुरुषसिंह अर्जुनकी ओर दौड़े ॥ १३ ॥

तेषामापततां तत्र शरवर्षाणि मुञ्चताम् ।
अर्जुनो व्यधमत् सैन्यं महावातो घनानिव ॥ १४ ॥

परंतु जैसे आँधी बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार अर्जुनने बाणोंकी वर्षापूर्वक आक्रमण करनेवाले उन समस्त योद्धाओंका संहार कर डाला ॥ १४ ॥

तेऽर्जुनं सहिता भूत्वा रथवंशैः प्रहारिणः ।
अभियाय महेष्वासा विव्यधुर्निशितैः शरैः ॥ १५ ॥

तब वे महाधनुर्धर योद्धा संगठित हो रथसमूहोंके साथ चढ़ाई करके अर्जुनको तीखे बाणोंसे घायल करने लगे ॥ १५ ॥

(शक्तिभिस्तोमरैः प्रासैः कुणपैः कूटमुद्गरैः ।
शूलैस्त्रिशूलैः परिघैः भिन्दिपालैः परश्वधैः ॥
करवालैर्हेमदण्डैर्यष्टिभिर्मुसलैर्हलैः ।
प्रहृष्टाश्चक्रिरे पार्थं समन्ताद् गूढमायुधैः ॥)

उन हर्षभरे योद्धाओंने शक्ति, तोमर, प्रास, कुणप, कूट, मुद्गर, शूल, त्रिशूल, परिघ, भिन्दिपाल, परशु, खड्ग, हेमदण्ड, डंडे, मुसल और हल आदि आयुधोंद्वारा अर्जुनको सब ओरसे ढक दिया ॥

ततोऽर्जुनः सहस्राणि रथवारणवाजिनाम् ।
प्रेषयामास विशिखैर्यमस्य सदनं प्रति ॥ १६ ॥

तब अर्जुनने अपने बाणोंद्वारा शत्रुपक्षके सहस्रों रथों, हाथियों और घोड़ोंको यमलोक भेजना आरम्भ किया ॥१६॥

ते वध्यमानाः समरे पार्थचापच्युतैः शरैः ।
तत्र तत्र स्म लीयन्ते भये जाते महारथाः ॥ १७ ॥

अर्जुनके धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा समराङ्गणमें मारे जाते हुए कौरव महारथी भयके मारे इधर-उधर छिपने लगे ॥

तेषां चतुःशतान् वीरान् यतमानान् महारथान् ।
अर्जुनो निशितैर्बाणैरनयद् यमसादनम् ॥ १८ ॥

उनमेंसे चार सौ वीर महारथी यत्नपूर्वक लड़ते रहे, जिन्हें अर्जुनने अपने पैने बाणोंसे यमलोक पहुँचा दिया॥१८॥

ते वध्यमानाः समरे नानालिङ्गैः शितैः शरैः ।
अर्जुनं समभित्यज्य दुद्रुवुर्वै दिशो दश ॥ १९ ॥

संग्राममें नाना प्रकारके चिह्नोंसे युक्त तीखे बाणोंकी मार खाकर वे सैनिक अर्जुनको छोड़कर दसों दिशाओंमें भाग गये ॥ १९ ॥

तेषां शब्दो महानासीद् द्रवतां वाहिनीमुखे ।
महौघस्येव जलधेर्गिरिमासाद्य दीर्यतः ॥ २० ॥

युद्धके मुहानेपर भागते हुए उन योद्धाओंका महान् कोलाहल वैसा ही जान पड़ता था, जैसा कि समुद्रके महान् जलप्रवाहके पर्वतसे टकरानेपर होता है ॥ २० ॥

तां तु सेनां भृशं विद्ध्वा द्रावयित्वार्जुनः शरैः।
प्रायादभिमुखः पार्थः सूतानीकं हि मारिष ॥ २१ ॥

मान्यवर नरेश ! उस सेनाको अपने बाणोंसे अत्यन्त घायल करके भगा देनेके पश्चात् कुन्तीकुमार अर्जुन कर्णकी सेनाके सामने चले ॥ २१ ॥

तस्य शब्दो महानासीत् परानभिमुखस्य वै ।
गरुडस्येव पततः पन्नगार्थे यथा पुरा ॥ २२ ॥

शत्रुओंकी ओर उन्मुख हुए उनके रथका महान् शब्द वैसा ही प्रतीत होता था, जैसा कि पहले किसी सर्पको पकड़नेके लिये झपटते हुए गरुड़के पंखसे प्रकट हुआ था ॥२२॥

तं तु शब्दमभिश्रुत्य भीमसेनो महाबलः ।
बभूव परमप्रीतः पार्थदर्शनलालसः ॥ २३ ॥

उस शब्दको सुनकर महाबली भीमसेन अर्जुनके दर्शनकी लालसासे बड़े प्रसन्न हुए ॥ २३ ॥

श्रुत्वैव पार्थमायान्तं भीमसेनः प्रतापवान् ।
त्यक्त्वा प्राणान् महाराज सेनां तव ममर्द ह ॥ २४ ॥

महाराज ! पार्थका आना सुनते ही प्रतापी भीमसेन प्राणोंका मोह छोड़कर आपकी सेनाका मर्दन करने लगे ॥

स वायुवीर्यप्रतिमो वायुवेगसमो जवे ।
वायुवद् व्यचरद् भीमो वायुपुत्रः प्रतापवान् ॥ २५ ॥

प्रतापी वायुपुत्र भीमसेन वायुके समान वेगशाली थे। बल और पराक्रममें भी वायुकी ही समानता रखते थे। वे उस रणभूमिमें वायुके समान विचरण करने लगे ॥ २५ ॥

तेनार्द्यमाना राजेन्द्र सेना तव विशाम्पते ।
व्यभ्रश्यत महाराज भिन्ना नौरिव सागरे ॥ २६ ॥

महाराज ! प्रजानाथ ! राजेन्द्र ! उनसे पीड़ित हुई आपकी सेना समुद्रमें टूटी हुई नावके समान पथभ्रष्ट होने लगी ॥ २६ ॥

तां तु सेनां तदा भीमो दर्शयन् पाणिलाघवम् ।
शरैरवचकर्तोग्रैः प्रेषयिष्यन् यमक्षयम् ॥ २७ ॥

उस समय भीमसेन अपने हाथोंकी फुर्ती दिखाते हुए आपकी उस सेनाको यमलोक भेजनेके लिये भयंकर बाणोंद्वारा छिन्न-भिन्न करने लगे ॥ २७ ॥

तत्र भारत भीमस्य बलं दृष्ट्वातिमानुषम् ।
व्यभ्रमन्त रणे योधाः कालस्येव युगक्षये ॥ २८ ॥

भारत ! उस समय प्रलयकालीन कालके समान भीमसेनके अलौकिक बलको देखकर रणभूमिमें सारे योद्धा इधर-उधर भटकने लगे ॥ २८ ॥

तथार्दितान् भीमबलान् भीमसेनेन भारत ।
दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा इदं वचनमब्रवीत् ॥ २९ ॥

भरतनन्दन ! भयंकर बलशाली अपने सैनिकोंको भीमसेनके द्वारा इस प्रकार पीड़ित देखकर राजा दुर्योधनने उनसे निम्नाङ्कित वचन कहा ॥ २९ ॥

सैनिकांश्च महेष्वासान् योधांश्च भरतर्षभ ।
समादिशन् रणे सर्वान् हत भीममिति स्म ह ॥ ३० ॥

भरतश्रेष्ठ ! उसने अपने महाधनुर्धर समस्त सैनिकों और योद्धाओंको रणभूमिमें इस प्रकार आदेश देते हुए कहा— 'तुम सब लोग मिलकर भीमसेनको मार डालो ॥ ३० ॥

तस्मिन् हते हतं मन्ये पाण्डुसैन्यमशेषतः ।
प्रतिगृह्य च तामाज्ञां तव पुत्रस्य पार्थिवाः ॥ ३१ ॥
भीमं प्रच्छादयामासुः शरवर्षैः समन्ततः ।

'उनके मारे जानेपर मैं सारी पाण्डवसेनाको मरी हुई ही मानता हूँ।' आपके पुत्रकी इस आज्ञाको शिरोधार्य करके समस्त राजाओंने चारों ओरसे बाणवर्षा करके भीमसेनको ढक दिया ॥ ३१½ ॥

गजाश्च बहुला राजन् नराश्च जयगृद्धिनः ॥ ३२ ॥
रथे स्थिताश्च राजेन्द्र परिवव्रुर्वृकोदरम् ।

राजन्! राजेन्द्र! बहुतसे हाथियों, विजयाभिलाषी पैदल मनुष्यों तथा रथियोंने भी भीमसेनको घेर लिया था ॥

स तैः परिवृतः शूरैः शूरो राजन् समन्ततः ॥ ३३ ॥
शुशुभे भरतश्रेष्ठो नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ।

नरेश्वर! उन शूरवीरोंद्वारा सब ओरसे घिरे हुए शौर्य-सम्पन्न भरतश्रेष्ठ भीम नक्षत्रोंसे घिरे हुए चन्द्रमाके समान सुशोभित होने लगे ॥ ३३½ ॥

परिवेषी यथा सोमः परिपूर्णो विराजते ॥ ३४ ॥
स रराज तथा संख्ये दर्शनीयो नरोत्तमः ।
निर्विशेषो महाराज यथा हि विजयस्तथा ॥ ३५ ॥

जैसे घेरेसे घिरे हुए पूर्णिमाके चन्द्रमा प्रकाशित होते हों, उसी प्रकार युद्धस्थलमें दर्शनीय नरश्रेष्ठ भीमसेन शोभा पा रहे थे। महाराज! वे अर्जुनके समान ही प्रतीत होते थे। उनमें और अर्जुनमें कोई अन्तर नहीं रह गया था ॥

तस्य ते पार्थिवाः सर्वे शरवृष्टिं समासृजन् ।
क्रोधरक्तेक्षणाः शूरा हन्तुकामा वृकोदरम् ॥ ३६ ॥

तदनन्तर क्रोधसे लाल आँखें किये वे समस्त शूरवीर भूपाल भीमसेनको मार डालनेकी इच्छासे उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३६ ॥

तां विदार्य महासेनां शरैः संनतपर्वभिः ।
निश्चक्राम रणाद् भीमो मत्स्यो जालादिवाम्भसि ॥ ३७ ॥

यह देख भीमसेनने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे उस विशाल सेनाको विदीर्ण करके उसी प्रकार उसके घेरेसे बाहर निकल आये, जैसे कोई-कोई मत्स्य पानीमें डाले हुए जालको छेदकर बाहर निकल जाता है ॥ ३७ ॥

हत्वा दशसहस्राणि गजानामनिवर्तिनाम् ।
नृणां शतसहस्रे द्वे द्वे शते चैव भारत ॥ ३८ ॥
पञ्च चाश्वसहस्राणि रथानां शतमेव च ।
हत्वा प्रास्यन्दयद् भीमो नदीं शोणितवाहिनीम् ॥ ३९ ॥

भारत! युद्धसे पीछे न हटनेवाले दस हजार गजराजों, दो लाख और दो सौ पैदल मनुष्यों, पाँच हजार घोड़ों और सौ रथोंको नष्ट करके भीमसेनने वहाँ रक्तकी नदी बहा दी ॥ ३८-३९ ॥

शोणितोदां रथावर्तां हस्तिग्राहसमाकुलाम् ।
नरमीनाश्वनक्रान्तां केशशैवलशाद्वलाम् ॥ ४० ॥
संछिन्नभुजनागेन्द्रां बहुरत्नापहारिणीम् ।
ऊरुग्राहां मज्जपङ्कां शीर्षोपलसमावृताम् ॥ ४१ ॥
धनुष्काशां शरावापां गदापरिघपन्नगाम् ।
हंसच्छत्रध्वजोपेतामुष्णीषवरफेनिलाम् ॥ ४२ ॥
हारपद्माकरां चैव भूमिरेणूर्मिमालिनीम् ।
आर्यवृत्तवतां संख्ये सुतरां भीरुदुस्तराम् ॥ ४३ ॥
योधग्राहवतीं संख्ये वहन्तीं यमसादनम् ।
क्षणेन पुरुषव्याघ्रः प्रावर्तयत निम्नगाम् ॥ ४४ ॥
यथा वैतरणीमुग्रां दुस्तरामकृतात्मभिः ।
तथा दुस्तरणीं घोरां भीरूणां भयवर्धिनीम् ॥ ४५ ॥

रक्त ही उस नदीका जल था, रथ भँवरके समान जान पड़ते थे, हाथीरूपी ग्राहोंसे वह नदी भरी हुई थी, मनुष्य, मत्स्य और घोड़े नाकोंके समान जान पड़ते थे, सिरके बाल उसमें सेवार और घासके समान थे। कटी हुई भुजाएँ बड़े-बड़े सर्पोंका भ्रम उत्पन्न करती थीं। वह बहुतसे रत्नोंको बहाये लिये जाती थी। उसके भीतर पड़ी हुई जाँघें ग्राहोंके समान जान पड़ती थीं। मज्जा पङ्कका काम देती थी, मस्तक पत्थरके टुकड़ोंके समान वहाँ छा रहे थे, धनुष किनारे उगे हुए कासके समान जान पड़ते थे। बाण ही वहाँके अङ्कुर थे, गदा और परिघ सर्पोंके समान प्रतीत होते थे। छत्र और ध्वज उसमें हंसके सदृश दिखायी पड़ते थे। पगड़ी फेनका भ्रम उत्पन्न करती थी। हार कमलवनके समान प्रतीत होते थे। धरतीकी धूल तरङ्गमाला बनकर शोभा दे रही थी। योद्धा ग्राह आदि जलजन्तुओं-से प्रतीत होते थे। युद्धस्थलमें बहनेवाली वह रक्तनदी यमलोककी ओर जा रही थी, वैतरणीके समान वह सदाचारी पुरुषोंके लिये सुगमतासे पार होने योग्य और कायरोंके लिये दुस्तर थी। पुरुषसिंह भीमसेनने क्षणभरमें वैतरणीके समान भयंकर रक्तकी नदी बहा दी थी। वह अकृतात्मा पुरुषोंके लिये दुस्तर, घोर एवं भीरु पुरुषोंका भय बढ़ानेवाली थी ॥ ४०—४५ ॥

यतो यतः पाण्डवेयः प्रविष्टो रथसत्तमः ।
ततस्ततोऽघातयत योधाञ्शतसहस्रशः ॥ ४६ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ पाण्डुनन्दन भीमसेन जिस-जिस ओर घुसते, उसी ओर लाखों योद्धाओंका संहार कर डालते थे ॥ ४६ ॥

एवं दृष्ट्वा कृतं कर्म भीमसेनेन संयुगे ।
दुर्योधनो महाराज शकुनिं वाक्यमब्रवीत् ॥ ४७ ॥

महाराज! युद्धस्थलमें भीमसेनके द्वारा किये गये ऐसे कर्मको देखकर दुर्योधनने शकुनिसे कहा—॥ ४७ ॥

जहि मातुल संग्रामे भीमसेनं महाबलम् ।
अस्मिञ्जिते जितं मन्ये पाण्डवेयं महाबलम् ॥ ४८ ॥

'मामाजी! आप संग्राममें महाबली भीमसेनको मार डालिये। यदि इनको जीत लिया गया तो मैं समझूँगा कि पाण्डवोंकी विशाल सेना ही जीत ली गयी' ॥ ४८ ॥

ततः प्रायान्महाराज सौबलेयः प्रतापवान् ।
रणाय महते युक्तो भ्रातृभिः परिवारितः ॥ ४९ ॥
स समासाद्य संग्रामे भीमं भीमपराक्रमम् ।
वारयामास तं वीरो वेलेव मकरालयम् ॥ ५० ॥

महाराज! तब भाइयोंसे घिरा हुआ प्रतापी सुबलपुत्र शकुनि महान् युद्धके लिये उद्यत हो आगे बढ़ा। संग्राममें भयानक पराक्रमी भीमसेनके पास पहुँचकर उस वीरने उन्हें उसी तरह रोक दिया, जैसे तटकी भूमि समुद्रको रोक देती है ॥ ४९-५० ॥

संन्यवर्तत तं भीमो वार्यमाणः शितैः शरैः ।
शकुनिस्तस्य राजेन्द्र वामपार्श्वे स्तनान्तरे ॥ ५१ ॥
प्रेषयामास नाराचान् रुक्मपुङ्खाञ्छिलाशितान्।

राजेन्द्र ! उसके तीखे बाणोंसे रोके जाते हुए भीमसेन उसीकी ओर लौट पड़े ! उस समय शकुनिने उनकी बायीं पसली और छातीमें सोनेके पंखवाले और शिलापर तेज किये हुए कई नाराच मारे ॥ ५१½ ॥

वर्म भित्त्वा तु ते घोराः पाण्डवस्य महात्मनः ॥ ५२॥
न्यमज्जन्त महाराज कङ्कबर्हिणवाससः ।

महाराज ! कङ्क और मयूरके पंखवाले वे भयंकर नाराच महामनस्वी पाण्डुपुत्र भीमसेनका कवच छेदकर उनके शरीरमें डूब गये ॥ ५२½ ॥

सोऽतिविद्धो रणे भीमः शरं रुक्मविभूषितम् ॥ ५३ ॥
प्रेषयामास स रुषा सौबलं प्रति भारत ।

भारत ! तब रणभूमिमें अत्यन्त घायल हुए भीमसेनने कुपित हो शकुनिकी ओर एक सुवर्णभूषित बाण चलाया ॥

तमायान्तं शरं घोरं शकुनिः शत्रुतापनः ॥ ५४ ॥
चिच्छेद सप्तधा राजन् कृतहस्तो महाबलः ।

राजन् ! शत्रुओंको संताप देनेवाला महाबली शकुनि सिद्धहस्त था। उसने अपनी ओर आते हुए उस भयंकर बाणके सात टुकड़े कर डाले ॥ ५४½ ॥

तस्मिन् निपतिते भूमौ भीमः क्रुद्धो विशाम्पते ॥ ५५ ॥
धनुश्चिच्छेद भल्लेन सौबलस्य हसन्निव ।

राजन् ! उस बाणके धराशायी हो जानेपर भीमसेनने क्रोधपूर्वक हँसते हुए-से एक भल्ल मारकर शकुनिके धनुषको काट दिया ॥ ५५½ ॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं सौबलेयः प्रतापवान् ॥ ५६ ॥
अन्यदादाय वेगेन धनुर्भल्लांश्च षोडश ।

प्रतापी सुबलपुत्र शकुनिने उस कटे हुए धनुषको फेंककर बड़े वेगसे दूसरा धनुष हाथमें ले लिया और उसके द्वारा सोलह भल्ल चलाये ॥ ५६½ ॥

तैस्तस्य तु महाराज भल्लैः संनतपर्वभिः ॥ ५७ ॥
द्वाभ्यां स सारथिं ह्यार्च्छद् भीमं सप्तभिरेव च।

महाराज ! झुकी हुई गाँठवाले उन भल्लोंमेंसे दोके द्वारा शकुनिने भीमसेनके सारथिको और सातसे स्वयं भीमसेनको भी घायल कर दिया ॥ ५७½ ॥

ध्वजमेकेन चिच्छेद द्वाभ्यां छत्रं विशाम्पते ॥ ५८ ॥
चतुर्भिश्चतुरो वाहान् विव्याध सुबलात्मजः ।

प्रजानाथ ! फिर सुबलपुत्रने एक बाणसे ध्वजको, दो बाणोंसे छत्रको और चार बाणोंसे उनके चारों घोड़ोंको भी घायल कर दिया ॥ ५८½ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज भीमसेनः प्रतापवान् ॥ ५९ ॥
शक्तिं चिक्षेप समरे रुक्मदण्डामयस्मयीम् ।

महाराज ! तब क्रोधमें भरे हुए प्रतापी भीमसेनने समराङ्गणमें शकुनिपर सुवर्णमय दण्डवाली एक लोहेकी शक्ति चलायी ॥ ५९½ ॥

सा भीमभुजनिर्मुक्ता नागजिह्वेव चञ्चला ॥ ६० ॥
निपपात रणे तूर्णं सौबलस्य महात्मनः ।

भीमसेनके हाथोंसे छूटी हुई सर्पकी जिह्वाके समान वह चञ्चल शक्ति रणभूमिमें तुरंत ही महामना शकुनिपर जा पड़ी ॥ ६०½ ॥

ततस्तामेव संगृह्य शक्तिं कनकभूषणाम् ॥ ६१ ॥
भीमसेनाय चिक्षेप क्रुद्धरूपो विशाम्पते ।

राजन् ! क्रोधमें भरे हुए शकुनिने उस सुवर्णभूषित शक्तिको हाथसे पकड़ लिया और उसीको भीमसेनपर दे मारा ॥

सा निर्भिद्य भुजं सव्यं पाण्डवस्य महात्मनः ॥ ६२ ॥
निपपात तदा भूमौ यथा विद्युन्नभश्च्युता ।

आकाशसे गिरी हुई बिजलीके समान वह शक्ति महामनस्वी पाण्डुपुत्र भीमसेनकी बायीं भुजाको विदीर्ण करके तत्काल भूमिपर गिर पड़ी ॥ ६२½ ॥

अथोत्क्रुष्टं महाराज धार्तराष्ट्रैः समन्ततः ॥ ६३ ॥
न तु तं ममृषे भीमः सिंहनादं तरस्विनाम् ।

महाराज ! यह देखकर धृतराष्ट्रके पुत्रोंने चारों ओरसे गर्जना की; परंतु भीमसेन उन वेगशाली वीरोंका वह सिंहनाद नहीं सह सके ॥ ६३½ ॥

अन्यद् गृह्य धनुः सज्यं त्वरमाणो महाबलः ॥ ६४ ॥
मुहूर्तादिव राजेन्द्र च्छादयामास सायकैः ।
सौबलस्य बलं संख्ये त्यक्त्वाऽऽत्मानं महाबलः॥६५॥

राजेन्द्र ! महाबली भीमने बड़ी उतावलीके साथ दूसरा धनुष लेकर उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और युद्धमें अपने जीवनका मोह छोड़कर सुबलपुत्रकी सेनाको उसी समय बाणोंद्वारा ढक दिया ॥ ६४-६५ ॥

तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा सूतं चैव विशाम्पते ।
ध्वजं चिच्छेद भल्लेन त्वरमाणः पराक्रमी ॥ ६६ ॥

प्रजानाथ ! पराक्रमी भीमसेनने फुर्ती दिखाते हुए शकुनिके चारों घोड़ों और सारथिको मारकर एक भल्लके द्वारा उसके ध्वजको भी काट दिया ॥ ६६ ॥

हताश्वं रथमुत्सृज्य त्वरमाणो नरोत्तमः ।
तस्थौ विस्फारयंश्चापं क्रोधरक्तेक्षणः श्वसन् ॥ ६७ ॥

उस समय नरश्रेष्ठ शकुनि उस अश्वहीन रथको छोड़कर क्रोधसे लाल आँखें किये लंबी साँस खींचता और धनुषकी टङ्कार करता हुआ तुरंत भूमिपर खड़ा हो गया ॥ ६७ ॥

शरैश्च बहुधा राजन् भीममार्च्छत् समन्ततः ।
प्रतिहत्य तु वेगेन भीमसेनः प्रतापवान् ॥ ६८ ॥
धनुश्चिच्छेद संक्रुद्धो विव्याध च शितैः शरैः।

राजन् ! उसने अपने बाणोंद्वारा भीमसेनपर सब ओरसे

बारंबार प्रहार किया, किंतु प्रतापी भीमसेनने बड़े वेगसे उसके बाणोंको नष्ट करके अत्यन्त कुपित हो उसका धनुष काट डाला और पैने बाणोंसे उसे घायल कर दिया ॥ ६८½ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुकर्शनः ॥ ६९ ॥
निपपात तदा भूमौ किंचित्प्राणो नराधिपः ।

बलवान् शत्रुके द्वारा अत्यन्त घायल किया हुआ शत्रु-सूदन राजा शकुनि तत्काल पृथ्वीपर गिर पड़ा। उस समय उसमें जीवनका कुछ-कुछ लक्षण शेष था ॥ ६९½ ॥

ततस्तं विह्वलं ज्ञात्वा पुत्रस्तव विशाम्पते ॥ ७० ॥
अपोवाह रथेनाजौ भीमसेनस्य पश्यतः ।

प्रजानाथ ! उसे विह्वल जानकर आपका पुत्र दुर्योधन रणभूमिमें रथके द्वारा भीमसेनके देखते-देखते अन्यत्र हटा ले गया ॥ ७०½ ॥

रथस्थे तु नरव्याघ्रे धार्तराष्ट्राः पराङ्मुखाः ॥ ७१ ॥
प्रदुद्रुवुर्दिशो भीता भीमाज्जाते महाभये ।

पुरुषसिंह भीमसेन रथपर ही बैठे रहे। उनसे महान् भय प्राप्त होनेके कारण धृतराष्ट्रके सभी पुत्र युद्धसे मुँह मोड़, डरकर सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग गये ॥ ७१½ ॥

सौबले निर्जिते राजन् भीमसेनेन धन्विना ॥ ७२ ॥
भयेन महताऽऽविष्टः पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
अपायाज्जवनैरश्वैः सापेक्षो मातुलं प्रति ॥ ७३ ॥

राजन् ! धनुर्धर भीमसेनके द्वारा शकुनिके परास्त हो जानेपर आपके पुत्र दुर्योधनको बड़ा भय हुआ। वह मामाके जीवनकी रक्षा चाहता हुआ वेगशाली घोड़ोंद्वारा वहाँसे भाग निकला ॥ ७२-७३ ॥

पराङ्मुखं तु राजानं दृष्ट्वा सैन्यानि भारत ।
विप्रजग्मुः समुत्सृज्य द्वैरथानि समन्ततः ॥ ७४ ॥

भारत ! राजा दुर्योधनको युद्धसे विमुख हुआ देख सारी सेनाएँ सब ओरसे द्वैरथ युद्ध छोड़कर भाग चलीं ॥ ७४ ॥

तान् दृष्ट्वा विद्रुतान् सर्वान् धार्तराष्ट्रान् पराङ्मुखान्।
जवेनाभ्यापतद् भीमः किरञ्शरशतान् बहून् ॥ ७५ ॥

धृतराष्ट्रके सभी पुत्रोंको युद्धसे विमुख होकर भागते देख भीमसेन कई सौ बाणोंकी वर्षा करते हुए बड़े वेगसे उनपर टूट पड़े ॥ ७५ ॥

ते वध्यमाना भीमेन धार्तराष्ट्राः पराङ्मुखाः ।
कर्णमासाद्य समरे स्थिता राजन् समन्ततः ॥ ७६ ॥

राजन् ! समराङ्गणमें भीमसेनकी मार खाकर युद्धसे विमुख हुए धृतराष्ट्रके पुत्र सब ओरसे कर्णके पास जाकर खड़े हुए ॥ ७६ ॥

स हि तेषां महावीर्यो द्वीपोऽभूत् सुमहाबलः ।
भिन्ननौका यथा राजन् द्वीपमासाद्य निर्वृताः॥ ७७ ॥
भवन्ति पुरुषव्याघ्र नाविकाः कालपर्यये ।
तथा कर्णं समासाद्य तावकाः पुरुषर्षभ ॥ ७८ ॥
समाश्वस्ताः स्थिता राजन् सम्प्रहृष्टाः परस्परम्।
समाजग्मुश्च युद्धाय मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ७९ ॥

उस समय महापराक्रमी महाबली कर्ण ही उन भागते हुए कौरवोंके लिये द्वीपके समान आश्रयदाता हुआ। पुरुषसिंह ! नरेश्वर ! जैसे टूटी हुई नौकावाले नाविक कुछ कालके पश्चात् किसी द्वीपकी शरण लेकर संतुष्ट होते हैं, उसी प्रकार आपके सैनिक कर्णके पास पहुँचकर परस्पर आश्वासन पाकर निर्भय खड़े हुए। फिर मृत्युको ही युद्धसे निवृत्त होनेकी सीमा निश्चित करके वे युद्धके लिये आगे बढ़े ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि शकुनिपराजये सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें शकुनिकी पराजयविषयक सतहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७७ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २ श्लोक मिलाकर कुल ८१ श्लोक हैं)

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

कर्णके द्वारा पाण्डवसेनाका संहार और पलायन

धृतराष्ट्र उवाच

ततो भग्नेषु सैन्येषु भीमसेनेन संयुगे ।
दुर्योधनोऽब्रवीत् किं नु सौबलो वापि संजय ॥ १ ॥
कर्णो वा जयतां श्रेष्ठो योधा वा मामका युधि।
कृपो वा कृतवर्मा वा द्रौणिर्दुःशासनोऽपि वा ॥ २ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! युद्धस्थलमें भीमसेनके द्वारा जब कौरवसेनाएँ भगा दी गयीं, तब दुर्योधन, शकुनि, विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ कर्ण, मेरे अन्य योद्धा कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा अथवा दुःशासनने क्या कहा ? ॥ १-२ ॥

अत्यद्भुतमहं मन्ये पाण्डवेयस्य विक्रमम् ।
यदेकः समरे सर्वान् योधयामास मामकान् ॥ ३ ॥

मैं पाण्डुनन्दन भीमसेनका पराक्रम बड़ा अद्भुत मानता हूँ कि उन्होंने अकेले ही समराङ्गणमें मेरे समस्त योद्धाओंके साथ युद्ध किया ॥ ३ ॥

यथाप्रतिज्ञं योधानां राधेयः कृतवानपि ।
कुरूणामथ सर्वेषां कर्णः शत्रुनिषूदनः ॥ ४ ॥
शर्म वर्म प्रतिष्ठा च जीविताशा च संजय ।

शत्रुसूदन राधापुत्र कर्णने भी अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार सारा कार्य किया। संजय ! वही समस्त कौरव योद्धाओंका कल्याणकारी आश्रय, कवचके समान संरक्षक, प्रतिष्ठा और जीवनकी आशा था ॥ ४½ ॥

तत् प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा कौन्तेयेनामितौजसा ॥ ५ ॥
राधेयो वाप्याधिरथिः कर्णः किमकरोद् युधि ।
पुत्रा वा मम दुर्धर्षा राजानो वा महारथाः ।

एतन्मे सर्वमाचक्ष्व कुशलो ह्यसि संजय ॥ ६ ॥

अमिततेजस्वी कुन्तीपुत्र भीमसेनके द्वारा अपनी सेनाको भगायी गयी देख अधिरथ और राधाके पुत्र कर्णने युद्धमें कौन-सा पराक्रम किया ? मेरे पुत्रों अथवा महारथी दुर्धर्ष नरेशोंने क्या किया ? संजय ! यह सब वृत्तान्त मुझे बताओ; क्योंकि तुम कथा कहनेमें कुशल हो ॥ ५-६ ॥

संजय उवाच

अपराह्णे महाराज सूतपुत्रः प्रतापवान् ।
जघान सोमकान् सर्वान् भीमसेनस्य पश्यतः॥ ७ ॥

संजय बोला—महाराज ! प्रतापी सूतपुत्रने अपराह्ण कालमें भीमसेनके देखते-देखते समस्त सोमकोंका संहार कर डाला ॥ ७ ॥

भीमोऽप्यतिबलं सैन्यं धार्तराष्ट्रं व्यपोथयत् ।
अथ कर्णोऽब्रवीच्छल्यं पञ्चालान् प्रापयस्व माम्॥ ८ ॥

इसी प्रकार भीमसेनने भी कौरवोंकी अत्यन्त बलवती सेनाको मार गिराया । तत्पश्चात् कर्णने शल्यसे कहा—'मुझे पाञ्चालोंके पास ले चलो' ॥ ८ ॥

द्राव्यमाणं बलं दृष्ट्वा भीमसेनेन धीमता ।
यन्तारमब्रवीत् कर्णः पञ्चालानेव मां वह ॥ ९ ॥

बुद्धिमान् भीमसेनके द्वारा कौरवसेनाको भगायी जाती देख रथी कर्णने सारथि शल्यसे कहा—'मुझे पाञ्चालोंकी ओर ही ले चलो' ॥ ९ ॥

मद्रराजस्ततः शल्यः श्वेतानश्वान् महाजवान् ।
प्राहिणोच्चेदिपञ्चालान् करूषांश्च महाबलः ॥ १० ॥

तब महाबली मद्रराज शल्यने महान् वेगशाली श्वेत अश्वोंको चेदि, पाञ्चाल और करूषोंकी ओर हाँक दिया ॥ १० ॥

प्रविश्य च महत् सैन्यं शल्यः परबलार्दनः ।
न्ययच्छत् तुरगान् हृष्टो यत्र यत्रैच्छदग्रणीः ॥ ११ ॥

शत्रुसेनाको पीड़ित करनेवाले शल्यने उस विशाल सेनामें प्रवेश करके जहाँ सेनापतिकी इच्छा हुई, वहीं बड़े हर्षके साथ घोड़ोंको रोक दिया ॥ ११ ॥

तं रथं मेघसंकाशं वैयाघ्रपरिवारणम् ।
संदृश्य पाण्डुपञ्चालास्त्रस्ता ह्यासन् विशाम्पते॥१२ ॥

प्रजानाथ ! व्याघ्रचर्मसे आच्छादित और मेघगर्जनके समान गम्भीर घोष करनेवाले उस रथको देखकर पाण्डव तथा पाञ्चाल सैनिक त्रस्त हो उठे ॥ १२ ॥

ततो रथस्य निनदः प्रादुरासीन्महारणे ।
पर्जन्यसमनिर्घोषः पर्वतस्येव दीर्यतः ॥ १३ ॥

तदनन्तर उस महायुद्धमें फटते हुए पर्वत और गर्जते हुए मेघके समान उसके रथका गम्भीर घोष प्रकट हुआ ॥

ततः शरशतैस्तीक्ष्णैः कर्ण आकर्णनिःसृतैः ।
जघान पाण्डवबलं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १४ ॥

तत्पश्चात् कर्णने कानतक खींचकर छोड़े गये सैकड़ों तीखे बाणोंद्वारा पाण्डवसेनाके सैकड़ों और हजारों वीरोंका संहार कर डाला ॥ १४ ॥

तं तथा समरे कर्म कुर्वाणमपराजितम् ।
परिवव्रुर्महेष्वासाः पाण्डवानां महारथाः ॥ १५ ॥

संग्राममें ऐसा पराक्रम प्रकट करनेवाले उस अपराजित वीरको महाधनुर्धर पाण्डव महारथियोंने चारों ओरसे घेर लिया ॥ १५ ॥

तं शिखण्डी च भीमश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाश्च सात्यकिः ॥ १६ ॥
परिवव्रुर्जिघांसन्तो राधेयं शरवृष्टिभिः ।

शिखण्डी, भीमसेन, द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न, नकुल-सहदेव, द्रौपदीके पाँचों पुत्र और सात्यकिने अपने बाणोंकी वर्षाद्वारा राधापुत्र कर्णको मार डालनेकी इच्छासे उसे सब ओरसे घेर लिया ॥ १६½ ॥

सात्यकिस्तु तदा कर्णं विंशत्या निशितैः शरैः॥ १७ ॥
अताडयद् रणे शूरो जत्रुदेशे नरोत्तमः ।

उस समय शूरवीर नरश्रेष्ठ सात्यकिने रणभूमिमें बीस पैने बाणोंद्वारा कर्णके गलेकी हँसलीपर प्रहार किया ॥१७½॥

शिखण्डी पञ्चविंशत्या धृष्टद्युम्नश्च सप्तभिः ॥ १८ ॥
द्रौपदेयाश्चतुःषष्ट्या सहदेवश्च सप्तभिः ।
नकुलश्च शतेनाजौ कर्णं विव्याध सायकैः ॥ १९ ॥

शिखण्डीने पचीस, धृष्टद्युम्नने सात, द्रौपदीके पुत्रोंने चौसठ, सहदेवने सात और नकुलने सौ बाणोंद्वारा कर्णको युद्धमें घायल कर दिया ॥ १८-१९ ॥

भीमसेनस्तु राधेयं नवत्या नतपर्वणाम् ।
विव्याध समरे क्रुद्धो जत्रुदेशे महाबलः ॥ २० ॥

तदनन्तर महाबली भीमसेनने समरभूमिमें कुपित हो राधापुत्र कर्णके गलेकी हँसलीपर झुकी हुई गाँठवाले नब्बे बाणोंका प्रहार किया ॥ २० ॥

अथ प्रहस्याधिरथिर्व्याक्षिपद् धनुरुत्तमम् ।
मुमोच निशितान् बाणान् पीडयन् सुमहाबलः॥ २१ ॥

तब अधिरथपुत्र महाबली कर्णने हँसकर अपने उत्तम धनुषकी टंकार की और उन सबको पीड़ा देते हुए उनपर पैने बाणोंका प्रहार आरम्भ किया ॥ २१ ॥

तान् प्रत्यविध्यद् राधेयः पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ।
सात्यकेस्तु धनुश्छित्त्वा ध्वजं च भरतर्षभ ॥ २२ ॥
तं तथा नवभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ।

भरतश्रेष्ठ ! राधापुत्र कर्णने पाँच-पाँच बाणोंसे उन सबको घायल कर दिया । फिर सात्यकिका ध्वज और धनुष काटकर उनकी छातीमें नौ बाणोंका प्रहार किया ॥ २२½ ॥

भीमसेनं ततः क्रुद्धो विव्याध त्रिंशता शरैः ॥ २३ ॥
सहदेवस्य भल्लेन ध्वजं चिच्छेद मारिष ।

आर्य ! तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए कर्णने भीमसेनको

तीस बाणोंसे घायल किया और एक भल्लसे सहदेवकी ध्वजा काट डाली ॥ २३½ ॥

सारथिं च त्रिभिर्बाणैराजघान परंतपः ॥ २४ ॥
विरथान् द्रौपदेयांश्च चकार भरतर्षभ ।
अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २५ ॥

इतना ही नहीं, शत्रुओंको संताप देनेवाले कर्णने तीन बाणोंसे सहदेवके सारथिको भी मार डाला और पलक मारते-मारते द्रौपदीके पुत्रोंको रथहीन कर दिया। भरतश्रेष्ठ ! वह अद्भुत-सा कार्य हुआ ॥ २४-२५ ॥

विमुखीकृत्य तान् सर्वाञ्शरैः संनतपर्वभिः ।
पञ्चालानहनच्छूरांश्चेदीनां च महारथान् ॥ २६ ॥

उसने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे उन समस्त वीरोंको युद्धसे विमुख करके पाञ्चालवीरों और चेदि-देशीय महारथियोंको मारना आरम्भ किया ॥ २६ ॥

ते वध्यमानाः समरे चेदिमत्स्या विशाम्पते ।
कर्णमेकमभिद्रुत्य शरसङ्घैः समार्पयन् ॥ २७ ॥

प्रजानाथ ! समरमें घायल होते हुए भी चेदि और मत्स्य देशके वीरोंने एकमात्र कर्णपर धावा करके उसे बाण-समूहोंसे ढक दिया ॥ २७ ॥

ताञ्जघान शितैर्बाणैः सूतपुत्रो महारथः ।
ते वध्यमानाः समरे चेदिमत्स्या विशाम्पते ॥ २८ ॥
प्राद्रवन्त रणे भीताः सिंहत्रस्ता मृगा इव ।

महारथी सूतपुत्रने पैने बाणोंसे उन सबको घायल कर दिया । प्रजानाथ ! समरमें मारे जाते हुए चेदि और मत्स्य देशके वीर सिंहसे डरे हुए मृगोंके समान रणभूमिमें कर्णसे भयभीत हो भागने लगे ॥ २८½ ॥

एतदत्यद्भुतं कर्म दृष्टवानस्मि भारत ॥ २९ ॥
यदेकः समरे शूरान् सूतपुत्रः प्रतापवान् ।
यतमानान् परं शक्त्या योधयानांश्च धन्विनः॥ ३० ॥
पाण्डवेयान् महाराज शरैर्वारितवान् रणे ।

भारत ! महाराज ! यह अद्भुत पराक्रम मैंने अपनी आँखों देखा था कि अकेले प्रतापी सूतपुत्रने समराङ्गणमें पूरी शक्ति लगाकर प्रयत्नपूर्वक युद्ध करनेवाले पाण्डवपक्षीय धनुर्धर वीरोंको अपने बाणोंद्वारा रणभूमिमें आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ २९-३०½ ॥

तत्र भारत कर्णस्य लाघवेन महात्मनः ॥ ३१ ॥
तुतुषुर्देवताः सर्वाः सिद्धाश्च सह चारणैः ।

भरतनन्दन ! वहाँ महामनस्वी कर्णकी फुर्ती देखकर चारणोंसहित सिद्धगण और सम्पूर्ण देवता बहुत संतुष्ट हुए ॥

अपूजयन् महेष्वासा धार्तराष्ट्रा नरोत्तमम् ॥ ३२ ॥
कर्णं रथवरश्रेष्ठं श्रेष्ठं सर्वधनुष्मताम् ।

धृतराष्ट्रके महाधनुर्धर पुत्र सम्पूर्ण धनुर्धरों तथा रथियोंमें श्रेष्ठ नरोत्तम कर्णकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे ॥ ३२½ ॥

ततः कर्णो महाराज ददाह रिपुवाहिनीम् ॥ ३३ ॥
कक्षमिद्धो यथा वह्निर्निदाघे ज्वलितो महान् ।

महाराज ! जैसे ग्रीष्मऋतुमें अत्यन्त प्रज्वलित हुई आग सूखे काठ एवं घास-फूसको जला देती है, उसी प्रकार कर्ण शत्रुसेनाको दग्ध करने लगा ॥ ३३½ ॥

ते वध्यमानाः कर्णेन पाण्डवेयास्ततस्ततः ॥ ३४ ॥
प्राद्रवन्त रणे भीताः कर्णं दृष्ट्वा महारथम् ।

कर्णके द्वारा मारे जाते हुए पाण्डवसैनिक रणभूमिमें उस महारथी वीरको देखते ही भयभीत हो जहाँ-तहाँसे भागने लगे ॥ ३४½ ॥

तत्राक्रन्दो महानासीत् पञ्चालानां महारणे ॥ ३५ ॥
वध्यतां सायकैस्तीक्ष्णैः कर्णचापवरच्युतैः ।

कर्णके धनुषसे छूटे हुए तीखे बाणोंद्वारा मारे जानेवाले पाञ्चालोंका महान् आर्तनाद उस महासमरमें गूँजने लगा ॥

तेन शब्देन वित्रस्ता पाण्डवानां महाचमूः ॥ ३६ ॥
कर्णमेकं रणे योधं मेनिरे तत्र शात्रवाः ।

उस घोर शब्दसे पाण्डवोंकी विशाल सेना भयभीत हो उठी । शत्रुओंके सभी सैनिक रणभूमिमें एकमात्र कर्णको ही सर्वश्रेष्ठ योद्धा मानने लगे ॥ ३६½ ॥

तत्राद्भुतं पुनश्चक्रे राधेयः शत्रुकर्शनः ॥ ३७ ॥
यदेनं पाण्डवाः सर्वे न शेकुरभिवीक्षितुम् ।

शत्रुसूदन राधापुत्रने पुनः वहाँ अद्भुत पराक्रम प्रकट किया, जिससे समस्त पाण्डव-योद्धा उसकी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सके ॥ ३७½ ॥

यथौघः पर्वतश्रेष्ठमासाद्याभिप्रदीर्यते ॥ ३८ ॥
तथा तत् पाण्डवं सैन्यं कर्णमासाद्य दीर्यते ।

जैसे जलका महान् प्रवाह किसी ऊँचे पर्वतसे टकराकर कई धाराओंमें बँट जाता है, उसी प्रकार पाण्डवसेना कर्णके पास पहुँचकर तितर-बितर हो जाती थी ॥ ३८½ ॥

कर्णोऽपि समरे राजन् विधूमोऽग्निरिव ज्वलन्॥ ३९ ॥
दहंस्तस्थौ महाबाहुः पाण्डवानां महाचमूम् ।

राजन् ! समराङ्गणमें धूमरहित अग्निके समान प्रज्वलित होनेवाला महाबाहु कर्ण भी पाण्डवोंकी विशाल सेनाको दग्ध करता हुआ स्थिरभावसे खड़ा रहा ॥ ३९½ ॥

शिरांसि च महाराज कर्णांश्चैव सकुण्डलान् ॥ ४० ॥
बाहूंश्च वीरो वीराणां चिच्छेद लघु चेषुभिः ।

महाराज ! वीर कर्णने बाणोंद्वारा पाण्डव-पक्षके वीरोंके मस्तक, कुण्डलसहित कान तथा भुजाएँ शीघ्रतापूर्वक काट डालीं ॥ ४०½ ॥

हस्तिदन्तत्सरून् खड्गान् ध्वजाञ्शक्तीर्हयान् गजान्॥
रथांश्च विविधान् राजन् पताका व्यजनानि च ।
अक्षं च युगयोक्त्राणि चक्राणि विविधानि च॥ ४२ ॥
चिच्छेद बहुधा कर्णो योधव्रतमनुष्ठितः ।

राजन् ! योद्धाओंके व्रतका पालन करनेवाले कर्णने हाथी-दाँतकी बनी हुई मूँठवाले खड्गों, ध्वजों, शक्तियों, घोड़ों, हाथियों, नाना प्रकारके रथों, पताकाओं, व्यजनों, धुरों, जूओं, जोतों और भाँति-भाँतिके पहियोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ ४१-४२½ ॥

तत्र भारत कर्णेन निहतैर्गजवाजिभिः ॥ ४३ ॥
अगम्यरूपा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा ।

भारत ! वहाँ कर्णद्वारा मारे गये हाथियों और घोड़ोंकी लाशोंसे पृथ्वीपर चलना असम्भव हो गया । रक्त और मांसकी कीच जम गयी ॥ ४३½ ॥

विषमं च समं चैव हतैरश्वपदातिभिः ॥ ४४ ॥
रथैश्च कुञ्जरैश्चैव न प्राज्ञायत किञ्चन ।

मरे हुए घोड़ों, पैदलों, रथों और हाथियोंसे पट जानेके कारण वहाँकी ऊँची-नीची भूमिका कुछ पता नहीं लगता था ॥

नापि स्वे न परे योधाः प्राज्ञायन्त परस्परम् ॥ ४५ ॥
घोरे शरान्धकारे तु कर्णास्त्रे च विजृम्भिते ।

कर्णका अस्त्र जब वेगपूर्वक बढ़ने लगा तो वहाँ बाणोंसे घोर अन्धकार छा गया । उसमें अपने और शत्रुपक्षके योद्धा परस्पर पहचाने नहीं जाते थे ॥ ४५½ ॥

राधेयचापनिर्मुक्तैः शरैः काञ्चनभूषणैः ॥ ४६ ॥
संछादिता महाराज पाण्डवानां महारथाः ।

महाराज ! राधापुत्रके धनुषसे छूटे हुए सुवर्णभूषित बाणोंद्वारा समस्त पाण्डव महारथी आच्छादित हो गये ॥

ते पाण्डवेयाः समरे राधेयेन पुनः पुनः ॥ ४७ ॥
अभज्यन्त महाराज यतमाना महारथाः ।

महाराज ! समरभूमिमें प्रयत्नपूर्वक युद्ध करनेवाले पाण्डवपक्षके महारथी राधापुत्र कर्णके द्वारा बारंबार भागनेको विवश कर दिये जाते थे ॥ ४७½ ॥

मृगसङ्घान् यथा क्रुद्धः सिंहो द्रावयते वने ॥ ४८ ॥
पञ्चालानां रथश्रेष्ठान् द्रावयञ्शात्रवांस्तथा ।
कर्णस्तु समरे योधांस्त्रासयन् सुमहायशाः ॥ ४९ ॥
कालयामास तत् सैन्यं यथा पशुगणान् वृकः ।

जैसे वनमें कुपित हुआ सिंह मृगसमूहोंको खदेड़ता रहता है, उसी प्रकार शत्रुपक्षके पाञ्चाल महारथियोंको भगाता हुआ महायशस्वी कर्ण समराङ्गणमें समस्त योद्धाओंको त्रास देने लगा । जैसे भेड़िया पशुसमूहोंको भयभीत करके भगा देता है, उसी प्रकार कर्णने पाण्डवसेनाको खदेड़ दिया ॥

दृष्ट्वा तु पाण्डवीं सेनां धार्तराष्ट्राः पराङ्मुखीम् ॥ ५० ॥
तत्राजग्मुर्महेष्वासा रुवन्तो भैरवान् रवान् ।

पाण्डवसेनाको युद्धसे विमुख हुई देख आपके महाधनुर्धर पुत्र भीषण गर्जना करते हुए वहाँ आ पहुँचे ॥

दुर्योधनो हि राजेन्द्र मुदा परमया युतः ॥ ५१ ॥
वादयामास संहृष्टो नानावाद्यानि सर्वशः ।

राजेन्द्र ! उस समय दुर्योधनको बड़ी प्रसन्नता हुई । वह हर्षमें भरकर सब ओर नाना प्रकारके बाजे बजवाने लगा ॥

पञ्चालापि महेष्वासा भग्नास्तत्र नरोत्तमाः ॥ ५२ ॥
न्यवर्तन्त यथा शूरं मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ।

उस समय वहाँ भगे हुए महाधनुर्धर नरश्रेष्ठ पाञ्चाल मृत्युको ही युद्धसे लौटनेकी अवधि निश्चित करके पुनः सूतपुत्र कर्णसे जूझनेके लिये लौट आये ॥ ५२½ ॥

तान् निवृत्तान् रणे शूरान् राधेयः शत्रुतापनः ॥ ५३ ॥
अनेकशो महाराज बभञ्ज पुरुषर्षभः ।

महाराज ! शत्रुओंको संताप देनेवाला पुरुषश्रेष्ठ राधापुत्र कर्ण उन लौटे हुए शूरवीरोंको रणभूमिमें बारंबार भगा देता था ॥

तत्र भारत कर्णेन पञ्चाला विंशती रथाः ॥ ५४ ॥
निहताः सायकैः क्रोधाच्चेदयश्च परः शताः ।

भरतनन्दन ! कर्णने वहाँ बाणोंद्वारा बीस पाञ्चाल रथियों और सौसे भी अधिक चेदिदेशीय योद्धाओंको क्रोधपूर्वक मार डाला ॥ ५४½ ॥

कृत्वा शून्यान् रथोपस्थान् वाजिपृष्ठांश्च भारत ॥ ५५ ॥
निर्मनुष्यान् गजस्कन्धान् पादातांश्चैव विद्रुतान् ।

भारत ! उसने रथकी बैठकें सूनी कर दीं, घोड़ोंकी पीठें खाली कर दीं, हाथियोंके पीठों और कंधोंपर कोई मनुष्य नहीं रहने दिये और पैदलोंको भी मार भगाया ॥ ५५½ ॥

आदित्य इव मध्याह्ने दुर्निरीक्ष्यः परंतपः ॥ ५६ ॥
कालान्तकवपुः शूरः सूतपुत्रोऽभ्यराजत ।

इस प्रकार शत्रुओंको तपानेवाला कर्ण मध्याह्नकालके सूर्यकी भाँति तप रहा था । उस समय उसकी ओर देखना कठिन हो गया था । शूरवीर सूतपुत्रका शरीर काल और अन्तकके समान सुशोभित हो रहा था ॥ ५६½ ॥

एवमेतन्महाराज नरवाजिरथद्विपान् ॥ ५७ ॥
हत्वा तस्थौ महेष्वासः कर्णोऽरिगणसूदनः ।
यथा भूतगणान् हत्वा कालस्तिष्ठेन्महाबलः ॥ ५८ ॥
तथा स सोमकान् हत्वा तस्थावेको महारथः ।

महाराज ! इस प्रकार शत्रुसूदन महाधनुर्धर कर्ण शत्रु-पक्षके पैदल, घोड़े, रथ और हाथियोंका संहार करके अविचल भावसे खड़ा रहा । जैसे समस्त प्राणियोंका संहार करके काल खड़ा हो, उसी प्रकार महाबली महारथी कर्ण सोमकोंका विनाश करके युद्धभूमिमें अकेला ही डटा रहा ॥५७-५८½॥

तत्राद्भुतमपश्याम पञ्चालानां पराक्रमम् ॥ ५९ ॥
वध्यमानापि यत् कर्णं नाजह्रू रणमूर्धनि ।

वहाँ हमलोगोंने पाञ्चाल वीरोंका यह अद्भुत पराक्रम देखा कि वे मारे जानेपर भी युद्धके मुहानेपर कर्णको छोड़कर पीछे न हटे ॥ ५९½ ॥

राजा दुःशासनश्चैव कृपः शारद्वतस्तथा ॥ ६० ॥
अश्वत्थामा कृतवर्मा शकुनिश्च महाबलः ।
न्यहनन् पाण्डवीं सेनां शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६१ ॥

राजा दुर्योधन, दुःशासन, शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कृतवर्मा और महाबली शकुनिने भी पाण्डव-सेनाके सैकड़ों-हजारों वीरोंका संहार कर डाला ॥ ६०-६१ ॥

कर्णपुत्रौ तु राजेन्द्र भ्रातरौ सत्यविक्रमौ।
निजघ्नाते बलं क्रुद्धौ पाण्डवानामितस्ततः ॥ ६२ ॥

राजेन्द्र ! कर्णके दो सत्यपराक्रमी पुत्र शेष रह गये थे। वे दोनों भाई क्रोधपूर्वक इधर-उधरसे पाण्डव-सेनाका विनाश करते थे ॥ ६२ ॥

तत्र युद्धं महच्चासीत् क्रूरं विशसनं महत्।
तथैव पाण्डवाः शूरा धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥ ६३ ॥
द्रौपदेयाश्च संक्रुद्धा अभ्यघ्नंस्तावकं बलम्।

इस प्रकार वहाँ महान् संहारकारी एवं क्रूरतापूर्ण भारी युद्ध हुआ। इसी तरह पाण्डववीर धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और द्रौपदीके पाँचों पुत्र आदिने भी कुपित होकर आपकी सेनाका संहार किया ॥ ६३½ ॥

एवमेष क्षयो वृत्तः पाण्डवानां ततस्ततः।
तावकानामपि रणे भीमं प्राप्य महाबलम् ॥ ६४ ॥

इस प्रकार कर्णको पाकर जहाँ-तहाँ पाण्डव योद्धाओंका संहार हुआ और महाबली भीमसेनको पाकर रणभूमिमें आपके योद्धाओंका भी महान् विनाश हुआ ॥ ६४ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धेऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक अठहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितमोऽध्यायः

अर्जुनका कौरवसेनाको विनाश करके खूनकी नदी बहा देना और अपना रथ कर्णके पास ले चलनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णसे कहना तथा श्रीकृष्ण और अर्जुनको आते देख शल्य और कर्णकी बातचीत तथा अर्जुनद्वारा कौरवसेनाका विध्वंस

संजय उवाच

अर्जुनस्तु महाराज हत्वा सैन्यं चतुर्विधम्।
सूतपुत्रं च संक्रुद्धं दृष्ट्वा चैव महारणे ॥ १ ॥
शोणितोदां महीं कृत्वा मांसमज्जास्थिपङ्किलाम्।
मनुष्यशीर्षपाषाणां हस्त्यश्वकृतरोधसम् ॥ २ ॥
शूरास्थिचयसंकीर्णां काकगृध्रानुनादिताम्।
छत्रहंसप्लवोपेतां वीरवृक्षापहारिणीम् ॥ ३ ॥
हारपद्माकरवतीमुष्णीषवरफेनिलाम् ।
धनुःशरध्वजोपेतां नरक्षुद्रकपालिनीम् ॥ ४ ॥
चर्मवर्मभ्रमोपेतां रथोडुपसमाकुलाम्।
जयैषिणां च सुतरां भीरूणां च सुदुस्तराम् ॥ ५ ॥
नदीं प्रवर्तयित्वा च बीभत्सुः परवीरहा।
वासुदेवमिदं वाक्यमब्रवीत् पुरुषर्षभः ॥ ६ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! उस महासमरमें शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले अर्जुनने क्रोधमें भरे हुए सूतपुत्रको देखकर कौरवोंकी चतुरङ्गिणी सेनाका विनाश करके वहाँ रक्तकी नदी बहा दी। जिसमें जलके स्थानमें इस पृथ्वीपर रक्त ही बह रहा था; मांस-मज्जा और हड्डियाँ कीचड़का काम दे रही थीं। मनुष्योंके कटे हुए मस्तक पत्थरोंके टुकड़ोंके समान जान पड़ते थे, हाथी और घोड़ोंकी लाशें कगार बनी हुई थीं, शूरवीरोंकी हड्डियोंके ढेर वहाँ सब ओर बिखरे हुए थे, कौए और गीध वहाँ अपनी बोली बोल रहे थे, छत्र ही हंस और छोटी नौकाका काम देते थे, वीरोंके शरीररूपी वृक्षको वह नदी बहाये लिये जाती थी, उसमें हार ही कमलवन और सफेद पगड़ी ही फेन थी, धनुष और बाण वहाँ मछलीके समान जान पड़ते थे, मनुष्योंकी छोटी-छोटी खोपड़ियाँ वहाँ बिखरी पड़ी थीं, ढाल और कवच ही उसमें भँवरके समान प्रतीत होते थे, रथरूपी छोटी नौकासे व्याप्त वह नदी विजयाभिलाषी वीरोंके लिये सुगमतापूर्वक पार होने योग्य और कायरोंके लिये अत्यन्त दुस्तर थी। उस नदीको बहाकर पुरुषप्रवर अर्जुनने वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा ॥ १—६ ॥

अर्जुन उवाच

एष केतू रणे कृष्ण सूतपुत्रस्य दृश्यते।
भीमसेनादयश्चैते योधयन्ति महारथम् ॥ ७ ॥

अर्जुन बोले—श्रीकृष्ण ! रणभूमिमें यह सूतपुत्र कर्णकी ध्वजा दिखायी देती है। ये भीमसेन आदि वीर महारथी कर्णसे युद्ध करते हैं ॥ ७ ॥

एते द्रवन्ति पञ्चालाः कर्णत्रस्ता जनार्दन।
एष दुर्योधनो राजा श्वेतच्छत्रेण धार्यता ॥ ८ ॥
कर्णेन भग्नान् पञ्चालान् द्रावयन् बहु शोभते।

जनार्दन ! ये पाञ्चालयोद्धा कर्णसे डरकर भाग रहे हैं, यह राजा दुर्योधन है, जिसके ऊपर श्वेत छत्र तना हुआ है और कर्णने जिनके पाँव उखाड़ दिये हैं उन पाञ्चालोंको खदेड़ता हुआ यह बड़ी शोभा पा रहा है ॥ ८½ ॥

कृपश्च कृतवर्मा च द्रौणिश्चैव महारथः ॥ ९ ॥
एते रक्षन्ति राजानं सूतपुत्रेण रक्षिताः।
अवध्यमानास्तेऽस्माभिर्घातयिष्यन्ति सोमकान् ॥ १० ॥

कृपाचार्य, कृतवर्मा और महारथी अश्वत्थामा—ये सूतपुत्रसे सुरक्षित हो राजा दुर्योधनकी रक्षा करते हैं। यदि हम इन तीनोंको नहीं मारते हैं तो ये सोमकोंका संहार कर डालेंगे ॥ ९-१० ॥

एष शल्यो रथोपस्थे रश्मिसंचारकोविदः।
सूतपुत्ररथं कृष्ण वाहयन् बहु शोभते ॥ ११ ॥

श्रीकृष्ण ! घोड़ोंकी बागडोरका संचालन करनेकी कलामें कुशल ये राजा शल्य रथके निचले भागमें बैठकर सूतपुत्रका रथ हाँकते हुए बड़ी शोभा पाते हैं ॥ ११ ॥

तत्र मे बुद्धिरुत्पन्ना वाहयात्र महारथम्।
नाहत्वा समरे कर्णं निवर्तिष्ये कथञ्चन ॥ १२ ॥
राधेयो ह्यन्यथा पार्थान् सृञ्जयांश्च महारथान्।
निःशेषान् समरे कुर्यात् पश्यतां नो जनार्दन ॥ १३ ॥

जनार्दन ! यहाँ मेरा ऐसा विचार हो रहा है कि आप मेरे इस विशाल रथको वहीं हाँक ले चलें (जहाँ कर्ण खड़ा है)। मैं समराङ्गणमें कर्णका वध किये बिना किसी प्रकार पीछे नहीं लौटूँगा। अन्यथा राधापुत्र हमारे देखते-देखते पाण्डव तथा सृंजय महारथियोंको समरभूमिमें निःशेष कर देगा— किसीको जीवित नहीं छोड़ेगा ॥ १२-१३ ॥

ततः प्रायाद् रथेनाशु केशवस्तव वाहिनीम्।
कर्णं प्रति महेष्वासं द्वैरथे सव्यसाचिना ॥ १४ ॥

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण रथके द्वारा शीघ्र ही सव्यसाची अर्जुनके साथ कर्णका द्वैरथ युद्ध करानेके लिये आपकी सेनामें महाधनुर्धर कर्णकी ओर चले ॥ १४ ॥

प्रयातश्च महाबाहुः पाण्डवानुज्ञया हरिः।
आश्वासयन् रथेनैव पाण्डुसैन्यानि सर्वशः ॥ १५ ॥

अर्जुनकी अनुमतिसे महाबाहु श्रीकृष्ण रथके द्वारा ही पाण्डव-सेनाओंको सब ओरसे आश्वासन देते हुए आगे बढ़े ॥

रथघोषः स संग्रामे पाण्डवेयस्य सम्बभौ।
वासवाशनितुल्यस्य मेघौघस्येव मारिष ॥ १६ ॥

मान्यवर नरेश ! संग्राममें पाण्डुपुत्र अर्जुनके रथका वह घर्घरघोष इन्द्रके वज्रकी गड़गड़ाहट तथा मेघसमूहोंकी गर्जनाके समान प्रतीत होता था ॥ १६ ॥

महता रथघोषेण पाण्डवः सत्यविक्रमः।
अभ्ययादप्रमेयात्मा निर्जयंस्तव वाहिनीम् ॥ १७ ॥

सत्यपराक्रमी पाण्डव अर्जुन अप्रमेय आत्मबलसे सम्पन्न थे। वे महान् रथघोषके द्वारा आपकी सेनाको परास्त करते हुए आगे बढ़े ॥ १७ ॥

तमायान्तं समीक्ष्यैव श्वेताश्वं कृष्णसारथिम्।
मद्रराजोऽब्रवीत् कर्णं केतुं दृष्ट्वा महात्मनः ॥ १८ ॥

श्रीकृष्ण जिनके सारथि हैं, उन श्वेतवाहन अर्जुनको आते देख और उन महात्माकी ध्वजापर दृष्टिपात करके मद्रराज शल्यने कर्णसे कहा—॥ १८ ॥

अयं स रथ आयाति श्वेताश्वः कृष्णसारथिः।
निघ्नन्नमित्रान् समरे यं कर्ण परिपृच्छसि ॥ १९ ॥

'कर्ण ! तुम जिसके विषयमें पूछ रहे थे, वही यह श्वेत घोड़ोंवाला रथ, जिसके सारथि श्रीकृष्ण हैं, समराङ्गणमें शत्रुओं-का संहार करता हुआ इधर ही आ रहा है ॥ १९ ॥

एष तिष्ठति कौन्तेयः संस्पृशन् गाण्डिवं धनुः।
तं हनिष्यसि चेदद्य तन्नः श्रेयो भविष्यति ॥ २० ॥

'ये कुन्तीकुमार अर्जुन हाथमें गाण्डीव धनुष लिये हुए खड़े हैं। यदि तुम आज उनको मार डालोगे तो वह हम-लोगोंके लिये श्रेयस्कर होगा ॥ २० ॥

धनुर्ज्या चन्द्रताराङ्का पताकाकिङ्किणीयुता।
पश्य कर्णार्जुनस्यैषा सौदामन्यम्बरे यथा ॥ २१ ॥

'कर्ण ! देखो, अर्जुनके धनुषकी यह प्रत्यञ्चा तथा चन्द्रमा और तारोंसे चिह्नित यह रथकी पताका है, जिसमें छोटी-छोटी घंटियाँ लगी हैं, वह आकाशमें बिजलीके समान चमक रही है ॥ २१ ॥

एष ध्वजाग्रे पार्थस्य प्रेक्षमाणः समन्ततः।
दृश्यते वानरो भीमो वीराणां भयवर्धनः ॥ २२ ॥

'कुन्तीकुमार अर्जुनकी ध्वजाके अग्रभागमें एक भयङ्कर वानर दिखायी देता है, जो सब ओर देखता हुआ कौरव-वीरोंका भय बढ़ा रहा है ॥ २२ ॥

एतच्चक्रं गदा शङ्खः शार्ङ्गं कृष्णस्य च प्रभो।
दृश्यते पाण्डवरथे वाहयानस्य वाजिनः ॥ २३ ॥

'पाण्डुपुत्रके रथपर बैठकर घोड़े हाँकते हुए भगवान् श्रीकृष्णके ये चक्र, गदा, शङ्ख तथा शार्ङ्ग धनुष दृष्टिगोचर हो रहे हैं ॥ २३ ॥

एतत् कूजति गाण्डीवं विसृष्टं सव्यसाचिना।
एते हस्तवता मुक्ता घ्नन्त्यमित्राञ्शिताः शराः॥ २४ ॥

'यह सव्यसाचीके द्वारा खींचा गया गाण्डीव धनुष टङ्कार रहा है, सिद्धहस्त अर्जुनके छोड़े हुए ये पैने बाण शत्रुओंका विनाश कर रहे हैं ॥ २४ ॥

विशालायतताम्राक्षैः पूर्णचन्द्रनिभाननैः।
एषा भूः कीर्यते राज्ञां शिरोभिरपलायिनाम् ॥ २५ ॥

'जो युद्धसे कभी पीछे नहीं हटते, उन राजाओंके कटे हुए मस्तकोंसे यह रणभूमि पटी जा रही है। उन मस्तकोंके नेत्र बड़े-बड़े और लाल हैं तथा मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर है ॥ २५ ॥

एते परिघसंकाशाः पुण्यगन्धानुलेपनाः।
उद्धता रणशूराणां पात्यन्ते सायुधा भुजाः ॥ २६ ॥

'रणवीरोंकी ये अस्त्र-शस्त्रोंसहित उठी हुई भुजाएँ, जो परिघोंके समान मोटी तथा पवित्र सुगन्धयुक्त चन्दनसे चर्चित हैं, काटकर गिरायी जा रही हैं ॥ २६ ॥

निरस्तजिह्वानेत्रान्ता वाजिनः सह सादिभिः।
पतिताः पात्यमानाश्च क्षितौ क्षीणा विशेरते ॥ २७ ॥

'ये कौरवपक्षके सवारोंसहित घोड़े क्षत-विक्षत हो, अर्जुनके द्वारा गिराये जा रहे हैं। इनकी जीभें और आँखें बाहर निकल आयी हैं। ये गिरकर पृथ्वीपर सो रहे हैं ॥

एते पर्वतशृङ्गाणां तुल्या हैमवता गजाः।
संछिन्नकुम्भाः पार्थेन प्रपतन्त्यद्रयो यथा ॥ २८ ॥

'ये हिमाचलप्रदेशके हाथी, जो पर्वत-शिखरोंके समान जान पड़ते हैं, पर्वतोंके समान धराशायी हो रहे हैं। अर्जुनने इनके कुम्भस्थल काट डाले हैं ॥ २८ ॥

गन्धर्वनगराकारा रथा वा ते नरेश्वराः।
विमानादिव पुण्यान्ते स्वर्गिणो निपतन्त्यमी ॥ २९ ॥

'ये गन्धर्व-नगरके समान विशाल रथ हैं, जिनसे ये मारे गये राजालोग उसी प्रकार नीचे गिर रहे हैं, जैसे पुण्य समाप्त होनेपर स्वर्गवासी प्राणी विमानसे नीचे गिर जाते हैं ॥

व्याकुलीकृतमत्यर्थं परसैन्यं किरीटिना।
नानामृगसहस्राणां यूथं केसरिणा यथा ॥ ३० ॥

'किरीटधारी अर्जुनने शत्रुसेनाको उसी प्रकार अत्यन्त व्याकुल कर दिया है, जैसे सिंह नाना जातिके सहस्रों मृगोंके झुंडको व्याकुल कर देता है ॥ ३० ॥

त्वामभिप्रेप्सुरायाति कर्ण निघ्नन् वरान् रथान्।
असह्यमानो राधेय तं याहि प्रति भारत ॥ ३१ ॥

'राधापुत्र कर्ण ! अर्जुन बड़े-बड़े रथियोंका संहार करते हुए तुम्हें ही प्राप्त करनेके लिये इधर आ रहे हैं। ये शत्रुओंके लिये असह्य हैं। तुम इन भरतवंशी वीरका सामना करनेके लिये आगे बढ़ो ॥ ३१ ॥

(घृणां त्यक्त्वा प्रमादं च भृगोरस्त्रं च संस्मर।
दृष्टिं मुष्टिं च संधानं स्मृत्वा रामोपदेशजम्।
धनंजयं जयप्रेप्सुः प्रत्युद्गच्छ महारथम् ॥)

'कर्ण ! तुम दया और प्रमाद छोड़कर भृगुवंशी परशुरामजीके दिये हुए अस्त्रका स्मरण करो, उनके उपदेशके अनुसार लक्ष्यकी ओर दृष्टि रखना, धनुषको अपनी मुट्ठीसे दृढ़तापूर्वक पकड़े रहना और बाणोंका संधान करना आदि बातें याद करके मनमें विजय पानेकी इच्छा लिये महारथी अर्जुनका सामना करनेके लिये आगे बढ़ो ॥

एषा विदीर्यते सेना धार्तराष्ट्री समन्ततः।
अर्जुनस्य भयात् तूर्णं निघ्नतः शात्रवान् बहून् ॥ ३२ ॥

'अर्जुन थोड़ी ही देरमें बहुत-से शत्रुओंका संहार कर डालते हैं, इसलिये उनके भयसे दुर्योधनकी यह सेना चारों ओरसे छिन्न-भिन्न होकर भागी जा रही है ॥ ३२ ॥

वर्जयन् सर्वसैन्यानि त्वरते हि धनंजयः।
त्वदर्थमिति मन्येऽहं यथास्योदीर्यते वपुः ॥ ३३ ॥

'इस समय अर्जुनका शरीर जैसा उत्तेजित हो रहा है उससे मैं समझता हूँ कि वे सारी सेनाओंको छोड़कर तुम्हारे पास पहुँचनेके लिये जल्दी कर रहे हैं ॥ ३३ ॥

न ह्यवस्थास्यते पार्थो युयुत्सुः केनचित् सह।
त्वामृते क्रोधदीप्तो हि पीड्यमाने वृकोदरे ॥ ३४ ॥

'भीमसेनके पीड़ित होनेसे अर्जुन क्रोधसे तमतमा उठे हैं, इसलिये आज तुम्हारे सिवा और किसीसे युद्ध करनेके लिये वे नहीं रुक सकेंगे ॥ ३४ ॥

विरथं धर्मराजं तु दृष्ट्वा सुदृढविक्षतम्।
शिखण्डिनं सात्यकिं च धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ॥ ३५ ॥
द्रौपदेयान् युधामन्युमुत्तमौजसमेव च।
नकुलं सहदेवं च भ्रातरौ द्वौ समीक्ष्य च ॥ ३६ ॥
सहसैकरथः पार्थस्त्वामभ्येति परंतपः।
क्रोधरक्तेक्षणः क्रुद्धो जिघांसुः सर्वपार्थिवान् ॥ ३७ ॥

'तुमने धर्मराज युधिष्ठिरको अत्यन्त घायल करके रथहीन कर दिया है। शिखण्डी, द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न, सात्यकि, द्रौपदीके पुत्रों, उत्तमौजा, युधामन्यु तथा दोनों भाई नकुल-सहदेवको भी तुम्हारे हाथों बहुत चोट पहुँची है। यह सब देखकर शत्रुओंको संताप देनेवाले कुन्तीकुमार अर्जुन अत्यन्त कुपित हो उठे हैं। उनके नेत्र रोषसे रक्तवर्ण हो गये हैं, अतः वे समस्त राजाओंका संहार करनेकी इच्छासे एकमात्र रथके साथ सहसा तुम्हारे ऊपर चढ़े आ रहे हैं ॥ ३५—३७ ॥

त्वरितोऽभिपतत्यस्मांस्त्यक्त्वा सैन्यान्यसंशयम्।
त्वं कर्ण प्रतियाह्येनं नास्त्यन्यो हि धनुर्धरः ॥ ३८ ॥

'इसमें संदेह नहीं कि वे सारी सेनाओंको छोड़कर बड़ी उतावलीके साथ हमलोगोंपर टूट पड़े हैं; अतः कर्ण ! अब तुम भी इनका सामना करनेके लिये आगे बढ़ो, क्योंकि तुम्हारे सिवा दूसरा कोई धनुर्धर ऐसा करनेमें समर्थ नहीं है ॥

न तं पश्यामि लोकेऽस्मिंस्त्वत्तो ह्यन्यं धनुर्धरम्।
अर्जुनं समरे क्रुद्धं यो वेलामिव धारयेत् ॥ ३९ ॥

'इस संसारमें मैं तुम्हारे सिवा दूसरे किसी धनुर्धरको ऐसा नहीं देखता, जो समुद्रमें उठे हुए ज्वारके समान समराङ्गणमें कुपित हुए अर्जुनको रोक सके ॥ ३९ ॥

न चास्य रक्षां पश्यामि पार्श्वतो न च पृष्ठतः।
एक एवाभियाति त्वां पश्य साफल्यमात्मनः ॥ ४० ॥

'मैं देखता हूँ कि अगल-बगलसे या पीछेकी ओरसे उनकी रक्षाका कोई प्रबन्ध नहीं किया गया है। वे अकेले ही तुमपर चढ़ाई कर रहे हैं; अतः देखो, तुम्हें अपनी सफलताके लिये कैसा सुन्दर अवसर हाथ लगा है ॥ ४० ॥

त्वं हि कृष्णौ रणे शक्तः संसाधयितुमाहवे।
तवैव भारो राधेय प्रत्युद्याहि धनंजयम् ॥ ४१ ॥

'राधापुत्र ! रणभूमिमें तुम्हीं श्रीकृष्ण और अर्जुनको परास्त करनेकी शक्ति रखते हो, तुम्हारे ऊपर ही यह भार रक्खा गया है; इसलिये तुम अर्जुनको रोकनेके लिये आगे बढ़ो ॥ ४१ ॥

समानो ह्यसि भीष्मेण द्रोणद्रौणिकृपेण च।
सव्यसाचिनमायान्तं निवारय महारणे ॥ ४२ ॥

'तुम भीष्म, द्रोण, अश्वत्थामा तथा कृपाचार्यके समान पराक्रमी हो, अतः इस महासमरमें आक्रमण करते हुए सव्यसाची अर्जुनको रोको ॥ ४२ ॥

लेलिहानं यथा सर्पं गर्जन्तमृषभं यथा।

वनस्थितं यथा व्याघ्रं जहि कर्ण धनंजयम् ॥ ४३ ॥

'कर्ण ! जीभ लपलपाते हुए सर्प, गर्जते हुए साँड़ और वनवासी व्याघ्रके समान भयङ्कर अर्जुनका तुम वध करो ॥४३॥

एते द्रवन्ति समरे धार्तराष्ट्रा महारथाः ।
अर्जुनस्य भयात् तूर्णं निरपेक्षा जनाधिपाः ॥ ४४ ॥

'देखो ! समरभूमिमें दुर्योधनकी सेनाके ये महारथी नरेश अर्जुनके भयसे आत्मीयजनोंकी भी अपेक्षा न रखकर बड़ी उतावलीके साथ भागे जा रहे हैं ॥ ४४ ॥

द्रवतामथ तेषां तु नान्योऽस्ति युधि मानवः ।
भयहा यो भवेद् वीरस्त्वामृते सूतनन्दन ॥ ४५ ॥

'सूतनन्दन ! इस युद्धस्थलमें तुम्हारे सिवा ऐसा कोई भी वीर पुरुष नहीं है, जो उन भागते हुए नरेशोंका भय दूर कर सके ॥ ४५ ॥

एते त्वां कुरवः सर्वे द्वीपमासाद्य संयुगे ।
धिष्ठिताः पुरुषव्याघ्र त्वत्तः शरणकाङ्क्षिणः ॥ ४६ ॥

'पुरुषसिंह ! इस समुद्र-जैसे युद्धस्थलमें तुम द्वीपके समान हो । ये समस्त कौरव तुमसे शरण पानेकी आशा रखकर, तुम्हारे ही आश्रयमें आकर खड़े हुए हैं ॥ ४६ ॥

वैदेहाम्बष्ठकाम्बोजास्तथा नग्नजितस्त्वया ।
गान्धाराश्च यया धृत्या जिताः संख्ये सुदुर्जयाः ।
तां धृतिं कुरु राधेय ततः प्रत्येहि पाण्डवम् ॥ ४७ ॥

'राधानन्दन ! तुमने जिस धैर्यसे पहले अत्यन्त दुर्जय विदेह, अम्बष्ठ, काम्बोज, नग्नजित् तथा गान्धारगणोंको युद्धमें पराजित किया था, उसीको पुनः अपनाओ और पाण्डुपुत्र अर्जुनका सामना करनेके लिये आगे बढ़ो ॥ ४७ ॥

वासुदेवं च वार्ष्णेयं प्रीयमाणं किरीटिना ।
प्रत्युद्याहि महाबाहो पौरुषे महति स्थितः ॥ ४८ ॥

'महाबाहो ! तुम महान् पुरुषार्थमें स्थित होकर अर्जुनसे सतत प्रसन्न रहनेवाले वृष्णिवंशी, वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णका भी सामना करो ॥ ४८ ॥

(यथैकेन त्वया पूर्वं कृतो दिग्विजयः पुरा ।
मरुत्सूनोर्यथा सूनुर्घातितः शक्रदत्तया ॥
तदेतत् सर्वमालम्ब्य जहि पार्थं धनंजयम् ।)

'जैसे पूर्वकालमें तुमने अकेले ही सम्पूर्ण दिशाओंपर विजय पायी थी, इन्द्रकी दी हुई शक्तिसे भीमपुत्र घटोत्कच-का वध किया था, उसी तरह इस सारे बल-पराक्रमका आश्रय ले कुन्तीपुत्र अर्जुनको मार डालो' ॥

कर्ण उवाच

प्रकृतिस्थोऽसि मे शल्य इदानीं सम्मतस्तथा ।
प्रतिभासि महाबाहो मा भैषीस्त्वं धनंजयात् ॥ ४९ ॥

कर्णने कहा—शल्य ! इस समय तुम अपने स्वरूपमें प्रतिष्ठित हो और मुझसे सहमत जान पड़ते हो । महाबाहो ! तुम अर्जुनसे डरो मत ॥ ४९ ॥

पश्य बाह्वोर्बलं मेऽद्य शिक्षितस्य च पश्य मे ।
एकोऽद्य निहनिष्यामि पाण्डवानां महाचमूम् ॥ ५० ॥

आज मेरी इन दोनों भुजाओंका बल देखो और मेरी शिक्षाकी शक्तिपर भी दृष्टिपात करो । आज मैं अकेला ही पाण्डवोंकी विशाल सेनाका संहार कर डालूँगा ॥ ५० ॥

कृष्णौ च पुरुषव्याघ्र ततः सत्यं ब्रवीमि ते ।
नाहत्वा युधि तौ वीरौ व्यपयास्ये कथंचन ॥ ५१ ॥

पुरुषसिंह ! मैं तुमसे सच्ची बात कहता हूँ कि युद्धस्थलमें उन दोनों वीर श्रीकृष्ण और अर्जुनका वध किये बिना मैं किसी तरह पीछे नहीं हटूँगा ॥ ५१ ॥

स्वप्स्ये वा निहतस्ताभ्यामनित्यो हि रणे जयः ।
कृतार्थोऽद्य भविष्यामि हत्वा वाप्यथवा हतः ॥ ५२ ॥

अथवा उन्हीं दोनोंके हाथों मारा जाकर सदाके लिये सो जाऊँगा; क्योंकि रणमें विजय अनिश्चित होती है । आज मैं उन दोनोंको मारकर अथवा मारा जाकर सर्वथा कृतार्थ हो जाऊँगा ॥ ५२ ॥

शल्य उवाच

अजय्यमेनं प्रवदन्ति युद्धे
महारथाः कर्ण रथप्रवीरम् ।
एकाकिनं किमु कृष्णाभिगुप्तं
विजेतुमेनं क इहोत्सहेत ॥ ५३ ॥

शल्यने कहा—कर्ण ! रथियोंमें प्रमुख वीर अर्जुन अकेले भी हों तो महारथी योद्धा उन्हें युद्धमें अजेय बताते हैं, फिर इस समय तो वे श्रीकृष्णसे सुरक्षित हैं; ऐसी दशामें कौन इन्हें जीतनेका साहस कर सकता है ? ॥ ५३ ॥

कर्ण उवाच

नैतादृशो जातु बभूव लोके
रथोत्तमो यावदुपश्रुतं नः ।
तमीदृशं प्रतियोत्स्यामि पार्थं
महाहवे पश्य च पौरुषं मे ॥ ५४ ॥

कर्ण बोला—शल्य ! मैंने जहाँतक सुना है, वहाँतक संसारमें ऐसा श्रेष्ठ महारथी वीर कभी नहीं उत्पन्न हुआ, ऐसे कुन्तीकुमार अर्जुनके साथ मैं महासमरमें युद्ध करूँगा, मेरा पुरुषार्थ देखो ॥ ५४ ॥

रणे चरत्येष रथप्रवीरः
सितैर्हयैः कौरवराजपुत्रः ।
स वाद्य मां नेष्यति कृच्छ्रमेतत्
कर्णस्यान्तादेतदन्तास्तु सर्वे ॥ ५५ ॥

ये रथियोंमें प्रधान वीर कौरवराजकुमार अर्जुन अपने श्वेत अश्वोंद्वारा रणभूमिमें विचर रहे हैं । ये आज मुझे मृत्युके संकटमें डाल देंगे और मुझ कर्णका अन्त होनेपर कौरवदलके अन्य समस्त योद्धाओंका विनाश भी निश्चित ही है ॥ ५५ ॥

अस्वेदिनौ राजपुत्रस्य हस्ता-
ववेपमानौ जातकिणौ बृहन्तौ ।
दृढायुधः कृतिमान् क्षिप्रहस्तो
न पाण्डवेयेन समोऽस्ति योधः॥ ५६ ॥

राजकुमार अर्जुनके दोनों विशाल हाथोंमें कभी पसीना नहीं होता; उनमें धनुषकी प्रत्यञ्चाके चिह्न बन गये हैं और वे दोनों हाथ कभी काँपते नहीं हैं। उनके अस्त्र-शस्त्र भी सुदृढ़ हैं। वे विद्वान् एवं शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले हैं। पाण्डुपुत्र अर्जुनके समान दूसरा कोई योद्धा नहीं है ॥ ५६ ॥

गृह्णात्यनेकानपि कङ्कपत्रा-
नेकं यथा तान् प्रतियोज्य चाशु ।
ते क्रोशमात्रे निपतन्त्यमोघाः
कस्तेन योधोऽस्ति समः पृथिव्याम् ॥ ५७ ॥

वे कङ्कपत्रयुक्त अनेक बाणोंको इस प्रकार हाथमें लेते हैं, मानो एक ही बाण हो और उन सबको शीघ्रतापूर्वक धनुषपर रखकर चला देते हैं। वे अमोघ बाण एक कोस दूर जाकर गिरते हैं; अतः इस पृथ्वीपर उनके समान दूसरा योद्धा कौन है ? ॥ ५७ ॥

अतोषयत् खाण्डवे यो हुताशं
कृष्णद्वितीयोऽतिरथस्तरस्वी ।
लेभे चक्रं यत्र कृष्णो महात्मा
धनुर्गाण्डीवं पाण्डवः सव्यसाची ॥ ५८ ॥

उन वेगशाली और अतिरथी वीर अर्जुनने अपने दूसरे साथी श्रीकृष्णके साथ जाकर खाण्डववनमें अग्निदेवको तृप्त किया था, जहाँ महात्मा श्रीकृष्णको तो चक्र मिला और पाण्डुपुत्र सव्यसाची अर्जुनने गाण्डीव धनुष प्राप्त किया ॥ ५८ ॥

श्वेताश्वयुक्तं च सुघोषमुग्रं
रथं महाबाहुरदीनसत्त्वः ।
महेषुधी चाक्षये दिव्यरूपे
शस्त्राणि दिव्यानि च हव्यवाहात्॥ ५९ ॥

उदार अन्तःकरणवाले महाबाहु अर्जुनने अग्निदेवसे श्वेत घोड़ोंसे जुता हुआ गम्भीर घोष करनेवाला एक भयंकर रथ, दो दिव्य विशाल और अक्षय तरकस तथा अलौकिक अस्त्र-शस्त्र प्राप्त किये ॥ ५९ ॥

तथेन्द्रलोके निजघान दैत्या-
नसंख्येयान् कालकेयांश्च सर्वान्।
लेभे शङ्खं देवदत्तं स तत्र
को नाम तेनाभ्यधिकः पृथिव्याम्॥ ६० ॥

उन्होंने इन्द्रलोकमें जाकर असंख्य कालकेयनामक सम्पूर्ण दैत्योंका संहार किया और वहाँ देवदत्त नामक शङ्ख प्राप्त किया; अतः इस पृथ्वीपर उनसे अधिक कौन है ? ॥ ६० ॥

महादेवं तोषयामास योऽस्त्रैः
साक्षात् सुयुद्धेन महानुभावः ।
लेभे ततः पाशुपतं सुघोरं
त्रैलोक्यसंहारकरं महास्त्रम् ॥ ६१ ॥

जिन महानुभावने अस्त्रोंद्वारा उत्तम युद्ध करके साक्षात् महादेवजीको संतुष्ट किया और उनसे त्रिलोकीका संहार करनेमें समर्थ अत्यन्त भयंकर पाशुपतनामक महान् अस्त्र प्राप्त कर लिया ॥ ६१ ॥

पृथक् पृथग्लोकपालाः समेता
ददुर्महास्त्राण्यप्रमेयाणि संख्ये ।
यैस्ताञ्जघानाशु रणे नृसिंहः
सकालकेयानसुरान् समेतान् ॥ ६२ ॥

भिन्न-भिन्न लोकपालोंने आकर उन्हें ऐसे महान् अस्त्र प्रदान किये, जो युद्धस्थलमें अपना सानी नहीं रखते। उन पुरुषसिंहने रणभूमिमें उन्हीं अस्त्रोंद्वारा संगठित होकर आये हुए कालकेय नामक असुरोंका शीघ्र ही संहार कर डाला ॥

तथा विराटस्य पुरे समेतान्
सर्वानस्मानेकरथेन जित्वा ।
जहार तद् गोधनमाजिमध्ये
वस्त्राणि चादत्त महारथेभ्यः ॥ ६३ ॥

इसी प्रकार विराटनगरमें एकत्र हुए हम सब लोगोंको एकमात्र रथके द्वारा युद्धमें जीतकर अर्जुनने उस विराटका गोधन लौटा लिया और महारथियोंके शरीरोंसे वस्त्र भी उतार लिये॥

तमीदृशं वीर्यगुणोपपन्नं
कृष्णद्वितीयं परमं नृपाणाम् ।
तमाह्वयन् साहसमुत्तमं वै
जाने स्वयं सर्वलोकस्य शल्य ॥ ६४ ॥

शल्य ! इस प्रकार जो पराक्रमसम्बन्धी गुणोंसे सम्पन्न, श्रीकृष्णकी सहायतासे युक्त और क्षत्रियोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं, उन्हें युद्धके लिये ललकारना सम्पूर्ण जगत्के लिये बहुत बड़े साहसका काम है; इस बातको मैं स्वयं भी जानता हूँ ॥६४॥

अनन्तवीर्येण च केशवेन
नारायणेनाप्रतिमेन गुप्तः ।
वर्षायुतैर्यस्य गुणा न शक्या
वक्तुं समेतैरपि सर्वलोकैः ॥ ६५ ॥
महात्मनः शङ्खचक्रासिपाणे-
र्विष्णोर्जिष्णोर्वसुदेवात्मजस्य ।

अर्जुन उन अनन्त पराक्रमी, उपमारहित, नारायणावतार, हाथोंमें शङ्ख, चक्र और खड्ग धारण करनेवाले, विष्णुस्वरूप, विजयशील, वसुदेवपुत्र महात्मा भगवान् श्रीकृष्णसे सुरक्षित हैं; जिनके गुणोंका वर्णन सम्पूर्ण जगत्के लोग मिलकर दस हजार वर्षोंमें भी नहीं कर सकते ॥६५½॥

भयं मे वै जायते साध्वसं च
दृष्ट्वा कृष्णावेकरथे समेतौ ॥ ६६ ॥
अतीव पार्थो युधि कार्मुकिभ्यो
नारायणश्चाप्रति चक्रयुद्धे ।

एवंविधौ पाण्डववासुदेवौ
चलेत् स्वदेशाद्धिमवान् न कृष्णौ ॥ ६७ ॥

श्रीकृष्ण और अर्जुनको एक रथपर मिले हुए देखकर मुझे बड़ा भय लगता है, मेरा हृदय घबरा उठता है। अर्जुन युद्धमें समस्त धनुर्धरोंसे बढ़कर हैं और नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण भी चक्र-युद्धमें अपना सानी नहीं रखते। पाण्डुपुत्र अर्जुन और वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण दोनों ऐसे ही पराक्रमी हैं। हिमालय भले ही अपने स्थानसे हट जाय; किंतु दोनों कृष्ण अपनी मर्यादासे विचलित नहीं हो सकते॥

उभौ हि शूरौ बलिनौ दृढायुधौ
महारथौ संहननोपपन्नौ ।
एतादृशौ फाल्गुनवासुदेवौ
कोऽन्यः प्रतीयान्मदृते तौ तु शल्य ॥ ६८ ॥

वे दोनों ही शौर्यसम्पन्न, बलवान्, सुदृढ़ आयुधोंवाले और महारथी हैं, उनके शरीर सुगठित एवं शक्तिशाली हैं। शल्य ! ऐसे अर्जुन और श्रीकृष्णका सामना करनेके लिये मेरे सिवा दूसरा कौन जा सकता है ? ॥ ६८ ॥

मनोरथो यस्तु ममाद्य तस्य
मद्रेश युद्धं प्रति पाण्डवस्य ।
नैतच्चिरादाशु भविष्यतीद-
मत्यद्भुतं चित्रमतुल्यरूपम् ॥ ६९ ॥
एतौ च हत्वा युधि पातयिष्ये
मां वापि कृष्णौ निहनिष्यतोऽद्य ।

मद्रराज ! अर्जुनके साथ युद्धके विषयमें जो आज मेरा मनोरथ है, वह अविलम्ब और शीघ्र सफल होगा। यह युद्ध अत्यन्त अद्भुत, विचित्र और अनुपम होगा। मैं युद्धस्थलमें इन दोनोंको मार गिराऊँगा अथवा वे दोनों ही कृष्ण मुझे मार डालेंगे ॥ ६९½ ॥

इति ब्रुवञ्शल्यममित्रहन्ता
कर्णो रणे मेघ इवोन्ननाद ॥ ७० ॥
अभ्येत्य पुत्रेण तवाभिनन्दितः
समेत्य चोवाच कुरुप्रवीरम् ।
कृपं च भोजं च महाभुजावुभौ
तथैव गान्धारपतिं सहानुजम् ॥ ७१ ॥
गुरोः सुतं चावरजं तथाऽऽत्मनः
पदातिनोऽथ द्विपसादिनश्च तान् ।
निरुध्यताभिद्रवताच्युतार्जुनौ
श्रमेण संयोजयताशु सर्वशः ॥ ७२ ॥
यथा भवद्भिर्भृशविक्षितावुभौ
सुखेन हन्यामहमद्य भूमिपाः ।

राजन् ! शत्रुहन्ता कर्ण शल्यसे ऐसा कहकर रणभूमिमें मेघके समान उच्चस्वरसे गर्जना करने लगा। उस समय आपके पुत्र दुर्योधनने निकट आकर उसका अभिनन्दन किया। उससे मिलकर कर्णने कुरुकुलके उस प्रमुख वीरसे, महाबाहु कृपाचार्य और कृतवर्मासे, भाइयोंसहित गान्धारराज शकुनिसे, गुरुपुत्र अश्वत्थामासे, अपने छोटे भाईसे तथा पैदल और गजारोही सैनिकोंसे इस प्रकार कहा—'वीरो ! श्रीकृष्ण और अर्जुनपर धावा करो, उन्हें आगे बढ़नेसे रोको तथा शीघ्र ही सब प्रकारसे प्रयत्न करके उन्हें परिश्रमसे थका दो। भूमिपालो ! ऐसा करो, जिससे तुम्हारेद्वारा अत्यन्त क्षत-विक्षत हुए उन दोनों कृष्णोंको आज मैं सुखपूर्वक मार सकूँ' ॥ ७०–७२½ ॥

तथेति चोक्त्वा त्वरिताः स्म तेऽर्जुनं
जिघांसवो वीरतराः समभ्ययुः ॥ ७३ ॥
शरैश्च जघ्नुर्युधि तं महारथा
धनंजयं कर्णनिदेशकारिणः ।

तब 'बहुत अच्छा' कहकर वे अत्यन्त वीर सैनिक बड़ी उतावलीके साथ अर्जुनको मार डालनेके लिये एक साथ आगे बढ़े। कर्णकी आज्ञाका पालन करनेवाले वे महारथी योद्धा युद्धस्थलमें बाणोंद्वारा अर्जुनको चोट पहुँचाने लगे॥

नदीनदं भूरिजलो महार्णवो
यथा तथा तान् समरेऽर्जुनोऽग्रसत् ॥ ७४ ॥
न संदधानो न तथा शरोत्तमान्
प्रमुञ्चमानो रिपुभिः प्रदृश्यते ।
धनंजयास्तैस्तु शरैर्विदारिता
हता निपेतुर्नरवाजिकुञ्जराः ॥ ७५ ॥

परंतु जैसे प्रचुर जलसे भरा हुआ महासागर नदियों और नदोंके जलको आत्मसात् कर लेता है, उसी प्रकार अर्जुनने समराङ्गणमें उन सब वीरोंको ग्रस लिया। वे कब धनुषपर उत्तम बाणोंका संधान करते और कब उन्हें छोड़ते हैं, यह शत्रुओंको नहीं दिखायी देता था; किंतु अर्जुनके बाणोंसे विदीर्ण हुए हाथी, घोड़े और मनुष्य प्राणशून्य हो धड़ाधड़ गिरते जा रहे थे॥ ७४-७५ ॥

शरार्चिषं गाण्डिवचारुमण्डलं
युगान्तसूर्यप्रतिमानतेजसम् ।
न कौरवाः शेकुरुदीक्षितुं जयं
यथा रविं व्याधितचक्षुषो जनाः ॥ ७६ ॥

उस समय अर्जुन प्रलयकालके सूर्यकी भाँति तेजस्वी जान पड़ते थे। उनके बाण किरण-समूहोंके समान सब ओर छिटक रहे थे। खींचा हुआ गाण्डीव धनुष सूर्यके मनोहर मण्डल-सा प्रतीत होता था। जैसे रोगी नेत्रोंवाले मनुष्य सूर्यकी ओर नहीं देख सकते, उसी प्रकार कौरव अर्जुनकी ओर देखनेमें असमर्थ हो गये थे॥ ७६ ॥

शरोत्तमान् सम्प्रहितान् महारथै-
श्चिच्छेद पार्थः प्रहसञ्छरौघैः ।
भूयश्च तानहनद् बाणसङ्घान्
गाण्डीवधन्वायतपूर्णमण्डलः ॥ ७७ ॥

कौरवमहारथियोंके चलाये हुए उत्तम बाणोंको कुन्तीकुमारने अपने शरसमूहोंद्वारा हँसते-हँसते काट दिया। उनका गाण्डीव धनुष खींचा जाकर पूरा मण्डलाकार बन गया था और उसके द्वारा वे उन शत्रु-सैनिकोंपर बारंबार बाण-समूहोंका प्रहार करते थे ॥ ७७ ॥

यथोग्ररश्मिः शुचिशुक्रमध्यगः
सुखं विवस्वान् हरते जलौघान्।
तथार्जुनो बाणगणान् निरस्य
ददाह सेनां तव पार्थिवेन्द्र ॥ ७८ ॥

राजेन्द्र! जैसे ज्येष्ठ और आषाढ़के मध्यवर्ती प्रचण्ड किरणोंवाले सूर्यदेव धरतीके जलसमूहोंको अनायास ही सोख लेते हैं, उसी प्रकार अर्जुन अपने बाणसमूहोंका प्रहार करके आपकी सेनाको भस्म करने लगे ॥ ७८ ॥

तमभ्यधावद् विसृजन् कृपः शरां-
स्तथैव भोजस्तव चात्मजः स्वयम्।
महारथो द्रोणसुतश्च सायकै-
रवाकिरंस्तोयधरा यथाचलम् ॥ ७९ ॥

उस समय कृपाचार्य उनपर बाण-समूहोंकी वर्षा करते हुए उनकी ओर दौड़े। इसी प्रकार कृतवर्मा, आपके पुत्र स्वयं राजा दुर्योधन और महारथी अश्वत्थामा भी पर्वतपर वर्षा करनेवाले बादलोंके समान अर्जुनपर बाणोंकी वृष्टि करने लगे ॥ ७९ ॥

जिघांसुभिस्तान् कुशलः शरोत्तमान्
महाहवे सम्प्रहितान् प्रयत्नतः।
शरैः प्रचिच्छेद स पाण्डवस्त्वरन्
पराभिनद् वक्षसि चेषुभिस्त्रिभिः ॥ ८० ॥

वधकी इच्छासे आक्रमण करनेवाले उन सब योद्धाओंद्वारा प्रयत्नपूर्वक चलाये गये उन उत्तम बाणोंको महासमरमें युद्धकुशल पाण्डुपुत्र अर्जुनने तुरंत ही अपने बाणोंद्वारा काट डाला और उन सबकी छातीमें तीन-तीन बाण मारे ॥

स गाण्डिवव्यायतपूर्णमण्डल-
स्तपन् रिपूनर्जुनभास्करो बभौ।
शरोग्ररश्मिः शुचिशुक्रमध्यगो
यथैव सूर्यः परिवेषवांस्तथा ॥ ८१ ॥

खींचे हुए गाण्डीव धनुषरूपी पूर्ण मण्डलसे युक्त अर्जुनरूपी सूर्य अपनी बाणरूपी प्रचण्ड किरणोंसे प्रकाशित हो शत्रुओंको संताप देते हुए ज्येष्ठ और आषाढ़के मध्यवर्ती उस सूर्यके समान सुशोभित हो रहे थे, जिसपर घेरा पड़ा हुआ हो ॥ ८१ ॥

अथाग्र्यबाणैर्दशभिर्धनंजयं
पराभिनद् द्रोणसुतोऽच्युतं त्रिभिः।
चतुर्भिरश्वांश्चतुरः कपिं ततः
शरैश्च नाराचवरैरवाकिरत् ॥ ८२ ॥

तदनन्तर द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने दस बाणोंसे अर्जुनको, तीनसे भगवान् श्रीकृष्णको और चारसे उनके चारों घोड़ोंको घायल कर दिया। तत्पश्चात् वह ध्वजापर बैठे हुए वानरके ऊपर बाणों तथा उत्तम नाराचोंकी वर्षा करने लगा ॥ ८२ ॥

तथापि तं प्रस्फुरदात्तकार्मुकं
त्रिभिः शरैर्यन्तृशिरः क्षुरेण।
हयांश्चतुर्भिश्च पुनस्त्रिभिर्ध्वजं
धनंजयो द्रौणिरथादपातयत् ॥ ८३ ॥

तब अर्जुनने तीन बाणोंसे चमकते हुए उसके धनुषको, एक छुरके द्वारा सारथिके मस्तकको, चार बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको तथा तीनसे उसके ध्वजको भी अश्वत्थामाके रथसे नीचे गिरा दिया ॥ ८३ ॥

स रोषपूर्णो मणिवज्रहाटकै-
रलङ्कृतं तक्षकभोगवर्चसम्।
महाधनं कार्मुकमन्यदाददे
यथा महाहिप्रवरं गिरेस्तटात् ॥ ८४ ॥

फिर अश्वत्थामाने रोषमें भरकर मणि, हीरा और सुवर्णसे अलंकृत तथा तक्षकके शरीरकी भाँति अरुण कान्तिवाले दूसरे बहुमूल्य धनुषको हाथमें लिया, मानो पर्वतके किनारेसे विशाल अजगरको उठा लिया हो ॥ ८४ ॥

स्वमायुधं चोपनिकीर्य भूतले
धनुश्च कृत्वा सगुणं गुणाधिकः।
समार्दयत्तावजितौ नरोत्तमौ
शरोत्तमैर्द्रौणिरविध्यदन्तिकात् ॥ ८५ ॥

अपने टूटे हुए धनुषको पृथ्वीपर फेंककर अधिक गुणशाली अश्वत्थामाने उस धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और किसीसे पराजित न होनेवाले उन दोनों नरश्रेष्ठ श्रीकृष्ण और अर्जुनको उत्तम बाणोंद्वारा निकटसे पीड़ित एवं घायल करना आरम्भ किया ॥ ८५ ॥

कृपश्च भोजश्च तवात्मजश्च ते
शरैरनेकैर्युधि पाण्डवर्षभम्।
महारथाः संयुगमूर्धनि स्थिता-
स्तमोनुदं वारिधरा इवापतन् ॥ ८६ ॥

युद्धके मुहानेपर खड़े हुए कृपाचार्य, कृतवर्मा और आपके पुत्र दुर्योधन—ये तीन महारथी युद्धस्थलमें अनेक बाणोंद्वारा पाण्डवप्रवर अर्जुनको चोट पहुँचाने लगे, मानो बहुत-से मेघ सूर्यदेवपर टूट पड़े हों ॥ ८६ ॥

कृपस्य पार्थः सशरं शरासनं
हयान् ध्वजान् सारथिमेव पत्रिभिः।
समार्पयद् बाहुसहस्रविक्रम-
स्तथा यथा वज्रधरः पुरा बलेः ॥ ८७ ॥

सहस्र भुजाओंवाले कार्तवीर्य अर्जुनके समान पराक्रमी कुन्तीकुमार अर्जुनने अपने बाणोंद्वारा कृपाचार्यके बाण-

सहित धनुष, घोड़े, ध्वज और सारथिको भी उसी प्रकार बींध डाला, जैसे पूर्वकालमें वज्रधारी इन्द्रने राजा बलिके धनुष आदिको क्षतिग्रस्त कर दिया था ॥ ८७ ॥

स पार्थबाणैर्विनिपातितायुधो
ध्वजावमर्दे च कृते महाहवे ।
कृतः कृपो बाणसहस्रयन्त्रितो
यथाऽऽपगेयः प्रथमं किरीटिना ॥८८॥

उस महासमरमें अर्जुनके बाणोंद्वारा जब कृपाचार्यके आयुध नीचे गिरा दिये गये और ध्वज खण्डित कर दिया गया, उस समय किरीटधारी अर्जुनने जैसे पहले भीष्मजीको सहस्रों बाणोंसे आवेष्टित कर दिया था, उसी प्रकार कृपाचार्यको हजारों बाणोंसे बाँध-सा लिया ॥ ८८ ॥

शरैः प्रचिच्छेद तवात्मजस्य
ध्वजं धनुश्च प्रचकर्त नर्दतः ।
जघान चाश्वान् कृतवर्मणः शुभान्
ध्वजं च चिच्छेद ततः प्रतापवान् ॥८९॥

तत्पश्चात् प्रतापी अर्जुनने गर्जना करनेवाले आपके पुत्र दुर्योधनके ध्वज और धनुषको अपने बाणोंद्वारा काट दिया। फिर कृतवर्माके सुन्दर घोड़ोंको मार डाला और उसकी ध्वजाके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ ८९ ॥

सवाजिसूतेष्वसनान् सकेतनान्
जघान नागाश्वरथांस्त्वरंश्च सः ।
ततः प्रकीर्णं सुमहद् बलं तव
प्रदारितः सेतुरिवाम्भसा यथा॥ ९० ॥

इसके बाद अर्जुनने बड़ी उतावलीके साथ घोड़े, सारथि, धनुष और ध्वजाओंसहित रथों, हाथियों और अश्वोंको भी मारना आरम्भ किया। फिर तो पानीसे टूटे हुए पुलके समान आपकी वह विशाल सेना सब ओर बिखर गयी॥

ततोऽर्जुनस्याशु रथेन केशव-
श्चकार शत्रूनपसव्यमातुरान् ।
ततः प्रयातं त्वरितं धनंजयं
शतक्रतुं वृत्रनिजघ्नुषं यथा ॥ ९१ ॥
समन्वधावन् पुनरुत्थितैर्ध्वजै
रथैः सुयुक्तैरपरे युयुत्सवः ।

तदनन्तर श्रीकृष्णने व्याकुल हुए समस्त शत्रुओंको अपने रथके द्वारा शीघ्र ही दाहिने कर दिया। फिर वृत्रासुरको मारनेकी इच्छासे आगे बढ़नेवाले इन्द्रके समान वेगपूर्वक आगे जाते हुए धनंजयपर दूसरे योद्धाओंने ऊँचे किये ध्वजवाले सुसज्जित रथोंद्वारा पुनः धावा किया ॥ ९१½ ॥

अथाभिसृत्य प्रतिवार्य तानरीन्
धनंजयस्याभिमुखं महारथाः ॥ ९२ ॥
शिखण्डिशैनेययमाः शितैः शरै-
र्विदारयन्तो व्यनदन् सुभैरवम् ।

अर्जुनके सम्मुख जाते हुए उन शत्रुओंके सामने पहुँचकर महारथी शिखण्डी, सात्यकि, नकुल और सहदेवने उन्हें रोका और पैने बाणोंद्वारा उन सबको विदीर्ण करते हुए भयंकर गर्जना की ॥ ९२½ ॥

ततोऽभिजघ्नुः कुपिताः परस्परं
शरैस्तदाञ्जोगतिभिः सुतेजनैः ॥ ९३ ॥
कुरुप्रवीराः सह सृंजयैर्यथा-
सुराः पुरा देवगणैस्तथाऽऽहवे ।

तत्पश्चात् सृञ्जयोंके साथ भिड़े हुए कौरव वीर कुपित हो शीघ्रगामी और तेज बाणोंद्वारा एक दूसरेपर उसी प्रकार चोट करने लगे, जैसे पूर्वकालमें देवताओंके साथ युद्ध करनेवाले असुरोंने संग्राममें परस्पर प्रहार किया था ॥ ९३½ ॥

जयेप्सवः स्वर्गमनाय चोत्सुकाः
पतन्ति नागाश्वरथाः परंतप ॥ ९४ ॥
जगर्जुरुच्चैर्बलवच्च विव्यधुः
शरैः सुमुक्तैरितरेतरं पृथक् ।

शत्रुओंको तपानेवाले नरेश ! हाथीसवार, घुड़सवार तथा रथी योद्धा विजय चाहते हुए स्वर्गलोकमें जानेके लिये उत्सुक हो शत्रुओंपर टूट पड़ते, उच्च स्वरसे गर्जते और अच्छी तरह छोड़े हुए बाणोंद्वारा एक दूसरेको पृथक्-पृथक् गहरी चोट पहुँचाते थे ॥ ९४½ ॥

शरान्धकारे तु महात्मभिः कृते
महामृधे योधवरैः परस्परम् ।
चतुर्दिशो वै विदिशश्च पार्थिव
प्रभा च सूर्यस्य तमोवृताभवत् ॥९५॥

महाराज ! उस महासमरमें महामनस्वी श्रेष्ठ योद्धाओंने परस्पर छोड़े हुए बाणोंद्वारा घोर अन्धकार फैला दिया। चारों दिशाएँ, विदिशाएँ तथा सूर्यकी प्रभा भी उस अन्धकारसे आच्छादित हो गयीं ॥ ९५ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक उन्यासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७९ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३ श्लोक मिलाकर कुल ९८ श्लोक हैं)

अशीतितमोऽध्यायः

अर्जुनका कौरवसेनाको नष्ट करके आगे बढ़ना

संजय उवाच

राजन् कुरूणां प्रवरैर्बलैर्भीममभिद्रुतम् ।
मज्जन्तमिव कौन्तेयमुज्जिहीर्षुर्धनंजयः ॥ १ ॥
विसृज्य सूतपुत्रस्य सेनां भारत सायकैः ।

प्राहिणोन्मृत्युलोकाय परवीरान् धनंजयः ॥ २ ॥

संजय कहते हैं--राजन्! कौरवसेनाके प्रमुख वीरोंने कुन्तीपुत्र भीमसेनपर धावा किया था और वे उस सैन्य-सागरमें डूबते-से जान पड़ते थे। भारत! उस समय उनका उद्धार करनेके लिये अर्जुनने सूतपुत्रकी सेनाको छोड़कर उधर ही आक्रमण किया और बाणोंद्वारा शत्रुपक्षके बहुत-से वीरोंको यमलोक भेज दिया ॥ १–२ ॥

ततोऽस्याम्बरमाश्रित्य शरजालानि भागशः।
अदृश्यन्त तथान्ये च निघ्नन्तस्तव वाहिनीम् ॥ ३ ॥

तदनन्तर अर्जुनके बाणजाल आकाशके विभिन्न भागोंमें छा गये, वे तथा और भी बहुत-से बाण आपकी सेनाका संहार करते दिखायी दिये ॥ ३ ॥

स पक्षिसंघाचरितमाकाशं पूरयञ्शरैः।
धनंजयो महाबाहुः कुरूणामन्तकोऽभवत् ॥ ४ ॥

जहाँ पक्षियोंके झुंड उड़ा करते थे, उस आकाशको बाणोंसे भरते हुए महाबाहु धनंजय वहाँ कौरव-सैनिकोंके काल बन गये ॥ ४ ॥

ततो भल्लैः क्षुरप्रैश्च नाराचैर्विमलैरपि।
गात्राणि प्राच्छिनत् पार्थः शिरांसि च चकर्त ह ॥ ५ ॥

पार्थने भल्लों, क्षुरप्रों तथा निर्मल नाराचोंद्वारा शत्रुओंका अङ्ग-अङ्ग काट डाला और उनके मस्तक भी धड़से अलग कर दिये ॥ ५ ॥

छिन्नगात्रैर्विकवचैर्विशिरस्कैः समन्ततः।
पातितैश्च पतद्भिश्च योधैरासीत् समावृता ॥ ६ ॥

जिनके शरीरोंके टुकड़े-टुकड़े हो गये थे, कवच कटकर गिर गये थे और मस्तक भी काट डाले गये थे, ऐसे बहुत-से योद्धा वहाँ पृथ्वीपर गिरे थे और गिरते जा रहे थे, उन सबकी लाशोंसे वहाँकी भूमि सब ओरसे पट गयी थी ॥ ६ ॥

धनंजयशराभ्यस्तैः स्यन्दनाश्वरथद्विपैः।
संछिन्नभिन्नविध्वस्तैर्व्यङ्गाङ्गावयवैः स्तृता ॥ ७ ॥

जिनपर अर्जुनके बाणोंकी बारंबार मार पड़ी थी, वे रथके घोड़े, रथ और हाथी छिन्न-भिन्न और विध्वस्त हो गये थे; उनका एक-एक अङ्ग अथवा अवयव कटकर अलग हो गया था। इन सबके द्वारा वहाँकी भूमि आच्छादित हो गयी थी ॥ ७ ॥

सुदुर्गमा सुविषमा घोरात्यर्थं सुदुर्दृशा।
रणभूमिरभूद् राजन् महावैतरणी यथा ॥ ८ ॥

राजन्! उस समय रणभूमि महावैतरणी नदीके समान अत्यन्त दुर्गम, बहुत ऊँची-नीची और भयंकर हो गयी थी, उसकी ओर देखना भी अत्यन्त कठिन जान पड़ता था ॥

ईषाचक्राक्षभग्नैश्च व्यश्वैः साश्वैश्च युध्यताम्।
ससूतैर्हतसूतैश्च रथैस्तीर्णाभवन्मही ॥ ९ ॥

योद्धाओंके टूटे-फूटे रथोंसे रणभूमि ढक गयी थी। उन रथोंके ईषादण्ड, पहिये और धुरे खण्डित हो गये थे। कुछ रथोंके घोड़े और सारथि जीवित थे और कुछके अश्व एवं सारथि मार डाले गये थे ॥ ९ ॥

सुवर्णवर्णसंनाहैर्योधैः कनकभूषणैः।
आस्थिताः क्लृप्तवर्माणो भद्रा नित्यमदा द्विपाः ॥ १० ॥
क्रुद्धाः क्रूरैर्महामात्रैः पार्ष्ण्यङ्गुष्ठप्रचोदिताः।
चतुःशताः शरवरैर्हताः पेतुः किरीटिना ॥ ११ ॥
पर्यस्तानीव शृङ्गाणि ससत्त्वानि महागिरेः।
धनंजयशराभ्यस्तैः स्तीर्णा भूर्वरवारणैः ॥ १२ ॥

किरीटधारी अर्जुनके उत्तम बाणोंसे आहत होकर नित्य मद बहानेवाले, कवचधारी एवं मङ्गलमय लक्षणोंसे युक्त चार सौ रोषभरे हाथी धराशायी हो गये। उन हाथियोंपर सुवर्णमय कवच और सोनेके आभूषण धारण करनेवाले योद्धा बैठे थे और क्रूर स्वभाववाले महावत उन्हें अपने पैरोंकी एड़ियों तथा अँगूठोंसे आगे बढ़नेकी प्रेरणा दे रहे थे। उन सबके साथ गिरे हुए वे हाथी जीव-जन्तुओंसहित धराशायी हुए महान् पर्वतके शिखरोंके समान सब ओर पड़े थे। अर्जुनके बाणोंसे विशेष घायल होकर गिरे हुए उन गजराजोंके शरीरोंसे रणभूमि ढक गयी थी ॥ १०–१२ ॥

समन्ताज्जलदप्रख्यान् वारणान् मदवर्षिणः।
अभिपेदेऽर्जुनरथो घनान् भिन्दन्निवांशुमान् ॥ १३ ॥

जैसे अंशुमाली सूर्य बादलोंको छिन्न-भिन्न करते हुए प्रकाशित हो उठते हैं, उसी प्रकार अर्जुनका रथ सब ओरसे मेघोंकी घटाके समान काले मदस्रावी गजराजोंको विदीर्ण करता हुआ वहाँ आ पहुँचा था ॥ १३ ॥

हतैर्गजमनुष्याश्वैर्भिन्नैश्च बहुधा रथैः।
विशस्त्रयन्त्रकवचैर्युद्धशौण्डैर्गतासुभिः ॥ १४ ॥
अपविद्धायुधैर्मार्गः स्तीर्णोऽभूत् फाल्गुनेन वै।

मारे गये हाथियों, मनुष्यों और घोड़ोंसे; टूट-फूटकर बिखरे हुए अनेकानेक रथोंसे; शस्त्र, यन्त्र तथा कवचोंसे रहित हुए युद्धकुशल प्राणशून्य योद्धाओंसे और इधर-उधर फेंके हुए आयुधोंसे अर्जुनने वहाँके मार्गको आच्छादित कर दिया था ॥ १४½ ॥

व्यस्फारयद् वै गाण्डीवं सुमहद् भैरवारवम् ॥ १५ ॥
घोरवज्रविनिष्पेषं स्तनयित्नुरिवाम्बरे।

उन्होंने आकाशमें मेघके समान भयानक वज्रपातके शब्दको तिरस्कृत करनेवाले भयंकर स्वरमें अपने विशाल गाण्डीव धनुषकी टंकार की ॥ १५½ ॥

ततः प्रादीर्यत चमूर्धनंजयशराहता ॥ १६ ॥
महावातसमाविद्धा महानौरिव सागरे।

तदनन्तर अर्जुनके बाणोंसे आहत हुई कौरवसेना समुद्रमें उठे तूफानसे टकराये हुए जहाजके समान विदीर्ण हो उठी ॥

नानारूपाः प्राणहराः शरा गाण्डीवचोदिताः ॥ १७ ॥

अलातोल्काशनिप्रख्यास्तव सैन्यं विनिर्दहन्।

गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए प्राण लेनेवाले नाना प्रकारके बाण जो अलात, उल्का और बिजलीके समान प्रकाशित हो रहे थे, आपकी सेनाको दग्ध करने लगे ॥ १७½ ॥

महागिरौ वेणुवनं निशि प्रज्वलितं यथा ॥ १८ ॥
तथा तव महासैन्यं प्रास्फुरच्छरपीडितम्।

जैसे रात्रिकालमें किसी महान् पर्वतपर बाँसोंका वन जल रहा हो, उसी प्रकार अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित हुई आपकी विशाल सेना आगकी लपटोंसे घिरी हुई-सी प्रतीत हो रही थी ॥ १८½ ॥

संपिष्टदग्धविध्वस्तं तव सैन्यं किरीटिना ॥ १९ ॥
कृतं प्रविहतं बाणैः सर्वतः प्रद्रुतं दिशः।

किरीटधारी अर्जुनने आपकी सेनाको पीस डाला, जला दिया, विध्वस्त कर दिया, बाणोंसे बींध डाला और सम्पूर्ण दिशाओंमें भगा दिया ॥ १९½ ॥

महावने मृगगणा दावाग्नित्रासिता यथा ॥ २० ॥
कुरवः पर्यवर्तन्त निर्दग्धाः सव्यसाचिना।

जैसे विशाल वनमें दावानलसे डरे हुए मृगोंके समूह इधर-उधर भागते हैं, उसी प्रकार सव्यसाची अर्जुनके बाण-रूपी अग्निसे जलते हुए कौरवसैनिक चारों ओर चक्कर काट रहे थे ॥ २०½ ॥

उत्सृज्य च महाबाहुं भीमसेनं तथा रणे ॥ २१ ॥
बलं कुरूणामुद्विग्नं सर्वमासीत् पराङ्मुखम्।

रणभूमिमें उद्विग्न हुई सारी कौरवसेनाने महाबाहु भीम-सेनको छोड़कर युद्धसे मुँह मोड़ लिया ॥ २१½ ॥

ततः कुरुषु भग्नेषु बीभत्सुरपराजितः ॥ २२ ॥
भीमसेनं समासाद्य मुहूर्तं सोऽभ्यवर्तत।

इस प्रकार कौरवसैनिकोंके भाग जानेपर कभी पराजित न होनेवाले अर्जुन भीमसेनके पास पहुँचकर दो घड़ीतक रुके रहे ॥ २२½ ॥

समागम्य च भीमेन मन्त्रयित्वा च फाल्गुनः ॥ २३ ॥
विशल्यमरुजं चास्मै कथयित्वा युधिष्ठिरम्।

फिर भीमसे मिलकर उन्होंने कुछ सलाह की और यह बताया कि राजा युधिष्ठिरके शरीरसे बाण निकाल दिये गये हैं, अतः वे इस समय स्वस्थ हैं ॥ २३½ ॥

भीमसेनाभ्यनुज्ञातस्ततः प्रायाद् धनंजयः ॥ २४ ॥
नादयन् रथघोषेण पृथिवीं द्यां च भारत।

भारत ! तत्पश्चात् भीमसेनकी आज्ञा ले अर्जुन अपने रथकी घर्घराहटसे पृथ्वी और आकाशको गुँजाते हुए वहाँसे चल दिये ॥ २४½ ॥

ततः परिवृतो वीरैर्दशभिर्योधपुङ्गवैः ॥ २५ ॥
दुःशासनादवरजैस्तव पुत्रैर्धनंजयः।

इसी समय आपके दस वीर पुत्रोंने, जो योद्धाओंमें श्रेष्ठ और दुःशासनसे छोटे थे, अर्जुनको चारों ओरसे घेर लिया ॥ २५½ ॥

ते तमभ्यर्दयन् बाणैरुल्काभिरिव कुञ्जरम् ॥ २६ ॥
आततेष्वसनाः शूरा नृत्यन्त इव भारत।

भरतनन्दन ! जैसे शिकारी लुआठोंसे हाथीको मारते हैं, उसी प्रकार अपने धनुषको ताने हुए उन शूर-वीरोंने नाचते हुए-से वहाँ अर्जुनको बाणोंद्वारा व्यथित कर डाला ॥२६½॥

अपसव्यांस्तु तांश्चक्रे रथेन मधुसूदनः ॥ २७ ॥
न युक्तान् हि स तान् मेने यमायाशु किरीटिना।

उस समय भगवान् श्रीकृष्णने यह सोचकर कि अर्जुन-द्वारा इन सबको यमलोकमें भेज देना उचित नहीं है, रथके द्वारा उन्हें शीघ्र ही अपने दाहिने भागमें कर दिया ॥२७½॥

तथान्ये प्राद्रवन् मूढाः पराङ्मुखरथेऽर्जुने ॥ २८ ॥
तेषामापततां केतूनश्वांश्चापानि सायकान्।
नाराचैरर्धचन्द्रैश्च क्षिप्रं पार्थो न्यपातयत् ॥ २९ ॥

जब अर्जुनका रथ दूसरी ओर जाने लगा, तब दूसरे मूढ़ कौरव योद्धा लोग उनपर टूट पड़े। उस समय कुन्तीकुमार अर्जुनने उन आक्रमणकारियोंके ध्वज, अश्व, धनुष और बाणोंको नाराचों और अर्धचन्द्रोंद्वारा शीघ्र ही काट गिराया ॥ २८-२९ ॥

अथान्यैर्बहुभिर्भल्लैः शिरांस्येषामपातयत्।
रोषसंरक्तनेत्राणि संदष्टौष्ठानि भूतले ॥ ३० ॥
तानि वक्त्राणि विबभुः कमलानीव भूरिशः।

तदनन्तर अन्य बहुत-से भल्लोंद्वारा उन सबके मस्तक काट डाले। वे मस्तक रोषसे लाल हुए नेत्रोंसे युक्त थे और उनके ओठ दाँतोंतले दबे हुए थे। पृथ्वीपर गिरे हुए उनके वे मुख बहुसंख्यक कमलपुष्पोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥ ३०½ ॥

तांस्तु भल्लैर्महावेगैर्दशभिर्दश भारत ॥ ३१ ॥
रुक्माङ्गदान् रुक्मपुङ्खैर्हत्वा प्रायादमित्रहा ॥ ३२ ॥

भारत ! शत्रुओंका संहार करनेवाले अर्जुन सुवर्णमय पंखवाले महान् वेगशाली दस भल्लोंद्वारा सोनेके अंगदोंसे विभूषित उन दसो वीरोंको बींधकर आगे बढ़ गये ।३१-३२।

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धेऽशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक अस्सीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८० ॥

एकाशीतितमोऽध्यायः

अर्जुन और भीमसेनके द्वारा कौरव वीरोंका संहार तथा कर्णका पराक्रम

संजय उवाच

तं प्रयान्तं महावेगैरश्वैः कपिवरध्वजम्।
युद्धायाभ्यद्रवन् वीराः कुरूणां नवती रथाः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! जिनकी ध्वजामें श्रेष्ठ कपि-

का चिह्न है; उन वीर अर्जुनको महावेगशाली अश्वोंद्वारा आगे बढ़ते देख कौरव-दलके नब्बे वीर रथियोंने युद्धके लिये धावा किया ॥ १ ॥

कृत्वा संशप्तका घोरं शपथं पारलौकिकम् ।
परिवव्रुर्नरव्याघ्रा नरव्याघ्रं रणेऽर्जुनम् ॥ २ ॥

उन नरव्याघ्र संशप्तक वीरोंने परलोकसम्बन्धी घोर शपथ खाकर पुरुषसिंह अर्जुनको रणभूमिमें चारों ओरसे घेर लिया ॥ २ ॥

कृष्णः श्वेतान् महावेगानश्वान् काञ्चनभूषणान्।
मुक्ताजालप्रतिच्छन्नान् प्रैषीत् कर्णरथं प्रति ॥ ३ ॥

श्रीकृष्णने सोनेके आभूषणोंसे विभूषित तथा मोतीकी जालियोंसे आच्छादित श्वेत रंगके महान् वेगशाली अश्वोंको कर्णके रथकी ओर बढ़ाया ॥ ३ ॥

ततः कर्णरथं यान्तमरिघ्नं तं धनंजयम् ।
बाणवर्षैरभिघ्नन्तः संशप्तकरथा ययुः ॥ ४ ॥

तत्पश्चात् कर्णके रथकी ओर जाते हुए शत्रुसूदन धनंजयको बाणोंकी वर्षासे घायल करते हुए संशप्तक रथियोंने उनपर आक्रमण कर दिया ॥ ४ ॥

त्वरमाणांस्तु तान् सर्वान् ससूतेष्वसनध्वजान् ।
जघान नवतिं वीरानर्जुनो निशितैः शरैः ॥ ५ ॥

सारथि, धनुष और ध्वजसहित उतावलीके साथ आक्रमण करनेवाले उन सभी नब्बे वीरोंको अर्जुनने अपने पैने बाणोंद्वारा मार गिराया ॥ ५ ॥

तेऽपतन्त हता बाणैर्नानारूपैः किरीटिना ।
सविमाना यथा सिद्धाः स्वर्गात् पुण्यक्षये तथा॥ ६ ॥

किरीटधारी अर्जुनके चलाये हुए नाना प्रकारके बाणोंसे मारे जाकर वे संशप्तक रथी पुण्यक्षय होनेपर विमानसहित स्वर्गसे गिरनेवाले सिद्धोंके समान रथसे नीचे गिर पड़े ॥६॥

ततः सरथनागाश्वाः कुरवः कुरुसत्तमम् ।
निर्भया भरतश्रेष्ठमभ्यवर्तन्त फाल्गुनम् ॥ ७ ॥

तदनन्तर रथ, हाथी और घोड़ोंसहित बहुत-से कौरव वीर निर्भय हो भरतभूषण कुरुश्रेष्ठ अर्जुनका सामना करनेके लिये चढ़ आये ॥ ७ ॥

तदायस्तमनुष्याश्वमुदीर्णवरवारणम् ।
पुत्राणां ते महासैन्यं समरौत्सीद् धनंजयम् ॥ ८ ॥

आपके पुत्रोंकी उस विशाल सेनामें मनुष्य और अश्व तो थक गये थे, परंतु बड़े-बड़े हाथी उद्धत होकर आगे बढ़ रहे थे। उस सेनाने अर्जुनकी गति रोक दी ॥ ८ ॥

शक्त्यृष्टितोमरप्रासैर्गदानिस्त्रिंशसायकैः ।
प्राच्छादयन् महेष्वासाः कुरवः कुरुनन्दनम् ॥ ९ ॥

उन महाधनुर्धर कौरवोंने कुरुकुलनन्दन अर्जुनको शक्ति, ऋष्टि, तोमर, प्रास, गदा, खड्ग और बाणोंके द्वारा ढक दिया ॥ ९ ॥

तामन्तरिक्षे विततां शस्त्रवृष्टिं समन्ततः ।
व्यधमत् पाण्डवो बाणैस्तमः सूर्य इवांशुभिः ॥ १० ॥

परंतु जैसे सूर्य अपनी किरणोंद्वारा अन्धकारको नष्ट कर देता है, उसी प्रकार पाण्डुपुत्र अर्जुनने आकाशमें सब ओर फैली हुई उस बाणवर्षाको छिन्न-भिन्न कर डाला ॥ १० ॥

ततो म्लेच्छाः स्थिता मत्तैस्त्रयोदशशतैर्गजैः ।
पार्श्वतो व्यहनन् पार्थं तव पुत्रस्य शासनात् ॥ ११ ॥

तब आपके पुत्र दुर्योधनकी आज्ञासे म्लेच्छसैनिक तेरह सौ मतवाले हाथियोंके साथ आ पहुँचे और पार्श्वभागमें खड़े हो अर्जुनको घायल करने लगे ॥ ११ ॥

कर्णिनालीकनाराचैस्तोमरप्रासशक्तिभिः ।
मुसलैर्भिन्दिपालैश्च रथस्थं पार्थमार्दयन् ॥ १२ ॥

उन्होंने रथपर बैठे हुए अर्जुनको कर्णी, नालीक, नाराच, तोमर, मुसल, प्रास, भिंदिपाल और शक्तियोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी ॥ १२ ॥

तां शस्त्रवृष्टिमतुलां द्विपहस्तैः प्रवेरिताम् ।
चिच्छेद निशितैर्भल्लैरर्धचन्द्रैश्च फाल्गुनः ॥ १३ ॥

हाथियोंकी सूँड़ोंद्वारा की हुई उस अनुपम शस्त्रवर्षाको अर्जुनने तीखे भल्लों तथा अर्धचन्द्रोंसे नष्ट कर दिया ॥१३॥

अथ तान् द्विरदान् सर्वान् नानालिङ्गैः शरोत्तमैः।
सपताकध्वजारोहान् गिरीन् वज्रैरिवाहनत् ॥ १४ ॥

फिर नाना प्रकारके चिह्नवाले उत्तम बाणोंद्वारा पताका, ध्वज और सवारोंसहित उन सभी हाथियोंको उसी तरह मार गिराया, जैसे इन्द्रने वज्रके आघातोंसे पर्वतोंको धराशायी कर दिया था ॥ १४ ॥

ते हेमपुङ्खैरिषुभिरर्दिता हेममालिनः ।
हताः पेतुर्महानागाः साग्निज्वाला इवाद्रयः ॥ १५ ॥

सोनेके पंखवाले बाणोंसे पीड़ित हुए वे सुवर्णमालाधारी बड़े-बड़े गजराज मारे जाकर आगकी ज्वालाओंसे युक्त पर्वतोंके समान धरतीपर गिर पड़े ॥ १५ ॥

ततो गाण्डीवनिर्घोषो महानासीद् विशाम्पते ।
स्तनतां कूजतां चैव मनुष्यगजवाजिनाम् ॥ १६ ॥

प्रजानाथ! तदनन्तर गाण्डीव धनुषकी टंकारध्वनि बड़े जोर-जोरसे सुनायी देने लगी। साथ ही चिग्घाड़ते और आर्तनाद करते हुए मनुष्यों, हाथियों तथा घोड़ोंकी आवाज भी वहाँ गूँज उठी ॥ १६ ॥

कुञ्जराश्च हता राजन् दुद्रुवुस्ते समन्ततः ।
अश्वाश्च पर्यधावन्त हतारोहा दिशो दश ॥ १७ ॥

राजन्! घायल हाथी सब ओर भागने लगे। जिनके सवार मार दिये गये थे, वे घोड़े भी दसों दिशाओंमें दौड़ लगाने लगे ॥ १७ ॥

रथा हीना महाराज रथिभिर्वाजिभिस्तथा ।
गन्धर्वनगराकारा दृश्यन्ते स्म सहस्रशः ॥ १८ ॥

महाराज ! गन्धर्वनगरोंके समान सहस्रों विशाल रथ रथियों और घोड़ोंसे हीन दिखायी देने लगे ॥ १८ ॥

अश्वारोहा महाराज धावमाना इतस्ततः ।
तत्र तत्रैव दृश्यन्ते निहताः पार्थसायकैः ॥ १९ ॥

राजेन्द्र ! अर्जुनके बाणोंसे घायल हुए अश्वारोही भी जहाँ-तहाँ इधर-उधर भागते दिखायी दे रहे थे ॥ १९ ॥

तस्मिन् क्षणे पाण्डवस्य बाह्वोर्बलमदृश्यत ।
यत् सादिनो वारणांश्च रथांश्चैकोऽजयद् युधि॥२०॥

उस समय पाण्डुपुत्र अर्जुनकी भुजाओंका बल देखा गया, उन्होंने अकेले ही युद्धमें रथों, सवारों और हाथियोंको भी परास्त कर दिया ॥ २० ॥

(असंयुक्ताश्च ते राजन् परिवृत्ता रणं प्रति ।
हया नागा रथाश्चैव नदन्तोऽर्जुनमभ्ययुः ॥)

राजन् ! तदनन्तर पृथक्-पृथक् वे हाथी, घोड़े और रथ पुनः युद्धस्थलमें लौट आये और अर्जुनके सामने गर्जना करते हुए डट गये ॥

ततस्त्र्यङ्गेण महता बलेन भरतर्षभ ।
दृष्ट्वा परिवृतं राजन् भीमसेनः किरीटिनम् ॥ २१ ॥
हतावशेषानुत्सृज्य त्वदीयान्,कतिचिद् रथान् ।
जवेनाभ्यद्रवद् राजन् धनंजयरथं प्रति ॥ २२ ॥

नरेश्वर ! भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर अर्जुनको तीन अङ्गोंवाली विशाल सेनासे घिरा देख भीमसेन मरनेसे बचे हुए आपके कतिपय रथियोंको छोड़कर बड़े वेगसे धनंजयके रथकी ओर दौड़े ॥ २१-२२ ॥

ततस्तत् प्राद्रवत् सैन्यं हतभूयिष्ठमातुरम् ।
दृष्ट्वार्जुनं तदा भीमो जगाम भ्रातरं प्रति ॥ २३ ॥

उस समय आपके अधिकांश सैनिक मारे जा चुके थे, बहुत-से घायल होकर आतुर हो गये थे । फिर तो कौरव-सेनामें भगदड़ मच गयी । यह सब देखते हुए भीमसेन अपने भाई अर्जुनके पास आ पहुँचे ॥ २३ ॥

हतावशिष्टांस्तुरगानर्जुनेन महाबलान् ।
भीमो व्यधमदश्रान्तो गदापाणिर्महाहवे ॥ २४ ॥

भीमसेन अभी थके नहीं थे, उन्होंने हाथमें गदा ले उस महासमरमें अर्जुनद्वारा मारे जानेसे बचे हुए महाबली घोड़ों और सवारोंका संहार कर डाला ॥ २४ ॥

कालरात्रिमिवात्युग्रां नरनागाश्वभोजनाम् ।
प्राकाराट्टपुरद्वारदारणीमतिदारुणाम् ॥ २५ ॥
ततो गदां नृनागाश्वेष्वाशु भीमो व्यवासृजत् ।
सा जघान बहूनश्वानश्वारोहांश्च मारिष ॥ २६ ॥

मान्यवर नरेश ! तदनन्तर भीमसेनने कालरात्रिके समान अत्यन्त भयंकर, मनुष्यों, हाथियों और घोड़ोंको कालका ग्रास बनानेवाली, परकोटों, अट्टालिकाओं और नगरद्वारोंको भी विदीर्ण कर देनेवाली अपनी अति दारुण गदाका वहाँ मनुष्यों, गजराजों तथा अश्वोंपर तीव्रवेगसे प्रहार किया । उस गदाने बहुत-से घोड़ों और घुड़सवारोंका संहार कर डाला ॥ २५-२६ ॥

कार्ष्णायसतनुत्राणान् नरानश्वांश्च पाण्डवः ।
पोथयामास गदया सशब्दं तेऽपतन् हताः ॥ २७ ॥

पाण्डुपुत्र भीमने काले लोहेका कवच पहने हुए बहुत-से मनुष्यों और अश्वोंको भी गदासे मार गिराया । वे सब-के-सब आर्तनाद करते हुए प्राणशून्य होकर गिर पड़े ॥ २७ ॥

दन्तैर्दशन्तो वसुधां शेरते क्षतजोक्षिताः ।
भग्नमूर्धास्थिचरणाः क्रव्यादगणभोजनाः ॥ २८ ॥

घायल हुए कौरवसैनिक खूनसे नहाकर दाँतोंसे ओठ चबाते हुए धरतीपर सो गये थे, किन्हींका माथा फट गया था, किन्हींकी हड्डियाँ चूर-चूर हो गयी थीं और किन्हींके पाँव उखड़ गये थे । वे सब-के-सब मांसभक्षी पशुओंके भोजन बन गये थे ॥ २८ ॥

असृङ्मांसवसाभिश्च तृप्तिमभ्यागता गदा ।
अस्थीन्यप्यश्नती तस्थौ कालरात्रीव दुर्दशा ॥ २९ ॥

वह गदा दुर्लक्ष्य कालरात्रिके समान शत्रुओंके रक्त, मांस और चर्बीसे तृप्त होकर उनकी हड्डियोंको भी चबाये जा रही थी ॥ २९ ॥

सहस्राणि दशाश्वानां हत्वा पत्तींश्च भूयसः ।
भीमोऽभ्यधावत् संक्रुद्धो गदापाणिरितस्ततः ॥ ३० ॥

दस हजार घोड़ों और बहुसंख्यक पैदलोंका संहार करके क्रोधमें भरे हुए भीमसेन हाथमें गदा लेकर इधर-उधर दौड़ने लगे ॥ ३० ॥

गदापाणिं ततो भीमं दृष्ट्वा भारत तावकाः ।
मेनिरे समनुप्राप्तं कालदण्डोद्यतं यमम् ॥ ३१ ॥

भरतनन्दन ! भीमसेनको गदा हाथमें लिये देख आपके सैनिक कालदण्ड लेकर आया हुआ यमराज मानने लगे ३१

स मत्त इव मातङ्गः संक्रुद्धः पाण्डुनन्दनः ।
प्रविवेश गजानीकं मकरः सागरं यथा ॥ ३२ ॥

मतवाले हाथीके समान अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए पाण्डुनन्दन भीमसेनने शत्रुओंकी गजसेनामें प्रवेश किया, मानो मगर समुद्रमें जा घुसा हो ॥ ३२ ॥

विगाह्य च गजानीकं प्रगृह्य महतीं गदाम् ।
क्षणेन भीमः संक्रुद्धस्तन्निन्ये यमसादनम् ॥ ३३ ॥

विशाल गदा हाथमें ले अत्यन्त कुपित हो भीमसेनने हाथियोंकी सेनामें घुसकर उसे क्षणभरमें यमलोक पहुँचा दिया ॥

गजान् सकङ्कटान् मत्तान् सारोहान् सपताकिनः ।
पततः समपश्याम सपक्षान् पर्वतानिव ॥ ३४ ॥

कवचों, सवारों और पताकाओंसहित मतवाले हाथियोंको हमने पंखधारी पर्वतोंके समान धराशायी होते देखा था ॥

हत्वा तु तद् गजानीकं भीमसेनो महाबलः ।
पुनः स्वरथमास्थाय पृष्ठतोऽर्जुनमभ्ययात् ॥ ३५ ॥

महाबली भीमसेन उस गजसेनाका संहार करके पुनः अपने रथपर आ बैठे और अर्जुनके पीछे-पीछे चलने लगे ॥ ३५ ॥

ततः पराङ्मुखप्रायं निरुत्साहं बलं तव।
व्यालम्बत महाराज प्रायशः शस्त्रवेष्टितम् ॥ ३६ ॥

महाराज! उस समय भीमसेन और अर्जुनके अस्त्र-शस्त्रोंसे घिरी हुई आपकी अधिकांश सेना उत्साहशून्य, विमुख और जडवत् हो गयी ॥ ३६ ॥

विलम्बमानं तत् सैन्यमप्रगल्भमवस्थितम्।
दृष्ट्वा प्राच्छादयद् बाणैरर्जुनः प्राणतापनैः ॥ ३७ ॥

उस सेनाको जडवत्, उद्योगशून्य हुई देख अर्जुनने प्राणोंको संतप्त कर देनेवाले बाणोंद्वारा उसे आच्छादित कर दिया ॥ ३७ ॥

नराश्वरथमातङ्गा युधि गाण्डीवधन्वना।
शरव्रातैश्चिता रेजुः कदम्बा इव केसरैः ॥ ३८ ॥

युद्धस्थलमें गाण्डीवधारी अर्जुनके बाणोंसे छिदे हुए मनुष्य, घोड़े, रथ और हाथी केसरयुक्त कदम्बपुष्पोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥ ३८ ॥

ततः कुरूणामभवदार्तनादो महान् नृप।
नराश्वनागासुहरैर्वध्यतामर्जुनेषुभिः ॥ ३९ ॥

नरेश्वर ! तदनन्तर मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंके प्राण लेनेवाले अर्जुनके बाणोंद्वारा हताहत होते हुए कौरवोंका महान् आर्तनाद प्रकट होने लगा ॥ ३९ ॥

हाहाकृतं भृशं त्रस्तं लीयमानं परस्परम्।
अलातचक्रवत् सैन्यं तदाभ्रमत तावकम् ॥ ४० ॥

महाराज ! उस समय अत्यन्त भयभीत हो हाहाकार मचाती और एक दूसरेकी आड़में छिपती हुई आपकी सेना अलातचक्रके समान वहाँ चक्कर काटने लगी ॥ ४० ॥

ततस्तद् युद्धमभवत् कुरूणां सुमहद् बलैः।
न ह्यत्रासीदनिर्भिन्नो रथः सादी हयो गजः ॥ ४१ ॥

तत्पश्चात् कौरवोंकी सेनाके साथ महान् युद्ध होने लगा। उसमें कोई भी ऐसा रथ, सवार, घोड़ा अथवा हाथी नहीं था, जो अर्जुनके बाणोंसे विदीर्ण न हो गया हो ॥ ४१ ॥

आदीप्तमिव तत् सैन्यं शरैश्छिन्नतनुच्छदम्।
आसीत् सुशोणितक्लिन्नं फुल्लाशोकवनं यथा ॥ ४२ ॥

उस समय सारी सेना जलती हुई-सी दिखायी देती थी। बाणोंसे उसके कवच छिन्न-भिन्न हो गये थे तथा वह खूनसे लथपथ हो खिले हुए अशोकवनके समान प्रतीत होती थी ॥ ४२ ॥

(तत् सैन्यं भरतश्रेष्ठ वध्यमानं शितैः शरैः।
न जहौ समरं प्राप्य फाल्गुनं शत्रुतापनम् ॥
तत्राद्भुतमपश्याम कौरवाणां पराक्रमम्।
वध्यमानापि यत् पार्थं न जहुर्भरतर्षभ ॥)

भरतश्रेष्ठ ! शत्रुओंको तपनेवाले अर्जुनको सामने पाकर तीखे बाणोंसे मारी जाती हुई आपकी उस सेनाने युद्ध नहीं छोड़ा। भरतभूषण ! वहाँ हमलोगोंने कौरवयोद्धाओंका यह अद्भुत पराक्रम देखा कि वे मारे जानेपर भी अर्जुनको छोड़ नहीं रहे थे ॥

तं दृष्ट्वा कुरवस्तत्र विक्रान्तं सव्यसाचिनम्।
निराशाः समपद्यन्त सर्वे कर्णस्य जीविते ॥ ४३ ॥

सव्यसाची अर्जुनको इस प्रकार पराक्रम प्रकट करते देख समस्त कौरवसैनिक कर्णके जीवनसे निराश हो गये ॥ ४३ ॥

अविषह्यं तु पार्थस्य शरसम्पातमाहवे।
मत्वा न्यवर्तन् कुरवो जिता गाण्डीवधन्वना ॥ ४४ ॥

गाण्डीवधारी अर्जुनके द्वारा परास्त हुए कौरव योद्धा समराङ्गणमें उनकी बाणवर्षाको अपने लिये असह्य मानकर युद्धसे पीछे हटने लगे ॥ ४४ ॥

ते हित्वा समरे कर्णं वध्यमानाश्च सायकैः।
प्रदुद्रुवुर्दिशो भीताश्चुक्रुशुश्चापि सूतजम् ॥ ४५ ॥

बाणोंसे विंध जानेके कारण वे भयभीत हो रणभूमिमें कर्णको अकेला ही छोड़कर सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग चले; किंतु अपनी रक्षाके लिये सूतपुत्र कर्णको ही पुकारते रहे ॥ ४५ ॥

अभ्यद्रवत तान् पार्थः किरञ्शरशतान् बहून्।
हर्षयन् पाण्डवान् योधान् भीमसेनपुरोगमान् ॥ ४६ ॥

कुन्तीकुमार अर्जुन सैकड़ों बाणोंकी वर्षा करते और भीमसेन आदि पाण्डव-योद्धाओंका हर्ष बढ़ाते हुए आपके उन सैनिकोंको खदेड़ने लगे ॥ ४६ ॥

पुत्रास्तु ते महाराज जग्मुः कर्णरथं प्रति।
अगाधे मज्जतां तेषां द्वीपः कर्णोऽभवत्तदा ॥ ४७ ॥

महाराज ! इसके बाद आपके पुत्र भागकर कर्णके रथके पास गये। वे संकटके अगाध समुद्रमें डूब रहे थे। उस समय कर्ण ही द्वीपके समान उनका रक्षक हुआ ॥ ४७ ॥

कुरवो हि महाराज निर्विषाः पन्नगा इव।
कर्णमेवोपलीयन्त भयाद् गाण्डीवधन्वनः ॥ ४८ ॥

महाराज ! कौरव विषरहित सर्पोंके समान गाण्डीवधारी अर्जुनके भयसे कर्णके ही पास छिपने लगे ॥ ४८ ॥

यथा सर्वाणि भूतानि मृत्योर्भीतानि मारिष।
धर्ममेवोपलीयन्ते कर्मवन्ति हि यानि च ॥ ४९ ॥
तथा कर्णं महेष्वासं पुत्रास्तव नराधिप।
उपालीयन्त संत्रासात् पाण्डवस्य महात्मनः ॥ ५० ॥

माननीय नरेश ! जैसे कर्म करनेवाले सब जीव मृत्युसे डरकर धर्मकी ही शरण लेते हैं, उसी प्रकार आपके पुत्र महामना पाण्डुपुत्र अर्जुनके भयसे महाधनुर्धर कर्णकी ही ओटमें छिपने लगे थे ॥ ४९-५० ॥

ताञ्शोणितपरिक्लिन्नान् विषमस्थाञ्शरातुरान्।
मा भैष्टेत्यब्रवीत् कर्णो ह्यभीतो मामितेति च ॥ ५१ ॥

कर्णने उन्हें लूनसे लथपथ, संकटमें मग्न और बाणोंकी चोटसे व्याकुल देखकर कहा—'वीरो ! डरो मत । तुम सब लोग निर्भय होकर मेरे पास आ जाओ' ॥ ५१ ॥

सम्भग्नं हि बलं दृष्ट्वा बलात् पार्थेन तावकम् ।
धनुर्विस्फारयन् कर्णस्तस्थौ शत्रुजिघांसया ॥ ५२ ॥

अर्जुनने बलपूर्वक आपकी सेनाको भगा दिया है—यह देखकर कर्ण शत्रुओंका वध करनेकी इच्छासे धनुष तानकर खड़ा हो गया ॥ ५२ ॥

तान् प्रद्रुतान् कुरून् दृष्ट्वा कर्णः शस्त्रभृतां वरः ।
संचिन्तयित्वा पार्थस्य वधे दध्रे मनः श्वसन् ॥ ५३ ॥

शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ कर्णने कौरवसैनिकोंको भागते देख खूब सोच-विचारकर लंबी साँस लेते हुए मन-ही-मन अर्जुनके वधका निश्चय किया ॥ ५३ ॥

विस्फार्य सुमहच्चापं ततश्चाधिरथिर्वृषः ।
पञ्चालान् पुनराधावत् पश्यतः सव्यसाचिनः ॥ ५४ ॥

तत्पश्चात् धर्मात्मा अधिरथपुत्र कर्णने अपने विशाल धनुषको फैलाकर अर्जुनके देखते-देखते पुनः पाञ्चाल-योद्धाओंपर धावा किया ॥ ५४ ॥

ततः क्षणेन क्षितिपाः क्षतजप्रतिमेक्षणाः ।
कर्णं ववर्षुर्बाणौघैर्यथा मेघा महीधरम् ॥ ५५ ॥

यह देख पाञ्चालनरेशोंके नेत्र रोषसे लाल हो गये । जैसे बादल पर्वतपर पानी बरसाते हैं, उसी प्रकार वे क्षणभरमें कर्णपर बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगे ॥ ५५ ॥

ततः शरसहस्राणि कर्णमुक्तानि मारिष ।
व्ययोजयन्त पञ्चालान् प्राणैः प्राणभृतां वर ॥ ५६ ॥

प्राणधारियोंमें श्रेष्ठ मान्यवर नरेश ! तदनन्तर कर्णके छोड़े हुए सहस्रों बाण पाञ्चालोंको प्राणहीन करने लगे ॥

तत्र शब्दो महानासीत् पञ्चालानां महामते ।
वध्यतां सूतपुत्रेण मित्रार्थे मित्रगृद्धिना ॥ ५७ ॥

महामते ! वहाँ मित्रका हित चाहनेवाले सूतपुत्र कर्णके द्वारा मित्रकी ही भलाईके लिये मारे जानेवाले पाञ्चालोंका महान् आर्तनाद होने लगा ॥ ५७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक इक्यासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८१ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३२ श्लोक मिलाकर कुल ६० श्लोक हैं)

द्व्यशीतितमोऽध्यायः

सात्यकिके द्वारा कर्णपुत्र प्रसेनका वध, कर्णका पराक्रम और दुःशासन एवं भीमसेनका युद्ध

संजय उवाच

ततः कर्णः कुरुषु प्रद्रुतेषु
वरूथिना श्वेतहयेन राजन् ।
पाञ्चालपुत्रान् व्यधमत् सूतपुत्रो
महेषुभिर्वात इवाभ्रसंघान् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! जब कौरवसैनिक बड़े वेगसे भागने लगे, उस समय जैसे वायु मेघोंके समूहको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार सूतपुत्र कर्णने श्वेत घोड़ोंवाले रथके द्वारा आक्रमण करके अपने विशाल बाणोंसे पाञ्चालराजकुमारोंका संहार आरम्भ किया ॥ १ ॥

सूतं रथादञ्जलिकैर्निपात्य
जघान चाश्वाञ्जनमेजयस्य ।
शतानीकं सुतसोमं च भल्लै-
रवाकिरद् धनुषी चाप्यकृन्तत् ॥ २ ॥

उसने अञ्जलिक नामवाले बाणोंसे जनमेजयके सारथिको रथसे नीचे गिराकर उसके घोड़ोंको भी मार डाला । फिर शतानीक तथा सुतसोमको भल्लोंसे ढक दिया और उन दोनोंके धनुष भी काट डाले ॥ २ ॥

धृष्टद्युम्नं निर्बिभेदाथ षड्भि-
र्जघानाश्वांस्तरसा तस्य संख्ये ।
हत्वा चाश्वान् सात्यकेः सूतपुत्रः
कैकेयपुत्रं न्यवधीद् विशोकम् ॥ ३ ॥

तत्पश्चात् छः बाणोंसे युद्धस्थलमें धृष्टद्युम्नको घायल कर दिया और उनके घोड़ोंको भी वेगपूर्वक मार डाला । इसके बाद सूतपुत्रने सात्यकिके घोड़ोंको नष्ट करके केकयराजकुमार विशोकका भी वध कर डाला ॥ ३ ॥

तमभ्यधावन्निहते कुमारे
कैकेयसेनापतिरुग्रकर्मा ।
शरैर्विधुन्वन् भृशमुग्रवेगैः
कर्णात्मजं चाप्यहनत् प्रसेनम् ॥ ४ ॥

केकयराजकुमारके मारे जानेपर वहाँके सेनापति उग्रकर्माने कर्णपर धावा किया । उसने धनुषको तीव्रवेगसे संचालित करते हुए भयंकर वेगवाले बाणोंद्वारा कर्णके पुत्र प्रसेनको भी घायल कर दिया ॥ ४ ॥

तस्यार्धचन्द्रैस्त्रिभिरुच्चकर्त
प्रहस्य बाहू च शिरश्च कर्णः ।
स स्यन्दनाद् गामगमद् गतासुः
परश्वधैः शाल इवावरुग्णः ॥ ५ ॥

तब कर्णने हँसकर तीन अर्धचन्द्राकार बाणोंसे उग्रकर्माकी दोनों भुजाएँ और मस्तक काट डाले । वह प्राणशून्य होकर कुल्हाड़ीके काटे हुए शाखूके पेड़के समान रथसे पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ५ ॥

हताश्वमञ्जोगतिभिः प्रसेनः
शिनिप्रवीरं निशितैः पृषत्कैः ।

प्रच्छाद्य नृत्यन्निव कर्णपुत्रः
शैनेयबाणाभिहतः पपात ॥ ६ ॥

उधर कर्णने जब सात्यकिके घोड़े मार डाले, तब कर्ण-पुत्र प्रसेनने तीव्रगामी पैने बाणोंद्वारा शिनिप्रवर सात्यकिको ढक दिया। इसके बाद सात्यकिके बाणोंकी चोट खाकर वह नाचता हुआ-सा पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ६ ॥

पुत्रे हते क्रोधपरीतचेताः
कर्णः शिनीनामृषभं जिघांसुः।
हतोऽसि शैनेय इति ब्रुवन् स
व्यवासृजद् बाणममित्रसाहम् ॥ ७ ॥

पुत्रके मारे जानेपर क्रोधसे व्याकुलचित्त हुए कर्णने शिनिप्रवर सात्यकिका वध करनेके लिये उनपर एक शत्रुनाशक बाण छोड़ा और कहा—'सात्यके! अब तू मारा गया' ॥ ७ ॥

तमस्य चिच्छेद शरं शिखण्डी
त्रिभिस्त्रिभिश्च प्रतुतोद कर्णम्।
शिखण्डिनः कार्मुकं च ध्वजं च
छित्त्वा क्षुराभ्यां न्यपतत् सुजातः॥ ८ ॥

परंतु उसके उस बाणको शिखण्डीने तीन बाणोंद्वारा काट दिया और उसे भी तीन बाणोंसे पीड़ित कर दिया। तब कर्णने दो छुरोंसे शिखण्डीकी ध्वजा और धनुष काटकर नीचे गिरा दिये ॥ ८ ॥

शिखण्डिनं षड्भिरविध्यदुग्रो
धार्ष्टद्युम्नेः स शिरश्चोच्चकर्त।
तथाभिनत् सुतसोमं शरेण
सुसंशितेनाधिरथिर्महात्मा ॥ ९ ॥

फिर भयंकर वीर कर्णने छः बाणोंसे शिखण्डीको घायल कर दिया और धृष्टद्युम्नके पुत्रका मस्तक काट डाला। साथ ही महामनस्वी अधिरथपुत्रने अत्यन्त तीखे बाणसे सुतसोमको भी क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ९ ॥

अथाक्रन्दे तुमुले वर्तमाने
धार्ष्टद्युम्ने निहते तत्र कृष्णः।
अपाञ्चाल्यं क्रियते याहि पार्थ
कर्णं जहीत्यब्रवीद् राजसिंह ॥ १० ॥

राजसिंह! इस प्रकार जब वह भयंकर घमासान युद्ध चलने लगा और धृष्टद्युम्नका पुत्र मारा गया, तब भगवान् श्रीकृष्णने वहाँ अर्जुनसे कहा—'पार्थ! कर्ण पाञ्चालोंका संहार कर रहा है, अतः आगे बढ़ो और उसे मार डालो' ॥ १० ॥

ततः प्रहस्याशु नरप्रवीरो
रथं रथेनाधिरथेर्जगाम।
भये तेषां त्राणमिच्छन् सुबाहु-
रभ्याहतानां रथयूथपेन ॥ ११ ॥

तदनन्तर सुन्दर भुजाओंवाले नरवीर अर्जुन हँसकर भयके अवसरपर उन घायल सैनिकोंकी रक्षाके लिये रथ-समूहोंके अधिपति विशाल रथके द्वारा सूतपुत्रके रथकी ओर शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़े ॥ ११ ॥

विस्फार्य गाण्डीवमथोग्रघोषं
ज्यया समाहत्य तले भृशं च।
बाणान्धकारं सहसैव कृत्वा
जघान नागाश्वरथध्वजांश्च ॥ १२ ॥

उन्होंने भयानक टंकार करनेवाले गाण्डीव धनुषको फैलाकर उसकी प्रत्यञ्चाद्वारा अपनी हथेलीमें आघात करते हुए सहसा बाणोंद्वारा अन्धकार फैला दिया और शत्रुपक्षके हाथी, घोड़े, रथ एवं ध्वज नष्ट कर दिये ॥ १२ ॥

प्रतिश्रुतिः प्राचरदन्तरिक्षे
गुहा गिरीणामपतन् वयांसि।
यन्मण्डलज्येन विजृम्भमाणो
रौद्रे मुहूर्तेऽभ्यपतत् किरीटी ॥ १३ ॥

उस भयंकर मुहूर्तमें गाण्डीव धनुषकी प्रत्यञ्चाको मण्डलाकार करके जब किरीटधारी अर्जुन शत्रुसेनापर टूट पड़े तथा बल और प्रतापमें बढ़ने लगे, उस समय धनुषकी टंकारकी प्रतिध्वनि आकाशमें गूँज उठी, जिससे डरे हुए पक्षी पर्वतोंकी कन्दराओंमें छिप गये ॥ १३ ॥

तं भीमसेनोऽनुययौ रथेन
पृष्ठे रक्षन् पाण्डवमेकवीरः।
तौ राजपुत्रौ त्वरितौ रथाभ्यां
कर्णाय यातावरिभिर्विषक्तौ ॥ १४ ॥

प्रमुख वीर भीमसेन पीछेसे पाण्डुनन्दन अर्जुनकी रक्षा करते हुए रथके द्वारा उनका अनुसरण करने लगे। वे दोनों पाण्डवराजकुमार बड़ी उतावलीके साथ शत्रुओंसे जूझते हुए कर्णकी ओर बढ़ने लगे ॥ १४ ॥

तत्रान्तरे सुमहत् सूतपुत्र-
श्चक्रे युद्धं सोमकान् सम्प्रमृद्नन्।
रथाश्वमातङ्गगणाञ्जघान
प्रच्छादयामास शरैर्दिशश्च ॥ १५ ॥

इसी बीचमें सूतपुत्र कर्णने सोमकोंका संहार करते हुए उनके साथ महान् युद्ध किया। उनके बहुत-से घोड़े, रथ और हाथियोंका वध कर डाला और बाणोंद्वारा सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित कर दिया ॥ १५ ॥

तमुत्तमौजा जनमेजयश्च
क्रुद्धौ युधामन्युशिखण्डिनौ च।
कर्णं बिभिदुः सहिताः पृषत्कैः
संनर्दमानाः सह पार्षतेन ॥ १६ ॥

उस समय धृष्टद्युम्नके साथ गर्जते हुए उत्तमौजा, जनमेजय, कुपित युधामन्यु और शिखण्डी—ये सब संगठित होकर अपने बाणोंद्वारा कर्णको घायल करने लगे ॥ १६ ॥

ते पञ्च पाञ्चालरथप्रवीरा
वैकर्तनं कर्णमभिद्रवन्तः ।
तस्माद् रथाच्च्यावयितुं न शेकु-
र्धैर्यात् कृतात्मानमिवेन्द्रियार्थाः ॥ १७ ॥

पाञ्चाल रथियोंमें प्रमुख ये पाँचों वीर वैकर्तन कर्णपर आक्रमण करके भी उसे उस रथसे नीचे न गिरा सके । ठीक उसी तरह, जैसे जिसने अपने मनको वशमें कर रक्खा है उस योगीको शब्द, स्पर्श आदि विषय धैर्यसे विचलित नहीं कर पाते हैं ॥ १७ ॥

तेषां धनूंषि ध्वजवाजिसूतां-
स्तूर्णं पताकाश्च निकृत्य बाणैः ।
तान् पञ्चभिस्त्वभ्यहनत् पृषत्कैः
कर्णस्ततः सिंह इवोन्ननाद ॥ १८ ॥

कर्णने अपने बाणोंद्वारा तुरंत ही उनके धनुष, ध्वज, घोड़े, सारथि और पताकाएँ काट डालीं और पाँच बाणोंसे उन पाँचों वीरोंको भी घायल कर दिया । तत्पश्चात् वह सिंह-के समान दहाड़ने लगा ॥ १८ ॥

तस्यास्यतस्तानभिनिघ्नतश्च
ज्याबाणहस्तस्य धनुःस्वनेन ।
साद्रिद्रुमा स्यात् पृथिवी विशीर्णे-
त्यतीव मत्वा जनता व्यषीदत् ॥ १९ ॥

कर्ण बाण छोड़ता और शत्रुओंका संहार करता जा रहा था । उसके हाथमें धनुषकी प्रत्यञ्चा और बाण सदा मौजूद रहते थे । उसके धनुषकी टंकारसे पर्वतों और वृक्षोंसहित यह सारी पृथ्वी विदीर्ण हो जायगी, ऐसा समझकर सब लोग अत्यन्त खिन्न हो उठे थे ॥ १९ ॥

स शक्रचापप्रतिमेन धन्वना
भृशायतेनाधिरथिः शरान् सृजन् ।
बभौ रणे दीप्तमरीचिमण्डलो
यथांशुमाली परिवेषवांस्तथा ॥ २० ॥

इन्द्रधनुषके समान खींचे हुए मण्डलाकार विशाल धनुषके द्वारा बाणोंकी वर्षा करता हुआ अधिरथपुत्र कर्ण रणभूमिमें प्रकाशमान किरणोंवाले परिधियुक्त अंशुमाली सूर्यके समान शोभा पा रहा था ॥ २० ॥

शिखण्डिनं द्वादशभिः पराभिन-
च्छितैः शरैः षड्भिरथोत्तमौजसम् ।
त्रिभिर्युधामन्युमविध्यदाशुगै-
स्त्रिभिस्त्रिभिः सोमकपार्षतात्मजौ ॥ २१ ॥

उसने शिखण्डीको बारह, उत्तमौजाको छः, युधामन्युको तीन तथा जनमेजय और धृष्टद्युम्नको भी तीन-तीन पैने बाणोंसे अत्यन्त घायल कर दिया ॥ २१ ॥

पराजिताः पञ्च महारथास्तु ते
महाहवे सूतसुतेन मारिष ।
निरुद्यमास्तस्थुरमित्रनन्दना
यथेन्द्रियार्थात्मवता पराजिताः ॥ २२ ॥

आर्य ! जैसे मनको वशमें रखनेवाले जितेन्द्रिय पुरुषके द्वारा पराजित हुए विषय उसे आकृष्ट नहीं कर पाते, उसी प्रकार महासमरमें सूतपुत्र कर्णके द्वारा परास्त हुए वे पाँचों पाञ्चाल वीर निश्चेष्टभावसे खड़े हो गये और शत्रुओंका आनन्द बढ़ाने लगे ॥ २२ ॥

निमज्जतस्तानथ कर्णसागरे
विपन्ननावो वणिजो यथार्णवे ।
उद्दध्रिरे नौभिरिवार्णवाद् रथैः
सुकल्पितैर्द्रौपदिजाः स्वमातुलान् ॥ २३ ॥

जैसे समुद्रमें जिनकी नाव डूब गयी हो, उन डूबते हुए व्यापारियोंको दूसरी नौकाओंद्वारा लोग बचा लेते हैं, उसी प्रकार द्रौपदीके पुत्रोंने कर्णरूपी सागरमें डूबनेवाले अपने उन मामाओंको रण-सामग्रीसे सजे-सजाये रथोंद्वारा बचाया ॥

ततः शिनीनामृषभः शितैः शरै-
र्निकृत्य कर्णप्रहितानिषून् बहून् ।
विदार्य कर्णं निशितैरयस्मयै-
स्तवात्मजं ज्येष्ठमविध्यदष्टभिः ॥ २४ ॥

तत्पश्चात् शिनिप्रवर सात्यकिने कर्णके छोड़े हुए बहुत-से बाणोंको अपने तीखे बाणोंसे काटकर लोहेके पैने बाणोंसे कर्णको घायल करनेके पश्चात् आपके ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधनको आठ बाण मारकर बींध डाला ॥ २४ ॥

कृपोऽथ भोजश्च तवात्मजस्तथा
स्वयं च कर्णो निशितैरताडयत् ।
स तैश्चतुर्भिर्युयुधे यदूत्तमो
दिगीश्वरैर्दैत्यपतिर्यथा तथा ॥ २५ ॥

तब कृपाचार्य, कृतवर्मा, आपका पुत्र दुर्योधन तथा स्वयं कर्ण भी सात्यकिको तीखे बाणोंसे घायल करने लगे । यदुकुलतिलक सात्यकिने अकेले ही उन चारों वीरोंके साथ उसी प्रकार युद्ध किया, जैसे दैत्यराज हिरण्यकशिपुने चारों दिक्पालोंके साथ किया था ॥ २५ ॥

समाततेनेष्वसनेन कूजता
भृशायतेनामितबाणवर्षिणा ।
बभूव दुर्धर्षतरः स सात्यकिः
शरन्नभोमध्यगतो यथा रविः ॥ २६ ॥

जैसे शरद्ऋतुके आकाशमण्डलके बीचमें आये हुए मध्याह्नकालिक सूर्य प्रचण्ड हो उठते हैं, उसी प्रकार असंख्य बाणोंकी वर्षा करनेवाले तथा कानतक खींचे जानेके कारण गम्भीर टंकार करनेवाले अपने विशाल धनुषके द्वारा सात्यकि उस समय शत्रुओंके लिये अत्यन्त दुर्जय हो उठे ॥ २६ ॥

पुनः समास्थाय रथान् सुदंशिताः
शिनिप्रवीरं जुगुपुः परंतपाः ।

समेत्य पाञ्चालमहारथा रणे
मरुद्गणाः शक्रमिवारिनिग्रहे ॥ २७ ॥

तदनन्तर शत्रुओंको तपानेवाले पूर्वोक्त पाञ्चाल महारथी कवच पहन रथोंपर आरूढ़ हो पुनः आकर शिनिप्रवर सात्यकिकी रणभूमिमें उसी तरह रक्षा करने लगे, जैसे मरुद्गण शत्रुओंके दमनकालमें देवराज इन्द्रकी रक्षा करते हैं ॥

ततोऽभवद् युद्धमतीव दारुणं
तवाहितानां तव सैनिकैः सह ।
रथाश्वमातङ्गविनाशनं तथा
यथा सुराणामसुरैः पुराभवत् ॥ २८ ॥

इसके बाद आपके शत्रुओंका आपके सैनिकोंके साथ अत्यन्त दारुण युद्ध होने लगा, जो रथों, घोड़ों और हाथियों-का विनाश करनेवाला था । वह युद्ध प्राचीन कालके देवासुर-संग्रामके समान जान पड़ता था ॥ २८ ॥

रथा द्विपा वाजिपदातयस्तथा
भवन्ति नानाविधशस्त्रवेष्टिताः ।
परस्परेणाभिहताश्च चस्खलु-
र्विनेदुरार्ता व्यसवोऽपतंस्तथा ॥ २९ ॥

बहुत-से रथी, सवारोंसहित हाथी, घोड़े तथा पैदल सैनिक नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे आच्छादित हो एक दूसरेसे टकराकर लड़खड़ाने लगते, आर्तनाद करते और प्राणशून्य होकर गिर पड़ते थे ॥ २९ ॥

तथागते भीममभीस्तवात्मजः
ससार राजावरजः किरञ्शरैः ।
तमभ्यधावत् त्वरितो वृकोदरो
महारुरुं सिंह इवाभिपेदिवान् ॥ ३० ॥

राजन् ! इस प्रकार जब वह भयंकर संग्राम चल रहा था, उसी समय राजा दुर्योधनका छोटा भाई आपका पुत्र दुःशासन निर्भय हो बाणोंकी वर्षा करता हुआ भीमसेनपर चढ़ आया । उसे देखते ही भीमसेन भी बड़े उतावले होकर उसकी ओर दौड़े और जिस प्रकार सिंह महारुरु नामक मृगपर आक्रमण करता है, उसी प्रकार उसके पास जा पहुँचे ॥

ततस्तयोर्युद्धमतीव दारुणं
प्रदीव्यतोः प्राणदुरोदरं द्वयोः ।
परस्परेणाभिनिविष्टरोषयो-
रुदग्रयोः शम्बरशक्रयोर्यथा ॥ ३१ ॥

उन दोनोंके मनमें एक दूसरेके प्रति महान् रोष भरा हुआ था । दोनों ही प्राणोंकी बाजी लगाकर अत्यन्त भयंकर युद्धका जूआ खेल रहे थे । उन प्रचण्ड वीरोंका वह संग्राम शम्बरासुर और इन्द्रके समान हो रहा था ॥ ३१ ॥

शरैः शरीरार्तिकरैः सुतेजनै-
र्निजघ्नतुस्ताावितरेतरं भृशम् ।
सकृत्प्रभिन्नाविव वासितान्तरे
महागजौ मन्मथसक्तचेतसौ ॥ ३२ ॥

शरीरको पीड़ा देनेवाले अत्यन्त पैने बाणोंद्वारा वे दोनों वीर एक दूसरेको गहरी चोट पहुँचाने लगे; मानो मैथुनकी इच्छावाली हथिनीके लिये कामासक्त चित्त होकर दो मदस्रावी गजराज परस्पर आघात करते हों ॥ ३२ ॥

(आलोक्य तौ तत्र परस्परं ततः
समं च शूरौ च ससारथी तदा ।
भीमोऽब्रवीद् याहि दुःशासनाय
दुःशासनो याहि वृकोदराय ॥

सारथिसहित उन दोनों शूरवीरोंने जब वहाँ एक दूसरेको एक साथ देखा, तब भीमने अपने सारथिसे कहा—'दुःशासनकी ओर चलो' और दुःशासनने अपने सारथिसे कहा—'भीमसेनकी ओर चलो' ॥

तयो रथौ सारथिभ्यां प्रचोदितौ
समं रणे तौ सहसा समीयतुः ।
नानायुधौ चित्रपताकिनौ ध्वजौ
दिवीव पूर्वं बलशक्रयो रणे ॥

सारथियोंद्वारा एक साथ हाँके गये उन दोनोंके रथ रणभूमिमें दोनोंके पास सहसा जा पहुँचे । वे दोनों ही रथ नाना प्रकारके आयुधोंसे सम्पन्न तथा विचित्र पताकाओं और ध्वजाओंसे सुशोभित थे । जैसे पूर्वकालमें स्वर्गके निमित्त होनेवाले युद्धमें बलासुर और इन्द्रके रथ थे, उसी प्रकार दुःशासन और भीमसेनके भी थे ॥

भीम उवाच

दिष्ट्यासि दुःशासन मेऽद्य दृष्टः
ऋणं प्रतीच्छे सहवृद्धिमूलम् ।
चिरोद्यतं यन्मया ते सभायां
कृष्णाभिमर्शेन गृहाण मत्तः ॥

भीमसेन बोले—दुःशासन ! बड़े सौभाग्यकी बात है कि तू आज मुझे दिखायी दिया है । कौरव-सभामें द्रौपदीका स्पर्श करनेके कारण दीर्घकालसे जो तेरा ऋण मेरे ऊपर चढ़ गया है, उसे मैं आज ब्याज और मूलसहित चुकाना चाहता हूँ । तू मुझसे वह सब ग्रहण कर ॥

संजय उवाच

स एवमुक्तस्तु ततो महात्मा
दुःशासनो वाक्यमुवाच वीरः ।

संजय कहते हैं—राजन् ! भीमसेनके ऐसा कहनेपर महामनस्वी वीर दुःशासनने इस प्रकार कहा ॥

दुःशासन उवाच

सर्वं स्मरे नैव च विस्मरामि
उदीर्यमाणं शृणु भीमसेन ॥
स्मरामि चात्मप्रभवं चिराय
यज्जातुषे वेश्मनि राज्यहानि ।
विश्वासहीना मृगयां चरन्तो
वसन्ति सर्वत्र निराकृतास्तु ॥

दुःशासन बोला—भीमसेन ! मुझे सब कुछ याद है। मैं भूलता नहीं हूँ। तुम मेरी कही हुई बात सुनो। मैं अपनी की हुई सारी बातोंको चिरकालसे याद रखता हूँ। पहले तुमलोग लाक्षागृहमें रात-दिन सशङ्क होकर निवास करते थे। फिर वहाँसे निकाले जाकर वनमें सर्वत्र शिकार खेलते हुए रहने लगे॥

महाभये रात्र्यहनी स्मरन्त-
स्तथोपभोगाच्च सुखाच्च हीनाः।
वनेष्वटन्तो गिरिगह्वराणि
पाञ्चालराजस्य पुरं प्रविष्टाः॥
मायां यूयं कामपि सम्प्रविष्टा
यतो वृतः कृष्णया फाल्गुनो वः।

रात-दिन महान् भयमें डूबे रहकर तुम चिन्तामें पड़े रहते और सुख एवं उपभोगसे वञ्चित हो जंगलों तथा पर्वतकी कन्दराओंमें घूमते थे। इसी अवस्थामें तुम सब लोग एक दिन पाञ्चालराजके नगरमें जा घुसे। वहाँ तुम लोगोंने किसी मायामें प्रविष्ट होकर अपने स्वरूपको छिपा लिया था; इसलिये द्रौपदीने तुमलोगोंमेंसे अर्जुनका वरण कर लिया॥

सम्भूय पापैस्तदनार्यवृत्तं
कृतं तदा मातृकृतानुरूपम्॥
एको वृतः पञ्चभिः साभिपन्ना
ह्यलज्जमानैश्च परस्परस्य।
स्मरे सभायां सुबलात्मजेन
दासीकृताः स्थ सह कृष्णया च॥)

परंतु तुम सब पापियोंने मिलकर उसके साथ वह नीचोंका-सा बर्ताव किया, जो तुम्हारी माताकी करनीके अनुरूप था। द्रौपदीने तो एकहीका वरण किया, परंतु तुम पाँचोंने उसे अपनी पत्नी बनाया और इस कार्यमें तुम्हें एक दूसरेसे तनिक भी लज्जा नहीं हुई। मुझे यह भी याद है कि कौरवसभामें शकुनिने द्रौपदीसहित तुम सब लोगोंको दास बना लिया था॥

संजय उवाच

(इत्येवमुक्तस्तु तवात्मजेन
पाण्डोः सुतः कोपवशं जगाम।)

तवात्मजस्याथ वृकोदरस्त्वरन्
धनुः क्षुराभ्यां ध्वजमेव चाच्छिनत्।
ललाटमप्यस्य बिभेद पत्रिणा
शिरश्च कायात् प्रजहार सारथेः॥ ३३॥

संजय कहते हैं—राजन्! आपके पुत्रके ऐसा कहनेपर पाण्डुकुमार भीमसेन क्रोधके वशीभूत हो गये। वृकोदरने बड़ी उतावलीके साथ दो क्षुरोंके द्वारा आपके पुत्र दुःशासनके धनुष और ध्वजको काट दिया, एक बाणसे उसके ललाटमें घाव कर दिया और दूसरेसे उसके सारथिका मस्तक भी धड़से अलग कर दिया॥ ३३॥

स राजपुत्रोऽन्यदवाप्य कार्मुकं
वृकोदरं द्वादशभिः पराभिनत्।
स्वयं नियच्छंस्तुरगानजिह्मगैः
शरैश्च भीमं पुनरप्यवीवृषत्॥ ३४॥

तब राजकुमार दुःशासनने भी दूसरा धनुष लेकर भीमसेनको बारह बाणोंसे बींध डाला और स्वयं ही घोड़ोंको काबूमें रखते हुए उसने पुनः उनके ऊपर सीधे जानेवाले बाणोंकी झड़ी लगा दी॥ ३४॥

ततः शरं सूर्यमरीचिसप्रभं
सुवर्णवज्रोत्तमरत्नभूषितम्।
महेन्द्रवज्राशनिपातदुःसहं
मुमोच भीमाङ्गविदारणक्षमम्॥ ३५॥

इसके बाद दुःशासनने सूर्यकी किरणोंके समान कान्तिमान्, सुवर्ण और हीरे आदि उत्तम रत्नोंसे विभूषित तथा देवराज इन्द्रके वज्र एवं विद्युत्-पातके समान दुःसह एक ऐसा भयंकर बाण छोड़ा, जो भीमसेनके अङ्गोंको विदीर्ण कर देनेमें समर्थ था॥ ३५॥

स तेन निर्विद्धतनुर्वृकोदरो
निपातितः स्रस्ततनुर्गतासुवत्।
प्रसार्य बाहू रथवर्यमाश्रितः
पुनः स संज्ञामुपलभ्य चानदत्॥ ३६॥

उससे भीमसेनका शरीर छिद गया। वे बहुत शिथिल हो गये और प्राणहीनके समान दोनों बाँहें फैलाकर अपने श्रेष्ठ रथपर लुढ़क गये। फिर थोड़ी ही देरमें होशमें आकर भीमसेन सिंहके समान दहाड़ने लगे॥ ३६॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि दुःशासनभीमसेनयुद्धे द्व्यशीतितमोऽध्यायः॥ ८२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें दुःशासन और भीमसेनका युद्धविषयक बयासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८२॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ८½ श्लोक मिलाकर कुल ४४½ श्लोक हैं)

त्र्यशीतितमोऽध्यायः

भीमद्वारा दुःशासनका रक्तपान और उसका वध, युधामन्युद्वारा चित्रसेनका वध तथा भीमका हर्षोद्गार

संजय उवाच

तत्राकरोद् दुष्करं राजपुत्रो
दुःशासनस्तुमुलं युद्ध्यमानः।
चिच्छेद भीमस्य धनुः शरेण
षष्ट्या शरैः सारथिमप्यविध्यत्॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! वहाँ तुमुल युद्ध करते हुए

राजकुमार दुःशासनने दुष्कर पराक्रम प्रकट किया। उसने एक बाणसे भीमसेनका धनुष काट डाला और साठ बाणोंसे उनके सारथिको भी घायल कर दिया॥ १॥

स तत् कृत्वा राजपुत्रस्तरस्वी
विव्याध भीमं नवभिः पृषत्कैः।
ततोऽभिनद् बहुभिः क्षिप्रमेव
वरेषुभिर्भीमसेनं महात्मा॥ २॥

ऐसा करके उस वेगशाली राजपुत्रने भीमसेनपर नौ बाणोंका प्रहार किया। इसके बाद महामना दुःशासनने बड़ी फुर्तीके साथ बहुत-से उत्तम बाणोंद्वारा भीमसेनको अच्छी तरह बींध डाला॥ २॥

ततः क्रुद्धो भीमसेनस्तरस्वी
शक्तिं चोग्रां प्राहिणोत् ते सुताय।
तामापतन्तीं सहसातिघोरां
दृष्ट्वा सुतस्ते ज्वलितामिवोल्काम्॥ ३॥
आकर्णपूर्णैरिषुभिर्महात्मा
चिच्छेद पुत्रो दशभिः पृषत्कैः।

तब क्रोधमें भरे हुए वेगशाली भीमसेनने आपके पुत्रपर एक भयंकर शक्ति छोड़ी। प्रज्वलित उल्काके समान उस अत्यन्त भयानक शक्तिको सहसा अपने ऊपर आती देख आपके महामनस्वी पुत्रने कानतक खींचकर छोड़े हुए दस बाणोंके द्वारा उसे काट डाला॥ ३½॥

दृष्ट्वा तु तत् कर्म कृतं सुदुष्करं
प्रापूजयन् सर्वयोधाः प्रहृष्टाः॥ ४॥
अथाशु भीमं च शरेण भूयो
गाढं स विव्याध सुतस्त्वदीयः।
चुक्रोध भीमः पुनराशु तस्मै
भृशं प्रजज्वाल रुषाभिवीक्ष्य॥ ५॥

उसके इस अत्यन्त दुष्कर कर्मको देखकर सभी योद्धा बड़े प्रसन्न हुए और उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। फिर आपके पुत्रने तुरंत ही एक बाण मारकर भीमसेनको गहरी चोट पहुँचायी। इससे फिर उन्हें बड़ा क्रोध हुआ। वे उसकी ओर देखकर शीघ्र ही रोषसे प्रज्वलित हो उठे॥

विद्धोऽस्मि वीराशु भृशं त्वयाद्य
सहस्व भूयोऽपि गदाप्रहारम्।
उक्त्वैवमुच्चैः कुपितोऽथ भीमो
जग्राह तां भीमगदां वधाय॥ ६॥

और बोले—'वीर! तूने तो आज मुझे शीघ्रतापूर्वक बाण मारकर बहुत घायल कर दिया; किंतु अब स्वयं भी मेरी गदाका प्रहार सहन कर' उच्चस्वरसे ऐसा कहकर कुपित हुए भीमसेनने दुःशासनके वधके लिये एक भयंकर गदा हाथमें ले ली॥ ६॥

उवाच चाद्याहमहं दुरात्मन्
पास्यामि ते शोणितमाजिमध्ये।
अथैवमुक्तस्तनयस्तवोग्रां
शक्तिं वेगात् प्राहिणोन्मृत्युरूपाम्॥ ७॥

फिर वे इस प्रकार बोले—'दुरात्मन्! आज इस संग्राममें मैं तेरा रक्त पान करूँगा।' भीमके ऐसा कहते ही आपके पुत्रने उनके ऊपर बड़े वेगसे एक भयंकर शक्ति चलायी, जो मृत्युरूप जान पड़ती थी॥ ७॥

आविध्य भीमोऽपि गदां सुघोरां
विचिक्षिपे रोषपरीतमूर्तिः।
सा तस्य शक्तिं सहसा विरुज्य
पुत्रं तवाजौ ताडयामास मूर्ध्नि॥ ८॥

इधरसे रोषमें भरे हुए भीमसेनने भी अपनी अत्यन्त घोर गदा घुमाकर फेंकी। वह गदा रणभूमिमें दुःशासनकी उस शक्तिको टूक-टूक करती हुई सहसा उसके मस्तकमें जा लगी॥

स विक्षरन् नाग इव प्रभिन्नो
गदामस्मै तुमुले प्राहिणोद् वै।
तयाहरद् दश धन्वन्तराणि
दुःशासनं भीमसेनः प्रसह्य॥ ९॥

मदस्रावी गजराजके समान अपने घावोंसे रक्त बहाते हुए भीमसेनने उस तुमुल युद्धमें दुःशासनपर जो गदा चलायी थी, उसके द्वारा उन्होंने उसे बलपूर्वक दस धनुष (चालीस हाथ) पीछे हटा दिया॥ ९॥

तया हतः पतितो वेपमानो
दुःशासनो गदया वेगवत्या।
विध्वस्तवर्माभरणाम्बरस्रग्
विचेष्टमानो भृशवेदनातुरः॥ १०॥

दुःशासन उस वेगवती गदाके आघातसे धरतीपर गिरकर काँपने और अत्यन्त वेदनासे व्याकुल हो छटपटाने लगा। उसका कवच टूट गया, आभूषण और हार बिखर गये तथा कपड़े फट गये थे॥ १०॥

हयाः ससूता निहता नरेन्द्र
चूर्णीकृतश्चास्य रथः पतन्त्या।
दुःशासनं पाण्डवाः प्रेक्ष्य सर्वे
हृष्टाः पञ्चालाः सिंहनादानमुञ्चन्॥ ११॥

नरेन्द्र! उस गदाने गिरते ही दुःशासनके रथको चूर-चूर कर डाला और सारथिसहित उसके घोड़ोंको भी मार डाला। दुःशासनको उस अवस्थामें देखकर समस्त पाण्डव और पाञ्चाल योधा हर्षमें भरकर सिंहनाद करने लगे॥ ११॥

तं पातयित्वाथ वृकोदरोऽथ
जगर्ज हर्षेण विनादयन् दिशः।
नादेन तेनाखिलपार्श्ववर्तिनो
मूर्च्छाकुलाः पतितास्त्वाजमीढ॥ १२॥

इस प्रकार वृकोदर भीम दुःशासनको धराशायी करके हर्षसे उल्लसित हो सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करते हुए

जोर-जोरसे गर्जना करने लगे। अजमीढ़वंशी नरेश! उस सिंहनादसे भयभीत हो आसपास खड़े हुए समस्त योद्धा मूर्च्छित होकर गिर पड़े ॥ १२ ॥

भीमोऽपि वेगादवतीर्य यानाद्
दुःशासनं वेगवानभ्यधावत्।
ततः स्मृत्वा भीमसेनस्तरस्वी
सापत्नकं यत् प्रयुक्तं सुतैस्ते ॥ १३ ॥

फिर भीमसेन भी शीघ्रतापूर्वक रथसे उतरकर बड़े वेगसे दुःशासनकी ओर दौड़े। उस समय वेगशाली भीमसेनको आपके पुत्रोंद्वारा किये गये शत्रुतापूर्ण बर्ताव याद आने लगे थे॥

तस्मिन् सुघोरे तुमुले वर्तमाने
प्रधानभूयिष्ठतरैः समन्तात्।
दुःशासनं तत्र समीक्ष्य राजन्
भीमो महाबाहुरचिन्त्यकर्मा ॥ १४ ॥
स्मृत्वाथ केशग्रहणं च देव्या
वस्त्रापहारं च रजस्वलायाः।
अनागसो भर्तृपराङ्मुखाया
दुःखानि दत्तान्यपि विप्रचिन्त्य ॥ १५ ॥
जज्वाल क्रोधादथ भीमसेन
आज्यप्रसिक्तो हि यथा हुताशः।

राजन्! वहाँ चारों ओर जब प्रधान-प्रधान वीरोंका वह अत्यन्त घोर तुमुल युद्ध चल रहा था, उस समय अचिन्त्यपराक्रमी महाबाहु भीमसेन दुःशासनको देखकर पिछली बातें याद करने लगे—'देवी द्रौपदी रजस्वला थी। उसने कोई अपराध नहीं किया था। उसके पति भी उसकी सहायतासे मुँह मोड़ चुके थे तो भी इस दुःशासनने द्रौपदीके केश पकड़े और भरी सभामें उसके वस्त्रोंका अपहरण किया।' उसने और भी जो-जो दुःख दिये थे, उन सबको याद करके भीमसेन घीकी आहुतिसे प्रज्वलित हुई अग्निके समान क्रोधसे जल उठे ॥ १४–१५½ ॥

तत्राह कर्णं च सुयोधनं च
कृपं द्रौणिं कृतवर्माणमेव ॥ १६ ॥
निहन्मि दुःशासनमद्य पापं
संरक्ष्यतामद्य समस्तयोधाः।

उन्होंने वहाँ कर्ण, दुर्योधन, कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कृतवर्माको सम्बोधित करके कहा—'आज मैं पापी दुःशासनको मारे डालता हूँ। तुम समस्त योद्धा मिलकर उसकी रक्षा कर सको तो करो' ॥ १६½ ॥

इत्येवमुक्त्वा सहसाभ्यधाव-
न्निहन्तुकामोऽतिबलस्तरस्वी ॥ १७ ॥
तथा तु विक्रम्य रणे वृकोदरो
महागजं केसरिको यथैव।
निगृह्य दुःशासनमेकवीरः
सुयोधनस्याधिरथेः समक्षम् ॥ १८ ॥
रथादवप्लुत्य गतः स भूमौ
यत्नेन तस्मिन् प्रणिधाय चक्षुः।
असिं समुद्यम्य सितं सुधारं
कण्ठे पदाऽऽक्रम्य च वेपमानम् ॥ १९ ॥

ऐसा कहकर अत्यन्त बलवान् वेगशाली एवं अद्वितीय वीर भीमसेन अपने रथसे कूदकर पृथ्वीपर आ गये और दुःशासनको मार डालनेकी इच्छासे सहसा उसकी ओर दौड़े। उन्होंने युद्धमें पराक्रम करके दुर्योधन और कर्णके सामने ही दुःशासनको उसी प्रकार धर दबाया, जैसे सिंह किसी विशाल हाथीपर आक्रमण कर रहा हो। वे यत्नपूर्वक उसीकी ओर दृष्टि जमाये हुए थे। उन्होंने उत्तम धारवाली सफेद तलवार उठा ली और उसके गलेपर लात मारी। उस समय दुःशासन थरथर काँप रहा था ॥ १७—१९ ॥

उवाच तद्गौरिति यद् ब्रुवाणो
हृष्टो वदेः कर्णसुयोधनाभ्याम्।
ये राजसूयावभृथे पवित्रा
जाताः कचा याज्ञसेन्या दुरात्मन् ॥ २० ॥
ते पाणिना कतरेणावकृष्टा-
स्तद् ब्रूहि त्वां पृच्छति भीमसेनः।

वे उससे इस प्रकार बोले—'दुरात्मन्! याद है न वह दिन, जब तुमने कर्ण और दुर्योधनके साथ बड़े हर्षमें भरकर मुझे 'बैल' कहा था। राजसूययज्ञमें अवभृथस्नानसे पवित्र हुए महारानी द्रौपदीके केश तूने किस हाथसे खींचे थे? बता, आज भीमसेन तुझसे यह पूछता और इसका उत्तर चाहता है' ॥ २०½ ॥

श्रुत्वा तु तद् भीमवचः सुघोरं
दुःशासनो भीमसेनं निरीक्ष्य ॥ २१ ॥
जज्वाल भीमं स तदा स्मयेन
संशृण्वतां कौरवसोमकानाम्।
उक्तस्तदाऽऽजौ स तथा सरोषं
जगाद भीमं परिवर्तनेत्रः ॥ २२ ॥

भीमसेनका यह अत्यन्त भयंकर वचन सुनकर दुःशासनने उनकी ओर देखा। देखते ही वह क्रोधसे जल उठा। युद्धस्थलमें उनके वैसा कहनेपर उसकी त्यौरी बदल गयी थी; अतः वह समस्त कौरवों तथा सोमकोंके सुनते-सुनते मुस्कराकर रोषपूर्वक बोला—॥ २१-२२ ॥

अयं करिकराकारः पीनस्तनविमर्दनः।
गोसहस्रप्रदाता च क्षत्रियान्तकरः करः ॥ २३ ॥
अनेन याज्ञसेन्या मे भीम केशा विकर्षिताः।
पश्यतां कुरुमुख्यानां युष्माकं च सभासदाम् ॥ २४ ॥

'यह है हाथीकी सूँड़के समान मोटा मेरा हाथ, जो रमणीके ऊँचे उरोजोंका मर्दन, सहस्रों गोदान तथा क्षत्रियोंका विनाश करनेवाला है। भीमसेन! इसी हाथसे मैंने सभामें

बैठे हुए कुरुकुलके श्रेष्ठ पुरुषों और तुमलोगोंके देखते-देखते द्रौपदीके केश खींचे थे' ॥ २३-२४ ॥

एवं त्वसौ राजसुतं निशम्य
ब्रुवन्तमाजौ विनिपीड्य वक्षः ।
भीमो बलात्तं प्रतिगृह्य दोर्भ्या-
मुच्चैर्ननादाथ समस्तयोधान् ॥ २५ ॥
उवाच यस्यास्ति बलं स रक्ष-
त्वसौ भवेदद्य निरस्तबाहुः ।
दुःशासनं जीवितं प्रोत्सृजन्त-
माक्षिप्य योधांस्तरसा महाबलः ॥ २६ ॥
एवं क्रुद्धो भीमसेनः करेण
उत्पाटयामास भुजं महात्मा ।
दुःशासनं तेन स वीरमध्ये
जघान वज्राशनिसंनिभेन ॥ २७ ॥

युद्धस्थलमें ऐसी बात कहते हुए राजकुमार दुःशासनकी छातीपर चढ़कर भीमसेनने उसे दोनों हाथोंसे बलपूर्वक पकड़ लिया और उच्चस्वरसे सिंहनाद करते हुए समस्त योद्धाओंसे कहा—'आज दुःशासनकी बाँह उखाड़ी जा रही है। यह अब अपने प्राणोंको त्यागना ही चाहता है। जिसमें बल हो, वह आकर इसे मेरे हाथसे बचा ले।' इस प्रकार समस्त योद्धाओंको ललकारकर महाबली, महामनस्वी, कुपित भीमसेनने एक ही हाथसे वेगपूर्वक दुःशासनकी बाँह उखाड़ ली। उसकी वह बाँह वज्रके समान कठोर थी। भीमसेन समस्त वीरोंके बीच उसीके द्वारा उसे पीटने लगे ॥

उत्कृत्य वक्षः पतितस्य भूमा-
वथापिबच्छोणितमस्य कोष्णम् ।
ततो निपात्यास्य शिरोऽपकृत्य
तेनासिना तव पुत्रस्य राजन् ॥ २८ ॥
सत्यां चिकीर्षुर्मतिमान् प्रतिज्ञां
भीमोऽपिबच्छोणितमस्य कोष्णम् ।
आस्वाद्य चास्वाद्य च वीक्षमाणः
क्रुद्धो हि चैनं निजगाद वाक्यम् ॥ २९ ॥

इसके बाद पृथ्वीपर पड़े हुए दुःशासनकी छाती फाड़कर वे उसका गरम-गरम रक्त पीनेका उपक्रम करने लगे। राजन्! उठनेकी चेष्टा करते हुए दुःशासनको पुनः गिराकर बुद्धिमान् भीमसेनने अपनी प्रतिज्ञा सत्य करनेके लिये तलवारसे आपके पुत्रका मस्तक काट डाला और उसके कुछ-कुछ गरम रक्तको वे स्वाद ले-लेकर पीने लगे। फिर क्रोधमें भरकर उसकी ओर देखते हुए इस प्रकार बोले—॥

स्तन्यस्य मातुर्मधुसर्पिषोर्वा
माध्वीकपानस्य च सत्कृतस्य ।
दिव्यस्य वा तोयरसस्य पानात्
पयोदधिभ्यां मथिताच्च मुख्यात् ॥ ३० ॥
अन्यानि पानानि च यानि लोके
सुधामृतस्वादुरसानि तेभ्यः ।
सर्वेभ्य एवाभ्यधिको रसोऽयं
ममाद्य चास्याहितलोहितस्य ॥ ३१ ॥

'मैंने माताके दूधका, मधु और घीका, अच्छी तरह तैयार किये हुए मधूक पुष्प-निर्मित पेय पदार्थका, दिव्य जलके रसका, दूध और दहीसे बिलोये हुए ताजे माखनका भी पान या रसास्वादन किया है; इन सबसे तथा इनके अतिरिक्त भी संसारमें जो अमृतके समान स्वादिष्ट पीने योग्य पदार्थ हैं, उन सबसे भी मेरे इस शत्रुके रक्तका स्वाद अधिक है ॥ ३०-३१ ॥

अथाह भीमः पुनरुग्रकर्मा
दुःशासनं क्रोधपरीतचेताः ।
गतासुमालोक्य विहस्य सुस्वरं
किं वा कुर्यां मृत्युना रक्षितोऽसि ॥ ३२ ॥

तदनन्तर भयानक कर्म करनेवाले भीमसेन क्रोधसे व्याकुलचित्त हो दुःशासनको प्राणहीन हुआ देख जोर-जोरसे अट्टहास करते हुए बोले—'क्या करूँ? मृत्युने तुझे दुर्दशासे बचा दिया' ॥ ३२ ॥

एवं ब्रुवाणं पुनराद्रवन्त-
मास्वाद्य रक्तं तमतिप्रहृष्टम् ।
ये भीमसेनं ददृशुस्तदानीं
भयेन तेऽपि व्यथिता निपेतुः ॥ ३३ ॥

ऐसा कहते हुए वे बारंबार अत्यन्त प्रसन्न हो उसके रक्तका आस्वादन करने और उछलने-कूदने लगे। उस समय जिन्होंने भीमसेनकी ओर देखा, वे भी भयसे पीड़ित हो पृथ्वीपर गिर गये ॥ ३३ ॥

ये चापि नासन् व्यथिता मनुष्या-
स्तेषां करेभ्यः पतितं हि शस्त्रम् ।
भयाच्च संचुक्रुशुरस्वरैस्ते
निमीलिताक्षा ददृशुः समन्ततः ॥ ३४ ॥

जो लोग भयसे व्याकुल नहीं हुए, उनके हाथोंसे भी हथियार तो गिर ही पड़ा। वे भयसे मन्द स्वरमें सहायकोंको पुकारने लगे और आँखें कुछ-कुछ बंद किये ही सब ओर देखने लगे ॥ ३४ ॥

तं तत्र भीमं ददृशुः समन्ताद्
दौःशासनं तद् रुधिरं पिबन्तम् ।
सर्वेऽपलायन्त भयाभिपन्ना
न वै मनुष्योऽयमिति ब्रुवाणाः ॥ ३५ ॥

जिन लोगोंने भीमसेनको दुःशासनका रक्त पीते देखा, वे सभी भयभीत हो यह कहते हुए सब ओर भागने लगे कि 'यह मनुष्य नहीं राक्षस है!' ॥ ३५ ॥

तस्मिन् कृते भीमसेनेन रूपे
दृष्ट्वा जनाः शोणितं पीयमानम् ।

सम्प्राद्रवंश्चित्रसेनेन सार्धं
भीमं रक्षो भाषमाणा भयार्ताः ॥ ३६ ॥

भीमसेनके वैसा भयानक रूप बना लेनेपर उनके द्वारा रक्तका पीया जाना देखकर सब लोग भयसे आतुर हो भीमको राक्षस बताते हुए चित्रसेनके साथ भाग चले ॥ ३६ ॥

युधामन्युः प्रद्रुतं चित्रसेनं
सहानीकस्त्वभ्ययाद् राजपुत्रः ।
विव्याध चैनं निशितैः पृषत्कै-
र्व्यपेतभीः सप्तभिराशुमुक्तैः ॥ ३७ ॥

चित्रसेनको भागते देख राजकुमार युधामन्युने अपनी सेनाके साथ उसका पीछा किया और निर्भय होकर शीघ्र छोड़े हुए सात पैने बाणोंद्वारा उसे घायल कर दिया ॥ ३७ ॥

संक्रान्तभोग इव लेलिहानो
महोरगः क्रोधविषं सिसृक्षुः ।
निवृत्य पाञ्चालजमभ्यविध्य-
त् त्रिभिः शरैः सारथिमस्य षड्भिः ॥ ३८ ॥

तब जिसका शरीर पैरोंसे कुचल गया हो, अतएव जो क्रोधजनित विषका वमन करना चाहता हो, उस जीभ लपलपानेवाले महान् सर्पके समान चित्रसेनने पुनः लौटकर उस पाञ्चालराजकुमारको तीन और उसके सारथिको छः बाण मारे ॥ ३८ ॥

ततः सुपुङ्खेन सुयन्त्रितेन
सुसंशिताग्रेण शरेण शूरः ।
आकर्णमुक्तेन समाहितेन
युधामन्युस्तस्य शिरो जहार ॥ ३९ ॥

तत्पश्चात् शूरवीर युधामन्युने धनुषको कानतक खींचकर ठीकसे संधान करके छोड़े हुए सुन्दर पंख और तीखी धारवाले सुनियन्त्रित बाणद्वारा चित्रसेनका मस्तक काट दिया॥

तस्मिन् हते भ्रातरि चित्रसेने
क्रुद्धः कर्णः पौरुषं दर्शयानः ।
व्यद्रावयत् पाण्डवानामनीकं
प्रत्युद्यातो नकुलेनामितौजाः ॥ ४० ॥

अपने भाई चित्रसेनके मारे जानेपर कर्ण क्रोधमें भर गया और अपना पराक्रम दिखाता हुआ पाण्डवसेनाको खदेड़ने लगा । उस समय अमितबलशाली नकुलने आगे आकर उसका सामना किया ॥ ४० ॥

भीमोऽपि हत्वा तत्रैव दुःशासनममर्षणम् ।
पूरयित्वाञ्जलिं भूयो रुधिरस्योग्रनिःस्वनः ॥ ४१ ॥
शृण्वतां लोकवीराणामिदं वचनमब्रवीत् ।

इधर भीमसेन भी अमर्षमें भरे हुए दुःशासनका वहीं वध करके पुनः उसके खूनसे अञ्जलि भरकर भयंकर गर्जना करते और विश्वविख्यात वीरोंके सुनते हुए इस प्रकार बोले—॥

एष ते रुधिरं कण्ठात् पिबामि पुरुषाधम ॥ ४२ ॥
ब्रूहीदानीं तु संहृष्टः पुनर्गौरिति गौरिति ।

'नराधम दुःशासन ! यह देख, मैं तेरे गलेका खून पी रहा हूँ । अब इस समय पुनः हर्षमें भरकर मुझे 'बैल-बैल' कहकर पुकार तो सही ॥ ४२½ ॥

ये तदास्मान् प्रनृत्यन्ति पुनर्गौरिति गौरिति ॥ ४३ ॥
तान् वयं प्रतिनृत्यामः पुनर्गौरिति गौरिति ।

'जो लोग उस दिन कौरवसभामें हमें 'बैल-बैल' कहकर खुशीके मारे नाच उठते थे, उन सबको आज बारंबार 'बैल-बैल' कहते हुए हम भी प्रसन्नतापूर्वक नृत्य कर रहे हैं।४३½।

प्रमाणकोट्यां शयनं कालकूटस्य भोजनम् ॥ ४४ ॥
दंशनं चाहिभिः कृष्णैर्दाहं च जतुवेश्मनि ।
द्यूतेन राज्यहरणमरण्ये वसतिश्च या ॥ ४५ ॥
द्रौपद्याः केशपक्षस्य ग्रहणं च सुदारुणम् ।
इष्वस्त्राणि च संग्रामेष्वसुखानि च वेश्मनि ॥ ४६ ॥
विराटभवने यश्च क्लेशोऽस्माकं पृथग्विधः ।
शकुनेर्धार्तराष्ट्रस्य राधेयस्य च मन्त्रिते ॥ ४७ ॥
अनुभूतानि दुःखानि तेषां हेतुस्त्वमेव हि ।
दुःखान्येतानि जानीमो न सुखानि कदाचन ॥ ४८ ॥
धृतराष्ट्रस्य दौरात्म्यात् सपुत्रस्य सदा वयम् ।

'मुझे प्रमाणकोटितीर्थमें विष पिलाकर नदीमें डाल दिया गया, कालकूट नामक विष खिलाया गया, काले सर्पोंसे डसाया गया, लाक्षागृहमें जलानेकी चेष्टा की गयी, जूएके द्वारा हमारे राज्यका अपहरण किया गया और हम सब लोगोंको वनवास दे दिया गया । द्रौपदीके केश खींचे गये, जो अत्यन्त दारुण कर्म था । संग्राममें हमपर बाणों तथा अन्य घातक अस्त्रोंका प्रयोग किया गया और घरमें भी चैनसे नहीं रहने दिया गया । राजा विराटके भवनमें हमें जो महान् क्लेश उठाना पड़ा, वह तो सबसे विलक्षण है । शकुनि, दुर्योधन और कर्णकी सलाहसे हमें जो-जो दुःख भोगने पड़े, उन सबकी जड़ तू ही था । पुत्रोंसहित धृतराष्ट्रकी दुष्टतासे हमें ये दुःख भोगने पड़े हैं । इन दुःखोंको तो हम जानते हैं, किंतु हमें कभी सुख मिला हो, इसका स्मरण नहीं है' ॥ ४४—४८½ ॥

इत्युक्त्वा वचनं राजञ्जयं प्राप्य वृकोदरः ।
पुनराह महाराज स्मयंस्तौ केशवार्जुनौ ॥ ४९ ॥

असृग्दिग्धो विस्रवल्लोहितास्यः
क्रुद्धोऽत्यर्थं भीमसेनस्तरस्वी ।
दुःशासने यद् रणे संश्रुतं मे
तद् वै सत्यं कृतमद्येह वीरौ ॥ ५० ॥

महाराज ! ऐसी बात कहकर खूनसे भीगे और रक्तसे लाल मुखवाले, अत्यन्त क्रोधी, वेगशाली वीर भीमसेन युद्धमें विजय पाकर मुस्कराते हुए पुनः श्रीकृष्ण और अर्जुनसे बोले—'वीरो ! दुःशासनके विषयमें मैंने जो प्रतिज्ञा की थी, उसे आज यहाँ रणभूमिमें सत्य कर दिखाया ॥ ४९-५० ॥

अत्रैव दास्याम्यपरं द्वितीयं
दुर्योधनं यज्ञपशुं विशस्य ।
शिरो मृदित्वा च पदा दुरात्मनः
शान्ति लप्स्ये कौरवाणां समक्षम् ॥ ५१ ॥

'यहीं दूसरे यज्ञपशु दुर्योधनको काटकर उसकी बलि दूँगा और समस्त कौरवोंकी आँखोंके सामने उस दुरात्माके मस्तकको पैरसे कुचलकर शान्ति प्राप्त करूँगा' ॥ ५१ ॥

एतावदुक्त्वा वचनं प्रहृष्टो
ननाद चोच्चै रुधिरार्द्रगात्रः ।
ननर्द चैवातिबलो महात्मा
वृत्रं निहत्येव सहस्रनेत्रः ॥ ५२ ॥

ऐसा कहकर खूनसे भीगे शरीरवाले अत्यन्त बलशाली महामना भीम वृत्रासुरका वध करके गर्जनेवाले सहस्र नेत्र-धारी इन्द्रके समान उच्चस्वरसे गर्जन और सिंहनाद करने लगे॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि दुःशासनवधे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें दुःशासनवधविषयक तिरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमोऽध्यायः

धृतराष्ट्रके दस पुत्रोंका वध, कर्णका भय और शल्यका समझाना तथा नकुल और वृषसेनका युद्ध

संजय उवाच

दुःशासने तु निहते तव पुत्रा महारथाः ।
महाक्रोधविषा वीराः समरेष्वपलायिनः ॥ १ ॥
दश राजन् महावीर्या भीमं प्राच्छादयञ्शरैः ।

संजय कहते हैं— राजन्! दुःशासनके मारे जानेपर युद्धसे कभी पीठ न दिखानेवाले और महान् क्रोधरूपी विषसे भरे हुए आपके दस महारथी महापराक्रमी वीर पुत्रोंने आकर भीमसेनको अपने बाणोंद्वारा आच्छादित कर दिया ॥ १½ ॥

निषङ्गी कवची पाशी दण्डधारो धनुर्ग्रहः ॥ २ ॥
अलोलुपः शलः सन्धो वातवेगसुवर्चसौ ।
एते समेत्य सहिता भ्रातृव्यसनकर्शिताः ॥ ३ ॥
भीमसेनं महाबाहुं मार्गणैः समवारयन् ।

निषङ्गी, कवची, पाशी, दण्डधार, धनुर्ग्रह (धनुग्रह), अलोलुप, शल, सन्ध (सत्यसन्ध), वातवेग और सुवर्चा (सुवर्चस्)––ये एक साथ आकर भाईकी मृत्युसे दुखी हो महाबाहु भीमसेनको अपने बाणोंद्वारा रोकने लगे ॥ २-३½ ॥

स वार्यमाणो विशिखैः समन्तात् तैर्महारथैः ॥ ४ ॥
भीमः क्रोधाग्निरक्ताक्षः क्रुद्धः काल इवाबभौ ।

उन महारथियोंके चलाये हुए बाणोंद्वारा चारों ओरसे रोके जानेपर भीमसेनकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं और वे कुपित हुए कालके समान प्रतीत होने लगे ॥ ४½ ॥

तांस्तु भल्लैर्महावेगैर्दशभिर्दश भारतान् ॥ ५ ॥
रुक्माङ्गदान् रुक्मपुङ्खैः पार्थो निन्ये यमक्षयम् ।

कुन्तीकुमार भीमने सोनेके पंखवाले महान् वेगशाली दस भल्लोंद्वारा सुवर्णमय अङ्गदोंसे विभूषित उन दसों भरतवंशी राजकुमारोंको यमलोक पहुँचा दिया ॥ ५½ ॥

हतेषु तेषु वीरेषु प्रदुद्राव बलं तव ॥ ६ ॥
पश्यतः सूतपुत्रस्य पाण्डवस्य भयार्दितम् ।

उन वीरोंके मारे जानेपर पाण्डुपुत्र भीमसेनके भयसे पीड़ित हो आपकी सारी सेना सूतपुत्रके देखते-देखते भाग चली ॥ ६½ ॥

ततः कर्णो महाराज प्रविवेश महद् भयम् ॥ ७ ॥
दृष्ट्वा भीमस्य विक्रान्तमन्तकस्य प्रजास्विव ।

महाराज! जैसे प्रजावर्गपर यमराजका बल काम करता है, उसी प्रकार भीमसेनका वह पराक्रम देखकर कर्णके मनमें महान् भय समा गया ॥ ७½ ॥

तस्य त्वाकारभावज्ञः शल्यः समितिशोभनः ॥ ८ ॥
उवाच वचनं कर्णं प्राप्तकालमरिंदमम् ।

युद्धमें शोभा पानेवाले शल्य कर्णकी आकृति देखकर ही उसके मनका भाव समझ गये; अतः शत्रुदमन कर्णसे यह समयोचित वचन बोले—॥ ८½ ॥

मा व्यथां कुरु राधेय नैवं त्वय्युपपद्यते ॥ ९ ॥
एते द्रवन्ति राजानो भीमसेनभयार्दिताः ।
दुर्योधनश्च सम्मूढो भ्रातृव्यसनकर्शितः ॥ १० ॥

'राधानन्दन! तुम खेद न करो, तुम्हें यह शोभा नहीं देता है। ये राजालोग भीमसेनके भयसे पीड़ित हो भागे जा रहे हैं। अपने भाइयोंकी मृत्युसे दुःखित हो राजा दुर्योधन भी किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया है ॥ ९-१० ॥

दुःशासनस्य रुधिरे पीयमाने महात्मना ।
व्यापन्नचेतसश्चैव शोकोपहतचेतसः ॥ ११ ॥
दुर्योधनमुपासन्ते परिवार्य समन्ततः ।
कृपप्रभृतयश्चैते हतशेषाः सहोदराः ॥ १२ ॥

'महामना भीमसेन जब दुःशासनका रक्त पी रहे थे, तभीसे ये कृपाचार्य आदि वीर तथा मरनेसे बचे हुए सब भाई कौरव विपन्न और शोकाकुलचित्त होकर दुर्योधनको सब ओरसे घेरकर उसके पास खड़े हैं ॥ ११-१२ ॥

पाण्डवा लब्धलक्ष्याश्च धनंजयपुरोगमाः ।
त्वामेवाभिमुखाः शूरा युद्धाय समुपस्थिताः ॥ १३ ॥

'अर्जुन आदि पाण्डव वीर अपना लक्ष्य सिद्ध कर चुके हैं और अब युद्धके लिये तुम्हारे ही सामने उपस्थित हो रहे हैं ॥ १३ ॥

स त्वं पुरुषशार्दूल पौरुषेण समास्थितः ।
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य प्रत्युद्याहि धनंजयम् ॥ १४ ॥

'पुरुषसिंह ! ऐसी अवस्थामें तुम पुरुषार्थका भरोसा करके क्षत्रिय-धर्मको सामने रखते हुए अर्जुनपर चढ़ाई करो ॥

भारो हि धार्तराष्ट्रेण त्वयि सर्वः समाहितः ।
तमुद्वह महाबाहो यथाशक्ति यथाबलम् ॥ १५ ॥

'महाबाहो ! धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनने सारा भार तुम्हींपर रख छोड़ा है । तुम अपने बल और शक्तिके अनुसार उस भारका वहन करो ॥ १५ ॥

जये स्याद् विपुला कीर्तिर्ध्रुवः स्वर्गः पराजये ।
वृषसेनश्च राधेय संक्रुद्धस्तनयस्तव ॥ १६ ॥
त्वयि मोहं समापन्ने पाण्डवानभिधावति ।

'यदि विजय हुई तो तुम्हारी बहुत बड़ी कीर्ति फैलेगी और पराजय होनेपर अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति निश्चित है । राधानन्दन ! तुम्हारे मोहग्रस्त हो जानेके कारण तुम्हारा पुत्र वृषसेन अत्यन्त कुपित हो पाण्डवोंपर धावा कर रहा है' ॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं शल्यस्यामिततेजसः ।
हृदि चावश्यकं भावं चक्रे युद्धाय सुस्थिरम् ॥ १७ ॥

अमिततेजस्वी शल्यकी यह बात सुनकर कर्णने अपने हृदयमें युद्धके लिये आवश्यक भाव (उत्साह, अमर्ष आदि) को दृढ़ किया ॥ १७ ॥

ततः क्रुद्धो वृषसेनोऽभ्यधाव-
दवस्थितं प्रमुखे पाण्डवं तम् ।
वृकोदरं कालमिवात्तदण्डं
गदाहस्तं योधयन्तं त्वदीयान् ॥ १८ ॥

तत्पश्चात् क्रोधमें भरे हुए वृषसेनने सामने खड़े हुए पाण्डुपुत्र भीमसेनपर धावा किया, जो दण्डधारी कालके समान हाथमें गदा लिये आपके सैनिकोंके साथ युद्ध कर रहे थे ॥ १८ ॥

तमभ्यधावन्नकुलः प्रवीरो
रोषादमित्रं प्रतुदन् पृषत्कैः ।
कर्णस्य पुत्रं समरे प्रहृष्टं
पुरा जिघांसुर्मघवेव जम्भम् ॥ १९ ॥

यह देख प्रमुख वीर नकुलने अपने शत्रु कर्णपुत्र वृषसेनको, जो समराङ्गणमें बड़े हर्षके साथ युद्ध कर रहा था, बाणोंद्वारा पीड़ित करते हुए उसपर रोषपूर्वक चढ़ाई कर दी । ठीक उसी तरह, जैसे पूर्वकालमें इन्द्रने 'जम्भ' नामक दैत्यपर आक्रमण किया था ॥ १९ ॥

ततो ध्वजं स्फाटिकचित्रकञ्चुकं
चिच्छेद वीरो नकुलः क्षुरेण ।
कर्णात्मजस्येष्वसनं च चित्रं
भल्लेन जाम्बूनदचित्रनद्धम् ॥ २० ॥

तदनन्तर वीर नकुलने एक क्षुरद्वारा कर्णपुत्रके उस ध्वजको काट डाला, जिसे स्फटिकमणिसे जटित विचित्र कंचुक (चोला) पहनाया गया था । साथ ही एक भल्लद्वारा उसके सुवर्णजटित विचित्र धनुषको भी खण्डित कर दिया ॥ २० ॥

अथान्यदादाय धनुः स शीघ्रं
कर्णात्मजः पाण्डवमभ्यविध्यत् ।
दिव्यैरस्त्रैरभ्यवर्षच्च सोऽपि
कर्णस्य पुत्रो नकुलं कृतास्त्रः ॥ २१ ॥

तब कर्णपुत्र वृषसेनने तुरंत ही दूसरा धनुष हाथमें लेकर पाण्डुकुमार नकुलको बींध डाला । कर्णका पुत्र अस्त्र-विद्याका ज्ञाता था, इसलिये वह नकुलपर दिव्यास्त्रोंकी वर्षा करने लगा ॥ २१ ॥

शराभिघाताच्च रुषा च राजन्
स्वया च भासास्त्रसमीरणाच्च ।
जज्वाल कर्णस्य सुतोऽतिमात्र-
मिद्धो यथाऽऽज्याहुतिभिर्हुताशः ॥ २२ ॥
कर्णस्य पुत्रो नकुलस्य राजन्
सर्वानश्वानक्षिणोदुत्तमास्त्रैः ।
वनायुजान् वै नकुलस्य शुभ्रा-
नुदग्रगान् हेमजालावनद्धान् ॥ २३ ॥

राजन् ! जैसे घीकी आहुति पड़नेसे अग्नि अत्यन्त प्रज्वलित हो उठती है, उसी प्रकार कर्णका पुत्र बाणोंके प्रहारसे अपनी प्रभासे, अस्त्रोंके प्रयोगसे और रोषसे जल उठा । उसने नकुलके सब घोड़ोंको, जो वनायु देशमें उत्पन्न, श्वेतवर्ण, तीव्रगामी और सोनेकी जालीसे आच्छादित थे, अपने अस्त्रोंद्वारा काट डाला ॥ २२-२३ ॥

ततो हताश्वादवरुह्य याना-
दादाय चर्मामलरुक्मचन्द्रम् ।
आकाशसंकाशमसिं प्रगृह्य
दोधूयमानः खगवच्चचार ॥ २४ ॥

तत्पश्चात् अश्वहीन रथसे उतरकर स्वर्णमय निर्मल चन्द्राकार चिह्नोंसे युक्त ढाल और आकाशके समान स्वच्छ तलवार ले उसे घुमाते हुए नकुल एक पक्षीके समान विचरने लगे ॥ २४ ॥

ततोऽन्तरिक्षे च रथाश्वनागां-
श्चिच्छेद तूर्णं नकुलश्चित्रयोधी ।
ते प्रापतन्नसिना गां विशस्ता
यथाश्वमेधे पशवः शमित्रा ॥ २५ ॥

फिर विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाले नकुलने बड़े-बड़े रथियों, सवारोंसहित घोड़ों और हाथियोंको तुरंत ही आकाशमें तलवार घुमाकर काट डाला । वे अश्वमेध-यज्ञमें शामित्र कर्म करनेवाले पुरुषके द्वारा मारे गये पशुओंके समान तलवारसे कटकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ २५ ॥

द्विसाहस्राः पातिता युद्धशौण्डा
नानादेश्याः सुभृताः सत्यसंधाः ।

एकेन संख्ये नकुलेन कृत्ता
जयेप्सुनानुत्तमचन्दनाङ्गाः ॥ २६ ॥

युद्धस्थलमें विजयकी इच्छा रखनेवाले एकमात्र वीर नकुलके द्वारा उत्तम चन्दनसे चर्चित अङ्गोंवाले, नाना देशोंमें उत्पन्न, युद्धकुशल, सत्यप्रतिज्ञ और अच्छी तरह पाले-पोसे गये दो हजार योद्धा काट डाले गये ॥ २६ ॥

तमापतन्तं नकुलं सोऽभिपत्य
समन्ततः सायकैः प्रत्यविद्धयत्।
स तुद्यमानो नकुलः पृषत्कै-
र्विव्याध वीरं स चुकोप विद्धः॥ २७ ॥

अपने ऊपर आक्रमण करनेवाले नकुलके पास पहुँचकर वृषसेनने अपने सायकोंद्वारा उन्हें सब ओरसे बींध डाला। बाणोंसे पीड़ित हुए नकुल अत्यन्त कुपित हो उठे और स्वयं घायल होकर उन्होंने वीर वृषसेनको भी बींध डाला ॥ २७॥

महाभये रक्ष्यमाणो महात्मा
भ्रात्रा भीमेनाकरोत् तत्र भीमम्।
तं कर्णपुत्रो विधमन्तमेकं
नराश्वमातङ्गरथाननेकान् ॥ २८ ॥
क्रीडन्तमष्टादशभिः पृषत्कै-
र्विव्याध वीरं नकुलं सरोषः।

उस महान् भयके अवसरपर अपने भाई भीमसे सुरक्षित हो महामना नकुलने वहाँ भयंकर पराक्रम प्रकट किया। अकेले ही बहुत-से पैदल मनुष्यों, घोड़ों, हाथियों और रथोंका संहार करते एवं खेलते हुए-से वीर नकुलको रोषमें भरे हुए कर्णपुत्रने अठारह बाणोंद्वारा घायल कर दिया ॥२८½॥

स तेन विद्धोऽतिभृशं तरस्वी
महाहवे वृषसेनेन राजन् ॥ २९ ॥
क्रुद्धेन धावन् समरे जिघांसुः
कर्णात्मजं पाण्डुसुतो नृवीरः।

राजन्! उस महासमरमें कुपित हुए वृषसेनके द्वारा अत्यन्त घायल किये गये वेगवान् वीर पाण्डुपुत्र नकुल कर्णके पुत्रको मार डालनेकी इच्छासे उसकी ओर दौड़े ॥२९½॥

वितत्य पक्षौ सहसा पतन्तं
श्येनं यथैवामिषलुब्धमाजौ ॥ ३० ॥
अवाकिरद् वृषसेनस्ततस्तं
शितैः शरैर्नकुलमुदारवीर्यम्।

जैसे बाज मांसके लोभसे पंख फैलाकर सहसा टूट पड़ता है, उसी प्रकार युद्धस्थलमें वेगपूर्वक आक्रमण करनेवाले उदार पराक्रमी नकुलको वृषसेनने अपने पैने बाणोंसे ढक दिया ॥ ३०½ ॥

स तान् मोघांस्तस्य कुर्वञ्शरौघां-
श्चचार मार्गान् नकुलश्चित्ररूपान्॥ ३१ ॥
अथास्य तूर्णं चरतो नरेन्द्र
खड्गेन चित्रं नकुलस्य तस्य।
महेषुभिर्व्यधमत् कर्णपुत्रो
महाहवे चर्म सहस्रतारम् ॥ ३२ ॥

नकुल उसके उन बाणसमूहोंको व्यर्थ करते हुए विचित्र मार्गोंसे विचरने लगे (युद्धके अद्भुत पैंतरे दिखाने लगे)। नरेन्द्र! तलवारके विचित्र हाथ दिखाते हुए शीघ्रतापूर्वक विचरनेवाले नकुलकी सहस्र तारोंके चिह्नवाली ढालको कर्णके पुत्रने उस महायुद्धमें अपने विशाल बाणोंद्वारा नष्ट कर दिया ॥ ३१-३२ ॥

तं चायसं निशितं तीक्ष्णधारं
विकोशमुग्रं गुरुभारसाहम्।
द्विषच्छरीरान्तकरं सुघोर-
माधुन्वतः सर्पमिवोग्ररूपम् ॥ ३३ ॥
क्षिप्रं शरैः षड्भिरमित्रसाह-
श्चकर्त खड्गं निशितैः सुवेगैः।
पुनश्च दीप्तैर्निशितैः पृषत्कैः
स्तनान्तरे गाढमथाभ्यविद्धयत् ॥ ३४ ॥

इसके बाद शत्रुओंका सामना करनेमें समर्थ वृषसेनने अत्यन्त वेगशाली और तीखी धारवाले छः बाणोंद्वारा तलवार घुमाते हुए नकुलकी उस तलवारके भी शीघ्रतापूर्वक टुकड़े-टुकड़े कर डाले। वह तलवार लोहेकी बनी हुई, तेजधारवाली तीखी, भारी भार सहन करनेमें समर्थ, म्यानसे बाहर निकली हुई, भयंकर, सर्पके समान उग्र रूपधारी, अत्यन्त घोर और शत्रुओंके शरीरोंका अन्त कर देनेवाली थी। तलवार काटनेके पश्चात् उसने पुनः प्रज्वलित एवं पैने बाणोंद्वारा नकुलकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥३३-३४॥

कृत्वा तु तद् दुष्करमार्यजुष्ट-
मन्यैर्नरैः कर्म रणे महात्मा।
ययौ रथं भीमसेनस्य राजञ्
शराभितप्तो नकुलस्त्वरावान् ॥ ३५ ॥

राजन्! महामना नकुल रणभूमिमें अन्य मनुष्योंके लिये दुष्कर तथा सज्जन पुरुषोंद्वारा सेवित उत्तम कर्म करके वृषसेनके बाणोंसे संतप्त हो बड़ी उतावलीके साथ भीमसेनके रथपर जा चढ़े ॥ ३५ ॥

स भीमसेनस्य रथं हताश्वो
माद्रीसुतः कर्णसुताभितप्तः।
आपुप्लुवे सिंह इवाचलाग्रं
सम्प्रेक्षमाणस्य धनंजयस्य ॥ ३६ ॥

अपने घोड़ोंके मारे जानेपर कर्णपुत्रके बाणोंसे पीड़ित हुए माद्रीकुमार नकुल अर्जुनके देखते-देखते पर्वतके शिखरपर उछलकर चढ़नेवाले सिंहके समान छलाँग मारकर भीमसेनके रथपर आरूढ़ हो गये ॥ ३६ ॥

ततः क्रुद्धो वृषसेनो महात्मा
ववर्ष ताविषुजालेन वीरः।

महारथावेकरथे समेतौ
शरैः प्रभिन्दन्निव पाण्डवेयौ ॥ ३७ ॥

इससे महामनस्वी वीर वृषसेनको बड़ा क्रोध हुआ। वह एक रथपर एकत्र हुए उन महारथी पाण्डुकुमारोंको बाणोंद्वारा विदीर्ण करता हुआ उन दोनोंपर बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगा ॥ ३७ ॥

तस्मिन् रथे निहते पाण्डवस्य
क्षिप्रं च खड्गे विशिखैर्निकृत्ते।
अन्ये च संहत्य कुरुप्रवीरा-
स्ततो न्यघ्नञ्शरवर्षैरुपेत्य ॥ ३८ ॥

जब पाण्डुपुत्र नकुलका वह रथ नष्ट हो गया और बाणोंद्वारा उनकी तलवार शीघ्रतापूर्वक काट दी गयी, तब दूसरे कौरव वीर भी संगठित हो निकट आकर उन दोनोंको बाणोंकी वर्षासे चोट पहुँचाने लगे ॥ ३८ ॥

तौ पाण्डवेयौ परितः समेतान्
संह्वयमानाविव हव्यवाहौ।
भीमार्जुनौ वृषसेनाय क्रुद्धौ
ववर्षतुः शरवर्षं सुघोरम् ॥ ३९ ॥

तब वृषसेनपर कुपित हुए पाण्डुपुत्र भीमसेन और अर्जुन घीकी आहुति पाकर प्रज्वलित हुए दो अग्नियोंके समान प्रकाशित होने लगे। उन दोनोंने अपने आस-पास एकत्र हुए कौरवसैनिकोंपर अत्यन्त घोर बाणवर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ ३९ ॥

अथाब्रवीन्मारुतिः फाल्गुनं च
पश्यस्वैनं नकुलं पीड्यमानम्।
अयं च नो बाधते कर्णपुत्र-
स्तस्माद् भवान् प्रत्युपयातु कार्णिम् ॥ ४० ॥

तदनन्तर वायुपुत्र भीमसेनने अर्जुनसे कहा—'देखो, यह नकुल वृषसेनसे पीड़ित हो गया है। कर्णका यह पुत्र हमें बहुत सता रहा है, अतः तुम इस कर्णपुत्रपर आक्रमण करो' ॥ ४० ॥

स तन्निशम्यैव वचः किरीटी
रथं समासाद्य वृकोदरस्य।
अथाब्रवीन्नकुलो वीक्ष्य वीर-
मुपागतं शातय शीघ्रमेनम् ॥ ४१ ॥

भीमसेनके रथके समीप आकर जब किरीटधारी अर्जुन उनकी बात सुनकर जाने लगे, तब नकुलने भी पास आये हुए वीर अर्जुनकी ओर देखकर उनसे कहा—'भैया! आप इस वृषसेनको शीघ्र मार डालिये' ॥ ४१ ॥

इत्येवमुक्तः सहसा किरीटी
भ्रात्रा समक्षं नकुलेन संख्ये।
कपिध्वजं केशवसंगृहीतं
प्रैषीदुदग्रो वृषसेनाय वाहम् ॥ ४२ ॥

युद्धमें सामने आये हुए भाई नकुलके ऐसा कहनेपर किरीटधारी अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा काबूमें किये हुए कपिध्वज रथको सहसा वृषसेनकी ओर तीव्र वेगसे हाँक दिया ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि वृषसेनयुद्धे नकुलपराजये चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें वृषसेनका युद्ध और नकुलकी पराजयविषयक चौरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८४ ॥

पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

कौरववीरोंद्वारा कुलिन्दराजके पुत्रों और हाथियोंका संहार तथा अर्जुनद्वारा वृषसेनका वध

संजय उवाच

नकुलमथ विदित्वा छिन्नबाणासनासिं
विरथमरिशरार्तं कर्णपुत्रास्त्रभग्नम्।
पवनधुतपताकाह्लादिनो वल्गिताश्वा
वरपुरुषनियुक्तास्ते रथैः शीघ्रमीयुः ॥ १ ॥
द्रुपदसुतवरिष्ठाः पञ्च शैनेयषष्ठा
द्रुपददुहितृपुत्राः पञ्च चामित्रसाहाः।
द्विरदरथनराश्वान् सूदयन्तस्त्वदीयान्
भुजगपतिनिकाशैर्मार्गणैरात्तशस्त्राः ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—महाराज! वृषसेनने नकुलके धनुष और तलवारको काट दिया है, वे रथहीन हो गये हैं, शत्रुके बाणोंसे पीड़ित हैं तथा कर्णके पुत्रने अपने अस्त्रोंद्वारा उन्हें पराजित कर दिया है, यह जानकर श्रेष्ठ पुरुष भीमसेनके आदेशसे हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र लिये शत्रुओंका सामना करनेमें समर्थ द्रुपदके पाँच श्रेष्ठ पुत्र, छठे सात्यकि तथा द्रौपदीके पाँच पुत्र—ये ग्यारह वीर आपके पक्षके हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकोंका अपने सर्पतुल्य बाणोंद्वारा संहार करते हुए रथोंद्वारा वहाँ शीघ्रतापूर्वक आ पहुँचे। उस समय उनके रथकी पताकाएँ वायुके वेगसे फहरा रही थीं। उनके घोड़े उछलते हुए आ रहे थे और वे सब-के-सब जोर-जोरसे गर्जना कर रहे थे ॥ १-२ ॥

अथ तव रथमुख्यास्तान् प्रतीयुस्त्वरन्तः
कृपहृदिकसुतौ च द्रौणिदुर्योधनौ च।
शकुनिसुतवृकौ च क्राथदेवावृधौ च
द्विरदजलदघोषैः स्यन्दनैः कार्मुकैश्च ॥ ३ ॥

तदनन्तर कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, दुर्योधन, शकुनिपुत्र उलूक, वृक, क्राथ और देवावृध—ये आपके प्रमुख महारथी बड़ी उतावलीके साथ धनुष लिये हाथी और मेघोंके समान शब्द करनेवाले रथोंपर आरूढ़ हो उन पाण्डववीरोंका सामना करनेके लिये आ पहुँचे ॥ ३ ॥

तव नृप रथिवर्यास्तान् दशैकं च वीरान्
नृवर शरवराग्रैस्ताडयन्तोऽभ्यरुन्धन्।
नवजलदसवर्णैर्हस्तिभिस्तानुदीयु-
र्गिरिशिखरनिकाशैर्भीमवेगैः कुलिन्दाः ॥ ४ ॥

नरश्रेष्ठ नरेश्वर ! कृपाचार्य आदि आपके रथी वीरोंने अपने उत्तम बाणोंद्वारा प्रहार करते हुए वहाँ पाण्डव-पक्षके उन ग्यारह महारथी वीरोंको आगे बढ़नेसे रोक दिया । तत्पश्चात् कुलिन्ददेशके योधा नूतन मेघके समान काले, पर्वतशिखरोंके समान विशालकाय और भयंकर वेगशाली हाथियोंद्वारा कौरव-वीरोंपर चढ़ आये ॥ ४ ॥

सुकल्पिता हैमवता मदोत्कटा
रणाभिकामैः कृतिभिः समास्थिताः ।
सुवर्णजालैर्विततता बभुर्गजा-
स्तथा यथा खे जलदाः सविद्युतः॥ ५ ॥

वे हिमाचलप्रदेशके मदोन्मत्त हाथी अच्छी तरह सजाये गये थे । उनकी पीठोंपर सोनेकी जालियोंसे युक्त झूल पड़े हुए थे और उनके ऊपर युद्धकी अभिलाषा रखनेवाले, रणकुशल कुलिन्द वीर बैठे हुए थे । उस समय रणभूमिमें वे हाथी आकाशमें बिजलीसहित मेघोंके समान शोभा पा रहे थे ॥ ५ ॥

कुलिन्दपुत्रो दशभिर्महायसैः
कृपं ससूताश्वमपीडयद् भृशम् ।
ततः शरद्वत्सुतसायकैर्हतः
सहैव नागेन पपात भूतले ॥ ६ ॥

कुलिन्दराजके पुत्रने लोहेके बने हुए दस विशाल बाणोंसे सारथि और घोड़ोंसहित कृपाचार्यको अत्यन्त पीड़ित कर दिया । तदनन्तर शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्यके बाणोंद्वारा मारा जाकर वह हाथीके साथ ही पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ६ ॥

कुलिन्दपुत्रावरजस्तु तोमरै-
र्दिवाकरांशुप्रतिमैरयस्मयैः ।
रथं च विक्षोभ्य ननाद नर्दत-
स्ततोऽस्य गान्धारपतिः शिरोऽहरत्॥ ७ ॥

कुलिन्द-राजकुमारका छोटा भाई सूर्यकी किरणोंके समान कान्तिमान् एवं लोहेके बने हुए तोमरोंद्वारा गान्धारराजके रथकी धज्जियाँ उड़ाकर जोर-जोरसे गर्जना करने लगा । इतनेहीमें गान्धारराजने उस गर्जते हुए वीरका सिर काट लिया ॥ ७ ॥

ततः कुलिन्देषु हतेषु तेष्वथ
प्रहृष्टरूपास्तव ते महारथाः ।
भृशं प्रदध्मुर्लवणाम्बुसम्भवान्
परांश्च बाणासनपाणयोऽभ्ययुः॥ ८ ॥

उन कुलिन्द वीरोंके मारे जानेपर आपके महारथी बड़े प्रसन्न हुए । वे जोर-जोरसे शङ्ख बजाने लगे और हाथमें धनुष-बाण लिये शत्रुओंपर टूट पड़े ॥ ८ ॥

अथाभवद् युद्धमतीव दारुणं
पुनः कुरूणां सह पाण्डुसृञ्जयैः ।
शरासिशक्त्यृष्टिगदापरश्वधै-
र्नराश्वनागासुहरं भृशाकुलम् ॥ ९ ॥

तदनन्तर कौरवोंका पाण्डवों तथा सृंजयोंके साथ पुनः अत्यन्त भयंकर युद्ध होने लगा । वह घमासान युद्ध बाण, खड्ग, शक्ति, ऋष्टि, गदा और फरसोंकी मारसे मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंके प्राण ले रहा था ॥ ९ ॥

रथाश्वमातङ्गपदातिभिस्ततः
परस्परं विप्रहतापतन् क्षितौ ।
यथा सविद्युत्स्तनिता बलाहकाः
समाहता दिग्भ्य इवोग्रमारुतैः ॥ १० ॥

जैसे बिजलीकी चमक और गर्जनासे युक्त मेघ भयंकर वायुके वेगसे ताड़ित हो सम्पूर्ण दिशाओंसे गिर जाते हैं, उसी प्रकार रथों, घोड़ों, हाथियों और पैदलोंद्वारा परस्पर मारे जाकर वे युद्धपरायण योद्धा धराशायी होने लगे ॥ १० ॥

ततः शतानीकमतान् महागजां-
स्तथा रथान् पत्तिगणांश्च तान् बहून्।
जघान भोजस्तु हयानथापतन्
क्षणाद् विशस्ताः कृतवर्मणः शरैः॥ ११ ॥

तदनन्तर शतानीकद्वारा सम्मानित विशाल गजराजों, अश्वों, रथों और बहुत-से पैदलसमूहोंको कृतवर्माने मार डाला । वे कृतवर्माके बाणोंसे छिन्न-भिन्न हो क्षणभरमें धरतीपर गिर पड़े ॥ ११ ॥

अथापरे द्रौणिहता महाद्विपा-
स्त्रयः ससर्वायुधयोधकेतनाः ।
निपेतुरुर्व्यां व्यसवो निपातिता-
स्तथा यथा वज्रहता महाचलाः॥ १२ ॥

इसके बाद अश्वत्थामाने सम्पूर्ण आयुधों, योद्धाओं और ध्वजाओंसहित अन्य तीन विशाल गजराजोंको मार गिराया । उसके द्वारा मारे गये वे विशाल गजराज वज्रके मारे हुए महान् पर्वतोंके समान प्राणशून्य होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥

कुलिन्दराजावरजादनन्तरः
स्तनान्तरे पत्रिवरैरताडयत् ।
तवात्मजं तस्य तवात्मजः शरैः
शितैः शरीरं व्यहनद् द्विपं च तम्॥ १३ ॥

कुलिन्दराजके छोटे भाईसे भी जो छोटा था, उसने श्रेष्ठ बाणोंद्वारा आपके पुत्रकी छातीमें चोट पहुँचायी । तब आपके पुत्रने अपने तीखे बाणोंसे उसके शरीर और हाथी दोनोंको घायल कर दिया ॥ १३ ॥

स नागराजः सह राजसूनुना
पपात रक्तं बहु सर्वतः क्षरन् ।
महेन्द्रवज्रप्रहतोऽम्बुदागमे
यथा जलं गैरिकपर्वतस्तथा ॥ १४ ॥

जैसे वर्षाकालमें इन्द्रके वज्रसे आहत हुआ गेरुका पर्वत लाल रंगका पानी बहाता है, इसी प्रकार वह गजराज अपने शरीरसे सब ओर बहुत-सा रक्त बहाता हुआ कुलिन्दराजकुमारके साथ ही धराशायी हो गया ॥ १४ ॥

कुलिन्दपुत्रप्रहितोऽपरो द्विपः
क्राथस्य सूताश्वरथं व्यपोथयत्।
ततोऽपतत् क्राथशराभिघातितः
सहेश्वरो वज्रहतो यथा गिरिः ॥ १५ ॥

अब कुलिन्दराजकुमारने दूसरा हाथी आगे बढ़ाया। उसने क्राथके सारथि, घोड़ों और रथको कुचल डाला, परंतु क्राथके बाणोंसे पीड़ित हो वह हाथी वज्रताड़ित पर्वतके समान अपने स्वामीके साथ ही धराशायी हो गया ॥ १५ ॥

रथी द्विपस्थेन हतोऽपतच्छरैः
क्राथाधिपः पर्वतजेन दुर्जयः।
सवाजिसूतेष्वसनध्वजस्तथा
यथा महावातहतो महाद्रुमः ॥ १६ ॥

तदनन्तर जैसे आँधीका उखाड़ा हुआ विशाल वृक्ष पृथ्वीपर गिर जाता है, उसी प्रकार घोड़े, सारथि, धनुष और ध्वजसहित दुर्जय महारथी क्राथ नरेश हाथीपर बैठे हुए एक पर्वतीय वीरके बाणोंसे मारा जाकर रथसे नीचे जा गिरा॥

वृको द्विपस्थं गिरिराजवासिनं
भृशं शरैर्द्वादशभिः पराभिनत्।
ततो वृकं साश्वरथं महाद्विपो
द्रुतं चतुर्भिश्चरणैर्व्यपोथयत् ॥ १७ ॥

तब वृकने उस पहाड़ी राजाको बारह बाण मारकर अत्यन्त घायल कर दिया। चोट खाकर पर्वतीय नरेशका वह विशाल गजराज वृककी ओर झपटा और उसने रथ और घोड़ोंसहित वृकको अपने चारों पैरोंसे दबाकर तुरंत ही उसका कचूमर निकाल दिया ॥ १७ ॥

स नागराजः सनियन्तृकोऽपतत्
तथा हतो बभ्रुसुतेषुभिर्भृशम्।
स चापि देवावृधसूनुरर्दितः
पपात नुन्नः सहदेवसूनुना ॥ १८ ॥

अन्तमें बभ्रुपुत्रके बाणोंसे अत्यन्त आहत होकर वह गजराज भी संचालकसहित धरतीपर लोट गया। फिर वह देवावृधकुमार भी सहदेवके पुत्रसे पीड़ित हो धराशायी हो गया॥

विषाणगात्रावरयोधपातिना
गजेन हन्तुं शकुनिं कुलिन्दजः।
जगाम वेगेन भृशार्दयंश्च तं
ततोऽस्य गान्धारपतिः शिरोऽहरत् ॥ १९ ॥

तत्पश्चात् दूसरे कुलिन्दराजकुमारने शकुनिको मार डालनेके लिये दाँत, शरीर और सूँड़के द्वारा बड़े-बड़े योद्धाओंको मार गिरानेवाले हाथीके द्वारा उसपर वेगपूर्वक आक्रमण किया और उसे अत्यन्त घायल कर दिया। तब गान्धारराज शकुनिने उसका सिर काट लिया ॥ १९ ॥

ततः शतानीकहता महागजा
हया रथाः पत्तिगणाश्च तावकाः।
सुपर्णवातप्रहता यथोरगा-
स्तथागता गां विवशा विचूर्णिताः ॥ २० ॥

यह देख शतानीकने आपकी सेनापर आक्रमण किया। जैसे गरुड़के पंखोंकी हवासे आहत हुए सर्प पृथ्वीपर गिर पड़ते हैं, उसी प्रकार शतानीकद्वारा मारे गये आपके विशाल हाथी, घोड़े, रथ और पैदल विवश हो पृथ्वीपर गिरकर चूर-चूर हो गये ॥ २० ॥

ततोऽभ्यविद्ध्यद् बहुभिः शितैः शरैः
कलिङ्गपुत्रो नकुलात्मजं स्मयन्।
ततोऽस्य कोपाद् विचकर्त नाकुलिः
शिरः क्षुरेणाम्बुजसंनिभाननम् ॥ २१ ॥

तदनन्तर मुस्कराते हुए कलिङ्गराजके पुत्रने अपने बहुसंख्यक पैने बाणोंद्वारा नकुलके पुत्र शतानीकको क्षत-विक्षत कर दिया। इससे नकुलकुमारको बड़ा क्रोध हुआ और उसने एक क्षुरके द्वारा कलिङ्गराजकुमारका कमलसदृश मुखवाला मस्तक काट डाला ॥ २१ ॥

ततः शतानीकमविध्यदायसै-
स्त्रिभिः शरैः कर्णसुतोऽर्जुनं त्रिभिः।
त्रिभिश्च भीमं नकुलं च सप्तभि-
र्जनार्दनं द्वादशभिश्च सायकैः ॥ २२ ॥

तत्पश्चात् कर्णपुत्र वृषसेनने लोहेके बने हुए तीन बाणोंसे शतानीकको घायल कर दिया। फिर उसने अर्जुनको तीन, भीमसेनको तीन, नकुलको सात और श्रीकृष्णको बारह बाणोंसे बींध डाला ॥ २२ ॥

तदस्य कर्मातिमनुष्यकर्मणः
समीक्ष्य हृष्टाः कुरवोऽभ्यपूजयन्।
पराक्रमज्ञास्तु धनंजयस्य ये
हुतोऽयमग्नाविति ते तु मेनिरे ॥ २३ ॥

अलौकिक पराक्रम करनेवाले वृषसेनके इस कर्मको देखकर समस्त कौरव हर्षमें भर गये और उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे; परंतु जो अर्जुनके पराक्रमको जानते थे, उन्होंने निश्चित रूपसे यह समझ लिया कि अब यह वृषसेन आगकी आहुति बन जायगा ॥ २३ ॥

ततः किरीटी परवीरघाती
हताश्वमालोक्य नरप्रवीरः।
माद्रीसुतं नकुलं लोकमध्ये
समीक्ष्य कृष्णं भृशविक्षतं च ॥ २४ ॥
समभ्यधावद् वृषसेनमाहवे
स सूतजस्य प्रमुखे स्थितस्तदा।

तदनन्तर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले मानवलोकके प्रमुख वीर किरीटधारी अर्जुनने समस्त सेनाओंके बीच माद्री-कुमार नकुलके घोड़ोंको वृषसेनद्वारा मारा गया और भगवान् श्रीकृष्णको अत्यन्त घायल हुआ देख युद्धस्थलमें वृषसेनपर धावा किया। वृषसेन उस समय कर्णके सामने खड़ा था ॥२४½॥

तमापतन्तं नरवीरमुग्रं
महाहवे बाणसहस्रधारिणम् ॥ २५ ॥
अभ्यापतत् कर्णसुतो महारथं
यथा महेन्द्रं नमुचिः पुरा तथा ।

महासमरमें सहस्रों बाण धारण करनेवाले भयंकर नरवीर महारथी अर्जुनको अपनी ओर आते देख कर्णकुमार वृषसेन भी उनकी ओर उसी प्रकार दौड़ा, जैसे पूर्वकालमें नमुचिने देवराज इन्द्रपर आक्रमण किया था ॥ २५½ ॥

ततो द्रुतं चैकशरेण पार्थं
शितेन विद्ध्वा युधि कर्णपुत्रः॥ २६ ॥
ननाद नादं सुमहानुभावो
विद्ध्वेव शक्रं नमुचिः स वीरः ।

फिर महानुभाव कर्णपुत्र वीर वृषसेन युद्धस्थलमें कुन्ती-कुमार अर्जुनको तुरंत ही एक तीखे बाणसे घायल करके बड़े जोर-जोरसे गर्जना करने लगा। ठीक वैसे ही, जैसे नमुचि-ने इन्द्रको बींधकर सिंहनाद किया था ॥ २६½ ॥

पुनः स पार्थं वृषसेन उग्रै-
र्बाणैरविद्ध्यद् भुजमूले तु सव्ये॥ २७ ॥
तथैव कृष्णं नवभिः समार्दयत्
पुनश्च पार्थं दशभिर्जघान ।

इसके बाद वृषसेनने भयंकर बाणोंद्वारा अर्जुनकी बायीं भुजाके मूलभागमें पुनः प्रहार किया तथा नौ बाणोंसे श्रीकृष्ण-को भी चोट पहुँचाकर दस बाणोंद्वारा कुन्तीकुमार अर्जुनको फिर घायल कर दिया ॥ २७½ ॥

पूर्वं यथा वृषसेनप्रयुक्तै-
रभ्याहतः श्वेतहयः शरैस्तैः ॥ २८ ॥
संरम्भमीषद्गमितो वधाय
कर्णात्मजस्याथ मनः प्रदध्रे ।

वृषसेनके चलाये हुए उन बाणोंद्वारा पहले ही आहत होकर श्वेतवाहन अर्जुनके मनमें थोड़ा-सा क्रोध जाग्रत् हुआ। फिर उन्होंने मन ही-मन कर्णकुमारके वधका निश्चय किया॥

ततः किरीटी रणमूर्ध्नि कोपात्
कृत्वा त्रिशाखां भ्रुकुटिं ललाटे॥ २९ ॥
मुमोच तूर्णं विशिखान् महात्मा
वधे धृतः कर्णसुतस्य संख्ये ।

तदनन्तर किरीटधारी महात्मा अर्जुनने युद्धस्थलमें कर्णपुत्रके वधका दृढ़ निश्चय करके अपने ललाटमें स्थित भौंहोंको क्रोधपूर्वक तीन जगहसे टेढ़ी करके युद्धके मुहानेपर शीघ्रतापूर्वक बाणोंका प्रहार आरम्भ किया ॥ २९½ ॥

आरक्तनेत्रोऽन्तकशत्रुहन्ता
उवाच कर्णं भृशमुत्स्मयंस्तदा ॥ ३० ॥
दुर्योधनं द्रौणिमुखांश्च सर्वा-
नहं रणे वृषसेनं तमुग्रम् ।
सम्पश्यतः कर्ण तवाद्य संख्ये
नयामि लोकं निशितैः पृषत्कैः ॥ ३१ ॥

उस समय उनके नेत्र रोषसे कुछ लाल हो गये थे। वे यमराज-जैसे शत्रुको भी मार डालनेमें समर्थ थे। उस समय उन्होंने मुस्कराते हुए वहाँ कर्ण, दुर्योधन और अश्वत्थामा आदि सब वीरोंको लक्ष्य करके कहा—'कर्ण ! आज युद्धस्थलमें मैं तुम्हारे देखते-देखते उस उग्रपराक्रमी वीर वृषसेनको अपने पैने बाणोंद्वारा यमलोक भेज दूँगा ॥ ३०-३१ ॥

ऊचुं च तावद्धि जना वदन्ति
सर्वैर्भवद्भिर्मम सूनुर्हतोऽसौ ।
एको रथो मद्विहीनस्तरस्वी
अहं हनिष्ये भवतां समक्षम् ॥ ३२ ॥
संरक्ष्यतां रथसंस्थाः सुतोऽय-
महं हनिष्ये वृषसेनमुग्रम् ।
पश्चाद् वधिष्ये त्वामपि सम्प्रमूढ-
महं हनिष्येऽर्जुन आजिमध्ये ॥ ३३ ॥

'मेरा वेगशाली वीर पुत्र महारथी अभिमन्यु अकेला था। मैं उसके साथ नहीं था। उस अवस्थामें तुम सब लोगोंने मिलकर उसका वध किया था। तुम्हारे उस कर्मको सब लोग खोटा बताते हैं; परंतु आज मैं तुम सब लोगोंके सामने वृषसेनका वध करूँगा। रथपर बैठे हुए महारथियो ! अपने इस पुत्रको बचा सको तो बचाओ। मैं अर्जुन आज रणभूमि-में पहले उग्रवीर वृषसेनको मारूँगा; फिर तुझ विवेकशून्य सूतपुत्रका भी वध कर डालूँगा ॥ ३२-३३ ॥

तमद्य मूलं कलहस्य संख्ये
दुर्योधनापाश्रयजातदर्पम् ।
त्वामद्य हन्तास्मि रणे प्रसह्य
अस्यैव हन्ता युधि भीमसेनः ॥ ३४ ॥
दुर्योधनस्याधमपूरुषस्य
यस्यानयादेष महान् क्षयोऽभवत् ।

'कर्ण ! तू ही इस कलहकी जड़ है। दुर्योधनका सहारा मिल जानेसे तेरा घमंड बहुत बढ़ गया है। आज रणक्षेत्रमें मैं हठपूर्वक तेरा वध करूँगा और जिसके अन्यायसे यह महान् संहार हुआ है, उस नराधम दुर्योधनका वध युद्धमें भीमसेन करेंगे' ॥ ३४½ ॥

स एवमुक्त्वा विनिमृज्य चापं
लक्ष्यं हि कृत्वा वृषसेनमाजौ ॥ ३५ ॥
ससर्ज बाणान् विशिखान् महात्मा
वधाय राजन् कर्णसुतस्य संख्ये ।

राजन्! ऐसा कहकर महात्मा अर्जुनने अपने धनुषको पोंछा और कर्णपुत्र वृषसेनका वध करनेके लिये युद्धमें उसीको लक्ष्य बनाकर बाणोंका प्रहार आरम्भ किया ॥

विव्याध चैनं दशभिः पृषत्कै-
र्मर्मस्वशङ्कं प्रहसन् किरीटी ॥ ३६ ॥
चिच्छेद चास्येष्वसनं भुजौ च
क्षुरैश्चतुर्भिर्निशितैः शिरश्च ।

किरीटधारी अर्जुनने हँसते हुए-से दस बाणोंसे उसके मर्मस्थानोंमें निर्भीक होकर आघात किया। फिर चार तीखे छुरोंसे उसके धनुषको, दोनों भुजाओंको तथा मस्तकको भी काट डाला॥

स पार्थबाणाभिहतः पपात
रथाद् विबाहुर्विशिरा धरायाम् ॥ ३७ ॥
सुपुष्पितो वृक्षवरोऽतिकायो
वातेरितः शाल इवाद्रिशृङ्गात् ।

अर्जुनके बाणोंसे आहत हो बाहु और मस्तकसे रहित होकर वृषसेन उसी प्रकार रथसे नीचे पृथ्वीपर गिर पड़ा, जैसे सुन्दर फूलोंसे भरा हुआ श्रेष्ठ एवं विशाल शालवृक्ष हवाके झोंके खाकर पर्वतशिखरसे नीचे जा गिरा हो ॥ ३७½ ॥

सम्प्रेक्ष्य बाणाभिहतं पतन्तं
रथात् सुतं सूतजः क्षिप्रकारी ॥ ३८ ॥
रथं रथेनाशु जगाम रोषात्
किरीटिनः पुत्रवधाभितप्तः ।

शीघ्रतापूर्वक कार्य करनेवाला सूतपुत्र कर्ण अपने बेटेको बाणविद्ध हो रथसे नीचे गिरते देख पुत्रके वधसे संतप्त हो उठा और रोषमें भरकर रथके द्वारा अर्जुनके रथकी ओर तीव्र वेगसे चला ॥ ३८½ ॥

ततः समक्षं स्वसुतं विलोक्य
कर्णो हतं श्वेतहयेन संख्ये ।
संरम्भमागम्य परं महात्मा
कृष्णार्जुनौ सहसैवाभ्यधावत् ॥ ३९ ॥

अपने पुत्रको अपनी आँखोंके सामने ही युद्धमें श्वेतवाहन अर्जुनद्वारा मारा गया देख महामनस्वी कर्णको महान् क्रोध हुआ तथा उसने श्रीकृष्ण और अर्जुनपर सहसा आक्रमण कर दिया ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि वृषसेनवधे पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें वृषसेनका वधविषयक पचासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८५ ॥

षडशीतितमोऽध्यायः

कर्णके साथ युद्ध करनेके विषयमें श्रीकृष्ण और अर्जुनकी बातचीत तथा अर्जुनका कर्णके सामने उपस्थित होना

संजय उवाच

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य वेलोद्वृत्तमिवार्णवम् ।
गर्जन्तं सुमहाकायं दुर्निवारं सुरैरपि ॥ १ ॥
अर्जुनं प्राह दाशार्हः प्रहस्य पुरुषर्षभः ।
अयं स रथ आयाति श्वेताश्वः शल्यसारथिः ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! सीमाको लाँघकर आगे बढ़ते हुए महासागरके सदृश विशालकाय कर्ण गर्जना करता हुआ आगे बढ़ा। वह देवताओंके लिये भी दुर्जय था। उसे आते देख दशार्हकुलनन्दन पुरुषश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णने हँसकर अर्जुनसे कहा—'पार्थ! जिसके सारथि शल्य हैं और रथमें श्वेत घोड़े जुते हैं, वही यह कर्ण रथसहित इधर आ रहा है ॥ १-२ ॥

येन ते सह योद्धव्यं स्थिरो भव धनंजय ।
पश्य चैनं समायुक्तं रथं कर्णस्य पाण्डव ॥ ३ ॥
श्वेतवाजिसमायुक्तं युक्तं राधासुतेन च ।

'धनंजय! तुम्हें जिसके साथ युद्ध करना है, वह कर्ण आ गया। अब स्थिर हो जाओ। पाण्डुनन्दन! श्वेत घोड़ोंसे जुते हुए कर्णके इस सजे-सजाये रथको, जिसपर वह स्वयं विराजमान है, देखो ॥ ३½ ॥

नानापताकाकलिलं किङ्किणीजालमालिनम् ॥ ४ ॥
उह्यमानमिवाकाशे विमानं पाण्डुरैर्हयैः ।
ध्वजं च पश्य कर्णस्य नागकक्षं महात्मनः ॥ ५ ॥

'इसपर भाँति-भाँतिकी पताकाएँ फहरा रही हैं तथा वह छोटी-छोटी घंटियोंवाली झालरसे अलंकृत है। ये सफेद घोड़े आकाशमें विमानके समान इस रथको लेकर मानो उड़े जा रहे हैं। महामनस्वी कर्णकी इस ध्वजाको तो देखो, जिसमें हाथीके रस्सेका चिह्न बना हुआ है ॥ ४-५ ॥

आखण्डलधनुःप्रख्यमुल्लिखन्तमिवाम्बरम् ।
पश्य कर्णं समायान्तं धार्तराष्ट्रप्रियैषिणम् ॥ ६ ॥
शरधारा विमुञ्चन्तं धारासारमिवाम्बुदम् ।

'वह ध्वज इन्द्रधनुषके समान प्रकाशित होता हुआ आकाशमें रेखा-सा खींच रहा है। देखो, दुर्योधनका प्रिय चाहनेवाला कर्ण इधर ही आ रहा है। वह जलकी धारा गिरानेवाले बादलके समान बाणधाराकी वर्षा कर रहा है ६½

एष मद्रेश्वरो राजा रथाग्रे पर्यवस्थितः ॥ ७ ॥
नियच्छति हयानस्य राधेयस्यामितौजसः ।

'ये मद्रदेशके स्वामी राजा शल्य रथके अग्रभागमें बैठकर अमित बलशाली इस राधापुत्र कर्णके घोड़ोंको काबूमें रख रहे हैं ॥ ७½ ॥

शृणु दुन्दुभिनिर्घोषं शङ्खशब्दं च दारुणम् ॥ ८ ॥
सिंहनादांश्च विविधाञ्शृणु पाण्डव सर्वतः ।

'पाण्डुनन्दन! सुनो, दुन्दुभिका गम्भीर घोष और

भयंकर शङ्खध्वनि हो रही है। चारों ओर नाना प्रकारके सिंहनाद भी होने लगे हैं, इन्हें सुनो ॥ ८½ ॥

अन्तर्धाय महाशब्दान् कर्णेनामिततेजसा ॥ ९ ॥
दोधूयमानस्य भृशं धनुषः शृणु निःस्वनम्।

'अमिततेजस्वी कर्ण अपने धनुषको बड़े वेगसे हिला रहा है। उसकी टंकारध्वनि बड़ी भारी आवाजको भी दबा-कर सुनायी पड़ रही है, सुनो ॥ ९½ ॥

एते दीर्यन्ति सगणाः पञ्चालानां महारथाः ॥ १० ॥
दृष्ट्वा केसरिणं क्रुद्धं मृगा इव महावने।

'जैसे महान् वनमें मृग कुपित हुए सिंहको देखकर भागने लगते हैं, उसी प्रकार ये पाञ्चाल महारथी अपने सैन्यदलके साथ कर्णको देखकर भागे जा रहे हैं ॥ १०½ ॥

सर्वयत्नेन कौन्तेय हन्तुमर्हसि सूतजम् ॥ ११ ॥
न हि कर्णशरानन्यः सोढुमुत्सहते नरः।

'कुन्तीनन्दन ! तुम्हें पूर्ण प्रयत्न करके सूतपुत्र कर्णका वध करना चाहिये। दूसरा कोई मनुष्य कर्णके बाणोंको नहीं सह सकता है ॥ ११½ ॥

सदेवासुरगन्धर्वांस्त्रीँल्लोकान सचराचरान् ॥ १२ ॥
त्वं हि जेतुं रणे शक्तस्तथैव विदितं मम।

'देवता, असुर, गन्धर्व तथा चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोकोंको तुम रणभूमिमें जीत सकते हो; यह मुझे अच्छी तरह मालूम है ॥ १२½ ॥

भीममुग्रं महात्मानं त्र्यक्षं शर्वं कपर्दिनम् ॥ १३ ॥
न शक्ता द्रष्टुमीशानं किं पुनर्योधितुं प्रभुम्।
त्वया साक्षान्महादेवः सर्वभूतशिवः शिवः ॥ १४ ॥
युद्धेनाराधितः स्थाणुर्देवाश्च वरदास्तव।
तस्य पार्थ प्रसादेन देवदेवस्य शूलिनः ॥ १५ ॥
जहि कर्णं महाबाहो नमुचिं वृत्रहा यथा।
श्रेयस्तेऽस्तु सदा पार्थ युद्धे जयमवाप्नुहि ॥ १६ ॥

'जिनकी मूर्ति बड़ी ही उग्र और भयंकर है, जो महात्मा हैं, जिनके तीन नेत्र और मस्तकपर जटाजूट है, उन सर्वसमर्थ ईश्वर भगवान् शंकरको दूसरे लोग देख भी नहीं सकते फिर उनके साथ युद्ध करनेकी तो बात ही क्या है ? परंतु तुमने सम्पूर्ण जीवोंका कल्याण करनेवाले उन्हीं स्थाणुस्वरूप महादेव साक्षात् भगवान् शिवकी युद्धके द्वारा आराधना की है, अन्य देवताओंने भी तुम्हें वरदान दिये हैं; इसलिये महाबाहु पार्थ ! तुम उन देवाधिदेव त्रिशूलधारी भगवान् शङ्करकी कृपासे कर्णको उसी प्रकार मार डालो, जैसे वृत्रविनाशक इन्द्रने नमुचिका वध किया था। कुन्तीनन्दन ! तुम्हारा सदा ही कल्याण हो। तुम युद्धमें विजय प्राप्त करो' १३–१६

अर्जुन उवाच

ध्रुव एव जयः कृष्ण मम नास्त्यत्र संशयः।
सर्वलोकगुरुर्यस्त्वं तुष्टोऽसि मधुसूदन ॥ १७ ॥

अर्जुनने कहा—मधुसूदन श्रीकृष्ण ! मेरी विजय अवश्य होगी, इसमें संशय नहीं है; क्योंकि सम्पूर्ण जगत्के गुरु आप मुझपर प्रसन्न हैं ॥ १७ ॥

चोदयाश्वान् हृषीकेश रथं मम महारथ।
नाहत्वा समरे कर्णं निवर्तिष्यति फाल्गुनः ॥ १८ ॥

महारथी हृषीकेश ! आप मेरे रथ और घोड़ोंको आगे बढ़ाइये। अब अर्जुन समराङ्गणमें कर्णका वध किये बिना पीछे नहीं लौटेगा ॥ १८ ॥

अद्य कर्णं हतं पश्य मच्छरैः शकलीकृतम्।
मां वा द्रक्ष्यसि गोविन्द कर्णेन निहतं शरैः ॥ १९ ॥

गोविन्द ! आज आप मेरे बाणोंसे मरकर टुकड़े-टुकड़े हुए कर्णको देखिये। अथवा मुझे ही कर्णके बाणोंसे मरा हुआ देखियेगा ॥ १९ ॥

उपस्थितमिदं घोरं युद्धं त्रैलोक्यमोहनम्।
यज्जनाः कथयिष्यन्ति यावद् भूमिर्धरिष्यति ॥ २० ॥

आज तीनों लोकोंको मोहमें डालनेवाला यह घोर युद्ध उपस्थित है। जबतक पृथ्वी कायम रहेगी, तबतक संसारके लोग इस युद्धकी चर्चा करेंगे ॥ २० ॥

एवं ब्रुवंस्तदा पार्थः कृष्णमक्लिष्टकारिणम्।
प्रत्युद्ययौ रथेनाशु गजं प्रतिगजो यथा ॥ २१ ॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णसे ऐसा कहते हुए कुन्तीकुमार अर्जुन उस समय रथके द्वारा शीघ्रतापूर्वक कर्णके सामने गये, मानो किसी हाथीका सामना करनेके लिये प्रतिद्वन्द्वी हाथी जा रहा हो ॥ २१ ॥

पुनरप्याह तेजस्वी पार्थः कृष्णमरिंदमम्।
चोदयाश्वान् हृषीकेश कालोऽयमतिवर्तते ॥ २२ ॥

उस समय तेजस्वी पार्थने शत्रुदमन श्रीकृष्णसे पुनः इस प्रकार कहा—'हृषीकेश ! मेरे घोड़ोंको हाँकिये, यह समय बीता जा रहा है' ॥ २२ ॥

एवमुक्तस्तदा तेन पाण्डवेन महात्मना।
जयेन सम्पूज्य स पाण्डवं तदा
प्रचोदयामास हयान् मनोजवान्।
स पाण्डुपुत्रस्य रथो मनोजवः
क्षणेन कर्णस्य रथाग्रतोऽभवत् ॥ २३ ॥

महामना पाण्डुकुमार अर्जुनके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने विजयसूचक आशीर्वादके द्वारा उनका आदर करके उस समय मनके समान वेगशाली घोड़ोंको तीव्रवेगसे आगे बढ़ाया। पाण्डुपुत्र अर्जुनका वह मनोजव रथ एक ही क्षणमें कर्णके रथके सामने जाकर खड़ा हो गया ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णार्जुनद्वैरथे वासुदेववाक्ये षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्ण और अर्जुनके द्वैरथ-युद्धके प्रसंगमें भगवान् श्रीकृष्णका वाक्यविषयक छियासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥

सप्ताशीतितमोऽध्यायः

कर्ण और अर्जुनका द्वैरथयुद्धमें समागम, उनकी जय-पराजयके सम्बन्धमें सब प्राणियोंका संशय, ब्रह्मा और महादेवजीद्वारा अर्जुनकी विजयघोषणा तथा कर्णकी शल्यसे और अर्जुनकी श्रीकृष्णसे वार्ता

संजय उवाच

वृषसेनं हतं दृष्ट्वा शोकामर्षसमन्वितः ।
पुत्रशोकोद्भवं वारि नेत्राभ्यां समवासृजत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! जब कर्णने वृषसेनको मारा गया देखा, तब वह शोक और अमर्षके वशीभूत हो अपने दोनों नेत्रोंसे पुत्रशोकजनित आँसू बहाने लगा ॥१॥

रथेन कर्णस्तेजस्वी जगामाभिमुखो रिपुम् ।
युद्धायामर्षताम्राक्षः समाहूय धनंजयम् ॥ २ ॥

फिर तेजस्वी कर्ण क्रोधसे लाल आँखें करके अपने शत्रु धनंजयको युद्धके लिये ललकारता हुआ रथके द्वारा उनके सामने आया ॥ २ ॥

तौ रथौ सूर्यसंकाशौ वैयाघ्रपरिवारितौ ।
समेतौ ददृशुस्तत्र द्वाविवार्कौ समुद्गतौ ॥ ३ ॥

व्याघ्रचर्मसे आच्छादित और सूर्यके समान तेजस्वी वे दोनों रथ जब एकत्र हुए, तब लोगोंने वहाँ उन्हें इस प्रकार देखा, मानो दो सूर्य उदित हुए हों ॥ ३ ॥

श्वेताश्वौ पुरुषौ दिव्यावास्थितावरिमर्दनौ ।
शुशुभाते महात्मानौ चन्द्रादित्यौ यथा दिवि॥ ४ ॥

दोनोंके घोड़े सफेद रंगके थे । दोनों ही दिव्य पुरुष और शत्रुओंका मर्दन करनेमें समर्थ थे । वे दोनों महामनस्वी वीर आकाशमें चन्द्रमा और सूर्यके समान रणभूमिमें शोभा पा रहे थे ॥ ४ ॥

तौ दृष्ट्वा विस्मयं जग्मुः सर्वसैन्यानि मारिष ।
त्रैलोक्यविजये यत्ताविन्द्रवैरोचनाविव ॥ ५ ॥

मान्यवर ! तीनों लोकोंपर विजय पानेके लिये प्रयत्नशील हुए इन्द्र और बलिके समान उन दोनों वीरोंको आमने-सामने देखकर समस्त सेनाओंको बड़ा विस्मय हुआ ॥ ५ ॥

रथज्यातलनिर्ह्रादैर्बाणसिंहरवैस्तथा ।
तौ रथावभिधावन्तौ समालोक्य महीक्षिताम्॥ ६ ॥
ध्वजौ च दृष्ट्वा संसक्तौ विस्मयः समपद्यत ।
हस्तिकक्षं च कर्णस्य वानरं च किरीटिनः ॥ ७ ॥

रथ, धनुषकी प्रत्यञ्चा और हथेलीके शब्द, बाणोंकी सनसनाहट तथा सिंहनादके साथ एक दूसरेके सम्मुख दौड़ते हुए उन दोनों रथोंको देखकर एवं उनकी परस्पर सटी हुई ध्वजाओंका अवलोकन करके वहाँ आये हुए राजाओंको बड़ा विस्मय हुआ । कर्णकी ध्वजामें हाथीके साँकलका चिह्न था और किरीटधारी अर्जुनकी ध्वजापर मूर्तिमान् वानर बैठा था ॥ ६-७ ॥

तौ रथौ सम्प्रसक्तौ तु दृष्ट्वा भारत पार्थिवाः ।
सिंहनादरवांश्चक्रुः साधुवादांश्च पुष्कलान् ॥ ८ ॥

भरतनन्दन ! उन दोनों रथोंको एक दूसरेसे सटा देख सब राजा सिंहनाद करने और प्रचुर साधुवाद देने लगे ॥८॥

दृष्ट्वा च द्वैरथं ताभ्यां तत्र योधाः सहस्रशः ।
चक्रुर्बाहुस्वनांश्चैव तथा चैलावधूननम् ॥ ९ ॥

उन दोनोंका द्वैरथ युद्ध प्रस्तुत देख वहाँ खड़े हुए सहस्रों योद्धा अपनी भुजाओंपर ताल ठोकने और कपड़े हिलाने लगे ॥ ९ ॥

आजघ्नुः कुरवस्तत्र वादित्राणि समन्ततः ।
कर्णं प्रहर्षयिष्यन्तः शङ्खान् दध्मुश्च सर्वशः ॥ १० ॥

तदनन्तर कर्णका हर्ष बढ़ानेके लिये कौरवसैनिक वहाँ सब ओर बाजे बजाने और शङ्खध्वनि करने लगे ॥ १० ॥

तथैव पाण्डवाः सर्वे हर्षयन्तो धनंजयम् ।
तूर्यशङ्खनिनादेन दिशः सर्वा व्यनादयन् ॥ ११ ॥

इसी प्रकार समस्त पाण्डव भी अर्जुनका हर्ष बढ़ाते हुए वाद्यों और शङ्खोंकी ध्वनिसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करने लगे ॥ ११ ॥

क्ष्वेडितास्फोटितोत्कुष्टैस्तुमुलं सर्वतोऽभवत्।
बाहुशब्दैश्च शूराणां कर्णार्जुनसमागमे ॥ १२ ॥

कर्ण और अर्जुनके उस संघर्षमें शूरवीरोंके सिंहनाद करने, ताली बजाने, गर्जने और भुजाओंपर ताल ठोकनेसे सब ओर भयानक आवाज गूँज उठी ॥ १२ ॥

तौ दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रौ रथस्थौ रथिनां वरौ ।
प्रगृहीतमहाचापौ शरशक्तिध्वजायुतौ ॥ १३ ॥
वर्मिणौ बद्धनिस्त्रिंशौ श्वेताश्वौ शङ्खशोभितौ।
तूणीरवरसम्पन्नौ द्वावप्येतौ सुदर्शनौ ॥ १४ ॥
रक्तचन्दनदिग्धाङ्गौ समदौ गोवृषाविव ।
चापविद्युद्ध्वजोपेतौ शस्त्रसम्पत्तियोधिनौ ॥ १५ ॥
चामरव्यजनोपेतौ श्वेतच्छत्रोपशोभितौ ।
कृष्णशल्यरथोपेतौ तुल्यरूपौ महारथौ ॥ १६ ॥
सिंहस्कन्धौ दीर्घभुजौ रक्ताक्षौ हेममालिनौ ।
सिंहस्कन्धप्रतीकाशौ व्यूढोरस्कौ महाबलौ ॥ १७ ॥
अन्योन्यवधमिच्छन्तावन्योन्यजयकाङ्क्षिणौ ।
अन्योन्यमभिधावन्तौ गोष्ठे गोवृषभाविव ।
प्रभिन्नाविव मातङ्गौ सुसंरब्धाविवाचलौ ॥ १८ ॥
आशीविषशिशुप्रख्यौ यमकालान्तकोपमौ ।
इन्द्रवृत्राविव क्रुद्धौ सूर्याचन्द्रसमप्रभौ ॥ १९ ॥
महाग्रहाविव क्रुद्धौ युगान्ताय समुत्थितौ ।
देवगर्भौ देवबलौ देवतुल्यौ च रूपतः ॥ २० ॥
यदृच्छया समायातौ सूर्याचन्द्रमसौ यथा ।
बलिनौ समरे दृप्तौ नानाशस्त्रधरौ युधि ॥ २१ ॥

तौ दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रौ शार्दूलाविव धिष्ठितौ ।
बभूव परमो हर्षस्तावकानां विशाम्पते ॥ २२ ॥

वे दोनों पुरुषसिंह रथपर विराजमान और रथियोंमें श्रेष्ठ थे। दोनोंने विशाल धनुष धारण किये थे। दोनों ही बाण, शक्ति और ध्वजसे सम्पन्न थे। दोनों कवचधारी थे और कमरमें तलवार बाँधे हुए थे। उन दोनोंके घोड़े श्वेत रंगके थे। वे दोनों ही शङ्खसे सुशोभित, उत्तम तरकससे सम्पन्न और देखनेमें सुन्दर थे। दोनोंके ही अंगोंमें लाल चन्दनका अनुलेप लगा हुआ था। दोनों ही साँड़ोंके समान मदमत्त थे। दोनोंके धनुष और ध्वज विद्युत्के समान कान्तिमान् थे। दोनों ही शस्त्रसमूहोंद्वारा युद्ध करनेमें कुशल थे। दोनों ही चँवर और व्यजनोंसे युक्त तथा श्वेत छत्रसे सुशोभित थे। एकके सारथि श्रीकृष्ण थे तो दूसरेके शल्य। उन दोनों महारथियोंके रूप एक-से ही थे। उनके कंधे सिंहके समान, भुजाएँ बड़ी-बड़ी और आँखें लाल थीं। दोनोंने सुवर्णकी मालाएँ पहन रक्खी थीं। दोनों सिंहके समान उन्नत कंधोंसे प्रकाशित होते थे। दोनोंकी छाती चौड़ी थी और दोनों ही महान् बलशाली थे। दोनों एक दूसरेका वध चाहते और परस्पर विजय पानेकी अभिलाषा रखते थे। गोशालामें लड़नेवाले दो साँड़ोंके समान वे दोनों एक दूसरेपर धावा करते थे। मद बहानेवाले मदोन्मत्त हाथियोंके समान दोनों ही रोषावेशमें भरे हुए थे। पर्वतके समान अविचल थे। विषधर सर्पोंके शिशुओं-जैसे जान पड़ते थे। यम, काल और अन्तकके समान भयंकर प्रतीत होते थे। इन्द्र और वृत्रासुरके समान वे एक दूसरेपर कुपित थे। सूर्य और चन्द्रमाके समान अपनी प्रभा बिखेर रहे थे। क्रोधमें भरे हुए दो महान् ग्रहोंके समान प्रलय मचानेके लिये उठ खड़े हुए थे। दोनों ही देवताओंके बालक, देवताओंके समान बली और देवतुल्य रूपवान् थे। दैवेच्छासे भूतलपर उतरे हुए सूर्य और चन्द्रमाके समान शोभा पाते थे। दोनों ही समराङ्गणमें बलवान् और अभिमानी थे। युद्धके लिये नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण किये हुए थे। प्रजानाथ! आमने-सामने खड़े हुए दो सिंहोंके समान उन दोनों नरव्याघ्र वीरोंको देखकर आपके सैनिकोंको महान् हर्ष हुआ ॥ १३–२२ ॥

संशयः सर्वभूतानां विजये समपद्यत ।
समेतौ पुरुषव्याघ्रौ प्रेक्ष्य कर्णधनंजयौ ॥ २३ ॥

पुरुषसिंह कर्ण और धनंजयको एकत्र हुआ देखकर समस्त प्राणियोंको किसी एककी विजयमें संदेह होने लगा ॥

उभौ वरायुधधरावुभौ रणकृतश्रमौ ।
उभौ च बाहुशब्देन नादयन्तौ नभस्तलम् ॥ २४ ॥

दोनोंने श्रेष्ठ आयुध धारण कर रखे थे, दोनोंने ही युद्धकी कला सीखनेमें परिश्रम किया था और दोनों अपनी भुजाओंके शब्दसे आकाशको प्रतिध्वनित कर रहे थे ॥२४॥

उभौ विश्रुतकर्माणौ पौरुषेण बलेन च ।
उभौ च सदृशौ युद्धे शम्बरामरराजयोः ॥ २५ ॥

दोनोंके कर्म विख्यात थे। युद्धमें पुरुषार्थ और बलकी दृष्टिसे दोनों ही शम्बरासुर और देवराज इन्द्रके समान थे ॥ २५ ॥

कार्तवीर्यसमौ चोभौ तथा दाशरथेः समौ ।
विष्णुवीर्यसमौ चोभौ तथा भवसमौ युधि ॥ २६ ॥

दोनों ही युद्धमें कार्तवीर्य अर्जुन, दशरथनन्दन श्रीराम, भगवान् विष्णु और भगवान् शङ्करके समान पराक्रमी थे ॥

उभौ श्वेतहयौ राजन् रथप्रवरवाहिनौ ।
सारथी प्रवरौ चैव तयोरास्तां महारणे ॥ २७ ॥

राजन्! दोनोंके घोड़े सफेद रंगके थे। दोनों ही श्रेष्ठ रथपर सवार थे और उस महासमरमें दोनोंके सारथि श्रेष्ठ पुरुष थे ॥ २७ ॥

ततो दृष्ट्वा महाराज राजमानौ महारथौ ।
सिद्धचारणसंघानां विस्मयः समपद्यत ॥ २८ ॥

महाराज! वहाँ सुशोभित होनेवाले दोनों महारथियोंको देखकर सिद्धों और चारणोंके समुदायोंको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥

तव पुत्रास्ततः कर्णं सबला भरतर्षभ ।
परिवव्रुर्महात्मानं क्षिप्रमाहवशोभिनम् ॥ २९ ॥

भरतश्रेष्ठ! तदनन्तर सेनासहित आपके पुत्र युद्धमें शोभा पानेवाले महामनस्वी कर्णको शीघ्र ही सब ओरसे घेरकर खड़े हो गये ॥ २९ ॥

तथैव पाण्डवा हृष्टा धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ।
परिवव्रुर्महात्मानं पार्थमप्रतिमं युधि ॥ ३० ॥

इसी प्रकार हर्षमें भरे हुए धृष्टद्युम्न आदि पाण्डव वीर युद्धमें अपना सानी न रखनेवाले महात्मा कुन्तीकुमार अर्जुनको घेरकर खड़े हुए ॥ ३० ॥

(यमौ च चेकितानश्च प्रहृष्टाश्च प्रभद्रकाः ।
नानादेश्याश्च ये शूराः शिष्टा युद्धाभिनन्दिनः ॥
ते सर्वे सहिता हृष्टाः परिवव्रुर्धनंजयम् ।
रिरक्षिषन्तः शत्रुघ्नं पत्त्यश्वरथकुञ्जरैः ॥
धनंजयस्य विजये धृताः कर्णवधेऽपि च ।

नकुल, सहदेव, चेकितान, हर्षमें भरे हुए प्रभद्रकगण, नाना देशोंके निवासी और युद्धका अभिनन्दन करनेवाले अवशिष्ट शूरवीर—ये सब-के-सब हर्षमें भरकर एक साथ अर्जुनको चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये। वे पैदल, घुड़सवार, रथों और हाथियोंद्वारा शत्रुसूदन अर्जुनकी रक्षा करना चाहते थे। उन्होंने अर्जुनकी विजय और कर्णके वधके लिये दृढ़ निश्चय कर लिया था ॥

तथैव तावकाः सर्वे यत्ताः सेनाप्रहारिणः ।
दुर्योधनमुखा राजन् कर्णं जुगुपुराहवे ।)

राजन्! इसी प्रकार दुर्योधन आदि आपके सभी पुत्र

सावधान एवं शत्रुसेनाओंपर प्रहार करनेके लिये उद्यत हो युद्धस्थलमें कर्णकी रक्षा करने लगे ॥

तावकानां रणे कर्णो ग्लहो ह्यासीद् विशाम्पते ।
तथैव पाण्डवेयानां ग्लहः पार्थोऽभवत् तदा ॥ ३१ ॥

प्रजानाथ ! आपकी ओरसे युद्धरूपी जूएमें कर्णको दाँवपर लगा दिया गया था । इसी प्रकार पाण्डवपक्षकी ओरसे कुन्तीकुमार अर्जुन दाँवपर चढ़ गये थे ॥ ३१ ॥

त एव सभ्यास्तत्रासन् प्रेक्षकाश्चाभवन् स्म ते ।
तत्रैषां ग्लहमानानां ध्रुवौ जयपराजयौ ॥ ३२ ॥

जो पहलेके जूएमें दर्शक थे, वे ही वहाँ भी सभासद् बने हुए थे । वहाँ युद्धरूपी जूआ खेलते हुए इन वीरोंमेंसे एककी जय और दूसरेकी पराजय अवश्यम्भावी थी ॥३२॥

ताभ्यां द्यूतं समासक्तं विजयायेतराय च ।
अस्माकं पाण्डवानां च स्थितानां रणमूर्धनि ॥ ३३ ॥

उन दोनोंने युद्धके मुहानेपर खड़े हुए हमलोगों तथा पाण्डवोंकी विजय अथवा पराजयके लिये रणद्यूत आरम्भ किया था ॥ ३३ ॥

तौ तु स्थितौ महाराज समरे युद्धशालिनौ ।
अन्योन्यं प्रतिसंरब्धावन्योन्यवधकाङ्क्षिणौ ॥ ३४ ॥

महाराज ! युद्धमें शोभा पानेवाले वे दोनों वीर परस्पर कुपित हो एक दूसरेके वधकी इच्छासे संग्रामके लिये खड़े हुए थे ॥ ३४ ॥

तावुभौ प्रजिहीर्षन्ताविन्द्रवृत्राविव प्रभो ।
भीमरूपधरावास्तां महाधूमाविव ग्रहौ ॥ ३५ ॥

प्रभो ! इन्द्र और वृत्रासुरके समान वे दोनों एक दूसरेपर प्रहारकी इच्छा रखते थे । उस समय उन दोनोंने दो महान् केतु—ग्रहोंके समान अत्यन्त भयंकर रूप धारण कर लिया था ॥ ३५ ॥

ततोऽन्तरिक्षे साक्षेपा विवादा भरतर्षभ ।
मिथो भेदाश्च भूतानामासन् कर्णार्जुनान्तरे ॥ ३६ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर अन्तरिक्षमें स्थित हुए समस्त भूतोंमें कर्ण और अर्जुनकी जय-पराजयको लेकर परस्पर आक्षेपयुक्त विवाद और मतभेद पैदा हो गया ॥ ३६ ॥

व्यश्रूयन्त मिथो भिन्नाः सर्वलोकास्तु मारिष ।
देवदानवगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ॥ ३७ ॥
प्रतिपक्षग्रहं चक्रुः कर्णार्जुनसमागमे ।

मान्यवर ! सब लोग परस्पर भिन्न विचार व्यक्त करते सुनायी देते थे । देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच, नाग और राक्षस—इन सबने कर्ण और अर्जुनके युद्धके विषयमें पक्ष और विपक्ष ग्रहण कर लिया ॥ ३७½ ॥

द्यौरासीत् सूतपुत्रस्य पक्षे मातेव धिष्ठिता ॥ ३८ ॥
भूमिर्धनंजयस्यासीन्मातेव जयकाङ्क्षिणी ।

द्यौ (आकाशकी अधिष्ठात्री देवी) माताके समान सूतपुत्र कर्णके पक्षमें खड़ी थी; परंतु भूदेवी माताकी भाँति धनंजयकी विजय चाहती थी ॥ ३८½ ॥

गिरयः सागराश्चैव नद्यश्च सजलास्तथा ॥ ३९ ॥
वृक्षाश्चौषधयश्चैव व्याश्रयन्त किरीटिनम् ।

पर्वत, समुद्र, सजल नदियाँ, वृक्ष तथा ओषधियाँ—इन सबने अर्जुनके पक्षका आश्रय ले रक्खा था ॥ ३९½ ॥

असुरा यातुधानाश्च गुह्यकाश्च परंतप ॥ ४० ॥
ते कर्णं समपद्यन्त हृष्टरूपाः समन्ततः ।

शत्रुओंको तपानेवाले वीर ! असुर, यातुधान और गुह्यक—ये सब ओरसे प्रसन्नचित्त हो कर्णके ही पक्षमें आ गये थे ॥ ४०½ ॥

मुनयश्चारणाः सिद्धा वैनतेया वयांसि च ॥ ४१ ॥
रत्नानि निधयः सर्वे वेदाश्चाख्यानपञ्चमाः ।
सोपवेदोपनिषदः सरहस्याः ससंग्रहाः ॥ ४२ ॥
वासुकिश्चित्रसेनश्च तक्षको मणिकस्तथा ।
सर्पाश्चैव तथा सर्वे काद्रवेयाश्च सान्वयाः ॥ ४३ ॥
विषवन्तो महाराज नागाश्चार्जुनतोऽभवन् ।
ऐरावताः सौरभेया वैशालेयाश्च भोगिनः ॥ ४४ ॥
एतेऽभवन्नर्जुनतः क्षुद्रसर्पाश्च कर्णतः ।

महाराज ! मुनि, चारण, सिद्ध, गरुड़, पक्षी, रत्न, निधियाँ, उपवेद, उपनिषद्, रहस्य, संग्रह और इतिहास-पुराणसहित सम्पूर्ण वेद, वासुकि, चित्रसेन, तक्षक, मणिक, सम्पूर्ण सर्पगण, अपने वंशजोंसहित कद्रूकी संतानें, विषैले नाग, ऐरावत, सौरभेय और वैशालेय सर्प—ये सब अर्जुनके पक्षमें हो गये । छोटे-छोटे सर्प कर्णका साथ देने लगे ॥४१—४४½॥

ईहामृगा व्यालमृगा माङ्गल्याश्च मृगद्विजाः ॥ ४५ ॥
पार्थस्य विजये राजन् सर्व एवाभिसंस्थिताः ।

राजन् ! ईहामृग, व्यालमृग, मङ्गलसूचक मृग, पशु और पक्षी, सिंह तथा व्याघ्र—ये सब-के सब अर्जुनकी ही विजयका आग्रह रखने लगे ॥ ४५½ ॥

वसवो मरुतः साध्या रुद्रा विश्वेऽश्विनौ तथा ॥ ४६ ॥
अग्निरिन्द्रश्च सोमश्च पवनोऽथ दिशो दश ।
धनंजयस्य ते पक्षे आदित्याः कर्णतोऽभवन् ॥ ४७ ॥
विशः शूद्राश्च सूताश्च ये च संकरजातयः ।
सर्वशस्ते महाराज राधेयमभजंस्तदा ॥ ४८ ॥

वसु, मरुद्गण, साध्य, रुद्र, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, सोम, पवन और दसों दिशाएँ अर्जुनके पक्षमें हो गये एवं (इन्द्रके सिवा अन्य) आदित्यगण कर्णके पक्षमें हो गये । महाराज ! वैश्य, शूद्र, सूत तथा सङ्कर जातिके लोग सब प्रकारसे उस समय राधापुत्र कर्णको ही अपनाने लगे ॥ ४६—४८ ॥

देवास्तु पितृभिः सार्धं सगणाः सपदानुगाः ।
यमो वैश्रवणश्चैव वरुणश्च यतोऽर्जुनः ॥ ४९ ॥
ब्रह्म क्षत्रं च यज्ञाश्च दक्षिणाश्चार्जुनं श्रिताः ।

अपने गणों और सेवकोंसहित देवता, पितर, यम, कुबेर और वरुण अर्जुनके पक्षमें थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, यज्ञ और दक्षिणा आदिने भी अर्जुनका ही साथ दिया ॥ ४९½ ॥

प्रेताश्चैव पिशाचाश्च क्रव्यादाश्च मृगाण्डजाः ॥ ५० ॥
राक्षसाः सह यादोभिः श्वसृगालाश्च कर्णतः।

प्रेत, पिशाच, मांसभोजी पशु-पक्षी, राक्षस, जल-जन्तु, कुत्ते और सियार—ये कर्णके पक्षमें हो गये ॥ ५०½ ॥

देवब्रह्मनृपर्षीणां गणाः पाण्डवतोऽभवन् ॥ ५१ ॥
तुम्बुरुप्रमुखा राजन् गन्धर्वाश्च यतोऽर्जुनः।
प्राधेयाः सहमौनेया गन्धर्वाप्सरसां गणाः ॥ ५२ ॥

राजन्! देवर्षि, ब्रह्मर्षि तथा राजर्षियोंके समुदाय पाण्डुपुत्र अर्जुनके पक्षमें थे। तुम्बुरु आदि गन्धर्व, प्राधा और मुनिसे उत्पन्न हुए गन्धर्व एवं अप्सराओंके समुदाय भी अर्जुनकी ही ओर थे ॥ ५१-५२ ॥

(सहाप्सरोभिः शुद्धाभिर्देवदूताश्च गुह्यकाः।
किरीटिनं संश्रिताः स्म पुण्यगन्धा मनोरमाः ॥
अमनोज्ञाश्च ये गन्धास्ते सर्वे कर्णमाश्रिताः।

शुद्ध अप्सराओंसहित देवदूत, गुह्यक और मनोरम पवित्र सुगन्ध—ये सब किरीटधारी अर्जुनके पक्षमें आ गये तथा मनको प्रिय न लगनेवाले जो दुर्गन्धयुक्त पदार्थ थे, उन सबने कर्णका आश्रय लिया था ॥

विपरीतान्यरिष्टानि भवन्ति विनशिष्यताम् ॥
ये त्वन्तकाले पुरुषं विपरीतमुपाश्रितम्।
प्रविशन्ति नरं क्षिप्रं मृत्युकालेऽभ्युपागते ॥
ते भावाः सहिताः कर्णं प्रविष्टाः सूतनन्दनम्।

विनाशोन्मुख प्राणियोंके समक्ष जो विपरीत अनिष्ट प्रकट होते हैं, अन्तकालमें विपरीत भावका आश्रय लेनेवाले पुरुषमें उसकी मृत्युकी घड़ी आनेपर जो भाव प्रवेश करते हैं, वे सभी भाव और अरिष्ट एक साथ सूतपुत्र कर्णके भीतर प्रविष्ट हुए ॥

ओजस्तेजश्च सिद्धिश्च प्रहर्षः सत्यविक्रमौ ॥
मनस्तुष्टिर्जयश्चापि तथाऽऽनन्दो नृपोत्तम।
ईदृशानि नरव्याघ्र तस्मिन् संग्रामसागरे ॥
निमित्तानि च शुभ्राणि विविशुर्जिष्णुमाहवे।

नरव्याघ्र! नृपश्रेष्ठ! ओज, तेज, सिद्धि, हर्ष, सत्य, पराक्रम, मानसिक संतोष, विजय तथा आनन्द—ऐसे ही भाव और शुभ निमित्त उस युद्धसागरमें विजयशील अर्जुनके भीतर प्रविष्ट हुए थे ॥

ऋषयो ब्राह्मणैः सार्धमभजन्त किरीटिनम् ॥
ततो देवगणैः सार्धं सिद्धाश्च सह चारणैः।
द्विधाभूता महाराज व्याश्रयन्त नरोत्तमौ ॥

ब्राह्मणोंसहित ऋषियोंने किरीटधारी अर्जुनका साथ दिया। महाराज! देवसमुदायों और चारणोंके साथ सिद्ध-गण दो दलोंमें विभक्त होकर उन दोनों नरश्रेष्ठ अर्जुन और कर्णका पक्ष लेने लगे ॥

विमानानि विचित्राणि गुणवन्ति च सर्वशः।
समारुह्य समाजग्मुर्द्वैरथं कर्णपार्थयोः ॥)

वे सब लोग विचित्र एवं गुणवान् विमानोंपर बैठकर कर्ण और अर्जुनका द्वैरथ युद्ध देखनेके लिये आये थे ॥

ईहामृगाः पक्षिगणा द्विपाश्वरथपत्तिभिः।
उह्यमानास्तथा मेघैर्वायुना च मनीषिणः ॥ ५३ ॥
दिदृक्षवः समाजग्मुः कर्णार्जुनसमागमम्।

क्रीडामृग, पक्षीसमुदाय तथा हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंसहित दिव्य मनीषी पुरुष वायु तथा बादलोंको वाहन बनाकर कर्ण और अर्जुनका युद्ध देखनेके लिये वहाँ पधारे थे ॥

देवदानवगन्धर्वा नागयक्षाः पतत्त्रिणः ॥ ५४ ॥
महर्षयो वेदविदः पितरश्च स्वधाभुजः।
तपोविद्यास्तथौषध्यो नानारूपबलान्विताः ॥ ५५ ॥
अन्तरिक्षे महाराज विनदन्तोऽवतस्थिरे।

महाराज! देवता, दानव, गन्धर्व, नाग, यक्ष, पक्षी, वेदज्ञ महर्षि, स्वधाभोजी पितर, तप, विद्या तथा नाना प्रकारके रूप और बलसे सम्पन्न ओषधियाँ—ये सब-के-सब कोलाहल मचाते हुए अन्तरिक्षमें खड़े हुए थे ॥ ५४-५५½ ॥

ब्रह्मा ब्रह्मर्षिभिः सार्धं प्रजापतिभिरेव च ॥ ५६ ॥
भवश्चैव स्थितो याने दिव्ये तं देशमागमत्।

ब्रह्मर्षियों तथा प्रजापतियोंके साथ ब्रह्मा और महादेवजी भी दिव्य विमानपर स्थित हो उस प्रदेशमें आये ॥

समेतौ तौ महात्मानौ दृष्ट्वा कर्णधनंजयौ ॥ ५७ ॥
अर्जुनो जयतां कर्णमिति शक्रोऽब्रवीत्तदा।

उन दोनों महामनस्वी वीर कर्ण और अर्जुनको एकत्र हुआ देख उस समय इन्द्र बोल उठे—'अर्जुन कर्णपर विजय प्राप्त करे' ॥ ५७½ ॥

जयतामर्जुनं कर्ण इति सूर्योऽभ्यभाषत ॥ ५८ ॥
हत्वार्जुनं मम सुतः कर्णो जयतु संयुगे।
हत्वा कर्णं जयत्वद्य मम पुत्रो धनंजयः ॥ ५९ ॥

यह सुनकर सूर्यदेव कहने लगे—'नहीं, कर्ण ही अर्जुनको जीत ले। मेरा पुत्र कर्ण युद्धस्थलमें अर्जुनको मारकर विजय प्राप्त करे।' (इन्द्र बोले—) 'नहीं, मेरा पुत्र अर्जुन ही आज कर्णका वध करके विजयश्रीका वरण करे' ॥ ५८-५९ ॥

इति सूर्यस्य चैवासीद् विवादो वासवस्य च।
पक्षसंस्थितयोस्तत्र तयोर्विबुधसिंहयोः।
द्वैपक्ष्यमासीद् देवानामसुराणां च भारत ॥ ६० ॥

इस प्रकार सूर्य और इन्द्रमें विवाद होने लगा। वे दोनों देवश्रेष्ठ वहाँ एक-एक पक्षमें खड़े थे। भारत! देवताओं और असुरोंमें भी वहाँ दो पक्ष हो गये थे ॥ ६० ॥

समेतौ तौ महात्मानौ दृष्ट्वा कर्णधनंजयौ।

अकम्पन्त त्रयो लोकाः सहदेवर्षिचारणाः ॥ ६१ ॥

महामना कर्ण और अर्जुनको युद्धके लिये एकत्र हुआ देख देवताओं, ऋषियों तथा चारणोंसहित तीनों लोकके प्राणी काँपने लगे ॥ ६१ ॥

सर्वे देवगणाश्चैव सर्वभूतानि यानि च।
यतः पार्थस्ततो देवा यतः कर्णस्ततोऽसुराः ॥ ६२ ॥

सम्पूर्ण देवता तथा समस्त प्राणी भी भयभीत हो उठे थे। जिस ओर अर्जुन थे, उधर देवता और जिस ओर कर्ण था, उधर असुर खड़े थे ॥ ६२ ॥

रथयूथपयोः पक्षौ कुरुपाण्डववीरयोः।
दृष्ट्वा प्रजापतिं देवाः स्वयम्भुवमचोदयन् ॥ ६३ ॥

रथयूथपति कर्ण और अर्जुन कौरव तथा पाण्डव दलके प्रमुख वीर थे। उनके विषयमें दो पक्ष देखकर देवताओंने प्रजापति स्वयम्भू ब्रह्माजीसे पूछा—॥ ६३ ॥

कोऽनयोर्विजयी देव कुरुपाण्डवयोधयोः।
समोऽस्तु विजयो देव एतयोर्नरसिंहयोः ॥ ६४ ॥

'देव! इन कौरव-पाण्डव योद्धाओंमें कौन विजयी होगा? भगवन्! हम चाहते हैं कि इन दोनों पुरुषसिंहोंकी एक-सी ही विजय हो ॥ ६४ ॥

कर्णार्जुनविवादेन सर्वं संशयितं जगत्।
स्वयम्भो ब्रूहि नस्तथ्यमेतयोर्विजयं प्रभो ॥ ६५ ॥
स्वयम्भो ब्रूहि तद्वाक्यं समोऽस्तु विजयोऽनयोः।

'प्रभो! कर्ण और अर्जुनके विवादसे सारा संसार संशयमें पड़ गया। स्वयम्भू! आप हमें इनके विजयके सम्बन्धमें सच्ची बात बताइये। आप ऐसा वचन बोलिये, जिससे इन दोनोंकी समान विजय सूचित हो' ॥ ६५½ ॥

तदुपश्रुत्य मघवा प्रणिपत्य पितामहम् ॥ ६६ ॥
व्यज्ञापयत देवेशमिदं मतिमतां वरः।

देवताओंकी वह बात सुनकर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ इन्द्रने देवेश्वर भगवान् ब्रह्माको प्रणाम करके यह निवेदन किया—॥ ६६½ ॥

पूर्वं भगवता प्रोक्तं कृष्णयोर्विजयो ध्रुवः ॥ ६७ ॥
तत् तथास्तु नमस्तेऽस्तु प्रसीद भगवन् मम।

'भगवन्! आपने पहले कहा था कि 'इन दोनों कृष्णोंकी विजय अटल है।' आपका वह कथन सत्य हो। आपको नमस्कार है। आप मुझपर प्रसन्न होइये' ॥ ६७½ ॥

ब्रह्मेशानावथो वाक्यमूचतुस्त्रिदशेश्वरम् ॥ ६८ ॥
विजयो ध्रुवमेवास्य विजयस्य महात्मनः।
खाण्डवे येन हुतभुक्तोषितः सव्यसाचिना ॥ ६९ ॥
स्वर्गं च समनुप्राप्य साहाय्यं शक्र ते कृतम्।

तब ब्रह्मा और महादेवजीने देवेश्वर इन्द्रसे कहा—'महात्मा अर्जुनकी विजय तो निश्चित ही है। इन्द्र! इन्हीं सव्यसाची अर्जुनने खाण्डववनमें अग्निदेवको संतुष्ट किया और स्वर्गलोकमें जाकर तुम्हारी भी सहायता की ॥

कर्णश्च दानवः पक्ष अतः कार्यः पराजयः ॥ ७० ॥
एवं कृते भवेत् कार्यं देवानामेव निश्चितम्।
आत्मकार्यं च सर्वेषां गरीयस्त्रिदशेश्वर ॥ ७१ ॥

'कर्ण दानव पक्षका पुरुष है; अतः उसकी पराजय करनी चाहिये—ऐसा करनेपर निश्चित रूपसे देवताओंका ही कार्य सिद्ध होगा। देवेश्वर! अपना कार्य सभीके लिये गुरुतर होता है ॥ ७०-७१ ॥

महात्मा फाल्गुनश्चापि सत्यधर्मरतः सदा।
विजयस्तस्य नियतं जायते नात्र संशयः ॥ ७२ ॥

'महात्मा अर्जुन सदा सत्य और धर्ममें तत्पर रहनेवाले हैं; अतः उनकी विजय अवश्य होगी, इसमें संशय नहीं है ॥

तोषितो भगवान् येन महात्मा वृषभध्वजः।
कथं वा तस्य न जयो जायते शतलोचन ॥ ७३ ॥

'शतलोचन! जिन्होंने महात्मा भगवान् वृषभध्वजको संतुष्ट किया है, उनकी विजय कैसे नहीं होगी ॥ ७३ ॥

यस्य चक्रे स्वयं विष्णुः सारथ्यं जगतः प्रभुः।
मनस्वी बलवाञ्शूरः कृतास्त्रोऽथ तपोधनः ॥ ७४ ॥

'साक्षात् जगदीश्वर भगवान् विष्णुने जिनका सारथ्य किया है, जो मनस्वी, बलवान्, शूरवीर, अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता और तपस्याके धनी हैं, उनकी विजय क्यों न होगी? ॥ ७४ ॥

बिभर्ति च महातेजा धनुर्वेदमशेषतः।
पार्थः सर्वगुणोपेतो देवकार्यमिदं यतः ॥ ७५ ॥

'सर्वगुणसम्पन्न महातेजस्वी कुन्तीकुमार अर्जुन सम्पूर्ण धनुर्वेदको धारण करते हैं; अतः उनकी विजय होगी ही; क्योंकि यह देवताओंका ही कार्य है ॥ ७५ ॥

क्लिश्यन्ते पाण्डवा नित्यं वनवासादिभिर्भृशम्।
सम्पन्नस्तपसा चैव पर्याप्तः पुरुषर्षभः ॥ ७६ ॥

'पाण्डव वनवास आदिके द्वारा सदा महान् कष्ट उठाते आये हैं। पुरुषप्रवर अर्जुन तपोबलसे सम्पन्न और पर्याप्त शक्तिशाली हैं ॥ ७६ ॥

अतिक्रमेच्च माहात्म्याद् दिष्टमप्यर्थपर्ययम्।
अतिक्रान्ते च लोकानामभावो नियतं भवेत् ॥ ७७ ॥

'ये अपनी महिमासे दैवके भी निश्चित विधानको पलट सकते हैं; यदि ऐसा हुआ तो सम्पूर्ण लोकोंका अवश्य ही अन्त हो जायगा ॥ ७७ ॥

न विद्यते व्यवस्थानं क्रुद्धयोः कृष्णयोः क्वचित्।
स्रष्टारौ जगतश्चैव सततं पुरुषर्षभौ ॥ ७८ ॥

'श्रीकृष्ण और अर्जुनके कुपित होनेपर यह संसार कहीं टिक नहीं सकता; पुरुषप्रवर श्रीकृष्ण और अर्जुन ही निरन्तर जगत्की सृष्टि करते हैं ॥ ७८ ॥

नरनारायणावेतौ पुराणावृषिसत्तमौ।
अनियम्यौ नियन्तारावेतौ तस्मात् परंतपौ ॥ ७९ ॥

'ये ही प्राचीन ऋषिश्रेष्ठ नर और नारायण हैं; इन-

पर किसीका शासन नहीं चलता । ये ही सबके नियन्ता हैं; अतः ये शत्रुओंको संताप देनेमें समर्थ हैं ॥ ७९ ॥

नैतयोस्तु समः कश्चिद् दिवि वा मानुषेषु वा ।
अनुगम्यास्त्रयो लोकाः सह देवर्षिचारणैः ॥ ८० ॥
सर्वदेवगणाश्चापि सर्वभूतानि यानि च ।
अनयोस्तु प्रभावेण वर्तते निखिलं जगत् ॥ ८१ ॥

'देवलोक अथवा मनुष्यलोकमें कोई भी इन दोनोंकी समानता करनेवाला नहीं है । देवता, ऋषि और चारणोंके साथ तीनों लोक, समस्त देवगण और सम्पूर्ण भूत इनके ही नियन्त्रणमें रहनेवाले हैं । इन्हींके प्रभावसे सम्पूर्ण जगत् अपने-अपने कर्मोंमें प्रवृत्त होता है ॥ ८०-८१ ॥

कर्णो लोकानयं मुख्यानाप्नोतु पुरुषर्षभः ।
कर्णो वैकर्तनः शूरो विजयस्त्वस्तु कृष्णयोः ॥ ८२ ॥

'शूरवीर पुरुषप्रवर वैकर्तन कर्ण श्रेष्ठ लोक प्राप्त करे; परंतु विजय तो श्रीकृष्ण और अर्जुनकी ही हो ॥८२॥

वसूनां समलोकत्वं मरुतां वा समाप्नुयात् ।
सहितो द्रोणभीष्माभ्यां नाकलोकमवाप्नुयात् ॥ ८३ ॥

'कर्ण द्रोणाचार्य और भीष्मजीके साथ वसुओं अथवा मरुद्गणोंके लोकमें जाय अथवा स्वर्गलोक ही प्राप्त करे' ॥८३॥

इत्युक्तो देवदेवाभ्यां सहस्राक्षोऽब्रवीद् वचः ।
आमन्त्र्य सर्वभूतानि ब्रह्मेशानानुशासनम् ॥ ८४ ॥

देवाधिदेव ब्रह्मा और महादेवजीके ऐसा कहनेपर इन्द्रने सम्पूर्ण प्राणियोंको बुलाकर उन दोनोंकी आज्ञा सुनायी॥

श्रुतं भवद्भिर्यत् प्रोक्तं भगवद्भ्यां जगद्धितम् ।
तत्तथा नान्यथा तद्धि तिष्ठध्वं विगतज्वराः ॥ ८५ ॥

वे बोले—'हमारे पूज्य प्रभुओंने संसारके हितके लिये जो कुछ कहा है, वह सब तुमलोगोंने सुन ही लिया होगा । वह वैसे ही होगा । उसके विपरीत होना असम्भव है; अतः अब निश्चिन्त हो जाओ' ॥ ८५ ॥

इति श्रुत्वेन्द्रवचनं सर्वभूतानि मारिष ।
विस्मितान्यभवन् राजन् पूजायांचक्रिरे तदा ॥ ८६ ॥
व्यसृजंश्च सुगन्धीनि पुष्पवर्षाणि हर्षिताः ।
नानारूपाणि विबुधा देवतूर्याण्यवादयन् ॥ ८७ ॥

माननीय नरेश ! इन्द्रका यह वचन सुनकर समस्त प्राणी विस्मित हो गये और हर्षमें भरकर श्रीकृष्ण और अर्जुनकी प्रशंसा करने लगे । साथ ही उन दोनोंके ऊपर उन्होंने दिव्य सुगन्धित फूलोंकी वर्षा की । देवताओंने नाना प्रकारके दिव्य बाजे बजाने आरम्भ कर दिये ॥ ८६-८७ ॥

दिदृक्षवश्चाप्रतिमं द्वैरथं नरसिंहयोः ।
देवदानवगन्धर्वाः सर्व एवावतस्थिरे ॥ ८८ ॥

पुरुषसिंह कर्ण और अर्जुनका अनुपम द्वैरथ युद्ध देखनेकी इच्छासे देवता, दानव और गन्धर्व सभी वहाँ खड़े हो गये ॥

रथौ तयोः श्वेतहयौ दिव्यौ युक्तौ महात्मनोः ।
यौ तौ कर्णार्जुनौ राजन् प्रहृष्टावभ्यतिष्ठताम् ॥ ८९ ॥

राजन् ! कर्ण और अर्जुन हर्षमें भरकर जिन रथोंपर बैठे हुए थे, उन महामनस्वी वीरोंके वे दोनों रथ श्वेत घोड़ोंसे युक्त, दिव्य और आवश्यक सामग्रियोंसे सम्पन्न थे ॥८९॥

समागता लोकवीराः शङ्खान् दध्मुः पृथक् पृथक् ।
वासुदेवार्जुनौ वीरौ कर्णशल्यौ च भारत ॥ ९० ॥

भरतनन्दन ! वहाँ एकत्र हुए सम्पूर्ण जगत्के वीर पृथक्-पृथक् शङ्खध्वनि करने लगे । वीर श्रीकृष्ण और अर्जुनने तथा शल्य और कर्णने भी अपना-अपना शङ्ख बजाया ॥

तद् भीरुसंत्रासकरं युद्धं समभवत्तदा ।
अन्योन्यस्पर्धिनोरुग्रं शक्रशम्बरयोरिव ॥ ९१ ॥

इन्द्र और शम्बरासुरके समान एक दूसरेसे डाह रखनेवाले उन दोनों वीरोंमें उस समय घोर युद्ध आरम्भ हुआ, जो कायरोंके हृदयमें भय उत्पन्न करनेवाला था ॥ ९१ ॥

तयोर्ध्वजौ वीतमलौ शुशुभाते रथे स्थितौ ।
राहुकेतू यथाऽऽकाशे उदितौ जगतः क्षये ॥ ९२ ॥

उन दोनोंके रथोंपर निर्मल ध्वजाएँ शोभा पा रही थीं, मानो संसारके प्रलयकालमें आकाशमें राहु और केतु दोनों ग्रह उदित हुए हों ॥ ९२ ॥

कर्णस्याशीविषनिभा रत्नसारमयी दृढा ।
पुरन्दरधनुःप्रख्या हस्तिकक्ष्या व्यराजत ॥ ९३ ॥

कर्णके ध्वजकी पताकामें हाथीकी साँकलका चिह्न था, वह साँकल रत्नसारमयी, सुदृढ़ और विषधर सर्पके समान आकारवाली थी । वह आकाशमें इन्द्रधनुषके समान शोभा पाती थी ॥ ९३ ॥

कपिश्रेष्ठस्तु पार्थस्य व्यादितास्य इवान्तकः ।
दंष्ट्राभिर्भीषयन् भाभिर्दुर्निरीक्ष्यो रविर्यथा ॥ ९४ ॥

कुन्तीकुमार अर्जुनके रथपर मुँह बाये हुए यमराजके समान एक श्रेष्ठ वानर बैठा हुआ था, जो अपनी दाढ़ोंसे सबको डराया करता था । वह अपनी प्रभासे सूर्यके समान जान पड़ता था । उसकी ओर देखना कठिन था ॥ ९४ ॥

युद्धाभिलाषुको भूत्वा ध्वजो गाण्डीवधन्वनः ।
कर्णध्वजमुपातिष्ठत् स्वस्थानाद् वेगवान् कपिः ॥ ९५ ॥
उत्पपात महावेगः कक्ष्यामभ्याहनत्तदा ।
नखैश्च दशनैश्चैव गरुडः पन्नगं यथा ॥ ९६ ॥

गाण्डीवधारी अर्जुनका ध्वज मानो युद्धका इच्छुक होकर कर्णके ध्वजपर आक्रमण करने लगा । अर्जुनकी ध्वजाका महान् वेगशाली वानर उस समय अपने स्थानसे उछला और कर्णकी ध्वजाकी साँकलपर चोट करने लगा, जैसे गरुड़ अपने पंजों और चोंचसे सर्पपर प्रहार कर रहे हों ॥९५-९६॥

सा किङ्किणीकाभरणा कालपाशोपमाऽऽयसी ।
अभ्यद्रवत् सुसंरब्धा हस्तिकक्ष्याथ तं कपिम् ॥९७॥

कर्णके ध्वजपर जो हाथीकी साँकल थी, वह कालपाशके

समान जान पड़ती थी। वह लोहनिर्मित हाथीकी साँकल छोटी-छोटी घण्टियोंसे विभूषित थी। उसने अत्यन्त कुपित होकर उस वानरपर धावा किया ॥ ९७ ॥

तयोर्घोरतरे युद्धे द्वैरथे द्यूत आहिते।
प्रकुर्वाते ध्वजौ युद्धं पूर्वं पूर्वतरं तदा ॥ ९८ ॥

उन दोनोंमें घोरतर द्वैरथ युद्धरूपी जूएका अवसर उपस्थित था, इसीलिये उन दोनोंकी ध्वजाओंने पहले स्वयं ही युद्ध आरम्भ कर दिया ॥ ९८ ॥

हया हयानभ्यहेषन् स्पर्धमानाः परस्परम्।
अविध्यत् पुण्डरीकाक्षः शल्यं नयनसायकैः ॥ ९९ ॥

एकके घोड़े दूसरेके घोड़ोंको देखकर परस्पर लाग-डाँट रखते हुए हिनहिनाने लगे। इसी समय कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णने शल्यकी ओर त्यौरी चढ़ाकर देखा, मानो वे उसे नेत्ररूपी बाणोंसे बींध रहे हों ॥ ९९ ॥

शल्यश्च पुण्डरीकाक्षं तथैवाभिसमैक्षत।
तत्राजयद् वासुदेवः शल्यं नयनसायकैः ॥१००॥

इसी प्रकार शल्यने भी कमलनयन श्रीकृष्णकी ओर दृष्टिपात किया; परंतु वहाँ विजय श्रीकृष्णकी ही हुई। उन्होंने अपने नेत्ररूपी बाणोंसे शल्यको पराजित कर दिया ॥

कर्णं चाप्यजयद् दृष्ट्या कुन्तीपुत्रो धनंजयः।
अथाब्रवीत् सूतपुत्रः शल्यमाभाष्य सस्मितम् ॥१०१॥
यदि पार्थो रणे हन्यादद्य मामिह कर्हिचित्।
किं करिष्यसि संग्रामे शल्य सत्यमथोच्यताम्॥१०२॥

इसी तरह कुन्तीनन्दन धनंजयने भी अपनी दृष्टिद्वारा कर्णको परास्त कर दिया। तदनन्तर कर्णने शल्यसे मुसकराते हुए कहा—'शल्य! सच बताओ, यदि कदाचित् आज रणभूमिमें कुन्तीपुत्र अर्जुन मुझे यहाँ मार डालें तो तुम इस संग्राममें क्या करोगे?' ॥ १०१–१०२ ॥

शल्य उवाच

यदि कर्ण रणे हन्यादद्य त्वां श्वेतवाहनः।
उभावेकरथेनाहं हन्यां माधवपाण्डवौ ॥१०३॥

शल्यने कहा—कर्ण! यदि श्वेतवाहन अर्जुन आज युद्धमें तुझे मार डालें तो मैं एकमात्र रथके द्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंका वध कर डालूँगा ॥ १०३ ॥

संजय उवाच

एवमेव तु गोविन्दमर्जुनः प्रत्यभाषत।
तं प्रहस्याब्रवीत् कृष्णः सत्यं पार्थमिदं वचः ॥१०४॥

संजय कहते हैं—राजन्! इसी प्रकार अर्जुनने भी श्रीकृष्णसे पूछा। तब श्रीकृष्णने हँसकर अर्जुनसे यह सत्य बात कही— ॥ १०४ ॥

पतेद् दिवाकरः स्थानाच्छुष्येदपि महोदधिः।
शैत्यमग्निरियान्न त्वां हन्यात् कर्णो धनंजय ॥१०५॥

'धनंजय! सूर्य अपने स्थानसे गिर जाय, समुद्र सूख जाय और अग्नि सदाके लिये शीतल हो जाय तो भी कर्ण तुम्हें मार नहीं सकता ॥ १०५ ॥

यदि चैतत् कथञ्चित् स्याल्लोकपर्यासनं भवेत्।
हन्यां कर्णं तथा शल्यं बाहुभ्यामेव संयुगे ॥१०६॥

'यदि किसी तरह ऐसा हो जाय तो संसार उलट जायगा। मैं अपनी दोनों भुजाओंसे ही युद्धभूमिमें कर्ण तथा शल्यको मसल डालूँगा' ॥ १०६ ॥

इति कृष्णवचः श्रुत्वा प्रहसन् कपिकेतनः।
अर्जुनः प्रत्युवाचेदं कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ॥१०७॥

भगवान् श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर कपिध्वज अर्जुन हँस पड़े और अनायास ही महान् कर्म करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार बोले— ॥ १०७ ॥

मम तावदपर्याप्तौ कर्णशल्यौ जनार्दन।
सपताकध्वजं कर्णं सशल्यरथवाजिनम् ॥१०८॥
सच्छत्रकवचं चैव सशक्तिशरकार्मुकम्।
द्रष्टास्यद्य रणे कृष्ण शरैश्छिन्नमनेकधा ॥१०९॥

'जनार्दन! ये कर्ण और शल्य तो मेरे ही लिये पर्याप्त नहीं हैं। श्रीकृष्ण! आज रणभूमिमें आप देखियेगा, मैं कवच, छत्र, शक्ति, धनुष, बाण, ध्वजा, पताका, रथ, घोड़े तथा राजा शल्यके सहित कर्णको अपने बाणोंसे टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगा ॥ १०८-१०९ ॥

अद्यैव सरथं साश्वं सशक्तिकवचायुधम्।
संचूर्णितमिवारण्ये पादपं दन्तिना यथा ॥११०॥

'जैसे जंगलमें दन्तार हाथी किसी पेड़को टूक-टूक कर देता है, उसी प्रकार आज ही मैं रथ, घोड़े, शक्ति, कवच तथा अस्त्र-शस्त्रोंसहित कर्णको चूर-चूर कर डालूँगा ॥ ११० ॥

अद्य राधेयभार्याणां वैधव्यं समुपस्थितम्।
ध्रुवं स्वप्नेष्वनिष्टानि ताभिर्दृष्टानि माधव ॥१११॥

'माधव! आज राधापुत्र कर्णकी स्त्रियोंके विधवा होनेका अवसर उपस्थित है। निश्चय ही, उन्होंने स्वप्नमें अनिष्ट वस्तुओंके दर्शन किये हैं ॥ १११ ॥

द्रष्टासि ध्रुवमद्यैव विधवाः कर्णयोषितः।
न हि मे शाम्यते मन्युर्यदनेन पुरा कृतम् ॥११२॥
कृष्णां सभागतां दृष्ट्वा मूढेनादीर्घदर्शिना।
अस्मांस्तथावहसता क्षिपता च पुनः पुनः ॥११३॥

'आप निश्चय ही, आज कर्णकी स्त्रियोंको विधवा हुई देखेंगे। इस अदूरदर्शी मूर्खने सभामें द्रौपदीको आयी देख बारंबार उसकी तथा हमलोगोंकी हँसी उड़ायी और हम सब लोगोंपर आक्षेप किया। ऐसा करते हुए इस कर्णने पहले जो कुकृत्य किया है, उसे याद करके मेरा क्रोध शान्त नहीं होता है ॥ ११२-११३ ॥

अद्य द्रष्टासि गोविन्द कर्णमुन्मथितं मया।
वारणेनेव मत्तेन पुष्पितं जगतीरुहम् ॥११४॥

'गोविन्द ! जैसे मतवाला हाथी फले-फूले वृक्षको तोड़ डालता है, उसी प्रकार आज मैं इस कर्णको मथ डालूँगा। आप यह सब कुछ अपनी आँखों देखेंगे ॥ ११४ ॥

अद्य ता मधुरा वाचः श्रोतासि मधुसूदन।
दिष्ट्या जयसि वार्ष्णेय इति कर्णे निपातिते ॥११५॥

'मधुसूदन ! आज कर्णके मारे जानेपर आपको मधुर बातें सुननेको मिलेंगी। हमलोग कहेंगे—'वृष्णिनन्दन! बड़े सौभाग्यकी बात है कि आज आपकी विजय हुई' ॥ ११५ ॥

अद्याभिमन्युजननीं प्रहृष्टः सान्त्वयिष्यसि।
कुन्तीं पितृष्वसारं च प्रहृष्टः सजनार्दन ॥११६॥

'जनार्दन ! आज आप अत्यन्त प्रसन्न होकर अभिमन्युकी माता सुभद्राको और अपनी बुआ कुन्तीदेवीको सान्त्वना देंगे ॥ ११६ ॥

अद्य बाष्पमुखीं कृष्णां सान्त्वयिष्यसि माधव।
वाग्भिश्चामृतकल्पाभिर्धर्मराजं च पाण्डवम् ॥११७॥

'माधव ! आज आप मुखपर आँसुओंकी धारा बहानेवाली द्रुपदकुमारी कृष्णा तथा पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरको अमृतके समान मधुर वचनोंद्वारा सान्त्वना प्रदान करेंगे' ॥११७॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णार्जुनसमागमे द्वैरथे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्ण और अर्जुनका द्वैरथयुद्धमें समागमविषयक सतासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥८७॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ११½ श्लोक मिलाकर कुल १२८½ श्लोक हैं)

अष्टाशीतितमोऽध्यायः

अर्जुनद्वारा कौरवसेनाका संहार, अश्वत्थामाका दुर्योधनसे संधिके लिये प्रस्ताव और दुर्योधनद्वारा उसकी अस्वीकृति

संजय उवाच

तद् देवनागासुरसिद्धयक्षै-
र्गन्धर्वरक्षोऽप्सरसां च संघैः।
ब्रह्मर्षिराजर्षिसुपर्णजुष्टं
बभौ वियद् विस्मयनीयरूपम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! उस समय आकाशमें देवता, नाग, असुर, सिद्ध, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, अप्सराओंके समुदाय, ब्रह्मर्षि, राजर्षि और गरुड़—ये सब जुटे हुए थे। इनके कारण आकाशका स्वरूप अत्यन्त आश्चर्यमय प्रतीत होता था ॥ १ ॥

नानद्यमानं निनदैर्मनोज्ञै-
र्वादित्रगीतस्तुतिनृत्यहासैः ।
सर्वेऽन्तरिक्षं ददृशुर्मनुष्याः
खस्थाश्च तद् विस्मयनीयरूपम् ॥ २ ॥

नाना प्रकारके मनोरम शब्दों, वाद्यों, गीतों, स्तोत्रों, नृत्यों और हास्य आदिसे आकाश मुखरित हो उठा। उस समय भूतलके मनुष्य और आकाशचारी प्राणी सभी उस आश्चर्यमय अन्तरिक्षकी ओर देख रहे थे ॥ २ ॥

ततः प्रहृष्टाः कुरुपाण्डुयोधा
वादित्रशङ्खस्वनसिंहनादैः।
विनादयन्तो वसुधां दिशश्च
स्वनेन सर्वान् द्विषतो निजघ्नुः॥ ३ ॥

तदनन्तर कौरव और पाण्डवपक्षके समस्त योद्धा बड़े हर्षमें भरकर वाद्य, शङ्खध्वनि, सिंहनाद और कोलाहलसे रणभूमि एवं सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करते हुए समस्त शत्रुओंका संहार करने लगे ॥ ३ ॥

नराश्वमातङ्गरथैः समाकुलं
शरासिशक्त्यृष्टिनिपातदुःसहम्।
अभीरुजुष्टं हतदेहसंकुलं
रणाजिरं लोहितमाबभौ तदा ॥ ४ ॥

उस समय हाथी, अश्व, रथ और पैदल सैनिकोंसे भरा हुआ बाण, खड्ग, शक्ति और ऋष्टि आदि अस्त्र-शस्त्रोंके प्रहारसे दुःसह प्रतीत होनेवाला एवं मृतकोंके शरीरोंसे व्याप्त हुआ वह वीरसेवित समराङ्गण खूनसे लाल दिखायी देने लगा ॥

बभूव युद्धं कुरुपाण्डवानां
यथा सुराणामसुरैः सहाभवत्।
तथा प्रवृत्ते तुमुले सुदारुणे
धनंजयस्याधिरथेश्च सायकैः ॥ ५ ॥
दिशश्च सैन्यं च शितैरजिह्मगैः
परस्परं प्रावृणुतां सुदंशितौ।

जैसे पूर्वकालमें देवताओंका असुरोंके साथ संग्राम हुआ था, उसी प्रकार पाण्डवोंका कौरवोंके साथ युद्ध होने लगा। अर्जुन और कर्णके बाणोंसे वह अत्यन्त दारुण तुमुल युद्ध आरम्भ होनेपर वे दोनों कवचधारी वीर अपने पैने बाणोंसे परस्पर सम्पूर्ण दिशाओं तथा सेनाको आच्छादित करने लगे ॥ ५½ ॥

ततस्त्वदीयाश्च परे च सायकैः
कृतेऽन्धकारे ददृशुर्न किंचन ॥ ६ ॥
भयातुरा एकरथौ समाश्रयं-
स्ततोऽभवत् त्वद्भुतमेव सर्वतः।

तत्पश्चात् आपके और शत्रुपक्षके सैनिक जब बाणोंसे फैले हुए अन्धकारमें कुछ भी देख न सके, तब भयसे आतुर हो उन दोनों प्रधान रथियोंकी शरणमें आ गये। फिर तो चारों ओर अद्भुत युद्ध होने लगा ॥ ६½ ॥

ततोऽस्त्रमस्त्रेण परस्परं तौ
विधूय वाताविव पूर्वपश्चिमौ ॥ ७ ॥

घनान्धकारे वितते तमोनुदौ
यथोदितौ तद्वदतीव रेजतुः ।

तदनन्तर जैसे पूर्व और पश्चिमकी हवाएँ एक दूसरीको दबाती हैं, उसी प्रकार वे दोनों वीर एक दूसरेके अस्त्रोंको अपने अस्त्रोंद्वारा नष्ट करके फैले हुए प्रगाढ़ अन्धकारमें उदित हुए सूर्य और चन्द्रमाके समान अत्यन्त प्रकाशित होने लगे ॥ ७½ ॥

न चाभिसर्तव्यमिति प्रचोदिताः
परे त्वदीयाश्च तथावतस्थिरे ॥ ८ ॥
महारथौ तौ परिवार्य सर्वतः
सुरासुराः शम्बरवासवाविव ।

'किसीको युद्धसे मुँह मोड़कर भागना नहीं चाहिये' इस नियमसे प्रेरित होकर आपके और शत्रुपक्षके सैनिक उन दोनों महारथियोंको चारों ओरसे घेरकर उसी प्रकार युद्धमें डटे रहे, जैसे पूर्वकालमें देवता और असुर, इन्द्र और शम्बरासुरको घेरकर खड़े हुए थे ॥ ८½ ॥

मृदङ्गभेरीपणवानकस्वनैः
ससिंहनादैर्नदतुर्नरोत्तमौ ॥ ९ ॥
शशाङ्कसूर्याविव मेघनिःस्वनै-
र्विरेजतुस्तौ पुरुषर्षभौ तदा ।

दोनों दलोंमें होती हुई मृदङ्ग, भेरी, पणव और आनक आदि बाद्योंकी ध्वनिके साथ वे दोनों नरश्रेष्ठ जोर-जोरसे सिंहनाद कर रहे थे, उस समय वे दोनों पुरुषरत्न मेघों-की गम्भीर गर्जनाके साथ उदित हुए चन्द्रमा और सूर्यके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ ९½ ॥

महाधनुर्मण्डलमध्यगावुभौ
सुवर्चसौ बाणसहस्रदीधिती ॥ १० ॥
दिधक्षमाणौ सचराचरं जगद्-
युगान्तसूर्याविव दुःसहौ रणे ।

रणभूमिमें वे दोनों वीर चराचर जगत्को दग्ध करनेकी इच्छासे प्रकट हुए प्रलयकालके दो सूर्योंके समान शत्रुओंके लिये दुःसह हो रहे थे। कर्ण और अर्जुनरूप वे दोनों सूर्य अपने विशाल धनुषरूपी मण्डलके मध्यमें प्रकाशित होते थे। सहस्रों बाण ही उनकी किरण थे और वे दोनों ही महान् तेजसे सम्पन्न दिखायी देते थे ॥ १०½ ॥

उभावजेयावहितान्तकावुभा-
वुभौ जिघांसू कृतिनौ परस्परम् ॥ ११ ॥
महाहवे वीतभयौ समीयतु-
र्महेन्द्रजम्भाविव कर्णपाण्डवौ ।

दोनों ही अजेय और शत्रुओंका विनाश करनेवाले थे। दोनों ही अस्त्र-शस्त्रोंके विद्वान् और एक दूसरेके वधकी इच्छा रखनेवाले थे। कर्ण और अर्जुन दोनों वीर इन्द्र और जम्भासुरके समान उस महासमरमें निर्भय विचरते थे ॥ ११½ ॥

ततो महास्त्राणि महाधनुर्धरौ
विमुञ्चमानाविषुभिर्भयानकैः ॥ १२ ॥
नराश्वनागानमितान् निजघ्नतुः
परस्परं चापि महारथौ नृप ।

नरेश्वर ! वे महाधनुर्धर और महारथी वीर महान् अस्त्रोंका प्रयोग करते हुए अपने भयानक बाणोंद्वारा असंख्य मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंका संहार करते और आपसमें भी एक दूसरेको चोट पहुँचाते थे ॥ १२½ ॥

ततो विसस्रुः पुनरर्दिता नरा
नरोत्तमाभ्यां कुरुपाण्डवाश्रयाः ॥ १३ ॥
सनागपत्त्यश्वरथा दिशो दश
तथा यथा सिंहहता वनौकसः ।

जैसे सिंहके द्वारा घायल किये हुए जंगली पशु सब ओर भागने लगते हैं, उसी प्रकार उन नरश्रेष्ठ वीरोंके द्वारा बाणों-से पीड़ित किये हुए कौरव तथा पाण्डवसैनिक हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंसहित दसों दिशाओंमें भाग खड़े हुए ॥ १३½ ॥

ततस्तु दुर्योधनभोजसौबलाः
कृपेण शारद्वतसूनुना सह ॥ १४ ॥
महारथाः पञ्च धनंजयाच्युतौ
शरैः शरीरार्तिकरैरताडयन् ।

महाराज ! तदनन्तर दुर्योधन, कृतवर्मा, शकुनि, शरद्वान्-के पुत्र कृपाचार्य और कर्ण—ये पाँच महारथी शरीरको पीड़ा देनेवाले बाणोंद्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुनको घायल करने लगे ॥ १४½ ॥

धनूंषि तेषामिषुधीन् ध्वजान् हयान्
रथांश्च सूतांश्च धनंजयः शरैः ॥ १५ ॥
समं प्रमथ्याशु परान् समन्ततः
शरोत्तमैर्द्वादशभिश्च सूतजम् ।

यह देख अर्जुनने उनके धनुष, तरकस, ध्वज, घोड़े, रथ और सारथि—इन सबको अपने बाणोंद्वारा एक साथ ही प्रमथित करके चारों ओर खड़े हुए शत्रुओंको शीघ्र ही बींध डाला और सूतपुत्र कर्णपर भी बारह बाणोंका प्रहार किया १५½

अथाभ्यधावंस्त्वरिताः शतं रथाः
शतं गजाश्चार्जुनमाततायिनः ॥ १६ ॥
शकास्तुषारा यवनाश्च सादिनः
सहैव काम्बोजवरैर्जिघांसवः ।

तदनन्तर वहाँ सैकड़ों रथी और सैकड़ों हाथीसवार आततायी बनकर अर्जुनको मार डालनेकी इच्छासे दौड़े आये, उनके साथ शक, तुषार, यवन तथा काम्बोजदेशोंके अच्छे घुड़सवार भी थे ॥ १६½ ॥

वरायुधान् पाणिगतैः शरैः सह
क्षुरैर्न्यकृन्तत् प्रपतन् शिरांसि च ॥ १७ ॥
हयांश्च नागांश्च रथांश्च युध्यतो
धनंजयः शत्रुगणान् क्षितौ क्षिणोत् ।

परंतु अर्जुनने अपने हाथके बाणों और क्षुरोंद्वारा उन सबके उत्तम-उत्तम अस्त्रोंको काट डाला। शत्रुओंके मस्तक कट-कटकर गिरने लगे। अर्जुनने विपक्षियोंके घोड़ों, हाथियों और रथोंको तथा युद्धमें तत्पर हुए उन शत्रुओंको भी पृथ्वीपर काट गिराया ॥ १७½ ॥

ततोऽन्तरिक्षे सुरतूर्यनिःस्वनाः
ससाधुवादा हृषितैः समीरिताः ॥ १८ ॥
निपेतुरप्युत्तमपुष्पवृष्टयः
सुगन्धिगन्धाः पवनेरिताः शुभाः।

तत्पश्चात् आकाशमें हर्षसे उल्लसित हुए दर्शकोंद्वारा साधुवाद देनेके साथ-साथ दिव्य बाजे भी बजाये जाने लगे। वायुकी प्रेरणासे वहाँ सुन्दर सुगन्धित और उत्तम फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥ १८½ ॥

तदद्भुतं देवमनुष्यसाक्षिकं
समीक्ष्य भूतानि विसिस्मियुस्तदा॥ १९॥
तवात्मजः सूतसुतश्च न व्यथां
न विस्मयं जग्मतुरेकनिश्चयौ।

देवताओं और मनुष्योंके साक्षित्वमें होनेवाले उस अद्भुत युद्धको देखकर समस्त प्राणी उस समय आश्चर्यसे चकित हो उठे; परंतु आपका पुत्र दुर्योधन और सूतपुत्र कर्ण—ये दोनों एक निश्चयपर पहुँच चुके थे; अतः इनके मनमें न तो व्यथा हुई और न ये विस्मयको ही प्राप्त हुए ॥ १९½ ॥

अथाब्रवीद् द्रोणसुतस्तवात्मजं
करं करेण प्रतिपीड्य सान्त्वयन् ॥ २० ॥
प्रसीद दुर्योधन शाम्य पाण्डवै-
रलं विरोधेन धिगस्तु विग्रहम्।
हतो गुरुर्ब्रह्मसमो महास्त्रवित्
तथैव भीष्मप्रमुखा महारथाः ॥ २१ ॥

तदनन्तर द्रोणकुमार अश्वत्थामाने दुर्योधनका हाथ अपने हाथसे दबाकर उसे सान्त्वना देते हुए कहा—'दुर्योधन! अब प्रसन्न हो जाओ। पाण्डवोंसे संधि कर लो। विरोधसे कोई लाभ नहीं है। आपसके इस झगड़ेको धिक्कार है! तुम्हारे गुरुदेव अस्त्रविद्याके महान् पण्डित थे। साक्षात् ब्रह्माजीके समान थे तो भी इस युद्धमें मारे गये। यही दशा भीष्म आदि महारथियोंकी भी हुई है ॥ २०-२१ ॥

अहं त्ववध्यो मम चापि मातुलः
प्रशाधि राज्यं सह पाण्डवैश्चिरम्।
धनंजयः शाम्यति वारितो मया
जनार्दनो नैव विरोधमिच्छति ॥ २२ ॥

'मैं और मेरे मामा कृपाचार्य तो अवध्य हैं (इसीलिये अबतक बचे हुए हैं)। अतः अब तुम पाण्डवोंके साथ मिल-कर चिरकालतक राज्यशासन करो। अर्जुन मेरे मना करने-पर शान्त हो जायँगे। श्रीकृष्ण भी तुमलोगोंमें विरोध नहीं चाहते हैं ॥ २२ ॥

युधिष्ठिरो भूतहिते रतः सदा
वृकोदरस्तद्वशगस्तथा यमौ।
त्वया तु पार्थैश्च कृते च संविदे
प्रजाः शिवं प्राप्नुयुरिच्छया तव॥ २३ ॥
व्रजन्तु शेषाः स्वपुराणि बान्धवा
निवृत्तयुद्धाश्च भवन्तु सैनिकाः।
न चेद् वचः श्रोष्यसि मे नराधिप
ध्रुवं प्रतप्तासि हतोऽरिभिर्युधि ॥ २४ ॥

'युधिष्ठिर तो सभी प्राणियोंके हितमें ही लगे रहते हैं। अतः वे भी मेरी बात मान लेंगे। बाकी रहे भीमसेन और नकुल-सहदेव, सो ये भी धर्मराजके अधीन हैं; (अतः उनकी इच्छाके विरुद्ध कुछ नहीं करेंगे) इस प्रकार पाण्डवोंके साथ तुम्हारी संधि हो जानेपर सारी प्रजाका कल्याण होगा। फिर तुम्हारी इच्छासे शेष सगे-सम्बन्धी भाई-बन्धु अपने-अपने नगरको लौट जायँ और समस्त सैनिकोंको युद्धसे छुट्टी मिल जाय। नरेश्वर! यदि मेरी बात नहीं सुनोगे तो निश्चय ही युद्धमें शत्रुओंके हाथसे मारे जाओगे और उस समय तुम्हें बड़ा पश्चात्ताप होगा ॥ २३-२४ ॥

(वृद्धं पितरमालोक्य गान्धारीं च यशस्विनीम्।
कृपालुर्धर्मराजो हि याचितः शममेष्यति ॥

'बूढ़े पिता धृतराष्ट्र और यशस्विनी माता गान्धारीकी ओर देखकर दयालु धर्मराज युधिष्ठिर मेरे अनुरोध करनेपर भी संधि कर लेंगे ॥

यथोचितं च वै राज्यमनुशास्यति ते प्रभुः।
विपश्चित् सुमतिर्धीरः सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥

'वे सामर्थ्यशाली, विद्वान्, उत्तम बुद्धिसे युक्त, धैर्यवान् तथा सम्पूर्ण शास्त्रोंके तत्त्वको जाननेवाले हैं; अतः तुम्हारे लिये राज्यका जितना भाग उचित है, उसपर शासन करनेके लिये वे तुम्हें स्वयं ही आज्ञा दे देंगे ॥

वैरं नेष्यति धर्मात्मा स्वजने नास्त्यतिक्रमः।
न विग्रहमतिः कृष्णः स्वजने प्रतिनन्दति ॥

'धर्मात्मा युधिष्ठिर वैर दूर कर देंगे; क्योंकि आत्मीयजन-से कोई भूल हो जाय तो उसे अक्षम्य अपराध नहीं माना जाता। श्रीकृष्ण भी यह नहीं चाहते कि आपसमें कलह हो, वे स्वज-नोंपर सदा संतुष्ट रहते हैं ॥

भीमसेनार्जुनौ चोभौ माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ।
वासुदेवमते चैव पाण्डवस्य च धीमतः ॥
स्थास्यन्ति पुरुषव्याघ्रास्तयोर्वचनगौरवात्।

'भीमसेन, अर्जुन और दोनों भाई माद्रीकुमार पाण्डुपुत्र नकुल-सहदेव—ये सब लोग भगवान् श्रीकृष्ण तथा बुद्धिमान् युधिष्ठिरकी रायसे चलते हैं; अतः ये पुरुषसिंह वीर उन दोनोंके आदेशका गौरव रखते हुए युद्धसे निवृत्त हो जायँगे ॥

रक्ष दुर्योधनात्मानमात्मा सर्वस्य भाजनम् ॥
जीवने यत्नमातिष्ठ जीवन् भद्राणि पश्यति।

'दुर्योधन ! तुम स्वयं ही अपनी रक्षा करो। आत्मा ही सब सुखोंका भाजन है। तुम जीवन-रक्षाके लिये प्रयत्न करो। जीवित रहनेवाला पुरुष ही कल्याणका दर्शन करता है ॥

राज्यं श्रीश्चैव भद्रं ते जीवमाने तु कल्पते ॥
मृतस्य खलु कौरव्य नैव राज्यं कुतः सुखम् ।

'तुम्हारा कल्याण हो; तुम जीवित रहोगे, तभी तुम्हें राज्य और लक्ष्मीकी प्राप्ति हो सकती है। कुरुनन्दन ! मरे हुएको राज्य नहीं मिलता, फिर सुख कैसे प्राप्त हो सकता है ? ॥

लोकवृत्तमिदं वृत्तं प्रवृत्तं पश्य भारत ॥
शाम्य त्वं पाण्डवैः सार्धं शेषं कुरुकुलस्य च ।

'भारत ! लोकमें घटित होनेवाले इस प्रचलित व्यवहारकी ओर दृष्टिपात करो; पाण्डवोंके साथ संधि कर लो और कौरवकुलको शेष रहने दो ॥

मा भूत् स कालः कौरव्य यदाहमहितं वचः ॥
ब्रूयां कामं महाबाहो मावमंस्था वचो मम ।

'कुरुनन्दन ! ऐसा समय कभी न आवे जब कि मैं इच्छानुसार तुमसे कोई अहितकर बात कहूँ; अतः महाबाहो! तुम मेरी बातका अनादर न करो ॥

धर्मिष्ठमिदमत्यर्थं राज्ञश्चैव कुलस्य च ॥
एतद्धि परमं श्रेयः कुरुवंशस्य वृद्धये ।

'मेरा यह कथन धर्मके अनुकूल तथा राजा और राजकुलके लिये अत्यन्त हितकर है; यह कौरववंशकी वृद्धिके लिये परम कल्याणकारी है ॥

प्रजाहितं च गान्धारे कुलस्य च सुखावहम् ॥
पथ्यमायतिसंयुक्तं कर्णोऽप्यर्जुनमाहवे ।
न जेष्यति नरव्याघ्रमिति मे निश्चिता मतिः ॥
रोचतां ते नरश्रेष्ठ ममैतद् वचनं शुभम् ।
अतोऽन्यथा हि राजेन्द्र विनाशः सुमहान् भवेत् ॥)

'गान्धारीनन्दन ! मेरा यह वचन प्रजाजनोंके लिये हितकर, इस कुलके लिये सुखदायक, लाभकारी तथा भविष्यमें भी मङ्गलकारक है। नरश्रेष्ठ ! मेरी यह निश्चित धारणा है कि कर्ण नरव्याघ्र अर्जुनको कदापि जीत न सकेगा; अतः मेरा यह शुभ वचन तुम्हें पसंद आना चाहिये । राजेन्द्र ! यदि ऐसा नहीं हुआ तो बड़ा भारी विनाश होगा ॥

इदं च दृष्टं जगता सह त्वया
कृतं यदेकेन किरीटमालिना ।
यथा न कुर्याद् बलभिन्न चान्तको
न चापि धाता भगवान् न यक्षराट् ॥ २५ ॥

'किरीटधारी अर्जुनने अकेले जो पराक्रम किया है, इसे सारे संसारके साथ तुमने प्रत्यक्ष देख लिया है। ऐसा पराक्रम न तो इन्द्र कर सकते हैं और न यमराज। न धाता कर सकते हैं और न भगवान् यक्षराज कुबेर ॥ २५ ॥

अतोऽपि भूयान् स्वगुणैर्धनंजयो
न चातिवर्तिष्यति मे वचोऽखिलम् ।
तवानुयात्रां च सदा करिष्यति
प्रसीद राजेन्द्र शमं त्वमाप्नुहि ॥ २६ ॥

'यद्यपि अर्जुन अपने गुणोंद्वारा इससे भी बहुत बढ़े-चढ़े हैं, तथापि मुझे विश्वास है कि वे मेरी कही हुई इन सारी बातोंको कदापि नहीं टालेंगे । यही नहीं, वे सदा तुम्हारा अनुसरण करेंगे; इसलिये राजेन्द्र ! तुम प्रसन्न होओ और संधि कर लो २६ ॥

ममापि मानः परमः सदा त्वयि
ब्रवीम्यतस्त्वां परमाच्च सौहृदात् ।
निवारयिष्यामि च कर्णमप्यहं
यदा भवान् सप्रणयो भविष्यति ॥ २७ ॥

'तुम्हारे प्रति मेरे मनमें भी सदा बड़े आदरका भाव रहा है। हम दोनोंकी जो घनिष्ठ मित्रता है, उसीके कारण मैं तुमसे यह प्रस्ताव करता हूँ। यदि तुम प्रेमपूर्वक राजी हो जाओगे तो मैं कर्णको भी युद्धसे रोक दूँगा ॥ २७ ॥

वदन्ति मित्रं सहजं विचक्षणा-
स्तथैव साम्ना च धनेन चार्जितम् ।
प्रतापतश्चोपनतं चतुर्विधं
तदस्ति सर्वं तव पाण्डवेषु ॥ २८ ॥

'विद्वान् पुरुष चार प्रकारके मित्र बतलाते हैं। एक सहज मित्र होते हैं (जिनके साथ स्वाभाविक मैत्री होती है)। दूसरे हैं संधि करके बनाये हुए मित्र। तीसरे वे हैं जो धन देकर अपनाये गये हैं। जो किसीके प्रबल प्रतापसे प्रभावित हो स्वतः शरणमें आ जाते हैं, वे चौथे प्रकारके मित्र हैं। पाण्डवोंके साथ तुम्हारी सभी प्रकारकी मित्रता सम्भव है ॥

निसर्गतस्ते तव वीर बान्धवाः
पुनश्च साम्ना समवाप्नुहि प्रभो ।
त्वयि प्रसन्ने यदि मित्रतां गते
हितं कृतं स्याज्जगतस्त्वयातुलम् ॥ २९ ॥

'वीर ! एक तो वे तुम्हारे जन्मजात भाई हैं; अतः सहज मित्र हैं। प्रभो ! फिर तुम संधि करके उन्हें अपना मित्र बना लो। यदि तुम प्रसन्नतापूर्वक पाण्डवोंसे मित्रता स्वीकार कर लो तो तुम्हारेद्वारा संसारका अनुपम हित हो सकता है' ॥ २९ ॥

स एवमुक्तः सुहृदा वचो हितं
विचिन्त्य निःश्वस्य च दुर्मनाब्रवीत् ।
यथा भवानाह सखे तथैव त-
न्ममापि विज्ञापयतो वचः शृणु ॥ ३० ॥

सुहृद् अश्वत्थामाने जब इस प्रकार हितकी बात कही, तब दुर्योधन उसपर विचार करके लंबी साँस खींचकर मन-ही-मन दुखी हो इस प्रकार बोला—'सखे ! तुम जैसा कहते हो, वह सब ठीक है; परंतु इस विषयमें कुछ मैं भी निवेदन कर रहा हूँ, अतः मेरी बात भी सुन लो ॥ ३० ॥

निहत्य दुःशासनमुक्तवान् वचः
प्रसह्य शार्दूलवदेष दुर्मतिः।
वृकोदरस्तद्धृदये मम स्थितं
न तत् परोक्षं भवतः कुतः शमः॥ ३१॥

'इस दुर्बुद्धि भीमसेनने सिंहके समान हठपूर्वक दुःशासनका वध करके जो बात कही थी, वह तुमसे छिपी नहीं है। वह इस समय भी मेरे हृदयमें स्थित होकर पीड़ा दे रही है। ऐसी दशामें कैसे संधि हो सकती है ?॥ ३१॥

न चापि कर्णं प्रसहेद् रणेऽर्जुनो
महागिरिं मेरुमिवोग्रमारुतः।
न चाश्वसिष्यन्ति पृथात्मजा मयि
प्रसह्य वैरं बहुशो विचिन्त्य॥ ३२॥

'इसके सिवा भयंकर वायु जैसे महापर्वत मेरुका सामना नहीं कर सकती, उसी प्रकार अर्जुन इस रणभूमिमें कर्णका वेग नहीं सह सकते। हमने हठपूर्वक बारंबार जो वैर किया है, उसे सोचकर कुन्तीके पुत्र मुझपर विश्वास भी नहीं करेंगे॥

न चापि कर्णं गुरुपुत्र संयुगा-
दुपारमेत्यर्हसि वक्तुमच्युत।
श्रमेण युक्तो महताद्य फाल्गुन-
स्तमेष कर्णः प्रसभं हनिष्यति॥ ३३॥

'अपनी मर्यादा न छोड़नेवाले गुरुपुत्र ! तुम्हें कर्णसे युद्ध बंद करनेके लिये नहीं कहना चाहिये; क्योंकि इस समय अर्जुन महान् परिश्रमसे थक गये हैं; अतः अब कर्ण उन्हें बलपूर्वक मार डालेगा'॥ ३३॥

तमेवमुक्त्वाप्यनुनीय चासकृत्
तवात्मजः स्वाननुशास्ति सैनिकान्।
विनिघ्नताभिद्रवताहितान् मम
सबाणहस्ताः किमु जोषमासत॥ ३४॥

अश्वत्थामासे ऐसा कहकर बारंबार अनुनय-विनयके द्वारा उसे प्रसन्न करके आपके पुत्रने अपने सैनिकोंको आदेश देते हुए कहा—'अरे ! तुमलोग हाथोंमें बाण लिये चुपचाप बैठे क्यों हो ? मेरे शत्रुओंपर टूट पड़ो और उन्हें मार डालो'॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अश्वत्थामवाक्येऽष्टाशीति तमोऽध्यायः॥ ८८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें अश्वत्थामाका वचनविषयक अठासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८८॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १२ श्लोक मिलाकर कुल ४६ श्लोक हैं)

एकोननवतितमोऽध्यायः

कर्ण और अर्जुनका भयंकर युद्ध और कौरव वीरोंका पलायन

संजय उवाच

तौ शङ्खभेरीनिनदे समृद्धे
समीयतुः श्वेतहयौ नराग्र्यौ।
वैकर्तनः सूतपुत्रोऽर्जुनश्च
दुर्मन्त्रिते तव पुत्रस्य राजन्॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर आपकी कुमन्त्रणाके फलस्वरूप जब वहाँ शङ्ख और भेरियोंकी गम्भीर ध्वनि होने लगी, उस समय वहाँ श्वेत घोड़ोंवाले दोनों नरश्रेष्ठ वैकर्तन कर्ण और अर्जुन युद्धके लिये एक दूसरेकी ओर बढ़े॥ १॥

(आशीविषावग्निमिवापधूमं
वैरं मुखाभ्यामभिनिःश्वसन्तौ।
यशस्विनौ जज्वलतुर्मृधे तदा
घृतावसिक्ताविव हव्यवाहौ॥)

वे दोनों यशस्वी वीर उस समय दो विषधर सर्पोंके समान लंबी साँस खींचकर मानो अपने मुखोंसे धूमरहित अग्निके सदृश वैरभाव प्रकट कर रहे थे। वे घीकी आहुतिसे प्रज्वलित हुई दो अग्नियोंकी भाँति युद्धभूमिमें देदीप्यमान होने लगे॥

यथा गजौ हैमवतौ प्रभिन्नौ
प्रवृद्धदन्ताविव वासितार्थे।
तथा समाजग्मतुरुग्रवीर्यौ
धनंजयश्चाधिरथिश्च वीरौ॥ २॥

जैसे मदकी धारा बहानेवाले हिमाचलप्रदेशके बड़े-बड़े दाँतोंवाले दो हाथी किसी हथिनीके लिये लड़ रहे हों, उसी प्रकार भयंकर पराक्रमी वीर अर्जुन और कर्ण युद्धके लिये एक-दूसरेके सामने आये॥ २॥

बलाहकेनेव महाबलाहको
यदृच्छया वा गिरिणा यथा गिरिः।
तथा धनुर्ज्यातलनेमिनिस्वनैः
समीयतुस्ताविषुवर्षवर्षिणौ॥ ३॥

जैसे महान् मेघ किसी दूसरे मेघके साथ अथवा दैवेच्छासे एक पर्वत दूसरे पर्वतके साथ टक्कर लेनेके लिये उद्यत हो, उसी प्रकार धनुषकी प्रत्यञ्चा, हथेली तथा रथके पहियोंकी गम्भीर ध्वनिके साथ बाणोंकी वर्षा करते हुए वे दोनों वीर एक दूसरेके सामने आये॥ ३॥

प्रवृद्धशृङ्गद्रुमवीरुदोषधी
प्रवृद्धनानाविधनिर्झरौकसौ।
यथाचलौ वा चलितौ महाबलौ
तथा महास्त्रैरितरेतरं हतः॥ ४॥

जिनके शिखर, वृक्ष, लता-गुल्म और ओषधि सभी विशाल एवं बढ़े हुए हों तथा जो नाना प्रकारके बड़े-बड़े झरनोंके उद्गमस्थान हों, ऐसे दो पर्वतोंके समान वे महाबली कर्ण और अर्जुन आगे बढ़कर अपने महान् अस्त्रोंद्वारा एक-दूसरेपर आघात करने लगे॥ ४॥

स संनिपातस्तु तयोर्महानभूत्
सुरेशवैरोचनयोर्यथा पुरा।
शरैर्विनुन्नाङ्गनियन्तृवाहयोः
सुदुःसहोऽन्यैः कटुशोणितोदकः॥ ५ ॥

उन दोनोंका वह संग्राम वैसा ही महान् था, जैसा कि पूर्वकालमें इन्द्र और बलिका युद्ध हुआ था। बाणोंके आघातसे उन दोनोंके शरीर, सारथि और घोड़े क्षत-विक्षत हो गये थे और वहाँ कटु रक्तरूपी जलका प्रवाह बह रहा था। वह युद्ध दूसरोंके लिये अत्यन्त दुःसह था॥ ५॥

प्रभूतपद्मोत्पलमत्स्यकच्छपौ
महाह्रदौ पक्षिगणैरिवावृतौ।
सुसंनिकृष्टावनिलोद्धतौ यथा
तथा रथौ तौ ध्वजिनौ समीयतुः॥ ६ ॥

जैसे प्रचुर पद्म, उत्पल, मत्स्य और कच्छपोंसे युक्त तथा पक्षिसमूहोंसे आवृत दो अत्यन्त निकटवर्ती विशाल सरोवर वायुसे संचालित हो परस्पर मिल जायँ, उसी प्रकार ध्वजोंसे सुशोभित उनके वे दोनों रथ एक दूसरेसे भिड़ गये थे॥

उभौ महेन्द्रस्य समानविक्रमा-
वुभौ महेन्द्रप्रतिमौ महारथौ।
महेन्द्रवज्रप्रतिमैश्च सायकै-
र्महेन्द्रवृत्राविव सम्प्रजघ्नतुः॥ ७ ॥

वे दोनों वीर इन्द्रके समान पराक्रमी और उन्हींके सदृश महारथी थे। इन्द्रके वज्रतुल्य बाणोंसे इन्द्र और वृत्रासुरके समान वे एक दूसरेको चोट पहुँचाने लगे॥ ७॥

सनागपत्त्यश्वरथे उभे बले
विचित्रवर्माभरणाम्बरायुधे।
चकम्पतुर्विस्मयनीयरूपे
वियद्गताश्चार्जुनकर्णसंयुगे॥ ८ ॥

विचित्र कवच, आभूषण, वस्त्र और आयुध धारण करनेवाली, हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंसहित उभय पक्षकी चतुरङ्गिणी सेनाएँ अर्जुन और कर्णके उस युद्धमें भयके कारण आश्चर्यजनक-रूपसे काँपने लगीं तथा आकाशवर्ती प्राणी भी भयसे थर्रा उठे॥ ८॥

भुजाः सवस्त्राङ्गुलयः समुच्छ्रिताः
ससिंहनादैर्हृषितैर्दिदृक्षुभिः।
यदर्जुनो मत्त इव द्विपो द्विपं
समभ्ययादाधिरथिं जिघांसया॥ ९ ॥

जैसे मतवाला हाथी किसी हाथीपर आक्रमण करता है, उसी प्रकार अर्जुन जब कर्णके वधकी इच्छासे उसपर धावा करने लगे, उस समय दर्शकोंने आनन्दित हो सिंहनाद करते हुए अपने हाथ ऊपर उठा दिये और अङ्गुलियोंमें वस्त्र लेकर उन्हें हिलाना आरम्भ किया॥ ९॥

(ततः कुरूणामथ सोमकानां
शब्दो महान् प्रादुरभूत् समन्तात्।
यदार्जुनं सूतपुत्रोऽपराह्णे
महाहवे शैलमिवाम्बुदोऽर्छत्॥
तदैव चासीद् रथयोः समागमो
महारणे शोणितमांसकर्दमे॥)

जब महासमरमें अपराह्नके समय पर्वतपर जानेवाले मेघके समान सूतपुत्र कर्णने अर्जुनपर आक्रमण किया, उस समय कौरवों और सोमकोंका महान् कोलाहल सब ओर प्रकट होने लगा। उसी समय उन दोनों रथोंका संघर्ष आरम्भ हुआ। उस महायुद्धमें रक्त और मांसकी कीच जम गयी थी॥

उदक्रोशन् सोमकास्तत्र पार्थं
पुरःसराश्चार्जुन भिन्धि कर्णम्।
छिन्ध्यस्य मूर्धानमलं चिरेण
श्रद्धां च राज्याद् धृतराष्ट्रसूनोः॥ १० ॥

उस समय सोमकोंने आगे बढ़कर वहाँ कुन्तीकुमारसे पुकार-पुकारकर कहा—'अर्जुन! तुम कर्णको मार डालो। अब देर करनेकी आवश्यकता नहीं है। कर्णके मस्तक और दुर्योधनकी राज्य-प्राप्तिकी आशा दोनोंको एक साथ ही काट डालो'॥

तथास्माकं बहवस्तत्र योधाः
कर्णं तथा याहि याहीत्यवोचन्।
जह्यर्जुनं कर्ण शरैः सुतीक्ष्णैः
पुनर्वनं यान्तु चिराय पार्थाः॥ ११ ॥

इसी प्रकार हमारे पक्षके बहुत-से योद्धा कर्णको प्रेरित करते हुए बोले—'कर्ण! आगे बढ़ो, आगे बढ़ो। अपने पैने बाणोंसे अर्जुनको मार डालो, जिससे कुन्तीके सभी पुत्र पुनः दीर्घकालके लिये वनमें चले जायँ'॥ ११॥

ततः कर्णः प्रथमं तत्र पार्थं
महेषुभिर्दशभिः प्रत्यविध्यत्।
तं चार्जुनः प्रत्यविद्धयच्छिताग्रैः
कक्षान्तरे दशभिः सम्प्रहस्य॥ १२ ॥

तदनन्तर वहाँ कर्णने पहले दस विशाल बाणोंद्वारा अर्जुनको बींध डाला, तब अर्जुनने भी हँसकर तीखी धारवाले दस बाणोंसे कर्णकी काँखमें प्रहार किया॥ १२॥

परस्परं तौ विशिखैः सुपुङ्खै-
स्ततक्षतुः सूतपुत्रोऽर्जुनश्च।
परस्परं तौ विभिदुर्विमर्दे
सुभीममभ्यापततुश्च हृष्टौ॥ १३ ॥

सूतपुत्र कर्ण और अर्जुन दोनों उस युद्धमें अत्यन्त हर्षमें भरकर सुन्दर पङ्खवाले बाणोंद्वारा एक दूसरेको क्षत-विक्षत करने लगे। वे परस्पर क्षति पहुँचाते और भयानक आक्रमण करते थे॥ १३॥

ततोऽर्जुनः प्रासृजदुग्रधन्वा
भुजावुभौ गाण्डिवं चानुमृज्य।

नाराचनालीकवराहकर्णान्
क्षुरांस्तथा साञ्जलिकार्धचन्द्रान् ॥ १४ ॥

तत्पश्चात् भयंकर धनुषवाले अर्जुनने अपनी दोनों भुजाओं तथा गाण्डीव धनुषको पोंछकर नाराच, नालीक, वराहकर्ण, क्षुर, अञ्जलिक तथा अर्धचन्द्र आदि बाणोंका प्रहार आरम्भ किया ॥ १४ ॥

ते सर्वतः समकीर्यन्त राजन्
पार्थेषवः कर्णरथं विशन्तः।
अवाङ्मुखाः पक्षिगणा दिनान्ते
विशन्ति केतार्थमिवाशु वृक्षम् ॥ १५ ॥

राजन्! वे अर्जुनके बाण कर्णके रथमें घुसकर सब ओर बिखर जाते थे। ठीक उसी तरह, जैसे संध्याके समय पक्षियों-के झुंड बसेरा लेनेके लिये नीचे मुख किये शीघ्र ही किसी वृक्षपर जा बैठते हैं ॥ १५ ॥

यानर्जुनः सभ्रुकुटीकटाक्षं
कर्णाय राजन्नसृजज्जितारिः।
तान् सायकैर्ग्रसते सूतपुत्रः
क्षिप्तान् क्षिप्तान् पाण्डवस्याशु संघान् ॥१६॥

नरेश्वर! शत्रुविजयी अर्जुन भौंहें टेढ़ी करके कटाक्ष-पूर्वक देखते हुए कर्णपर जिन-जिन बाणोंका प्रहार करते थे, पाण्डुपुत्र अर्जुनके चलाये हुए उन सभी बाण-समूहोंको सूतपुत्र कर्ण शीघ्र ही नष्ट कर देता था ॥ १६ ॥

ततोऽस्त्रमाग्नेयममित्रसाधनं
मुमोच कर्णाय महेन्द्रसूनुः।
भूम्यन्तरिक्षे च दिशोऽर्कमार्गं
प्रावृत्य देहोऽस्य बभूव दीप्तः ॥ १७ ॥

तब इन्द्रकुमार अर्जुनने कर्णपर शत्रुनाशक आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया। उस आग्नेयास्त्रका स्वरूप पृथ्वी, आकाश, दिशा तथा सूर्यके मार्गको व्याप्त करके वहाँ प्रज्वलित हो उठा। ॥ १७ ॥

योधाश्च सर्वे ज्वलिताम्बरा भृशं
प्रदुद्रुवुस्तत्र विदग्धवस्त्राः।
शब्दश्च घोरोऽतिबभूव तत्र
यथा वने वेणुवनस्य दह्यतः ॥ १८ ॥

इससे वहाँ समस्त योद्धाओंके वस्त्र जलने लगे। कपड़े जल जानेसे वे सब-के-सब वहाँसे भाग चले। जैसे जंगलके बीच बाँसके वनमें आग लगनेपर जोर-जोरसे चटकनेकी आवाज होती है, उसी प्रकार आगकी लपटमें झुलसते हुए सैनिकोंका अत्यन्त भयंकर आर्तनाद होने लगा ॥ १८ ॥

तद् वीक्ष्य कर्णो ज्वलनास्त्रमुद्यतं
स वारुणं तत्प्रशमार्थमाहवे।
समुत्सृजन् सूतसुतः प्रतापवान्
स तेन वह्निं शमयाम्बभूव ॥ १९ ॥

प्रतापी सूतपुत्र कर्णने उस आग्नेयास्त्रको उद्दीप्त हुआ देखकर रणक्षेत्रमें उसकी शान्तिके लिये वारुणास्त्रका प्रयोग किया और उसके द्वारा उस आगको बुझा दिया ॥ १९ ॥

बलाहकौघश्च दिशस्तरस्वी
चकार सर्वास्तिमिरेण संवृताः।
ततो धरित्रीधरतुल्यरोधसः
समन्ततो वै परिवार्य वारिणा ॥ २० ॥

फिर तो बड़े वेगसे मेघोंकी घटा घिर आयी और उसने सम्पूर्ण दिशाओंको अन्धकारसे आच्छादित कर दिया। दिशाओंका अन्तिम भाग काले पर्वतके समान दिखायी देने लगा। मेघोंकी घटाओंने वहाँका सारा प्रदेश जलसे आप्लावित कर दिया था ॥ २० ॥

तैश्चातिवेगात् स तथाविधोऽपि
नीतः शमं वह्निरतिप्रचण्डः।
बलाहकैरेव दिगन्तराणि
व्याप्तानि सर्वाणि यथा नभश्च ॥ २१ ॥

उन मेघोंने वहाँ पूर्वोक्तरूपसे बढ़ी हुई अति प्रचण्ड आगको बड़े वेगसे बुझा दिया। फिर समस्त दिशाओं और आकाशमें वे ही छा गये ॥ २१ ॥

तथा च सर्वास्तिमिरेण वै दिशो
मेघैर्वृता न प्रदृश्येत किंचित्।
अथापोवाह्याभ्रसंघान् समस्तान्
वायव्यास्त्रेणापततः स कर्णात् ॥ २२ ॥
ततोऽप्यस्त्रं दयितं देवराज्ञः
प्रादुश्चक्रे वज्रमतिप्रभावम्।
गाण्डीवं ज्यां विशिखांश्चानुमन्त्र्य
धनंजयः शत्रुभिरप्रधृष्यः ॥ २३ ॥

मेघोंसे घिरकर सारी दिशाएँ अन्धकाराच्छन्न हो गयीं; अतः कोई भी वस्तु दिखायी नहीं देती थी। तदनन्तर कर्ण-की ओरसे आये हुए सम्पूर्ण मेघसमूहोंको वायव्यास्त्रसे छिन्न-भिन्न करके शत्रुओंके लिये अजेय अर्जुनने गाण्डीव धनुष, उसकी प्रत्यञ्चा तथा बाणोंको अभिमन्त्रित करके अत्यन्त प्रभावशाली वज्रास्त्रको प्रकट किया, जो देवराज इन्द्रका प्रिय अस्त्र है ॥ २२-२३ ॥

ततः क्षुरप्राञ्जलिकार्धचन्द्रा
नालीकनाराचवराहकर्णाः।
गाण्डीवतः प्रादुरासन् सुतीक्ष्णाः
सहस्रशो वज्रसमानवेगाः ॥ २४ ॥

उस गाण्डीव धनुषसे क्षुरप्र, अञ्जलिक, अर्धचन्द्र, नालीक, नाराच और वराहकर्ण आदि तीखे अस्त्र हजारोंकी संख्यामें छूटने लगे। वे सभी अस्त्र वज्रके समान वेगशाली थे ॥२४॥

ते कर्णमासाद्य महाप्रभावाः
सुतेजना गार्ध्रपत्राः सुवेगाः।

गात्रेषु सर्वेषु हयेषु चापि
शरासने युगचक्रे ध्वजे च ॥ २५ ॥

वे महाप्रभावशाली, गीधके पंखोंसे युक्त, तेज धारवाले और अतिशय वेगवान् अस्त्र कर्णके पास पहुँचकर उसके समस्त अङ्गोंमें, घोड़ोंपर, धनुषमें तथा रथके जूओं, पहियों और ध्वजोंमें जा लगे ॥ २५ ॥

निर्भिद्य तूर्णं विविशुः सुतीक्ष्णा-
स्तार्क्ष्यत्रस्ता भूमिमिवोरगास्ते।
शराचिताङ्गो रुधिरार्द्रगात्रः
कर्णस्तदा रोषविवृत्तनेत्रः ॥ २६ ॥

जैसे गरुड़से डरे हुए सर्प धरती छेदकर उसके भीतर घुस जाते हैं, उसी प्रकार वे तीखे अस्त्र उपर्युक्त वस्तुओंको विदीर्ण कर शीघ्र ही उनके भीतर धँस गये। कर्णके सारे अङ्ग बाणोंसे भर गये। सम्पूर्ण शरीर रक्तसे नहा उठा। इससे उसके नेत्र उस समय क्रोधसे घूमने लगे ॥ २६ ॥

दृढज्यमानाम्य समुद्रघोषं
प्रादुश्चक्रे भार्गवास्त्रं महात्मा।
महेन्द्रशस्त्राभिमुखान् विमुक्तां-
श्छित्त्वा कर्णः पाण्डवस्येषुसंघान्॥२७॥
तस्यास्त्रमस्त्रेण निहत्य सोऽथ
जघान संख्ये रथनागपत्तीन्।
अमृष्यमाणश्च महेन्द्रकर्मा
महारणे भार्गवास्त्रप्रतापात् ॥ २८ ॥

उस महामनस्वी वीरने अपने धनुषको जिसकी प्रत्यञ्चा सुदृढ़ थी, झुकाकर समुद्रके समान गम्भीर गर्जना करनेवाले भार्गवास्त्रको प्रकट किया और अर्जुनके महेन्द्रास्त्रसे प्रकट हुए बाण-समूहोंके टुकड़े-टुकड़े करके अपने अस्त्रसे उनके अस्त्रको दबाकर युद्धस्थलमें रथों, हाथियों और पैदल-सैनिकोंका संहार कर डाला। अमर्षशील कर्ण उस महासमरमें भार्गवास्त्रके प्रतापसे देवराज इन्द्रके समान पराक्रम प्रकट कर रहा था ॥

पञ्चालानां प्रवरांश्चापि योधान्
क्रोधाविष्टः सूतपुत्रस्तरस्वी।
बाणैर्विव्याधाहवे सुप्रमुक्तैः
शिलाशितै रुक्मपुङ्खैः प्रसह्य ॥ २९ ॥

क्रोधमें भरे हुए वेगशाली सूतपुत्र कर्णने अच्छी तरह छोड़े गये और शिलापर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले बाणोंद्वारा युद्धस्थलमें हठपूर्वक मुख्य-मुख्य पाञ्चालयोद्धाओंको घायल कर दिया ॥ २९ ॥

ततपश्चालाः सोमकाश्चापि राजन्
कर्णेनाजौ पीड्यमानाः शरौघैः।
क्रोधाविष्टा विव्यधुस्तं समन्तात्
तीक्ष्णैर्बाणैः सूतपुत्रं समेताः ॥ ३० ॥

राजन्! समराङ्गणमें कर्णके बाणसमूहोंसे पीड़ित होते हुए पाञ्चाल और सोमक योद्धा भी क्रोधपूर्वक एकत्र हो अपने पैने बाणोंसे सूतपुत्र कर्णको बींधने लगे ॥ ३० ॥

तान् सूतपुत्रो निजघान बाणैः
पञ्चालानां रथनागाश्वसंघान्।
अभ्यर्दयद् बाणगणैः प्रसह्य
विद्ध्वा हर्षात् सङ्गरे सूतपुत्रः॥ ३१ ॥

किंतु उस रणक्षेत्रमें सूतपुत्र कर्णने बाणसमूहोंद्वारा हर्ष और उत्साहके साथ पाञ्चालोंके रथियों, हाथीसवारों और घुड़सवारोंको घायल करके बड़ी पीड़ा दी और उन्हें बाणोंसे मार डाला ॥ ३१ ॥

ते भिन्नदेहा व्यसवो निपेतुः
कर्णेषुभिर्भूमितले स्वनन्तः।
क्रुद्धेन सिंहेन यथेभयूथा
महावने भीमबलेन तद्वत् ॥ ३२ ॥

कर्णके बाणोंसे उनके शरीरोंके टुकड़े-टुकड़े हो गये और वे प्राणशून्य होकर कराहते हुए पृथ्वीपर गिर पड़े। जैसे विशाल वनमें भयानक बलशाली और क्रोधमें भरे हुए सिंहसे विदीर्ण किये गये हाथियोंके झुंड धराशायी हो जाते हैं, वैसी ही दशा उन पाञ्चालयोद्धाओंकी भी हुई ॥ ३२ ॥

पञ्चालानां प्रवरान् संनिहत्य
प्रसह्य योधानखिलानदीनः।
ततः स राजन् विरराज कर्णो
यथाम्बरे भास्कर उग्ररश्मिः॥ ३३ ॥

राजन्! पाञ्चालोंके समस्त श्रेष्ठ योद्धाओंका बलपूर्वक वध करके उदार वीर कर्ण आकाशमें प्रचण्ड किरणोंवाले सूर्यके समान प्रकाशित होने लगा ॥ ३३ ॥

कर्णस्य मत्वा तु जयं त्वदीयाः
परां मुदं सिंहनादांश्च चक्रुः।
सर्वे ह्यमन्यन्त भृशाहतौ च
कर्णेन कृष्णाविति कौरवेन्द्र ॥ ३४ ॥

उस समय आपके सैनिक कर्णकी विजय समझकर बड़े प्रसन्न हुए और सिंहनाद करने लगे। कौरवेन्द्र! उन सबने यही समझा कि कर्णने श्रीकृष्ण और अर्जुनको बहुत घायल कर दिया है ॥ ३४ ॥

तत् तादृशं प्रेक्ष्य महारथस्य
कर्णस्य वीर्यं च परैरसह्यम्।
दृष्ट्वा च कर्णेन धनंजयस्य
तथाऽऽजिमध्ये निहतं तदस्त्रम् ॥३५॥
ततस्त्वमर्षी क्रोधसंदीप्तनेत्रो
वातात्मजः पाणिना पाणिमाच्छेत्।
भीमोऽब्रवीदर्जुनं सत्यसंध-
ममर्षितो निःश्वसञ्जातमन्युः ॥ ३६ ॥

महारथी कर्णका वह शत्रुओंके लिये असह्य वैसा पराक्रम

दृष्टिपथमें लाकर तथा रणभूमिमें कर्णद्वारा अर्जुनके उस अस्त्रको नष्ट हुआ देखकर अमर्षशील वायुपुत्र भीमसेन हाथ-से-हाथ मलने लगे। उनके नेत्र क्रोधसे प्रज्वलित हो उठे। हृदयमें अमर्ष और क्रोधका प्रादुर्भाव हो गया; अतः वे सत्यप्रतिज्ञ अर्जुनसे इस प्रकार बोले—॥ ३५-३६ ॥

कथं नु पापोऽयमपेतधर्मः
सूतात्मजः समरेऽद्य प्रसह्य।
पञ्चालानां योधमुख्याननेकान्
निजघ्निवांस्तव जिष्णो समक्षम्॥ ३७॥

'विजयी अर्जुन! आज समराङ्गणमें धर्मसे दूर रहनेवाले इस पापी सूतपुत्र कर्णने तुम्हारी आँखोंके सामने अनेक प्रमुख पाञ्चालयोद्धाओंका वध कैसे कर डाला?॥ ३७॥

पूर्वं देवैरजितं कालकेयैः
साक्षात् स्थाणोर्बाहुसंस्पर्शमेत्य।
कथं नु त्वां सूतपुत्रः किरीटि-
न्नथेषुभिर्दशभिः प्रागविद्ध्यत्॥ ३८॥

'किरीटधारी अर्जुन! तुम्हें तो पूर्वकालमें देवता भी नहीं जीत सके थे। कालकेय दानव भी नहीं परास्त कर सके थे। तुम साक्षात् भगवान् शङ्करकी भुजाओंसे टक्कर ले चुके हो तो भी इस सूतपुत्रने तुम्हें पहले ही दस बाण मारकर कैसे बींध डाला?॥ ३८॥

त्वया क्षिप्तांश्चाग्रसद् बाणसंघा-
नाश्चर्यमेतत् प्रतिभाति मेऽद्य।
कृष्णापरिक्लेशमनुस्मर त्वं
यथाब्रवीत् षण्ढतिलान् स्म वाचः॥३९॥
रूक्षाः सुतीक्ष्णाश्च हि पापबुद्धिः
सूतात्मजोऽयं गतभीर्दुरात्मा।
संस्मृत्य सर्वं तदिहाद्य पापं
जह्याशु कर्णं युधि सव्यसाचिन्॥ ४०॥

'तुम्हारे चलाये हुए बाणसमूहोंको इसने नष्ट कर दिया, यह तो आज मुझे बड़े आश्चर्यकी बात जान पड़ती है। सव्यसाची अर्जुन! कौरव-सभामें द्रौपदीको दिये गये उन क्लेशोंको तो याद करो। इस पापबुद्धि दुरात्मा सूतपुत्रने जो निर्भय होकर हमलोगोंको थोथे तिलोंके समान नपुंसक बताया था और बहुत-सी अत्यन्त तीखी एवं रूखी बातें सुनायी थीं, उन सबको यहाँ याद करके तुम पापी कर्णको शीघ्र ही युद्धमें मार डालो॥ ३९-४०॥

कस्मादुपेक्षां कुरुषे किरीटि-
न्नुपेक्षितुं नायमिहाद्य कालः।
यया धृत्या सर्वभूतान्यजैषी-
र्ग्रासं ददत् खाण्डवे पावकाय॥ ४१॥
तया धृत्या सूतपुत्रं जहि त्व-
महं चैनं गदया पोथयिष्ये।

'किरीटधारी पार्थ! तुम क्यों इसकी उपेक्षा करते हो? आज यहाँ यह उपेक्षा करनेका समय नहीं है। तुमने जिस धैर्यसे खाण्डववनमें अग्निदेवको ग्रास समर्पित करते हुए समस्त प्राणियोंपर विजय पायी थी, उसी धैर्यके द्वारा सूतपुत्रको मार डालो। फिर मैं भी इसे अपनी गदासे कुचल डालूँगा'॥ ४१½॥

अथाब्रवीद् वासुदेवोऽपि पार्थं
दृष्ट्वा रथेषून् प्रतिहन्यमानान्॥ ४२॥
अमीमृदत् सर्वपातेऽद्य कर्णो
ह्यस्त्रैरस्त्रं किमिदं भो किरीटिन्।
स वीर किं मुह्यसि नावधत्से
नदन्त्येते कुरवः सम्प्रहृष्टाः॥ ४३॥

तदनन्तर वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने भी अर्जुनके रथसम्बन्धी बाणोंको कर्णके द्वारा नष्ट होते देख उनसे इस प्रकार कहा 'किरीटधारी अर्जुन! यह क्या बात है? तुमने अबतक जितने बार प्रहार किये हैं, उन सबमें कर्णने तुम्हारे अस्त्रको अपने अस्त्रोंद्वारा नष्ट कर दिया है। वीर! आज तुमपर कैसा मोह छा रहा है? तुम सावधान क्यों नहीं होते? देखो, ये तुम्हारे शत्रु कौरव अत्यन्त हर्षमें भरकर सिंहनाद कर रहे हैं!॥ ४२-४३॥

कर्णं पुरस्कृत्य विदुर्हि सर्वे
तवास्त्रमस्त्रैर्विनिपात्यमानम्।
यया धृत्या निहतं तामसास्त्रं
युगे युगे राक्षसाश्चापि घोराः॥ ४४॥
दम्भोद्भवाश्चासुराश्चाहवेषु
तया धृत्या जहि कर्णं त्वमद्य।

'कर्णको आगे करके सब लोग यही समझ रहे हैं कि तुम्हारा अस्त्र उसके अस्त्रोंद्वारा नष्ट होता जा रहा है। तुमने जिस धैर्यसे प्रत्येक युगमें घोर राक्षसोंका, उनके मायामय तामस अस्त्रका तथा दम्भोद्भव नामवाले असुरोंका युद्धस्थलोंमें विनाश किया है, उसी धैर्यसे आज तुम कर्णको भी मार डालो॥ ४४½॥

अनेन चास्य क्षुरनेमिनाद्य
संछिन्धि मूर्धानमरेः प्रसह्य॥ ४५॥
मया विसृष्टेन सुदर्शनेन
वज्रेण शक्रो नमुचेरिवारेः।

'तुम मेरे दिये हुए इस सुदर्शनचक्रके द्वारा जिसके नेमिभागमें (किनारे) क्षुर लगे हुए हैं, आज बलपूर्वक शत्रुका मस्तक काट डालो। जैसे इन्द्रने वज्रके द्वारा अपने शत्रु नमुचिका सिर काट दिया था॥ ४५½॥

किरातरूपी भगवान् सुधृत्या
त्वया महात्मा परितोषितोऽभूत्॥ ४६॥
तां त्वं पुनर्वीर धृतिं गृहीत्वा
सहानुबन्धं जहि सूतपुत्रम्।

'वीर ! तुमने अपने जिस उत्तम धैर्यके द्वारा किरातरूपधारी महात्मा भगवान् शङ्करको संतुष्ट किया था, उसी धैर्यको पुनः अपनाकर सगे-सम्बन्धियोंसहित सूतपुत्रका वध कर डालो ॥

ततो महीं सागरमेखलां त्वं
सपत्तनां ग्रामवतीं समृद्धाम् ॥ ४७ ॥
प्रयच्छ राज्ञे निहतारिसंघां
यशश्च पार्थातुलमाप्नुहि त्वम्।

'पार्थ ! तत्पश्चात् समुद्रसे घिरी हुई' नगरों और गाँवोंसे युक्त तथा शत्रुसमुदायसे शून्य यह समृद्धिशालिनी पृथ्वी राजा युधिष्ठिरको दे दो और अनुपम यश प्राप्त करो' ॥४७½॥

स एवमुक्तोऽतिबलो महात्मा
चकार बुद्धिं हि वधाय सौतेः ॥ ४८ ॥
स चोदितो भीमजनार्दनाभ्यां
स्मृत्वा तथाऽऽत्मानमवेक्ष्य सर्वम्।
इहात्मनश्चागमने विदित्वा
प्रयोजनं केशवमित्युवाच ॥ ४९ ॥

भीमसेन और श्रीकृष्णके इस प्रकार प्रेरणा देने और कहनेपर अत्यन्त बलशाली महात्मा अर्जुनने सूतपुत्रके वधका विचार किया । उन्होंने अपने स्वरूपका स्मरण करके सब बातोंपर दृष्टिपात किया और इस युद्धभूमिमें अपने आगमनके प्रयोजनको समझकर श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा— ॥४८-४९॥

प्रादुष्करोम्येष महास्त्रमुग्रं
शिवाय लोकस्य वधाय सौतेः।
तन्मेऽनुजानातु भवान् सुराश्च
ब्रह्मा भवो वेदविदश्च सर्वे ॥ ५० ॥

'प्रभो ! मैं जगत्के कल्याण और सूतपुत्रके वधके लिये अब एक महान् एवं भयंकर अस्त्र प्रकट कर रहा हूँ । इसके लिये आप, ब्रह्माजी, शङ्करजी, समस्त देवता तथा सम्पूर्ण ब्रह्मवेत्ता मुझे आज्ञा दें' ॥ ५० ॥

इत्युच्य देवं स तु सव्यसाची
नमस्कृत्वा ब्रह्मणे सोऽमितात्मा।
तदुत्तमं ब्राह्ममसह्यमस्त्रं
प्रादुश्चक्रे मनसा यद् विधेयम् ॥ ५१ ॥

भगवान् श्रीकृष्णसे ऐसा कहकर अमितात्मा सव्यसाची अर्जुनने ब्रह्माजीको नमस्कार करके जिसका मनसे ही प्रयोग किया जाता है, उस असह्य एवं उत्तम ब्रह्मास्त्रको प्रकट किया ॥ ५१ ॥

तदस्य हत्वा विरराज कर्णो
मुक्त्वा शरान् मेघ इवाम्बुधाराः।
समीक्ष्य कर्णेन किरीटिनस्तु
तथाऽऽजिमध्ये निहतं तदस्त्रम् ॥ ५२ ॥
ततोऽमर्षी बलवान् क्रोधदीप्तो
भीमोऽब्रवीदर्जुनं सत्यसंधम्।

परंतु जैसे मेघ जलकी धारा गिराता है, उसी प्रकार बाणोंकी बौछारसे कर्ण उस अस्त्रको नष्ट करके बड़ी शोभा पाने लगा । रणभूमिमें किरीटधारी अर्जुनके उस अस्त्रको कर्णद्वारा नष्ट हुआ देख अमर्षशील बलवान् भीमसेन पुनः क्रोधसे जल उठे और सत्यप्रतिज्ञ अर्जुनसे इस प्रकार बोले— ॥

ननु त्वाहुर्वेदितारं महास्त्रं
ब्राह्मं विधेयं परमं जनास्तत् ॥ ५३ ॥
तस्मादन्यद् योजय सव्यसाचि-
न्निति स्मोक्तोऽयोजयत् सव्यसाची।
ततो दिशः प्रदिशश्चापि सर्वाः
समावृणोत् सायकैर्भूरितेजाः ॥ ५४ ॥
गाण्डीवमुक्तैर्भुजगैरिवोग्रै-
र्दिवाकरांशुप्रतिमैर्ज्वलद्भिः।

'सव्यसाचिन् ! सब लोग कहते हैं कि तुम परम उत्तम एवं मनके द्वारा प्रयोग करनेयोग्य महान् ब्रह्मास्त्रके ज्ञाता हो; इसलिये तुम दूसरे किसी श्रेष्ठ अस्त्रका प्रयोग करो ।' उनके ऐसा कहनेपर सव्यसाची अर्जुनने दूसरे दिव्यास्त्रका प्रयोग किया । इससे महातेजस्वी अर्जुनने अपने गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए सर्पोंके समान भयंकर और सूर्य-किरणोंके तुल्य तेजस्वी बाणोंद्वारा सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित कर दिया, कोना-कोना ढक दिया ॥ ५३-५४½ ॥

सृष्टास्तु बाणा भरतर्षभेण
शतं शतानीव सुवर्णपुङ्खाः ॥ ५५ ॥
प्राच्छादयन् कर्णरथं क्षणेन
युगान्तवह्न्यर्ककरप्रकाशाः।

भरतश्रेष्ठ अर्जुनके छोड़े हुए प्रलयकालीन सूर्य और अग्निकी किरणोंके समान प्रकाशित होनेवाले दस हजार बाणोंने क्षणभरमें कर्णके रथको आच्छादित कर दिया ॥

ततश्च शूलानि परश्वधानि
चक्राणि नाराचशतानि चैव ॥ ५६ ॥
निश्चक्रमुर्घोरतराणि योधा-
स्ततो ह्यहन्यन्त समन्ततोऽपि।

उस दिव्यास्त्रसे शूल, फरसे, चक्र और सैकड़ों नाराच आदि घोरतर अस्त्र-शस्त्र प्रकट होने लगे, जिनसे सब ओरके योद्धाओंका विनाश होने लगा ॥ ५६½ ॥

छिन्नं शिरः कस्यचिदाजिमध्ये
पपात योधस्य परस्य कायात् ॥ ५७ ॥
भयेन सोऽप्याशु पपात भूमा-
वन्यः प्रणष्टः पतितं विलोक्य।
अन्यस्य सासिर्निपपात कृत्तो
योधस्य बाहुः करिहस्ततुल्यः ॥ ५८ ॥

उस युद्धस्थलमें किसी शत्रुपक्षीय योद्धाका सिर धड़से कटकर धरतीपर गिर पड़ा । उसे देखकर दूसरा भी भयके

मारे धराशायी हो गया । उसको गिरा हुआ देख तीसरा योद्धा वहाँसे भाग खड़ा हुआ। किसी दूसरे योद्धाकी हाथीकी सूँड़के समान मोटी दाहिनी बाँह तलवारसहित कटकर गिर पड़ी ॥ ५७-५८ ॥

अन्यस्य सव्यः सह वर्मणा च
क्षुरप्रकृत्तः पतितो धरण्याम्।
एवं समस्तानपि योधमुख्यान्
विध्वंसयामास किरीटमाली ॥ ५९ ॥

दूसरेकी बायीं भुजा क्षुरोंद्वारा कवचके साथ कटकर भूमिपर गिर गयी। इस प्रकार किरीटधारी अर्जुनने शत्रुपक्षके सभी मुख्य-मुख्य योद्धाओंका संहार कर डाला ॥ ५९ ॥

शरैः शरीरान्तकरैः सुघोरै-
र्दौर्योधनं सैन्यमशेषमेव।
वैकर्तनेनापि तथाऽऽजिमध्ये
सहस्रशो बाणगणा विसृष्टाः ॥ ६० ॥

उन्होंने शरीरका अन्त कर देनेवाले घोर बाणोंद्वारा दुर्योधनकी सारी सेनाका विध्वंस कर दिया । इसी प्रकार वैकर्तन कर्णने भी समराङ्गणमें सहस्रों बाणसमूहोंकी वर्षा की॥

ते घोषिणः पाण्डवमभ्युपेयुः
पर्जन्यमुक्ता इव वारिधाराः।
ततः स कृष्णं च किरीटिनं च
वृकोदरं चाप्रतिमप्रभावः ॥ ६१ ॥
त्रिभिस्त्रिभिर्भीमबलो निहत्य
ननाद घोरं महता स्वरेण।

वे बाण मेघोंकी बरसायी हुई जलधाराओंके समान शब्द करते हुए पाण्डुपुत्र अर्जुनको जा लगे। तत्पश्चात् अप्रतिम प्रभावशाली और भयंकर बलवान् कर्णने तीन-तीन बाणोंसे श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीमसेनको घायल करके बड़े जोरसे भयानक गर्जना की ॥ ६१½ ॥

स कर्णबाणाभिहतः किरीटी
भीमं तथा प्रेक्ष्य जनार्दनं च ॥ ६२ ॥
अमृष्यमाणः पुनरेव पार्थः
शरान् दशाष्टौ च समुद्बबर्ह।

कर्णके बाणोंसे घायल हुए किरीटधारी कुन्तीकुमार अर्जुन भीमसेन तथा भगवान् श्रीकृष्णको भी उसी प्रकार क्षत-विक्षत देखकर सहन न कर सके; अतः उन्होंने अपने तरकससे पुनः अठारह बाण निकाले ॥ ६२½ ॥

स केतुमेकेन शरेण विद्ध्वा
शल्यं चतुर्भिस्त्रिभिरेव कर्णम् ॥ ६३ ॥
ततः स मुक्तैर्दशभिर्जघान
सभापतिं काञ्चनवर्मनद्धम्।

एक बाणसे कर्णकी ध्वजाको बींधकर अर्जुनने चार बाणोंसे शल्यको और तीनसे कर्णको घायल कर दिया। तत्पश्चात् उन्होंने दस बाण छोड़कर सुवर्णमय कवच धारण करनेवाले सभापति नामक राजकुमारको मार डाला ६३½

स राजपुत्रो विशिरा विबाहु-
र्विवाजिसूतो विधनुर्विकेतुः ॥ ६४ ॥
हतो रथाग्रादपतत् स रुग्णः
परश्वधैः शाल इवावकृत्तः।

वह राजकुमार मस्तक, भुजा, घोड़े, सारथि, धनुष और ध्वजसे रहित हो मरकर रथके अग्रभागसे नीचे गिर पड़ा, मानो फरसोंसे काटा गया शालवृक्ष टूटकर धराशायी हो गया हो ॥ ६४½ ॥

पुनश्च कर्णं त्रिभिरष्टभिश्च
द्वाभ्यां चतुर्भिर्दशभिश्च विद्ध्वा॥ ६५ ॥
चतुःशतान् द्विरदान् सायुधान् वै
हत्वा रथानष्टशतान्जघान।

इसके बाद अर्जुनने पुनः तीन, आठ, दो, चार और दस बाणोंद्वारा कर्णको बारंबार घायल करके अस्त्र-शस्त्रधारी सवारोंसहित चार सौ हाथियोंको मारकर आठ सौ रथोंको नष्ट कर दिया ॥ ६५½ ॥

सहस्रशोऽश्वांश्च पुनः स सादी-
नष्टौ सहस्राणि च पत्तिवीरान्॥ ६६ ॥
कर्णं ससूतं सरथं सकेतु-
मदृश्यमञ्जोगतिभिः प्रचक्रे।

तदनन्तर सवारोंसहित हजारों घोड़ों और सहस्रों पैदल वीरोंको मारकर रथ, सारथि और ध्वजसहित कर्णको भी शीघ्रगामी बाणोंद्वारा ढककर अदृश्य कर दिया ॥ ६६½ ॥

अथाक्रोशन् कुरवो वध्यमाना
धनंजयेनाधिरथिं समन्तात् ॥ ६७ ॥
मुञ्चाभिविद्ध्यर्जुनमाशु कर्ण
बाणैः पुरा हन्ति कुरून् समग्रान्।

अर्जुनकी मार खाते हुए कौरवसैनिक चारों ओरसे कर्णको पुकारने लगे—'कर्ण! शीघ्र बाण छोड़ो और अर्जुनको घायल कर डालो। कहीं ऐसा न हो कि ये पहले ही समस्त कौरवोंका वध कर डालें' ॥ ६७½ ॥

स चोदितः सर्वयत्नेन कर्णो
मुमोच बाणान् सुबहूनभीक्ष्णम्॥ ६८ ॥
ते पाण्डुपञ्चालगणान् निजघ्नु-
र्मर्मच्छिदः शोणितपांसुदिग्धाः।

इस प्रकार प्रेरणा मिलनेपर कर्णने सारी शक्ति लगाकर बारंबार बहुत-से बाण छोड़े । रक्त और धूलमें सने हुए वे मर्मभेदी बाण पाण्डव और पाञ्चालोंका विनाश करने लगे ६८½

तावुत्तमौ सर्वधनुर्धराणां
महाबलौ सर्वसपत्नसाहौ ॥ ६९ ॥
निजघ्नतुश्चाहितसैन्यमुग्र-
मन्योन्यमप्यस्त्रविदौ महास्त्रैः।

वे दोनों सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ, महाबली, सारे शत्रुओंका सामना करनेमें समर्थ और अस्त्रविद्याके विद्वान् थे; अतः भयंकर शत्रुसेनाको तथा आपसमें भी एक दूसरेको महान् अस्त्रोंद्वारा घायल करने लगे ॥ ६९½ ॥

अथोपयातस्त्वरितो दिदृक्षु-
र्मन्त्रौषधीभिर्निरुजो विशल्यः ॥ ७० ॥
कृतः सुहृद्भिर्भिषजां वरिष्ठै-
र्युधिष्ठिरस्तत्र सुवर्णवर्मा ।

तत्पश्चात् शिविरमें हितैषी वैद्यशिरोमणियोंने मन्त्र और ओषधियोंद्वारा राजा युधिष्ठिरके शरीरसे बाण निकालकर उन्हें रोगरहित (स्वस्थ) कर दिया; इसलिये वे बड़ी उतावलीके साथ सुवर्णमय कवच धारण करके वहाँ युद्ध देखनेके लिये आये ॥ ७०½ ॥

तथोपयातं युधि धर्मराजं
दृष्ट्वा मुदा सर्वभूतान्यनन्दन् ॥ ७१ ॥
राहोर्विमुक्तं विमलं समग्रं
चन्द्रं यथैवाभ्युदितं तथैव ।

धर्मराजको युद्धस्थलमें आया हुआ देख समस्त प्राणी बड़ी प्रसन्नताके साथ उनका अभिनन्दन करने लगे। ठीक उसी तरह, जैसे राहुके ग्रहणसे छूटे हुए निर्मल एवं सम्पूर्ण चन्द्रमाको उदित देख सब लोग बड़े प्रसन्न होते हैं ॥७१½॥

दृष्ट्वा तु मुख्यावथ युध्यमानौ
दिदृक्षवः शूरवरावरिघ्नौ ॥ ७२ ॥
कर्णं च पार्थं च विलोकयन्तः
खस्था महीस्थाश्च जनावतस्थुः ।

परस्पर जूझते हुए उन दोनों शत्रुनाशक एवं प्रधान शूरवीर कर्ण और अर्जुनको देखकर उन्हींकी ओर दृष्टि लगाये आकाश और भूतलमें ठहरे हुए सभी दर्शक अपनी-अपनी जगह स्थिरभावसे खड़े रहे ॥ ७२½ ॥

स कार्मुकज्यातलसंनिपातः
सुमुक्तबाणस्तुमुलो बभूव ॥ ७३ ॥
घ्नतोस्तथान्योन्यमिषुप्रवेकै-
र्धनंजयस्याधिरथेश्च तत्र ।

उस समय वहाँ अर्जुन और कर्ण उत्तम बाणोंद्वारा एक दूसरेको चोट पहुँचा रहे थे। उनके धनुष, प्रत्यञ्चा और हथेलीका संघर्ष बड़ा भयंकर होता जा रहा था और उससे उत्तमोत्तम बाण छूट रहे थे ॥ ७३½ ॥

ततो धनुर्ज्या सहसातिकृष्टा
सुघोषमच्छिद्यत पाण्डवस्य ॥ ७४ ॥
तस्मिन् क्षणे पाण्डवं सूतपुत्रः
समाचिनोत् क्षुद्रकाणां शतेन ।

इसी समय पाण्डुपुत्र अर्जुनके धनुषकी डोरी अधिक खींची जानेके कारण सहसा भारी आवाजके साथ टूट गयी। उस अवसरपर सूतपुत्र कर्णने पाण्डुकुमार अर्जुनको सौ बाण मारे ॥ ७४½ ॥

निर्मुक्तसर्पप्रतिमैरभीक्ष्णं
तैलप्रधौतैः खगपत्रवाजैः ॥ ७५ ॥
षष्ट्या विभेदाशु च वासुदेव-
मनन्तरं फाल्गुनमष्टभिश्च ।

फिर तेलके धोये और पक्षियोंके पंख लगाये गये, केंचुल छोड़कर निकले हुए सर्पोंके समान भयंकर साठ बाणोंद्वारा वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णको भी तुरंत ही क्षत-विक्षत कर दिया। इसके बाद पुनः अर्जुनको आठ बाण मारे ॥ ७५½ ॥

पूषात्मजो मर्मसु निर्बिभेद
मरुत्सुतं चायुतशः शराग्र्यैः ॥ ७६ ॥
कृष्णं च पार्थं च तथा ध्वजं च
पार्थानुजान् सोमकान् पातयंश्च ।

तदनन्तर सूर्यकुमार कर्णने दस हजार उत्तम बाणोंद्वारा वायुपुत्र भीमसेनके मर्मस्थानोंपर गहरा आघात किया। साथ ही, श्रीकृष्ण, अर्जुन और उनके रथकी ध्वजाको, उनके छोटे भाइयोंको तथा सोमकोंको भी उसने मार गिरानेका प्रयत्न किया ॥ ७६½ ॥

प्राच्छादयंस्ते विशिखैः पृषत्कै-
र्जीमूतसंघा नभसीव सूर्यम् ॥ ७७ ॥
आगच्छतस्तान् विशिखैरनेकै-
र्व्यष्टम्भयत् सूतपुत्रः कृतास्त्रः ।

तब जैसे मेघोंके समूह आकाशमें सूर्यको ढक लेते हैं, उसी प्रकार सोमकोंने अपने बाणोंद्वारा कर्णको आच्छादित कर दिया; परंतु सूतपुत्र अस्त्रविद्याका महान् पण्डित था, उसने अनेक बाणोंद्वारा अपने ऊपर आक्रमण करते हुए सोमकोंको जहाँ-के-तहाँ रोक दिया ॥ ७७½ ॥

तैरस्तमस्त्रं विनिहत्य सर्वं
जघान तेषां रथवाजिनागान् ॥ ७८ ॥
तथा तु सैन्यप्रवरांश्च राज-
न्नभ्यर्दयन्मार्गणैः सूतपुत्रः ।

राजन्! उनके चलाये हुए सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंका नाश करके सूतपुत्रने उनके बहुत-से रथों, घोड़ों और हाथियोंका भी संहार कर डाला और अपने बाणोंद्वारा शत्रुपक्षके प्रधान-प्रधान योद्धाओंको पीड़ा देना प्रारम्भ किया ॥ ७८½ ॥

ते भिन्नदेहा व्यसवो निपेतुः
कर्णेषुभिर्भूमितले स्वनन्तः ॥ ७९ ॥
सिंहेन क्रुद्धेन यथा श्वयूथ्या
महाबला भीमबलेन तद्वत् ।

उन सबके शरीर कर्णके बाणोंसे विदीर्ण हो गये और वे आर्तनाद करते हुए प्राणशून्य हो पृथ्वीपर गिर पड़े। जैसे क्रोधमें भरे हुए भयंकर बलशाली सिंहने कुत्तोंके महाबली समुदायको मार गिराया हो, वही दशा सोमकोंकी हुई ७९½

पुनश्च पाञ्चालवरास्तथान्ये
तदन्तरे कर्णधनंजयाभ्याम् ॥ ८० ॥
प्रस्कन्दन्तो बलिना साधुमुक्तैः
कर्णेन बाणैर्निहताः प्रसह्य ।

पाञ्चालोंके प्रधान-प्रधान सैनिक तथा दूसरे योद्धा पुनः कर्ण और अर्जुनके बीचमें आ पहुँचे; परंतु बलवान् कर्णने अच्छी तरह छोड़े हुए बाणोंद्वारा उन सबको हठपूर्वक मार गिराया ॥ ८०½ ॥

जयं मत्वा विपुलं वै त्वदीया-
स्तलान् निजघ्नुःसिंहनादांश्च नेदुः॥ ८१ ॥
सर्वे ह्यमन्यन्त वशे कृतौ तौ
कर्णेन कृष्णाविति ते विमर्दे ।

फिर तो आपके सैनिक कर्णकी बड़ी भारी विजय मानकर ताली पीटने और सिंहनाद करने लगे । उन सबने यह समझ लिया कि 'इस युद्धमें श्रीकृष्ण और अर्जुन कर्णके वशमें हो गये' ॥ ८१½ ॥

ततो धनुर्ज्यामवनाम्य शीघ्रं
शरानस्तानाधिरथेर्विधम्य ॥ ८२ ॥
सुसंरब्धः कर्णशरक्षताङ्गो
रणे पार्थः कौरवान् प्रत्यगृह्णात् ।

तब कर्णके बाणोंसे जिनका अङ्ग-अङ्ग क्षत-विक्षत हो गया था, उन कुन्तीकुमार अर्जुनने रणभूमिमें अत्यन्त कुपित हो शीघ्र ही धनुषकी प्रत्यञ्चाको झुकाकर चढ़ा दिया और कर्णके चलाये हुए बाणोंको छिन्न-भिन्न करके कौरवोंको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ८२½ ॥

ज्यां चानुमृज्याभ्यहनत् तलत्रे
बाणान्धकारं सहसा च चक्रे ॥ ८३ ॥
कर्णं च शल्यं च कुरूंश्च सर्वान्
बाणैरविध्यत् प्रसभं किरीटी ।

तत्पश्चात् किरीटधारी अर्जुनने धनुषकी प्रत्यञ्चाको हाथसे रगड़कर कर्णके दस्तानेपर आघात किया और सहसा बाणोंका जाल फैलाकर वहाँ अन्धकार कर दिया । फिर कर्ण, शल्य और समस्त कौरवोंको अपने बाणोंद्वारा बलपूर्वक घायल किया ॥ ८३½ ॥

न पक्षिणो बभ्रमुरन्तरिक्षे
तदा महास्त्रेण कृतेऽन्धकारे ॥ ८४ ॥
वायुर्वियत्स्थैरीरितो भूतसंघै-
रुवाह दिव्यः सुरभिस्तदानीम् ।

अर्जुनके महान् अस्त्रोंद्वारा आकाशमें घोर अन्धकार फैल जानेसे उस समय वहाँ पक्षी भी नहीं उड़ पाते थे । तब अन्तरिक्षमें खड़े हुए प्राणिसमूहोंसे प्रेरित होकर तत्काल वहाँ दिव्य सुगन्धित वायु चलने लगी ॥ ८४½ ॥

शल्यं च पार्थो दशभिः पृषत्कै-
र्भृशं तनुत्रे प्रहसन्नविध्यत् ॥ ८५ ॥

ततः कर्णं द्वादशभिः सुमुक्तै-
र्विद्ध्वा पुनः सप्तभिरभ्यविद्ध्यत् ।

इसी समय कुन्तीकुमार अर्जुनने हँसते-हँसते दस बाणोंसे शल्यको गहरी चोट पहुँचायी और उनके कवचको छिन्न-भिन्न कर डाला । फिर अच्छी तरह छोड़े हुए बारह बाणोंसे कर्णको घायल करके पुनः उसे सात बाणोंसे बींध डाला ॥ ८५½ ॥

स पार्थबाणासनवेगमुक्तै-
र्दृढाहतः पत्रिभिरुग्रवेगैः ॥ ८६ ॥
विभिन्नगात्रः क्षतजोक्षिताङ्गः
कर्णो बभौ रुद्र इवाततेषुः ।
प्रक्रीडमानोऽथ श्मशानमध्ये
रौद्रे मुहूर्ते रुधिरार्द्रगात्रः ॥ ८७ ॥

अर्जुनके धनुषसे वेगपूर्वक छूटे हुए भयंकर वेगशाली बाणोंद्वारा गहरी चोट खाकर कर्णके सारे अङ्ग विदीर्ण हो गये । वह खूनसे नहा उठा और रौद्र मुहूर्तमें श्मशानके भीतर क्रीड़ा करते हुए, बाणोंसे व्याप्त एवं रक्तसे भीगे शरीरवाले रुद्रदेवके समान प्रतीत होने लगा ॥ ८६-८७ ॥

ततस्त्रिभिस्तं त्रिदशाधिपोपमं
शरैर्बिभेदाधिरथिर्धनंजयम् ।
शरांश्च पञ्च ज्वलितानिवोरगान्
प्रवेशयामास जिघांसयाच्युतम् ॥ ८८ ॥

तदनन्तर अधिरथपुत्र कर्णने देवराज इन्द्रके समान पराक्रमी अर्जुनको तीन बाणोंसे बींध डाला और श्रीकृष्णको मार डालनेकी इच्छासे उनके शरीरमें प्रज्वलित सर्पोंके समान पाँच बाण घुसा दिये ॥ ८८ ॥

ते वर्म भित्त्वा पुरुषोत्तमस्य
सुवर्णचित्रा न्यपतन् सुमुक्ताः ।
वेगेन गामाविविशुः सुवेगाः
स्नात्वा च कर्णाभिमुखाः प्रतीयुः ॥ ८९ ॥

अच्छी तरह छोड़े हुए वे सुवर्णजटित वेगशाली बाण पुरुषोत्तम श्रीकृष्णके कवचको विदीर्ण करके बड़े वेगसे धरतीमें समा गये और पातालगङ्गामें नहाकर पुनः कर्णकी ओर जाने लगे ॥ ८९ ॥

तान् पञ्च भल्लैर्दशभिः सुमुक्तै-
स्त्रिधा त्रिधैकैकमथोच्चकर्त ।
धनंजयास्त्रैर्न्यपतन् पृथिव्यां
महाहयस्तक्षकपुत्रपक्षाः ॥ ९० ॥

वे बाण नहीं, तक्षकपुत्र अश्वसेनके पक्षपाती पाँच विशाल सर्प थे । अर्जुनने सावधानीसे छोड़े गये दस भल्लोंद्वारा उनमेंसे प्रत्येकके तीन-तीन टुकड़े कर डाले । अर्जुनके बाणोंसे मारे जाकर वे पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ९० ॥

ततः प्रजज्वाल किरीटमाली
क्रोधेन कक्षं प्रदहन्निवाग्निः ।

तथा विनुन्नाङ्गमवेक्ष्य कृष्णं
सर्वेषुभिः कर्णभुजप्रसृष्टैः ॥ ९१ ॥

कर्णके हाथोंसे छूटे हुए उन सभी बाणोंद्वारा श्रीकृष्णके श्रीअङ्गोंको घायल हुआ देख किरीटधारी अर्जुन सूखे काठ या घास-फूसके ढेरको जलानेवाली आगके समान क्रोधसे प्रज्वलित हो उठे ॥ ९१ ॥

स कर्णमाकर्णविकृष्टसृष्टैः
शरैः शरीरान्तकरैर्ज्वलद्भिः ।
मर्मस्वविध्यत् स चचाल दुःखाद्
दैवादवातिष्ठत धैर्यबुद्धिः ॥ ९२ ॥

उन्होंने कानतक खींचकर छोड़े गये शरीरनाशक प्रज्वलित बाणोंद्वारा कर्णके मर्मस्थानोंमें गहरी चोट पहुँचायी। कर्ण दुःखसे विचलित हो उठा; परंतु किसी तरह मनमें धैर्य धारण करके दैवयोगसे रणभूमिमें डटा रहा ॥ ९२ ॥

ततः शरौघैः प्रदिशो दिशश्च
रवेः प्रभा कर्णरथश्च राजन् ।
अदृश्यमासीत् कुपिते धनंजये
तुषारनीहारवृतं यथा नभः ॥ ९३ ॥

राजन्! तत्पश्चात् क्रोधमें भरे हुए अर्जुनने बाणसमूहोंका ऐसा जाल फैलाया कि दिशाएँ, विदिशाएँ, सूर्यकी प्रभा और कर्णका रथ सब कुछ कुहासेसे ढके हुए आकाशकी भाँति अदृश्य हो गया ॥ ९३ ॥

स चक्ररक्षानथ पादरक्षान्
पुरःसरान् पृष्ठगोपांश्च सर्वान् ।
दुर्योधनेनानुमतानरिघ्नः
समुद्यतान् स रथान् सारभूतान्॥ ९४ ॥
द्विसाहस्रान् समरे सव्यसाची
कुरुप्रवीरानृषभः कुरूणाम् ।
क्षणेन सर्वान् सरथाश्वसूतान्
निनाय राजन् क्षयमेकवीरः ॥ ९५ ॥

नरेश्वर! कुरुकुलके श्रेष्ठ पुरुष अद्वितीय वीर शत्रुनाशक सव्यसाची अर्जुनने कर्णके चक्ररक्षक, पादरक्षक, अग्रगामी और पृष्ठरक्षक सभी कौरवदलके सारभूत प्रमुख वीरोंको, जो दुर्योधनकी आज्ञाके अनुसार चलनेवाले और युद्धके लिये सदा उद्यत रहनेवाले थे तथा जिनकी संख्या दो हजार थी, एक ही क्षणमें रथ, घोड़ों और सारथियोंसहित कालके गालमें भेज दिया ॥ ९४-९५ ॥

ततोऽपलायन्त विहाय कर्णं
तवात्मजाः कुरवो येऽवशिष्टाः ।
हतानपाकीर्य शरक्षतांश्च
लालप्यमानांस्तनयान् पितॄंश्च ॥ ९६ ॥

तदनन्तर जो मरनेसे बच गये थे, वे आपके पुत्र और कौरवसैनिक कर्णको छोड़कर तथा मारे गये और बाणोंसे घायल हो सगे-सम्बन्धियोंको पुकारनेवाले अपने पुत्रों एवं पिताओंकी भी उपेक्षा करके वहाँसे भाग गये ॥ ९६ ॥

(सर्वे प्रणेशुः कुरवो विभिन्नाः
पार्थेषुभिः सम्परिकम्पमानाः ।
सुयोधनेनाथ पुनर्वरिष्ठाः
प्रचोदिताः कर्णरथानुयाने ॥

अर्जुनके बाणोंसे संतप्त और क्षत-विक्षत हो समस्त कौरवयोद्धा जब वहाँसे भाग खड़े हुए, तब दुर्योधनने उनमेंसे श्रेष्ठ वीरोंको पुनः कर्णके रथके पीछे जानेके लिये आज्ञा दी ॥

दुर्योधन उवाच

भो क्षत्रियाः शूरतमास्तु सर्वे
क्षात्रे च धर्मे निरताः स्थ यूयम् ।
न युक्तरूपं भवतां समीपात्
पलायनं कर्णमिह प्रहाय ॥

दुर्योधन बोला—क्षत्रियो! तुम सब लोग शूरवीर हो, क्षत्रियधर्ममें तत्पर रहते हो। यहाँ कर्णको छोड़कर उसके निकटसे भाग जाना तुम्हारे लिये कदापि उचित नहीं है ॥

संजय उवाच

तवात्मजेनापि तथोच्यमानाः
पार्थेषुभिः सम्परितप्यमानाः ।
नैवावतिष्ठन्त भयाद् विवर्णाः
क्षणेन नष्टाः प्रदिशो दिशश्च ॥)

संजय कहते हैं—राजन्! आपके पुत्रके इस प्रकार कहनेपर भी वे योद्धा वहाँ खड़े न हो सके। अर्जुनके बाणोंसे उन्हें बड़ी पीड़ा हो रही थी। भयसे उनकी कान्ति फीकी पड़ गयी थी; इसलिये वे क्षणभरमें दिशाओं और उनके कोनोंमें जाकर छिप गये ॥

स सर्वतः प्रेक्ष्य दिशो विशून्या
भयावदीर्णैः कुरुभिर्विहीनः ।
न विव्यथे भारत तत्र कर्णः
प्रहृष्ट एवार्जुनमभ्यधावत् ॥ ९७ ॥

भारत! भयसे भागे हुए कौरवयोद्धाओंसे परित्यक्त हो सम्पूर्ण दिशाओंको सूनी देखकर भी वहाँ कर्ण अपने मनमें तनिक भी व्यथित नहीं हुआ। उसने पूरे हर्ष और उत्साहके साथ ही अर्जुनपर धावा किया ॥ ९७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णार्जुनद्वैरथे एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्ण और अर्जुनका द्वैरथ-युद्धविषयक नवासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८९ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ५½ श्लोक मिलाकर कुल १०२½ श्लोक हैं)

नवतितमोऽध्यायः

अर्जुन और कर्णका घोर युद्ध भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा अर्जुनकी सर्पमुख बाणसे रक्षा तथा कर्णका अपना पहिया पृथ्वीमें फँस जानेपर अर्जुनसे बाण न चलानेके लिये अनुरोध करना

संजय उवाच

ततः प्रयाताः शरपातमात्र-
मवस्थिताः कुरवो भिन्नसेनाः।
विद्युत्प्रकाशं ददृशुः समन्ताद्
धनंजयास्त्रं समुदीर्यमाणम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर भागे हुए कौरव, जिनकी सेना तितर-बितर हो गयी थी, धनुषसे छोड़ा हुआ बाण जहाँतक पहुँचता है, उतनी दूरीपर जाकर खड़े हो गये। वहींसे उन्होंने देखा कि अर्जुनका बड़े वेगसे बढ़ता हुआ अस्त्र चारों ओर बिजलीके समान चमक रहा है ॥ १ ॥

तदर्जुनास्त्रं ग्रसति स्म कर्णो
वियद्गतं घोरतरैः शरैस्तत्।
क्रुद्धेन पार्थेन भृशाभिसृष्टं
वधाय कर्णस्य महाविमर्दे ॥ २ ॥

उस महासमरमें अर्जुन कुपित होकर कर्णके वधके लिये जिस-जिस अस्त्रका वेगपूर्वक प्रयोग करते थे, उसे आकाशमें ही कर्ण अपने भयंकर बाणोंद्वारा काट देता था ॥ २ ॥

उदीर्यमाणं स्म कुरून् दहन्तं
सुवर्णपुङ्खैर्विशिखैर्ममर्द ।
कर्णस्त्वमोघेष्वसनं दृढज्यं
विस्फारयित्वा विसृजञ्छरौघान् ॥ ३ ॥

कर्णका धनुष अमोघ था। उसकी डोरी भी बहुत मजबूत थी। वह अपने धनुषको खींचकर उसके द्वारा बाण-समूहोंकी वर्षा करने लगा। कौरवसेनाको दग्ध करनेवाले अर्जुनके छोड़े हुए अस्त्रको उसने सुवर्णमय पंखवाले बाणोंद्वारा धूलमें मिला दिया ॥ ३ ॥

रामादुपात्तेन महामहिम्ना
ह्याथर्वणेनारिविनाशनेन ।
तदर्जुनास्त्रं व्यधमद् दहन्तं
कर्णस्तु बाणैर्निशितैर्महात्मा ॥ ४ ॥

महामनस्वी वीर कर्णने परशुरामजीसे प्राप्त हुए महाप्रभावशाली शत्रुनाशक आथर्वण अस्त्रका प्रयोग करके पैने बाणोंद्वारा अर्जुनके उस अस्त्रको, जो कौरवसेनाको दग्ध कर रहा था, नष्ट कर दिया ॥ ४ ॥

ततो विमर्दः सुमहान् बभूव
तत्रार्जुनस्याधिरथेश्च राजन्।
अन्योन्यमासादयतोः पृषत्कै-
र्विषाणघातैर्द्विपयोरिवोग्रैः ॥ ५ ॥

राजन्! जैसे दो हाथी अपने भयंकर दाँतोंसे एक दूसरेपर चोट करते हैं, उसी प्रकार अर्जुन और कर्ण एक दूसरेपर बाणोंका प्रहार कर रहे थे। उस समय उन दोनोंमें बड़ा भारी युद्ध होने लगा ॥ ५ ॥

तत्रास्त्रसंघातसमावृतं तदा
बभूव राजंस्तुमुलं स्म सर्वतः।
तत् कर्णपार्थौ शरवृष्टिसंघै-
र्निरन्तरं चक्रतुरम्बरं तदा ॥ ६ ॥

नरेश्वर! उस समय वहाँ अस्त्रसमूहोंसे आच्छादित होकर सारा प्रदेश सब ओरसे भयंकर प्रतीत होने लगा। कर्ण और अर्जुनने अपने बाणोंकी वर्षासे आकाशको ठसाठस भर दिया ॥

ततो जालं बाणमयं महान्तं
सर्वेऽद्राक्षुः कुरवः सोमकाश्च।
नान्यं च भूतं ददृशुस्तदा ते
बाणान्धकारे तुमुलेऽथ किंचित् ॥ ७ ॥

तदनन्तर समस्त कौरवों और सोमकोंने भी देखा कि वहाँ बाणोंका विशाल जाल फैल गया है। बाणजनित उस भयानक अन्धकारमें उस समय उन्हें दूसरे किसी प्राणीका दर्शन नहीं होता था ॥ ७ ॥

(ततस्तु तौ वै पुरुषप्रवीरौ
राजन् वरौ सर्वधनुर्धराणाम्।
त्यक्त्वाऽऽत्मदेहौ समरेऽतिघोरे
प्राप्तश्रमौ शत्रुदुरासदौ हि ॥
दृष्ट्वा तु तौ संयति सम्प्रयुक्तौ
परस्परं छिद्रनिविष्टदृष्टी।
देवर्षिगन्धर्वगणाः सयक्षाः
संतुष्टुवुस्तौ पितरश्च हृष्टाः ॥)

राजन! सम्पूर्ण धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ वे दोनों नरवीर उस भयानक समरमें अपने शरीरोंका मोह छोड़कर बड़ा भारी परिश्रम कर रहे थे, वे दोनों ही शत्रुओंके लिये दुर्जय थे। युद्धमें तत्पर होकर एक दूसरेके छिद्रोंकी ओर दृष्टि रखनेवाले उन दोनों वीरोंको देखकर देवता, ऋषि, गन्धर्व, यक्ष और पितर सभी हर्षमें भरकर उनकी प्रशंसा करने लगे ॥

तौ संदधानावनिशं च राजन्
समस्यन्तौ चापि शराननेकान्।
संदर्शयेतां युधि मार्गान् विचित्रान्
धनुर्धरौ तौ विविधैः कृतास्त्रैः ॥ ८ ॥

राजन्! निरन्तर अनेकानेक बाणोंका संधान और प्रहार करते हुए वे दोनों धनुर्धर वीर सिद्ध किये हुए विविध अस्त्रोंद्वारा युद्धमें अद्भुत पैंतरे दिखाने लगे ॥ ८ ॥

तयोरेवं युद्ध्यतोराजिमध्ये
सूतात्मजोऽभूदधिकः कदाचित्।

पार्थः कदाचित् त्वधिकः किरीटी
वीर्यास्त्रमायाबलपौरुषेण ॥ ९ ॥

इस प्रकार संग्रामभूमिमें जूझते समय उन दोनों वीरोंमें पराक्रम, अस्त्रसंचालन, मायाबल तथा पुरुषार्थकी दृष्टिसे कभी सूतपुत्र कर्ण बढ़ जाता था और कभी किरीटधारी अर्जुन ॥

दृष्ट्वा तयोस्तं युधि सम्प्रहारं
परस्परस्यान्तरमीक्षमाणयोः ।
घोरं तयोर्दुर्विषहं रणेऽन्यै-
र्योधाः सर्वे विस्मयमभ्यगच्छन् ॥ १० ॥

युद्धस्थलमें एक दूसरेपर प्रहार करनेका अवसर देखते हुए उन दोनों वीरोंका दूसरोंके लिये दुःसह वह घोर आघात-प्रत्याघात देखकर रणभूमिमें खड़े हुए समस्त योद्धा आश्चर्यसे चकित हो उठे ॥ १० ॥

ततो भूतान्यन्तरिक्षस्थितानि
तौ कर्णपार्थौ प्रशशंसुर्नरेन्द्र ।
भोः कर्ण साध्वर्जुन साधु चेति
वियत्सु वाणी श्रूयते सर्वतोऽपि ॥ ११ ॥

नरेन्द्र ! उस समय आकाशमें स्थित हुए प्राणी कर्ण और अर्जुन दोनोंकी प्रशंसा करने लगे । 'वाह रे कर्ण !' 'शाबाश अर्जुन !' यही बात अन्तरिक्षमें सब ओर सुनायी देने लगी ॥ ११ ॥

तस्मिन् विमर्दे रथवाजिनागै-
स्तदाभिघातैर्दलिते हि भूतले ।
ततस्तु पातालतले शयानो
नागोऽश्वसेनः कृतवैरोऽर्जुनेन ॥ १२ ॥
राजंस्तदा खाण्डवदाहमुक्तो
विवेश कोपाद् वसुधातले यः ।
अथोत्पपातोर्ध्वगतिर्जवेन
संदृश्य कर्णार्जुनयोर्विमर्दम् ॥ १३ ॥

राजन् ! उस समय घमासान युद्धमें जब रथ, घोड़े और हाथियोंद्वारा सारा भूतल रौंदा जा रहा था, उस समय पाताल-निवासी अश्वसेन नामक नाग, जिसने अर्जुनके साथ वैर बाँध रक्खा था और जो खाण्डवदाहके समय जीवित बचकर क्रोधपूर्वक इस पृथ्वीके भीतर घुस गया था; कर्ण तथा अर्जुन-का वह संग्राम देखकर बड़े वेगसे ऊपरको उछला और उस युद्धस्थलमें आ पहुँचा; उसमें ऊपरको उड़नेकी भी शक्ति थी ॥ १२-१३ ॥

अयं हि कालोऽस्य दुरात्मनो वै
पार्थस्य वैरप्रतियातनाय ।
संचिन्त्य तूणं प्रविवेश चैव
कर्णस्य राजञ्शररूपधारी ॥ १४ ॥

नरेश्वर ! वह यह सोचकर कि 'दुरात्मा अर्जुनके वैरका बदला लेनेके लिये यही सबसे अच्छा अवसर है, बाणका रूप धारण करके कर्णके तरकसमें घुस गया ॥ १४ ॥

ततोऽस्त्रसंघातसमाकुलं तदा
बभूव जन्यं विततांशुजालम् ।
तत् कर्णपार्थौ शरसंघवृष्टिभि-
र्निरन्तरं चक्रतुरम्बरं तदा ॥ १५ ॥

तदनन्तर अस्त्रसमूहोंके प्रहारसे भरा हुआ वह युद्धस्थल ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो वहाँ किरणोंका जाल बिछ गया हो । कर्ण और अर्जुनने अपने बाणसमूहोंकी वर्षासे आकाशमें तिलभर भी अवकाश नहीं रहने दिया ॥ १५ ॥

तद् बाणजालैकमयं महान्तं
सर्वेऽत्रसन् कुरवः सोमकाश्च ।
नान्यत् किंचिद् ददृशुः सम्पतद् वै
बाणान्धकारे तुमुलेऽतिमात्रम् ॥ १६ ॥

वहाँ बाणोंका एक महाजाल-सा बना हुआ देखकर कौरव और सोमक सभी भयसे थर्रा उठे । उस अत्यन्त घोर बाणान्धकारमें उन्हें दूसरा कुछ भी गिरता नहीं दिखायी देता था ॥ १६ ॥

ततस्तौ पुरुषव्याघ्रौ सर्वलोकधनुर्धरौ ।
त्यक्तप्राणौ रणे वीरौ युद्धश्रममुपागतौ ।
समुत्क्षेपैर्वीज्यमानौ सिक्तौ चन्दनवारिणा ॥ १७ ॥
सवालव्यजनैर्दिव्यैर्दिविस्थैरप्सरोगणैः ।
शक्रसूर्यकराब्जाभ्यां प्रमार्जितमुखावुभौ ॥ १८ ॥

तदनन्तर सम्पूर्ण विश्वके विख्यात धनुर्धर वीर पुरुषसिंह कर्ण और अर्जुन प्राणोंका मोह छोड़कर युद्ध करते-करते थक गये । उस समय आकाशमें खड़ी हुई अप्सराओंने दिव्य-चँवर डुलाकर उन दोनोंको चन्दनके जलसे सींचा । फिर इन्द्र और सूर्यने अपने कर-कमलोंसे उनके मुँह पोंछे ॥ १७-१८ ॥

कर्णोऽथ पार्थं न विशेषयद् यदा
भृशं च पार्थेन शराभितप्तः ।
ततस्तु वीरः शरविक्षताङ्गो
दध्रे मनो ह्येकशयस्य तस्य ॥ १९ ॥

जब किसी तरह कर्ण युद्धमें अर्जुनसे बढ़कर पराक्रम न दिखा सका और अर्जुनने अपने बाणोंकी मारसे उसे अत्यन्त संतप्त कर दिया, तब बाणोंके आघातसे सारा शरीर क्षत-विक्षत हो जानेके कारण वीर कर्णने उस सर्पमुख बाणके प्रहारका विचार किया ॥ १९ ॥

ततो रिपुघ्नं समधत्त कर्णः
सुसंचितं सर्पमुखं ज्वलन्तम् ।
रौद्रं शरं संनतमुग्रधौतं
पार्थार्थमत्यर्थचिराभिगुप्तम् ॥ २० ॥
सदार्चितं चन्दनचूर्णशायितं
सुवर्णतूणीरशयं महार्चिषम् ।
आकर्णपूर्णं च विकृष्य कर्णः
पार्थोन्मुखः संदधे चोत्तमौजाः ॥ २१ ॥

उत्तम बलशाली कर्णने अर्जुनको मारनेके लिये ही जिसे सुदीर्घकालसे सुरक्षित रख छोड़ा था, सोनेके तरकसमें चन्दनके चूर्णके अंदर जिसे रखता था और सदा जिसकी पूजा करता था, उस शत्रुनाशक, झुकी हुई गाँठवाले, स्वच्छ, महातेजस्वी, सुसंचित, प्रज्वलित एवं भयानक सर्पमुख बाणको उसने धनुषपर रक्खा और कानतक खींचकर अर्जुनकी ओर संधान किया ॥ २०-२१ ॥

प्रदीप्तमैरावतवंशसम्भवं
शिरो जिहीर्षुर्युधि सव्यसाचिनः ।
ततः प्रजज्वाल दिशो नभश्च
उल्काश्च घोराः शतशः प्रपेतुः ॥ २२ ॥

कर्ण युद्धमें सव्यसाची अर्जुनका मस्तक काट लेना चाहता था। उसका चलाया हुआ वह प्रज्वलित बाण ऐरावतकुलमें उत्पन्न अश्वसेन ही था। उस बाणके छूटते ही सम्पूर्ण दिशाओंसहित आकाश जाज्वल्यमान हो उठा। सैकड़ों भयङ्कर उल्काएँ गिरने लगीं ॥ २२ ॥

तस्मिंस्तु नागे धनुषि प्रयुक्ते
हाहाकृता लोकपालाः सशक्राः।
न चापि तं बुबुधे सूतपुत्रो
बाणे प्रविष्टं योगबलेन नागम् ॥ २३ ॥

धनुषपर उस नागका प्रयोग होते ही इन्द्रसहित सम्पूर्ण लोकपाल हाहाकार कर उठे। सूतपुत्रको भी यह मालूम नहीं था कि मेरे इस बाणमें योगबलसे नाग घुसा बैठा है ॥

दशशतनयनोऽहिं दृश्य बाणे प्रविष्टं
निहत इति सुतो मे स्रस्तगात्रो बभूव ।
जलजकुसुमयोनिः श्रेष्ठभावो जितात्मा
त्रिदशपतिमवोचन्मा व्यथिष्ठा जये श्रीः ।२४।

सहस्रनेत्रधारी इन्द्र उस बाणमें सर्पको घुसा हुआ देख यह सोचकर शिथिल हो गये कि 'अब तो मेरा पुत्र मारा गया।' तब मनको वशमें रखनेवाले श्रेष्ठस्वभाव कमलयोनि ब्रह्माजीने उन देवराज इन्द्रसे कहा—'देवेश्वर! दुखी न होओ। विजयश्री अर्जुनको ही प्राप्त होगी' ॥ २४ ॥

ततोऽब्रवीन्मद्रराजो महात्मा
दृष्ट्वा कर्णं प्रहितेषुं तमुग्रम् ।
न कर्ण ग्रीवामिषुरेष लप्स्यते
समीक्ष्य संधत्स्व शरं शिरोघ्नम् ॥ २५ ॥

उस समय महामनस्वी मद्रराज शल्यने कर्णको उस भयंकर बाणका प्रहार करनेके लिये उद्यत देख उससे कहा—'कर्ण ! तुम्हारा यह बाण शत्रुके कण्ठमें नहीं लगेगा; अतः सोच-विचारकर फिरसे बाणका संधान करो, जिससे वह मस्तक काट सके' ॥ २५ ॥

अथाब्रवीत् क्रोधसंरक्तनेत्रो
मद्राधिपं सूतपुत्रस्तरस्वी ।
न संधत्ते द्विः शरं शल्य कर्णो
न मादृशा जिह्मयुद्धा भवन्ति ॥ २६ ॥

यह सुनकर वेगशाली सूतपुत्र कर्णके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। उसने मद्रराजसे कहा—'कर्ण दो बार बाणका संधान नहीं करता। मेरे-जैसे वीर कपटपूर्वक युद्ध नहीं करते हैं' ॥

इतीदमुक्त्वा विससर्ज तं शरं
प्रयत्नतो वर्षगणाभिपूजितम् ।
हतोऽसि वै फाल्गुन इत्यधिक्षिप-
न्नुवाच चोच्चैर्गिरमूर्जितां वृषः ॥ २७ ॥

ऐसा कहकर कर्णने जिसकी वर्षोंसे पूजा की थी, उस बाणको प्रयत्नपूर्वक शत्रुकी ओर छोड़ दिया और आक्षेप करते हुए उच्चस्वरसे कहा—'अर्जुन ! अब तू निश्चय ही मारा गया' ॥ २७ ॥

स सायकः कर्णभुजप्रसृष्टो
हुताशनार्कप्रतिमः सुघोरः ।
गुणच्युतः कर्णधनुःप्रमुक्तो
वियद्गतः प्राज्वलदन्तरिक्षे ॥ २८ ॥

अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी वह अत्यन्त भयंकर बाण कर्णकी भुजाओंसे प्रेरित हो उसके धनुष और प्रत्यञ्चासे छूटकर आकाशमें जाते ही प्रज्वलित हो उठा ॥ २८ ॥

तं प्रेक्ष्य दीप्तं युधि माधवस्तु
त्वरान्वितं सत्वरयैव लीलया ।
पदा विनिष्पिष्य रथोत्तमं स
प्रावेशयत् पृथिवीं किंचिदेव ॥ २९ ॥
क्षितिं गता जानुभिस्तेऽथ वाहा
हेमच्छन्नाश्चन्द्रमरीचिवर्णाः ।
ततोऽन्तरिक्षे सुमहान् निनादः
सम्पूजनार्थं मधुसूदनस्य ॥ ३० ॥
दिव्याश्च वाचः सहसा बभूवु-
र्दिव्यानि पुष्पाण्यथ सिंहनादाः ।
तस्मिंस्तथा वै धरणीं निमग्ने
रथे प्रयत्नान्मधुसूदनस्य ॥ ३१ ॥

उस प्रज्वलित बाणको बड़े वेगसे आते देख भगवान् श्रीकृष्णने युद्धस्थलमें खेल-सा करते हुए अपने उत्तम रथको तुरंत ही पैरसे दबाकर उसके पहियोंका कुछ भाग पृथ्वीमें धँसा दिया। साथ ही सोनेके साज-बाजसे ढके हुए चन्द्रमाकी किरणोंके समान श्वेतवर्णवाले उनके घोड़े भी धरतीपर घुटने टेककर झुक गये। उस समय आकाशमें सब ओर महान् कोलाहल गूँज उठा। भगवान् मधुसूदनकी स्तुति-प्रशंसाके लिये कहे गये दिव्य वचन सहसा सुनायी देने लगे। श्रीमधुसूदनके प्रयत्नसे उस रथके धरतीमें धँस जानेपर भगवान्‌के ऊपर दिव्यपुष्पोंकी वर्षा होने लगी और दिव्य सिंहनाद भी प्रकट होने लगे ॥ २९–३१ ॥

ततः शरः सोऽभ्यहनत् किरीटं
तस्येन्द्रदत्तं सुदृढं च धीमतः ।

अथार्जुनस्योत्तमगात्रभूषणं
धराबियद्द्योसलिलेषु विश्रुतम् ॥ ३२ ॥

बुद्धिमान् अर्जुनके मस्तकको विभूषित करनेवाला किरीट भूतल, अन्तरिक्ष, स्वर्ग और वरुणलोकमें भी विख्यात था। वह मुकुट उन्हें इन्द्रने प्रदान किया था। कर्णका चलाया हुआ वह सर्पमुख बाण रथ नीचा हो जानेके कारण अर्जुनके उसी किरीटमें जा लगा ॥ ३२ ॥

व्यालास्त्रसर्गोत्तमयत्नमन्युभिः
शरेण मूर्ध्नः प्रजहार सूतजः।
दिवाकरेन्दुज्वलनप्रभत्विषं
सुवर्णमुक्तामणिवज्रभूषितम् ॥ ३३ ॥

सूतपुत्र कर्णने सर्पमुख बाणके निर्माणकी सफलता, उत्तम प्रयत्न और क्रोध—इन सबके सहयोगसे जिस बाणका प्रयोग किया था, उसके द्वारा अर्जुनके मस्तकसे उस किरीटको नीचे गिरा दिया, जो सूर्य, चन्द्रमा और अग्निके समान कान्तिमान् तथा सुवर्ण, मुक्ता, मणि एवं हीरोंसे विभूषित था ॥ ३३ ॥

पुरन्दरार्थं तपसा प्रयत्नतः
स्वयं कृतं यद् विभुना स्वयम्भुवा।
महार्हरूपं द्विषतां भयंकरं
बिभर्तुरत्यर्थसुखं सुगन्धिनम् ॥ ३४ ॥
जिघांसते देवरिपून् सुरेश्वरः
स्वयं ददौ यत् सुमनाः किरीटिने।
हराम्बुपाखण्डलवित्तगोप्तृभिः
पिनाकपाशाशनिसायकोत्तमैः ॥ ३५ ॥
सुरोत्तमैरप्यविषह्यमर्दितुं
प्रसह्य नागेन जहार तद् वृषः।
स दुष्टभावो वितथप्रतिज्ञः
किरीटमत्यद्भुतमर्जुनस्य ॥ ३६ ॥
नागो महार्हं तपनीयचित्रं
पार्थोत्तमाङ्गात् प्रहरत् तरस्वी।

ब्रह्माजीने तपस्या और प्रयत्न करके देवराज इन्द्रके लिये स्वयं ही जिसका निर्माण किया था, जिसका स्वरूप बहुमूल्य, शत्रुओंके लिये भयंकर, धारण करनेवालेके लिये अत्यन्त सुखदायक तथा परम सुगन्धित था, दैत्योंके वधकी इच्छावाले किरीटधारी अर्जुनको स्वयं देवराज इन्द्रने प्रसन्नचित्त होकर जो किरीट प्रदान किया था, भगवान् शिव, वरुण, इन्द्र और कुबेर—ये देवेश्वर भी अपने पिनाक, पाश, वज्र और बाणरूप उत्तम अस्त्रोंद्वारा जिसे नष्ट नहीं कर सकते थे, उसी दिव्य मुकुटको कर्णने अपने सर्पमुख बाणद्वारा बलपूर्वक हर लिया। मनमें दुर्भाव रखनेवाले उस मिथ्याप्रतिज्ञ तथा वेगशाली नागने अर्जुनके मस्तकसे उसी अत्यन्त अद्भुत, बहुमूल्य और सुवर्णचित्रित मुकुटका अपहरण कर लिया था ॥ ३४—३६½ ॥

तद्धेमजालावततं सुघोषं
जाज्वल्यमानं निपपात भूमौ ॥ ३७ ॥
तदुत्तमेषून्मथितं विषाग्निना
प्रदीप्तमर्चिष्मदथो क्षितौ प्रियम्।
पपात पार्थस्य किरीटमुत्तमं
दिवाकरोऽस्तादिव रक्तमण्डलः॥ ३८ ॥

सोनेकी जालीसे व्याप्त वह जगमगाता हुआ मुकुट धमाकेकी आवाज़के साथ धरतीपर जा गिरा जैसे अस्ताचलसे लाल रंगके मण्डलवाला सूर्य नीचे गिरता है, उसी प्रकार पार्थका वह प्रिय, उत्तम एवं तेजस्वी किरीट पूर्वोक्त श्रेष्ठ बाणसे मथित और विषाग्निसे प्रज्वलित हो पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३७-३८ ॥

स वै किरीटं बहुरत्नभूषितं
जहार नागोऽर्जुनमूर्धतो बलात्।
गिरेः सुजाताङ्कुरपुष्पितद्रुमं
महेन्द्रवज्रः शिखरोत्तमं यथा ॥ ३९ ॥

उस नागने नाना प्रकारके रत्नोंसे विभूषित पूर्वोक्त किरीटको अर्जुनके मस्तकसे उसी प्रकार बलपूर्वक हर लिया, जैसे इन्द्रका वज्र वृक्षों और लताओंके नवजात अङ्कुरों तथा पुष्पशाली वृक्षोंसे सुशोभित पर्वतके उत्तम शिखरको नीचे गिरा देता है ॥ ३९ ॥

महीवियद्द्योसलिलानि वायुना
यथा विरुग्णानि नदन्ति भारत।
तथैव शब्दं भुवनेषु तं तदा
जना व्यवस्यन् व्यथिताश्च चस्खलुः॥४०॥

भारत! जैसे पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग और जल—ये वायुद्वारा वेगपूर्वक संचालित हो महान् शब्द करने लगते हैं, उस समय वहाँ जगत्के सब लोगोंने वैसे ही शब्दका अनुभव किया और व्यथित होकर सभी अपने-अपने स्थानसे लड़खड़ाकर गिर पड़े ॥ ४० ॥

विना किरीटं शुशुभे स पार्थः
श्यामो युवा नील इवोच्चशृङ्गः।
ततः समुद्ग्रथ्य सितेन वाससा
स्वमूर्धजानव्यथितस्तदार्जुनः ।
विभासितः सूर्यमरीचिना दृढं
शिरोगतेनोदयपर्वतो यथा ॥ ४१ ॥

मुकुट गिर जानेपर श्यामवर्ण, नवयुवक अर्जुन ऊँचे शिखरवाले नीलगिरिके समान शोभा पाने लगे। उस समय उन्हें तनिक भी व्यथा नहीं हुई। वे अपने केशोंको सफेद वस्त्रसे बाँधकर युद्धके लिये डटे रहे। श्वेत वस्त्रसे केश बाँधनेके कारण वे शिखरपर फैली हुई सूर्यदेवकी किरणोंसे प्रकाशित होनेवाले उदयाचलके समान सुशोभित हुए ॥४१॥

गोकर्णा सुमुखी कृतेन इषुणा गोपुत्रसम्प्रेषिता
गोशब्दात्मजभूषणं सुविहितं सुव्यक्तगोऽसुप्रभम्।
दृष्ट्वा गोगतकं जहार मुकुटं गोशब्दगोपूरि वै
गोकर्णासनमर्दनश्च न ययावप्राप्य मृत्योर्वशम्॥ ४२ ॥

अंशुमाली सूर्यके पुत्र कर्णने जिसे चलाया था, जो अपने ही द्वारा उत्पादित एवं सुरक्षित बाणरूपधारी पुत्रके रूपमें मानो स्वयं उपस्थित हुई थी, गौ अर्थात् नेत्रेन्द्रियसे कानोंका काम लेनेके कारण जो गोकर्णा (चक्षुःश्रवा) और मुखसे पुत्रकी रक्षा करनेके कारण सुमुखी कही गयी है, उस सर्पिणीने तेज और प्राणशक्तिसे प्रकाशित होनेवाले अर्जुनके मस्तकको घोड़ोंकी लगामके सामने लक्ष्य करके (चलनेपर भी रथ नीचा होनेसे उसे न पाकर) उनके उस मुकुटको ही हर लिया, जिसे ब्रह्माजीने स्वयं सुन्दररूपसे इन्द्रके मस्तकका भूषण बनाया था और जो सूर्यसदृश किरणोंकी प्रभासे जगत्को परिपूर्ण (प्रकाशित) करनेवाला था। उक्त सर्पको अपने बाणोंकी मारसे कुचल देनेवाले अर्जुन उसे पुनः आक्रमणका अवसर न देनेके कारण मृत्युके अधीन नहीं हुए ॥

स सायकः कर्णभुजप्रसृष्टो
हुताशनार्कप्रतिमो महार्हः।
महोरगः कृतवैरोऽर्जुनेन
किरीटमाहत्य ततो व्यतीयात् ॥ ४३ ॥

कर्णके हाथोंसे छूटा हुआ वह अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी, बहुमूल्य बाण, जो वास्तवमें अर्जुनके साथ वैर-रखनेवाला महानाग था, उनके किरीटपर आघात करके पुनः वहाँसे लौट पड़ा ॥ ४३ ॥

तं चापि दग्ध्वा तपनीयचित्रं
किरीटमाकृष्य तदर्जुनस्य।
इयेष गन्तुं पुनरेव तूर्णं
दृष्टश्च कर्णेन ततोऽब्रवीत् तम् ॥ ४४ ॥

अर्जुनका वह मुकुट सुवर्णमय होनेके कारण विचित्र शोभा धारण करता था। उसे खींचकर अपनी विषाग्निसे दग्ध करके वह सर्प पुनः कर्णके तरकसमें घुसना ही चाहता था कि कर्णकी दृष्टि उसपर पड़ गयी। तब उसने कर्णसे कहा—॥ ४४ ॥

मुक्तस्त्वयाहं त्वसमीक्ष्य कर्ण
शिरो हृतं यन्न मयार्जुनस्य।
समीक्ष्य मां मुञ्च रणे त्वमाशु
हन्तास्मि शत्रुं तव चात्मनश्च ॥ ४५ ॥

'कर्ण ! तुमने अच्छी तरह सोच-विचारकर मुझे नहीं छोड़ा था; इसीलिये मैं अर्जुनके मस्तकका अपहरण न कर सका। अब पुनः सोच-समझकर, टीकसे निशाना साधकर रणभूमिमें शीघ्र ही मुझे छोड़ो, तब मैं अपने और तुम्हारे उस शत्रुका वध कर डालूँगा' ॥ ४५ ॥

स एवमुक्तो युधि सूतपुत्र-
स्तमब्रवीत् को भवानुग्ररूपः।
नागोऽब्रवीद् विद्धि कृतागसं मां
पार्थेन मातुर्वधजातवैरम् ॥ ४६ ॥
यदि स्वयं वज्रधरोऽस्य गोप्ता
तथापि याता पितृराजवेश्मनि।

युद्धस्थलमें उस नागके ऐसा कहनेपर सूतपुत्र कर्णने उससे पूछा—'पहले यह तो बताओ कि ऐसा भयानक रूप धारण करनेवाले तुम हो कौन ?' तब नागने कहा—'अर्जुनने मेरा अपराध किया है। मेरी माताका उनके द्वारा वध होनेके कारण मेरा उनसे वैर हो गया है। तुम मुझे नाग समझो। यदि साक्षात् वज्रधारी इन्द्र भी अर्जुनकी रक्षाके लिये आ जायँ तो भी आज अर्जुनको यमलोकमें जाना ही पड़ेगा' ॥ ४६½ ॥

कर्ण उवाच

न नाग कर्णोऽद्य रणे परस्य
बलं समास्थाय जयं बुभूषेत् ॥ ४७ ॥
न संदध्यां द्विः शरं चैव नाग
यद्यर्जुनानां शतमेव हन्याम्।

कर्ण बोला—नाग ! आज रणभूमिमें कर्ण दूसरेके बलका सहारा लेकर विजय पाना नहीं चाहता है। नाग ! मैं सौ अर्जुनको मार सकूँ तो भी एक बाणका दो बार संधान नहीं कर सकता ॥ ४७½ ॥

तमाह कर्णः पुनरेव नागं
तदाऽऽजिमध्ये रविसूनुसत्तमः॥ ४८ ॥
व्यालास्त्रसर्गोत्तमयत्नमन्युभि-
र्हन्तास्मि पार्थं सुसुखी व्रज त्वम्।

इतना कहकर सूर्यके श्रेष्ठ पुत्र कर्णने युद्धस्थलमें उस नागसे फिर इस प्रकार कहा—'मेरे पास सर्पमुख बाण है। मैं उत्तम यत्न कर रहा हूँ और मेरे मनमें अर्जुनके प्रति पर्याप्त रोष भी है; अतः मैं स्वयं ही पार्थको मार डालूँगा। तुम सुखपूर्वक यहाँसे पधारो' ॥ ४८½ ॥

इत्येवमुक्तो युधि नागराजः
कर्णेन रोषादसहंस्तस्य वाक्यम् ॥ ४९ ॥
स्वयं प्रायात् पार्थवधाय राजन्
कृत्वा स्वरूपं विजिघांसुरुग्रः।

राजन् ! युद्धस्थलमें कर्णके द्वारा इस प्रकार टका-सा उत्तर पाकर वह नागराज रोषपूर्वक उसके इस वचनको सहन न कर सका। उस उग्र सर्पने अपने स्वरूपको प्रकट करके मनमें प्रतिहिंसाकी भावना लेकर पार्थके वधके लिये स्वयं ही उनपर आक्रमण किया ॥ ४९½ ॥

ततः कृष्णः पार्थमुवाच संख्ये
महोरगं कृतवैरं जहि त्वम् ॥ ५० ॥
स एवमुक्तो मधुसूदनेन
गाण्डीवधन्वा रिपुवीर्यसाहः।
उवाच को ह्येष ममाद्य नागः
स्वयं य आयाद् गरुडस्य वक्त्रम्॥ ५१॥

तब भगवान् श्रीकृष्णने युद्धस्थलमें अर्जुनसे कहा— 'यह विशाल नाग तुम्हारा वैरी है। तुम इसे मार डालो'। भगवान् मधुसूदनके ऐसा कहनेपर शत्रुओंके बलका सामना करनेवाले गाण्डीवधारी अर्जुनने पूछा—'प्रभो! आज मेरे पास आनेवाला यह नाग कौन है? जो स्वयं ही गरुड़के मुखमें चला आया है' ॥ ५०-५१ ॥

कृष्ण उवाच

योऽसौ त्वया खाण्डवे चित्रभानुं
संतर्पयाणेन धनुर्धरेण।
वियद्गतो जननीगुप्तदेहो
मत्वैकरूपं निहतास्य माता ॥ ५२ ॥

श्रीकृष्णने कहा—अर्जुन! खाण्डव वनमें जब तुम हाथमें धनुष लेकर अग्निदेवको तृप्त कर रहे थे, उस समय यही सर्प अपनी माताके मुँहमें घुसकर अपने शरीरको सुरक्षित करके आकाशमें उड़ा जा रहा था। तुमने उसे एक ही सर्प समझकर केवल इसकी माताका वध किया था ॥ ५२ ॥

स एष तद् वैरमनुस्मरन् वै
त्वां प्रार्थयत्यात्मवधाय नूनम्।
नभश्च्युतां प्रज्वलितामिवोल्कां
पश्यैनमायान्तममित्रसाह ॥ ५३ ॥

उसी वैरको याद करके यह अवश्य अपने वधके लिये ही तुमसे भिड़ना चाहता है। शत्रुसूदन! आकाशसे गिरती हुई प्रज्वलित उल्काके समान आते हुए इस सर्पको देखो ॥५३॥

संजय उवाच

ततः स जिष्णुः परिवृत्य रोषा-
च्चिच्छेद षड्भिर्निशितैः सुधारैः।
नागं वियत्तिर्यगिवोत्पतन्तं
स च्छिन्नगात्रो निपपात भूमौ ॥ ५४ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तब अर्जुनने रोषपूर्वक घूमकर उत्तम धारवाले छः तीखे बाणोंद्वारा आकाशमें तिरछी गतिसे उड़ते हुए उस नागके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। शरीर टूक-टूक हो जानेके कारण वह पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ५४ ॥

हते च तस्मिन् भुजगे किरीटिना
स्वयं विभुः पार्थिव भूतलादथ।
समुज्जहाराशु पुनः पतन्तं
रथं भुजाभ्यां पुरुषोत्तमस्ततः ॥ ५५ ॥

राजन्! किरीटधारी अर्जुनके द्वारा उस सर्पके मारे जानेपर स्वयं भगवान् पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने उस नीचे धँसते हुए रथको पुनः अपनी दोनों भुजाओंसे शीघ्र ही ऊपर उठा दिया ॥ ५५ ॥

तस्मिन् मुहूर्ते दशभिः पृषत्कैः
शिलाशितैर्बर्हिणबर्हवाजितैः।
विव्याध कर्णः पुरुषप्रवीरो
धनंजयं तिर्यगवेक्षमाणः ॥ ५६ ॥

उस मुहूर्तमें नरवीर कर्णने धनंजयकी ओर तिरछी दृष्टिसे देखते हुए मयूरपंखसे युक्त, शिलापर तेज किये हुए, दस बाणोंसे उन्हें घायल कर दिया ॥ ॥ ५६ ॥

ततोऽर्जुनो द्वादशभिः सुमुक्तै-
र्वराहकर्णैर्निशितैः समर्प्य।
नाराचमाशीविषतुल्यवेग-
माकर्णपूर्णायतमुत्ससर्ज ॥ ५७ ॥

तब अर्जुनने अच्छी तरह छोड़े हुए बारह वराहकर्ण नामक पैने बाणोंद्वारा कर्णको घायल करके पुनः विषधर सर्पके तुल्य एक वेगशाली नाराचको कानतक खींचकर उसकी ओर छोड़ दिया ॥ ५७ ॥

स चित्रवर्मेषुवरो विदार्य
प्राणान्निरस्यन्निव साधुमुक्तः।
कर्णस्य पीत्वा रुधिरं विवेश
वसुन्धरां शोणितदिग्धवाजः ॥ ५८ ॥

भलीभाँति छूटे हुए उस उत्तम नाराचने कर्णके विचित्र कवचको चीर-फाड़कर उसके प्राण निकालते हुए-से रक्तपान किया, फिर वह धरतीमें समा गया। उस समय उसके पंख खूनसे लथपथ हो रहे थे ॥ ५८ ॥

ततो वृषो बाणनिपातकोपितो
महोरगो दण्डविघट्टितो यथा।
तदाशुकारी व्यसृजच्छरोत्तमान्
महाविषः सर्प इवोत्तमं विषम् ॥ ५९ ॥

तब उस बाणके प्रहारसे क्रोधमें भरे हुए शीघ्रकारी कर्णने लाठीकी चोट खाये हुए महान् सर्पके समान तिलमिलाकर उसी प्रकार उत्तम बाणोंका प्रहार आरम्भ किया, जैसे महाविषैला सर्प अपने उत्तम विषका वमन करता है ॥५९॥

जनार्दनं द्वादशभिः पराभिन-
न्नवैर्नवत्या च शरैस्तथार्जुनम्।
शरेण घोरेण पुनश्च पाण्डवं
विदार्य कर्णो व्यनदज्जहास च ॥ ६० ॥

उसने बारह बाणोंसे श्रीकृष्णको और निन्यानबे बाणोंसे अर्जुनको अच्छी तरह घायल किया। तत्पश्चात् एक भयंकर बाणसे पाण्डुपुत्र अर्जुनको पुनः क्षत-विक्षत करके कर्ण सिंहके समान दहाड़ने और हँसने लगा ॥ ६० ॥

तमस्य हर्षं ममृषे न पाण्डवो
बिभेद मर्माणि ततोऽस्य मर्मवित्।
परःशतैः पत्रिभिरिन्द्रविक्रम-
स्तथा यथेन्द्रो बलमोजसा रणे ॥ ६१ ॥

उसके उस हर्षको पाण्डुपुत्र अर्जुन सहन न कर सके। वे उसके मर्मस्थलोंको जानते थे और इन्द्रके समान पराक्रमी थे। अतः जैसे इन्द्रने रणभूमिमें बलासुरको बलपूर्वक आहत किया था, उसी प्रकार अर्जुनने सौसे भी अधिक बाणोंद्वारा कर्णके मर्मस्थानोंको विदीर्ण कर दिया ॥ ६१ ॥

ततः शराणां नवतिं तदार्जुनः
ससर्ज कर्णेऽन्तकदण्डसंनिभाम् ।
तैः पत्रिभिर्विद्धतनुः स विव्यथे
तथा यथा वज्रविदारितोऽचलः ॥ ६२ ॥

तदनन्तर अर्जुनने यमदण्डके समान भयंकर नब्बे बाण कर्णपर छोड़े । उन पंखवाले बाणोंसे उसका सारा शरीर बिंध गया तथा वह वज्रसे विदीर्ण किये हुए पर्वतके समान व्यथित हो उठा ॥ ६२ ॥

मणिप्रवेकोत्तमवज्रहाटकै-
रलंकृतं चास्य वराङ्गभूषणम् ।
प्रविद्धमुर्व्यां निपपात पत्रिभि-
र्धनंजयेनोत्तमकुण्डलेऽपि च ॥ ६३ ॥

उत्तम मणियों, हीरों और सुवर्णसे अलंकृत कर्णके मस्तकका आभूषण मुकुट और उसके दोनों उत्तम कुण्डल भी अर्जुनके बाणोंसे छिन्न-भिन्न होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ६३ ॥

महाधनं शिल्पिवरैः प्रयत्नतः
कृतं यदस्योत्तमवर्म भास्वरम् ।
सुदीर्घकालेन ततोऽस्य पाण्डवः
क्षणेन बाणैर्बहुधा व्यशातयत् ॥ ६४ ॥

अच्छे-अच्छे शिल्पियोंने कर्णके जिस उत्तम बहुमूल्य और तेजस्वी कवचको दीर्घकालमें बनाकर तैयार किया था, उसके उसी कवचके पाण्डुपुत्र अर्जुनने अपने बाणोंद्वारा क्षणभरमें बहुत-से टुकड़े कर डाले ॥ ६४ ॥

स तं विवर्माणमथोत्तमेषुभिः
शितैश्चतुर्भिः कुपितः पराभिनत् ।
स विव्यथेऽत्यर्थमरिप्रताडितो
यथातुरः पित्तकफानिलज्वरैः ॥ ६५ ॥

कवच कट जानेपर कर्णको कुपित हुए अर्जुनने चार उत्तम तीखे बाणोंसे पुनः क्षत-विक्षत कर दिया । शत्रुके द्वारा अत्यन्त घायल किये जानेपर कर्ण वात, पित्त और कफ सम्बन्धी ज्वर (त्रिदोष या सन्निपात) से आतुर हुए मनुष्यकी भाँति अधिक पीड़ाका अनुभव करने लगा ॥ ६५ ॥

महाधनुर्मण्डलनिःसृतैः शितैः
क्रियाप्रयत्नप्रहितैर्बलेन च ।
ततक्ष कर्णं बहुभिः शरोत्तमै-
र्बिभेद मर्मस्वपि चार्जुनस्त्वरन् ॥ ६६ ॥

अर्जुनने उतावले होकर क्रिया, प्रयत्न और बलपूर्वक छोड़े गये तथा विशाल धनुर्मण्डलसे छूटे हुए बहुसंख्यक पैने और उत्तम बाणोंद्वारा कर्णके मर्मस्थानोंमें गहरी चोट पहुँचाकर उसे विदीर्ण कर दिया ॥ ६६ ॥

दृढाहतः पत्रिभिरुग्रवेगैः
पार्थेन कर्णो विविधैः शिताग्रैः ।
बभौ गिरिर्गैरिकधातुरक्तः
क्षरन् प्रपातैरिव रक्तमम्भः ॥ ६७ ॥

अर्जुनके भयंकर वेगशाली और तेजधारवाले नाना प्रकारके बाणोंद्वारा गहरी चोट खाकर कर्ण अपने अङ्गोंसे रक्तकी धारा बहाता हुआ उस पर्वतके समान सुशोभित हुआ, जो गेरु आदि धातुओंसे रँगा होनेके कारण अपने झरनोंसे लाल पानी बहाया करता है ॥ ६७ ॥

ततोऽर्जुनः कर्णमवक्रगैर्नवैः
सुवर्णपुङ्खैः सुदृढैरयस्मयैः ।
यमाग्निदण्डप्रतिमैः स्तनान्तरे
पराभिनत् क्रौञ्चमिवाद्रिमग्निजः ॥ ६८ ॥

तत्पश्चात् अर्जुनने सोनेके पंखवाले लोहनिर्मित, सुदृढ़ तथा यमदण्ड और अग्निदण्डके तुल्य भयंकर बाणोंद्वारा कर्णकी छातीको उसी प्रकार विदीर्ण कर डाला, जैसे कुमार कार्तिकेयने क्रौञ्च पर्वतको चीर डाला था ॥ ६८ ॥

ततः शरावापमपास्य सूतजो
धनुश्च तच्छक्रशरासनोपमम् ।
ततो रथस्थः स मुमोह च स्खलन्
प्रशीर्णमुष्टिः सुभृशाहतः प्रभो ॥ ६९ ॥

प्रभो ! अत्यन्त आहत हो जानेके कारण सूतपुत्र कर्ण तरकस और इन्द्रधनुषके समान अपना धनुष छोड़कर रथपर ही लड़खड़ाता हुआ मूर्छित हो गया । उस समय उसकी मुट्ठी ढीली हो गयी थी ॥ ६९ ॥

न चार्जुनस्तं व्यसने तदेषिवान्-
निहन्तुमार्यः पुरुषव्रते स्थितः ।
ततस्तमिन्द्रावरजः सुसम्भ्रमा-
दुवाच किं पाण्डव हे प्रमाद्यसे ॥ ७० ॥

राजन् ! अर्जुन सत्पुरुषोंके व्रतमें स्थित रहनेवाले श्रेष्ठ मनुष्य हैं; अतः उन्होंने उस संकटके समय कर्णको मारनेकी इच्छा नहीं की । तब इन्द्रके छोटे भाई भगवान् श्रीकृष्णने बड़े वेगसे कहा—'पाण्डुनन्दन ! तुम लापरवाही क्यों दिखाते हो ? ॥ ७० ॥

नैवाहितानां सततं विपश्चितः
क्षणं प्रतीक्षन्त्यपि दुर्बलीयसाम् ।
विशेषतोऽरीन् व्यसनेषु पण्डितो
निहत्य धर्मं च यशश्च विन्दते ॥ ७१ ॥

'विद्वान् पुरुष कभी दुर्बल-से-दुर्बल शत्रुओंको भी नष्ट करनेके लिये किसी अवसरकी प्रतीक्षा नहीं करते । विशेषतः संकटमें पड़े हुए शत्रुओंको मारकर बुद्धिमान् पुरुष धर्म और यशका भागी होता है ॥ ७१ ॥

तदेकवीरं तव चाहितं सदा
त्वरस्व कर्णं सहसाभिमर्दितुम् ।
पुरा समर्थः समुपैति सूतजो
भिन्धि त्वमेनं नमुचिं यथा हरिः ॥ ७२ ॥

'इसलिये सदा तुमसे शत्रुता रखनेवाले इस अद्वितीय

वीर कर्णको सहसा कुचल डालनेके लिये तुम शीघ्रता करो। सूतपुत्र कर्ण शक्तिशाली होकर आक्रमण करे, इसके पहले ही तुम इसे उसी प्रकार मार डालो, जैसे इन्द्रने नमुचिका वध किया था' ॥ ७२ ॥

ततस्तदेवेत्यभिपूज्य सत्वरं
जनार्दनं कर्णमविध्यदर्जुनः।
शरोत्तमैः सर्वकुरूत्तमस्त्वरं-
स्तथा यथा शम्बरहा पुरा बलिम् ॥७३॥

'अच्छा, ऐसा ही होगा' यों कहकर श्रीकृष्णका समादर करते हुए सम्पूर्ण कुरुकुलके श्रेष्ठ पुरुष अर्जुन उत्तम बाणों-द्वारा शीघ्रतापूर्वक कर्णको उसी प्रकार बींधने लगे, जैसे पूर्व-कालमें शम्बर शत्रु इन्द्रने राजा बलिपर प्रहार किया था ७३

साश्वं तु कर्णं सरथं किरीटी
समाचिनोद् भारत वत्सदन्तैः।
प्रच्छादयामास दिशश्च बाणैः
सर्वप्रयत्नात्तपनीयपुङ्खैः ॥ ७४ ॥

भरतनन्दन ! किरीटधारी अर्जुनने घोड़ों और रथसहित कर्णके शरीरको वत्सदन्त नामक बाणोंसे भर दिया। फिर सारी शक्ति लगाकर सुवर्णमय पंखवाले बाणोंसे उन्होंने सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित कर दिया ॥ ७४ ॥

स वत्सदन्तैः पृथुपीनवक्षाः
समाचितः सोऽधिरथिर्विभाति।
सुपुष्पिताशोकपलाशशाल्मलि-
र्यथाचलश्चन्दनकाननायुतः ॥ ७५ ॥

चौड़े और मोटे वक्षःस्थलवाले अधिरथपुत्र कर्णका शरीर वत्सदन्तनामक बाणोंसे व्याप्त होकर खिले हुए अशोक, पालाश, सेमल और चन्दनवनसे युक्त पर्वतके समान सुशोभित होने लगा ॥ ७५ ॥

शरैः शरीरे बहुभिः समर्पितै-
र्विभाति कर्णः समरे विशाम्पते।
महीरुहैराचितसानुकन्दरो
यथा गिरीन्द्रः स्फुटकर्णिकारवान्॥७६॥

प्रजानाथ ! कर्णके शरीरमें बहुत-से बाण धँस गये थे। उनके द्वारा समराङ्गणमें उसकी वैसी ही शोभा हो रही थी, जैसे वृक्षोंसे व्याप्त शिखर और कन्दरावाले गिरिराजके ऊपर लाल कनेरके फूल खिलनेसे उसकी शोभा होती है ॥ ७६ ॥

स बाणसङ्घान् बहुधा व्यवासृजद्
विभाति कर्णः शरजालरश्मिवान्।
सलोहितो रक्तगभस्तिमण्डलो
दिवाकरोऽस्ताभिमुखो यथा तथा ॥ ७७ ॥

तदनन्तर कर्ण (सावधान होकर) शत्रुओंपर बहुत-से बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगा। उस समय जैसे अस्ताचलकी ओर जाते हुए सूर्यमण्डल और उसकी किरणें लाल हो जाती हैं, उसी प्रकार खूनसे लाल हुआ वह शरसमूहरूपी किरणोंसे सुशोभित हो रहा था ॥ ७७ ॥

बाह्वन्तरादाधिरथेर्विमुक्तान्
बाणान् महाहीनिव दीप्यमानान्।
व्यध्वंसयन्नर्जुनबाहुमुक्ताः
शराः समासाद्य दिशः शिताग्राः ॥ ७८ ॥

कर्णकी भुजाओंसे छूटकर बड़े-बड़े सर्पोंके समान प्रकाशित होनेवाले बाणोंको अर्जुनके हाथोंसे छूटे हुए तीखे बाणोंने सम्पूर्ण दिशाओंमें फैलकर नष्ट कर दिया ॥ ७८ ॥

ततः स कर्णः समवाप्य धैर्यं
बाणान् विमुञ्चन् कुपिताहिकल्पान्।
विव्याध पार्थं दशभिः पृषत्कैः
कृष्णं च षड्भिः कुपिताहिकल्पैः॥७९॥

तदनन्तर कर्ण धैर्य धारण करके कुपित सर्पोंके समान भयंकर बाण छोड़ने लगा। उसने क्रोधमें भरे हुए भुजङ्ग-मोंके सदृश दस बाणोंसे अर्जुनको और छःसे श्रीकृष्णको भी घायल कर दिया ॥ ७९ ॥

ततः किरीटी भृशमुग्रनिःस्वनं
महाशरं सर्पविषानलोपमम्।
अयस्मयं रौद्रमहास्त्रसम्भृतं
महाहवे क्षेप्तुमना महामतिः ॥ ८० ॥

तब परम बुद्धिमान् किरीटधारी अर्जुनने उस महासमरमें कर्णपर भयानक शब्द करनेवाले, सर्पविष और अग्निके समान तेजस्वी लोहनिर्मित तथा महारौद्रास्त्रसे अभिमन्त्रित विशाल बाण छोड़नेका विचार किया ॥ ८० ॥

कालो ह्यदृश्यो नृप विप्रकोपा-
न्निदर्शयन् कर्णवधं ब्रुवाणः।
भूमिस्तु चक्रं ग्रसतीत्यवोचत्-
कर्णस्य तस्मिन् वधकाल आगते॥ ८१ ॥

नरेश्वर ! उस समय काल अदृश्य रहकर ब्राह्मणके क्रोधसे कर्णके वधकी सूचना देता हुआ उसकी मृत्युका समय उपस्थित होनेपर इस प्रकार बोला—'अब भूमि तुम्हारे पहियेको निगलना ही चाहती है' ॥ ८१ ॥

ततस्तदस्त्रं मनसः प्रणष्टं
यद् भार्गवोऽस्मै प्रददौ महात्मा।
चक्रं च वामं ग्रसते भूमिरस्य
प्राप्ते तस्मिन् वधकाले नृवीर ॥ ८२ ॥

नरवीर ! अब कर्णके वधका समय आ पहुँचा था। महात्मा परशुरामने कर्णको जो भार्गवास्त्र प्रदान किया था, वह उस समय उसके मनसे निकल गया—उसे उसकी याद न रह सकी। साथ ही, पृथ्वी उसके रथके बायें पहियेको निगलने लगी ॥ ८२ ॥

ततो रथो घूर्णितवान् नरेन्द्र
शापात्तदा ब्राह्मणसत्तमस्य।

ततश्चक्रमपतत्तस्य भूमौ
स विह्वलः समरे सूतपुत्रः ॥ ८३ ॥

नरेन्द्र ! श्रेष्ठ ब्राह्मणके शापसे उस समय उसका रथ डगमगाने लगा और उसका पहिया पृथ्वीमें धँस गया। यह देख सूतपुत्र कर्ण समराङ्गणमें व्याकुल हो उठा ॥ ८३ ॥

सवेदिकश्चैत्य इवातिमात्रः
सुपुष्पितो भूमितले निमग्नः।
घूर्णे रथे ब्राह्मणस्याभिशापाद्
रामादुपात्ते त्वविभाति चास्त्रे ॥८४॥
छिन्ने शरे सर्पमुखे च घोरे
पार्थेन तस्मिन् विषसाद कर्णः।
अमृष्यमाणो व्यसनानि तानि
हस्तौ विधुन्वन् स विगर्हमाणः॥ ८५ ॥

जैसे सुन्दर पुष्पोंसे युक्त विशाल चैत्यवृक्ष वेदीसहित पृथ्वीमें धँस जाय, वही दशा उस रथकी भी हुई। ब्राह्मणके शापसे जब रथ डगमग करने लगा, परशुरामजीसे प्राप्त हुआ अस्त्र भूल गया और घोर सर्पमुख बाण अर्जुनके द्वारा काट डाला गया, तब उस अवस्थामें उन संकटोंको सहन न कर सकनेके कारण कर्ण खिन्न हो उठा और दोनों हाथ हिला-हिलाकर धर्मकी निन्दा करने लगा ॥ ८४-८५ ॥

धर्मप्रधानं किल पाति धर्म
इत्यब्रुवन् धर्मविदः सदैव।
वयं च धर्मे प्रयताम नित्यं
चर्तुं यथाशक्ति यथाश्रुतं च ॥
स चापि निघ्नाति न पाति भक्तान्
मन्ये न नित्यं परिपाति धर्मः ॥ ८६ ॥

'धर्मज्ञ पुरुषोंने सदा ही यह बात कही है कि 'धर्म-परायण पुरुषकी धर्म सदा रक्षा करता है। हम अपनी शक्ति और ज्ञानके अनुसार सदा धर्मपालनके लिये प्रयत्न करते रहते हैं, किंतु वह भी हमें मारता ही है, भक्तोंकी रक्षा नहीं करता; अतः मैं समझता हूँ, धर्म सदा किसीकी रक्षा नहीं करता है' ॥

एवं ब्रुवन् प्रस्खलिताश्वसूतो
विचाल्यमानोऽर्जुनबाणपातैः।
मर्माभिघाताच्छिथिलः क्रियासु
पुनः पुनर्धर्ममसौ जगर्ह ॥ ८७ ॥

ऐसा कहता हुआ कर्ण जब अर्जुनके बाणोंकी मारसे विचलित हो उठा, उसके घोड़े और सारथि लड़खड़ाकर गिरने लगे और मर्मपर आघात होनेसे वह कार्य करनेमें शिथिल हो गया, तब बारंबार धर्मकी ही निन्दा करने लगा ॥८७॥

ततः शरैर्भीमतरैरविध्यत् त्रिभिराहवे।
हस्ते कृष्णं तथा पार्थमभ्यविध्यच्च सप्तभिः ॥ ८८ ॥

तदनन्तर उसने तीन भयानक बाणोंद्वारा युद्धस्थलमें श्रीकृष्णके हाथमें चोट पहुँचायी और अर्जुनको भी सात बाणोंसे बींध डाला ॥ ८८ ॥

ततोऽर्जुनः सप्तदश तिग्मवेगानजिह्मगान्।
इन्द्राशनिसमान् घोरानसृजत् पावकोपमान्॥ ८९ ॥

तत्पश्चात् अर्जुनने इन्द्रके वज्र तथा अग्निके समान प्रचण्ड वेगशाली सत्रह घोर बाण कर्णपर छोड़े ॥ ८९ ॥

निर्भिद्य ते भीमवेगा ह्यपतन् पृथिवीतले।
कम्पितात्मा ततः कर्णः शक्त्या चेष्टामदर्शयत् ॥९०॥

वे भयानक वेगशाली बाण कर्णको घायल करके पृथ्वीपर गिर पड़े। इससे कर्ण काँप उठा। फिर भी यथाशक्ति युद्धकी चेष्टा दिखाता रहा ॥ ९० ॥

बलेनाथ स संस्तभ्य ब्रह्मास्त्रं समुदैरयत्।
ऐन्द्रं ततोऽर्जुनश्चापि तं दृष्ट्वाभ्युपमन्त्रयत् ॥ ९१ ॥

उसने बलपूर्वक धैर्य धारण करके ब्रह्मास्त्र प्रकट किया। यह देख अर्जुनने भी ऐन्द्रास्त्रको अभिमन्त्रित किया ॥९१॥

गाण्डीवं ज्यां च बाणांश्च सोऽनुमन्त्र्य परंतपः।
व्यसृजच्छरवर्षाणि वर्षाणीव पुरन्दरः ॥ ९२ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले अर्जुनने गाण्डीव धनुष, प्रत्यञ्चा और बाणोंको भी अभिमन्त्रित करके वहाँ शरसमूहोंकी उसी प्रकार वर्षा आरम्भ कर दी, जैसे इन्द्र जलकी वृष्टि करते हैं ॥ ९२ ॥

ततस्तेजोमया बाणा रथात् पार्थस्य निःसृताः।
प्रादुरासन् महावीर्याः कर्णस्य रथमन्तिकात्॥ ९३ ॥

तदनन्तर कुन्तीकुमार अर्जुनके रथसे महान् शक्तिशाली और तेजस्वी बाण निकलकर कर्णके रथके समीप प्रकट होने लगे ॥ ९३ ॥

तान् कर्णस्त्वग्रतो न्यस्तान् मोघांश्चक्रे महारथः।
ततोऽब्रवीद् वृष्णिवीरस्तस्मिन्नस्त्रे विनाशिते ॥९४॥

महारथी कर्णने अपने सामने आये हुए उन सभी बाणोंको व्यर्थ कर दिया। उस अस्त्रके नष्ट कर दिये जानेपर वृष्णिवंशी वीर भगवान् श्रीकृष्णने कहा—॥ ९४ ॥

विसृजास्त्रं परं पार्थ राधेयो ग्रसते शरान्।
ततो ब्रह्मास्त्रमत्युग्रं सम्मन्त्र्य समयोजयत् ॥ ९५ ॥

'पार्थ ! दूसरा कोई उत्तम अस्त्र छोड़ो। राधापुत्र कर्ण तुम्हारे बाणोंको नष्ट करता जा रहा है।' तब अर्जुनने अत्यन्त भयंकर ब्रह्मास्त्रको अभिमन्त्रित करके धनुषपर रक्खा ॥९५॥

छादयित्वा ततो बाणैः कर्णं प्रत्यस्यदर्जुनः।
ततः कर्णः शितैर्बाणैर्ज्यां चिच्छेद सुतेजनैः ॥ ९६ ॥

और उसके द्वारा बाणोंकी वर्षा करके अर्जुनने कर्णको आच्छादित कर दिया। इसके बाद भी वे लगातार बाणोंका प्रहार करते रहे। तब कर्णने तेज किये हुए पैने बाणोंसे अर्जुनके धनुषकी डोरी काट डाली ॥ ९६ ॥

द्वितीयां च तृतीयां च चतुर्थीं पञ्चमीं तथा।
षष्ठीमथास्य चिच्छेद सप्तमीं च तथाष्टमीम् ॥ ९७ ॥

उसने क्रमशः दूसरी, तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छठी, सातवीं और आठवीं डोरी भी काट दी ॥ ९७ ॥

नवमीं दशमीं चास्य तथा चैकादशीं वृषः।
ज्याशतं शतसंधानः स कर्णो नावबुध्यते ॥ ९८ ॥

इतना ही नहीं, नवीं, दसवीं और ग्यारहवीं डोरी काटकर भी सौ बाणोंका संधान करनेवाले कर्णको यह पता नहीं चला कि अर्जुनके धनुषमें सौ डोरियाँ लगी हैं ॥ ९८ ॥

ततो ज्यां विनिधायान्यामभिमन्त्र्य च पाण्डवः।
शरैरवाकिरत् कर्णं दीप्यमानैरिवाहिभिः ॥ ९९ ॥

तदनन्तर दूसरी डोरी चढ़ाकर पाण्डुकुमार अर्जुनने उसे भी अभिमन्त्रित किया और प्रज्वलित सर्पोंके समान बाणोंद्वारा कर्णको आच्छादित कर दिया ॥ ९९ ॥

तस्य ज्याछेदनं कर्णो ज्यावधानं च संयुगे।
नान्वबुध्यत शीघ्रत्वात्तदद्भुतमिवाभवत् ॥१००॥

युद्धस्थलमें अर्जुनके धनुषकी डोरी काटना और पुनः दूसरी डोरीका चढ़ जाना इतनी शीघ्रतासे होता था कि कर्णको भी उसका पता नहीं चलता था। वह एक अद्भुत-सी घटना थी ॥ १०० ॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य प्रनिघ्नन् सव्यसाचिनः।
चक्रे चाप्यधिकं पार्थात् स्ववीर्यमतिदर्शयन् ॥१०१॥

कर्ण अपने अस्त्रोंद्वारा सव्यसाची अर्जुनके अस्त्रोंका निवारण करके उन सबको नष्ट कर दिया और अपने पराक्रमका प्रदर्शन करते हुए उसने अपने आपको अर्जुनसे अधिक शक्तिशाली सिद्ध कर दिखाया ॥ १०१ ॥

ततः कृष्णोऽर्जुनं दृष्ट्वा कर्णास्त्रेण च पीडितम्।
अभ्यस्येत्यब्रवीत् पार्थमातिष्ठास्त्रं व्रजेति च ॥१०२॥

तब श्रीकृष्णने अर्जुनको कर्णके अस्त्रसे पीड़ित हुआ देखकर कहा—'पार्थ ! लगातार अस्त्र छोड़ो। उत्तम अस्त्रोंका प्रयोग करो और आगे बढ़े चलो' ॥ १०२ ॥

ततोऽग्निसदृशं घोरं शरं सर्पविषोपमम्।
अश्मसारमयं दिव्यमभिमन्त्र्य परंतपः ॥१०३॥
रौद्रमस्त्रं समाधाय क्षेप्तुकामः किरीटवान्।
ततोऽग्रसन्मही चक्रं राधेयस्य तदा नृप ॥ १०४ ॥

तब शत्रुओंको संताप देनेवाले अर्जुनने अग्नि और सर्पविषके समान भयंकर लोहमय दिव्य बाणको अभिमन्त्रित करके उसमें रौद्रास्त्रका आधान किया और उसे कर्णपर छोड़नेका विचार किया। नरेश्वर ! इतनेहीमें पृथ्वीने राधापुत्र कर्णके पहियेको ग्रस लिया ॥ १०३-१०४ ॥

ततोऽवतीर्य राधेयो रथादाशु समुद्यतः।
चक्रं भुजाभ्यामालम्ब्य समुत्क्षेप्तुमियेष सः ॥१०५॥

यह देख राधापुत्र कर्ण शीघ्र ही रथसे उतर पड़ा और उद्योगपूर्वक अपनी दोनों भुजाओंसे पहियेको थामकर उसे ऊपर उठानेका विचार किया ॥ १०५ ॥

सप्तद्वीपा वसुमती सशैलवनकानना।
गीर्णचक्रा समुत्क्षिप्ता कर्णेन चतुरङ्गुलम् ॥१०६॥

कर्णने उस रथको ऊपर उठाते समय ऐसा झटका दिया कि सात द्वीपोंसे युक्त, पर्वत, वन और काननोंसहित यह सारी पृथ्वी चक्रको निगले हुए ही चार अङ्गुल ऊपर उठ आयी ॥ १०६ ॥

ग्रस्तचक्रस्तु राधेयः क्रोधादश्रूण्यवर्तयत्।
अर्जुनं वीक्ष्य संरब्धमिदं वचनमब्रवीत् ॥१०७॥

पहिया फँस जानेके कारण राधापुत्र कर्ण क्रोधसे आँसू बहाने लगा और रोषावेशसे युक्त अर्जुनकी ओर देखकर इस प्रकार बोला— ॥ १०७ ॥

भो भोः पार्थ महेष्वास मुहूर्तं परिपालय।
यावच्चक्रमिदं ग्रस्तमुद्धरामि महीतलात् ॥१०८॥

'महाधनुर्धर कुन्तीकुमार ! दो घड़ी प्रतीक्षा करो, जिससे मैं इस फँसे हुए पहियेको पृथ्वीतलसे निकाल लूँ ॥ १०८ ॥

सव्यं चक्रं महीग्रस्तं दृष्ट्वा दैवादिदं मम।
पार्थ कापुरुषाचीर्णमभिसंधिं विसर्जय ॥१०९॥

'पार्थ ! दैवयोगसे मेरे इस बायें पहियेको धरतीमें फँसा हुआ देखकर तुम कापुरुषोचित कपटपूर्ण बर्तावका परित्याग करो ॥ १०९ ॥

न त्वं कापुरुषाचीर्णं मार्गमास्थातुमर्हसि।
ख्यातस्त्वमसि कौन्तेय विशिष्टो रणकर्मसु ॥११०॥
विशिष्टतरमेव त्वं कर्तुमर्हसि पाण्डव।

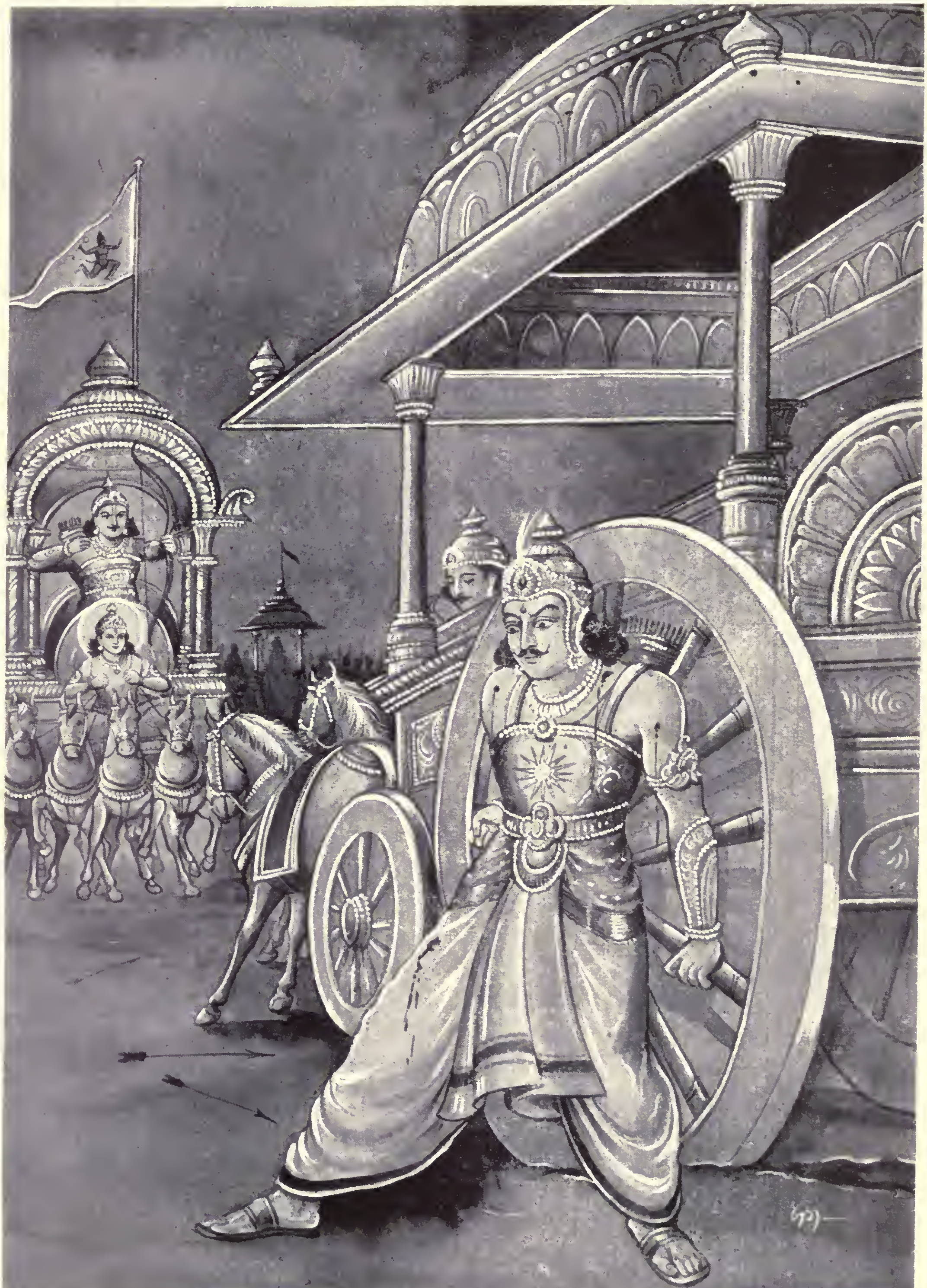
'कुन्तीनन्दन ! जिस मार्गपर कायर चला करते हैं, उसीपर तुम भी न चलो; क्योंकि तुम युद्धकर्ममें विशिष्ट वीरके रूपमें विख्यात हो। पाण्डुनन्दन ! तुम्हें तो अपने आपको और भी विशिष्ट ही सिद्ध करना चाहिये ॥ ११०½ ॥

प्रकीर्णकेशे विमुखे ब्राह्मणेऽथ कृताञ्जलौ ॥१११॥
शरणागते न्यस्तशस्त्रे याचमाने तथार्जुन।
अबाणे भ्रष्टकवचे भ्रष्टभग्नायुधे तथा ॥११२॥
न विमुञ्चन्ति शस्त्राणि शूराः साधुव्रते स्थिताः।

'अर्जुन ! जो केश खोलकर खड़ा हो, युद्धसे मुँह मोड़ चुका हो, ब्राह्मण हो, हाथ जोड़कर शरणमें आया हो, हथियार डाल चुका हो, प्राणोंकी भीख माँगता हो, जिसके बाण, कवच और दूसरे-दूसरे आयुध नष्ट हो गये हों, ऐसे पुरुषपर उत्तम व्रतका पालन करनेवाले शूरवीर शस्त्रोंका प्रहार नहीं करते हैं ॥ १११-११२½ ॥

त्वं च शूरतमो लोके साधुवृत्तश्च पाण्डव ॥११३॥
अभिज्ञो युद्धधर्माणां वेदान्तावभृथाप्लुतः।
दिव्यास्त्रविदमेयात्मा कार्तवीर्यसमो युधि ॥११४॥

'पाण्डुनन्दन ! तुम लोकमें महान् शूर और सदाचारी माने जाते हो। युद्धके धर्मोंको जानते हो। वेदान्तका अध्ययनरूपी यज्ञ समाप्त करके तुम उसमें अवभृथस्नान कर चुके हो। तुम्हें दिव्यास्त्रोंका ज्ञान है। तुम अमेय आत्मबलसे सम्पन्न तथा युद्धस्थलमें कार्तवीर्य अर्जुनके समान पराक्रमी हो ॥ ११३-११४ ॥



कर्णद्वारा पृथ्वीमें धँसे हुए पहियेको उठानेका प्रयत्न

यावच्चक्रमिदं ग्रस्तमुद्धरामि महाभुज।
न मां रथस्थो भूमिष्ठं विकलं हन्तुमर्हसि ॥११५॥

'महाबाहो ! जबतक मैं इस फँसे हुए पहियेको निकाल रहा हूँ, तबतक तुम रथारूढ़ होकर भी मुझ भूमिपर खड़े हुएको बाणोंकी मारसे व्याकुल न करो ॥ ११५ ॥

न वासुदेवात् त्वत्तो वा पाण्डवेय बिभेम्यहम्।
त्वं हि क्षत्रियदायादो महाकुलविवर्धनः।
अतस्त्वां प्रब्रवीम्येष मुहूर्तं क्षम पाण्डव ॥११६॥

'पाण्डुपुत्र ! मैं वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण अथवा तुमसे तनिक भी डरता नहीं हूँ। तुम क्षत्रियके पुत्र हो, एक उच्च कुलका गौरव बढ़ाते हो; इसलिये तुमसे ऐसी बात कहता हूँ। पाण्डव ! तुम दो घड़ीके लिये मुझे क्षमा करो' ॥११६॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णरथचक्रग्रसने नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्णके रथके पहियेका पृथ्वीमें फँसना—इस विषयसे सम्बन्ध रखनेवाला नब्बेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥९०॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २ श्लोक मिलाकर कुल ११८ श्लोक हैं)

एकनवतितमोऽध्यायः

भगवान् श्रीकृष्णका कर्णको चेतावनी देना और कर्णका वध

संजय उवाच

तमब्रवीद् वासुदेवो रथस्थो
राधेय दिष्ट्या स्मरसीह धर्मम्।
प्रायेण नीचा व्यसनेषु मग्ना
निन्दन्ति दैवं कुकृतं न तु स्वम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! उस समय रथपर बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्णने कर्णसे कहा—'राधानन्दन ! सौभाग्यकी बात है कि अब यहाँ तुम्हें धर्मकी याद आ रही है ! प्रायः यह देखनेमें आता है कि नीच मनुष्य विपत्तिमें पड़नेपर दैवकी ही निन्दा करते हैं। अपने किये हुए कुकर्मोंकी नहीं ॥ १ ॥

यद् द्रौपदीमेकवस्त्रां सभाया-
मानाययेस्त्वं च सुयोधनश्च।
दुःशासनः शकुनिः सौबलश्च
न ते कर्ण प्रत्यभात्तत्र धर्मः ॥ २ ॥

'कर्ण ! जब तुमने तथा दुर्योधन, दुःशासन और सुबल-पुत्र शकुनिने एक वस्त्र धारण करनेवाली रजस्वला द्रौपदीको सभामें बुलवाया था, उस समय तुम्हारे मनमें धर्मका विचार नहीं उठा था ? ॥ २ ॥

यदा सभायां राजानमनक्षज्ञं युधिष्ठिरम्।
अजैषीच्छकुनिर्ज्ञानात् क्व ते धर्मस्तदा गतः ॥ ३ ॥

'जब कौरवसभामें जूएके खेलका ज्ञान न रखनेवाले राजा युधिष्ठिरको शकुनिने जान-बूझकर छलपूर्वक हराया था, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था ? ॥ ३ ॥

वनवासे व्यतीते च कर्ण वर्षे त्रयोदशे।
न प्रयच्छसि यद् राज्यं क्व ते धर्मस्तदा गतः॥ ४ ॥

'कर्ण ! वनवासका तेरहवाँ वर्ष बीत जानेपर भी जब तुमने पाण्डवोंका राज्य उन्हें वापस नहीं दिया था, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था ? ॥ ४ ॥

यद् भीमसेनं सर्पैश्च विषयुक्तैश्च भोजनैः।
आचरत् त्वन्मते राजा क्व ते धर्मस्तदा गतः ॥ ५ ॥

'जब राजा दुर्योधनने तुम्हारी ही सलाह लेकर भीमसेनको जहर मिलाया हुआ अन्न खिलाया और उन्हें सर्पोंसे डँसवाया, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ गया था ? ॥ ५ ॥

यद् वारणावते पार्थान् सुप्ताञ्जतुगृहे तदा।
आदीपयस्त्वं राधेय क्व ते धर्मस्तदा गतः ॥ ६ ॥

'राधानन्दन ! उन दिनों वारणावतनगरमें लाक्षाभवनके भीतर सोये हुए कुन्तीकुमारोंको जब तुमने जलानेका प्रयत्न कराया था, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ गया था ? ॥ ६ ॥

यदा रजस्वलां कृष्णां दुःशासनवशे स्थिताम्।
सभायां प्राहसः कर्ण क्व ते धर्मस्तदा गतः ॥ ७ ॥

'कर्ण ! भरी सभामें दुःशासनके वशमें पड़ी हुई रजस्वला द्रौपदीको लक्ष्य करके जब तुमने उपहास किया था, तब तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था ? ॥ ७ ॥

यदनार्यैः पुरा कृष्णां क्लिश्यमानामनागसम्।
उपप्रेक्षसि राधेय क्व ते धर्मस्तदा गतः ॥ ८ ॥

'राधानन्दन ! पहले नीच कौरवोंद्वारा क्लेश पाती हुई निरपराध द्रौपदीको जब तुम निकटसे देख रहे थे, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ गया था ? ॥ ८ ॥

विनष्टाः पाण्डवाः कृष्णे शाश्वतं नरकं गताः।
पतिमन्यं वृणीष्वेति वदंस्त्वं गजगामिनीम् ॥ ९ ॥
उपप्रेक्षसि राधेय क्व ते धर्मस्तदा गतः।

'(याद है न, तुमने द्रौपदीसे कहा था) 'कृष्णे पाण्डव नष्ट हो गये, सदाके लिये नरकमें पड़ गये। अब तू किसी दूसरे पतिका वरण कर ले। जब तुम ऐसी बात कहते हुए गजगामिनी द्रौपदीको निकटसे आँखें फाड़-फाड़कर देख रहे थे, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था ? ॥ ९½ ॥

राज्यलुब्धः पुनः कर्ण समाव्ययसि पाण्डवान्।
यदा शकुनिमाश्रित्य क्व ते धर्मस्तदा गतः ॥ १० ॥

'कर्ण ! फिर राज्यके लोभमें पड़कर तुमने शकुनिकी सलाहके अनुसार जब पाण्डवोंको दुबारा जूएके लिये बुलवाया, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था ? ॥ १० ॥

यदाभिमन्युं बहवो युद्धे जघ्नुर्महारथाः।
परिवार्य रणे बालं क्व ते धर्मस्तदा गतः ॥ ११ ॥

'जब युद्धमें तुम बहुत-से महारथियोंने मिलकर बालक अभिमन्युको चारों ओरसे घेरकर मार डाला था, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था ?॥ ११ ॥

यद्येष धर्मस्तत्र न विद्यते हि
किं सर्वथा तालुविशोषणेन ।
अद्येह धर्म्याणि विधत्स्व सूत
तथापि जीवन्न विमोक्ष्यसे हि ॥ १२ ॥

'यदि उन अवसरोंपर यह धर्म नहीं था तो आज भी यहाँ सर्वथा धर्मकी दुहाई देकर तालु सुखानेसे क्या लाभ ? सूत ! अब यहाँ धर्मके कितने ही कार्य क्यों न कर डालो, तथापि जीते-जी तुम्हारा छुटकारा नहीं हो सकता ॥ १२ ॥

नलो ह्यक्षैर्निर्जितः पुष्करेण
पुनर्यशो राज्यमवाप वीर्यात् ।
प्राप्तास्तथा पाण्डवा बाहुवीर्यात्-
सर्वैः समेताः परिवृत्तलोभाः ॥ १३ ॥
निहत्य शत्रून् समरे प्रवृद्धान्
ससोमका राज्यमवाप्नुयुस्ते ।
तथा गता धार्तराष्ट्रा विनाशं
धर्माभिगुप्तैः सततं नृसिंहैः ॥ १४ ॥

'पुष्करने राजा नलको जूएमें जीत लिया था; किंतु उन्होंने अपने ही पराक्रमसे पुनः अपने राज्य और यश दोनोंको प्राप्त कर लिया। इसी प्रकार लोभशून्य पाण्डव भी अपनी भुजाओंके बलसे सम्पूर्ण सगे-सम्बन्धियोंके साथ रहकर समराङ्गणमें बढ़े-चढ़े शत्रुओंका संहार करके फिर अपना राज्य प्राप्त करेंगे। निश्चय ही ये सोमकोंके साथ अपने राज्यपर अधिकार कर लेंगे। पुरुषसिंह पाण्डव सदैव अपने धर्मसे सुरक्षित हैं; अतः इनके द्वारा अवश्य धृतराष्ट्रके पुत्रोंका नाश हो जायगा' ॥ १३-१४ ॥

संजय उवाच

एवमुक्तस्तदा कर्णो वासुदेवेन भारत ।
लज्जयावनतो भूत्वा नोत्तरं किञ्चिदुक्तवान् ॥ १५ ॥

संजय कहते हैं—भारत ! उस समय भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर कर्णने लज्जासे अपना सिर झुका लिया, उससे कुछ भी उत्तर देते नहीं बना ॥ १५ ॥

क्रोधात् प्रस्फुरमाणौष्ठो धनुरुद्यम्य भारत ।
योधयामास वै पार्थं महावेगपराक्रमः ॥ १६ ॥

भरतनन्दन ! वह महान् वेग और पराक्रमसे सम्पन्न हो क्रोधसे ओठ फड़फड़ाता हुआ धनुष उठाकर अर्जुनके साथ युद्ध करने लगा ॥ १६ ॥

ततोऽब्रवीद् वासुदेवः फाल्गुनं पुरुषर्षभम् ।
दिव्यास्त्रेणैव निर्भिद्य पातयस्व महाबल ॥ १७ ॥

तब वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णने पुरुषप्रवर अर्जुनसे इस प्रकार कहा— 'महाबली वीर ! तुम कर्णको दिव्यास्त्रसे ही घायल करके मार गिराओ' ॥ १७ ॥

एवमुक्तस्तु देवेन क्रोधमागात्तदार्जुनः ।
मन्युमभ्याविशद् घोरं स्मृत्वा तत्तु धनंजयः ॥ १८ ॥

भगवान्‌के ऐसा कहनेपर अर्जुन उस समय कर्णके प्रति अत्यन्त कुपित हो उठे। उसकी पिछली करतूतोंको याद करके उनके मनमें भयानक रोष जाग उठा ॥ १८ ॥

तस्य क्रुद्धस्य सर्वेभ्यः स्रोतोभ्यस्तेजसोऽर्चिषः ।
प्रादुरासंस्तदा राजंस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १९ ॥

कुपित होनेपर उनके सभी छिद्रोंसे—रोम-रोमसे आगकी चिनगारियाँ छूटने लगीं। राजन् ! उस समय यह एक अद्भुत-सी बात हुई ॥ १९ ॥

ततू समीक्ष्य ततः कर्णो ब्रह्मास्त्रेण धनंजयम् ।
अभ्यवर्षत् पुनर्यत्नमकरोद् रथसर्जने ॥ २० ॥

यह देख कर्णने अर्जुनपर ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करके बाणोंकी झड़ी लगा दी और पुनः रथको उठानेका प्रयत्न किया ॥

ब्रह्मास्त्रेणैव तं पार्थो ववर्ष शरवृष्टिभिः ।
तदस्त्रमस्त्रेणावार्य प्रजहार च पाण्डवः ॥ २१ ॥

तब पाण्डुपुत्र अर्जुनने भी ब्रह्मास्त्रसे ही उसके अस्त्रको दबाकर उसके ऊपर बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी और उसे अच्छी तरह घायल किया ॥ २१ ॥

ततोऽन्यदस्त्रं कौन्तेयो दयितं जातवेदसः ।
मुमोच कर्णमुद्दिश्य तत् प्रजज्वाल तेजसा ॥ २२ ॥

तदनन्तर कुन्तीकुमारने कर्णको लक्ष्य करके दूसरे दिव्यास्त्रका प्रयोग किया, जो जातवेदा अग्निका प्रिय अस्त्र था। वह आग्नेयास्त्र अपने तेजसे प्रज्वलित हो उठा ॥ २२ ॥

वारुणेन ततः कर्णः शमयामास पावकम् ।
जीमूतैश्च दिशः सर्वाश्चक्रे तिमिरदुर्दिनाः ॥ २३ ॥

परंतु कर्णने वारुणास्त्रका प्रयोग करके उस अग्निको बुझा दिया। साथ ही सम्पूर्ण दिशाओंमें मेघोंकी घटा घिर आयी और सब ओर अन्धकार छा गया ॥ २३ ॥

पाण्डवेयस्त्वसम्भ्रान्तो वायव्यास्त्रेण वीर्यवान् ।
अपोवाह तदाभ्राणि राधेयस्य प्रपश्यतः ॥ २४ ॥

पराक्रमी अर्जुन इससे विचलित नहीं हुए। उन्होंने राधापुत्र कर्णके देखते-देखते वायव्यास्त्रसे उन बादलोंको उड़ा दिया ॥ २४ ॥

ततः शरं महाघोरं ज्वलन्तमिव पावकम् ।
आददे पाण्डुपुत्रस्य सूतपुत्रो जिघांसया ॥ २५ ॥

तब सूतपुत्रने पाण्डुकुमार अर्जुनका वध करनेके लिये जलती हुई आगके समान एक महाभयंकर बाण हाथमें लिया ॥

योज्यमाने ततस्तस्मिन् बाणे धनुषि पूजिते ।
चचाल पृथिवी राजन् सशैलवनकानना ॥ २६ ॥

राजन् ! उस उत्तम बाणको धनुषपर चढ़ाते ही पर्वत, वन और काननोंसहित सारी पृथ्वी डगमगाने लगी ॥ २६ ॥

ववौ सशर्करो वायुर्दिशश्च रजसा वृताः ।

हाहाकारश्च संजज्ञे सुराणां दिवि भारत ॥ २७ ॥

भारत ! कंकड़ोंकी वर्षा करती हुई प्रचण्ड वायु चलने लगी । सम्पूर्ण दिशाओंमें धूल छा गयी और स्वर्गके देवताओंमें भी हाहाकार मच गया ॥ २७ ॥

तमिषुं संधितं दृष्ट्वा सूतपुत्रेण मारिष ।
विषादं परमं जग्मुः पाण्डवा दीनचेतसः ॥ २८ ॥

माननीय नरेश ! जब सूतपुत्रने उस बाणका संधान किया, उस समय उसे देखकर समस्त पाण्डव दीनचित्त हो बड़े भारी विषादमें डूब गये ॥ २८ ॥

स सायकः कर्णभुजप्रमुक्तः
शक्राशनिप्रख्यरुचिः शिताग्रः ॥ २९ ॥
भुजान्तरं प्राप्य धनंजयस्य
विवेश वल्मीकमिवोरगोत्तमः ।

कर्णके हाथसे छूटा हुआ वह बाण इन्द्रके वज्रके समान प्रकाशित हो रहा था । उसका अग्रभाग बहुत तेज था । वह अर्जुनकी छातीमें जा लगा और जैसे उत्तम सर्प बाँबीमें घुस जाता है, उसी प्रकार वह उनके वक्षःस्थलमें समा गया २९½

स गाढविद्धः समरे महात्मा
विघूर्णमानः श्लथहस्तगाण्डिवः॥ ३० ॥
चचाल बीभत्सुरमित्रमर्दनः
क्षितेः प्रकम्पे च यथाचलोत्तमः।

समराङ्गणमें उस बाणकी गहरी चोट खाकर महात्मा अर्जुनको चक्कर आ गया । गाण्डीव धनुषपर रक्खा हुआ उनका हाथ ढीला पड़ गया और वे शत्रुमर्दन अर्जुन भूकम्पके समय हिलते हुए श्रेष्ठ पर्वतके समान काँपने लगे ॥३०½॥

तदन्तरं प्राप्य वृषो महारथो
रथाङ्गमुर्वीगतमुज्जिहीर्षुः ॥ ३१ ॥
रथादवप्लुत्य निगृह्य दोर्भ्यां
शशाक दैवान्न महाबलोऽपि ।

इसी बीचमें मौका पाकर महारथी कर्णने धरतीमें धँसे हुए पहियेको निकालनेका विचार किया । वह रथसे कूद पड़ा और दोनों हाथोंसे पकड़कर उसे ऊपर उठानेकी कोशिश करने लगा; परंतु महाबलवान् होनेपर भी वह दैववश अपने प्रयासमें सफल न हो सका ॥ ३१½ ॥

ततः किरीटी प्रतिलभ्य संज्ञां
जग्राह बाणं यमदण्डकल्पम् ॥ ३२ ॥
ततोऽर्जुनः प्राञ्जलिकं महात्मा
ततोऽब्रवीद् वासुदेवोऽपि पार्थम् ।
छिन्ध्यस्य मूर्धानमरेः शरेण
न यावदारोहति वै रथं वृषः ॥ ३३ ॥

इसी समय होशमें आकर किरीटधारी महात्मा अर्जुनने यमदण्डके समान भयंकर अञ्जलिक नामक बाण हाथमें लिया । यह देख भगवान् श्रीकृष्णने भी अर्जुनसे कहा—'पार्थ ! कर्ण जबतक रथपर नहीं चढ़ जाता, तबतक ही अपने बाणके द्वारा इस शत्रुका मस्तक काट डालो' ॥ ३२-३३ ॥

तथैव सम्पूज्य स तद् वचः प्रभो-
स्ततः शरं प्रज्वलितं प्रगृह्य ।
जघान कक्षाममलार्कवर्णां
महारथे रथचक्रे विमग्ने ॥ ३४ ॥

तब 'बहुत अच्छा' कहकर अर्जुनने भगवान्की उस आज्ञाको सादर शिरोधार्य किया और उस प्रज्वलित बाणको हाथमें लेकर जिसका पहिया फँसा हुआ था, कर्णके उस विशाल रथपर फहराती हुई सूर्यके समान प्रकाशमान ध्वजापर प्रहार किया ॥ ३४ ॥

तं हस्तिकक्षाप्रवरं च केतुं
सुवर्णमुक्तामणिवज्रपृष्ठम् ।
ज्ञानप्रकर्षोत्तमशिल्पियुक्तैः
कृतं सुरूपं तपनीयचित्रम् ॥ ३५ ॥

हाथीकी साँकलके चिह्नसे युक्त उस श्रेष्ठ ध्वजाके पृष्ठभागमें सुवर्ण, मुक्ता, मणि और हीरे जड़े हुए थे । अत्यन्त ज्ञानवान् एवं उत्तम शिल्पियोंने मिलकर इस सुवर्णजटित सुन्दर ध्वजका निर्माण किया था ॥ ३५ ॥

जयास्पदं तव सैन्यस्य नित्य-
ममित्रवित्रासनमीड्यरूपम् ।
विख्यातमादित्यसमं स्म लोके
त्विषा समं पावकभानुचन्द्रैः ॥ ३६ ॥

वह विश्वविख्यात ध्वजा आपकी सेनाकी विजयका आधार स्तम्भ होकर सदा शत्रुओंको भयभीत करती रहती थी । उसका स्वरूप प्रशंसाके ही योग्य था । वह अपनी प्रभासे सूर्य, चन्द्रमा और अग्निकी समानता करती थी ॥ ३६ ॥

ततः क्षुरप्रेण सुसंशितेन
सुवर्णपुङ्खेन हुताग्निवर्चसा ।
श्रिया ज्वलन्तं ध्वजमुन्ममाथ
महारथस्याधिरथेः किरीटी ॥ ३७ ॥

किरीटधारी अर्जुनने सोनेके पंखवाले और आहुतिसे प्रज्वलित हुई अग्निके समान तेजस्वी उस तीखे क्षुरप्रसे महारथी कर्णके उस ध्वजको नष्ट कर दिया, जो अपनी प्रभासे निरन्तर देदीप्यमान होता रहता था ॥ ३७ ॥

यशश्च दर्पश्च तथा प्रियाणि
सर्वाणि कार्याणि च तेन केतुना ।
साकं कुरूणां हृदयानि चापतन्
बभूव हाहेति च निःस्वनो महान्॥ ३८ ॥

कटकर गिरते हुए उस ध्वजके साथ ही कौरवोंके यश, अभिमान, समस्त प्रिय कार्य तथा हृदयका भी पतन हो गया और चारों ओर महान् हाहाकार मच गया ॥ ३८ ॥

दृष्ट्वा ध्वजं पातितमाशुकारिणा
कुरुप्रवीरेण निकृत्तमाहवे ।

नाशंसिरे सूतपुत्रस्य सर्वे
जयं तदा भारत ये त्वदीयाः ॥ ३९ ॥

भारत ! शीघ्रकारी कौरव वीर अर्जुनके द्वारा युद्धस्थलमें उस ध्वजको काटकर गिराया हुआ देख उस समय आपके सभी सैनिकोंने सूतपुत्रकी विजयकी आशा त्याग दी ॥ ३९ ॥

अथ त्वरन् कर्णवधाय पार्थो
महेन्द्रवज्रानलदण्डसंनिभम् ।
आदत्त चाथाञ्जलिकं निषङ्गात्
सहस्ररश्मेरिव रश्मिमुत्तमम् ॥ ४० ॥

तदनन्तर कर्णके वधके लिये शीघ्रता करते हुए अर्जुनने अपने तरकससे एक अञ्जलिक नामक बाण निकाला, जो इन्द्रके वज्र और अग्निके दण्डके समान भयंकर तथा सूर्यकी एक उत्तम किरणके समान कान्तिमान् था ॥ ४० ॥

मर्मच्छिदं शोणितमांसदिग्धं
वैश्वानरार्कप्रतिमं महार्हम् ।
नराश्वनागासुहरं त्र्यरत्निं
षड्वाजमञ्जोगतिमुग्रवेगम् ॥ ४१ ॥
सहस्रनेत्राशनितुल्यवीर्यं
कालानलं व्यात्तमिवातिघोरम् ।
पिनाकनारायणचक्रसंनिभं
भयङ्करं प्राणभृतां विनाशनम् ॥ ४२ ॥

वह शत्रुके मर्मस्थलको छेदनेमें समर्थ, रक्त और मांससे लिप्त होनेवाला, अग्नि तथा सूर्यके तुल्य तेजस्वी, बहुमूल्य, मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंके प्राण लेनेवाला, मूठी बँधे हुए हाथसे तीन हाथ बड़ा, छः पंखोंसे युक्त, शीघ्रगामी, भयंकर वेगशाली, इन्द्रके वज्रके तुल्य पराक्रम प्रकट करनेवाला, मुँह बाये हुए कालाग्निके समान अत्यन्त भयानक, भगवान् शिवके पिनाक और नारायणके चक्र-सदृश भयदायक तथा प्राणियोंका विनाश करनेवाला था ॥ ४१-४२ ॥

जग्राह पार्थः स शरं प्रहृष्टो
यो देवसङ्घैरपि दुर्निवार्यः ।
सम्पूजितो यः सततं महात्मा
देवासुरान् यो विजयेन्महेषुः ॥ ४३ ॥

देवताओंके समुदाय भी जिनकी गतिको अनायास नहीं रोक सकते, जो सदा सबके द्वारा सम्मानित, महामनस्वी, विशाल बाण धारण करनेवाले और देवताओं तथा असुरोंपर भी विजय पानेमें समर्थ हैं, उन कुन्तीकुमार अर्जुनने अत्यन्त प्रसन्न होकर उस बाणको हाथमें लिया ॥ ४३ ॥

तं वै प्रमृष्टं प्रसमीक्ष्य युद्धे
चचाल सर्वं सचराचरं जगत् ।
स्वस्ति जगत् स्यादृषयः प्रचुक्रुशु-
स्तमुद्यतं प्रेक्ष्य महाहवेषुम् ॥ ४४ ॥

महायुद्धमें उस बाणको हाथमें लिया और ऊपर उठाया गया देख समस्त चराचर जगत् काँप उठा। ऋषिलोग जोर-जोरसे पुकार उठे कि 'जगत्का कल्याण हो !' ॥ ४४ ॥

ततस्तु तं वै शरमप्रमेयं
गाण्डीवधन्वा धनुषि व्ययोजयत् ।
युक्त्वा महास्त्रेण परेण चापं
विकृष्य गाण्डीवमुवाच सत्वरम् ॥ ४५ ॥

तत्पश्चात् गाण्डीवधारी अर्जुनने उस अप्रमेय शक्तिशाली बाणको धनुषपर रक्खा और उसे उत्तम एवं महान् दिव्यास्त्रसे अभिमन्त्रित करके तुरंत ही गाण्डीवको खींचते हुए कहा—॥

अयं महास्त्रप्रहितो महाशरः
शरीरहृच्चासुहरश्च दुर्हृदः ।
तपोऽस्ति तप्तं गुरवश्च तोषिता
मया यदीष्टं सुहृदां श्रुतं तथा ॥ ४६ ॥
अनेन सत्येन निहन्त्वयं शरः
सुसंहितः कर्णमरिं ममोर्जितम् ।
इत्यूचिवांस्तं प्रमुमोच बाणं
धनंजयः कर्णवधाय घोरम् ॥ ४७ ॥

'यह महान् दिव्यास्त्रसे प्रेरित महाबाण शत्रुके शरीर, हृदय और प्राणोंका विनाश करनेवाला है। यदि मैंने तप किया हो, गुरुजनोंको सेवाद्वारा संतुष्ट रक्खा हो, यज्ञ किया हो और हितैषी मित्रोंकी बातें ध्यान देकर सुनी हो तो इस सत्यके प्रभावसे यह अच्छी तरह संधान किया हुआ बाण मेरे शक्तिशाली शत्रु कर्णका नाश कर डाले, ऐसा कहकर धनंजयने उस घोर बाणको कर्णके वधके लिये छोड़ दिया ॥ ४६-४७ ॥

कृत्यामथर्वाङ्गिरसीमिवोग्रां
दीप्तामसह्यां युधि मृत्युनापि ।
ब्रुवन् किरीटी तमतिप्रहृष्टो
ह्ययं शरो मे विजयावहोऽस्तु ॥ ४८ ॥
जिघांसुरर्केन्दुसमप्रभावः
कर्णं मयास्तो नयतां यमाय ।

जैसे अथर्वाङ्गिरस मन्त्रोंद्वारा आभिचारिक प्रयोग करके उत्पन्न की हुई कृत्या उग्र, प्रज्वलित और युद्धमें मृत्युके लिये भी असह्य होती है, उसी प्रकार वह बाण भी था। किरीटधारी अर्जुन अत्यन्त प्रसन्न होकर उस बाणको लक्ष्य करके बोले—'मेरा यह बाण मुझे विजय दिलानेवाला हो। इसका प्रभाव चन्द्रमा और सूर्यके समान है। मेरा छोड़ा हुआ यह घातक अस्त्र कर्णको यमलोक पहुँचा दे' ॥ ४८½ ॥

तेनेषुवर्येण किरीटमाली
प्रहृष्टरूपो विजयावहेन ॥ ४९ ॥
जिघांसुरर्केन्दुसमप्रभेण
चक्रे विषक्तं रिपुमाततायी ।

किरीटधारी अर्जुन अत्यन्त प्रसन्न हो अपने शत्रुको मारनेकी इच्छासे आततायी बन गये थे। उन्होंने चन्द्रमा



कर्णवध

और सूर्यके समान प्रकाशित होनेवाले उस विजयदायक श्रेष्ठ बाणसे अपने शत्रुको बींध डाला ॥ ४९½ ॥

तथा विमुक्तो बलिनार्कतेजाः
प्रज्वालयामास दिशो नभश्च ।
ततोऽर्जुनस्तस्य शिरो जहार
वृत्रस्य वज्रेण यथा महेन्द्रः ॥ ५० ॥

बलवान् अर्जुनके द्वारा इस प्रकार छोड़ा हुआ वह सूर्यके तुल्य तेजस्वी बाण आकाश एवं दिशाओंको प्रकाशित करने लगा । जैसे इन्द्रने अपने वज्रसे वृत्रासुरका मस्तक काट लिया था, उसी प्रकार अर्जुनने उस बाणद्वारा कर्णका सिर धड़से अलग कर दिया ॥ ५० ॥

शरोत्तमेनाञ्जलिकेन राजं-
स्तदा महास्त्रप्रतिमन्त्रितेन ।
पार्थोऽपराह्णे शिर उच्चकर्त
वैकर्तनस्याथ महेन्द्रसूनुः ॥ ५१ ॥

राजन् ! महान् दिव्यास्त्रसे अभिमन्त्रित अञ्जलिक नामक उत्तम बाणके द्वारा इन्द्रपुत्र कुन्तीकुमार अर्जुनने अपराह्ण-कालमें वैकर्तन कर्णका सिर काट लिया ॥ ५१ ॥

तत् प्रापतच्चाञ्जलिकेन छिन्न-
मथास्य कायो निपपात पश्चात् ।
तदुद्यतादित्यसमानतेजसं
शरन्नभोमध्यगभास्करोपमम् ॥ ५२ ॥
वराङ्गमुर्व्यामपतच्चमूमुखे
दिवाकरोऽस्तादिव रक्तमण्डलः ।

अञ्जलिकसे कटा हुआ कर्णका वह मस्तक पृथ्वीपर गिर पड़ा । उसके बाद उसका शरीर भी धराशायी हो गया । जैसे लाल मण्डलवाला सूर्य अस्ताचलसे नीचे गिरता है, उसी प्रकार उदित सूर्यके समान तेजस्वी तथा शरत्कालीन आकाशके मध्यभागमें तपनेवाले भास्करके समान दुःसह वह मस्तक सेनाके अग्रभागमें पृथ्वीपर जा गिरा ॥ ५२½ ॥

ततोऽस्य देहं सततं सुखोचितं
सुरूपमत्यर्थमुदारकर्मणः ॥ ५३ ॥
परेण कृच्छ्रेण शिरः समत्यजद्
गृहं महर्द्धीव ससङ्गमीश्वरः ।

तदनन्तर सदा सुख भोगनेके योग्य, उदारकर्मा कर्णके उस अत्यन्त सुन्दर शरीरको उसके मस्तकने बड़ी कठिनाईसे छोड़ा । ठीक उसी तरह, जैसे धनवान् पुरुष अपने समृद्धि-शाली घरको और मन एवं इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाला पुरुष सत्सङ्गको बड़े कष्टसे छोड़ पाता है ॥ ५३½ ॥

शरैर्विभिन्नं व्यसु तत् सुवर्चसः
पपात कर्णस्य शरीरमुच्छ्रितम् ॥ ५४ ॥
स्रवद्व्रणं गैरिकतोयविस्रवं
गिरेर्यथा वज्रहतं महाशिरः ।
देहाच्च कर्णस्य निपातितस्य
तेजः सूर्यं खं विततत्याविवेश ॥ ५५ ॥

तेजस्वी कर्णका वह ऊँचा शरीर बाणोंसे क्षत-विक्षत हो घावोंसे खूनकी धारा बहाता हुआ प्राणशून्य होकर गिर पड़ा, मानो वज्रके आघातसे भग्न हुआ किसी पर्वतका विशाल शिखर गेरुमिश्रित जलकी धारा बहा रहा हो । धरतीपर गिराये गये कर्णके शरीरसे एक तेज निकलकर आकाशमें फैल गया और ऊपर जाकर सूर्यमण्डलमें विलीन हो गया ५४-५५

तदद्भुतं सर्वमनुष्ययोधाः
संदृष्टवन्तो निहते स्म कर्णे ।
ततः शङ्खान् पाण्डवा दध्मुरुच्चै-
र्दृष्ट्वा कर्णं पातितं फाल्गुनेन ॥ ५६ ॥

इस अद्भुत दृश्यको वहाँ खड़े हुए सब लोगोंने अपनी आँखों देखा था । कर्णके मारे जानेपर उसे अर्जुनद्वारा गिराया हुआ देख पाण्डवोंने उच्चस्वरसे शङ्ख बजाया ॥ ५६ ॥

तथैव कृष्णश्च धनंजयश्च
हृष्टौ यमौ दध्मतुर्वारिजातौ ।
तं सोमकाः प्रेक्ष्य हतं शयानं
सैन्यैः सार्धं सिंहनादान् प्रचक्रुः ॥ ५७ ॥

इसी प्रकार श्रीकृष्ण, अर्जुन तथा हर्षमें भरे हुए नकुल-सहदेवने भी शङ्ख बजाये । सोमकगण कर्णको मरकर गिरा हुआ देख अपनी सेनाओंके साथ सिंहनाद करने लगे ॥५७॥

तूर्याणि संजघ्नुरतीव हृष्टा
वासांसि चैवादुधुवुर्भुजांश्च ।
संवर्धयन्तश्च नरेन्द्र योधाः
पार्थं समाजग्मुरतीव हृष्टाः ॥ ५८ ॥

वे बड़े हर्षमें भरकर बाजे-बजाने और कपड़े तथा हाथ हिलाने लगे । नरेन्द्र ! अत्यन्त हर्षमें भरे हुए पाण्डव योद्धा अर्जुनको बधाई देते हुए उनके पास आकर मिले ॥ ५८ ॥

बलान्विताश्चापरे ह्यप्यनृत्य-
न्नन्योन्यमाश्लिष्य नदन्त ऊचुः ।
दृष्ट्वा तु कर्णं भुवि वा विपन्नं
कृत्तं रथात् सायकैरर्जुनस्य ॥ ५९ ॥

अर्जुनके बाणोंसे छिन्न-भिन्न एवं प्राणशून्य हुए कर्णको रथसे नीचे पृथ्वीपर गिरा देख दूसरे बलवान् सैनिक एक दूसरेको गलेसे लगाकर नाचते और गर्जते हुए बातें करते थे ॥ ५९ ॥

महानिलेनाद्रिमिवापविद्धं
यज्ञावसानेऽग्निमिव प्रशान्तम् ।
रराज कर्णस्य शिरो निकृत्त-
मस्तं गतं भास्करस्येव बिम्बम् ॥ ६० ॥

कर्णका वह कटा हुआ मस्तक वायुके वेगसे टूटकर गिरे हुए पर्वतखण्डके समान, यज्ञके अन्तमें बुझी हुई अग्निके सदृश तथा अस्ताचलपर पहुँचे हुए सूर्यके बिम्बकी भाँति सुशोभित हो रहा था ॥ ६० ॥

शरैराचितसर्वाङ्गः शोणितौघपरिप्लुतः ।
विभाति देहः कर्णस्य स्वरश्मिभिरिवांशुमान्॥ ६१ ॥

सभी अङ्गोंमें बाणोंसे व्याप्त और खूनसे लथपथ हुआ कर्णका शरीर अपनी किरणोंसे प्रकाशित होनेवाले अंशुमाली सूर्यके समान शोभा पा रहा था ॥ ६१ ॥

प्रताप्य सेनामामित्रीं दीप्तैः शरगभस्तिभिः ।
बलिनार्जुनकालेन नीतोऽस्तं कर्णभास्करः ॥ ६२ ॥

बाणमयी उद्दीप्त किरणोंसे शत्रुकी सेनाको तपाकर कर्ण-रूपी सूर्य बलवान् अर्जुनरूपी कालसे प्रेरित हो अस्ताचलको जा पहुँचा ॥ ६२ ॥

अस्तं गच्छन् यथादित्यः प्रभामादाय गच्छति ।
तथा जीवितमादाय कर्णस्येषुर्जगाम सः ॥ ६३ ॥

जैसे अस्ताचलको जाता हुआ सूर्य अपनी प्रभाको लेकर चला जाता है, उसी प्रकार वह बाण कर्णके प्राण लेकर चला गया॥

अपराह्णेऽपराह्णोऽस्य सूतपुत्रस्य मारिष ।
छिन्नमञ्जलिकेनाजौ सोत्सेधमपतच्छिरः ॥ ६४ ॥

माननीय नरेश ! दान देते समय जो दूसरे दिनके लिये वादा नहीं करता था, उस सूतपुत्र कर्णका अञ्जलिक नामक बाणसे कटा हुआ देहसहित मस्तक अपराह्णकालमें धराशायी हो गया॥

उपर्युपरि सैन्यानामस्य शत्रोस्तदञ्जसा ।
शिरः कर्णस्य सोत्सेधमिषुः सोऽप्यहरद् द्रुतम्॥ ६५ ॥

उस बाणने सारी सेनाके ऊपर-ऊपर जाकर अर्जुनके शत्रुभूत कर्णके शरीरसहित मस्तकको वेगपूर्वक अनायास ही काट डाला था ॥ ६५ ॥

कर्णं तु शूरं पतितं पृथिव्यां
शराचितं शोणितदिग्धगात्रम् ।
दृष्ट्वा शयानं भुवि मद्रराज-
श्छिन्नध्वजेनाथ ययौ रथेन ॥ ६६ ॥

शूरवीर कर्णको बाणसे व्याप्त और खूनसे लथपथ होकर पृथ्वीपर पड़ा हुआ देख मद्रराज शल्य उस कटी हुई ध्वजा-वाले रथके द्वारा ही वहाँसे भाग खड़े हुए ॥ ६६ ॥

हते कर्णे कुरवः प्राद्रवन्त
भयार्दिता गाढविद्धाश्च संख्ये ।
अवेक्षमाणा मुहुरर्जुनस्य
ध्वजं महान्तं वपुषा ज्वलन्तम् ॥ ६७ ॥

कर्णके मारे जानेपर युद्धमें अत्यन्त घायल हुए कौरव-सैनिक अर्जुनके प्रज्वलित होते हुए महान् ध्वजको बारंबार देखते हुए भयसे पीड़ित हो भागने लगे ॥ ६७ ॥

सहस्रनेत्रप्रतिमानकर्मणः
सहस्रपत्रप्रतिमाननं शुभम् ।
सहस्ररश्मिर्दिनसंक्षये यथा
तथापतत् कर्णशिरो वसुंधराम् ॥ ६८ ॥

सहस्रनेत्रधारी इन्द्रके समान पराक्रमी कर्णका सहस्रदल कमलके समान वह सुन्दर मस्तक उसी प्रकार पृथ्वीपर गिर पड़ा, जैसे सायंकालमें सहस्र किरणोंवाले सूर्यका मण्डल अस्त हो जाता है ॥ ६८ ॥

(व्यूढोरस्कं कमलनयनं तप्तहेमावभासं
कर्णं दृष्ट्वा भुवि निपतितं पार्थबाणाभितप्तम् ।
पांशुग्रस्तं मलिनमसकृत् पुत्रमन्वीक्षमाणो
मन्दं मन्दं व्रजति सविता मन्दिरं मन्दरश्मिः॥)

जिसकी छाती चौड़ी और नेत्र कमलके समान सुन्दर थे तथा कान्ति तपाये हुए सुवर्णके समान जान पड़ती थी, वह कर्ण अर्जुनके बाणोंसे संतप्त हो धरतीपर पड़ा, धूलमें सना मलिन हो गया था । अपने उस पुत्रकी ओर बारंबार देखते हुए मन्द किरणोंवाले सूर्यदेव धीरे-धीरे अपने मन्दिर (अस्ताचल) की ओर जा रहे थे ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णवधे एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्णवधविषयक इक्यानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९१ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ६९ श्लोक हैं)

द्विनवतितमोऽध्यायः

कौरवोंका शोक, भीम आदि पाण्डवोंका हर्ष, कौरव-सेनाका पलायन और दुःखित शल्यका दुर्योधनको सान्त्वना देना

संजय उवाच

शल्यस्तु कर्णार्जुनयोर्विमर्दे
बलानि दृष्ट्वा मृदितानि बाणैः ।
ययौ हते चाधिरथौ पदानुगे
रथेन संछिन्नपरिच्छदेन ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! कर्ण और अर्जुनके संग्राममें बाणोंद्वारा सारी सेनाएँ रौंद डाली गयी थीं और अधिरथपुत्र कर्ण पैदल होकर मारा गया था। यह सब देखकर राजा शल्य, जिसका आवरण एवं अन्य सारी सामग्री नष्ट कर दी गयी थी, उस रथके द्वारा वहाँसे चल दिये ॥ १ ॥

निपातितस्यन्दनवाजिनागं
बलं च दृष्ट्वा हतसूतपुत्रम् ।
दुर्योधनोऽश्रुप्रतिपूर्णनेत्रो
दीनो मुहुर्निःश्वसंश्चार्तरूपः ॥ २ ॥

कौरव-सेनाके रथ, घोड़े और हाथी मार डाले गये थे । सूतपुत्रका भी वध कर दिया गया था । उस अवस्थामें उस सेनाको देखकर दुर्योधनकी आँखोंमें आँसू भर आये और वह बारंबार लंबी साँस खींचता हुआ दीन एवं दुखी हो गया ॥

कर्णं तु शूरं पतितं पृथिव्यां
शराचितं शोणितदिग्धगात्रम्।
यदृच्छया सूर्यमिवावनिस्थं
दिदृक्षवः सम्परिवार्य तस्थुः ॥ ३ ॥

शूरवीर कर्ण पृथ्वीपर पड़ा हुआ था। उसके शरीरमें बहुत-से बाण व्याप्त हो रहे थे तथा सारा अङ्ग खूनसे लथपथ हो रहा था। उस अवस्थामें दैवेच्छासे पृथ्वीपर उतरे हुए सूर्यके समान उसे देखनेके लिये सब लोग उसकी लाशको घेरकर खड़े हो गये ॥ ३ ॥

प्रहृष्टवित्रस्तविषण्णविस्मिता-
स्तथा परे शोकहता इवाभवन्।
परे त्वदीयाश्च परस्परेण
यथायथैषां प्रकृतिस्तथाभवन् ॥ ४ ॥

कोई प्रसन्न था तो कोई भयभीत। कोई विषादग्रस्त था तो कोई आश्चर्यचकित तथा दूसरे बहुत-से लोग शोकसे मृतप्राय हो रहे थे। आपके और शत्रुपक्षके सैनिकोंमेंसे जिसकी जैसी प्रकृति थी, वे परस्पर उसी भावमें मग्न थे ॥ ४ ॥

प्रविद्धवर्माभरणाम्बरायुधं
धनंजयेनाभिहतं महौजसम्।
निशाम्य कर्णं कुरवः प्रदुद्रुवु-
र्हतर्षभा गाव इवाजने वने ॥ ५ ॥

जिसके कवच, आभूषण, वस्त्र और अस्त्र-शस्त्र छिन्न-भिन्न होकर पड़े थे, उस महाबली कर्णको अर्जुनद्वारा मारा गया देख कौरवसैनिक निर्जन वनमें साँड़के मारे जानेपर भागनेवाली गायोंके समान इधर-उधर भाग चले ॥ ५ ॥

भीमश्च भीमेन तदा स्वनेन
नादं कृत्वा रोदसीः कम्पयानः।
आस्फोटयन् वल्गते नृत्यते च
हते कर्णे त्रासयन् धार्तराष्ट्रान् ॥ ६ ॥

कर्णके मारे जानेपर धृतराष्ट्रके पुत्रोंको भयभीत करते हुए भीमसेन भयंकर स्वरसे सिंहनाद करके आकाश और पृथ्वीको कँपाने तथा ताल ठोंककर नाचने-कूदने लगे ॥ ६ ॥

तथैव राजन् सोमकाः सृञ्जयाश्च
शङ्खान् दध्मुः सस्वजुश्चापि सर्वे।
परस्परं क्षत्रिया हृष्टरूपाः
सूतात्मजे वै निहते तदानीम् ॥ ७ ॥

राजन्! इसी प्रकार समस्त सोमक और संजय भी शङ्ख बजाने और एक दूसरेको छातीसे लगाने लगे। सूतपुत्रके मारे जानेपर उस समय पाण्डवदलके सभी क्षत्रिय परस्पर हर्षमग्न हो रहे थे ॥ ७ ॥

कृत्वा विमर्दं महदर्जुनेन
कर्णो हतः केसरिणेव नागः।
तीर्णा प्रतिज्ञा पुरुषर्षभेण
वैरस्यान्तं गतवांश्चापि पार्थः ॥ ८ ॥

जैसे सिंह हाथीको पछाड़ देता है, उसी प्रकार पुरुषप्रवर अर्जुनने बड़ी भारी मार-काट मचाकर कर्णका वध किया, अपनी प्रतिज्ञा पूरी की और उन्होंने वैरका अन्त कर दिया ॥ ८ ॥

मद्राधिपश्चापि विमूढचेता-
स्तूर्णं रथेनापकृतध्वजेन।
दुर्योधनस्यान्तिकमेत्य राजन्
सबाष्पदुःखाद् वचनं बभाषे ॥ ९ ॥

राजन्! जिसकी ध्वजा काट दी गयी थी, उस रथके द्वारा मद्रराज शल्य भी विमूढ़चित्त होकर तुरंत दुर्योधनके पास गये और दुःखसे आँसू बहाते हुए इस प्रकार बोले— ॥

विशीर्णनागाश्वरथप्रवीरं
बलं त्वदीयं यमराष्ट्रकल्पम्।
अन्योन्यमासाद्य हतं महद्भि-
र्नराश्वनागैर्गिरिकूटकल्पैः ॥ १० ॥

'नरेश्वर! तुम्हारी सेनाके हाथी, घोड़े, रथ और प्रमुख वीर नष्ट-भ्रष्ट हो गये। सारी सेनामें यमराजका राज्य-सा हो गया है। पर्वतशिखरोंके समान विशाल हाथी, घोड़े और पैदल मनुष्य एक दूसरेसे टक्कर लेकर अपने प्राण खो बैठे हैं ॥

नैतादृशं भारत युद्धमासीद्
यथा तु कर्णार्जुनयोर्बभूव।
ग्रस्तौ हि कर्णेन समेत्य कृष्णा-
वन्ये च सर्वे तव शत्रवो ये ॥ ११ ॥

'भारत! आज कर्ण और अर्जुनमें जैसा युद्ध हुआ है, वैसा पहले कभी नहीं हुआ था। कर्णने धावा करके श्रीकृष्ण, अर्जुन तथा तुम्हारे अन्य सब शत्रुओंको भी प्रायः प्राणोंके संकटमें डाल दिया था; परंतु कोई फल नहीं निकला ॥

दैवं ध्रुवं पार्थवशात् प्रवृत्तं
यत् पाण्डवान् पाति हिनस्ति चास्मान्।
तवार्थसिद्ध्यर्थकरास्तु सर्वे
प्रसह्य वीरा निहता द्विषद्भिः ॥ १२ ॥

'निश्चय ही दैव कुन्तीपुत्रोंके अधीन होकर काम कर रहा है, क्योंकि वह पाण्डवोंकी तो रक्षा करता है और हमारा विनाश। यही कारण है कि तुम्हारे अर्थकी सिद्धिके लिये प्रयत्न करनेवाले प्रायः सभी वीर शत्रुओंके हाथसे बलपूर्वक मारे गये ॥ १२ ॥

कुबेरवैवस्वतवासवानां
तुल्यप्रभावा नृपते सुवीराः।
वीर्येण शौर्येण बलेन तेजसा
तैस्तैस्तु युक्ता विविधैर्गुणौघैः ॥ १३ ॥

'राजन्! तुम्हारी सेनाके श्रेष्ठ वीर कुबेर, यम और इन्द्रके समान प्रभावशाली तथा बल, पराक्रम, शौर्य, तेज एवं अन्य नाना प्रकारके गुणसमूहोंसे सम्पन्न थे ॥ १३ ॥

अवध्यकल्पा निहता नरेन्द्रा-
स्तवार्थकामा युधि पाण्डवेयैः।

तस्मा शुचो भारत दिष्टमेतत्
पर्याश्वस त्वं न सदास्ति सिद्धिः ॥१४॥

'जो-जो राजा तुम्हारे स्वार्थकी सिद्धि चाहनेवाले और अवध्यके समान थे, उन सबको पाण्डवोंने युद्धमें मार डाला। अतः भारत ! तुम शोक न करो। यह सब प्रारब्धका खेल है। सबको सदा ही सिद्धि नहीं मिलती, ऐसा जानकर धैर्य धारण करो' ॥ १४ ॥

एतद् वचो मद्रपतेर्निशम्य
स्वं चाप्यनीतं मनसा निरीक्ष्य।
दुर्योधनो दीनमना विसंज्ञः
पुनः पुनर्न्यश्वसदार्तरूपः ॥ १५ ॥

मद्रराज शल्यकी ये बातें सुनकर और अपने अन्यायपर भी मन-ही-मन दृष्टि डालकर दुर्योधन बहुत उदास एवं दुखी हो गया। वह अत्यन्त पीड़ित और अचेत-सा होकर बारंबार लंबी उसाँसें भरने लगा ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि शल्यप्रत्यागमने द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें शल्यका युद्धसे प्रत्यागमनविषयक बानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९२ ॥

त्रिनवतितमोऽध्यायः

भीमसेनद्वारा पच्चीस हजार पैदल सैनिकोंका वध, अर्जुनद्वारा रथसेनाका विध्वंस, कौरवसेनाका पलायन और दुर्योधनका उसे रोकनेके लिये विफल प्रयास

धृतराष्ट्र उवाच

तस्मिंस्तु कर्णार्जुनयोर्विमर्दे
दग्धस्य रौद्रेऽहनि विद्रुतस्य।
बभूव रूपं कुरुसृञ्जयानां
बलस्य बाणोन्मथितस्य कीदृक् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! कर्ण और अर्जुनके उस संग्राममें, जब कि सबके लिये भयानक दिन उपस्थित हुआ था, बाणोंकी आगसे दग्ध और उन्मथित होकर भागती हुई कौरवसेना तथा सृंजयसेनाकी कैसी अवस्था हुई ? ॥ १ ॥

संजय उवाच

शृणु राजन्नवहितो यथा वृत्तो महाक्षयः।
घोरो मनुष्यदेहानामाजौ च गजवाजिनाम् ॥ २ ॥

संजयने कहा—राजन् ! उस युद्धस्थलमें मनुष्यके शरीरों, हाथियों और घोड़ोंका जैसा घोर एवं महान् विनाश हुआ, वह सब सावधान होकर सुनिये ॥ २ ॥

यत्र कर्णे हते पार्थः सिंहनादमथाकरोत्।
तदा तव सुतान् राजन्नाविवेश महद् भयम् ॥ ३ ॥

महाराज ! कर्णके मारे जानेपर अर्जुनने महान् सिंहनाद किया, उस समय आपके पुत्रोंके मनमें बड़ा भारी भय समा गया ॥ ३ ॥

न संधातुमनीकानि न चैवाशु पराक्रमे।
आसीद् बुद्धिर्हते कर्णे तव योधस्य कर्हिचित्॥ ४ ॥

जब कर्णका वध हो गया, तब आपके किसी भी योद्धाका मन कदापि जल्दी पराक्रम दिखानेमें नहीं लगा और न सेनाको संगठित रखनेकी ओर ही किसीका ध्यान गया ॥४॥

वणिजो नावि भिन्नायामगाधे विप्लवे यथा।
अपारे पारमिच्छन्तो हते द्वीपे किरीटिना ॥ ५ ॥

अगाध एवं अपार समुद्रमें तूफान उठनेपर जब जहाज फट जाता है, उस समय पार जानेकी इच्छावाले व्यापारियोंकी जैसी अवस्था होती है, वही दशा किरीटधारी अर्जुनके द्वारा द्वीपस्वरूप कर्णके मारे जानेपर कौरवोंकी हुई ॥ ५ ॥

सूतपुत्रे हते राजन् वित्रस्ताः शस्त्रविक्षताः।
अनाथा नाथमिच्छन्तो मृगाः सिंहैरिवार्दिताः ॥ ६ ॥

राजन् ! सूतपुत्रका वध हो जानेपर सिंहसे पीड़ित हुए मृगोंके समान कौरवसैनिक भयभीत हो उठे। वे अस्त्र-शस्त्रोंसे घायल हो गये थे और अनाथ होकर अपने लिये कोई रक्षक चाहते थे ॥ ६ ॥

भग्नशृङ्गा वृषा यद्वद् भग्नदंष्ट्रा इवोरगाः।
प्रत्यपायाम सायाह्ने निर्जिताः सव्यसाचिना ॥ ७ ॥

हम सब लोग सायंकालमें सव्यसाची अर्जुनसे परास्त होकर शिबिरकी ओर लौटे थे। उस समय हमारी दशा उन बैलोंके समान हो रही थी, जिनके सींग तोड़ दिये गये हों। हम उन सर्पोंके समान हो गये थे, जिनके विषैले दाँत नष्ट कर दिये गये हों ॥ ७ ॥

हतप्रवीरा विध्वस्ता निकृत्ता निशितैः शरैः।
सूतपुत्रे हते राजन् पुत्रास्ते दुद्रुवुर्भयात् ॥ ८ ॥

राजन् ! सूतपुत्रके मारे जानेपर पैने बाणोंसे क्षत-विक्षत एवं पराजित हुए आपके पुत्र भयके मारे भागने लगे। उनके प्रमुख वीर रणभूमिमें मारे जा चुके थे ॥ ८ ॥

विस्रस्तयन्त्रकवचाः कांदिग्भूता विचेतसः।
अन्योन्यमवमृद्नन्तो वीक्षमाणा भयार्दिताः ॥ ९ ॥

उनके यन्त्र और कवच गिर गये थे। वे अचेत होकर यह भी नहीं सोच पाते थे कि हम भागकर किस दिशामें जायँ ? एक दूसरेको कुचलते और चारों ओर देखते हुए भयसे पीड़ित हो गये थे ॥ ९ ॥

मामेव नूनं बीभत्सुर्मामेव च वृकोदरः।
अभियातीति मन्वानाः पेतुर्म्लुश्च सम्भ्रमात् ॥ १० ॥

'निश्चय अर्जुन मेरा ही पीछा कर रहे हैं। भीमसेन मेरी ही ओर चढ़े आ रहे हैं' ऐसा मानते हुए कौरव सैनिक

घबराहटमें पड़कर गिर जाते थे। वे सब-के-सब उदास हो गये थे ॥ १० ॥

हयानन्ये गजानन्ये रथानन्ये महारथाः।
आरुह्य जवसम्पन्नाः पदातीन् प्रजहुर्भयात् ॥ ११ ॥

कुछ लोग घोड़ोंपर, कुछ हाथियोंपर और कुछ दूसरे महारथी रथोंपर आरूढ़ हो भयके मारे बड़े वेगसे भागने लगे। उन्होंने पैदल सैनिकोंको वहीं छोड़ दिया ॥११॥

कुञ्जरैः स्यन्दनाः क्षुण्णाः सादिनश्च महारथैः।
पदातिसंघाश्चाश्वौघैः पलायद्भिर्भयार्दितैः ॥ १२ ॥

भयभीत होकर भागते हुए हाथियोंने रथोंको चकनाचूर कर दिया। विशाल रथपर बैठे हुए महारथियोंने घुड़सवारोंको कुचल दिया और अश्वसमुदायोंने पैदलसमूहोंके कचूमर निकाल दिये ॥ १२ ॥

व्यालतस्करसंकीर्णे सार्थहीना यथा वने।
सूतपुत्रे हते राजंस्तव योधास्तथाभवन् ॥ १३ ॥

राजन्! जैसे सर्पों और चोरों-बटमारोंसे भरे हुए वनमें अपने दलसे बिछुड़े हुए लोग अनाथ हो भारी विपत्तिमें पड़ जाते हैं, सूतपुत्र कर्णके मारे जानेपर आपके योद्धाओंकी भी वैसी ही दशा हो गयी ॥ १३ ॥

हतारोहा यथा नागाश्छिन्नहस्ता यथा नराः।
सर्वे पार्थमयं लोकं सम्पश्यन्तो भयार्दिताः ॥ १४ ॥

जिनके सवार मारे गये हों वे हाथी और जिनके हाथ काट लिये गये हों वे मनुष्य जैसी दुरवस्थामें पड़ जाते हैं, वैसी ही दशामें पड़कर समस्त कौरव भयसे पीड़ित हो सारे जगत्को अर्जुनमय देखने लगे ॥ १४ ॥

सम्प्रेक्ष्य द्रवतः सर्वान् भीमसेनभयार्दितान्।
दुर्योधनोऽथ स्वं सूतं हा हा कृत्वेदमब्रवीत् ॥ १५ ॥

महाराज! उस समय अपने समस्त योद्धाओंको भीमसेनके भयसे व्याकुल हो भागते देख दुर्योधनने हाहाकार करके अपने सारथिसे कहा—॥ १५ ॥

नातिक्रमेच्च मां पार्थो धनुष्पाणिमवस्थितम्।
जघने सर्वसैन्यानां शनैरश्वान् प्रचोदय ॥ १६ ॥

'सूत! तुम धीरे-धीरे रथ आगे बढ़ाओ। मैं सम्पूर्ण सेनाओंके पीछे जब हाथमें धनुष लेकर खड़ा होऊँगा, उस समय अर्जुन मुझे लाँघकर आगे नहीं बढ़ सकते ॥ १६ ॥

युध्यमानं हि कौन्तेयं हनिष्यामि न संशयः।
नोत्सहेन्मामतिक्रान्तुं वेलामिव महोदधिः ॥ १७ ॥

'यदि वे मुझसे युद्ध करेंगे तो मैं उन्हें निःसंदेह मार गिराऊँगा। जैसे महासागर अपनी तटभूमिको लाँघकर आगे नहीं बढ़ता, उसी प्रकार वे भी मुझे लाँघ नहीं सकते ॥१७॥

अद्यार्जुनं सगोविन्दं मानिनं च वृकोदरम्।
हन्यां शिष्टांस्तथा शत्रून् कर्णस्यानृण्यमाप्नुयाम्॥१८॥

'आज मैं अर्जुन, श्रीकृष्ण और उस घमंडी भीमसेनको तथा बचे-खुचे दूसरे शत्रुओंको भी मार डालूँ, तभी कर्णके ऋणसे मुक्त हो सकता हूँ' ॥ १८ ॥

तच्छ्रुत्वा कुरुराजस्य शूरार्यसदृशं वचः।
सूतो हेमपरिच्छन्नाञ्शनैरश्वानचोदयत् ॥ १९ ॥

कुरुराज दुर्योधनकी वह श्रेष्ठ शूरवीरोंके योग्य बात सुनकर सारथिने सोनेके साज-बाजसे सजे हुए घोड़ोंको धीरे-धीरे आगे बढ़ाया ॥ १९ ॥

रथाश्वनागहीनास्तु पादातास्तव मारिष।
पञ्चविंशतिसाहस्रा युद्धायैव व्यवस्थिताः ॥ २० ॥

माननीय नरेश! उस समय रथों, घोड़ों और हाथियोंसे रहित आपके केवल पचीस हजार पैदल सैनिक ही युद्धके लिये डटे हुए थे ॥ २० ॥

तान् भीमसेनः संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।
बलेन चतुरङ्गेण संवृत्याजघ्नतुः शरैः ॥ २१ ॥

उन सबको क्रोधमें भरे हुए भीमसेन और द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्नने अपनी चतुरङ्गिणी सेनाद्वारा चारों ओरसे घेरकर बाणोंसे मारना आरम्भ किया ॥ २१ ॥

प्रत्ययुध्यन्त समरे भीमसेनं सपार्षतम्।
पार्थपार्षतयोश्चान्ये जगृहुस्तत्र नामनी ॥ २२ ॥

वे भी समराङ्गणमें भीमसेन और धृष्टद्युम्नका डटकर सामना करने लगे। उनमेंसे कितने ही योद्धा भीमसेन और धृष्टद्युम्नके नाम ले-लेकर उन्हें युद्धके लिये ललकारने लगे ॥

अक्रुध्यत रणे भीमस्तैस्तदा पर्यवस्थितैः।
सोऽवतीर्य रथात्तूर्णं गदापाणिरयुध्यत ॥ २३ ॥

उस समय भीमसेन रणमें कुपित हो उठे और तुरंत ही रथसे नीचे उतरकर हाथमें गदा ले वहाँ खड़े हुए पैदल-सैनिकोंके साथ युद्ध करने लगे ॥ २३ ॥

न तान् रथस्थो भूमिष्ठान् धर्मापेक्षी वृकोदरः।
योधयामास कौन्तेयो भुजवीर्यव्यपाश्रयः ॥ २४ ॥

कुन्तीनन्दन भीमसेन युद्धधर्मका पालन करनेवाले थे, इसलिये उन्होंने स्वयं रथपर बैठकर भूमिपर खड़े हुए पैदल-सैनिकोंके साथ युद्ध नहीं किया। उन्हें अपने बाहुबलका पूरा भरोसा था ॥ २४ ॥

जातरूपपरिच्छन्नां प्रगृह्य महतीं गदाम्।
अवधीत्तावकान् सर्वान् दण्डपाणिरिवान्तकः॥ २५ ॥

वे दण्डपाणि यमराजके समान सुवर्णजटित विशाल गदा हाथमें लेकर आपके समस्त सैनिकोंका वध करने लगे ॥२५॥

पदातिनोऽपि संत्यज्य प्रियं जीवितमात्मनः।
भीममभ्यद्रवन् संख्ये पतङ्गा ज्वलनं यथा ॥ २६ ॥

वे पैदल सैनिक भी अपने प्यारे प्राणोंका मोह छोड़कर उस युद्धस्थलमें भीमसेनकी ओर उसी प्रकार दौड़े, जैसे पतंग आगपर टूट पड़ते हैं ॥ २६ ॥

आसाद्य भीमसेनं तु संरब्धा युद्धदुर्मदाः।

विनेशुः सहसा दृष्ट्वा भूतग्रामा इवान्तकम् ॥ २७ ॥

जैसे प्राणियोंके समुदाय यमराजको देखते ही प्राण त्याग देते हैं, उसी प्रकार वे रोषभरे रणदुर्मद सैनिक भीमसेनसे टक्कर लेकर सहसा नष्ट हो गये ॥ २७ ॥

श्येनवद् विचरन् भीमो गदाहस्तो महाबलः ।
पञ्चविंशतिसाहस्रांस्तावकान् समपोथयत् ॥ २८ ॥

हाथमें गदा लिये बाजके समान विचरते हुए महाबली भीमसेनने आपके उन पचीसों हजार सैनिकोंको मार गिराया ॥

हत्वा तत्पुरुषानीकं भीमः सत्यपराक्रमः ।
धृष्टद्युम्नं पुरस्कृत्य तस्थौ तत्र महाबलः ॥ २९ ॥

सत्यपराक्रमी महाबली भीमसेन उस पैदल सेनाका संहार करके धृष्टद्युम्नको आगे किये वहीं खड़े रहे ॥ २९ ॥

धनंजयो रथानीकमभ्यवर्तत वीर्यवान् ।
माद्रीपुत्रौ तु शकुनिं सात्यकिश्च महारथः ॥ ३० ॥
जवेनाभ्यपतन् हृष्टा घ्नन्तो दौर्योधनं बलम् ।

दूसरी ओर पराक्रमी अर्जुनने रथसेनापर आक्रमण किया। माद्रीकुमार नकुल-सहदेव और महारथी सात्यकि हर्षमें भरकर दुर्योधनकी सेनाका संहार करते हुए बड़े वेगसे शकुनिपर टूट पड़े ॥ ३०½ ॥

तस्याश्वसादीन् सुबहूंस्ते निहत्य शितैः शरैः ॥ ३१ ॥
समभ्यधावंस्त्वरितास्तत्र युद्धमभून्महत् ।

वे अपने पैने बाणोंद्वारा उसके बहुत-से घुड़सवारोंको मारकर तुरंत ही उसकी ओर भी दौड़े । फिर तो वहाँ बड़ा भारी युद्ध होने लगा ॥ ३१½ ॥

धनंजयोऽपि चाभ्येत्य रथानीकं तव प्रभो ॥ ३२ ॥
विश्रुतं त्रिषु लोकेषु गाण्डीवं व्याक्षिपद् धनुः ।

प्रभो ! अर्जुन भी आपकी रथसेनाके समीप जाकर त्रिभुवनविख्यात गाण्डीव धनुषकी टंकार करने लगे ॥३२½॥

कृष्णसारथिमायान्तं दृष्ट्वा श्वेतहयं रथम् ॥ ३३ ॥
अर्जुनं चापि योद्धारं त्वदीयाः प्राद्रवन् भयात् ।

श्रीकृष्ण जिसके सारथि हैं, उस श्वेत घोड़ोंवाले रथ और अर्जुन-जैसे रथी योद्धाको आते देख आपके सैनिक भयसे भागने लगे ॥ ३३½ ॥

विप्रहीणरथाश्चैव शरैश्च परिकर्षिताः ॥ ३४ ॥
पञ्चविंशतिसाहस्राः कालमार्छन् पदातयः ।

बहुतोंके रथ नष्ट हो गये और कितने ही बाणोंकी मारसे अत्यन्त घायल हो गये । इस प्रकार पचीस हजार पैदल सैनिक कालके गालमें चले गये ॥ ३४½ ॥

हत्वा तान् पुरुषव्याघ्रः पञ्चालानां महारथः ॥ ३५ ॥
पुत्रः पाञ्चालराजस्य धृष्टद्युम्नो महामनाः ।
भीमसेनं पुरस्कृत्य नचिरात् प्रत्यदृश्यत ॥ ३६ ॥
महाधनुर्धरः श्रीमानमित्रगणतापनः ।

पाञ्चालराजकुमार, पाञ्चाल महारथी और महामनस्वी पुरुषसिंह धृष्टद्युम्न उन पैदल सैनिकोंका संहार करके भीमसेनको आगे किये शीघ्र ही वहाँ दिखायी दिये । वे महाधनुर्धर, तेजस्वी और शत्रुसमूहोंको संताप देनेवाले हैं ॥ ३५-३६½ ॥

पारावतसवर्णाश्वं कोविदारमयध्वजम् ॥ ३७ ॥
धृष्टद्युम्नं रणे दृष्ट्वा त्वदीयाः प्राद्रवन् भयात् ।

धृष्टद्युम्नके रथके घोड़े कबूतरके समान रंगवाले थे, उनकी ध्वजापर कचनारके वृक्षका चिह्न था । धृष्टद्युम्नको रणमें उपस्थित देख आपके योद्धा भयसे भाग खड़े हुए ३७½

गान्धारराजं शीघ्रास्त्रमनुसृत्य यशस्विनौ ॥ ३८ ॥
नचिरात् प्रत्यदृश्येतां माद्रीपुत्रौ ससात्यकी ।

गान्धारराज शकुनि शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चला रहा था, यशस्वी माद्रीकुमार नकुल-सहदेव और सात्यकि तुरंत ही उसका पीछा करते दिखायी दिये ॥ ३८½ ॥

चेकितानः शिखण्डी च द्रौपदेयाश्च मारिष ॥ ३९ ॥
हत्वा त्वदीयं सुमहत् सैन्यं शङ्खांस्तथाधमन् ।

माननीय नरेश ! चेकितान, शिखण्डी और द्रौपदीके पाँचों पुत्र आपकी विशाल सेनाका विनाश करके शङ्ख बजाने लगे ॥ ३९½ ॥

ते सर्वे तावकान् प्रेक्ष्य द्रवतोऽपि पराङ्मुखान् ॥४०॥
अभ्यवर्तन्त संरब्धान् वृषाञ्जित्वा यथा वृषाः ।

उन सबने आपके सैनिकोंको पीठ दिखाकर भागते देख उनका उसी प्रकार पीछा किया, जैसे साँड़ रोषमें भरे हुए दूसरे साँड़ोंको जीतकर उन्हें खदेड़ने लगते हैं ॥ ४०½ ॥

सेनावशेषं तं दृष्ट्वा तव सैन्यस्य पाण्डवः ॥ ४१ ॥
व्यवस्थितः सव्यसाची चुक्रोध बलवान् नृप ।
धनंजयो रथानीकमभ्यवर्तत वीर्यवान् ॥ ४२ ॥
विश्रुतं त्रिषु लोकेषु व्याक्षिपद् गाण्डिवं धनुः ।

नरेश्वर ! उस समय वहाँ खड़े हुए बलवान् पराक्रमी सव्यसाची पाण्डुपुत्र अर्जुन आपकी सेनाका कुछ भाग अवशिष्ट देखकर कुपित हो उठे और अपने त्रिलोकविख्यात गाण्डीवधनुषकी टंकार करते हुए आपकी रथसेनापर जा चढ़े ॥ ४१-४२½ ॥

तत एनाञ्शरव्रातैः सहसा समवाकिरत् ॥ ४३ ॥
तमसा संवृतेनाथ न स्म किंचिद् व्यदृश्यत ।

उन्होंने अपने बाणसमूहोंद्वारा उन सबको सहसा आच्छादित कर दिया । उस समय सब ओर अन्धकार फैल गया; अतः कुछ भी दिखायी नहीं देता था ॥ ४३½ ॥

अन्धकारीकृते लोके रजोभूते महीतले ॥ ४४ ॥
योधाः सर्वे महाराज तावकाः प्राद्रवन् भयात् ।

महाराज ! इस प्रकार जब जगत्में अँधेरा छा गया और भूतलपर धूल-ही-धूल उड़ने लगी, तब आपके समस्त योद्धा भयभीत होकर भाग गये ॥ ४४½ ॥

सम्भज्यमाने सैन्ये तु कुरुराजो विशाम्पते ॥ ४५ ॥

परानभिमुखांश्चैव सुतस्ते समुपाद्रवत्।
ततो दुर्योधनः सर्वानाजुहावाथ पाण्डवान् ॥ ४६ ॥
युद्धाय भरतश्रेष्ठ देवानिव पुरा बलिः।

प्रजानाथ ! आपकी सेनामें भगदड़ मच जानेपर आपके पुत्र कुरुराज दुर्योधनने अपने सामने खड़े हुए शत्रुओंपर धावा किया। भरतश्रेष्ठ ! जैसे पूर्वकालमें राजा बलिने देवताओंको युद्धके लिये ललकारा था, उसी प्रकार दुर्योधनने भी समस्त पाण्डवोंका युद्धके लिये आह्वान किया ॥४५-४६½॥

त एनमभिगर्जन्तः सहिताः समुपाद्रवन् ॥ ४७ ॥
नानाशस्त्रभृतः क्रुद्धा भर्त्सयन्तो मुहुर्मुहुः।

तब नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण किये कुपित पाण्डव सैनिक एक साथ गर्जना करते हुए वहाँ दुर्योधनपर टूट पड़े और बारंबार उसे फटकारने लगे ॥ ४७½ ॥

दुर्योधनोऽप्यसम्भ्रान्तस्तान् रणे निशितैः शरैः ॥४८॥
तत्रावधीत्ततः क्रुद्धः शतशोऽथ सहस्रशः।
तत् सैन्यं पाण्डवेयानां योधयामास सर्वतः ॥ ४९ ॥

इससे दुर्योधनको तनिक भी घबराहट नहीं हुई। वह रणभूमिमें कुपित हो पैने बाणोंसे शत्रुपक्षके सैकड़ों और हजारों योद्धाओंका संहार करने लगा। वह सब ओर घूम-घूमकर पाण्डवसेनाके साथ जूझ रहा था ॥ ४८-४९ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम तव पुत्रस्य पौरुषम्।
यदेकः सहितान् सर्वान् रणेऽयुध्यत पाण्डवान्॥५०॥

राजन् ! वहाँ हमलोगोंने आपके पुत्रका यह अद्भुत पुरुषार्थ देखा कि उसने अकेले ही रणभूमिमें एक साथ आये हुए समस्त पाण्डवोंका डटकर सामना किया ॥ ५० ॥

ततोऽपश्यन्महात्मा स स्वसैन्यं भृशदुःखितम्।
ततोऽवस्थाप्य राजेन्द्र कृतबुद्धिस्तवात्मजः ॥ ५१ ॥
हर्षयन्निव तान् योधानिदं वचनमब्रवीत्।

राजेन्द्र ! उस समय आपके बुद्धिमान् पुत्र महामनस्वी दुर्योधनने अपनी सेनाको जब बहुत दुखी देखा, तब उन सबको सुस्थिर करके उनका हर्ष बढ़ाते हुए इस प्रकार कहा—॥ ५१½ ॥

न तं देशं प्रपश्यामि यत्र याता भयार्दिताः ॥ ५२ ॥
गतानां यत्र वै मोक्षः पाण्डवात् किं गतेन वः।
अल्पं च बलमेतेषां कृष्णौ च भृशविक्षतौ ॥ ५३ ॥
अद्य सर्वान् हनिष्यामि ध्रुवो हि विजयो भवेत्।

'योद्धाओ ! तुम भयसे पीड़ित हो रहे हो। परंतु मैं ऐसा कोई स्थान नहीं देखता, जहाँ तुम भागकर जाओ और वहाँ जानेपर तुम्हें पाण्डुपुत्र अर्जुन या भीमसेनसे छुटकारा मिल जाय। ऐसी दशामें तुम्हारे भागनेसे क्या लाभ है ? इन शत्रुओंके पास थोड़ी-सी ही सेना बच गयी है। श्रीकृष्ण और अर्जुन भी बहुत घायल हो चुके हैं; अतः आज मैं इन सब लोगोंको मार डालूँगा। हमारी विजय अवश्य होगी ॥५२-५३½॥

विप्रयातांस्तु वो भिन्नान् पाण्डवाः कृतकिल्बिषान्५४
अनुसृत्य वधिष्यन्ति श्रेयान् नः समरे वधः।

'यदि तुम अलग-अलग होकर भागोगे तो पाण्डव तुम सब अपराधियोंका पीछा करके तुम्हें मार डालेंगे। ऐसी दशामें युद्धमें मारा जाना ही हमारे लिये श्रेयस्कर है ॥ ५४½ ॥

सुखं सांग्रामिको मृत्युः क्षत्रधर्मेण युध्यताम् ॥५५॥
मृतो दुःखं न जानीते प्रेत्य चानन्त्यमश्नुते।

'क्षत्रियधर्मके अनुसार युद्ध करनेवाले वीरोंकी संग्राममें सुखपूर्वक मृत्यु होती है। वहाँ मरे हुएको मृत्युके दुःखका अनुभव नहीं होता और परलोकमें जानेपर उसे अक्षय सुखकी प्राप्ति होती है ॥ ५५½ ॥

शृणुध्वं क्षत्रियाः सर्वे यावन्तः स्थ समागताः ॥५६॥
यदा शूरं च भीरुं च मारयत्यन्तको यमः।
को नु मूढो न युध्येत मादृशः क्षत्रियव्रतः ॥ ५७ ॥

'तुम जितने क्षत्रिय वीर यहाँ आये हो सभी कान खोलकर सुन लो। जब प्राणियोंका अन्त करनेवाला यमराज शूरवीर और कायर दोनोंको ही मार डालता है, तब मेरे-जैसा क्षत्रियव्रतका पालन करनेवाला होकर भी कौन ऐसा मूर्ख होगा, जो युद्ध नहीं करेगा ? ॥ ५६-५७ ॥

द्विषतो भीमसेनस्य क्रुद्धस्य वशमेष्यथ।
पितामहैराचरितं न धर्मं हातुमर्हथ ॥ ५८ ॥

'हमारा शत्रु भीमसेन क्रोधमें भरा हुआ है। यदि भागोगे तो उसके वशमें पड़कर मारे जाओगे; अतः अपने बाप-दादोंके द्वारा आचरणमें लाये हुए क्षत्रिय-धर्मका परित्याग न करो॥

न ह्यधर्मोऽस्ति पापीयान् क्षत्रियस्य पलायनात्।
न युद्धधर्माच्छ्रेयो हि पन्थाः स्वर्गस्य कौरवाः।
अचिरेण हता लोकान् सद्यो योधाः समश्नुत॥ ५९ ॥

'कौरववीरो ! क्षत्रियके लिये युद्धसे पीठ दिखाकर भागनेसे बढ़कर दूसरा कोई महान् पाप नहीं है तथा युद्ध-धर्मके पालनसे बढ़कर दूसरा कोई स्वर्गकी प्राप्तिका कल्याणकारी मार्ग भी नहीं है; अतः योद्धाओ ! तुम युद्धमें मारे जाकर शीघ्र ही उत्तम लोकोंके सुखका अनुभव करो' ॥५९॥

संजय उवाच

एवं ब्रुवति पुत्रे ते सैनिका भृशविक्षताः।
अनवेक्ष्यैव तद्वाक्यं प्राद्रवन् सर्वतो दिशः ॥ ६० ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! आपका पुत्र इस प्रकार व्याख्यान देता ही रह गया; किंतु अत्यन्त घायल हुए सैनिक उसकी बातपर ध्यान दिये बिना ही सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग गये ॥ ६० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कौरवसैन्यपलायने त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कौरवसेनाका पलायनविषयक तिरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९३ ॥

चतुर्नवतितमोऽध्यायः

शल्यके द्वारा रणभूमिका दिग्दर्शन, कौरवसेनाका पलायन और श्रीकृष्ण तथा अर्जुनका शिविरकी ओर गमन

संजय उवाच

दृष्ट्वा तु सैन्यं परिवर्त्यमानं
पुत्रेण ते मद्रपतिस्तदानीम्।
संत्रस्तरूपः परिमूढचेता
दुर्योधनं वाक्यमिदं बभाषे॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! आपके पुत्रद्वारा सेनाको पुनः लौटानेका प्रयत्न होता देख उस समय भयभीत और मूढ़चित्त हुए मद्रराज शल्यने दुर्योधनसे इस प्रकार कहा॥ १॥

शल्य उवाच

पश्येदमुग्रं नरवाजिनागै-
रायोधनं वीरहतैः सुपूर्णम्।
महीधराभैः पतितैश्च नागैः
सकृत्प्रभिन्नैः शरभिन्नदेहैः॥ २॥
सुविह्वलद्भिश्च गतासुभिश्च
प्रध्वस्तवर्मायुधचर्मखड्गैः।
वज्रापविद्धैरिव चाचलोत्तमै-
र्विभिन्नपाषाणमहाद्रुमौषधैः॥ ३॥
प्रविद्धघण्टाङ्कुशतोमरध्वजैः
सहेमजालै रुधिरौघसम्प्लुतैः।
शरावभिन्नैः पतितैस्तुरङ्गमैः
श्वसद्भिरार्तैः क्षतजं वमद्भिः॥ ४॥
दीनं स्तनद्भिः परिवृत्तनेत्रै-
र्महीं दशद्भिः कृपणं नदद्भिः।
तथापविद्धैर्गजवाजियोधैः
शरापविद्धैरथ वीरसंघैः॥ ५॥
मन्दासुभिश्चैव गतासुभिश्च
नराश्वनागैश्च रथैश्च मर्दितैः।
मन्दांशुभिश्चैव मही महाहवे
नूनं यथा वैतरणीव भाति॥ ६॥

शल्य बोले—वीर नरेश! देखो, मारे गये मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंकी लाशोंसे भरा हुआ यही युद्धस्थल कैसा भयंकर जान पड़ता है? पर्वताकार गजराज, जिनके मस्तकोंसे मदकी धारा फूटकर बहती थी, एक ही साथ बाणोंकी मारसे शरीर विदीर्ण हो जानेके कारण धराशायी हो गये हैं। उनमेंसे कितने ही वेदनासे छटपटा रहे हैं, कितनोंके प्राण निकल गये हैं। उनपर बैठे हुए सवारोंके कवच, अस्त्र-शस्त्र, ढाल और तलवार आदि नष्ट हो गये हैं। इन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो वज्रके आघातसे बड़े-बड़े पर्वत ढह गये हों और उनके प्रस्तरखण्ड, विशाल वृक्ष तथा औषध-समूह छिन्न-भिन्न हो गये हों। उन गजराजोंके घंटा, अङ्कुश, तोमर और ध्वज आदि सभी वस्तुएँ बाणोंके आघातसे टूट-फूटकर बिखर गयी हैं। उन हाथियोंके ऊपर सोनेकी जालीसे युक्त आवरण पड़ा है। उनकी लाशें रक्तके प्रवाहसे नहा गयी हैं। घोड़े बाणोंसे विदीर्ण होकर गिरे हैं, वेदनासे व्यथित हो उच्छ्वास लेते और मुखसे रक्त वमन करते हैं। वे दीनतापूर्ण आर्तनाद कर रहे हैं। उनकी आँखें घूम रही हैं। वे धरतीमें दाँत गड़ाते और करुण चीत्कार करते हैं। हाथी, घोड़े, पैदल सैनिक तथा वीरसमुदाय बाणोंसे क्षत-विक्षत हो मरे पड़े हैं। किन्हींकी साँसें कुछ-कुछ चल रही हैं और कुछ लोगोंके प्राण सर्वथा निकल गये हैं। हाथी, घोड़े, मनुष्य और रथ कुचल दिये गये हैं। इन सबकी कान्ति मन्द पड़ गयी है। इनके कारण उस महासमरकी भूमि निश्चय ही वैतरणीके समान प्रतीत होती है॥ २—६॥

गजैर्निकृत्तैर्वरहस्तगात्रै-
रुद्वेपमानैः पतितैः पृथिव्याम्।
विशीर्णदन्तैः क्षतजं वमद्भिः
स्फुरद्भिरार्तैः करुणं नदद्भिः॥ ७॥

हाथियोंके शुण्डदण्ड और शरीर छिन्न-भिन्न हो गये हैं। कितने ही हाथी पृथ्वीपर गिरकर काँप रहे हैं, कितनोंके दाँत टूट गये हैं और वे खून उगलते तथा छटपटाते हुए वेदनाग्रस्त हो करुण स्वरमें कराह रहे हैं॥ ७॥

निकृत्तचक्रेषुयुगैः सयोक्त्रभिः
प्रविद्धतूणीरपताककेतुभिः।
सुवर्णजालावततैर्भृशाहतै-
र्महारथौघैर्जलदैरिवावृता॥ ८॥

बड़े-बड़े रथोंके समूह इस रणभूमिमें बादलोंके समान छा गये हैं। उनके पहिये, बाण, जूए और बन्धन कट गये हैं। तरकस, ध्वज और पताकाएँ फेंकी पड़ी हैं; सोनेके जालसे आवृत हुए वे रथ बहुत ही क्षतिग्रस्त हो गये हैं॥

यशस्विभिर्नागरथाश्वयोधिभिः
पदातिभिश्चाभिमुखैर्हतैः परैः।
विशीर्णवर्माभरणाम्बरायुधै-
र्वृता प्रशान्तैरिव तावकैर्मही॥ ९॥

हाथी, रथ और घोड़ोंपर सवार होकर युद्ध करनेवाले यशस्वी योद्धा और पैदल वीर सामने लड़ते हुए शत्रुओंके हाथसे मारे गये हैं। उनके कवच, आभूषण, वस्त्र और आयुध सभी छिन्न-भिन्न होकर बिखर गये हैं। इस प्रकार शान्त पड़े हुए आपके प्राणहीन योद्धाओंसे यह पृथ्वी पट गयी है॥ ९॥

शरप्रहाराभिहतैर्महाबलै-
रवेक्ष्यमाणैः पतितैः सहस्रशः ।
दिवश्च्युतैर्भूरतिदीप्तिमद्भि-
र्नक्तं ग्रहैर्द्यौरमलप्रदीप्तैः ॥ १० ॥

बाणोंके प्रहारसे घायल होकर गिरे हुए सहस्रों महाबली योद्धा आकाशसे नीचे गिरे हुए अत्यन्त दीप्तिमान् एवं निर्मल प्रभासे प्रकाशित ग्रहोंके समान दिखायी देते हैं और उनसे ढकी हुई यह भूमि रातके समय उन ग्रहोंसे व्याप्त हुए आकाशके सदृश सुशोभित होती है ॥ १० ॥

प्रणष्टसंज्ञैः पुनरुच्छ्वसद्भि-
र्मही बभूवानुगतैरिवाग्निभिः ।
कर्णार्जुनाभ्यां शरभिन्नगात्रै-
र्हतैः प्रवीरैः कुरुसृञ्जयानाम् ॥ ११ ॥

कर्ण और अर्जुनके बाणोंसे जिनके अङ्ग-अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गये हैं, उन मारे गये कौरव-सृंजय वीरोंकी लाशोंसे भरी हुई भूमि यज्ञमें स्थापित हुई अग्नियोंके द्वारा यज्ञभूमिके समान सुशोभित होती है । उनमेंसे कितने ही वीरोंकी चेतना लुप्त हो गयी है और कितने ही पुनः साँस ले रहे हैं ॥ ११॥

शरास्तु कर्णार्जुनबाहुमुक्ता
विदार्य नागाश्वमनुष्यदेहान् ।
प्राणान् निरस्याशु महीं प्रतीयु-
र्महोरगा वासमिवातिताम्राः ॥ १२ ॥

कर्ण और अर्जुनके हाथोंसे छूटे हुए बाण हाथी, घोड़े और मनुष्योंके शरीरोंको विदीर्ण करके उनके प्राण निकालकर तुरंत पृथ्वीमें घुस गये थे, मानो अत्यन्त लाल रंगके विशाल सर्प अपनी बिलमें जा घुसे हों ॥ १२ ॥

हतैर्मनुष्याश्वगजैश्च संख्ये
शरापविद्धैश्च रथैर्नरेन्द्र ।
धनंजयस्याधिरथेश्च मार्गणै-
रगम्यरूपा वसुधा बभूव ॥ १३ ॥

नरेन्द्र ! अर्जुन और कर्णके बाणोंद्वारा मारे गये हाथी, घोड़े एवं मनुष्योंसे तथा बाणोंसे नष्ट-भ्रष्ट होकर गिरे पड़े रथोंसे इस पृथ्वीपर चलना-फिरना असम्भव हो गया है ॥ १३॥

रथैर्वरेषून्मथितैः सुकल्पैः
सयोधशस्त्रैश्च वरायुधैर्ध्वजैः ।
विशीर्णयोक्त्रैर्विनिकृत्तबन्धनै-
र्निकृत्तचक्राक्षयुगत्रिवेणुभिः ॥ १४ ॥

सजे-सजाये रथ बाणोंके आघातसे मथ डाले गये हैं । उनके साथ जो योद्धा, शस्त्र, श्रेष्ठ आयुध और ध्वज आदि थे, उनकी भी यही दशा हुई है । उनके पहिये, बन्धन-रज्जु, धुरे, जूए और त्रिवेणु काष्ठके भी टुकड़े-टुकड़े हो गये हैं ॥

विमुक्तशस्त्रैश्च तथा व्युपस्करै-
र्हतानुकर्षैर्विनिषङ्गबन्धनैः ।
प्रभग्ननीडैर्मणिहेमभूषितैः
स्तृता मही द्यौरिव शारदैर्घनैः ॥ १५॥

उनपर जो अस्त्र-शस्त्र रक्खे गये थे, वे सब दूर जा पड़े हैं । सारी सामग्री नष्ट हो गयी है । अनुकर्ष, तूणीर और बन्धनरज्जु—ये सब-के-सब नष्ट-भ्रष्ट हो गये हैं । उन रथोंकी बैठकें टूट-फूट गयी हैं । सुवर्ण और मणियोंसे विभूषित उन रथोंद्वारा आच्छादित हुई पृथ्वी शरद्ऋतुके बादलोंसे ढके हुए आकाशके समान जान पड़ती है ॥ १५ ॥

विकृष्यमाणैर्जवनैस्तुरङ्गमै-
र्हतेश्वरै राजरथैः सुकल्पितैः ।
मनुष्यमातङ्गरथाश्वराशिभि-
र्द्रुतं व्रजन्तो बहुधा विचूर्णिताः ॥ १६॥

जिनके स्वामी (रथी) मारे गये हैं, राजाओंके उन सुसज्जित रथोंको, जब वेगशाली घोड़े खींचे लिये जाते थे और झुंड-के-झुंड मनुष्य, हाथी, साधारण रथ और अश्व भी भागे जा रहे थे, उस समय उनके द्वारा शीघ्रतापूर्वक भागनेवाले बहुत-से मनुष्य कुचलकर चूर-चूर हो गये हैं ॥ १६ ॥

सहेमपट्टाः परिघाः परश्वधाः
शिताश्च शूला मुसलानि मुद्गराः ।
पेतुश्च खड्गा विमला विकोशा
गदाश्च जाम्बूनदपट्टनद्धाः ॥ १७ ॥

सुवर्ण-पत्रसे जड़े गये परिघ, फरसे, तीखे शूल, मुसल, मुद्गर, म्यानसे बाहर निकाली हुई चमचमाती तलवारें और स्वर्णजटित गदाएँ जहाँ-तहाँ बिखरी पड़ी हैं ॥ १७ ॥

चापानि रुक्माङ्गदभूषणानि
शराश्च कार्तस्वरचित्रपुङ्खाः ।
ऋष्टयश्च पीता विमला विकोशाः
प्रासाश्च दण्डैः कनकावभासैः ॥ १८ ॥
छत्राणि वालव्यजनानि शङ्खा-
श्छिन्नापविद्धाश्च स्रजो विचित्राः ।

सुवर्णमय अङ्गदोंसे विभूषित धनुष, सोनेके विचित्र पंखवाले बाण, ऋष्टि, पानीदार एवं कोशरहित निर्मल खड्ग तथा सुनहरे डंडोंसे युक्त प्रास, छत्र, चँवर, शङ्ख और विचित्र मालाएँ छिन्न-भिन्न होकर फेंकी पड़ी हैं ॥ १८½ ॥

कुथाः पताकाम्बरभूषणानि
किरीटमाला मुकुटाश्च शुभ्राः ॥ १९ ॥
प्रकीर्णका विप्रकीर्णाश्च राजन्
प्रवालमुक्तातरलाश्च हाराः ।

राजन् ! हाथीकी पीठपर बिछाये जानेवाले कम्बल या झूल, पताका, वस्त्र, आभूषण, किरीटमाला, उज्ज्वल मुकुट, श्वेत चामर, मूँगे और मोतियोंके हार—ये सब-के-सब इधर-उधर बिखरे पड़े हैं ॥ १९½ ॥

आपीडकेयूरवराङ्गदानि
ग्रैवेयनिष्काः ससुवर्णसूत्राः ॥ २० ॥
मण्युत्तमा वज्रसुवर्णमुक्ता
रत्नानि चोच्चावचमङ्गलानि ।

गात्राणि चात्यन्तसुखोचितानि
शिरांसि चेन्दुप्रतिमाननानि ॥ २१ ॥
देहांश्च भोगांश्च परिच्छदांश्च
त्यक्त्वा मनोज्ञानि सुखानि चैव ।
स्वधर्मनिष्ठां महतीमवाप्य
व्याप्याशु लोकान् यशसा गतास्ते ॥ २२ ॥

शिरोभूषण, केयूर, सुन्दर अङ्गद, गलेके हार, पदक, सोनेकी जंजीर, उत्तम मणि, हीरे, सुवर्ण तथा मुक्ता आदि छोटे-बड़े माङ्गलिक रत्न, अत्यन्त सुख भोगनेके योग्य शरीर, चन्द्रमाको भी लज्जित करनेवाले मुखसे युक्त मस्तक, देह, भोग, आच्छादन-वस्त्र तथा मनोरम सुख—इन सबको त्यागकर स्वधर्मकी पराकाष्ठाका पालन करते हुए सम्पूर्ण लोकोंमें अपने यशका विस्तार करके वे वीर सैनिक दिव्य लोकोंमें पहुँच गये हैं ॥

निवर्त दुर्योधन यान्तु सैनिका
व्रजस्व राजञ्शिबिराय मानद ।
दिवाकरोऽप्येष विलम्बते प्रभो
पुनस्त्वमेवात्र नरेन्द्र कारणम् ॥ २३ ॥

दूसरोंको सम्मान देनेवाले राजा दुर्योधन ! अब लौटो । इन सैनिकोंको भी जाने दो । शिविरमें चलो । प्रभो ! ये भगवान् सूर्य भी अस्ताचलपर लटक रहे हैं । नरेन्द्र ! तुम्हीं इस नर-संहारके प्रधान कारण हो ॥ २३ ॥

इत्येवमुक्त्वा विरराम शल्यो
दुर्योधनं शोकपरीतचेताः ।
हा कर्ण हा कर्ण इति ब्रुवाण-
मार्तं विसंज्ञं भृशमश्रुनेत्रम् ॥ २४ ॥

दुर्योधनसे ऐसा कहकर राजा शल्य चुप हो गये। उनका चित्त शोकसे व्याकुल हो रहा था । दुर्योधन भी आर्त होकर 'हा कर्ण ! हा कर्ण !' पुकारने लगा । वह सुध-बुध खो बैठा था। उसके नेत्रोंसे वेगपूर्वक आँसुओंकी अविरल धारा बह रही थी ॥

तं द्रोणपुत्रप्रमुखा नरेन्द्राः
सर्वे समाश्वास्य मुहुः प्रयान्ति ।
निरीक्षमाणा मुहुरर्जुनस्य
ध्वजं महान्तं यशसा ज्वलन्तम् ॥ २५ ॥

द्रोणपुत्र अश्वत्थामा तथा अन्य सभी नरेश बारंबार आकर दुर्योधनको सान्त्वना देते और अर्जुनके महान् ध्वजको, जो उनके उज्ज्वल यशसे प्रकाशित हो रहा था, देखते हुए फिर लौट जाते थे ॥ २५ ॥

नराश्वमातङ्गशरीरजेन
रक्तेन सिक्तां च तथैव भूमिम् ।
रक्ताम्बरस्रक्तपनीययोगा-
न्नारीं प्रकाशामिव सर्वगम्याम् ॥ २६ ॥

मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंके शरीरसे बहते हुए रक्तकी धारासे वहाँकी भूमि ऐसी सिंच गयी थी कि लालवस्त्र, लाल फूलोंकी माला तथा तपाये हुए सुवर्णके आभूषण धारण करके सबके सामने आयी हुई सर्वगम्या नारी (वेश्या) के समान प्रतीत होती थी ॥ २६ ॥

प्रच्छन्नरूपां रुधिरेण राजन्
रौद्रे मुहूर्तेऽतिविराजमाने ।
नैवावतस्थुः कुरवः समीक्ष्य
प्रव्राजिता देवलोकाय सर्वे ॥ २७ ॥

राजन् ! अत्यन्त शोभा पानेवाले उस रौद्रमुहूर्त (सायंकाल) में, रुधिरसे जिसका स्वरूप छिप गया था, उस भूमिको देखते हुए कौरवसैनिक वहाँ ठहर न सके । वे सब-के-सब देवलोककी यात्राके लिये उद्यत थे ॥ २७ ॥

वधेन कर्णस्य तु दुःखितास्ते
हा कर्ण हा कर्ण इति ब्रुवाणाः ।
द्रुतं प्रयाताः शिबिराणि राजन्
दिवाकरं रक्तमवेक्षमाणाः ॥ २८ ॥

महाराज ! समस्त कौरव कर्णके वधसे अत्यन्त दुखी हो 'हा कर्ण ! हा कर्ण !' की रट लगाते और लाल सूर्यकी ओर देखते हुए बड़े वेगसे शिबिरकी ओर चले ॥ २८ ॥

गाण्डीवमुक्तैस्तु सुवर्णपुङ्खैः
शिलाशितैः शोणितदिग्धवाजैः ।
शरैश्चिताङ्गो युधि भाति कर्णो
हतोऽपि सन् सूर्य इवांशुमाली ॥ २९ ॥

गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए सुवर्णमय पंखवाले और शिलापर तेज किये हुए बाणोंसे कर्णका अङ्ग-अङ्ग बिंध गया था । उन बाणोंकी पाँखें रक्तमें डूबी हुई थीं । उनके द्वारा युद्धस्थलमें पड़ा हुआ कर्ण मर जानेपर भी अंशुमाली सूर्यके समान सुशोभित हो रहा था ॥ २९ ॥

कर्णस्य देहं रुधिरावसिक्तं
भक्तानुकम्पी भगवान् विवस्वान् ।
स्पृष्ट्वांशुभिर्लोहितरक्तरूपः
सिष्णासुरभ्येति परं समुद्रम् ॥ ३० ॥

भक्तोंपर कृपा करनेवाले भगवान् सूर्य खूनसे भीगे हुए कर्णके शरीरका किरणोंद्वारा स्पर्श करके रक्तके समान ही लालरूप धारणकर मानो स्नान करनेकी इच्छासे पश्चिम समुद्रकी ओर जा रहे थे ॥ ३० ॥

इतीव संचिन्त्य सुरर्षिसंघाः
सम्प्रस्थिता यान्ति यथा निकेतनम् ।
संचिन्तयित्वा जनता विसस्रु-
र्यथासुखं खं च महीतलं च ॥ ३१ ॥

इस युद्धके ही विषयमें सोच-विचार करते हुए देवताओं तथा ऋषियोंके समुदाय वहाँसे प्रस्थित हो अपने-अपने स्थानको चल दिये और इसी विषयका चिन्तन करते हुए अन्य लोग भी सुखपूर्वक अन्तरिक्ष अथवा भूतलपर अपने-अपने निवासस्थानको चले गये ॥ ३१ ॥

तदद्भुतं प्राणभृतां भयंकरं
निशाम्य युद्धं कुरुवीरमुख्ययोः ।

धनंजयस्याधिरथेश्च विस्मिताः
प्रशंसमानाः प्रययुस्तदा जनाः ॥ ३२ ॥

कौरव तथा पाण्डव पक्षके उन प्रमुख वीर अर्जुन और कर्णका वह अद्भुत तथा प्राणियोंके लिये भयंकर युद्ध देखकर सब लोग आश्चर्यचकित हो उनकी प्रशंसा करते हुए वहाँसे चले गये ॥ ३२ ॥

शरसंकृत्तवर्माणं रुधिरोक्षितवाससम् ।
गतासुमपि राधेयं नैव लक्ष्मीर्विमुञ्चति ॥ ३३ ॥

राधापुत्र कर्णका कवच बाणोंसे कट गया था । उसके सारे वस्त्र खूनसे भीग गये थे और प्राण भी निकल गये थे तो भी उसे शोभा छोड़ नहीं रही थी ॥ ३३ ॥

तप्तजाम्बूनदनिभं ज्वलनार्कसमप्रभम् ।
जीवन्तमिव तं शूरं सर्वभूतानि मेनिरे ॥ ३४ ॥

वह तपाये हुए सुवर्ण तथा अग्नि और सूर्यके समान कान्तिमान् था । उस शूरवीरको देखकर सब प्राणी जीवित-सा समझते थे ॥ ३४ ॥

हतस्यापि महाराज सूतपुत्रस्य संयुगे ।
वित्रेसुः सर्वतो योधाः सिंहस्येवेतरे मृगाः ॥ ३५ ॥

महाराज ! जैसे सिंहसे दूसरे जङ्गली पशु सदा डरते रहते हैं, उसी प्रकार युद्धस्थलमें मारे गये सूतपुत्रसे भी समस्त योद्धा भय मानते थे ॥ ३५ ॥

हतोऽपि पुरुषव्याघ्र जीववानिव लक्ष्यते ।
नाभवद् विकृतिः काचिद्धतस्यापि महात्मनः ॥ ३६ ॥

पुरुषसिंह नरेश ! वह मारा जानेपर भी जीवित-सा दीखता था, महामना कर्णके शरीरमें मरनेपर भी कोई विकार नहीं हुआ था ॥ ३६ ॥

चारुवेषधरं वीरं चारुमौलिशिरोधरम् ।
तन्मुखं सूतपुत्रस्य पूर्णचन्द्रसमद्युति ॥ ३७ ॥

सूतपुत्र कर्णका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान कान्तिमान् था । उसने मनोहर वेष धारण किया था । वह वीरोचित शोभासे सम्पन्न था । उसके मस्तक और कण्ठ भी मनोहर थे ॥

नानाभरणवान् राजंस्तप्तजाम्बूनदाङ्गदः ।
हतो वैकर्तनः शेते पादपोऽङ्कुरवानिव ॥ ३८ ॥

राजन् ! नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित तथा तपाये हुए सुवर्णका अङ्गद (बाजूबंद) धारण किये वैकर्तन कर्ण मारा जाकर अङ्कुरयुक्त वृक्षके समान पड़ा था ॥ ३८ ॥

कनकोत्तमसंकाशो ज्वलन्निव विभावसुः ।
स शान्तः पुरुषव्याघ्र पार्थसायकवारिणा ॥ ३९ ॥

नरव्याघ्र नरेश ! उत्तम सुवर्णके समान कान्तिमान् कर्ण प्रज्वलित अग्निके तुल्य प्रकाशित होता था; परंतु पार्थके बाणरूपी जलसे वह बुझ गया ॥ ३९ ॥

यथा हि ज्वलनो दीप्तो जलमासाद्य शाम्यति ।
कर्णाग्निः समरे तद्वत् पार्थमेघेन शामितः ॥ ४० ॥

जैसे प्रज्वलित आग जलको पाकर बुझ जाती है, उसी प्रकार समराङ्गणमें कर्णरूपी अग्निको अर्जुनरूपी मेघने बुझा दिया ॥ ४० ॥

आहृत्य च यशो दीप्तं सुयुद्धेनात्मनो भुवि ।
विसृज्य शरवर्षाणि प्रताप्य च दिशो दश ॥ ४१ ॥
सपुत्रः समरे कर्णः स शान्तः पार्थतेजसा ।

इस पृथ्वीपर उत्तम युद्धके द्वारा अपने लिये उत्तम यशका उपार्जन करके, बाणोंकी झड़ी लगाकर, दसों दिशाओंको संतप्त करके, पुत्रसहित कर्ण अर्जुनके तेजसे शान्त हो गया ॥

प्रताप्य पाण्डवान् सर्वान् पञ्चालांश्चास्त्रतेजसा ॥ ४२ ॥
वर्षित्वा शरवर्षेण प्रताप्य रिपुवाहिनीम् ।
श्रीमानिव सहस्रांशुर्जगत् सर्वं प्रताप्य च ॥ ४३ ॥
हतो वैकर्तनः कर्णः सपुत्रः सहवाहनः ।
अर्थिनां पक्षिसंघस्य कल्पवृक्षो निपातितः ॥ ४४ ॥

अस्त्रके तेजसे सम्पूर्ण पाण्डव और पाञ्चालोंको संताप देकर, बाणोंकी वर्षाके द्वारा शत्रुसेनाको तपाकर तथा सहस्र किरणोंवाले तेजस्वी सूर्यके समान सम्पूर्ण संसारमें अपना प्रताप बिखेरकर वैकर्तन कर्ण पुत्र और वाहनोंसहित मारा गया । याचकरूपी पक्षियोंके समुदायके लिये जो कल्पवृक्षके समान था, वह कर्ण मार गिराया गया ॥ ४२—४४ ॥

ददानीत्येव योऽवोचन्न नास्तीत्यर्थितोऽर्थिभिः ।
सद्भिः सदा सत्पुरुषः स हतो द्वैरथे वृषः ॥ ४५ ॥

जो माँगनेपर सदा यही कहता था कि 'मैं दूँगा ।' श्रेष्ठ याचकोंके माँगनेपर जिसके मुँहसे कभी 'नाहीं' नहीं निकला, वह धर्मात्मा कर्ण द्वैरथ युद्धमें मारा गया ॥ ४५ ॥

यस्य ब्राह्मणसात् सर्वं वित्तमासीन्महात्मनः ।
नादेयं ब्राह्मणेष्वासीद् यस्य स्वमपि जीवितम् ॥ ४६ ॥
सदा स्त्रीणां प्रियो नित्यं दाता चैव महारथः ।
स वै पार्थास्त्रनिर्दग्धो गतः परमिकां गतिम् ॥ ४७ ॥

जिस महामनस्वी कर्णका सारा धन ब्राह्मणोंके अधीन था, ब्राह्मणोंके लिये जिसका कुछ भी, अपना जीवन भी अदेय नहीं था, जो स्त्रियोंको सदा प्रिय लगता था और प्रतिदिन दान किया करता था, वह महारथी कर्ण पार्थके बाणोंसे दग्ध हो परम गतिको प्राप्त हो गया ॥ ४६-४७ ॥

यमाश्रित्याकरोद् वैरं पुत्रस्ते स गतो दिवम् ।
आदाय तव पुत्राणां जयाशां शर्म वर्म च ॥ ४८ ॥

राजन् ! जिसका सहारा लेकर आपके पुत्रने पाण्डवोंके साथ वैर किया था, वह कर्ण आपके पुत्रोंकी विजयकी आशा, सुख तथा कवच (रक्षा) लेकर स्वर्गलोकको चला गया ॥ ४८ ॥

हते कर्णे सरितो न प्रसस्रु-
र्जगाम चास्तं सविता दिवाकरः ।
ग्रहश्च तिर्यग् ज्वलनार्कवर्णः
सोमस्य पुत्रोऽभ्युदियाय तिर्यक् ॥ ४९ ॥

कर्णके मारे जानेपर नदियोंका प्रवाह रुक गया, सूर्यदेव अस्ताचलको चले गये और अग्नि तथा सूर्यके समान

कान्तिमान् मङ्गल एवं सोमपुत्र बुध तिरछे होकर उदित हुए॥

नभः पफालेव ननाद चोर्वी
ववुश्च वाताः परुषाः सुघोराः।
दिशो बभूवुर्ज्वलिताः सधूमा
महार्णवाः सस्वनुश्चुक्षुभुश्च ॥ ५० ॥

आकाश फटने-सा लगा, पृथ्वी चीत्कार कर उठी, भयानक और रूखी हवा चलने लगी, सम्पूर्ण दिशाएँ धूमसहित अग्निसे प्रज्वलित-सी होने लगीं और महासागर भयंकर स्वरमें गर्जने तथा विक्षुब्ध होने लगे ॥ ५० ॥

सकाननाश्चाद्रिचयाश्चकम्पिरे
प्रविव्यथुर्भूतगणाश्च सर्वे।
बृहस्पतिः सम्परिवार्य रोहिणीं
बभूव चन्द्रार्कसमो विशाम्पते ॥ ५१ ॥

वनोंसहित पर्वतसमूह काँपने लगे, सम्पूर्ण भूतसमुदाय व्यथित हो उठे। प्रजानाथ! बृहस्पति नामक ग्रह रोहिणी नक्षत्रको सब ओरसे घेरकर चन्द्रमा और सूर्यके समान प्रकाशित होने लगा ॥ ५१ ॥

हते तु कर्णे विदिशोऽपि जज्वलु-
स्तमोवृता द्यौर्विचचाल भूमिः।
पपात चोल्का ज्वलनप्रकाशा
निशाचराश्चाप्यभवन् प्रहृष्टाः ॥ ५२ ॥

कर्णके मारे जानेपर दिशाओंके कोने-कोनेमें आग-सी लग गयी, आकाशमें अँधेरा छा गया, धरती डोलने लगी, अग्निके समान प्रकाशमान उल्का गिरने लगी और निशाचर प्रसन्न हो गये ॥ ५२ ॥

शशिप्रकाशाननमर्जुनो यदा
क्षुरेण कर्णस्य शिरो न्यपातयत्।
तदान्तरिक्षे सहसैव शब्दो
बभूव हाहेति सुरैर्विमुक्तः ॥ ५३ ॥

जिस समय अर्जुनने क्षुरके द्वारा कर्णके चन्द्रमाके समान कान्तिमान् मुखवाले मस्तकको काट गिराया, उस समय आकाशमें देवताओंके मुखसे निकला हुआ हाहाकारका शब्द गूँज उठा ॥ ५३ ॥

सदेवगन्धर्वमनुष्यपूजितं
निहत्य कर्णं रिपुमाहवेऽर्जुनः।
रराज राजन् परमेण वर्चसा
यथा पुरा वृत्रवधे शतक्रतुः ॥ ५४ ॥

राजन्! देवता, गन्धर्व और मनुष्योंद्वारा पूजित अपने शत्रु कर्णको युद्धमें मारकर अर्जुन अपने उत्तम तेजसे उसी प्रकार प्रकाशित होने लगे, जैसे पूर्वकालमें वृत्रासुरका वध करके इन्द्र सुशोभित हुए थे ॥ ५४ ॥

ततो रथेनाम्बुदवृन्दनादिना
शरन्नभोमध्यदिवाकरार्चिषा।
पताकिना भीमनिनादकेतुना
हिमेन्दुशङ्खस्फटिकावभासिना॥ ५५ ॥

महेन्द्रवाहप्रतिमेन तावुभौ
महेन्द्रवीर्यप्रतिमानपौरुषौ।
सुवर्णमुक्तामणिवज्रविद्रुमै-
रलंकृतावप्रतिमेन रंहसा ॥ ५६ ॥

नरोत्तमौ केशवपाण्डुनन्दनौ
तदाहितावग्निदिवाकराविव।
रणाजिरे वीतभयौ विरेजतुः
समानयानाविव विष्णुवासवौ ॥ ५७ ॥

तदनन्तर नरश्रेष्ठ श्रीकृष्ण और अर्जुन समराङ्गणमें रथपर आरूढ़ हो अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी एक ही वाहनपर बैठे हुए भगवान् विष्णु और इन्द्रके सदृश भयरहित हो विशेष शोभा पाने लगे। वे जिस रथसे यात्रा करते थे, उससे मेघसमूहोंकी गर्जनाके समान गम्भीर ध्वनि होती थी, वह रथ शरत्कालके मध्याह्नकालीन सूर्यके समान तेजसे उद्दीप्त हो रहा था, उसपर पताका फहराती थी और उसकी ध्वजापर भयानक शब्द करनेवाला वानर बैठा था। उसकी कान्ति हिम, चन्द्रमा, शङ्ख और स्फटिकमणिके समान सुन्दर थी। वह रथ वेगमें अपना सानी नहीं रखता था और देवराज इन्द्रके रथके समान तीव्रगामी था। उसपर बैठे हुए दोनों नरश्रेष्ठ देवराज इन्द्रके समान शक्तिशाली और पुरुषार्थी थे तथा सुवर्ण, मुक्ता, मणि, हीरे और मूँगेके बने हुए आभूषण उनके श्रीअङ्गोंकी शोभा बढ़ाते थे ॥ ५५—५७ ॥

ततो धनुर्ज्यातलबाणनिःस्वनैः
प्रसह्य कृत्वा च रिपून् हतप्रभान्।
संछादयित्वा तु कुरूञ्शरोत्तमैः
कपिध्वजः पक्षिवरध्वजश्च ॥ ५८ ॥

हृष्टौ ततस्तावमितप्रभावौ
मनांस्यरीणामवदारयन्तौ।
सुवर्णजालावततौ महास्वनौ
हिमावदातौ परिगृह्य पाणिभिः।
चुचुम्बतुः शङ्खवरौ नृणां वरौ
वराननाभ्यां युगपच्च दध्मतुः ॥ ५९ ॥

तत्पश्चात् धनुषकी प्रत्यञ्चा, हथेली और बाणके शब्दोंसे शत्रुओंको बलपूर्वक श्रीहीन करके, उत्तम बाणोंद्वारा कौरव-सैनिकोंको ढककर अमित प्रभावशाली नरश्रेष्ठ गरुडध्वज श्रीकृष्ण और कपिध्वज अर्जुन हर्षमें भरकर विपक्षियोंका हृदय विदीर्ण करते हुए हाथोंमें दो श्रेष्ठ शङ्ख ले उन्हें अपने सुन्दर मुखोंसे एक ही साथ चूमने और बजाने लगे। उनके वे दोनों शङ्ख सोनेकी जालीसे आवृत, बर्फके समान सफेद और महान् शब्द करनेवाले थे ॥ ५८-५९ ॥

पाञ्चजन्यस्य निर्घोषो देवदत्तस्य चोभयोः।
पृथिवीं चान्तरिक्षं च दिशश्चैवान्वनादयत् ॥ ६० ॥

पाञ्चजन्य तथा देवदत्त दोनों शङ्खोंकी गम्भीर ध्वनिने

पृथ्वी, आकाश तथा सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित कर दिया ॥

वित्रस्ताश्चाभवन् सर्वे कौरवा राजसत्तम ।
शङ्खशब्देन तेनाथ माधवस्यार्जुनस्य च ॥ ६१ ॥

नृपश्रेष्ठ ! श्रीकृष्ण और अर्जुनकी उस शङ्खध्वनिसे समस्त कौरव संत्रस्त हो उठे ॥ ६१ ॥

तौ शङ्खशब्देन निनादयन्तौ
वनानि शैलान् सरितो गुहाश्च ।
वित्रासयन्तौ तव पुत्रसेनां
युधिष्ठिरं नन्दयतां वरिष्ठौ ॥ ६२ ॥

अपने शङ्खनादसे नदियों, पर्वतों, कन्दराओं तथा काननोंको प्रतिध्वनित करके आपके पुत्रकी सेनाको भयभीत करते हुए वे दोनों श्रेष्ठतम वीर युधिष्ठिरका आनन्द बढ़ाने लगे ॥

ततः प्रयाताः कुरवो जवेन
श्रुत्वैव शङ्खस्वनमीर्यमाणम् ।
विहाय मद्राधिपतिं पतिं च
दुर्योधनं भारत भारतानाम् ॥ ६३ ॥

भारत ! उस शङ्खध्वनिको सुनते ही समस्त कौरवयोद्धा मद्रराज शल्य तथा भरतवंशियोंके अधिपति दुर्योधनको वहीं छोड़कर वेगपूर्वक भागने लगे ॥ ६३ ॥

महाहवे तं बहु रोचमानं
धनंजयं भूतगणाः समेताः ।
तदान्वमोदन्त जनार्दनं च
दिवाकरावभ्युदितौ यथैव ॥ ६४ ॥

उस समय उदित हुए दो सूर्योंके समान उस महासमरमें प्रकाशित होनेवाले अत्यन्त कान्तिमान् अर्जुन तथा भगवान् श्रीकृष्णके पास आकर समस्त प्राणी उनके कार्यका अनुमोदन करने लगे ॥ ६४ ॥

समाचितौ कर्णशरैः परंतपा-
वुभौ व्यभातां समरेऽच्युतार्जुनौ ।
तमो निहत्याभ्युदितौ यथामलौ
शशाङ्कसूर्यौ दिवि रश्मिमालिनौ ॥ ६५ ॥

समरभूमिमें कर्णके बाणोंसे व्याप्त हुए वे दोनों शत्रुसंतापी वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन अन्धकारका नाश करके आकाशमें उदित हुए निर्मल अंशुमाली सूर्य और चन्द्रमाके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ ६५ ॥

विहाय तान् बाणगणानथागतौ
सुहृद्वृतावप्रतिमानविक्रमौ ।
सुखं प्रविष्टौ शिबिरं स्वमीश्वरौ
सदस्यनिन्द्याविव विष्णुवासवौ ॥ ६६ ॥

उन बाणोंको निकालकर वे अनुपम पराक्रमी सर्वसमर्थ श्रीकृष्ण और अर्जुन सुहृदोंसे घिरे हुए छावनीपर आये और यज्ञमें पदार्पण करनेवाले भगवान् विष्णु तथा इन्द्रके समान वे दोनों ही सुखपूर्वक शिबिरके भीतर प्रविष्ट हुए ॥

तौ देवगन्धर्वमनुष्यचारणै-
र्महर्षिभिर्यक्षमहोरगैरपि ।
जयाभिवृद्ध्या परयाभिपूजितौ
हते तु कर्णे परमाहवे तदा ॥ ६७ ॥

उस महासमरमें कर्णके मारे जानेपर देवता, गन्धर्व, मनुष्य, चारण, महर्षि, यक्ष तथा बड़े-बड़े नागोंने भी 'आपकी जय हो, वृद्धि हो' ऐसा कहते हुए बड़ी श्रद्धासे उन दोनोंका समादर किया ॥ ६७ ॥

यथानुरूपं प्रतिपूजितावुभौ
प्रशस्यमानौ स्वकृतैर्गुणौघैः ।
ननन्दतुस्तौ ससुहृद्गणौ तदा
बलं नियम्येव सुरेशकेशवौ ॥ ६८ ॥

जैसे बलासुरका दमन करके देवराज इन्द्र और भगवान् विष्णु अपने सुहृदोंके साथ आनन्दित हुए थे, उसी प्रकार श्रीकृष्ण और अर्जुन कर्णका वध करके यथायोग्य पूजित तथा अपने उपार्जित गुण-समूहोंद्वारा भूरि-भूरि प्रशंसित हो हितैषी-सम्बन्धियोंसहित बड़े हर्षका अनुभव करने लगे ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि रणभूमिवर्णनं नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें रणभूमिका वर्णनविषयक चौरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९४ ॥

पञ्चनवतितमोऽध्यायः

कौरवसेनाका शिबिरकी ओर पलायन और शिबिरोंमें प्रवेश

संजय उवाच

हते वैकर्तने राजन् कुरवो भयपीडिताः ।
वीक्षमाणा दिशः सर्वाः पर्यपेतुः सहस्रशः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! वैकर्तन कर्णके मारे जानेपर भयसे पीड़ित हुए सहस्रों कौरव योद्धा सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर देखते हुए भाग निकले ॥ १ ॥

कर्णं तु निहतं दृष्ट्वा शत्रुभिः परमाहवे ।
भीता दिशो व्यकीर्यन्त तावकाः क्षतविक्षताः ॥ २ ॥

शत्रुओंने उस महायुद्धमें वैकर्तन कर्णको मार डाला है, यह देखकर आपके सैनिक भयभीत हो उठे थे । उनका सारा शरीर घावोंसे भर गया था । इसलिये वे भागकर सम्पूर्ण दिशाओंमें बिखर गये ॥ २ ॥

ततोऽवहारं चक्रुस्ते योधाः सर्वे समन्ततः ।
निवार्यमाणाश्चोद्विग्नास्तावका भृशदुःखिताः ॥ ३ ॥

तब आपके समस्त योद्धा जो अत्यन्त दुखी और उद्विग्न हो रहे थे, मना करनेपर सब ओरसे युद्ध बंद करके लौटने लगे ॥

तेषां तन्मतमाज्ञाय पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
अवहारं ततश्चक्रे शल्यस्यानुमते नृप ॥ ४ ॥

नरेश्वर ! उन सबका अभिप्राय जानकर राजा शल्यकी अनुमति ले आपके पुत्र दुर्योधनने सेनाको लौटनेकी आज्ञा दी॥

कृतवर्मा रथैस्तूर्णं वृतो भारत तावकैः।
नारायणावशेषैश्च शिबिरायैव दुद्रुवे ॥ ५ ॥

भारत ! नारायणी-सेनाके जो वीर शेष रह गये थे, उनसे तथा आपके अन्य रथी योद्धाओंसे घिरा हुआ कृतवर्मा भी तुरंत शिविरकी ओर ही भाग चला ॥ ५ ॥

गान्धाराणां सहस्रेण शकुनिः परिवारितः।
हतमाधिरथिं दृष्ट्वा शिबिरायैव दुद्रुवे ॥ ६ ॥

सहस्रों गान्धार योद्धाओंसे घिरा हुआ शकुनि भी अधिरथपुत्र कर्णको मारा गया देख छावनीकी ओर ही भागा ॥

कृपः शारद्वतो राजन् नागानीकेन भारत।
महामेघनिभेनाशु शिबिरायैव दुद्रुवे ॥ ७ ॥

भरतवंशी नरेश ! शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्य मेघोंकी घटाके समान अपनी गजसेनाके साथ शीघ्रतापूर्वक शिविरकी ओर ही भाग चले ॥ ७ ॥

अश्वत्थामा ततः शूरो विनिःश्वस्य पुनः पुनः।
पाण्डवानां जयं दृष्ट्वा शिबिरायैव दुद्रुवे ॥ ८ ॥

तदनन्तर शूरवीर अश्वत्थामा पाण्डवोंकी विजय देख बारंबार उच्छ्‌वास लेता हुआ छावनीकी ओर ही भागने लगा॥

संशप्तकावशिष्टेन बलेन महता वृतः।
सुशर्मापि ययौ राजन् वीक्षमाणो भयार्दितः ॥ ९ ॥

राजन् ! संशप्तकोंकी बची हुई विशाल सेनासे घिरा हुआ सुशर्मा भी भयसे पीड़ित हो इधर-उधर देखता हुआ छावनीकी ओर चल दिया ॥ ९ ॥

दुर्योधनोऽपि नृपतिर्हतसर्वस्वबान्धवः।
ययौ शोकसमाविष्टश्चिन्तयन् विमना बहु ॥ १० ॥

जिसके भाई नष्ट हो गये थे और सर्वस्व लुट गया था, वह राजा दुर्योधन भी शोकमग्न, उदास और विशेष चिन्तित होकर शिविरकी ओर चल पड़ा ॥ १० ॥

छिन्नध्वजेन शल्यस्तु रथेन रथिनां वरः।
प्रययौ शिबिरायैव वीक्षमाणो दिशो दश ॥ ११ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ राजा शल्यने भी जिसकी ध्वजा कट गयी थी, उस रथके द्वारा दसों दिशाओंकी ओर देखते हुए छावनीकी ओर ही प्रस्थान किया ॥ ११ ॥

ततोऽपरे सुबहवो भरतानां महारथाः।
प्राद्रवन्त भयत्रस्ता ह्रियाविष्टा विचेतसः ॥ १२ ॥

भरतवंशियोंके दूसरे-दूसरे बहुसंख्यक महारथी भी भयभीत, लज्जित और अचेत होकर शिविरकी ओर दौड़े ॥ १२ ॥

असृक् क्षरन्तः सोद्विग्ना वेपमानास्तथातुराः।
कुरवो दुद्रुवुः सर्वे दृष्ट्वा कर्णं निपातितम् ॥ १३ ॥

कर्णको मारा गया देख सभी कौरव-सैनिक खून बहाते और काँपते हुए उद्विग्न तथा आतुर होकर छावनीकी ओर भागने लगे ॥ १३ ॥

प्रशंसन्तोऽर्जुनं केचित् केचित् कर्णं महारथाः।
व्यद्रवन्त दिशो भीताः कुरवः कुरुसत्तम ॥ १४ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! कौरव-महारथियोंमेंसे कुछ लोग अर्जुनकी प्रशंसा करते थे और कुछ कर्णकी। वे सब-के-सब भयभीत होकर चारों दिशाओंमें भाग खड़े हुए ॥ १४ ॥

तेषां योधसहस्राणां तावकानां महामृधे।
नासीत्तत्र पुमान् कश्चिद् यो युद्धाय मनो दधे ॥ १५ ॥

आपके उन हजारों योद्धाओंमें वहाँ कोई भी ऐसा पुरुष नहीं था, जो अपने मनमें उस महासमरमें युद्धके लिये उत्साह रखता हो ॥ १५ ॥

हते कर्णे महाराज निराशाः कुरवोऽभवन्।
जीवितेष्वपि राज्येषु दारेषु च धनेषु च ॥ १६ ॥

महाराज ! कर्णके मारे जानेपर कौरव अपने राज्यसे, धनसे, स्त्रियोंसे और जीवनसे भी निराश हो गये ॥ १६ ॥

तान् समानीय पुत्रस्ते यत्नेन महता विभुः।
निवेशाय मनो दध्रे दुःखशोकसमन्वितः ॥ १७ ॥

दुःख और शोकमें डूबे हुए आपके पुत्र राजा दुर्योधनने बड़े यत्नसे उन सबको साथ ले आकर छावनीमें विश्राम करनेका विचार किया ॥ १७ ॥

तस्याज्ञां शिरसा योधाः परिगृह्य विशाम्पते।
विवर्णवदना राजन् न्यविशन्त महारथाः ॥ १८ ॥

प्रजानाथ ! वे सब महारथी योद्धा दुर्योधनकी आज्ञा शिरोधार्य करके शिविरमें प्रविष्ट हुए। उन सबके मुखोंकी कान्ति फीकी पड़ गयी थी ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि शिबिरप्रयाणे पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कौरव-सेनाका शिविरकी ओर प्रस्थानविषयक पचानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९५ ॥

षण्णवतितमोऽध्यायः

युधिष्ठिरका रणभूमिमें कर्णको मारा गया देखकर प्रसन्न हो श्रीकृष्ण और अर्जुनकी प्रशंसा करना, धृतराष्ट्रका शोकमग्न होना तथा कर्णपर्वके श्रवणकी महिमा

संजय उवाच

तथा निपतिते कर्णे परसैन्ये च विद्रुते।
आश्लिष्य पार्थं दाशार्हो हर्षाद् वचनमब्रवीत्॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! जब कर्ण मारा गया और शत्रुसेना भाग चली, तब दशार्हनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनको हृदयसे लगाकर बड़े हर्षके साथ इस प्रकार बोले—॥

हतो वज्रभृता वृत्रस्त्वया कर्णो धनंजय ।
वृत्रकर्णवधं घोरं कथयिष्यन्ति मानवाः ॥ २ ॥

'धनंजय ! पूर्वकालमें वज्रधारी इन्द्रने वृत्रासुरका वध किया था और आज तुमने कर्णको मारा है । वृत्रासुर और कर्ण दोनोंके वधका वृत्तान्त बड़ा भयंकर है । मनुष्य सदा इसकी चर्चा करते रहेंगे ॥ २ ॥

वज्रेण निहतो वृत्रः संयुगे भूरितेजसा ।
त्वया तु निहतः कर्णो धनुषा निशितैः शरैः ॥ ३ ॥

'वृत्रासुर युद्धमें महातेजस्वी वज्रके द्वारा मारा गया था; परंतु तुमने कर्णको धनुष एवं पैने बाणोंसे ही मार डाला है ॥

तमिमं विक्रमं लोके प्रथितं ते यशस्करम् ।
निवेदयावः कौन्तेय कुरुराजस्य धीमतः ॥ ४ ॥

'कुन्तीनन्दन ! चलो, हम दोनों तुम्हारे इस विश्वविख्यात और यशोवर्धक पराक्रमका वृत्तान्त बुद्धिमान् कुरुराज युधिष्ठिरको बतावें ॥ ४ ॥

वधं कर्णस्य संग्रामे दीर्घकालचिकीर्षितम् ।
निवेद्य धर्मराजाय त्वमानृण्यं गमिष्यसि ॥ ५ ॥

'उन्हें दीर्घकालसे युद्धमें कर्णके वधकी अभिलाषा थी । आज धर्मराजको यह समाचार बताकर तुम उऋण हो जाओगे ॥

वर्तमाने महायुद्धे तव कर्णस्य चोभयोः ।
द्रष्टुमायोधनं पूर्वमागतो धर्मनन्दनः ॥ ६ ॥

'जब यह महायुद्ध चल रहा था, उस समय तुम्हारा और कर्णका युद्ध देखनेके लिये धर्मनन्दन युधिष्ठिर पहले आये थे॥

भृशं तु गाढविद्धत्वान्नाशकत् स्थातुमाहवे ।
ततः स शिबिरं गत्वा स्थितवान् पुरुषर्षभः ॥ ७ ॥

'परंतु गहरी चोट खानेके कारण वे देरतक युद्धस्थलमें ठहर न सके । यहाँसे शिबिरमें जाकर वे पुरुषप्रवर युधिष्ठिर विश्राम कर रहे हैं' ॥ ७ ॥

तथेत्युक्तः केशवस्तु पार्थेन यदुपुङ्गवः ।
पर्यावर्तयदव्यग्रो रथं रथवरस्य तम् ॥ ८ ॥

तब अर्जुनने केशवसे 'तथास्तु' कहकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य की । तत्पश्चात् यदुकुलतिलक श्रीकृष्णने शान्तभावसे रथिश्रेष्ठ अर्जुनके उस रथको युधिष्ठिरके शिबिरकी ओर लौटाया ॥

एवमुक्त्वार्जुनं कृष्णः सैनिकानिदमब्रवीत् ।
परानभिमुखा यत्तास्तिष्ठध्वं भद्रमस्तु वः ॥ ९ ॥

अर्जुनसे पूर्वोक्त बात कहकर भगवान् श्रीकृष्ण सैनिकोंसे इस प्रकार बोले—'वीरो ! तुम्हारा कल्याण हो ! तुम शत्रुओंका सामना करनेके लिये सदा प्रयत्नपूर्वक डटे रहना' ॥ ९ ॥

धृष्टद्युम्नं युधामन्युं माद्रीपुत्रौ वृकोदरम् ।
युयुधानं च गोविन्द इदं वचनमब्रवीत् ॥ १० ॥

इसके बाद गोविन्द धृष्टद्युम्न, युधामन्यु, नकुल, सहदेव, भीमसेन और सात्यकिसे इस प्रकार बोले—॥ १० ॥

यावदावेद्यते राज्ञे हतः कर्णोऽर्जुनेन वै ।
तावद्भवद्भिर्यत्तैस्तु भवितव्यं नराधिपैः ॥ ११ ॥

'अर्जुनने कर्णको मार डाला' यह समाचार जबतक हमलोग राजा युधिष्ठिरसे निवेदन करते हैं, तबतक तुम सभी नरेशोंको यहाँ शत्रुओंकी ओरसे सावधान रहना चाहिये॥

स तैः शूरैरनुज्ञातो ययौ राजनिवेशनम् ।
पार्थमादाय गोविन्दो ददर्श च युधिष्ठिरम् ॥ १२ ॥

उन शूरवीरोंने उनकी आज्ञा स्वीकार करके जब जानेकी अनुमति दे दी, तब भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको साथ लेकर राजा युधिष्ठिरका दर्शन किया ॥ १२ ॥

शयानं राजशार्दूलं काञ्चने शयनोत्तमे ।
अगृह्णीतां च मुदितौ चरणौ पार्थिवस्य तौ ॥ १३ ॥

उस समय नृपश्रेष्ठ युधिष्ठिर सोनेके उत्तम पलंगपर सो रहे थे । उन दोनोंने वहाँ पहुँचकर बड़ी प्रसन्नताके साथ राजाके चरण पकड़ लिये ॥ १३ ॥

तयोः प्रहर्षमालक्ष्य हर्षादश्रूण्यवर्तयत् ।
राधेयं निहतं मत्वा समुत्तस्थौ युधिष्ठिरः ॥ १४ ॥

उन दोनोंके हर्षोल्लासको देखकर राजा युधिष्ठिर यह समझ गये कि राधापुत्र कर्ण मारा गया; अतः वे शय्यासे उठ खड़े हुए और नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहाने लगे ॥

उवाच च महाबाहुः पुनः पुनररिंदमः ।
वासुदेवार्जुनौ प्रेम्णा तावुभौ परिषस्वजे ॥ १५ ॥

शत्रुदमन महाबाहु युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण और अर्जुनसे बारंबार प्रेमपूर्वक बोलने और उन दोनोंको हृदयसे लगाने लगे ॥

तत् तस्मै तद् यथावृत्तं वासुदेवः सहार्जुनः ।
कथयामास कर्णस्य निधनं यदुपुङ्गवः ॥ १६ ॥

उस समय अर्जुनसहित यदुकुलतिलक वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने कर्णके मारे जानेका सारा समाचार उन्हें यथावत्‌रूपसे कह सुनाया ॥ १६ ॥

ईषदुत्स्मयमानस्तु कृष्णो राजानमब्रवीत् ।
युधिष्ठिरं हतामित्रं कृताञ्जलिरथाच्युतः ॥ १७ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण हाथ जोड़कर किञ्चित् मुस्कराते हुए, जिनका शत्रु मारा गया था, उस राजा युधिष्ठिरसे इस प्रकार बोले—॥ १७ ॥

दिष्ट्या गाण्डीवधन्वा च पाण्डवश्च वृकोदरः ।
त्वं चापि कुशली राजन् माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ १८ ॥

'राजन् ! बड़े सौभाग्यकी बात है कि गाण्डीवधारी अर्जुन, पाण्डव भीमसेन, पाण्डुकुमार माद्रीनन्दन नकुल-सहदेव और आप भी सकुशल हैं ॥ १८ ॥

मुक्ता वीरक्षयादस्मात् संग्रामाल्लोमहर्षणात् ।
क्षिप्रमुत्तरकालानि कुरु कार्याणि पाण्डव ॥ १९ ॥

'आप सब लोग वीरोंका विनाश करनेवाले इस रोमाञ्चकारी संग्रामसे मुक्त हो गये । पाण्डुनन्दन ! अब आगे जो कार्य करने हैं, उन्हें शीघ्र पूर्ण कीजिये ॥ १९ ॥

हतो वैकर्तनो राजन् सूतपुत्रो महारथः ।
दिष्ट्या जयसि राजेन्द्र दिष्ट्या वर्धसि भारत॥ २० ॥

'राजन्! महारथी सूतपुत्र वैकर्तन कर्ण मारा गया, राजेन्द्र ! सौभाग्यसे आप विजयी हो रहे हैं। भारत ! आपकी वृद्धि हो रही है, यह परम सौभाग्यकी बात है ॥ २० ॥

यस्तु द्यूतजितां कृष्णां प्राहसत् पुरुषाधमः।
तस्याद्य सूतपुत्रस्य भूमिः पिबति शोणितम् ॥ २१ ॥

'जिस नराधमने जूएमें जीती हुई द्रौपदीका उपहास किया था, आज पृथ्वी उस सूतपुत्र कर्णका रक्त पी रही है ॥ २१ ॥

शेतेऽसौ शरपूर्णाङ्गः शत्रुस्ते कुरुपुङ्गव।
तं पश्य पुरुषव्याघ्र विभिन्नं बहुभिः शरैः ॥ २२ ॥

'कुरुपुङ्गव ! आपका वह शत्रु रणभूमिमें सो रहा है और उसके सारे शरीरमें बाण भरे हुए हैं। नरव्याघ्र ! अनेक बाणोंसे क्षत-विक्षत हुए उस कर्णको आप देखिये ॥ २२ ॥

हतामित्रामिमामुर्वीमनुशाधि महाभुज।
यत्तो भूत्वा सहास्माभिर्भुङ्क्ष्व भोगांश्च पुष्कलान्॥२३॥

'महाबाहो ! आप सावधान होकर हम सब लोगोंके साथ इस निष्कंटक हुई पृथ्वीका शासन और प्रचुर भोगोंका उपभोग कीजिये' ॥ २३ ॥

संजय उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य केशवस्य महात्मनः।
धर्मपुत्रः प्रहृष्टात्मा दाशार्हं वाक्यमब्रवीत् ॥ २४ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! महात्मा श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर धर्मपुत्र युधिष्ठिरका चित्त प्रसन्न हो गया। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णसे वार्तालाप आरम्भ किया ॥ २४ ॥

दिष्ट्या दिष्ट्येति राजेन्द्र वाक्यं चेदमुवाच ह।
नैतच्चित्रं महाबाहो त्वयि देवकिनन्दन ॥ २५ ॥
त्वया सारथिना पार्थो यत्नवानहनच्च तम्।
न तच्चित्रं महाबाहो युष्मद्बुद्धिप्रसादजम् ॥ २६ ॥

राजेन्द्र ! 'अहो भाग्य ! अहो भाग्य !' ऐसा कहकर युधिष्ठिर इस प्रकार बोले—'महाबाहु देवकीनन्दन ! आपके रहते यह महान् कार्य सम्पन्न होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। आप-जैसे सारथिके होते ही पार्थने प्रयत्नपूर्वक उसका वध किया है। महाबाहो ! आपकी बुद्धिके प्रसादसे ऐसा होना आश्चर्य नहीं है' ॥ २५-२६ ॥

प्रगृह्य च कुरुश्रेष्ठ साङ्गदं दक्षिणं भुजम्।
उवाच धर्मभृत् पार्थ उभौ तौ केशवार्जुनौ ॥ २७ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! इसके बाद धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरने बाजूबंद-विभूषित श्रीकृष्णका दाहिना हाथ अपने हाथमें लेकर श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंसे कहा—॥ २७ ॥

नरनारायणौ देवौ कथितौ नारदेन मे।
धर्मात्मानौ महात्मानौ पुराणावृषिसत्तमौ ॥ २८ ॥

'प्रभो ! देवर्षि नारदने मुझसे कहा था कि आप दोनों धर्मात्मा, महात्मा, पुराणपुरुष तथा ऋषिप्रवर साक्षात् भगवान् नर और नारायण हैं ॥ २८ ॥

असकृच्चापि मेधावी कृष्णद्वैपायनो मम।
कथामेतां महाभाग कथयामास तत्त्ववित् ॥ २९ ॥

'महाभाग ! परम बुद्धिमान् तत्त्ववेत्ता महर्षि श्रीकृष्ण-द्वैपायनने भी बारंबार मुझसे यही बात कही है ॥ २९ ॥

तव कृष्ण प्रसादेन पाण्डवोऽयं धनंजयः।
जिगायाभिमुखः शत्रून् न चासीद् विमुखः क्वचित्॥३०॥

'श्रीकृष्ण ! आपके प्रसादसे ही ये पाण्डुपुत्र धनंजय सदा सामने रहकर युद्धमें शत्रुओंपर विजयी हुए हैं और कभी युद्धसे मुँह नहीं मोड़ सके हैं ॥ ३० ॥

जयश्चैव ध्रुवोऽस्माकं न त्वस्माकं पराजयः।
यदा त्वं युधि पार्थस्य सारथ्यमुपजग्मिवान् ॥ ३१ ॥

'प्रभो ! जब आप युद्धमें अर्जुनके सारथि बने थे, तभी हमें यह विश्वास हो गया था कि हमलोगोंकी विजय निश्चित है, अटल है। हमारी पराजय नहीं हो सकती ॥ ३१ ॥

भीष्मो द्रोणश्च कर्णश्च महात्मा गौतमः कृपः।
अन्ये च बहवः शूरा ये च तेषां पदानुगाः ॥ ३२ ॥
त्वद्बुद्ध्या निहते कर्णे हता गोविन्द सर्वथा।

'गोविन्द ! भीष्म, द्रोण, कर्ण, महात्मा गौतमवंशी कृपाचार्य तथा इनके पीछे चलनेवाले जो और भी बहुत-से शूरवीर हैं और रहे हैं, आपकी बुद्धिसे आज कर्णके मारे जानेपर उन सबका वध हो गया, ऐसा मैं मानता हूँ' ३२½

इत्युक्त्वा धर्मराजस्तु रथं हेमविभूषितम् ॥ ३३ ॥
श्वेतवर्णैर्हयैर्युक्तं कालवालैर्मनोजवैः।
आस्थाय पुरुषव्याघ्रः स्वबलेनाभिसंवृतः ॥ ३४ ॥
प्रययौ स महाबाहुर्द्रष्टुमायोधनं तदा।
कृष्णार्जुनाभ्यां वीराभ्यामनुमन्त्र्य ततः प्रियम्॥ ३५ ॥
आभाषमाणस्तौ वीरावुभौ माधवफाल्गुनौ।
स ददर्श रणे कर्णं शयानं पुरुषर्षभम् ॥ ३६ ॥

ऐसा कहकर पुरुषसिंह महाबाहु धर्मराज युधिष्ठिर श्वेत-वर्ण और काली पूँछवाले, मनके समान वेगशाली घोड़ोंसे जुते हुए सुवर्णभूषित रथपर आरूढ़ हो अपनी सेनाके साथ युद्ध देखनेके लिये चले। श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों वीरोंके साथ प्रिय विषयपर परामर्श और उनसे वार्तालाप करते हुए युधिष्ठिरने रणभूमिमें सोये हुए पुरुषप्रवर कर्णको देखा॥३३–३६॥

यथा कदम्बकुसुमं केसरैः सर्वतो वृतम्।
चितं शरशतैः कर्णं धर्मराजो ददर्श सः ॥ ३७ ॥

जैसे कदम्बका फूल सब ओरसे केसरोंसे भरा होता है, उसी प्रकार कर्णका शरीर सैकड़ों बाणोंसे व्याप्त था। धर्म-राज युधिष्ठिरने इसी अवस्थामें उसे देखा ॥ ३७ ॥

गन्धतैलावसिक्ताभिः काञ्चनीभिः सहस्रशः।
दीपिकाभिः कृतोद्योतं पश्यते वै वृषं तदा ॥ ३८ ॥

उस समय सुगन्धित तेलसे भरे हुए सहस्रों सोनेके दीपक जलाकर प्रकाश किया गया था। उसी उजालेमें वे धर्मात्मा कर्णको देख रहे थे ॥ ३८ ॥

संछिन्नभिन्नकवचं बाणैश्च विदलीकृतम् ।
सपुत्रं निहतं दृष्ट्वा कर्णं राजा युधिष्ठिरः ॥ ३९ ॥
संजातप्रत्ययोऽतीव वीक्ष्य चैवं पुनः पुनः ।
प्रशशंस नरव्याघ्रावुभौ माधवपाण्डवौ ॥ ४० ॥

उसका कवच छिन्न-भिन्न हो गया था और सारा शरीर बाणोंसे विदीर्ण हो चुका था । उस अवस्थामें पुत्रसहित मरे हुए कर्णको देखकर बारंबार उसका निरीक्षण करके राजा युधिष्ठिरको इस बातपर पूरा-पूरा विश्वास हुआ । फिर वे पुरुषसिंह श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे ॥ ३९-४० ॥

अद्य राजास्मि गोविन्द पृथिव्यां भ्रातृभिः सह ।
त्वया नाथेन वीरेण विदुषा परिपालितः ॥ ४१ ॥

उन्होंने कहा--'गोविन्द ! आप-जैसे विद्वान् और वीर स्वामी एवं संरक्षकके द्वारा सुरक्षित होकर आज मैं भाइयोंसहित इस भूमण्डलका राजा हो गया ॥ ४१ ॥

हतं श्रुत्वा नरव्याघ्रं राधेयमतिमानिनम् ।
निराशोऽद्य दुरात्मासौ धार्तराष्ट्रो भविष्यति॥ ४२ ॥
जीविते चैव राज्ये च हते राधात्मजे रणे ।
त्वत्प्रसादाद् वयं चैव कृतार्थाः पुरुषर्षभ ॥ ४३ ॥

'आज दुरात्मा धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन अत्यन्त अभिमानी नरव्याघ्र राधापुत्र कर्णके मारे जानेका वृत्तान्त सुनकर राज्य और जीवनसे भी निराश हो जायगा । पुरुषोत्तम ! आपकी कृपासे रणभूमिमें राधापुत्र कर्णके मारे जानेपर हम सब लोग कृतार्थ हो गये ॥ ४२-४३ ॥

दिष्ट्या जयसि गोविन्द दिष्ट्या शत्रुर्निपातितः ।
दिष्ट्या गाण्डीवधन्वा च विजयी पाण्डुनन्दनः ॥ ४४॥

'गोविन्द ! बड़े भाग्यसे आपकी विजय हुई है । भाग्यसे ही हमारा शत्रु कर्ण आज मार गिराया गया है और सौभाग्यसे ही गाण्डीवधारी पाण्डुनन्दन अर्जुन विजयी हुए हैं ॥

त्रयोदश समास्तीर्णा जागरेण सुदुःखिताः ।
स्वप्स्यामोऽद्य सुखं रात्रौ त्वत्प्रसादान्महाभुज॥४५॥

'महाबाहो ! अत्यन्त दुखी होकर हमलोगोंने जागते हुए तेरह वर्ष व्यतीत किये हैं । आजकी रातमें आपकी कृपासे हमलोग सुखपूर्वक सो सकेंगे' ॥ ४५ ॥

संजय उवाच

एवं स बहुशो राजा प्रशशंस जनार्दनम् ।
अर्जुनं च कुरुश्रेष्ठं धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ४६ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार धर्मराज राजा युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्ण तथा कुरुश्रेष्ठ अर्जुनकी बारंबार प्रशंसा की ॥ ४६ ॥

दृष्ट्वा च निहतं कर्णं सपुत्रं पार्थसायकैः ।
पुनर्जातमिवात्मानं मेने च स महीपतिः ॥ ४७ ॥

पुत्रसहित कर्णको अर्जुनके बाणोंसे मारा गया देख राजा युधिष्ठिरने अपना नया जन्म हुआ-सा माना ॥ ४७ ॥

समेत्य च महाराज कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
हर्षयन्ति स्म राजानं हर्षयुक्ता महारथाः ॥ ४८ ॥

महाराज ! उस समय हर्षमें भरे हुए पाण्डवपक्षके महारथी कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरसे मिलकर उनका हर्ष बढ़ाने लगे ॥ ४८ ॥

नकुलः सहदेवश्च पाण्डवश्च वृकोदरः ।
सात्यकिश्च महाराज वृष्णीनां प्रवरो रथः ॥ ४९ ॥
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च पाण्डुपाञ्चालसृञ्जयाः ।
पूजयन्ति स्म कौन्तेयं निहते सूतनन्दने ॥ ५० ॥

राजेन्द्र ! नकुल-सहदेव, पाण्डुपुत्र भीमसेन, वृष्णिवंशके श्रेष्ठ महारथी सात्यकि,धृष्टद्युम्न और शिखण्डी आदि पाण्डव, पाञ्चाल तथा सृंजय योद्धा सूतपुत्र कर्णके मारे जानेपर कुन्तीकुमार अर्जुनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ४९-५० ॥

ते वर्धयित्वा नृपतिं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।
जितकाशिनो लब्धलक्ष्या युद्धशौण्डाः प्रहारिणः॥५१॥
स्तुवन्तः स्तवयुक्ताभिर्वाग्भिः कृष्णौ परंतपौ ।
जग्मुः स्वशिबिरायैव मुदा युक्ता महारथाः ॥ ५२ ॥

वे विजयसे उल्लसित हो रहे थे । उनका लक्ष्य सिद्ध हो गया था । वे युद्धकुशल महारथी योद्धा धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरको बधाई देकर स्तुतियुक्त वचनोंद्वारा शत्रुसंतापी श्रीकृष्ण और अर्जुनकी प्रशंसा करते हुए बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने शिबिरको गये॥ ५१-५२ ॥

एवमेष क्षयो वृत्तः सुमहाँल्लोमहर्षणः ।
तव दुर्मन्त्रिते राजन् किमर्थमनुशोचसि ॥ ५३ ॥

राजन् ! इस प्रकार आपकी ही कुमन्त्रणाके फलस्वरूप यह रोमाञ्चकारी महान् जनसंहार हुआ है । अब आप किसलिये बारंबार शोक करते हैं ? ॥ ५३ ॥

वैशम्पायन उवाच

श्रुत्वैतदप्रियं राजा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
पपात भूमौ निश्चेष्टश्छिन्नमूल इव द्रुमः ॥ ५४ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! यह अप्रिय समाचार सुनकर अम्बिकानन्दन राजा धृतराष्ट्र निश्चेष्ट हो जड़से कटे हुए वृक्षकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ५४ ॥

तथा सा पतिता देवी गान्धारी दीर्घदर्शिनी ।
शुशोच बहुलालापैः कर्णस्य निधनं युधि ॥ ५५ ॥

इसी तरह दूरतक सोचनेवाली गान्धारी देवी भी पछाड़ खाकर गिरीं और बहुत विलाप करती हुई युद्धमें कर्णकी मृत्युके लिये शोक करने लगीं ॥ ५५ ॥

तां पर्यगृह्णाद् विदुरो नृपतिं संजयस्तथा ।
पर्याश्वासयतां चैव तावुभावेव भूमिपम् ॥ ५६ ॥

उस समय विदुरजीने गान्धारी देवीको और संजयने

राजा धृतराष्ट्रको सँभाला । फिर दोनों ही मिलकर राजाको समझाने-बुझाने लगे ॥ ५६ ॥

तथैवोत्थापयामासुर्गान्धारीं कुरुयोषितः ।
स दैवं परमं मत्वा भवितव्यं च पार्थिवः ॥ ५७ ॥
परां पीडां समाश्रित्य नष्टचित्तो महातपाः ।
चिन्ताशोकपरीतात्मा न जज्ञे मोहपीडितः ।
स समाश्वासितो राजा तूष्णीमासीद् विचेतनः॥ ५८ ॥

इसी प्रकार कुरुकुलकी स्त्रियोंने आकर गान्धारी देवीको उठाया । भाग्य और भवितव्यताको ही प्रबल मानकर राजा धृतराष्ट्र भारी व्यथाका अनुभव करने लगे । उनकी विवेकशक्ति नष्ट हो गयी । वे महातपस्वी नरेश चिन्ता और शोकमें डूब गये और मोहसे पीड़ित होनेके कारण उन्हें किसी भी बातकी सुध न रही । विदुर और संजयके समझानेपर राजा धृतराष्ट्र अचेत-से होकर चुपचाप बैठे रह गये ॥ ५७-५८ ॥

श्रवणमहिमा

इमं महायुद्धमखं महात्मनो-
र्धनंजयस्याधिरथेश्च यः पठेत् ।
स सम्यगिष्टस्य मखस्य यत् फलं
तदाप्नुयात् संश्रवणाच्च भारत ॥ ५९ ॥

भारत ! जो मनुष्य महात्मा अर्जुन और कर्णके इस महायुद्धरूपी यज्ञका पाठ अथवा श्रवण करेगा, वह विधि-पूर्वक किये हुए यज्ञानुष्ठानका फल प्राप्त कर लेगा ॥ ५९ ॥

मखो हि विष्णुर्भगवान् सनातनो
वदन्ति तच्चाग्न्यनिलेन्दुभानवः ।
अतोऽनसूयुः शृणुयात् पठेच्च यः
स सर्वलोकानुचरः सुखी भवेत्॥ ६० ॥

सनातन भगवान् विष्णु यज्ञस्वरूप हैं, इस बातको अग्नि, वायु, चन्द्रमा और सूर्य भी कहते हैं । अतः जो मनुष्य दोष-दृष्टिका परित्याग करके इस युद्धयज्ञका वर्णन पढ़ता या सुनता है, वह सम्पूर्ण लोकोंमें विचरनेवाला और सुखी होता है[1]॥

तां सर्वदा भक्तिमुपागता नराः
पठन्ति पुण्यां वरसंहितामिमाम् ।
धनेन धान्येन यशसा च मानुषा
नन्दन्ति ते नात्र विचारणास्ति ॥ ६१ ॥

जो मनुष्य सदा भक्तिभावसे इस उत्तम एवं पुण्यमयी संहिताका पाठ करते हैं, वे धन-धान्य एवं यशसे सम्पन्न हो आनन्दके भागी होते हैं । इस बातमें कोई अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ ६१ ॥

अतोऽनसूयुः शृणुयात् सदा तु वै
नरः स सर्वाणि सुखानि चाप्नुयात् ।
विष्णुः स्वयंभूर्भगवान् भवश्च
तुष्यन्ति ते तस्य नरोत्तमस्य ॥ ६२ ॥

अतः जो मनुष्य दोषदृष्टिसे रहित होकर सदा इस संहिताको सुनता है, वह सम्पूर्ण सुखोंको प्राप्त कर लेता है, उस श्रेष्ठ मनुष्यपर भगवान् विष्णु, ब्रह्मा और महादेवजी भी प्रसन्न होते हैं ॥ ६२ ॥

वेदावाप्तिर्ब्राह्मणस्येह दृष्टा
रणे बलं क्षत्रियाणां जयो युधि ।
धनज्येष्ठाश्चापि भवन्ति वैश्याः
शूद्राऽऽरोग्यं प्राप्नुवन्तीह सर्वे॥ ६३ ॥

इसके पढ़ने और सुननेसे ब्राह्मणोंको वेदोंका ज्ञान प्राप्त होता है, क्षत्रियोंको बल और युद्धमें विजय प्राप्त होती है, वैश्य धनमें बढ़े-चढ़े हो जाते हैं और समस्त शूद्र आरोग्य लाभ करते हैं ॥ ६३ ॥

तथैव विष्णुर्भगवान् सनातनः
स चात्र देवः परिकीर्त्यते यतः ।
ततः स कामाल्लँभते सुखी नरो
महामुनेस्तस्य वचोऽर्चितं यथा॥ ६४ ॥

इसमें सनातन भगवान् विष्णु (श्रीकृष्ण) की महिमा-का वर्णन किया गया है; अतः मनुष्य इसके स्वाध्यायसे सुखी होकर सम्पूर्ण मनोवाञ्छित कामनाओंको प्राप्त कर लेता है । महामुनि व्यासदेवकी इस परम पूजित वाणीका ऐसा ही प्रभाव है ॥ ६४ ॥

कपिलानां सवत्सानां वर्षमेकं निरन्तरम् ।
यो दद्यात् सुकृतं तद्धि श्रवणात् कर्णपर्वणः॥ ६५ ॥

लगातार एक वर्षतक प्रतिदिन जो बछड़ोंसहित कपिला गौओंका दान करता है, उसे जिस पुण्यकी प्राप्ति होती है, वही कर्णपर्वके श्रवणमात्रसे मिल जाता है ॥ ६५ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि युधिष्ठिरहर्षे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें युधिष्ठिरका हर्षविषयक छानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९६ ॥

॥ कर्णपर्व सम्पूर्णम् ॥

	अनुष्टुप्	बड़े श्लोक	बड़े श्लोकोंको अनुष्टुप् माननेपर	कुल
उत्तर भारतीय पाठसे लिये गये	४०९२॥	(९०७॥)	१२४७॥।-	५३४०।-
दक्षिण भारतीय पाठसे लिये गये	१२५॥	(२८)	३८॥	१६४
कर्णपर्वकी कुल श्लोक-संख्या				५५०४।-

[1] 'सर्वलोकानुचरः' का यह अर्थ भी हो सकता है कि सब लोग उसके अनुचर हो जाते हैं ।



युधिष्ठिरकी ललकारपर दुर्योधनका पानीसे बाहर निकल आना